॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
२६

॥ श्रीः ॥

चम्पूरामायणम्

'प्रकाश' टीकोपेतम्



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन-संस्कृत-ग्रन्थमाला

२६



श्रीभोजराजसार्वभौमविरचितं

चम्पूरामायणम्

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीटीकोपेतम्

टीकाकारः

न्याय-व्याकरण-वेदान्त-साहित्याचार्य-

पण्डित श्रीरामचन्द्र मिश्रः

(प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, रांची)



चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१

सं० २०१३]

ई० १९५६

प्रकाशक—
चौखम्बा विद्या भवन
चौक, बनारस-१

The Chowkhamba Vidya Bhawan
Chowk, Banaras.
(INDIA)
1956

मुद्रक—
विद्या विलास प्रेस,
बनारस



भागलपुरमण्डलान्तर्गततिलडीहाग्रामवासिनां

परमपूजनीयमन्मातुलवर-

श्रीश्रीनाथझाशर्ममहानुभावानां

करकमलयोरेभिः शब्दैः सादरं

समर्पयति—

गुरुदेव,

प्रज्ञासंमार्जनीभिर्विविधविवृतिभिः पाठयन् काव्यबन्धान्
व्याकुर्वन् व्याकृतीनामतिदुरधिगमं तत्त्वमायासतश्च ।
गद्ये पद्ये च यो मामकुरुत कृपयोद्भिन्नबोधं, स्वकृत्या
पूजां तस्याधुनाहं रचयितुमनयाऽनन्यगत्योद्यतोऽस्मि ॥
यो मेऽनेकानुदश्वत्कटुफलविषमानक्षमिष्टापराधान्
स्वत्वादाहृत्य दोषानपि गुणगणवन्मां सदाऽन्वग्रहीच्च ।
तेनेयं किन्नपूजा च्युतविधिरभवद्भावसमारभूमा
स्वल्पाप्यन्तर्निगूढादरगमकतया कल्पिता स्वीक्रियेत ? ॥

तदीयः शिष्यान्यतमो भागिनेयान्यतरश्च

प्रश्रयावनतः प्रकाशकारो

रामचन्द्रमिश्रः

अवतारणा

अथायमुपक्रम्यते प्रकाशयितुं प्रकाशनामक संस्कृतहिन्दीव्याख्याद्वयोपेतो धारानगरप्राण-महाराजभोजदेवप्रणीतः 'चम्पूरामायण'नामकश्चम्पूग्रन्थः। अस्य-रचयितुः परिचयादिकमग्रेतनेन हिन्दीसन्दब्धेन प्रस्तावनानामकेन प्रकरणेन ज्ञातव्यम्। अयं चम्पूग्रन्थः साहित्यविद्यापरिशीलनप्रियाणामतीव हृद्यः सरसतया समधिकहृदयावर्जको रामकथाबोधकतया सुकृताधायकश्चेति मन्ये भुक्तिमुक्तिकृत्। अस्य साहित्याचार्यपरीक्षापाठ्यत्वमपि मया स्वयं दृष्टम्। अतोऽस्योत्तममेकं संस्करणं चिरादपेक्ष्यतेस्म।

अस्य यावन्ति पुस्तकानि मया दृष्टानि तेषु रामचन्द्रबुधेन्द्रविरचितटीकोपबृंहितं पुस्तकमेव समग्रमाधारीकरणयोग्यञ्चोपलब्धम्, अन्यानि तु नानादोषयुतत्वेनोपेक्षापात्राण्येव। बुधेन्द्रटीका तु मल्लिनाथरीतिमनुहरन्ती सकलार्थज्ञापनाय प्रयतमाना, सत्यपि यत्र तत्र स्खलने, प्रशंसाभूमिरेव, परं साऽपि केवल संस्कृतमयतया छात्राणां साधारणपाठकानाञ्च न तथा मनोबन्धिनीति प्रयासेन संस्कृत्य मूलग्रन्थं तत्र संस्कृत-हिन्दीभाषाद्वयोपनिबद्धं व्याख्यानद्वयमयूयुजम्।

अस्यां हि व्याख्यायां संस्कृते सर्वेऽप्यर्था उपपादिताः, कोषच्छन्दोऽलङ्कार-सदृशश्लोकादयोऽपि यथासम्भवं प्रदर्शिताः, ततोऽवशिष्टाऽपेक्षिता च सरलता हिन्दीभाषाऽनुवादेन सद्य एव तदधस्तादुपस्थापितेति मूलग्रन्थलापने किमपि काठिन्यं नानुभूयेत।

आशासे विद्वांसोऽध्यापकाश्छात्राश्चादृत्य प्रयासमिममुपादाय ग्रन्थमिमञ्च मामुत्साहयिष्यन्तीति।

गुरुपूर्णिमा
सं० २०१३

विदुषामाश्रवः—

रामचन्द्रमिश्रः

प्रस्तावना

यह सृष्टि कब प्रारम्भ हुई इस विषयमें कितना भी मतभेद हो, परन्तु उस विषयमें जब निर्णय होगा तो समयका मापदण्ड लक्षाब्दमें ही होगा। सृष्टिके आदिमें ही मानवसृष्टि इस रूपमें हुई होगी इस पर भी आपत्तियाँ हो सकती हैं, फिर भी मानवसृष्टि जब इस रूपमें पहुँची तभी सृष्टिका याथार्थ्य सिद्ध हुआ यह मानना पड़ेगा, क्योंकि मानव ही ऐसा जीव है जो अपनी संवेदनाको दूसरों तक पहुँचाना चाहता है, अनुभूतियोंको दूसरों तक पहुँचाकर उन्हें लाभान्वित करना चाहता है। इसी तरहके प्रयासोंमें से एक प्रयासका फल काव्य है—यह निश्चित है। मनुष्यका यह प्रयास नानाप्रकारका तथा नानाप्रकारकी भाषाओं द्वारा हुआ यह भी मानना ही होगा। भाषा चाहे जो हो सभी जगह प्रेरणा एक ही तरहकी होती रही होगी, इसी बातको ध्यानमें रखकर आचार्योंने कहा है:—

'उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवतु सा भवतु'।

काव्यको—चाहे वह किसी भी भाषाका क्यों न हो—अपने प्रयोजनके विषयमें कुछ प्रमाण देना है, इस अंशमें विचार करनेपर दो शाखाओंपर ध्यान देना होगा। एक यह कि काव्यप्रयोजनसे काव्यनिर्माणका प्रयोजन क्या है; यह विचारणीय है और दूसरी बात यह कि काव्यज्ञानका प्रयोजन क्या है? दोनोंका उत्तर इसीमें दिया गया है।

काव्यप्रयोजन

काव्यके प्रयोजनमें कहा है—'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे'। काव्य बनानेसे तथा काव्य जाननेसे यश-कीर्त्ति प्राप्त होती है, अर्थ-धन मिलता है, व्यवहार-लोकाचारका ज्ञान होता है, शिवेतर अकल्याणकी क्षति विनाश होती है, तत्कालमें काव्यनिर्माणकालमें और काव्यपरिशीलनकालमें एक विलक्षण प्रकारकी आनन्दानुभूति होती है और कान्तासम्मित रूपमें अतिहृदयङ्गम, मनोऽभिलषित, नहीं टालने योग्य अनुरोधके रूपमें उपदेश प्राप्त होता है। सभी प्रयोजनोंके उदाहरण भी काव्यप्रकाशकारने दिये हैं, उदाहरणकी आवश्यकता है भी नहीं, क्योंकि इस विषयकी सत्यता आत्माको स्वतः प्रतीत होती है। इस तरह काव्यके प्रयोजन प्रतीत हैं।

काव्योंमें चम्पूकाव्य

काव्य सामान्यतः दो प्रकारके माने जाते हैं—दृश्य और श्रव्य। श्रव्यकाव्यके भी दो भेद हैं—गद्यकाव्य और पद्यकाव्य। गद्यकाव्यका गौरव उसकी अर्थ प्रधानतासे है, क्योंकि पद्यकाव्य कुछ अंशोंमें रागके द्वारा भी श्रोताको आकृष्टकर सकता है, परन्तु गद्यकाव्यको तो अपने अर्थ गौरव मात्रसे ही श्रोतृजनसमावर्जन करना पड़ता है। गद्यकाव्यका अर्थगौरव और पद्यकाव्यका अर्थगौरवोपबृंहित रागमयता दोनों एक जगह मिल जानेपर अधिक चमत्कार उत्पन्न कर सकेंगे। इसी बातको ध्यानमें रखकर चम्पूकाव्यकी उद्भावनाकी गई होगी। चम्पूरामायणकर्त्ता भोजदेवने भी इस प्रसङ्गमें यही कहा है—

'गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिर्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया' ॥

'गद्य सम्बन्धसे सुन्दर पद्यसूक्ति अधिक मनोहर होती है—जैसे वाजेसे युक्त गायन। इसीलिये कविताके प्रेमियोंको आनन्द देनेके लिये मैं चम्पूनिर्माणका मार्ग अपना रहा हूँ'।

इससे यह सिद्ध होता है कि एक मात्र गद्य तथा पद्यसे उतना आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता है जितना कि उभयसम्मिश्रणसे, जैसे केवल वाजा सुनते रहिये तथा केवल मौखिक गीत सुनते रहिये तो उतना आनन्द नहीं आयगा जितना कि तानपूरेकी आवाजके साथ गाना सुननेमें आता है।

चम्पूकाव्यका लक्षण सबसे पहले दण्डीने किया—'गद्यपद्यमयी वाणी चम्पूरित्यभिधीयते'। इसी लक्षणको पीछेके आचार्योंने दुहराया है, किसीने वाणीकी जगह काव्य कहा। कुछ मौलिक भेद नहीं हुआ। यद्यपि कथा तथा आख्यायिकामें—'क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके। आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्' इत्यादि लक्षणानुसार गद्यपद्यका मिश्रण होता है फिर भी वहाँ प्राधान्य गद्यका ही होता है। पद्य तो रश्मभर अदा करनेके लिये लिखे जाते हैं। चम्पूमें पद्य और गद्यकी मात्रा करीब २ बराबर ही होती है, यद्यपि नाप कर नहीं देखा जाता है फिर भी इस पर दृष्टि रखनी होती है कि किसी एक पक्षका अधिक प्राबल्य तो नहीं होता जारहा है। सामान्यतः कथानिर्वाहके लिये गद्यका प्रयोग करते हैं और किसी वर्णनके लिये पद्यका व्यवहार करते हैं, परन्तु इस नियमका भी उल्लङ्घन होता ही

रहता है। वास्तविक बात यह है कि इस विषयमें चम्पूकारोंने पूरी स्वतन्त्रतासे काम लिया है और रीतिकारोंने भी दृढ़तापूर्वक कोई नियम करनेका प्रयास नहीं किया है। सौभाग्यवश चम्पूकाव्यका बीज उन जातक ग्रन्थोंमें भी निहित मिलता है जो १० वीं शतीसे पहलेके लिखे गये हैं। चम्पूकाव्यमें कोई ऐसी विलक्षणता नहीं है जो केवल गद्य या पद्यमें न हो सकता हो, उसकी विशेषता केवल मिश्रणकृत चमत्कारमें ही है।

सबसे प्राचीन जो चम्पूग्रन्थ उपलब्ध होता है वह है त्रिविक्रम भट्ट कृत 'नलचम्पू' या 'दमयन्ती चम्पू'। त्रिविक्रम भट्टने राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीयका नौसारी शिलालेख ९१५ ई० में लिखा था, इसीसे उनका समय निश्चितसा है। जैनकवि सोमप्रभ का 'यशस्तिलक चम्पू' राष्ट्रकूटराजा कृष्णके समयमें ९५९ ई० में लिखा गया। यह दोनों चम्पूग्रन्थ ही आगे चलकर लिखे गये चम्पूग्रन्थोंके लिये आदर्श बने। जैन पुराण—'ऊत्तरपुराण'के आधार पर बने 'जीवनधर चम्पू' का समय निश्चितरूपसे नहीं कहा जासकता है। इसके रचयिताका नाम 'हरिचन्द्र' है। यह ११ लम्भकका विशाल ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे चंम्पूग्रन्थ इनके ही पदचिह्नों पर चलकर बनाये गये हैं। रामायणके आधारपर रामायणचम्पू बना, जो भोजकी कृति है और अनन्तभट्टने 'भारतचम्पू' नामक विशाल चम्पू ग्रन्थकी रचना की। 'भागवतचम्पू' नामक तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनके रचयिताओंके नाम हैं—१ चिदम्बर, २ रामभद्र और ३ राजनाथ। रामायण तथा महाभारतके आधार पर कुछ और चम्पूग्रन्थ बने हैं पर उनकी प्रसिद्धि नहीं हो पायी है। पुराणोंके आधारपर बने चम्पू ग्रन्थोंकी संख्या भी कम नहीं है, 'नृसिंहचम्पू' नामके दो चम्पू ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें एकके रचयिताका नाम है—केशवभट्ट और दूसरेके सङ्कर्षण। इन दोनोंमें प्रह्लादकी कथा वर्णित हुई है।

इसके बाद प्रसिद्ध चम्पूकार शेष श्रीकृष्ण हुए जिनकी कृति–'पारिजातहरणं चम्पू' नाम से प्रसिद्ध है। इनका समय १६ वीं शती का उत्तरार्ध माना जाता है, समुद्रमन्थनकी कथाको आधार बनाकर नीलकण्ठ ने 'नीलकण्ठविजय' नामक चम्पूकी रचना १६३७ ई० के लगभगमें की थी। 'वरदाम्बिकापरिणय' चम्पूकी रचना स्त्रीकवि तिरुमलाम्बा द्वारा इसी समयमें की गई थी। इसके बाद चम्पूकी एकरसता–वही पौराणिक कथा वर्णनपरतासे असन्तुष्ट होकर समुद्रपुङ्गव दीक्षित नामक कविने 'यात्राप्रबन्ध' नामक चम्पू की रचना की। यह रचना भी १७ वीं शतीके अन्तिम भागकी ही है। इसके बादसे कवियोंने इधर ध्यान दिया कि

पौराणिक विषयातिरिक्त विषयोंपर भी चम्पूकाव्य लिखे जांय, तदनुसार वेङ्कटाध्वरीने 'विश्वगुणादर्शचम्पू'की रचना की। इसमें विश्ववसु तथा कृशानुकी व्योमयात्राका वर्णन है जो काल्पनिक तथा रमणीय है। इसकी देखादेखीमें अन्नार्यने 'तत्त्वगुणादर्श' चम्पूकी रचना की।

इसी शैलीको देखकर लोगोंने शास्त्रीय तत्त्वप्रतिपादनार्थ गद्यपद्यमय कवित्वाभासको चम्पूकाव्य कहना प्रारम्भकर दिया। जैसे—वेदान्ताचार्य विजय, विद्वन्मोदतरङ्गिणी आदि। इन ग्रन्थोंको काव्य नहीं कहकर दर्शन कहना ही उपयुक्त होगा।

भोजका समय

भोज परमारवंशी क्षत्रिय थे, इनके वंशमें सर्वप्रथम उपेन्द्र नामक राजा हुए जिनका दूसरा नाम कृष्ण था। अनुमानतः उनका समय ८०० से ८२५ ई० माना जाता है। वे मालवाके अधिशासक थे। परमारवंश अग्निसे उत्पन्न वंश है ऐसा कुछ लोग कहते हैं:—

'वासिष्ठैः सुकृतोद्भवोऽध्वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो
भूपालः परमार इत्यधिपतिः सप्ताब्धिकाञ्चेर्भुवः।
अद्याप्यद्भुतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्योद्भटं
विश्वामित्रजयोर्जितस्य भुजयोर्विस्फूर्जितं गुर्जराः' ॥

यह सरस्वतीकण्ठाभरणमें भोजदेवने स्वयं अपने वंशकी प्रशंसामें लिखा है। परमारवंशको इन्होंने अग्निसे प्रवृत्त माना है। 'परमार' 'प्रतिहार' 'चालुक्य' 'चाहमान' यह क्षत्रियोंके चार भेद हैं जो अपनेको अग्निप्रवृत्त वंशोत्पन्न मानते हैं। बहुतसे शिलालेखोंसे चालुक्य आदि क्षत्रियोंका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है, परन्तु 'पृथ्वीराजरासो' नामक डिङ्गलभाषा ग्रन्थसे इन चारो क्षत्रियभेदों की अग्निवंश्यता सिद्ध होती है। इसी परमारवंशमें राजाभोजका जन्म हुआ था। इनका समय निर्णीत है। इनका ताम्रलेखपत्र बहुतसा मिला है जिसे काव्यमालामें प्राचीन लेखमालाके नामसे मुद्रित किया गया है। हम भी यहाँ एक लेख उद्धृत करते हैं जिसमें तिथि स्थानमें लिखा है—सं० १०७६ माघ शुदि ५, इस तरह १०१९ ई० में भोजराजका होना निश्चित होता है। जिस ताम्रलेखपत्रकी तिथि हमने बताई है वह भोजका तृतीय लेख इस प्रकार है:—

'श्रीमतो भोजदेवस्य ताम्रपत्रम्
ओं जयति व्योमकेशोऽसौ यः सर्गाय बिभर्त्ति ताम्।
ऐन्दवीं शिरसा लेखां जगद्बीजाङ्कुराकृतिम् ॥

तन्वन्तु वः स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः ।
कल्पान्तसमयोद्दामतडिद्वलयपिङ्गलाः ॥

परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसीयकदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवाक्पतिराजदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसिन्धुराजदेवपादानुध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवः कुशली स्थलीमण्डलेघाघ्रदोरभोगान्तःपातिवटपद्रके समुपगतान् समस्तराजपुरुषान् ब्राह्मणोत्तरान् प्रतिनिवासिजनपदादींश्च समादिशत्यस्तु वः संविदितं यथाऽस्माभिः कोङ्कणविजीयपर्वणि स्नात्वा चराचरगुरुं भगवन्तं भवानीपतिं समभ्यर्च्य संसारस्यासारतां दृष्ट्वा—

'वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां धर्मः सखा परमहो परलोकयाने ॥
भ्रमत्संसारचक्राग्रधाराधारामिमां श्रियम् ।
प्राप्य ये न ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलम्' ॥

इति जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्य [उपरि स्वहस्तोऽयं श्रीभोजदेवस्य] लिखितग्रामात् भूनिवर्त्तनशतैकनि १०० स्वसीमातृणगोचरयूतिपर्यन्तं हिरण्यादायसमेतं सभागभोगं सपरिकरं सर्वादायसमेतं ब्राह्मणभाईलाय वामनसुताय वसिष्ठसगोत्राय वाजिमाध्यन्दिनशाखायैकप्रवणाय छिच्छास्थानविनिर्गतपूर्वजाय मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोऽभिवृद्धये अदृष्टफलमङ्गीकृत्य चन्द्रार्कार्णवक्षितिसमकालं यावत्परया भक्त्या शासनेनोदकपूर्वं प्रतिपादनमिति मत्वा तन्निवासिजनपदैर्यथादीयमानभागभोगकरहिरण्यादिकमाज्ञाश्रवणविधेये भूत्वा सर्वमस्मै समुपनेतव्यमिति । सामान्यं चैतत्पुण्यफलं बुद्ध्वाऽस्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्मादायोऽयमनुमन्तव्यः पालनीयश्च । उक्तं च—

'बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ।
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥
अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया दानं फलं परयशः परिपालनं च ॥
सर्वानेतान्भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

इति कमलदलाम्बुविन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च ।
सकलमिदमुदाहृतं च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः' ॥

सं० १०७६ माघशुदि ५ स्वयमाज्ञामङ्गलं महाश्रीः, स्वहस्तोऽयं श्रीभोजदेवस्य ।'
भोजका यह लेख 'एपिग्राफिया इण्डिका' में प्रकाशित है। भोजके शासनकालमें गुर्जरदेशीय आनन्दपुरवासी वज्रटपुत्र उव्वटने उज्जयिनीमें रहकर शुक्लयजुर्वेद भाष्यकी रचना की थी यह बात उस भाष्यके अन्तमें स्पष्ट लिखी गई है। विक्रम संवत् १०९९ में भोजदेवने 'राजमृगाङ्क' नामक करणग्रन्थकी रचना की थी, यह बात राजमृगाङ्क के आदि में स्थित अहर्गणसाधक श्लोकसे सिद्ध होती है। 'आलवरुनी' नामक यात्रीने इण्डिया नामक १०३० ई० में लिखित ग्रन्थमें लिखा है कि उस समय धारानगरीमें भोज शासक थे।

'राजमृगाङ्क' के अनुसार १०९९ संवत् तक भोजकी सत्ता सिद्ध होती है। उसके बाद भी वह कुछ दिनों तक रहे होंगे, जैसा कि जयसिंहके ताम्रलेखसे अनुमान किया जाता है क्योंकि जयसिंह भोजके उत्तराधिकारी थे, उनका दानपत्र १११२ सं. का लिखा है, अतः संभवतः १११० संवत् के लगभग भोजने परलोकयात्रा की होगी, यह प्रतीत होता है। बल्लाल पण्डितने भोजके विषयमें लिखा है:—

पञ्चाशत् पञ्चवर्षाणि सप्तमासं दिनत्रयम्। भोजराजेन भोक्तव्यः सगौड़ो दक्षिणापथः॥

इससे भी भोजका ५५ वर्ष व्यापक शासनकाल प्रतीत होता है, वह भी पूर्वोक्त मतमें अनुकूल होता है, वह एक भविष्यवाणीकी तरह है, यह बात दूसरी है।

सरस्वतीकण्ठाभरणकी भूमिकामें भोजका काल निम्न प्रकार दिया है। इस कालनिर्णयमें वंशपरम्परा भी निहित है, अतः यह कुछ स्थूल हो सकता है।

राजाओं के नाम	समय	राजाओं के नाम	समय
१ उपेन्द्र	सं. ८५७ से ८८२	६ सीयक २	सं. ९९८ से १०३३
२ वैरिसिंह	" ८८२ से ९०७	७ वाक्पति (मुञ्ज)	" १०३३ से १०५३
३ सीयक	" ९०७ से ९३२	८ सिन्धुल	" १०५३ से १०६९
४ वाक्पति १	" ९३२ से ९७१	९ भोज	" १०६७ से १११२
५ वैरिसिंह* २	" ९७१ से ९९८		

इस तरह राजमृगाङ्क, जयसिंहका ताम्रपत्र, भोजका लेख आदिके समन्वयसे यह सिद्ध होता है कि विक्रम संवत् एकादश शतकके उत्तर भागमें भोज हुए थे।

*इनका दूसरा नाम वज्रट था, इन्होंने ही धारामें राज्य स्थापित किया।

उनका कार्यकाल ४५ वर्षोंका है, परन्तु यह उनका शासन काल होसकता है; जीवन काल इससे ३० वर्ष बड़ा हो सकता है।

भोजराजने देश विशेषमें देवमन्दिरादिका निर्माण किया था, राजतरङ्गिणीमें कह्लण पण्डितने लिखा हैः—

'मालवाधिपतिर्भोजः प्रहितैः स्वर्णसञ्चयैः। अकारयद्येन कुण्डयोजनं कपटेश्वरे' ॥

कपटेश्वर कुण्डमें पत्थल की चट्टानें आज भी भोजदेवकी कीर्त्ति गा रही हैं। उसी कुण्डके पासमें शिवमन्दिर है जो भोजदेवका बनाया कहा जाता है। भोजदेव अपने समयके विक्रमादित्य कहे जाते थे, कवियोंका आदर उनके यहाँ खूब होता था। 'प्रत्यक्षरलक्षं ददौ' वाली बात-अत्युक्ति हो सकती है, अमूलोक्ति नहीं है।

भोजराजके बनाये ग्रन्थ

ग्रन्थ नाम	विषय	ग्रन्थ नाम	विषय
१ आदित्यप्रतापसिद्धान्त	ज्यौतिष	१२ सिद्धान्तसंग्रह	शैवशास्त्र
२ राजमार्त्तण्ड	”	१३ राजमार्त्तण्ड	पा० योग सूत्र टीका
३ राजमृगाङ्क	”	१४ व्यवहारसमुच्चय	धर्म शास्त्र
४ विद्वज्जनवल्लभ	”	१५ चारुचर्या	”
५ आयुर्वेदसर्वस्व	वैद्यक	१६ शालिहोत्र	अश्ववैद्यक
६ विश्रान्तविद्याविनोद	”	१७ शब्दानुशासन	व्याकरण
७ चाणक्यनीति	नीतिशास्त्र	१८ समराङ्गणसूत्रधार	शिल्प शास्त्र
८ नाममालिका	कोष	१९ सुभाषितप्रबन्ध	सुभाषित
९ तत्त्वप्रकाश	शैवशास्त्र	२० सरस्वतीकण्ठाभरण	अलङ्कार
१० शिवतत्त्वरत्न मालिका	”	२१ चम्पूरामायण	चम्पू
११ युक्तिकल्पतरु	”		

Dr. T. Aufracht द्वारा सम्पादित 'Catalogus Catalogarum' नामक बृहत् सूचीपत्रमें इन पुस्तकोंके अतिरिक्त हनूमन्नाटकको भी भोजके ग्रन्थोंमें गिनाया गया है और कहा है कि शिलोत्कीर्ण समुद्रक्षिप्त इस ग्रन्थको भोजने समुद्धृत किया है।

चम्पूरामायण

चम्पूरामायण भोजका प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ है, इसमें गद्य तथा पद्य दोनों प्रकारकी कविताका चमत्कार दिखलाया गया है, काव्यकी महत्ताकी दृष्टिसे यह बहुत सुन्दर

है यह आगे बताया जायगा। चम्पू रामायणमें (प्रकाशित पुस्तकमें) छः काण्ड हैं, जिनमें आदितः सुन्दर काण्डपर्यन्त भाग भोजदेवकी कृति है और अन्तिम युद्धकाण्ड लक्ष्मणसूरिने लिखा है, इस विषयमें लक्ष्मणसूरिने स्वयं लिखा है:—

'साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित–
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः।
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम्' ॥

उत्तरकाण्ड किसी वेंकट पण्डितने लिखा है जो प्रकाशित नहीं है।

चम्पूरामायणका कथाभाग वस्तुतः वाल्मीकि रामायणपर ही आधारित है। इसमें जो नाममात्रका कहीं भेद पाया जाता है वह केवल साहित्यक दृष्टिसे चमत्कार बढ़ानेके लिये ही कविने किया है।

चम्पूरामायणका काव्यचमत्कार

चम्पूरामायण में कथाकृत चारुत्वकी खोज करनेवालोंको भोजराजने जो उत्तर दिया है उससे उनका कृतज्ञत्व तथा नम्र भाव दोनों प्रकट होता है, उन्होंने कहा है:—

'वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्त्तिलेशैस्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः किं तर्पणं न विदधाति नरः पितॄणाम्' ॥

'वाल्मीकि वर्णित रामचरितसे मैं सज्जनों को तृप्त करनेका प्रयास करता हूँ जैसे लोग भगीरथ द्वारा लाई गई गङ्गाके जलसे पितरोंका तर्पण किया करते हैं'।

कार्यकी पवित्रता तथा वाल्मीकिके प्रति प्रदर्शित कृतज्ञताका कितना सुन्दर समन्वय किया गया है। इसी तरह का एक अतुकान्त समर्थ गुरु रामदासने भी कहा है:—

'सन्तोंकी उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वानी! जानूं इसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी?'

वाल्मीकिके मुखसे सर्व प्रथम छन्दोमयी वाणी निकलते ही वे आश्चर्यान्वित हो गये, कुछ समझमें नहीं आया कि यह क्या हो गया? इसी समय ब्रह्माजी वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने आदि कविसे कहा कि आपके द्वारा लौकिक छन्दों का अवतार हुआ है। आप रामचरितसे संसारको आप्यायित करेंगे, इसी ब्रह्माविर्भावको कविने कितना सुन्दर-रूप दिया है। वह देखने योग्य है:—

'वाणीविलासमपरत्र कृतोपलम्भ-
मम्भोजभूरसहमान इवाविरासीत्' ॥

'वाणी विधिकी स्त्री है, वह दूसरोंके यहाँ विलासकरे यह बात विधिको कैसे सह्य हो सकती है? विधि इसीलिये तो स्वयं पहुँच गये वाणीविलासपात्र वाल्मीकिके पास।' यहाँ हेतूत्प्रेक्षाका प्रयोग बड़ा हृदयग्राही हुआ है।

भोजराज चित्रकाव्यके बड़े प्रेमी थे, चित्रकाव्यसे शब्दचित्रका ग्रहण किया जाय तो उसका बड़ा अच्छा विन्यास इनके काव्यमें मिलेगा:—

एनां पुराणनगरीं नगरीति सालां सालाभिराममभुजनिर्जितयक्षराजः।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां राजा चिरादवति रावणनामधेयः' ॥

इसमें 'नगरीं नगरी सालां साला' का विन्यास और अनुप्रास अतिमनोरम हुआ है। अलङ्कारोंका विन्यास उस युगकी विशेषता हो रही थी जिसमें भोजने जन्म लिया था। अतः अलङ्कारोंका उत्तम समावेश उनकी कवितामें मिलता है:—

'सङ्क्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः सम्पर्कपुण्यादिव रामभद्रः।
छात्रक्रमात् पिप्पलदण्डयोग्यः पलाशदण्डाहृतपाणिरासीत् ॥'

पलाश-राक्षसके दण्डमें लगे रामको पलाशदण्डयुक्त हाथवाला कहकर और उसमें वर्णान्तर संक्रमणकर्त्ता विश्वामित्रके संसर्गको कारण बताकर कविने उत्प्रेक्षा और विरोधाभासका कितना सुन्दर संयोग कराया है।

श्लेषबन्धके द्वारा उपमाकी सृष्टि करके पाठकोंको आनन्द देनेमें बाणभट्टने जो क्रम अपनाया है—'चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः' इत्यादि पङ्क्तियोंने कादम्बरीमें जो रस भर दिया है वह आप भोजके गद्यमें भी पाइयेगा, देखिये—'पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदम्, प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटित वर्णव्यत्यासम्, बुधमिव सोमसुतम्'। यह विश्वामित्रका वर्णन है। कितना स्पष्ट श्लेष है। भोजने कविताका सभी दृष्टियोंसे समन्वय-सा करना अपना लक्ष्य बनाया था—कहीं माघकी शैली अपनायी गई तो कहीं कालिदासकी, कहीं अलङ्कारोंकी बारीकियों पर दृष्टि रखी गई तो कहीं रसपरिपाक पर विशेष प्रयास किया गया। हम जब चम्पूरामायणमें:—

'अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा। शशाङ्कशङ्खसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥
तरङ्गाकृष्टमार्त्तण्डतुरङ्गायासितारुणा। फेनच्छन्नस्वमातङ्गमार्गणव्यग्रवासवा ॥
आविः शाखाशिखोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा। एकोदकनभोमार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा ॥'

पढ़ते हैं तब हठात् माघकी कविता याद पड़ने लगती है—

'दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः। द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ॥

ककुम्भिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥
ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामोष्ठविम्बचुम्बनचुञ्चुना ॥'

और जब हम प्रसादगुणका प्रवाह पाकर उसमें अवगाहन करते हैं जैसे :—

'कान्तारभाजि मयि केकयराजपुत्र्याः कार्कश्य कन्दलितया दलितस्य वाचा ।
तातस्य शोकदहनग्लपितं शरीरं मातस्त्वया ननु कदाचिदुपेक्षणीयम् ॥

× × × ×

कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां
कान्तारचारकथया कलुषीचकार ।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं
सन्त्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः ॥'

उस समय ऐसा लगता है कि हम कालिदासका रघुवंश पढ़ रहे हैं—

'सा दुर्निमित्तोपगताद्विषादात्सद्यः परिम्लानमुखारविन्दा ।
राज्ञः शिवं सत्वरजस्य भूयादित्याचचक्षे करणैरबाह्यैः ॥'

× × ×

'कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः' ॥

× × ×

कवितामें जहाँ तक हृदयपक्षका सम्बन्ध है—भोजराजको अत्यधिक सफलता मिली है, आप देखें, वाली मारा गया है, उसकी स्त्री तारा रामसे कहती है :—

'सन्त्रस्य पूर्वममुतस्तव बन्धुरेष भेजे यथाद्रिमकुतोभयमृष्यमूकम् ।
भर्त्ता ममायमपि रामशरैरभेद्यं प्राप्तो मदीयहृदयच्छलमद्रिदुर्गम् ।

इस श्लोकमें 'तवबन्धुरेषः' में जो पक्षपातकी तथा हृदयको अद्रिदुर्ग कहने में जो पश्चात्तापकी अभिव्यञ्जना है वह हृदयको छू लेती है । तारा रामको ललकार कर कहती है :—

'नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः ।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या धन्वी कथं भवति राघव मामविद्ध्वा ॥'

अपने प्राणोंको–पतिके वियोगमें झुलसती हुई आत्माको–अतिशीघ्र मुक्ति दिलानेके लिये वह रामको ललकार रही है, कितनी दर्दभरी ललकार है यह। जब ललकारनेसे, प्रार्थना करनेसे, या अन्य प्रकारकी उक्तियोंसे काम होते नहीं देखा, तब उसने रामको मुग्ध करके छोड़ दिया:—

'क्षितिपतितनयानां हन्त गर्भेश्वराणां किमु निरवधि मौग्ध्यं शौर्यवज्जन्मसिद्धम्।
मम हृदि निरपाये वर्त्तमाने कपीन्द्रे रघुवर यदमुष्मै निष्ठसे चापपाणिः॥'

× × × ×

वर्णनकी सुन्दरता देखने की इच्छा हो तो आप अरण्यकाण्डका हेमन्तवर्णन तथा सुन्दरकाण्डका सायं वर्णन देखें। किष्किन्धाका वर्षर्त्तुवर्णन भी बड़ा मनोहर है।

जहाँ तक भोजकी रचना है वहीं तक सुन्दर है इस बातका संदेह झट दूर हो जाता है जब हम लङ्काकाण्ड पढ़ना प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भमें ही चन्द्रोदयका वर्णन इतना सुन्दर हुआ है कि यह भोजकी रचना है या किसी दूसरेकी यह पता ही नहीं लगता है। मेरी समझमें जिसी तरह कादम्बरी पूर्वार्द्धकी रचना और उत्तरार्द्धकी रचना में अतिशय साम्य है उसी तरह रामायण चम्पूके सुन्दरकाण्डान्त भाग तथा लङ्काकाण्डमें साम्य है। यह भोजका सौभाग्य था कि उन्हें इस तरहका शिल्पी मिल गया।

यद्यपि भोजकी भाषामें कहीं-कहीं व्याकरणकी अशुद्धियाँ हैं, जिन्हें मैनें टीकामें प्रकाशित कर दी है, तथापि वह ऐसी बात है जिससे किसी कविका गौरव बढ़ता घटता नहीं है। भाषाका परिमार्जन यदि है तो अशुद्धियोंके होने भरसे कुछ बनता विगड़ता नहीं है।

रामायण का आदर तथा पदानुसरण

भोजराजने अपने इस चम्पूग्रन्थमें रामायणका बड़ा आदर किया है, कथांशमें वे तनिक भी भेद नहीं चाहते थे, काण्डानुसार कथाका विन्यास रामायणकी ही तरह रखा गया है, इतना ही नहीं, उन्होंने चम्पूरामायणके प्रतिकाण्डमें आदिम श्लोकोंकी रचनामें रामायणके उस काण्डके प्रथम श्लोकका आदि अंश देनेका प्रयास किया है, उदाहरणार्थ देखें:—

वाल्मीकिरामायण	चम्पूरामायण
'गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः । शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥' (अयोध्याकाण्ड)	'गच्छता दशरथेन निर्वृतिम् इत्यादि (अयोध्याकाण्ड)
प्रविश्यतु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥' (अरण्यकाण्ड)	'प्रविश्य विपिनं महत्तदनुमैथिली-वल्लभो' इत्यादि । (अरण्यकाण्ड)
'सतां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलम् । रामः सौमित्रिसहितो विललापाकुलेन्द्रियः ॥' (किष्किन्धाकाण्ड)	सतां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः' (किष्किन्धाकाण्ड)
'ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः । इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ॥' (सुन्दरकाण्ड)	'ततो हनूमान् दशकण्ठनीतां सीतां विचेतुं पथि चारणानाम्' (सुन्दरकाण्ड)

लङ्काकाण्ड तो भोजका बनाया ही नहीं है, शेष पांच काण्डोंमें भोजने रामायण का आदर उसके पदोंसे अपने प्रकरणोंको प्रारम्भ करके दिखलाया है, बालकाण्डमें केवल इस नियमका व्युत्क्रम हुआ है, क्योंकि उसमें नमस्कारादि नम्रताप्रदर्शन-पर्यन्तव्यापारोंमें दूसरी तरहके शब्दोंका प्रयोग आवश्यक हो गया था।

इस सादृश्यानुसरणके अतिरिक्त जहाँ तहाँ आप भावसाम्य भी पायेंगे। उसे हम रामायणका आदर मानते हैं, कविकी अशक्ति या चौर्य नहीं मानते, क्योंकि जो कवि इस तरहका सुन्दर काव्य बना सकता है वह उन साधारणसे भावों की चोरी करेगा, या उसके लिये रिक्तकोश हो जायगा यह बात अच्छी नहीं जचती है, जो वसन्त नाना प्रकारके फूल खिला सकता है वह पत्ते उधार क्यों लेगा ?।

पात्रालोचन

इसमें पात्रोंको नयारूप नहीं दिया गया है, रामायणके पात्र अपने २ रूपमें ही दिये गये हैं। रामायणके पात्र इतने प्रसिद्ध हैं कि उनकी आलोचना अनावश्यक है। इस सम्बन्धमें इतना और जानना चाहिये कि जब कवि रसप्रकर्ष-सृष्टि तथा किसी विशेष चमत्कारकी उत्पत्तिके लिये कथामें भेद उत्पन्न करते हैं उस समय कविकल्पित पात्र चरित्रका आलोचन कविचमत्कारकी दृष्टिसे आवश्यक हो

जाता है। जैसे भासने रामायणकी कथाके आधारपर प्रतिमानाटक नामक रूपक लिखा, उसमें उन्होंने रामायणकी कथा अपनाई, परन्तु कुछ परिवर्त्तन कर दिया है, जैसे सीता अपनी सखीके हाथोंसे लेकर वल्कलधारण करती है और राम उसको वल्कल पहनते देखकर स्वयं भी वल्कल पहननेको ललच उठते हैं, यह कथाभाग भासकी कल्पना है। इस तरह की और कल्पनायें भा की गई हैं, जैसे प्रतिमागृहमें मृतराजाओंकी मूर्त्तियोंका रखा जाना। इन परिवर्त्तनोंके हो जानेसे तदनुसार पात्रोंके चरितकी आलोचना करनेसे यह बात समझी जाती है कि कविने जो परिवर्त्तन किया है उससे पात्रकी क्या विशेषता निखार पासकी है या क्या विशेषता छिप गई है। यही पात्रालोचनके प्रयोजनके रूपमें कहा जासकता है। चम्पूरामायणके पात्रोंके चरितमें कोई परिवर्त्तन नहीं किया गया है। रामायणमें उनके चरितमें जो कमी वेशी है उसे ही ज्यों का त्यों रख दिया गया है इस लिये यहाँ पात्रोंकी आलोचना नहीं की गई है।

कथासार

रामायणकी कथा इतनी प्रसिद्ध है कि उसका सार लिखना अनावश्यक है। हिन्दू ही नहीं, सभी भारतवासी रामायणकी कथासे पूरा परिचय रखते हैं, अतः रामायणका कथासार लिखकर समय तथा स्थान दोनोंकी बरबादी करना इष्ट नहीं है।

चम्पूरामायणकी टीका

चम्पूरामायण युद्धकाण्डान्त भागपर रामचन्द्रबुधेन्द्र नामक एक पण्डितकी टीका है, जो अपनेको शाण्डिल्यगोत्रकोदण्ड पण्डित तथा गङ्गाका पुत्र बताते हैं, इससे अधिक परिचय उनका मुझे नहीं प्राप्त हो सका है। टीका साधारणतः विस्तृत है, रामायणके प्रसङ्गोंको उद्धृत करके तुलनाके लिये काफी अवसर उपस्थित किये गये हैं, कोष अलङ्कार आदिका भी काफी आम्रेडन किया गया है फिरभी मैं इस टीकासे सन्तुष्ट नहीं हूँ। कारण निम्नलिखित हैं:—

१. इन्होंने पाठको सुधारनेका कुछ भी यत्न नहीं किया, जो पाया उसी पर टीका कर दी है।
२. टीकामें कुछ ऐसी भ्रामक बातें लिखी गई हैं, जिनसे साधारण पाठक ही नहीं, कोई भी विद्वान् गुमराह हो सकता है।
३. टीकामें कुछ ऐसे व्याकरण विरुद्ध प्रयोग किये गये हैं जो बहुत अधिक खटकते हैं।

पाठभेद

मूलग्रन्थके पाठको ठीक करनेका प्रयास कभी नहीं किया गया था। यद्यपि निर्णयसागरके नव संस्करणमें छानबीन करके टिप्पणीमें पाठोंके भेद दिये गये हैं, परन्तु मूलमें लगाये जानेवाले पाठोंपर किसीने कुछ ध्यान नहीं दिया। फलतः पाठकी त्रुटि बहुत ही अखरती थी।

प्रस्तुतटीका

मैंने यथामति विचार करके 'प्रकाश' नामक यह संस्कृत-हिन्दी टीका लिखी है, इसमें पाठको यथाशक्ति शुद्ध करके तदनुसार टीका लिखनेका प्रयास किया गया है। मैं जानता हूँ कि सर्वत्र हमारी कल्पना ठीक ही नहीं हुई होगी, किन्तु साथ ही मुझको विश्वास है कि मेरे द्वारा किये गये पाठशोधनसे कविकी आत्माको चोट नहीं पहुँचेगी, क्योंकि कविताकी दृष्टिसे उपयुक्त तथा संभवी पाठको ही मैंने स्थिर किये हैं। पाठकगण देखेंगे कि मेरे द्वारा स्थिरीकृत पाठमें पुराने पाठकी अपेक्षा क्या प्रागुण्य है।

अन्तमें मैं क्षुमेन्द्रकी टीकाके प्रति अपना आभार बिना जताये नहीं रह सकता हूँ जिसने मुझे इस ग्रन्थकी टीका में बड़ी सहायता दी है। आशा है पाठकगण मेरी टीकासे लाभ उठावेंगे।

गुरुपूर्णिमा
सं० २०१२

विनयावनत
रामचन्द्र मिश्र

॥ श्रीः ॥

चम्पूरामायणम्

'प्रकाश' टीकोपेतम्

बालकाण्डम्

लक्ष्मीं तनोतु नितरामितरानपेक्ष-
मङ्घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम्।
हैरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं
विघ्नाद्रिभेदशतधारधुरन्धरं नः॥ १॥

भूतेशे नियमाय मौनिनि गते दूरं क्वचिन्नन्दिनि
म्लाने बालविधौ तथाऽमृतभुजां सिन्धौ श्रयन्त्यां क्रुधम्।
यस्मिन् हैमवती बबन्ध सकलां भावानुबन्धोद्धुरां
चेतोवृत्तिमसौ कृषीष्ट कुशलं देवो द्विपेन्द्राननः॥ १॥
श्रद्धानतेन शिरसा पितरं 'मधुसूदनम्'।
प्रसूं 'जयमणिं' चाहं प्रणमामि पुनः पुनः॥ २॥
श्रीभोजदेवकविता–भावानवबोधवद्धवैमुख्यान्।
मन्ये कतिचन बालान् प्रोत्साहयिता प्रकाशोऽयम्॥ ३॥

कविताप्रणयनप्रावीण्यसमावर्जितसकललोकस्य कविजनादरचपितार्थराशितया प्राप्तप्रसिद्धेश्चित्रकाव्यप्रियस्यापि सृष्टविचित्रकाव्यस्य महाराजभोजदेवस्य चम्पूरामायणं नाम रामाश्रितं चम्पूकाव्यमतिमधुरवर्णविन्यासार्थराशि चेति प्रख्यातमेव सुधीषु, यस्यायमादिमः श्लोकः– लक्ष्मीमिति। निगमाः वेदाः त एव शाखिनो वृक्षाः (मुक्त्यादिफलप्रदत्वेन वृक्षत्वारोपः) तेषाम् शिखाः मूर्द्धदेशा वेदान्ताः

१. 'सुतराम्' इति पाठान्तरम्।

तासाम् प्रवालम् नवपल्लवरूपम् वेदान्तवेद्यमित्यर्थः। वेदरूपवृक्षस्य शिखा वेदान्तास्तत्रस्थं प्रवालं भवद्गणेशचरणं चरितवेदान्तत्वेन वेदान्तवेद्यमुक्तवान् कविरिति बोध्यम्। अम्बुनि रुहन्ति प्रादुर्भवन्तीति अम्बुरुहाणि पद्मानि तेषाम् डम्बरः सौभाग्यदर्पस्तस्य चौर्ये अपहरणे निघ्नम् आयत्तम् कमलकुलसौन्दर्यगर्वापहारीति समुदितार्थः। विघ्नाः प्रत्यूहाः एव अद्रयः पर्वतास्तेषां भेदे पाटने शतधारधुरन्धरम् वज्रसमानसारम् हेरम्बस्येदं हैरम्बं गणेशसम्बन्धि अङ्घ्रिद्वयम् चरणयुगलम् नः अस्माकम् लक्ष्मीम् सिद्धिसम्पदम् नितराम् अत्यर्थम् इतरानपेक्षम् सहायकान्तरनिरपेक्षम् यथा स्यात्तथा तनोतु विस्तारयतु। वेदान्तशाखिशाखाप्रवालभूतत्वेन गणेशस्य वेदान्तवेद्यत्वोक्त्येश्वररूपतयाऽभीष्टप्रदत्वं, विघ्नाद्रिभेदस्य वज्रसाध्यत्वेन तत्र वज्रसमानसारत्वं प्रत्याययितुं धुरन्धरान्तं विशेषणम्, इतरानपेक्षत्वोक्त्या सहायकान्तरनैरपेक्ष्येण सामर्थ्यातिशयध्वनिः, एवंसति यद्गणेशचरणं वेदान्तवेद्यम्, कमलकुलशोभादर्पापहारि, विघ्ननिरासमसमर्थञ्च तन्मादृशां लक्ष्मीं तनोत्वित्यर्थः। 'प्रवालो वल्लकीदण्डे विद्रुमे नवपल्लवे' 'अधीनो निघ्न आयत्तः' 'आडम्बरोऽस्त्री संरम्भः' 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' 'शोभासम्पत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिति कथ्यते' इति सर्वत्र ते ते कोशाः। आशीर्नामात्रालङ्कारः, 'आशीर्नामाभिलषितवस्तुनः शासनं मतम्' इति तल्लक्षणात्। स चोपमारूपकाभ्यां संसृज्यते। वृत्त्यनुप्रासश्च शब्दालङ्कारः। अत्रादौ लक्ष्मीशब्दप्रयोगाद्वर्णगणादिशुद्धेरभ्युच्चयः। वसन्ततिलकं वृत्तम्, 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति च तल्लक्षणम्॥ १॥

वेदरूप वृक्षकी शाखाओंसे व्याप्त अर्थात् वेदान्तप्रतिपाद्य, कमलके सौन्दर्यदर्पको दूर करनेवाला और विघ्नरूप पर्वतोंके भेदनमें वज्रके समान सामर्थ्यशाली, श्री गणेशजीका चरणद्वय स्वतन्त्ररूपसे अच्छी तरह हमारी सिद्धिसम्पत्का विस्तार करे॥ १॥

उच्चैर्गतिर्जगति सिद्ध्यति धर्मतश्चे-
त्तस्य प्रमा च वचनैः कृतकेतरैश्चेत्।
तेषां प्रकाशनदशा च महीसुरैश्चे-
त्तानन्तरेण निपतेत् क्व नु मत्प्रणामः॥ २॥

उच्चैरिति। जगति संसारे उच्चैर्गतिः स्वर्गादिप्राप्तिलक्षणासिद्धिः धर्मतः वेदविहितेष्टसाधनताकात् ज्योतिष्टोमादिक्रियाकलापात् सिद्ध्यति प्रादुर्भवति चेत् यदि, तस्य धर्मस्य प्रमा यथार्थज्ञानञ्च कृतकेतरैः नित्यैः वचनैः वेदरूपैश्चेत् यदि तेषाम् कृतकेतरवचनानां प्रकाशनदशा प्रकटीकरणम् महीसुरैः विप्रैश्चेत्, तान् विप्रान् अन्तरेण विना मत्प्रणामः मम प्रणतिः क्वनु निपतेत् कुत्र गच्छेत्? संसारे स्वर्गाद्युत्तमफललाभो यज्ञाधीनो यज्ञादिधर्मकृत्यप्रकाशो वेदाधीनो वेदानां प्रकटीभावश्च ब्राह्मणाधीन इति तत्प्रणामस्यौचित्यसिद्धिरुक्ता। स्वर्गादिफललाभस्य स्वार्थतया

तत्साधने परम्परयोपयुञ्जानानां ब्राह्मणानां प्रणम्यत्वमात्महितसाधनमिति तदर्थायाः प्रवृत्तेः स्वाभाविक्यं प्रदर्शितम् । वेदानां कृतकेतरत्वं नित्यतया–तदुक्तम्—'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः' । 'ऋचः सामानि जज्ञिरे' इत्यादौ जन्धातोः प्रयोगस्तु प्रकाशार्थे वोध्यः । वेदप्रकाशकत्वेन ब्राह्मणानां पूज्यत्वमुक्तं महाभारते—'देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनं तु दैवतम् । ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीना ब्राह्मणो मम दैवतम् । एकावल्यलङ्कारः—'यत्र विशेषणभावः पूर्वं पूर्वं प्रतिक्रमेणैव । भजति परस्परमेषाऽलङ्कृतिरेकावली कथिता' ॥ वृत्तं प्रागुक्तमेव ॥ २ ॥

यदि संसारमें स्वर्गादि उत्तम फल ज्योतिष्टोमादि धर्मकार्यसे ही हो सकते हैं और यदि उन धर्मकार्योंके निर्वचन वेदसे ही किये जा सकते हैं तथा यदि उन वेदोंका प्रकाश ब्राह्मणों द्वारा ही होता है तो फिर उन ब्राह्मणोंको छोड़कर मेरा प्रणाम किसके पास जाय ? अर्थात् मैं उन ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने उन वेदोंको प्रकाशित किया जिन वेदोंके द्वारा धर्मका रूप स्थिर किया जाता है और उस धर्मकी सहायतासे हमें स्वर्गादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

गद्या[1]नुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति-
हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः ।
तस्माद्दधातु कविमार्ग[2]जुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥ ३ ॥

गद्यानुबन्धेति । गद्यम् वृत्तबन्धोज्झितं पदकदम्बकम् , तस्यानुबन्धः प्रबन्धगतपद्यमध्ये सन्निवेशस्तेन यो रसः काव्यकृतास्वादविशेषात्माऽऽनन्दस्तेन मिश्रिता मिलिता या पद्यसूक्तिः पद्यरूपं सुभाषितम् सा वाद्यकलया वीणादिवादनशिल्पेन कलिता उपपन्ना गीतिः गानकर्म इव हृद्या हृदयहारिणी भवतीति शेषः । तस्मात् (यत एवमतो हेतोः) मदीया रसना जिह्वा कविमार्गजुषां कविवर्त्मानुवर्त्तिनाम् सुखाय आनन्दाय चम्पूप्रबन्धरचनां चम्पूनामकप्रबन्धकाव्यप्रभेदनिर्माणं दधातु करोत्वित्यर्थः । यतो गद्यमिश्रा पद्यावली वाद्यानुगता गीतिरिव लोकहृदयानन्दजननी ततोऽहं कविमार्गानुगामिलोकसमुदयानन्दमुदञ्चयितुं चम्पूकाव्यं करोमीत्यर्थः । 'कलाशिल्पे विवृद्धौ' 'गद्य–पद्यात्मकं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' इति च । पूर्वार्धे उपमालङ्कारः ॥ ३ ॥

गद्यके सम्बन्ध होने से पद्यसूक्तियाँ उसी प्रकार आनन्दप्रद हो जाती हैं जैसे वाद्ययन्त्रोंकी सहायतासे गानविद्या अधिक चमत्कारप्रद हो जाती है, अतः कवि-

---

१. 'अनुबद्ध' इति पाठान्तरम् । २. 'विदां' इति पाठान्तरम् ।

मार्गके अनुसरणमें लगे लोगोंको मानसिक सुख प्रदान करनेकी इच्छासे हमारी रसना चम्पूप्रबन्धके निर्माण की चेष्टा करेगी ॥ ३ ॥

वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम् ।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः[1] पितॄणाम् ॥ ४ ॥

वाल्मीकिगीतेति । वल्मीकस्यापत्यं पुमान् वाल्मीकिस्तेन गीता उपवर्णिता ये रघुपुङ्गवकीर्त्तिलेशा रामयशःस्तोमास्तैः अधुना इदानीम् कथमपि महता यत्नेन बुधानाम् पण्डितानाम् तृप्तिं करोमि आनन्दं समेधयामि। तत्र दृष्टान्तमुपन्यस्यति—गङ्गाजलैरिति । भुवि पृथिवीतले भगीरथयत्नलब्धैः भगीरथप्रयासासादितैः गङ्गाजलैः भागीरथीपयोभिः नरः लोकसामान्यम् किं पितॄणाम् स्वपूर्वजातानाम् तर्पणम् निवापाञ्जलिदानात्मकम् न विदधाति न करोति । अयमाशयः—यथा भगीरथः कपिलशापप्लुष्टस्वपूर्वजलोकोद्धाराय महता प्रयासेन तपस्तप्त्वा भुवि गङ्गामवातारयत्तत्प्रयासलब्धगङ्गापयसा च यथा लोकाः स्वपितॄँस्तर्पयन्ति, तद्वदात्मोद्धाराय वाल्मीकिर्ब्रह्मलोके यच्छतकोटिप्रविस्तृतं रामचरितं सङ्क्षिप्य प्रणीतवाँस्तेनैव चरितेनाहमपि कवीबुभूषुर्नोपहास्योऽस्मीति भावः । मुनेर्वाल्मीकित्वे ब्रह्मवैवर्त्ते प्रोक्तम्—'अथाब्रवीन्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः । वल्मीकप्रभवो यस्मात्तस्माद्वाल्मीकिरित्यसौ ॥' पुङ्गवपदमुत्तमार्थम् , तदुक्तं वैजयन्त्याम्—'श्रेष्ठोत्तमौ तु पुङ्गवौ' । अत्र वैधर्म्येण दृष्टान्तालङ्कारः—'यत्र वाक्यद्वये बिम्बप्रतिबिम्बतयोच्यते । सामान्यधर्मो वाक्यज्ञैः स दृष्टान्तो निगद्यते' इति तल्लक्षणात् ॥ ४ ॥

मैं वाल्मीकि मुनि द्वारा वर्णित रघूत्तम रामचन्द्रके चरितसे इस समय किसी प्रकार पण्डितोंकी तृप्तिका प्रयत्न कर रहा हूँ, क्या भगीरथके प्रयत्नोंसे धराधाम पर लाई गई गंगा के पावन जलसे जनता अपने पूर्वजोंका तर्पण नहीं किया करती है ? ॥ ४ ॥

वाचं निशम्य भगवान्[2] स तु नारदस्य
प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम् ।
माध्यन्दिनाय नियमाय महर्षिसेव्यां
पुण्यामवाप तमसां तमसां निहन्त्रीम् ॥ ५ ॥

वाचमिति । सः प्रसिद्धतपःप्रभावः प्रवचसाम् प्रगल्भगिराम् कवीनाम् व्यासादिकविजनानाम् प्रथमः आद्यगणनीयः भगवान् सर्वसामर्थ्योपपन्नः प्राचेतसः वाल्मीकि

१. 'जनः' इति पाठान्तरम् । २. 'अथ' इति पाठान्तरम् ।

नारदस्य तदाख्यस्यर्षेः वाचं गिरं कविकर्मणे प्रेरयित्रीम् निशम्य श्रुत्वा तमसाम् निहन्त्रीम् अज्ञाननिवारणीम् पुण्याम् पवित्रावगाहाम् महर्षिसेव्याम् ऋषिजनोपगम्याम् तमसाम् तदाख्याम् नदीम् माध्यन्दिनाय दिनमध्यसाध्याय नियमाय स्नानादिनियतव्यापारकलापाय अवाप प्राप। भगवति नारदे प्रेरणावाक्यान्यभिधाय निवृत्तवचने तदीयवाक्यं निशम्य भगवान् वाल्मीकिर्मध्यन्दिनावसरप्राप्तस्नानसन्ध्यादिकर्मकर्तुमाश्रमपरिसरप्रवाहिनीं पवित्रपानीयां तमसां नाम नदीमापदित्यर्थः। अत्र 'सः' इति तच्छब्दो यच्छब्दं नापेक्षते, तस्य प्रसिद्धार्थत्वात्, तथा चोक्तं काव्यप्रकाशे—'प्रक्रान्तसिद्धानुभूतार्थकस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते' इति। प्रचेतसोऽपत्यं प्राचेतसः वाल्मीकिः, तदुक्तं—'प्राचेतसस्त्वादिकविः स्यान्मैत्रावरुणिश्च सः। वाल्मीकिश्च' इति। नराः जीवास्तेषामिदं नारमज्ञानं द्यति खण्डयति श्रीनारायणनामोपदेशेनेति नारदः, तदुक्तं नारदीये—'गायन्नारायणकथां सर्वलोकभयापहाम्। नारदो नाशयन्नेति नृणामज्ञानजं तमः' इति। माध्यन्दिनपदव्युत्पत्तिर्यथा—'मध्याह्नवाचि मध्यन्दिनशब्द एवोत्सादिषु पठितः' इति केचित्। न्यासकारस्तु 'मध्यशब्दस्य मध्यन्दिनादेशो भवार्थप्रत्ययश्च स्यात्' इति प्रोक्तवान्। अत्र तमसां तमसामिति व्यञ्जनत्रितयस्यावृत्त्या वृत्त्यनुप्रासो नाम शब्दालङ्कारः। अन्यत्समानम् ॥ ५ ॥

प्रगल्भरचनाप्रवीण कवियोंके अग्रगण्य महर्षि वाल्मीकि नारदकी बातें सुनकर मध्याह्नकर्तव्य स्नान, सन्ध्या आदि कार्य करनेके लिये महर्षियों द्वारा सेवित तथा पवित्रतोया होनेके कारण सकल अज्ञानको दूर करनेवाली तमसाके तटकी ओर चले ॥ ५ ॥

तत्र कंचन क्रौञ्चमिथुनादेकं पञ्चशरविद्धमपि[1] व्याधेनानुविद्धं निध्यायतो बद्धानुकम्पस्य भगवतो वाल्मीकेर्वदनारविन्दाच्छन्दोमयी काचिदेवं निःससार सरस्वती।

तत्रेति। तत्र तमसातीरप्रदेशे पञ्चशराः बाणाः यस्यासौ पञ्चशरः तेन विद्धम् कृताघातम् अपि काममोहितमपीत्यर्थः। व्याधेन लुब्धकेन अनुविद्धम् प्रहृतम्, क्रौञ्चो वकविशेषस्तस्य मिथुनम् युगलम् दम्पतिरूपम् तस्मात् कञ्चन एकम् पुमांसम् निध्यायतः काममोहितदशायामन्तरैवापराधं हन्यमानं क्रौञ्चं सानुकम्पं पश्यत इत्यर्थः। बद्धानुकम्पस्य उदितदयस्य भगवतः सामर्थ्यशालिनः वाल्मीकेः तदाख्यस्यर्षेः वदनारविन्दात् कमलोपममुखात् काचित् छन्दोमयी लौकिकानुष्टुप्छन्दसा निबद्धा सरस्वती वाणी एवं प्रोक्तप्रकारेण निःससार निश्चक्राम। कामस्य पञ्च शरा उक्ता यथा—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च

---

१. 'पञ्चशरानुविद्धम्' इति पाठान्तरम्।

पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः'। 'कामः पञ्चशरः स्मरः' 'व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकश्च सः' 'निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इति सर्वत्रामरः। वदनारविन्दशब्देवदनारविन्दमिवेत्युपमितसमासो न तु वदनमेवारविन्दमिति रूपकस्थलीयः समास आश्रयणीयस्तथाऽऽश्रयणे अरविन्दस्य प्राधान्यप्रतीतौ, ततः सरस्वत्या निर्गमोक्तेरयुक्तत्वापातात्।

वहाँ तमसाके तटपर कामपीड़ित क्रौञ्चमिथुनमेंसे अन्यतरको व्याध द्वारा आहत होते देखकर दयाद्रुत भगवान् वाल्मीकिके कमलमुखसे इस प्रकारकी अलौकिक छन्दोबद्ध वाणी निकल आई।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ ६ ॥

मानिषादेति। हे निषाद, त्वं शाश्वतीः समाः बह्वून् संवत्सरान् प्रतिष्ठाम् स्थितिं प्राणनरूपाम् मा गमः न प्राप्नुहि, यत् यस्मात् क्रौञ्चमिथुनात् एकम् क्रौञ्चदम्पत्योर्मध्ये पुमांसम् काममोहितम् रिरंसुम् अवधीः हतवान् असि। केचित्तु, अमगमः, इति च्छित्त्वाऽमेत्यस्य न मा लक्ष्मीर्यस्येति बहुव्रीहिं चास्थाय 'अमं' इत्यस्य 'हतभाग्य' इत्यर्थं वर्णयन्ति, तेषामयं श्रमश्च माङ्योगे अडागमनिषेधभावनया पोष्यते। तत्र तु छान्दसत्वमपि कल्पयित्वाऽडागमः साधयितुं शक्यत इति तथाच्छेदानुसरणं नातीव प्रयोजनशालीति बोध्यम्।

दयालोः कमपि वृथा हन्यमानं दृष्ट्वा हन्तयैतादृशनिरनुक्रोशभावप्रभवोऽनिष्टकामनासूचकवाक्प्रयोगो दैनन्दिनव्यवहारलभ्य इति जानन्त्येव सुधियः। परे तु—श्लोकेऽत्र वाल्मीकिवर्णयिष्यमाणरामचरितस्यापि संक्षिप्य समावेशोऽत्र मन्यते, तेषां मतेऽयमर्थः—मा लक्ष्मीः निषीदति आश्रिता तिष्ठति यत्र सः मानिषादो लक्ष्मीनिवासस्तत्सम्बुद्धौ मा निषाद श्रीराम, त्वं शाश्वतीः समाः चिरकालपर्यन्तम् प्रतिष्ठाम् लोकादनादिस्वगुणगणोपार्जितं यशः अगमः अवाप्नुहि, यद् यस्मात्—क्रुञ्चा राक्षसी केकसी तस्या अपत्यं पुमान् क्रौञ्चः रावणः, एवमेव क्रौञ्ची मन्दोदरी तयोर्मिथुनात् काममोहितम् कामोद्रेकवशेन लोकोपद्राविणं रावणम् अवधीः हतवान्। अत्राशीः प्रयुज्यते, साधुकारित्वाद्रामस्य। 'क्रुञ्च् गतिकौटिल्याल्पीभावयोः' इति धातोरचि क्रुञ्चा। शाश्वतीः समाः इत्यत्रात्यन्तसंयोगे द्वितीया। स्पष्टमन्यत्।

रे निषाद, तू बहुत दिनों तक जीता नहीं रहेगा क्योंकि तूने इस कामपरायण क्रौञ्चदम्पतियोंमेंसे एक को मार दिया है ॥ ६ ॥

तदनु समयोचितकृत्यं निर्वर्त्य [1]स्वाश्रमं प्रति गतवति भगवति वाल्मीकौ।

१. स्वाश्रममुपगतवति सति' इति पाठान्तरम्।

तदन्विति। तदनु 'मानिषादे'ति। च्छन्दोमयवाग्व्याहारात् परतः समयोचितकृत्यं मध्यन्दिनकर्त्तव्यं सन्ध्यावन्दनादि निर्वर्त्य समाप्य स्वाश्रमम् स्वोटजम् प्रति गतवति निवृत्ते भगवति वाल्मीकौ तदाख्यया प्रसिद्धे मुनौ (ब्रह्माऽऽविरासीदित्यग्रेतनवाक्येनान्वयः)।

इसके बाद मध्याह्नकालिक कार्य समाप्त कर वाल्मीकि मुनि अपने आश्रममें लौट आये।

वाणीविलासमपरत्र कृतोपलम्भ-
मम्भोजभूरसहमान इवाविरासीत्।
आभाति यत्कृतिरनेकविधप्रपञ्च-
व्याजेन्द्रजालविधिसाधकपिच्छिकेव[1]॥ ७॥

वाणीविलासमिति। अम्भोजभूः कमलयोनिः ब्रह्मा अपरत्र स्वभिन्ने पुरुषे वाल्मीकौ कृतोपलम्भम् विहितप्रसङ्गम् (प्राप्यमाणम्) वाणीविलासम् वाण्याः 'मा निषाद' इत्यादिरूपायाश्छन्दोमय्या वाचः (स्वपत्नीभूतायाः सरस्वत्याश्चेति गम्यते)। विलासम् वासलीलाम् क्रीडाञ्च असहमानः अमृष्यमाण इव आविरासीत् तत्र प्रकटीबभूव। अन्योऽपि स्वभार्यायाः पुरुषान्तरसम्पर्कममृष्यमाणस्तद्विहारदेशे सन्निधत्ते, तद्वदयं ब्रह्मा वाल्मीकिमुनेर्वाचश्च कवित्वलक्षणायाः सम्पर्कं ज्ञात्वा तत्रागत इत्याशयः। ब्रह्माणमेव विशिनष्टि—आभातीति। यस्य ब्रह्मणः कृतिः क्रियाशक्तिः अनेकविधस्य देवासुरमनुष्यादिभेदेन नानाप्रकारस्य प्रपञ्चस्य संसारस्य व्याजेन च्छलेन य इन्द्रजालविधिः मायिकं प्रदर्शनमात्रसारं वस्तु तस्य साधिका निष्पादयित्री पिच्छिका पिच्छम् इव आभाति। इन्द्रजालदर्शयितारो मायिकाः पिच्छं भ्रमयन्तस्तानि तानि विचित्राणि वस्तूनि दर्शयन्ति, तथैव ब्रह्मापि पिच्छभूतया स्वक्रियया क्षणक्षणविलक्षणं स्थावरजङ्गमात्मकमिदं जगद्दर्शयतीत्यर्थः। ब्रह्मा परमकारुणिकतया महर्षेर्वाल्मीकेर्व्याधविद्धक्रौञ्चदर्शनजनितशोकापनोदनार्थं नारदोक्तमेवार्थं पुनरुपदेष्टुं च प्रादुरासीत्तत्र, स एवार्थोऽत्रासहनभावत्वेनोत्प्रेक्षितः। इन्द्रजाललक्षणमुक्तं यथा—'अदेशकालपारोक्ष्यं परोक्षस्यैव वस्तुनः। यत्रौषधादिभिः सोऽयमैन्द्रजालविधिः स्मृतः'। पिच्छिकाशब्दस्य स्त्रीत्वं चिन्तनीयम्। दृश्यते पिच्छाशब्दः स्त्रियामपि, यथोक्तं कृष्णकर्णामृतस्तवे—नवशिखिपिच्छालाञ्छितम्।' ज्ञानवासिष्ठेऽपि—'इत्युक्त्वा पिञ्छिका तेन भ्रमिता प्रसभं सभा। नानाविरचनाबीजं प्रसभं परमात्मना।' अत्र पूर्वार्द्धेऽसहमान इवेति हेतूत्प्रेक्षा। उत्तरार्धे चोपमालङ्कारः। वृत्तमविपरीतम्॥ ७॥

---

१. 'पिञ्छिकेव' इति पाठान्तरम्।

इसी समय ब्रह्मा वहाँ प्रकट हुए, मानो वे सरस्वती (वाणी) का पुरुषान्तर-सम्पर्क सह नहीं सकते थे। जिन ब्रह्माकी रचना नानाप्रपञ्चोंके छलसे इन्द्रजाल प्रदर्शक पिच्छिकाके सदृश प्रतीत होती है (ऐसे ब्रह्मा प्रकट हुए) ॥ ७ ॥

ततः परमहर्षेण महर्षिणा विधिवदभ्यर्चितः परमेष्ठी मध्यलोकेऽपि स्ववृत्तं प्रकाशयितुं किल भवन्तमेवो[1]पतिष्ठमानयानया भारत्या रामचरितं यथाश्रुतं व्याक्रियतामिति व्याहृत्यान्तरधात् ।

तत इति। ततः ब्रह्मप्रादुर्भावानन्तरम्, परमहर्षेण अत्यानन्दसंभृतेन दयावशंवदः सन् ब्रह्मा मां दर्शनदानेनानुगृहीतवानिति परमप्रमोदपूर्णेनेत्यर्थः, महर्षिणा वाल्मीकिना विधिवत् शास्त्रोक्तप्रकारेण अभ्यर्चितः अर्घ्यपाद्यादिभिः पूजितः परमेष्ठी ब्रह्मा मध्यलोके भूलोके अपि स्ववृत्तम् निजचरित्रम् प्रकाशयितुम् प्रख्यापयितुम् भवन्तम् एव अन्यव्यतिरेकेण त्वाम् उपतिष्ठमानया उपसन्नया अनया 'मा निषाद' इत्यादिकया भारत्या गिरा रामचरितम् रामाख्यभगवद्वृत्तम् यथाश्रुतम् नारदमुखादाकर्णितम् वृत्तान्तमनुसृत्य व्याक्रियताम् वर्ण्यताम् इति व्याहृत्य अभिधाय अन्तरधात् अन्तर्हितो बभूव। महर्षेर्वाल्मीकेरुपरि दयां कृत्वा ब्रह्मा तदग्रे आविरासीत्तं च वाल्मीकिः शास्त्रोक्तेन विधानेन सदकृत, तत्प्रीतश्च ब्रह्मा तमुक्तवान् यत्त्वां यथाश्रुतं रामवृत्तमुपवर्णयितुमेवेयं वागुपस्थिता, अनया वाचा त्वं मध्यमलोकेऽपि रामवृत्तं प्रचारयेति एवमुक्त्वा ब्रह्मा तिरोऽधादिति भावः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे बालकाण्डे—'यच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती । रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम' ॥ इति। परमो महान् हर्षो यस्यासौ परमहर्षस्तेन। 'परमेष्ठी पितामहः' 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इति सर्वत्रामरः।

अनन्तर परम हृष्ट महर्षि वाल्मीकिके द्वारा यथाविधि पूजित होने पर ब्रह्माने वाल्मीकिसे कहा कि यह छन्दोमयी वाणी आपके पास इसीलिये आई है कि आप इसके द्वारा मध्यमलोक (मर्त्यलोक) में भी रामचरितका प्रचार करें। अतः आपने नारदसे जिस रूपमें रामचरित सुना है उसी रूपमें उसे प्रसारित करें। ऐसा वाल्मीकिसे कहकर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये।

अथ सरसिजयोनेराज्ञया रामवृत्तं
करबदरसमानं प्रेक्ष्य दृष्ट्या प्रतीच्या ।
शुभमतनुत काव्यं स्वादु रामायणाख्यं
मधुमयभ[2]णितीनां मार्गदर्शी महर्षिः ॥ ८

---

१. 'उपदिष्टमानया' इति पाठान्तरम्। २. 'फणितीनां' इति पाठान्तरम्।

अथेति। अथ ब्रह्मणोऽन्तर्धानात्परतः मधुमयभणितीनाम् मधुस्राविणीनां सूक्तीनाम् मार्गदर्शी पथप्रदर्शकः महर्षिः वाल्मीकिः सरसिजयोनेः ब्रह्मणः आज्ञया आदेशेन करबदरसमानम् हस्तावस्थितबदरीफलतुल्यम् (सर्वांशतः प्रतिभाससमानम्) रामवृत्तम् रामचरितम् प्रतीच्या आन्तरिक्या दृष्टया दृशा प्रेक्ष्य आलोक्य शुभम् सकलजनकल्याणकरम् स्वादु हृद्यम् रामायणाख्यम् काव्यम् अतनुत विरचितवान्। प्रागुक्तमर्थमभिधाय ब्रह्मणि लब्धतिरोभावे तदादेशमहिम्ना प्रतिभासमानाखिलरामवृत्तान्तो वाल्मीकिः सकललोकहृद्यं सकलकल्याणकरञ्च रामायणाख्यं काव्यं सरसया शैल्या निबबन्ध, यतोऽसौ मधुस्राविसूक्तिचयमार्गप्रवर्त्तक आसीदिति भावः। सरसिजं योनिर्यस्य तस्य। करे बदरं करबदरं तेन समानम्। रामस्य अयनम् स्थानम्, (वर्णकत्वेन रामपरम्) रामायणम् यद्वा रामः अयनं वर्ण्यत्वेन स्थानं यस्य तत्तथा। मधुमय्यो भणितयः, तासाम् 'स्त्रियाः पुंवत्' इति पुंवद्भावः। मार्गं दर्शयितुं शीलमस्येति मार्गदर्शी। 'धाताऽब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चिः कमलासनः' इति कोशः। 'अब्जयोनिः सरसिजयोनिः' इति पर्यायः। 'त्रिष्विष्टमधुरौ स्वादु' इति चिन्तामणिः। रामायणशब्दे 'पूर्वपदात्संज्ञायाम्' इति णत्वम्। उक्तश्चायमर्थो रामायणे—'ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः। पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥ इति प्रारभ्य—'रघुवंशस्य चरितं चकार भगवानृषिः'। इति पर्यन्तम्। मालिनीवृत्तम्, 'ननमयययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः' इति तल्लक्षणात्॥ ८॥

ब्रह्माके अन्तर्हित हो जानेके बाद उनकी आज्ञाके अनुसार वाल्मीकिने योगदृष्टि द्वारा रामाश्रित कथाको समग्ररूपसे करस्थ बदरीफलके समान जानकर अपनी मधुर-सूक्तियोंसे मधुर कविताके मार्गदर्शक होकर अतिसरस रामायणकी रचना की। ब्रह्माके आदेशानुसार उन्हें सारी रामाश्रित कथा करामलकवत् प्रतिभासित हुई, अनन्तर वाल्मीकिने रामायणकी सरस रचना प्रस्तुत की जो अपनी सूक्तियों द्वारा सरस उक्तियोंके मार्गदर्शी माने जाते हैं॥ ८॥

एनं प्रबन्धं प्रयोक्तुं कः समर्थः इति चिन्तामुपगतवति सति भगवति वाल्मीकौ।

एनमिति। एनम् पूर्वोक्तनामकं रामायणाख्यं प्रबन्धम् मया विरचितं सन्दर्भविशेषं प्रयोक्तुम् अधीत्य पठित्वा लोकानां मनांसि प्रमोदार्णवे मज्जयितुं कः कतरः पुमान् समर्थः क्षम इति चिन्ताम् भावनाम् उपगतवति प्राप्तवति सति भगवति सर्वसामर्थ्यशालिनि वाल्मीकौ। एवं रामायणं प्रणीयास्य प्रबन्धस्याध्ययनपूर्वकज्ञानद्वारा यथावत्परिचयमवाप्यास्य पाठेन लोकानां हृदयानि प्रमोदयितुं कः क्षमत इति चिन्ताचुम्बितचित्ते भगवति वाल्मीकौ (कुशलवावुपस्थितौ इति वक्ष्यमाण-श्लोकस्थवाक्येनाकाङ्क्षापूर्त्तिः)।

हमारे इस प्रवन्धको सस्वर भलीभांति सुनाकर लोगोंके हृदयको कौन आह्लादित करेगा यह चिन्ता वाल्मीकिके हृदयमें उत्पन्न हुई (कि कुश और लव उपस्थित हुए)।

उपागतौ मिलितपरस्परोपमौ
　　बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ ।
विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
　　कुशीलवौ कुशलवनामधारिणौ ॥ ९ ॥

उपागताविति । मिलिता सङ्गता परस्परोपमा अन्योन्यसादृश्यं ययोस्तौ तथोक्तौ, यमजत्वेनानयोरन्योन्यसादृश्यं साधुसङ्गतमिति विशेषणार्थः। बहुश्रुतौ बहु विविधं शास्त्रजातं शृणुतो यौ तौ बहुश्रुतौ वेदादिशास्त्रसमुदायपारदृश्वानौ । बहुश्रुत् पदं क्विबन्तं तद्द्विवचने बहुश्रुताविति पदम्, यद्यपि क्तान्तमपीदं प्रयुक्तं दृश्यते पदं, तथापि क्विबन्तं निर्विघ्नमिति वयमत्र तदेवाद्रियामहे। श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ श्राव्यकण्ठस्वरसम्पन्नौ, विचक्षणौ विद्वांसौ, विविधनरेन्द्रलक्षणौ नानाप्रकारेण आजानुबाहुत्वादिना नरेन्द्रलक्षणेन राजचिह्नेन संयुतौ, कुशलवनामधारिणौ कुशलवनामानौ सीतापुत्रौ कुशीलवौ गायकौ उपागतौ समीपमायातौ। वाल्मीकिकर्तृकगायकविषयकचिन्तासमकालमेव तदन्तिके कुशलवनामकौ यमजौ मैथिलीपुत्रौ समुपस्थितावभूतां यौ परस्पररूपसादृश्यादिना तुलितौ नानाशास्त्रज्ञौ मधुरकण्ठौ प्रकटराजलक्षणौ चास्तामित्यर्थः। बहुश्रुताविति विशेषणेनानर्थज्ञताप्रयुक्तपाठकगुणराहित्यसम्भावना निरस्ता, श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ विशेषणदानाच्च कण्ठमाधुर्यकृता लोकावर्जकता ध्वनिता । 'शास्त्रश्रवणयोः श्रुतम्' इति विश्वः। कुशलवसमाख्याकरणवीजयुक्तं कालिदासेन यथा—'सतौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया। कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः'॥ कुशीलवशब्दः पृषोदरादित्वात्साधुः। विचक्षाते इति विचक्षणौ, 'कर्त्तरि ल्युट्' इति न्यासकारः। अत्रोदात्तता नाम गुणः, तदुक्तं विश्वनाथेन—'श्लाघ्यैर्विशेषणैर्योगो यत्र सा स्यादुदात्तता'। रुचिरावृत्तम्, 'चतुर्ग्रहैरिह रुचिरा जभस्जगाः' इति च तल्लक्षणम् ॥ ९ ॥

एक दूसरेसे मिलते हुए, नाना शास्त्रोंके जानने वाले, मधुर स्वरसे युक्त, नाना प्रकारके राजलक्षणोंसे सुशोभित सीताके पुत्र विद्वान् कुश और लव नामक गायक वहाँ उपस्थित हो गये, वाल्मीकि जब यह सोच रहे थे कि हमारे इस काव्यको कौन प्रचारित करेगा, उसी समय प्रोक्त गुणगणसे भूषित कुश और लव उनके पास आकर उपस्थित हो गये ॥ ९ ॥

एतौ मुनिः परिगृह्य [1]स्वां कृतिमपाठयत् ।

---

१. 'स्वकृतिम्' इति पाठान्तरम् ।

एताविति। एतौ कुशलवौ नाम मैथिलेयौ परिगृह्य शिष्यभावेन स्वीकृत्य मुनिः मननशीलः वाल्मीकिः स्वाम् निजाम् कृतिम् रचनाम् रामायणाख्यप्रबन्धम् अपाठयत् अध्यापितवान्, मुनिलक्षणमुक्तं यथा—'निर्वित्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः। ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः'। अपाठयत् इति पठेर्ण्यन्ताल्लङ्लकारः, एताविस्यस्य च 'गतिबुद्धि' इत्यादिना कर्मत्वम्।

इन दोनोंको वाल्मीकि मुनिने अपना काव्य (रामायण) पढ़ाया।

तौ पुनरितस्ततो गायमानौ दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टमनाः स्वभवनमानीय भ्रातृभिः [1]परिवृतो निजचरितं गातुमन्वयुङ्क्त।

ताविति। तौ कुशलवनामानौ कुशीलवौ, पुनरिति वाक्यालङ्कारे, इतस्ततः अत्र तत्र प्रदेशे गायमानौ रामायणं गायन्तौ दृष्ट्वा निरीक्ष्य प्रहृष्टमनाः सन्तुष्टहृदयः रामः स्वभवनम् निजं प्रासादम् आनीय भृत्यादिद्वारकाह्वानेन प्रापय्य भ्रातृभिः भरतादिभिः परिवृतः युतः सन् निजचरितम् स्वमुपाख्यानम् गातुम् अन्वयुङ्क्त आगृहीतवान्। रामायणं कोमलेन कण्ठेन पठन्तौ कुशीलवौ कुशलवौ क्वचिद्विलोक्य भगवान् रामस्तावाकार्य भ्रातृभिः सहोपविश्य तत्रोपस्थितौ तौ बालौ स्वचरितमाधारीकृत्य ग्रथितं रामायणं गातुमादिदेशेत्याशयः। 'गायमानौ' इत्यत्र शानच उपपत्तिश्चिन्त्या।

कुश और लव नामके दोनों कुशीलव सर्वत्र रामायण गाते फिरते थे, उनको वैसा करते देखकर भगवान् रामने उन दोनोंको अपने प्रासादमें बुलवाया और अपने भाइयोंसे परिवृत होकर उन गायकोंसे अनुरोध किया कि आप हमारे चरितको गावें।

ततश्च।

तत इति। ततः भवन्तौ यदीयं चरितं गायतमिति तदादेशानन्तरम्। चकारोऽग्रेवक्ष्यमाणक्रिययाऽन्वेति।

उनके आग्रह करने पर।

छन्दोमयीनां निलयस्य वाचामन्ते वसन्तौ [2]मुनिपुङ्गवस्य।
एतौ कुमारौ रघुवीरवृत्तं यथाक्रमं गातुमुपाक्रमेताम्॥ १०॥

छन्दोमयीनामिति। छन्दोमयीनाम् अनुष्टुबादिच्छन्दोबद्धानाम् वाचाम् वचसाम् निलयस्य निधानस्य (अनुष्टुबादिच्छन्दःसन्दब्धवचनरचनाप्रवर्त्तकस्येत्यर्थः) मुनिपुङ्गवस्य मुनिश्रेष्ठस्य वाल्मीकेः अन्तेवसन्तौ विद्यार्थिनौ एतौ कुशलवाभिधानौ कुमारौ प्रथमे वयसि वर्त्तमानौ बालकौ रघुवीरवृत्तम् रामचरितम् यथाक्रमम्

१. 'सह' इति पाठान्तरम्।   २. 'मुनिसत्तमस्य' इति पाठान्तरम्।

बाल्यादारभ्य गातुम् गीत्वा श्रावयितुम् उपाक्रमेताम् प्रारब्धवन्तौ । रामेण स्वं कथानकं गातुमादिष्टौ छन्दोमय्या वाचः प्रवर्त्तयितुर्वाल्मीकेः शिष्यौ कुशलवौ नाम बालकौ प्रारम्भत आरभ्य रामचरितं गातुं प्रारब्धवन्तावित्याशयः । 'छन्दः पद्ये च वेदे च' इति विश्वः । 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' इत्यमरः । 'उपाक्रमेताम्' इत्यत्र—'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्' इत्यात्मनेपदम् । उपजातिर्वृत्तम्—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' । 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १० ॥

छन्दोबद्ध वाणीके प्रवर्त्तक मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिके छात्र कुश और लव नामक दोनों कुमारोंने यथाक्रम आरम्भसे लेकर रामवृत्तान्तको गाना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥

अस्ति प्रशस्ता जनलोचनानामानन्दसंदायिषु कोसलेषु ।
आज्ञासमुत्सारितदानवानां राज्ञामयोध्येति पुरी रघूणाम् ॥ ११ ॥

अस्ति प्रशस्तेति । जनलोचनानाम् लोकनयनानाम् आनन्दसन्दायिषु सकलवस्तुपूर्णतया प्रमोदप्रदेषु कोसलेषु जनपदविशेषेषु प्रशस्ता त्रिभुवनप्रसिद्धा आज्ञासमुत्सारितदानवानाम् आदेशमात्रेण निरस्तसकलरक्षसाम् रघूणाम् रघुवंशोद्भवानाम् राज्ञाम् महीपालानाम् पुरी अयोध्या इति तदाख्या आसीत् अभवत् । समस्तसमृद्धिमत्तया लोकलोचनचमत्कारेषूत्तरकोसलाभिधजनपदविशेषेषु प्रख्याता केवलादेशप्रदानपरास्तसकलदैत्यनिचयानां रघुवंशे समुद्भूतानां राज्ञां राजधानी अयोध्या नाम नगरी वर्त्ततेस्मेत्यर्थः । आज्ञया समुत्सारिता दानवा यैरिति समासः । योद्धुमशक्या-अयोध्या । 'कोसलेषु' इति बहुवचनं जनपदभिप्रायेण, प्रायेण जनपदाभिधाने बहुवचनमेवाद्रियन्ते साम्प्रदायिकाः । रघूणामित्यत्र रघुपदं तद्वंशोद्भवेषु लाक्षणिकम् । इन्द्रवज्रावृत्तं, लक्षणमनुपदमुक्तम् ॥ ११ ॥

समस्त समृद्धिसे सम्पन्न होनेके कारण लोकलोचनानन्दकर कोसलदेशमें अपनी आज्ञा मात्रसे दानवोंको दूर भगा देनेवाले रघुवंशी राजाओंकी राजधानी अयोध्या नामकी नगरी थी ॥ ११ ॥

तामावसद्दशरथः सुरवन्दितेन
संक्रन्दनेन विहितासनसंविभागः ।
वृन्दारकारिविजये सुरलोकलब्ध-
मन्दारमाल्यमधुवासितवासभूमिः ॥ १२ ॥

तामावसदिति । सुरवन्दितेन देवगणपूज्येन सङ्क्रन्दनेन इन्द्रेण विहितासनसंविभागः दत्तार्धासनः, वृन्दारकाणाम् देवानाम् अरयः दानवाः तेषां विजये (राक्षसेषु जितेषु सत्सु) सुरलोकात् देवगणात् लब्धैः आसादितैः मन्दारमाल्या-

नाम् पारिजातकुसुमस्रजाम् मधुभिः परागैः अधिवासिता सुवासितीकृता वासभूमिः निवासदेशः यस्य तादृशः दशरथः तदाख्यां राजश्रेष्ठः ताम् अयोध्याम् आवसत् अधिवसतिस्म । तस्यामयोध्यायां दशरथो नाम राजा बभूव, यस्मै सुरपूज्यः शक्रः स्वासनार्धे स्थानं ददाति, यश्च देवादिगणानां जयं कृत्वा देवेभ्यः पारिजातस्रजमासाद्य तत्परागैस्स्वमावासदेशमधिवासयतीत्यर्थः । 'संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण् मेघवाहनः' 'मधुमद्ये पुष्परसे' इति चामरः। 'वृन्दारका देवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम्' इति च। तामावसत्' इत्यत्र 'ताम्' इति पदे 'उपान्वध्याङ्वसः' इति द्वितीया। 'सङ्क्रन्दनेन विहितासनसंविभागः' इत्यनेन देवाधिपकृतादरातिशयव्यक्तिः, 'मन्दारमाल्यमधुवासितवासभूमिः' इत्यनेन भूलोकालभ्यसुखभोगिताप्रतीतिश्च। वसन्ततिलकं वृत्तम् 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणम् ॥ १२ ॥

देवपूज्य इन्द्र जिन्हें आदरपूर्वक अपने आसनके आधे हिस्से पर बैठाते हैं, दैत्यके विजयमें सहायता करनेके कारण देवगणद्वारा समर्पित पारिजात मालासे जिनका आवासदेश अधिवासित हुआ करता है, ऐसे महाराज दशरथ उस अयोध्यापुरीमें वास करते थे ॥

अथास्मिन्ननपत्यतया दूयमानमानसे पुत्रार्थं क्रतुमश्वमेधं विधातुं मन्त्रिभिः [1]समं मन्त्रयमाणे दशरथे सुमन्त्रः प्रहृष्टमना महर्षेरङ्गदेशसङ्गतावग्रहनिग्रहशौण्डस्य विभाण्डकसूनोरवश्यमृष्यशृङ्गस्य प्रसादात्प्रभवो भविता कुमाराणामिति सनत्कुमारो[2]दीरितं पुरावृत्तमस्मै दशरथाय कथयामास ।

अथेति। अथ कियत्सु दिवसेषु व्यतिगच्छत्सु अस्मिन् दशरथे अनपत्यतया पुमपत्यविरहेण दूयमानमानसे परितप्यमानचित्ते पुत्रार्थम् पुत्रलाभोद्देश्यकम् अश्वमेधम् नाम क्रतुम् यज्ञम् विधातुम् कर्तुम् मन्त्रिभिः स्वामात्यैः समम् सह मन्त्रयमाणे विचारयति सति प्रहृष्टमनाः राज्ञः पुत्रार्थयज्ञविषयकचिन्ताप्रवृत्त्या राजवंशानुवृत्तिसम्भावनया सन्तुष्टमानसः सुमन्त्रः तदभिधानो दशरथमन्त्री अङ्गदेशसङ्गस्य अङ्गाभिधाने भूखण्डे समुत्पन्नस्य अवग्रहस्य वृष्टिप्रतिबन्धस्य निग्रहे दूरीकरणे शौण्डस्य वीरस्य अङ्गदेशे समुद्भूतं वृष्टिप्रतिबन्धं ! वारितवत इत्यर्थः, विभाण्डकसूनोः विभाण्डकाख्यमुनिपुत्रस्य महर्षेः न केवलमृषिपुत्रस्य किन्त्वात्मनाऽपि कृतेन तपसा महर्षिभावंगतस्य ऋष्यशृङ्गस्य प्रसादात् अनुग्रहात् कुमाराणाम् राजपुत्राणाम् प्रभवः उत्पत्तिर्भविता भविष्यतीति सनत्कुमारोदीरितम् ब्रह्मणो मानसपुत्रेण सनत्कुमारनाम्ना ब्रह्मसभायां कथितम् पुरावृत्तम् प्राक्तनं

---

१. 'सह' इति पाठान्तरम्। २. 'उक्तम्' इति पाठान्तरम्।

वृत्तान्तमस्मै पुत्रचिन्तापराय दशरथाय कथयामास उवाच। राजनि दशरथे चिरं महीं शासति पुत्रमलभमानेऽपुत्रस्य गतिर्नास्तीति स्मृतिवचनैः पुत्रार्थं चिन्तया कथं मे पुत्रः स्यादिति विषयं स्वमन्त्रिभिः समं विचारयितुं प्रवर्त्तमाने सुमन्त्रस्तस्मै-राज्ञे पुरा सनत्कुमारेण ब्रह्मणस्सभायां निवेदितं पुरावृत्तमुदाजहार—यद्विभाण्डक-पुत्रस्यर्ष्यश्रृङ्गस्य प्रसादात्तवकुमाराः समुत्पत्स्यन्ते, प्रथितप्रभावो ह्यसौ महर्षिर्ऋष्य-श्रृङ्गो यदसावङ्गदेशे प्रसृतं वृष्टिप्रतिबन्धकृतं हाहाकारमनायासमेव न्यगृह्णादिति। अवग्रहशब्दे 'अवेग्रहो वृष्टिप्रतिबन्धे' इत्यप्प्रत्ययः। 'वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहाव-ग्रहौ समौ' इत्यमरः।

महाराज दशरथको कोई लड़का नहीं था, वे पुत्रके अभावमें खिन्न रहा करते थे, उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे अश्वमेध यज्ञ करनेका विचार करना प्रारम्भ किया, इसपर उनके मन्त्री सुमन्त्रने उनसे प्रसन्नतापूर्वक निवेदन किया कि हमने ब्रह्माकी सभामें सनत्कुमारके मुखारविन्दसे यह पुरावृत्त सुना है कि अङ्गदेशमें अवर्षणप्रयुक्त अकालको दूर भगाने वाले विभाण्डकपुत्र महर्षि ऋष्यश्रृङ्गके अनुग्रहसे आपको पुत्ररत्न प्राप्त होंगे।

सोऽपि सुमन्त्रवचनाच्छान्ताधिः शान्ताकुटुम्बिनं सम्बन्धिनं मुनि-मानीय वसिष्ठादिष्टमश्वमेधाध्वरं सरयूरोधसि विधाय तत्र पुत्रीयामिष्टिं विधिवत्कर्तुमारभत।

स इति। सः दशरथः अपि सुमन्त्रवचनात् पूर्वोक्तप्रकारकात् सुमन्त्रवाक्यात् शान्ताधिः शमितमनोव्यथः सन् शान्ताकुटुम्बिनम् शान्तापतिम् सम्बन्धिनम् शान्तासम्बन्धेन जामातरम् मुनिम् मननशीलम् ऋष्यश्रृङ्गम् आनीय आहूय वसिष्ठादिष्टम् कुलगुरुणा वसिष्ठेनोपदिष्टप्रकारम् अश्वमेधाध्वरम् तदाख्यं यागम् सरयूरोधसि तदभिधाननदीतीरे विधाय तत्र सरयूतटे पुत्रीयाम् पुत्रप्रयोजनाम् इष्टिम् यागम् विधिवत् शास्त्रोक्तविधिना कर्त्तुम् विधातुम् आरभत प्रारब्धवान्। 'कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्। अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ' इति, रोमपादश्चाङ्गदेशीयमवग्रहं निवारितवते महर्षये ऋष्यश्रृङ्गाय पत्नीरूपेण शान्तामार्पिपदिति ऋष्यश्रृङ्गस्य शान्ताकुटुम्बित्वं सम्बन्धित्वञ्चोपपद्यते। शान्त आधिर्यस्य स शान्ताधिः, 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' 'कूलं रोधश्च तीरञ्च' इत्यमरः। पुत्राणामियं पुत्रीया, 'वृद्धाच्छः' इति छः।

सुमन्त्रके वचनसे दशरथकी मनोव्यथा शान्त हुई, उन्होंने शान्ताके स्वामी तथा स्वसम्बन्धी ऋष्यश्रृङ्गको बुलाकर वसिष्ठके आदेशानुसार सरयूतट पर अश्वमेध यज्ञ किया, अनन्तर वहीं पर यथाविधि पुत्रीय यज्ञ भी सम्पादित किया।

तदनु हविराहरणाय [1]धरणौ कृतावतरणाः सर्वे गीर्वाणगणाः [2]शतमखप्रमुखाश्चतुर्मुखाय दशमुख[3]प्रतापग्रीष्मोष्म[4]संप्लोषणमावेद्य तेन सह शरणमिति शार्ङ्गधन्वानं मन्वाना नानाविधप्रस्तुतस्तुतयः क्षीराम्बुराशिमासेदुः।

तदन्विति। तदनु यज्ञप्रारम्भानन्तरम् हविराहरणाय यज्ञभागग्रहणाय धरणौ पृथिव्याम् कृतावतरणाः समागताः शतमखप्रमुखाः इन्द्रप्रधानाः सर्वे समस्ताः गीर्वाणगणाः देवसङ्घाः चतुर्मुखाय ब्रह्मणे दशमुखस्य रावणस्य प्रतापः समधिकप्रभावप्रकर्षस्स एव ग्रीष्मोष्मा निदाघसन्तापः तेन सम्प्लोषणम् सन्तापम् आवेद्य निवेद्य तेन ब्रह्मणा सह शार्ङ्गधन्वानम् विष्णुम् शरणम् रक्षकम् इति मन्वानाः विश्वसन्तः नानाविधाः बहुप्रकाराः प्रस्तुताः प्रवृत्ताः स्तुतयः प्रार्थनाः यैस्ते तथोक्ताः क्षीराम्बुराशिम् क्षीरसागरम् आसेदुः प्रापुः। दशरथे यज्ञं प्रारभमाणे तत्र स्वस्वभागग्रहणाय भुवं समागता देवेन्द्रमुखा देवा रावणप्रतापप्रकर्षकृतमात्मनः सन्तापं ब्रह्मणे निवेदितवन्तस्ते च ब्रह्मसहिता देवा भगवन्तं शार्ङ्गपाणिमेवोपस्थिताद्रावणकृतभयात्त्रातारं मन्यमानास्तदाश्रयं क्षीरसागरं समुपसेदुस्तदुपश्लोकनायेति सङ्घातार्थः। 'सप्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' इत्यमरः। 'गीर्वाणा दानवारयः' इति च। 'प्लुष् दाहे' इति धातोर्भावे ल्युटि सम्प्लोषणपदम्। 'चापः शार्ङ्गम्मुरारेस्तु' इत्यमरः। 'शरणमिति मन्वानाः' इत्यत्रेति शब्दः प्रकारवाची, शरणत्वेन जानन्त इत्याशयः। अम्बुराशिपदं रूढ्या सागरार्थम्।

अनन्तर यज्ञभाग ग्रहण करनेके लिये पृथिवीपर आये हुए सभी इन्द्रादि देवगणोंने ब्रह्मासे रावणकृत उपद्रवका वर्णन कर ब्रह्माके साथ मिलकर यही निश्चय किया कि इस आपत्तिसे भगवान् विष्णु ही रक्षा कर सकते हैं और अपने इस निश्चय के अनुसार नाना प्रकारकी स्तुति करते हुए क्षीरसागरके किनारे पहुँचे।

संतापघ्नं सकलजगतां शार्ङ्गचापाभिरामं
लक्ष्मीविद्युल्लसितमतसीगुच्छसच्छायकायम्।
वैकुण्ठाख्यं मुनिजनमनश्चातकानां शरण्यं
कारुण्यापं त्रिदशपरिषत्कालमेघं ददर्श॥ १३॥

सन्तापघ्नमिति। सकलजगताम् सर्वलोकानाम् सन्तापघ्नम् आधिभौतिकादित्रिविधतापनाशकम्, ग्रीष्मकृतसन्तापशमकञ्च, शार्ङ्गम् शृङ्गनिर्मितम् यत् चापम् वंशवं धनुस्तेनाभिरामम् रमणीयम्, इन्द्रधनुषा हृद्यञ्च, लक्ष्मीरेव विद्युत् (स्वर्णवर्णकान्ति-

---

१. 'धरण्याम्' इति पाठान्तरम्। २. 'शक्र' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्रतापानल' इति पाठान्तरम्। ४. 'सशोषणम्' इति पाठान्तरम्।

शालितया लब्ध्या विद्युत्तयाऽध्यासो बोध्यः) तया लासितम् शोभितम्, अतसी-गुच्छः क्षुमापुष्पस्तवकस्तेन सच्छायः समानवर्णः कायो यस्य तादृशम्, मुनिजनानां तपस्विवृन्दानां मनांसि हृदयान्येव चातकाः पक्षिभेदास्तेषां शरणम् रक्षकम्, कारुण्यापम् दयापयसा पूर्णम्, वैकुण्ठाख्यम् तन्नामानम् कालमेघम् श्यामघनम् त्रिदशपरिषत् देवगणः ददर्श विलोकयामास। मेघो वर्णेन श्यामः, सकललोकव्याप्तनिदाघतापहरः, इन्द्रधनुषा युक्तः, विद्युद्वलयितः, अतसीपुष्पच्छविः, चातकतृषाहरः, पयसा पूर्णश्च भवति, वैकुण्ठो भगवानपि वर्णेन कृष्णः, सकलस्य जगतस्त्रिविधतापहरः, शार्ङ्गधनुर्धरः, लक्ष्मीरूपविद्युता युक्तः, अतसीपुष्पतुल्यकान्तिः, मुनिजनमानसरूपचातकशरण्यः, दयारूपेण पयसा पूर्णश्च भवतीति साम्यं निरूढम्। 'अतसी स्यादुमा क्षुमा' 'छाया त्वनातपे कान्तौ' इत्युभयत्रामरः। कारुण्यमापो यत्र तं तथा, 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इति समासान्तोऽप्। मन्दाक्रान्तावृत्तम्, 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ तो गुरु चेत्' इति तल्लक्षणम्। उपमारूपकयोः सङ्करः ॥१३॥

सकललोकके आधिभौतिकादि सन्ताप और ग्रीष्मतापको दूर करनेवाले, शृङ्गनिर्मित चापसे युक्त, इन्द्रधनुषसे युक्त, लक्ष्मीरूप बिजलीसे प्रकाशित, तीसीके पुष्पगुच्छके समान वर्णवाले, मुनिजनके चित्तरूप चातकोंके लिये शरण्य अर्थात् रक्षक, दयारूप जलसे पूर्ण उस वैकुण्ठ नामक श्यामघनको देवमण्डलीने देखा ॥ १३ ॥

[1]क्षीराम्भोधेर्जठरमभितो देहभासां प्ररोहैः
कालोन्मीलत्कुवलयदलद्वैतमापादयन्तम्।
आतन्वानं भुजगशयने कामपि क्षौमगौरे
निद्रामुद्रां निखिलजगतीरक्षणे जागरूकाम् ॥ १४ ॥

क्षीराम्भोधेरिति। अभितः देहाधिष्ठितदेशात् समन्ततः देहभासाम् प्ररोहैः शरीरप्रभाविस्तारैः क्षीराम्भोधेः क्षीरसागरस्य जठरम् मध्यभागम् काले समये उन्मीलतः विकसतः कुवलयदलस्य नीलकमलपत्रस्य द्वैतम् सादृश्यम्, आपादयन्तम् प्रापयन्तम्, क्षौमगौरे दुकूलधवले भुजगशयने वासुकिनागकृतायां शय्यायाम् कामपि अनिर्वचनीयाम् निखिलजगतीरक्षणे समस्तपृथ्वीपालने जागरूकाम् सावधानाम् निद्रामुद्राम् योगनिद्राम् आतन्वानम् धारयन्तम्। ददर्शेति प्रोक्तक्रिययान्वयः। इन्द्रनीलमणितुलितकान्तिरसौ भगवान् समुद्रमध्ये स्वावस्थित्या क्षीरसागराभ्यन्तरभागं नीलिमानं प्रापयति, येन सः कुवलयदलवत्प्रतिभाति, अतिधवले भुजगशयने योगनिद्रांगतश्च विष्णुरासीदाश्चर्यं चेदं यदद्सीया निद्रापि भुवनरक्षणजागरूकाऽऽसीदित्यर्थः। उक्तं च दुर्गासप्तशत्याम्—'योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते। आस्तीर्य शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः' ॥

१. 'क्षीराम्बोधेः' इति पाठान्तरम्।

'गौरोऽरुणे सिते पीते' इति विश्वः । तद्गुणोऽत्रालङ्कारः, विष्णोर्देहप्रभायाः सम्पर्केण क्षीराम्भोधिमध्यभागस्य नैल्यवर्णनात्, तथा च तल्लक्षणम्—'तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः' इति । वृत्तं पूर्वोक्तमेव ॥ १४ ॥

देहकी कान्तिके विस्तारसे भगवान् विष्णु क्षीरसागरके अभ्यन्तर भागको यथासमय विकसित कुवलयवनके समान नील वर्ण बना रहे थे और दुकूलके समान स्वच्छ वासुकि नागरूप शयन पर उस अद्भुतनिद्रा में निमग्न हो रहे थे जो (उनकी निद्रा) निखिल विश्वकी रक्षामें सतर्क रहा करती है ॥ १४ ॥

प्रह्लादस्य व्यसनममितं दैत्यवर्गस्य दम्भं
स्तम्भं वक्षःस्थलमपि रिपोर्यौगपद्येन भेत्तुम् ।
बद्धश्रद्धं पुरुषवपुषा मिश्रिते विश्वदृष्टे
दंष्ट्रारोचिर्विशदभुवने रंहसा सिंहवेषे ॥ १५ ॥

प्रह्लादस्येति । प्रह्लादस्य स्वनामख्यातस्य भक्तराजस्य व्यसनम् भजनविघ्नादिना जायमानम् क्लेशम्, दैत्यवर्गस्य हिरण्यशिपुप्रभृते राक्षसकुलस्य अमितम् अपरिमितम् दम्भम् मायाडम्बरादिकृतवलावलेपम्, स्तम्भम् अयोमयं स्तम्भविशेषम्, रिपोः हिरण्यकशिपुरूपस्य शत्रोः वक्षःस्थलम् अपि उरःप्रदेशमपि यौगपद्येन एकवारम् भेत्तुम् विदारयितुम् पुरुषवपुषा नरशरीरेण मिश्रिते मिलिते विश्वदृष्टे (नरशरीरमिलितसिंहरूपतया साश्चर्यम्) विश्वजनीनजनावलोकिते दंष्ट्रायाः दन्तनिवहस्य रोचिषा कान्त्या विशदं धवलं भुवनं येन तादृशे (दन्तप्रभया भुवनं धवलयति) सिंहवेषे सिंहाकारे रंहसा वेगेन शीघ्रम् इत्यर्थः, बद्धश्रद्धम् गृहीतादरभावम् । अत्रापि पूर्वोक्तया ददर्शेति क्रिययान्वयः । नृसिंहरूपेणावतीर्णो भगवान् सहैव प्रह्लादस्य दुःखं तत्पित्रादेरसुरस्य दम्भं स्तम्भं शत्रोरुश्च विदारयामास, सिंहवेषे वर्त्तमानस्य तस्य दन्तप्रभयाऽखिलमपि भुवनं धवलं बभासे, लोकाश्चाश्चर्येण तस्य तद्भयङ्करं रूपमपश्यन्नित्यर्थः । उक्तं च भागवते—'भक्तप्रतिज्ञापरिपालनाय सर्वात्मना व्याप्तिविवर्त्तनाय । दैत्येन्द्रवक्षोदलनाय विष्णुः स्तम्भान्नृसिंहाकृतिराविरासीत्' इति । अत्र क्रमिकस्य स्तम्भादिविदारणस्य यौगपद्यासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिः । वृत्ते तु न व्यत्ययः ॥ १५ ॥

जिस भगवान्ने प्रह्लादके दुःख, दैत्यवर्गके असीम गर्व, लौहस्तम्भ, हिरण्यकशिपुकी छाती इन चारोंको एक ही साथ फाड़नेके ख्याल से पुरुषशरीरसे मिलित, लोगोंके द्वारा साश्चर्य निरीक्षित एवं दन्तावलीके प्रभासे विश्वको उद्भासित करने वाले सिंहवेष पर वेगसे आदर प्रकट किया । अर्थात् शीघ्र नृसिंहरूपमें अवतार्ण हुए ॥ १५ ॥

नारायणाय नलिनायतलोचनाय
नामावशेषितमहाबलिवैभवाय ।

नानाचराचरविधायकजन्मदेश-
नाभीपुटाय पुरुषाय नमः परस्मै ॥ १६ ॥

नारायणायेति। नारायणाय परमात्मने नलिनायनलोचनाय कमलविशाल-नेत्राय नाम्ना नामोपादानमात्रेण अवशेषितम् विनाशंगमिनम् महत् प्रचुरम् बलिवैभवम् बलिनामकदैत्यस्य समृद्धिः येन स तस्मै तथोक्ताय नामोपादानमात्र-द्वारा समापितबलिसमृद्धये नानाचराचराणाम् बहुविधानाम् लोकानाम् विधा-यकाः निर्मातारः ये ब्रह्माणोऽनेके तेषां जन्मदेशः उत्पत्तिस्थानम् नाभीपुटः नाभि-कमलं यस्य तादृशाय परस्मै पुरुषाय पुरुषश्रेष्ठाय नमः। 'नारायणः परोऽव्यक्ता-दण्डमव्यक्तसंभवः' इति नारायणपदं परमात्मपरम्, यद्वा—नरस्येमानि नाराणि तत्त्वानि, तान्ययनं स्थानं यस्य स नारायणः, तदुक्तम्—'नराजातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः'। अथवा—आपो नारा अयनं यस्य स तथा, यथोक्तम्—'आपो नारा' इति प्रोक्ता आपो वैनर-सूनवः। तस्य तास्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ कमलविशाललोचनाय नाममात्रेण बलिवैभवध्वंसकाय नानाब्रह्मोत्पत्तिस्थानभूतनाभिकमलाय परस्मै पुरुषाय नारायणाय नमोऽस्तु इति भावार्थः। 'चराचरं स्याज्जगति' इति विश्वः। एतद्भावकः श्लोको भागवते यथा—'नतोऽस्म्यहं त्वखिलहेतुभूतं नारायणं पुरुष-माद्यमव्ययम्। यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माऽऽविरासीद्यत एष लोकः'॥ वस-न्ततिलकं वृत्तम्, 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १६॥

हम उस परम पुरुषको नमस्कार करते हैं जो नारायण हैं तथा कमलके समान विशाल लोचनोंसे युक्त हैं, जिसने अनायास बलिके महान् वैभवको ध्वस्त कर दिया और जिसके नाभि कमलसे अनेक लोकोंके स्रष्टा अनन्त ब्रह्मगण जन्म लिये ॥ १६ ॥

इति प्रणम्योत्थितानेतान्स्तुतिरवमुखरितहरिन्मुखान्हरिहयप्रमुखान-खिलानमरानरुणारुणतामरसविलासचोरैर्लोचनमरीचिसंतानैरानन्दयन्नर-विन्दलोचनः स्फुटमभाषत।

इतीति। इति एवं प्रकारेण प्रणम्य साष्टाङ्गप्रणिपातं कृत्वा उत्थितान् उत्थाया-वस्थितान् एतान् देवान् स्तुतेः विष्णुप्रणतौ उपयुज्यमानस्य वाक्यकदम्बस्य रवे-स्वरेण मुखरितम् सशब्दीकृतम् हरिन्मुखम् दिगवकाशो यैस्तादृशान् दिगवकाश-वाचालीकरणक्षमप्रार्थनाशब्दान्, अखिलान् सर्वान् हरिहयप्रमुखान् इन्द्रमुख्यान् अमरान् देवान्, अरुणारुणतामरसविलासचौरैः रक्ताभकमलशोभाऽपहारिभिः

१. 'अमरगणानरुणतामरस' इति पाठान्तरम्।
२. 'मरीचिवीचिसञ्चारैः' इति पाठान्तरम्।

लोचनमरीचिसन्तानैः नयनकान्तिप्रभाप्रवाहैः आनन्दयन् प्रसन्नताङ्गमयन् अरविन्दलोचनः कमलनयनः स्फुटम् व्यक्तम् अभाषत अवोचत। उक्तप्रकारकस्तुतिवाक्यव्याहारेण दिगन्तमुखरीकरणपटून्समस्तानपि देवान् कोकनदकान्तिहारिभिर्नयनमरीचिभिः प्रसन्नताङ्गमयन् विष्णुरेवमभाषतेत्यर्थः। हरिहय इन्द्रः, 'जम्भभेदी हरिहयः स्वाराण्नमुचिसूदनः' इत्यमरः।

इस प्रकार प्रणाम करके देवगण खड़े हो गये, उनके द्वारा की गई स्तुति से दिशायें मुखरित हो उठीं, इन्द्र प्रभृति देवगणों पर कृपा करके स्तुतिसे सन्तुष्ट नारायणने अपने रक्तकमलके तुल्य नयन डाल दिये, देवगण इस कृपासे प्रसन्न हो उठे, फिर भगवान्ने उन देवों से कहा।

अपि कुशलममर्त्याः स्वागतं सांप्रतं वः
शमितदनुजदम्भा किं नु दम्भोलिकेलिः।
अपि धिषणमनीषानिर्मिता नीतिमार्गा-
स्त्रिदशनगरयोगक्षेमकृत्ये क्षमन्ते ॥ १७ ॥

अपि कुशलमिति। हे अमर्त्याः इन्द्रादिदेवाः, वः युष्माकम् कुशलम् अपि क्षेमम् किम्? अपिशब्दः प्रश्नार्थः। वः स्वागतम् सुखागमनम्। साम्प्रतम् दम्भोलिकेलिः वज्रविलासः शमितदनुजदम्भा प्रशमितदैत्यगणबाहुवीर्यगर्वा नु किम्? इन्द्रवज्रविलासेन दानवाः दमिताः सन्ति नु? धिषणमनीषानिर्मिताः बृहस्पतिप्रतिभाप्रस्तुताः नीतिमार्गाः राजनीतिप्रकाराः त्रिदशनगरस्य देवपुरस्य स्वर्गस्य योगक्षेमकृत्ये अलब्धलाभो योगः, लब्धपरिपालनं क्षेमम्, तयोः कृत्ये सम्पादने क्षमन्ते समर्था भवन्ति अपि किम्? अयि देवाः, किं कुशलिनो भवन्तः? वो युष्माकं स्वागतमस्तु, किं शातक्रतववज्रविलासैर्दानवदम्भो निरस्यते? बृहस्पतिबुद्धिवैभवप्रभवा राजनीतिप्रकारा देवलोकरक्षणावेक्षणयोः क्षमा भवन्ति चेति प्रश्नसमुदयो वाक्यार्थः। 'गीष्पतिर्धिषणो गुरुः' इत्यमरः। मालिनीवृत्तम्, लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'। इति ॥ १७ ॥

अजी देवगण, आप सभी सकुशल तो हैं? आपका स्वागत है? क्या इन्द्रके वज्रके प्रभावसे राक्षसोंके दम्भ शान्त हो गये हैं? क्या बृहस्पति की बुद्धिसे प्रस्तुत राजनीतिप्रयोग देवपुरीमें योगक्षेम बनाये रखने में समर्थ हो रहे हैं॥ १७॥

एवं भगवतः कुशलानुयोगपुरःसरीममृतासारसरसां सरस्वतीमाकर्ण्य संपूर्णमनोरथानां सुमनसां संसत् पुंसे परस्मै विज्ञापयामास।

एवमिति। उक्तप्रकाराम् 'अपि कुशलममर्त्याः' इत्यादिरूपाम्, कुशलानुयोगपुरस्सरीम् कुशलप्रश्नपूर्विकाम् अमृतस्य सुधायाः आसारः वर्षणम् तद्वत् सरसाम्

रुचिराम् भगवतः विष्णोः सरस्वतीम् वाचम् आकर्ण्य सम्पूर्णमनोरथानाम् सफलाभिलाषाणाम् सुमनसाम् देवानाम् संसत् सभा पुंसे परस्मै परमपुरुषाय विष्णवे विज्ञापयामास कथितवती। 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः' इति टचि पुरस्सरशब्दस्ततो ङीपि पुरस्सरीपदम्। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इति 'धारासम्पात आसारः' इत्युभयत्रामरः। 'सुमनः पुष्पमालत्योः स्त्री देवबुधयोः पुमान्' इति वैजयन्ती। 'सभा समिति संसदः' इत्यमरः।

इस प्रकार भगवान् की कुशल प्रश्नपूर्वक तथा अमृतवृष्टिसमान रस भरी बातें सुनकर पूर्ण मनोरथ देवगणने परम पुरुष भगवान्से निवेदन किया।

देव, कथमकुशलमाविर्भवेद्भवता कृतावलम्बानामस्माकम्।

देवेति। देव, स्वामिन्, भवता त्वया कृतावलम्बानाम् आश्रयदानेन कृतार्थीकृतानाम् अस्माकम् देवानाम् अकुशलम् अशुभम् कुतः कथम् आविर्भवेत् प्रकटीभवेत्, भवदाश्रयेण सनाथा वयं सर्वथा कुशलिन इत्यर्थः।

देव, आपके द्वारा आश्रयदानसे कृतार्थीकृत हम देवोंके अशुभ किस प्रकार प्रकट होंगे?

किं तु।

किन्त्विति। किन्तु तथापि किञ्चिद्वक्तव्यमुक्तप्रकारं विद्यत इत्याशयः, यद्यपि कुशलं विद्यतेऽथापि किञ्चिद्विवक्षाम इति भावः।

यद्यपि कुशल है तथापि कुछ निवेदन करना है।

अस्ति प्रशस्तविभवैर्विबुधैरलङ्घ्या
लङ्केति नाम रजनीचरराजधानी।
माणिक्यमन्दिरभुवां महसां प्ररोहै-
स्तेजस्त्रयाय दिनदीपदशां दिशन्ती॥ १८॥

अस्ति प्रशस्तेति। प्रशस्तविभवैः प्रख्यातवस्तुसम्पत्समुदयैः (उपलक्षिता, अस्मिन्नर्थे तृतीयोपलक्षणार्था बोध्या, यद्वा विबुधविशेषणमिदम्) विबुधैः देवैः अलङ्घ्या अभिभवितुमशक्या, लङ्का इति नाम लङ्कानाम्ना प्रसिद्धा, माणिक्यमन्दिरभुवाम् मणिमयगृहप्रभवाणाम् महसाम् भासाम् प्ररोहैः प्रकाशरूपैरङ्कुरैः तेजस्त्रयाय सूर्यचन्द्रवह्निरूपाय त्रिविधाय तेजसे दिनदीपदशाम् दिवसवर्त्तिप्रदीपसादृश्यम् निस्तेजस्कत्वम् दिशन्ती समर्पयन्ती रजनीचरराजधानी राक्षसानाम् पुरी अस्ति विद्यते। समृद्धवस्तुभिरुपलक्षिता देवैर्दुरासदा माणिमयगृहोत्थकान्तिनिकरेण सूर्यचन्द्रवह्नीन् गततेजस्कान्कुर्वती लङ्काभिधाना नगरी विद्यत इत्याशयः। 'तेजो धाम महो विभा' इत्यमरः। 'दशा वर्त्तावस्थायाम्' इति विश्वः। राजनो धीयन्तेऽस्या-

मिति राजधानी, 'करणाधिकरणयोश्च' इति ल्युट् । अत्र तेजस्त्रये दिनदीपदशाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १८ ॥

प्रशस्त धनसम्पत्ति से उपलक्षित एवं देवों के द्वारा अविजेय, लङ्का नामकी राक्षस राजधानी है, जिस राजधानीभूत नगरीमें अपने अन्दर वर्त्तमान मणिमय मन्दिरों से प्रकट होने वाले तेजः पुञ्जके द्वारा सूर्य, चन्द्र तथा वह्नि इन तीनों तेजको दिनके प्रदीपकी अवस्था प्रदान कर दी है, अर्थात् लङ्कामें वर्त्तमान मणिमय भवनोंकी प्रभाराशिके सामने सूर्य, चन्द्रमा एवं वह्नि उसी तरह निस्तेज हो गये हैं जिस प्रकार (सूर्यके चमकते रहनेके कारण) दिनमें दीपक हतप्रभ हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥

एनां पुराणनगरीं नगरीतिसालां
सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः ।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां
राजा चिरादवति रावणनामधेयः ॥ १९ ॥

एनामिति । सालाभिरामेण सर्जवृक्षवत् सरलायततया सुन्दरेण भुजेन बाहुदण्डेन निर्जितः पराभूतः यक्षराजः कुबेरो येन स तादृशः, रावयतीति रावणः, विश्रवसोऽपत्यं पुमान् रावणः, 'तस्यापत्यम्' इत्यणि कृते 'विश्रवसो विश्रवणरवणौ' इति प्रकृते रवणादेश इति वा, नामधेयं नाम यस्य तादृशः, हेलया अनायासेन अभिभूतानि पराजितानि जगन्ति चतुर्दशापि भुवनानि यैस्ते तथोक्तास्तेषाम् । रजनीचरणाणाम् रक्षसाम् राजा शासकः नगरीतिसालाम् पर्वतोपमप्राकाराम् एनाम् लङ्काम् नाम पुरीम् पुराणनगरीम् प्राचीनां वसतिम् चिरात् चिरकालमारभ्य अवति पालयति । सर्जवृक्षसमानसरलायतभुजदण्डशाली जितकुबेरश्च राक्षसानामनायासविजितसमस्तभुवनानां राजा रावणश्चिरामिमां पर्वतोपमप्राकारपरिवृतां लङ्कापुरीं प्रशास्तीति तात्पर्यार्थः । यक्षराजविजयेन पराक्रान्ततातिशयः, हेलाभिभूतजगतामिति विशेषितराक्षसचक्राधिपत्वोक्त्या सहायसम्पन्नताप्रकर्षः, नगरीतिसालामिति नगरीविशेषणात्स्थानकृतानभिभवनीयत्वञ्चावेद्यते । 'हेलाऽवज्ञाविलासयोः' इति विश्वः । 'प्राकारो वरणः सालः' इति चामरः । चिरादिति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । अनुप्रासोऽलङ्कारः ॥ १९ ॥

सर्जवृक्षके सदृश अपने सुन्दर बाहुदण्डोंसे जिसने यक्षराजपर विजय प्राप्त की है एवं अनायास समस्त भुवनमण्डलको परास्त करनेवाले राक्षसोंका शासक रावण उस पुरानी लङ्कानामक नगरीका चिरकालसे शासन करता है, जिस नगरीके प्रकार (घेरेकी दीवार) पर्वतके समान अलङ्घ्य हैं ॥ १९ ॥

यद्बाहुराहुरसनायितशस्त्रधारा
दिक्पालकीर्तिमयचन्द्रमसं [1]ग्रसन्ति।
[2]यद्वैरिणां रणमुखे शरणप्रदायी
नैवास्ति कश्चिदमुमन्तकमन्तरेण ॥ २० ॥

यद्बाहुराहिति। यद्बाहुरसनायितशस्त्रधाराः यस्य रावणस्य बाहुषु स्थिता राहोः रसना जिह्वा तद्वदाचरन्ती शस्त्रधाराः आयुधपरम्पराः दिक्पालानाम् इन्द्रादिदिगीशानाम् कीर्त्तिमयम् यशःस्वरूपम् चन्द्रमसम् शशाङ्कम् ग्रसन्ति गिलन्ति। यद्बाहुधृतानि शस्त्राणि राहुरसनाभावमालम्ब्य दिक्पालानां पराभवविधया तदीयकीर्तिरूपं चन्द्रमसमाच्छादयन्ति, तान् गतकीर्त्तीन् कुर्वन्ति इत्यर्थः। राहुरसनायाश्चन्द्रग्रासकरत्वं प्रसिद्धं, तदुपजीव्यशस्त्राणां तत्त्वारोपः कीर्त्तिषु चन्द्रत्वारोपमुपकरोतीति परम्परितरूपकम्। तथा यद्वैरिणाम् यस्य रावणस्य शत्रूणाम् अमुम् (अत्रैव वर्त्तमानं कराग्रेणानर्दिश्यमानम्) अन्तकम् यमराजम् अन्तरेण व्यतिरिच्य रणमुखे युद्धस्थले कोऽपि शरणप्रदायी आश्रयप्रदो नास्ति एव। यच्छत्रुभूता युद्धे यमनिकेतनमेव गन्तुं बाध्यन्ते, रक्षकान्तराभावात् इत्यर्थः। 'अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया ॥ २० ॥

जिस रावणके हाथमें वर्त्तमान राहुकी जीभके समान शस्त्र दिक्पालोंकी कीर्तिरूप चन्द्रमाको ग्रस्त कर लेता है और जिसके वैरियोंका युद्धक्षेत्रमें यमराजके सिवा कोई दूसरा रक्षक नहीं होता है। रावणके हाथमें वर्त्तमान अस्त्र राहुकी जीभ रूप बनकर दिक्पालोंके कीर्त्तिरूप चन्द्रमाको निगल जाते हैं और रावणके वैरी युद्धमें मरते ही हैं, उनको यमराज ही आश्रय देते हैं, दूसरा कोई उन्हें बचा नहीं सकता है ॥ २० ॥

अम्भोजसम्भवममुं बहुभिस्तपोभि-
राराधयन्वरमवाप परैर्दुरापम्।
तस्माद[3]शेषभुवनं निजशासनस्य
लक्ष्यीकरोति रजनीचरचक्रवर्ती ॥ २१ ॥

अम्भोजेति। रजनीचरचक्रवर्त्ती राक्षससार्वभौमः रावण इत्यर्थः, अमुम् इहैव साक्षिभावेन वर्त्तमानम् अम्भोजसंभवम् ब्रह्माणम् बहुभिः नानाप्रकारकैः तपोभिः तपस्याभिः आराधयन् समर्चादिना प्रसादयन् परैः अन्यैः दुरापम् दुर्लभम् वरम् अवाप प्राप्तवान्, तस्मात् वरप्राप्तिरूपात् हेतोः (असौ रावणः) अशेषभुवनम् समस्तं भूमण्डलम् निजशासनस्य स्वाज्ञायाः लक्ष्यीकरोति विषयतां गमयति।

१. 'ग्रसन्ते' इति पाठान्तरम्। २. 'तद्वैरिणाम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'समस्त' इति पाठान्तरम्।

आराधिताद्ब्रह्मणो वरं लब्ध्वा दुर्दान्तः सन्नसौ रावणः समस्य भूमण्डलस्याप्रतिहतं शासनं विदधातीत्यर्थः। 'धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चिः कमलासनः' इत्यमरः। लघ्वीकरोतीति पदेऽभूततद्भावे च्विस्तेन तदाज्ञावहिर्गतानपि सः सम्प्रति स्वाज्ञावर्त्तिनः करोतीति प्रतीत्याचण्डशासनत्वं व्यज्यते। वरे दुरापतोक्त्या तत्प्रभावातिशय्यक्तिश्च भवति ॥ २१ ॥

वह रावण नामक राक्षसराज नानाप्रकारके तपस्याओंके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न करके ऐसे वर प्राप्तकर लिये हैं जो दूसरोंके लिये दुर्लभ हैं और उन्हीं वरोंके प्रतापसे वह रावण इस ससय समस्त भूमण्डल पर अपना शासन चला रहा है ॥ २१ ॥

तेन वयं पराधीना इव भवामः।

तेनेति। तेन रावणेन वयम् देवगणाः पराधीनाः तत्परतन्त्रा इव भवामः जायामहे, यद्यपि देवानामस्माकं वस्तुतो भवत्स्वाभिकत्वमेव, परन्त्वसौ दुर्दमपराक्रमतयाऽस्मास्वपि स्वमादेशं प्रचारयन् अस्मानपि स्वपरतन्त्रानिव विदधातीत्याशयः।

उस रावणके चलते हम लोग पराधीनसे हो रहे हैं (अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर पाते हैं)।

तथा हि। सोऽयं कदाचित्[1] क्रीडाधराधरमारुह्य[2] सावरोधवधूजनश्चरणाभ्यां [3]सञ्चरेत चेदागमिष्यत्याग इत्यनाविष्कृतातपो भयेन भगवान्सहस्रभानुरपि सङ्कुचितभानुरेव तत्सानूनि नूनं [4]संश्रयते।

पराधीनत्वमुपपादयति—तथा हीति। सोऽयम् रावणः कदाचित् क्वचन समये क्रीडाधराधरम् विलासाय निर्मितं पर्वतम् आरुह्य अधिश्रित्य सावरोधवधूजनः अन्तःपुरवर्त्तिवनिताजनपरिवृतः सन् चेत् यदि चरणाभ्याम् (यानत्यागपूर्वकम्) पादाभ्याम् सञ्चरेत् विचरेत्, (तदा) आगः चरणाधिष्ठितशिलातापनद्वारा चरणतापसमापत्तिरूपोऽपराधः आगमिष्यति उद्भविष्यति इति अस्माद्धेतोः भयेन रावणकोपसंभावनाप्रभवया भीत्या अनाविष्कृतातपः अप्रकटितो द्योतः भगवान् आदरणीयः सहस्रभानुः सूर्यः अपि (अन्येषां तु कथैव का?) नूनम् निश्चयेन सङ्कुचितभानुः असमग्रकिरण एव तत्सानूनि रावणाधिष्ठितक्रीडापर्वतशिखरदेशान् संश्रयते अवलम्बते। रावणो यदा विहारवाञ्छयाऽन्तःपुरस्थललनाजनसहायः सन् स्वीयं क्रीडापर्वतं पदा सञ्चरते, तदा समग्रभानुतया सूर्ये प्रकाशमाने तद्भानुसन्तप्तशिलासम्पर्कवशात्तस्य रावणस्य चरणे ताप्यमाने रावणः कोपमाप्स्यतीति सम्भाव्य भीतान्तरङ्गो भगवान् भास्करोऽपि स्वीयं सहस्ररश्मित्वमपहा-

---

१. 'कदाचन' इति पाठान्तरम्।   २. 'अधिरुह्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'तत इतः सञ्चरेत्' इति पाठान्तरम्।   ४. 'समाश्रयते' इति पाठान्तरम्।

यापेक्षितसन्तापमात्रसाधनकतिपयकिरणपरिवृतः सन् तदीयक्रीडापर्वतशिखर-माश्रयतीति भावः। 'शुद्धान्तश्चावरोधश्च स्यादन्तःपुरमित्यपि' 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रीयाम्' इति सर्वत्र नामरत्नमाला। सावरोधस्य क्रीडाशिखरिशिखरावाप्तिर्दिवाविहारेच्छाद्योतिका, तदुक्तं भावप्रकाशे—'सरितः पुलिनं वेलाकान्ताराराममभूधराः। लतागृहाणि चित्राणि शय्या किसलयोचिता। दिवा विहारदेशाः स्युः' इति। अवरोधस्थो वधूजनोऽवरोधधूजनस्तेन सहितः सावरोधवधूजनः, न आविष्कृत आतपो येन सोऽनाविष्कृतातपः, इति समासः। लोकत्रयदीपस्यापि भगवतः सूर्यस्येदृशी कष्टा दशेति देवानामस्माकं महत्कष्टमापतितमिति ध्वनिः। 'पादाभ्यां सञ्चरेत' इत्यत्र 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदम्। अत्र सूर्यस्य सानुसमाश्रयणासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धोक्त्याऽसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः।

रावण अपनी अन्तःपुरस्थ रमणियोंके साथ जब कभी पैदल क्रीडापर्वत पर विहार करता घूमने लगता है तब सूर्यको यह भय होने लगता है कहीं हमारी किरणें रावणको तीखी न लगने लगें और वह रुष्ट न हो जाय। इसी भय से भगवान् सूर्य अपनी किरणोंको सङ्कुचित करके ही उसके क्रीड़ापर्वतको आश्रित करते हैं।

एष मृगाङ्कोऽपि मृगयायासपरिश्रान्तिविश्रान्त्यै ससंभ्रमं नमज्जनपरिवृते मज्जनगृहाभिमुखे [1]दशमुखे तत्रत्यविचित्रतरशातकुम्भस्तम्भाग्रप्रत्यग्रप्रत्युप्तस्फटिकशिलाशालभञ्जिकापुञ्जकरतलकलितनिजोपलमयकलशमुखादच्छाच्छाम[2]विच्छिन्नधारामम्बुधारां निजकराभिमर्शादापादयंस्तस्य प्रसादपिशुनानां शुनासीरचिरकाङ्क्षितानां [3]विंशतिविधवीक्षणानां क्षणमात्रं पात्रं भवति।

एवं सूर्यस्य स्थितिं निवेद्य चन्द्रस्यापि तामुपन्यस्यति—एष मृगाङ्कोऽपीति। एषः पुरोदृश्यमानः मृगाङ्कः चन्द्रः अपि मृगयायाम् आखेटकर्मणि य आयासः चलनबाणत्यागादिव्यापारः तेन या परिश्रान्तिः श्रमः तस्याः विश्रान्त्यै विश्रमार्थम् अपनोदनायेत्यर्थः, ससम्भ्रमम् भयसहितम् त्वरापूर्वकम् वा नमद्भिः नमस्कारपरायणैः जनैः स्वभृत्यादिभिः परिवृते वेष्टिते दशमुखे रावणे मज्जनगृहाभिमुखे स्नानागारोन्मुखे सति, तत्र मज्जनगृहे भवाः तत्रत्याः विचित्रतराः अत्याश्चर्यकराः ये शातकुम्भस्तम्भाः हिरण्यनिर्मिताः स्तम्भाः तेषामग्रेषु उपरितनभागेषु प्रत्यग्रप्रत्युप्ताः नवीनकीलिताः याः स्फटिकशिलाशालभञ्जिकाः चन्द्रकान्तमणिरचिताः

---

१. 'निर्जितशनमुखे' इति पाठान्तरम्। २. 'अविच्छिन्नपाताम्बुधाराम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'विंशतिवीक्षणानाम्' इति पाठान्तरम्।

प्रतिमाः तासाम् पुञ्जः समुदयः तस्य करतलेषु हस्तदेशेषु कलिताः विरचय्य सङ्घटिताः निजोपलमयाः चन्द्रकान्तमणिनिर्मिताः कलशाः घटाः तेषाम् मुखात् मुखस्थानीयविवरदेशात् (जातावेकत्वम्) अच्छाच्छाम् अतिशुभ्राम् अविच्छिन्नधाराम् निरन्तरसम्पाताम् अम्बुधाराम् जलपरम्पराम् निजकराभिमर्शात् स्वकिरणसम्पर्कवशात् आपादयन् प्रादुर्भावयन् तस्य रावणस्य प्रसादपिशुनानाम् प्रसन्नतासूचकानाम् शुनासीरचिरकाङ्क्षितानाम् इन्द्रेण बहुकालादभिलषितानाम् विंशतिविधवीक्षणानाम् विंशतिसङ्ख्यककटाक्षवीक्षितानाम् क्षणमात्रम् कियतः कालस्य कृते पात्रम् आश्रयः भवति जायते। अयमाशयः—कृतमृगयो नितान्तश्रान्तश्च रावणः स्नानगृहाभिमुखं चलति, मध्ये यावन्तो भृत्यास्तमीक्षन्ते सर्वेऽपि नमस्कृत्य तमनुगच्छन्ति, तैः सर्वैरनुगम्यमानोऽसौ स्नानगृहमुपसीदति, तत्र तदीये स्नानगृहे स्वर्णमयस्तम्भाग्रभागेषु नवनवखचिताः स्फटिकनिर्मिताः स्त्रीप्रतिमाः सन्ति, तत्करतलेषु चन्द्रकान्तमणिमयाः कलशाश्च निर्मिताः सन्ति ये चन्द्रकरसम्पर्कवशाद्द्रवन्तः शीतलामविच्छिन्नां चाम्बुधारां रावणाय समर्पयन्ति, तत्रोपस्थितेन चन्द्रमसा क्रियमाणमिमं शीतलजलोपहरणरूपमुपकारं विभावयन् रावणश्चन्द्रस्योपरि विंशतिमपि निजनयनानि प्रसन्नमुद्रया व्यापारयति, तदित्थं रावणस्तस्मै तं प्रसादमुपहरति यमिन्द्रश्चिराय लिप्सति, तदित्थमयं चन्द्रोऽपि तत्कर्मकरतामापद्यत इति खेदविषय एवेति। 'आखेटो मृगया स्त्रियाम्' 'हिरण्यं हेमहाटकम्, तपनीयं शातकुम्भम्' 'उपलः प्रस्तरे मणौ' 'कर्णेजपः सूत्रकः स्यात् पिशुनो दुर्जनः खलः' 'वृद्धश्रवाः सुनासीरः' 'योग्यभाजनयोः पात्रम्' इति सर्वत्रामरः। श्रमलक्षणं यथा भावप्रकाशने—'श्रमः खेदोऽध्वरत्यादेर्जातः स्वेदादिभूमिकृत्' इति ॥

शिकारकी थकावटको दूर करनेके लिये जब रावण अपने स्नान घरकी ओर चलता है, तब उसके सभी नौकर जो मार्गमें मिलते हैं संभ्रमपूर्वक नमस्कार करते हुए उसके साथ हो लेते हैं, इस प्रकार वह स्नान गृहमें आजाता है, उसके स्नान घरमें अत्याश्चर्यकर सुवर्णस्तम्भों पर नवीन निर्मित चन्द्रकान्तमणिकी स्त्री प्रतिमायें लगी हुई हैं, उन प्रतिमाओंके हाथोंमें चन्द्रकान्तमणिसे बने घड़े लगे हुए हैं (वह चन्द्रमा उपस्थित रह कर) उन कलशोंके मुखसे शीतल जल की अविच्छिन्न धारा गिराता है, जिससे प्रसन्न होकर रावण चन्द्रमाकी ओर प्रसन्नतासूचक अपनी बीसों आंखें फेंकता है, जिसके लिये इन्द्र बहुत समयसे तरस रहे हैं।

तेन पुलस्त्यनन्दनेन सङ्क्रन्दननन्दनात्[1]स्वमन्दिरोद्यानमानीतस्य मन्दारप्रमुखस्य वृन्दारकतरुवृन्दस्य बन्दीकृतसुरसुन्दरीनयनेन्दीवर-

१. 'नन्दनवनात्' इति पाठान्तरम्।

द्वन्द्वाच्च[1] करारविन्दकलितकनककलशाच्च मन्दोष्णं स्यन्दमानैरम्बुभि[2]र्जम्बालितालवालस्य पचेलिमानामपि कुसुमानां पतनभयमाशङ्कमानाः पवमानाः परि[3]स्पन्दितुमपि प्रभवो न भवन्ति।

सम्प्रति वायोरवस्थामाह—तेनेति। पुलस्त्यस्य विश्रवसः नन्दनेन पुत्रेण तेन रावणेन सङ्क्रन्दननन्दनात् इन्द्रस्य नन्दननामकादुद्यानात् स्वमन्दिरोद्यानम् स्वगृहविलासवाटिकाम् आनीतस्य प्रापितस्य मन्दारप्रमुखस्य पारिजातप्रभृतेः वृन्दारकतरुवृन्दस्य देववृक्षसमुदयस्य वन्दीकृताः कारावासे स्थापिताः याः सुरसुन्दर्यः देवाङ्गनाः तासाम् नयनान्येव इन्दीवराणि नीलकमलानि तेषां द्वन्द्वात् युगलात् चकारः समुच्चयद्योतनाय करारविन्दकलितः हस्तस्वरूपकमलेनालम्बितः यः कनक कलशः स्वर्णघटस्तस्माच्च मन्दोष्णम् कदुष्णं यथा स्यात्तथा स्यन्दमानैः स्रवद्भिः जम्बालितानि पङ्कीकृतानि आलवालानि पयोदानाय निर्मिता वृक्षाधोभागस्थिताः गर्त्ताः येषान्तेषाम् (अत्रैकत्वं विशेष्यानुरोधेन, तद्विशेष्यञ्च प्रागुक्तं वृन्दारकतरुवृन्दस्येति) पचेलिमानि सञ्जातपाकावस्थानि परिणतानीत्यर्थः, यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषाम् पतनभयम् वृन्तच्युत्या भाविनो रावणकोपात् भीतिम् आशङ्कमानाः सम्भावयन्तः पवमानाः वायवः परिस्पन्दितुम् ईषच्चलितुम् अपि न प्रभवः समर्थाः न भवन्ति। रावणः स्वगृहोद्यानशोभां समेधयितुं नन्दनोद्यानाद्यान्पारिजाततरूनुत्खायानीतवान् तेषां सेकार्थं वन्दीभूताः सुरललनान्ययुङ्क्त, ताश्च रुदत्यस्तांस्तरून् सिषिचुस्तत् तासां स्रवद्भिरश्रुभिर्मिलितानि कलशच्युतजलानि शीतान्यपि कदुष्णानि जायन्ते, तैश्च तत्तरूणामालवालानि पङ्किलानि भवन्ति, तदीदृशानामपि तेषां वृक्षाणां पक्वानि शुष्कप्रायाणि श्लथवृन्तान्यपि पुष्पाणि मापप्तन्निति रावणाशयं विज्ञाय यदि वयं वामस्तदा पुष्पाणि पतेयुरिति सम्भावयन्तो वायवः किञ्चिदपि न चलन्ति का कथा यथेच्छप्रवहणस्येति भावः। 'कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति' इत्यमरः।

उस रावणने नन्दन वनसे कुछ पारिजातवृक्ष लाकर अपने गृहोद्यानमें लगाये थे, उन देववृक्षोंको सींचनेके लिये उसने वन्दिनी देवाङ्गनाओंको नियुक्त किया था, वे देवाङ्गनायें रोती हुई उन वृक्षोंको सींचती थीं, उनके नीलकमलोपम नयनोंके जल तथा उनके हाथोंमें वर्त्तमान स्वर्णकलशके जल परस्पर मिलकर गुनगुना हो जाते थे, उसीसे उन वृक्षोंकी सिंचाई होती थी, उनके आलवाल गीले होते थे, उन वृक्षोंके पुराने पड़ गये फूल भी कहीं (हमारे चलनेके कारण) गिर न जांय इसी भयसे वायुदेव तनिक भी नहीं हिल पाते थे।

---

१. 'द्वन्द्वात्तत्करारविन्दकनक' इति पाठान्तरम्।
२. 'स्पन्दमानैः' इति पाठान्तरम्। ३. 'सन्ततं परिस्पन्दितुम्' इति पाठान्तरम्।

एतेऽपि पावका रूढिशङ्कावहां[1] हुतवहाख्यां वहन्तस्तद्गृहे गार्हपत्यपुरोगाः[2] पौरोगवधुरं[3] दधते[4]।

अथाग्नेरपि स्थितिमावेदयितुमाह—एतेऽपीति। गार्हपत्यः पुरोगः मुख्यतयाऽग्रगामी येषां ते तथोक्ताः एते पावकाः वह्नयः अपि रूढिशङ्कावहाम् अवयवार्थनिरपेक्षयदृच्छाशब्दत्वभ्रमकरीम् हुतवहाख्याम् तदभिधानम् वहन्तः धारयन्तः तद्गृहे रावणसद्मनि पौरोगवधुरम् महानसाधिकृतत्वम् दधते धारयन्ति। गार्हपत्याहवनीयदक्षिणनामका रावणस्य गृहे महानसाधिकृताः सन्ति, तेषां हुतवहाख्या सम्प्रति हुतभुक्त्वलक्षणयोगार्थसङ्गत्यभावेन रूढिसंज्ञां प्रपद्यते, रूढा हि शब्दा योगार्थनिरपेक्षतया प्रयुज्यन्ते, तथैवाधुनाऽपि वह्नयो हुतवहा उच्यन्त इति भावः। रूढिसंज्ञालक्षणमुक्तमाचार्यैः—'असत्स्ववयवार्थेषु योऽन्यत्रार्थे प्रयुज्यते। तत्रानन्यगतित्वेन समुदायः प्रसिद्ध्यति'। इति। 'समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे। पौरोगवस्तदध्यक्षः' इत्यमरः।

ये गार्हपत्यप्रभृति अग्निदेव भी रावणके घरमें रसोईके कार्यमें अधिकृत होनेके कारण रूढि संज्ञाके रूपमें हुतवह कहे जाते हैं।

किं बहुना।

किमिति। किं बहुना नास्तिप्रयोजनम्, अल्पतममग्रे वक्ष्यमाणमेव परिस्थितिमवगमयितुमलमित्यर्थः।

ज्यादे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। (केवल इतनेसे ही समझ लीजिये कि—)

स एष मानुषादवमानन[5]मागमिष्यतीत्यमन्वानस्तदितरैरवध्यत्वं चतुराननवराल्लब्ध्वा समुद्धतः सम्प्रति सम्प्रहारसमाक्रान्तदिगन्तदन्तावलदन्तकुन्तव्रणकिणस्थपुटितवक्षःस्थलः स्थलकमलिनीं वनवारण इव रावणस्त्रिलोकीमभिभवन्भवदीयानित्यस्मान्न जातु किंचिदपि जानातीति।

स इति। स एषः प्रसिद्धौद्धत्यः स रावणः मानुषात् मनुजात् अवमाननम् आज्ञालङ्घनादिरूपस्तिरस्कारः आगमिष्यति भविष्यति इति अमन्वानः असम्भावयन्, चतुराननस्य ब्रह्मणः वरात् वरदानात् तदितरैः मनुजभिन्नैः अवध्यत्वम् अहिंस्यत्वम् लब्ध्वा प्राप्य समुद्धतः गर्वयुक्तः सन् सम्प्रति अधुना सम्प्रहारेण युद्धेन समाक्रान्ताः युद्धार्थमाहूताः ये दिगन्तदन्तावलाः दिग्गजास्तेषाम् दन्ता एव

१. 'शङ्काम्' इति पाठान्तरम्। २. 'पुरःसराः' इति पाठान्तरम्।
३. 'पौरोगवीं धुरम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'दधति' इति पाठान्तरम्।
५. 'मानवादवमानः' इति पाठान्तरम्।

कुन्ताः प्रासास्तैः यानि व्रणानि आघातजातानि क्षतानि तैः जाताः ये किणाः शुष्कमांसग्रन्थयः तैः स्थपुटितम् निम्नोन्नतीकृतं वक्षःस्थलम् उरोदेशो यस्य तादृशः रावणः स्थलकमलिनीम् भूमिप्ररूढां पद्मिनीम् वनवारणः वन्यः करी इव त्रिलोकीम् लोकत्रयम् अभिभवन् पीडयन् भवदीयान् भवत्सम्बन्धिनः इति हेतुना अस्मान् देवान् जातु कदाचित् न किञ्चिदपि जानाति न किमपि मन्यते। स दर्पोद्धतो रावणः मानवाः कीटा मामभिभविष्यन्तीति कदाप्यनुत्प्रेक्षमाणः प्रसन्नाद् ब्रह्मणो मानुषेतरावध्यत्वलक्षणं वरमवाप्य युद्धप्रसक्तदिग्गजकुन्तोपमतीक्ष्णाग्रदन्तक्षतकिणचिह्नैर्निम्नोन्नतीकृतवक्षाःवन्यः करी स्थलपद्मिनीम् इव त्रिलोकीमुपद्रवति, देवांश्च विष्णुभक्तत्वेन तृणाय मन्यत इत्यर्थः। मानुषादिति जातावेकवचनम्। मानुषेतरावध्यत्वं रावणाभिमतमाह वाल्मीकिः—'दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः' इति। 'रीढावमाननावज्ञावहेलनम्' इति 'संप्रहाराभिसम्पातकलिसंस्फोटसंयुगाः' इति चामरः। स्थपुटपदं निम्नोन्नतार्थं तथा च मालतीमाधवे भवभूतिः—'प्रेतरङ्कः करङ्कादङ्कस्थादक्षिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति' इति। त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी, ताम्, 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति समासे 'संख्यापूर्वो द्विगु'रिति द्विगुसंज्ञायां कृतायाम् 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति स्त्रीत्वे 'द्विगोः' इति ङीप्। रावणोऽस्मान् भवत्सम्बन्धित्वेन ज्ञात्वाऽपि न जहातीति तत्कृतभगवदवमाननध्वनिः। वन्यगजकर्तृकस्थलकमलिनीकर्मकाभिभवसादृश्यप्रदर्शनात् तत्कृतत्रिलोकीकर्मकाभिभवस्येषत्करत्वध्वनिस्तेन च रावणस्य पराक्रमातिशयाभिव्यक्तिर्भवतीति विभावनीयम्।

रावणने मनुष्योंसे अवमान उपस्थित होगा ऐसी संभावना नहीं की, अतएव उसने ब्रह्मासे मानवेतरसे अवध्यताका वर प्राप्त किया और उद्धत हो उठा, अब वह दिग्गजोंसे युद्ध करके उनके तीक्ष्णाग्रदन्तके प्रहारसे अपने वक्षःस्थलमें ऊचे नीचे ढेले बना चुका है, वह जैसे वनगज स्थलकमलिनीको उपद्रुत करता है उसी प्रकार त्रिभुवनको उपद्रुत कर रहा है, हम देवोंको तो कुछ समझता ही नहीं है क्योंकि हम आपके अधीन हैं।

अथ भगवानाकर्ण्य गीर्वाणगणवाणीम्।

अथेति। अथ देवैरित्थमुक्ते भगवान् विष्णुः गीर्वाणगणस्य वाणीम् देवसमूहस्य वाचम् आकर्ण्य श्रुत्वा। 'ऊचे' इत्यग्रे वक्ष्यमाणया क्रियया वाक्यपूर्त्तिर्बोध्या।

अनन्तर भगवान् विष्णुने देवगणकी वातें सुनकर (कहा)।

इन्द्रनीलाचलोदञ्चच्चन्द्रिकाधवलस्मितः।
वाचमूचे सुधाधारां मधुरां मधुसूदनः॥ २२॥

इन्द्रनीलेति। मधुम् तन्नामानं राक्षसं सूदयति विनाशयतीति मधुसूदनः विष्णुः इन्द्रनीलाचले इन्द्रनीलमणिनामकरत्नविशेषपर्वते उदञ्चन्ती प्रकटीभवन्ती या

चन्द्रिका कौमुदी सेव धवलम् स्वच्छं स्मितम् हसितं यस्य तादृशः इन्द्रनीलपर्वतप्रसारिचन्द्रकरस्वच्छहासशाली सन् मधुराम् मिष्टरसाम् सुधाधाराम् अमृतप्रवाहिणीम् वाचम् ऊचे। अत्र भगवतः श्यामकायतया हासस्य श्वैत्येन चोपमासङ्गतिः। हासेन रावणवधस्येपरकरताव्यञ्जिता। स्पष्टमन्यत्। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २२ ॥

इन्द्रनीलके पर्वत पर चमकती हुई चांदनीके समान धवल हंसी हंसकर मधुसूदनने मधुर तथा अमृतोपम वचन देवोंसे कहा। भगवान् श्यामवर्ण थे यह बात प्रसिद्ध है, हंसीको धवल कविप्रसिद्धिमें माना जाता है। इसीलिये ऐसी उपमा दी गई है ॥ २२ ॥

भवतामपराधविधायिनस्तस्य यातुधानस्य निधनमधुनैव विधातुं शक्यम्।

भवतामिति। भवताम् सर्वेषां देवानाम् (यस्य कस्यचिदेकस्यापराधः कारणविशेषतोऽपि सम्भवति, देवसामान्यापराधस्तु तस्याततायित्वमूलक एव सम्भवतीति तस्य हन्तव्यतायां हेतुरुपन्यस्तो वेदितव्यः) अपराधविधायिनः अपराधिनः अपकर्त्तुरित्यर्थः। तस्य यातुधानस्य राक्षसस्य रावणस्य निधनम् वधः, अधुनैव सम्प्रत्येव (एतेन कालप्रतीक्षाविरहनिवेदनेन तद्वधस्य सुकरत्वोक्तिद्वारकं स्वपराक्रमातिभूयस्त्वं व्यञ्जितम्) विधातुं शक्यम् कर्त्तुं क्षमम्। 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इत्यमरः ॥

आप लोगोंके प्रति अपराध करनेवाले उस राक्षस रावणको अभी ही मौत की घाट उतारा जा सकता है। (इस कथनसे भगवान्का अपने पराक्रम पर विश्वास व्यक्त होता है)

किंतु सरसिजासनशासनमप्यमोघीकुर्वन्नुर्वीतले पुत्रीयतः सुत्राममित्रस्य दशरथस्य मनोरथमपि पूरयितुमाहृतमानुषवेषः सन्नहमेव तं [2]हनिष्यामीति [3]व्याहृत्यान्तरधात्।

किन्त्विति। किन्तु यद्यपि रावणवधः सम्प्रत्यपि मया विधातुं शक्यते तथापि सरसिजासनस्य ब्रह्मणः शासनम् आज्ञाम् अपि अमोघीकुर्वन् अव्यर्थयन् उर्वीतले पृथिवीतले पुत्रीयतः पुत्रकामयमानस्य दशरथस्य तदाख्यस्य राज्ञः मनोरथम् अभिलाषम् अपि पूरयितुम् सफलयितुम् आहृतमानुषवेषः गृहीतमनुजाकृतिः सन् अहम् एव तम् रावणं हनिष्यामि मारयिष्यामि इति व्याहृत्य अन्तरधात् तिरोबभूव। यद्यपि मया रावणः सम्प्रत्येव हन्तुं शक्यते परन्त्वेवं करणे सुरासुरावध्यत्वलक्षणस्य ब्रह्मणा तस्मै दत्तस्य वरस्य मोघता जायेत, तथाकर्त्तुं न युज्यत इति हेतोर्मया कश्चन व्याजः स्वीकार्यः स च प्राप्तकालः, चिराद्धि दशरथः पुत्रंकामयते, तेनाह-

---

१. 'विधायिनो यातुधानस्य तस्य' इति पाठान्तरम्।

२. 'वधिष्यामि' इति पाठान्तरम्।   ३. 'उक्त्वा' इति पाठान्तरम्।

मेव मनुष्यजन्म गृहीत्वा तत्पुत्रत्वेनावतीर्णः सन् मानुषरूपेण रावणं हन्तास्मीति कथयित्वा विष्णुस्तिरोऽभूदिति भावः। 'शासनं राजदत्तोर्व्यां लेखाज्ञाशास्त्रशास्तिषु' इति 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इति चामरः।

किन्तु ब्रह्माके वरदानको मैं व्यर्थ नहीं होने देना चाहता हूँ और पुत्रप्राप्तिके लिये इन्द्रके परममित्र दशरथ भी तपस्या कर ही रहे हैं, उनके मनोरथको भी मुझे पूर्ण करना है, अतः मनुष्यशरीर धारण करके मैं खुद रावणका वध करूंगा, इस प्रकार कह कर भगवान् अन्तर्हित हो गये।

ततः सा परिषदनि[1]मिषाणामुन्मिषितह[2]र्षा हृषीकेशादेशात्प्रशमितदुर्दशानि निर्दशाननानि चतुर्दशभुवनानि बुद्ध्वा दुग्धसागरान्निरगात्।

तत इति। ततः भगवदन्तर्धानानन्तरम् अनिमिषाणाम् पक्ष्मपातविवर्जितानाम् निर्निमेषाणाम् इति भावः। देवानां हि पक्ष्मपातो न जायत इति प्रसिद्धिमनुरुध्येत्थमुक्तम्। उन्मिषितः प्रकाशंगतः हर्षः प्रमोदः विष्णुकृतोक्तप्रकारकाश्वासनसम्भव आनन्दो यस्याः सा तादृशी परिषत् मण्डली, हृषीकेशस्य इन्द्रियाणामधिष्ठातुर्भगवतः आदेशात् रावणं हनिष्यामीति वाक्यप्रदानात् प्रशमितदुर्दशानि समाप्तक्लेशानि निर्दशाननानि रावणविरहितानि चतुर्दशभुवनानि बुद्ध्वा मत्वा दुग्धसागरात् क्षीरसिन्धोः निरगात् निर्गत्यायासीत्। भगवता दीयमानेनाश्वासनेन प्रमुदिता देवमण्डली भगवदाज्ञामात्रेणैव रावणं मृतं तेन गतव्यथानि भुवनानि च प्रतियती सिद्धकार्या सती ततः स्थानात् प्रातिष्ठतेत्याशयः।

अनन्तर भगवान् द्वारा दिये गये आश्वासनसे प्रसन्न वह देवमण्डली भगवान्की सत्यप्रतिज्ञतापर आस्था होनेके कारण रावणकी मृत्यु तथा संसारके कष्टकी शान्तिके होने में विश्वास करके क्षीरसागरसे निकल आयी।

ततस्तानमरान्प्राह स्म पितामहः।

ततः क्षीरसागरान्निर्गमनानन्तरम् तान् भगवता दत्ताश्वासनान् अमरान् देवान् पितामहः ब्रह्मा प्राह स्म अवोचत। 'प्राहस्मे'त्यत्र 'लट्स्मे' इति भूतकाले लट्।

इसके बाद ब्रह्माने इन अमरोंसे कहा।

भवन्तस्तावदवतरिष्यतो लक्ष्मीसहायस्य साहाय्यार्थमप्सरःप्रभृतिषु युवतिषु वा[3]नराच्छभल्लगोपुच्छनीलमुखवेषभृतः प्रथितप्रभावाः प्रजाः प्रजनयेयुरिति।

---

१. 'निमिषनयनानां' इति पाठान्तरम्। २. 'हर्षाणाम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'वानरगोपुच्छभल्लूकवेषभृतः', 'वानरभल्लगोपुच्छवेशभृतः' इति च पाठान्तरम्।

भवन्त इति। भवन्तः देवाः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अवतरिष्यतः दशरथगृहे तत्पुत्रभावेन शरीरं ग्रहीष्यतः लक्ष्मीसहायस्य श्रीनाथस्य साहाय्यार्थम् सहायतायै अप्सरःप्रभृतिषु देवाङ्गनादिषु युवतिषु स्त्रीषु वानराः मर्कटाः, अच्छभल्लाः भल्लूकाः, गोपुच्छाः गोलाङ्गूलोपमलाङ्गूलधारिणः, नीलमुखाः वानरयोनिभेदास्तेषाम् वेषम् आकृतिम् बिभ्रति धारयन्ति यास्तादृशीः प्रथितप्रभावाः ख्यातसामर्थ्याः प्रजाः सन्ततीः प्रजनयेयुः उत्पादयेयुः। अयि देवाः, भवन्तो रावणवधाय शरीरं धारयिष्यतो भगवतः साहायकं सम्पादयितुं तांस्तान् वानरभल्लूकभेदाँस्तासु तास्वप्सरःप्रभृतिषु वनितासूत्पादयेयुर्यैर्भगवतोऽवतरणकारणं कार्यं साफल्यमियादिति ब्रह्मोक्तितात्पर्यम्। सहायस्य भावः कर्म वा साहाय्यम्, गुणवचनादित्वात् ष्यञ्, 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः।

आप लोग तब तक भविष्यमें धराधाम पर अवतीर्ण होने वाले विष्णु भगवान्की सहायताके लिये अप्सरा आदि युवतियोंसे भालू, बन्दरवेष धारण करनेवाली प्रभावयुक्त सन्ततियों को पैदा करें।

पुरैव[1] किल मम जृम्भारम्भे [2]सम्भूतवाञ्जाम्बवानिति।

पुरेति। पुरा पूर्वकाले सृष्ट्यादौ, किलेति वाक्यभूषायाम्, मम ब्रह्मणः जृम्भारम्भे गात्रविनामरूपजृम्भणक्रियाया अवसरे जाम्बवान् तदाख्यः कश्चन वानरः सम्भूतवान् उत्पन्नः (स भवतां साहायकं करिष्यतीत्यर्थः)।

सृष्टिके आदिकालमें जब मैं जम्हाई ले रहा था, उसी समय जाम्बवान् पैदा हो चुका है।

ततस्ते गीर्वाणास्तथाकुर्वन्।

तत इति। ततः ब्रह्मणः प्रोक्तप्रकारकवचनावसाने ते तत्र स्थिताः गीर्वाणाः देवास्तथा ब्रह्मणः कथनानुसारम् अकुर्वन् कृतवन्तः। अप्सरःप्रभृतिषु युवतिषु पुत्रान् जनयामासुरित्यर्थः।

अनन्तर देवोंने वैसा ही किया।

अथ वैतानाद्वैश्वानरान्नरः प्राजापत्यः सहेमपात्रः कश्चिदुत्थाय [3]पुत्रीयते दशरथाय पायसममृतप्रायं प्रायच्छत्।

अथेति। अथ अनन्तरम् वितानम् यज्ञः पुत्रेष्टिनामकः, तस्यायं वैतानिकः यज्ञियः तस्मात् वैतानात् यज्ञार्थमाधीयमानात् वैश्वानरात् अग्नेः सकाशात्

---

१. 'पुरा खलु' इति पाठान्तरम्। २. 'सम्भूतः' इति च पाठान्तरम्।
३. 'दशरथाय पुत्रीयते' इति व्युत्क्रमेण पाठान्तरम्।

स हेमपात्रः स्वर्णमयपात्रयुक्तकरः प्राजापत्यः ब्रह्मप्रेषितः ब्रह्मणाऽन्वायुक्तो वा कश्चित् अज्ञातप्रवृत्तिकः नरः पुरुषः उत्थाय बहिरेत्य पुत्रीयते पुत्रं कामयमानाय दशरथाय तदाख्याय नृपाय अमृतप्रायं सुधाकल्पम् पायसम् क्षीरसिद्धमन्नम् प्रायच्छत् दत्तवान्। विष्णोर्निदेशेन फलवता भाव्यमेव, तदनुसारं पुत्रीयामृष्टिमारचयतो दशरथस्य पुरतस्तेनैवाहिताद्यज्ञाग्नेः कोऽपि हेमपात्रपूर्णकरः पुरुषः प्रादुरासीद्यो दशरथायामृतप्रायं पायसं प्रादादिति भावः। 'क्रतुविस्तारयोरस्त्री वितानम्' 'अग्निर्वैश्वानरो वह्निः' इत्युभयत्रामरः। पयसा संस्कृतम् पायसम्, 'परमान्नं तु पायसम्' इत्यमरः। 'संस्कृतं भक्षाः' इत्यण्प्रत्ययः। पुत्रीयते पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रीयति, ततः शतृप्रत्यये चतुर्थ्यां रूपमिदम्। प्रायच्छदिति दाणो लङि रूपम्, 'पाघ्राध्मा' इति दाणो यच्छादेशः।

इसके बाद यज्ञीय अग्निसे ब्रह्मा द्वारा भेजा गया एक पुरुष प्रकट हुआ, उसके हाथमें सोनेका एक पात्र था, उस पुरुषने पुत्रकी कामना करने वाले राजा दशरथको अमृततुल्य पायस प्रदान किया।

ततः—

कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूपतिः पायसार्धं
प्रादादर्धं प्रणयमधुरं केकयेन्द्रस्य पुत्र्यै।
एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं
स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरुतां पूर्णकामां सुमित्राम् ॥२३॥

ततः कौसल्याया इति। ततः पायसप्रदानानन्तरम् भूपतिः राजा दशरथः कौसल्यायै तदभिधानायै स्वाग्रमहिष्यै प्रथमम् पूर्वम् पायसार्धम् यज्ञोत्थितपुरुषप्रदत्तपायसार्धभागम् अदिशत् दत्तवान्, अर्धम् कौसल्यादत्तावशिष्टम् पायसार्धभागम् केकयेन्द्रस्य केकयदेशाधीश्वरस्य पुत्र्यै कैकेय्यै नाम स्वमध्यमभार्यायै प्रणयमधुरम् स्वप्रेमविशेषितमाधुर्यम् यथा स्यात्तथा प्रादात् दत्तवान्। एते देव्यौ कौसल्याकैकेय्यौ राज्यौ तरलमनसः स्वकनिष्ठभार्यायै सुमित्रायै पायसाप्रदानरूपादपराधात् तरलमनसः पर्याकुलचित्तस्य पत्युः दशरथस्य भावम् मानसिकमभिप्रायम् आलोच्य विज्ञाय स्वार्धांशाभ्याम् स्वभागौ द्विधा विभज्य कल्पिताभ्याम् द्वाभ्यां भागाभ्याम् स्वयम् आत्मनैव सुमित्राम् तदाख्यां कनिष्ठां देवीम् पूर्णकामाम् सिद्धमनोरथाम् अकुरुताम्। प्रणयमधुरमित्यस्यायमाशयः—पायसं स्वतो मधुरं सदपि दातुर्भर्तुः प्रेम्णा विशेषितमाधुर्यमजनि, वस्तुगौरवापेक्षया प्रणयगौरवस्याधिकादरार्हत्वात्। स्वयमित्यनेन च भर्तुर्हृदयवेद्यतया तयोः सद्भावनाशीलता सापत्नद्वेषाकलुषस्वान्तता चोक्ता। उक्तश्चायमर्थः कालिदासेन रघुवंशे यथा—'अर्चिता तेन कौसल्या प्रिया केकयवंशजा। अतः सम्भाविता ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः। ते बहुज्ञस्य

चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः। चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे'। रामायणे चरुविभागोऽन्यादृशः, तत्र हि—चरोरर्धं कौसल्यायै, अवशिष्टार्धार्धं सुमित्रायै, शिष्टस्यार्धं कैकेय्यै, ततश्च शिष्टं पुनः सुमित्रायै दत्तवानित्युक्तम्, परं पुराणान्तरानुरोधादित्थमत्र वर्णितम्। 'पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके' इत्यमरः॥ २३॥

राजा दशरथने यज्ञाग्निसे उत्थित पुरुषके द्वारा दिये गये चरु-पायसका आधा हिस्सा पहले कौसल्याको दिया, अनन्तर अवशिष्ट आधा भाग सस्नेह कैकेयीको सौंपा। उन दोनों देवियोंने सुमित्राको पायस नहीं मिलनेके कारण सचिन्त पतिदेवका अभिप्राय समझकर अपने अपने भागके आधे भागोंसे सुमित्राका मनोरथ पूर्ण कर दिया॥ २३॥

अवभृथेऽवसिते सरयूतटादथ यथायथमुच्चलिते जने।
दशरथः परिपूर्णमनोरथः पुरमगात्पुरुहूतपुरोपमाम्॥ २४॥

अवभृथ इति। अथ अवभृथे यज्ञान्तस्नानादिकृत्ये अवसिते समाप्ते यज्ञे पूर्ण इत्यर्थः, जने यज्ञसङ्गतलोकसमुदये सरयूतटात् सरय्वाख्यसरित्तीरं विहाय यथायथम् स्वगन्तव्यदेशम् उच्चलिते प्रस्थिते, परिपूर्णमनोरथः सिद्धमनोरथः दशरथः पुरुहूतपुरोपमाम् इन्द्रपुरीसदृशीम् पुरम् अयोध्याम् अगात् गतः। अवभृथपदं यज्ञान्तोपलक्षकं तेन यज्ञसमाप्तौ सत्याम् आगतजनेषु सरयूतटं हित्वा यथास्वं प्रस्थितेषु पुत्रप्राप्तिरूपमनोरथस्य सिद्धवद्भासमानतया प्रसन्नमनाः दशरथो देवेन्द्रनगरीसदृशीमयोध्यां नाम स्वपुरीमगमदित्यर्थः। पुरु अधिकम् हूयते यज्ञेष्विति पुरुहूतः, 'यथास्वं तु यथायथम्' इत्यमरः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्, 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति च तल्लक्षणम्॥ २४॥

यज्ञान्तस्नानके समाप्त हो जाने पर सब लोग सरयूतटसे विदा हो गये, दशरथ भी अपने मनोरथकी सिद्धिसे प्रसन्न होकर स्वर्गोपम अयोध्यानगरीको चले॥ २४॥

अपाटवात्केवलमङ्गकानां मनोज्ञकान्तेर्महिषीजनस्य।
शनैः शनैः [1]प्रोज्झितभूषणानि चकाशिरे [2]दौहृदलक्षणानि॥ २५॥

अपाटवादिति। मनोज्ञकान्तेः गर्भधारणकारणकसौन्दर्योपचयमहिम्ना पूर्वतोऽपि समृद्धसौन्दर्यस्य महिषीजनस्य कौसल्यादेः राजपत्नीगणस्य अङ्गकानाम् अल्पानामवयवानाम् अपाटवात् भूषणधारणविषयकसामर्थ्यरहितत्वात् प्रोज्झितभूषणानि विसर्जितालङ्करणानि दौहृदलक्षणानि गर्भचिह्नानि शनैः शनैः क्रमशः चकाशिरे प्रकाशीभावमभजन्त। गर्भावस्थायां समेधितसौन्दर्याणां कौसल्याकैकेयीसुमित्राणां दुर्बलानि अङ्गानि भूषणधारणासमर्थानि भूत्वा गर्भं व्यञ्जयामासुरित्यर्थः। दौहृदलक्षणानि शरीरसादसुखपाण्डिमकृष्णमुखस्तनतादीनि

---

१. 'प्रोषित' इति पाठान्तरम्। २. 'दौर्हृद' इति पाठान्तरम्।

बोध्यानि। दौहृदं हृदयद्वितयवत्त्वम्, एकमुत्पत्स्यमानस्य शिशोरपरं च मातुरिति तदुक्तं सङ्ग्रहे—'द्विहृदयां नारीं दौहृदिनीमाचक्षते' इति। वाग्भटेन स्वयमर्थं इत्थमुक्तः—'मातृजन्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन यत्। संबद्धं तेन गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धावमाननम्'। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' इति च तल्लक्षणम्॥

रमणीयकान्तिशालिनी रानियोंके शरीर भूषणधारणकी क्षमता खो बैठे, फलतः धीरे २ गहने छोड़ने पड़े, इस भूषणत्यागको दौहृदका चिह्न अर्थात् गर्भलक्षण माना जाता है यह अब प्रकट होने लगा॥ २५॥

मन्दमन्दमपयद्[1]वलित्रया[2] गाधताविषयनाभिगह्वरा।
कोसलेन्द्रदुहितुः शनैरभून्मध्ययष्टिरपि दृष्टिगोचरा॥ २६॥

मन्दमन्दमिति। मन्दमन्दम् शनैः शनैः अपयत् अपसरत् दूरीभवत् वलित्रयम् त्रिवलीरूपम् रेखात्रयं यस्याः सा तादृशी, गर्भप्रभावोपपादितस्थौल्यवशादपगतवलित्रयात्मकचिह्नविशेषेत्याशयः, गाधताविषयो गर्भकृतस्थौल्येनागाधताऽपगमे गाधीभूतः नाभिगह्वरः नाभिकुहरं यस्याः सा तथोक्ता, कोसलेन्द्रदुहितुः कोसलराजकन्यायाः कौसल्यायाः मध्ययष्टिः कटिप्रदेशः अपि शनैः शनैः क्रमशः दृष्टिगोचरा प्रत्यक्षविषयतां भजन्ती अभूत्। अयमाशयः—यत्कौसल्याया मध्यं तनुत्वादविभाव्यमानमासीत् तदधुना गर्भकृतस्थौल्येन ववृधे, वर्धमाने च तत्र तदाश्रिता त्रिवलीरेखाऽपि तनुत्वमात्रशरणा पलायत, नाभिकुहरं यदगाधमासीत्तद् गाधतां गतमेवं स्वतो मध्यमपि दृष्टिगोचरत्वमापन्नं पूर्वन्तु सूक्ष्मं तददृश्यमेवाभवदिति। मन्दमन्दमित्यत्र 'प्रकारे गुणवचनस्य' इति द्वित्वम्। 'कर्मधारयवदुत्तरपदेष्वपि' इति कर्मधारयवद्भावात्सुपो लोपः। नाभिगाम्भीर्यवलित्रययोः सौभाग्यसूत्रकत्वं सामुद्रिके। गोचरशब्दस्याजहल्लिङ्गत्वे स्थितेऽपि 'दृष्टिगोचरा' इति स्त्रीत्वं चिन्तनीयमेव विभाति रथोद्धतावृत्तम्—'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति तल्लक्षणम्॥ २६॥

जब गर्भ स्थिर होकर बढ़ने लगा तब अङ्गोंमेंसे स्थूलता तो दूर हटने लगी किन्तु कमरमें स्थूलता बढ़ने लगी, फलतः कमरकी त्रिवली क्रमसे दूर होने लगी और जो नाभिकुहर अगाध था वह अब अपनी अगाधता छोड़कर गाध बन गया, इसी तरह कौसल्याका मध्यभाग जो पहले कृशतया अदृश्य था वह अब दृश्य हो गया॥ २६॥

न्यग्रोधपत्रसमतां क्रमशः प्रयाता-
मङ्गीचकार पुनरप्युदरं कृशाङ्ग्याः।

---

१. 'अपयात्' इति पाठान्तरम्। २. 'वलित्रयी' इति पाठान्तरम्।

जीवातवे दशमुखोरगपीडितानां
गर्भच्छलेन वसता प्रथमेन[1] पुंसा ॥ २७ ॥

न्यग्रोधपत्रेति । कृशाङ्ग्याः स्वभावतः सम्प्रति गर्भतश्च विशिष्य दुर्बलतनुलतायाः कौसल्याया नाम राज्याः उदरम् (मध्यभागोपलक्षणमिदमुदरपदं बोध्यम्), प्रयाताम् दूरंगताम् न्यग्रोधपत्रसमताम् वटपत्रसादृश्यम् पुनरपि भूयोऽपि दशमुखः रावण एव उरगः सर्पस्तेन पीडितानाम् प्राप्तव्यथानाम् देवमनुष्याणां जीवातवे जीवनाय गर्भच्छलेन गर्भव्याजेन वसता वासं कुर्वता प्रथमेन पुंसा आदिपुरुषेण विष्णुना अङ्गीचकार । अयमाशयः—बाल्ये कौसल्योदरं वटपत्रोपममासीत्, जाते यौवने तेन सङ्कोचिते तन्मध्यभागे वटपत्रसादृश्यं किञ्चित्स्थूलत्वसम्पृक्ततालब्धजन्मतया दूरमपसरतिस्म, सम्प्रति तु जाते गर्भे भगवदागमेनेव पुनर्वटपत्रतुलामापेति । भगवतो वटपत्रशायित्वप्रसिद्धिमनुसृत्यार्थबन्धविधिर्बोध्यः । भगवतो वटपत्रशायित्वे—'करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् । वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि' इति प्राचीनं पद्यं प्रमाणम् । 'वटपत्रसमं स्त्रीणामुदरं पुत्रदायकम्' इति स्मरणादुदरे वर्णयति वटपत्रसादृश्यम् । 'न्यग्रोधो बहुपाद्वटः' इत्यमरः । अत्र दशमुखोरगेति रूपकेण वटपत्रसादृश्योत्प्रेक्षा सङ्कीर्यते । वसन्ततिलकं वृत्तं, तल्लक्षणं प्रागुक्तमेव ॥ २७ ॥

कौसल्याके कृश मध्य भागने–रावणरूपसर्पसे पीडित, जनोंके जीवनार्थ अवतार ग्रहण करने के लिये गर्भरूपमें ईश्वरके रहने लगनेसे–चिरत्यक्त वटपत्रसादृश्यको फिरसे पा लिया । भगवान् वटपत्र में रहते हैं वह गर्भरूपमें जिस उदरमें रहेंगे, वह वटपत्र सदृश कहा जायगा । कौसल्या यौवनागमसे पूर्व वटपत्रसदृशोदरी थी, जवानीके आनेसे कमर पतली हो गई और उसके उदरके अतिकृश–असत्कल्प–हो जानेसे स्थूलतासापेक्ष वटपत्रसादृश्य जाता रहा, फिर गर्भ होनेसे कमरमें कुछ स्थूलता आई और उदरने चिरत्यक्त वटपत्रसादृश्यको फिरसे प्राप्त किया ॥ २७ ॥

अपि च—

मध्यं तनुत्वादविभाव्यमानमाकाशमासीदसितायताक्ष्याः ।
गर्भोदये विष्णुपदापदेशात्कार्श्यं विहायापि विहाय एव ॥ २८ ॥

मध्यमिति । असिते कृष्णवर्णे आयते दीर्घे च अक्षिणीनयने यस्यास्तस्या श्यामलविशाललोचनायाः कौसल्यायाः मध्यम् अवलग्नम् (उदरम्) तनुत्वात् कृशत्वाद्धेतोः अविभाव्यमानम् अदृश्यम् (अत एव च) आकाशम् (अविभाव्यमानतया) आसीत् (तत्कौसल्यामध्यम्, अधुना गर्भदशायां मध्यस्य संजातस्थौल्य-

१. 'परमेण' इति पाठान्तरम् ।

तया) कार्श्यं विहाय कृशतां परित्यज्यापि विष्णुपदापदेशात् भगवतो विष्णोः पदमिति शब्देन व्यवह्रियमाणतया विहायः आकाशमेव अतिष्ठदिति शेषः। कौसल्यामध्यमागः प्राक्सौक्ष्म्याद्धेतोराकाशमासीददृश्यत्वसाधर्म्यात्, सम्प्रति गर्भोदयेन जाते स्थूलभावे यद्यपि आकाशत्वसमर्थकमदृश्यत्वरूपं कारणं नास्ति तथापि भगवतो विष्णोः पदं स्थानमित्यर्थकविष्णुपदव्यवहार्यतया (विष्णुपदम् आकाशमिति पर्यायतया) आकाशमेव तस्थौ, तत्र कारणापगमेऽपि प्रकारान्तरेण तत्त्वमुपपादितमिति बोध्यम्। 'मध्यमं चावलग्नं च' 'वियद्विष्णुपदं वापि पुंस्याकाशविहायसी' इति चामरः। पूर्वार्धे भेदेऽप्यभेदरूपातिशयोक्तिः, उत्तरार्धे विरोधच्छायोपजीवी विभावनालङ्कारस्तदनयोः सङ्करः॥ २८॥

कृश होनेके कारण दृश्य नहीं होनेवाला—काली तथा विशाल आंखोंवाली कौसल्याका मध्यभाग (अदृश्यत्वसाम्यात्) आकाश कहा जाता था। उसके गर्भवती होने पर मध्यभाग स्थूल हो गया फिर भी उसकी आकाशता बनी रही, क्योंकि उसके गर्भमें भगवान् आ गये जिससे उसका मध्यभाग विष्णुपद-विष्णुका स्थान-कहा जा सकता था। कौसल्याका मध्यभाग पहले अदृश्यत्वसाम्यसे आकाश कहा जाता था, अब स्थूल होनेसे उसका अदृश्यत्व तो दूर हो गया, परन्तु 'विष्णुपद' हो जानेके कारण विष्णुपद शब्दवाच्य आकाशत्व उसका अक्षत ही रहा॥ २८॥

ततः—

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे-
राविर्भूतमभूतपूर्वमपरं[1] यत्किंचिदेकं महः॥ २९॥

उच्चस्थ इति। ग्रहपञ्चके सूर्यमङ्गलगुरुशुक्रशनिनामकेषु पञ्चसु ग्रहेषु उच्चस्थे मेषादिस्वतुङ्गस्थानस्थिते सुरगुरौ बृहस्पतौ सेन्दौ चन्द्रमसा युक्ते, नवम्याम् तिथौ, पुनर्वसुयुते पुनर्वसुनामकनक्षत्रयुक्ते कर्कटके तदाख्ये लग्ने, पूषणि सूर्ये मेषंगते मेषराशिस्थिते, निखिलाः समस्ताः पलाशसमिधः राक्षसरूपकाष्ठानि निर्दग्धुम् भस्मसात्कर्तुम् मेध्यात् पवित्रात् अयोध्यारणेः अयोध्यानामकनगररूपमन्थनकाष्ठात् अपरम् अद्वितीयम् अभूतपूर्वम् पूर्वोत्पन्नसकलविलक्षणम् यत्किञ्चित् एकम् महः रामाभिधानम् तेजः आविर्भूतम् प्रकटीबभूव। 'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः' इति प्रोक्तदिशा खेर्वृश्चिकादिराशय उच्चस्थानानि भवन्ति, तेन ग्रहपञ्चके नाम सूर्याङ्गारकगुरुशुक्रशनिनामके ग्रहसमुदये स्वोच्चस्थान

१. 'पूर्वविभवं यत्किंचित्', 'पूर्वमभवद्यत्किंचित्' इति च पाठान्तरम्।

स्थिते, सेन्दौ नवम्यां तिथौ नवम्यां सोमे पुनर्वसूपेते कर्कटलग्ने सूर्ये च मेषस्थे अयोध्यारूपान्मन्थनकाष्ठात् रामाभिधानमेकमद्भुतं महः समजायत, येन राक्षसरूपाः समस्ताः समिधः क्षप्यन्तेस्मेति भावः। ग्रहस्थित्यादिवर्णनं 'रामस्य' प्रभावातिशयद्योतनाय। यस्य जन्मकाले पञ्चापि ग्रहा उच्चास्तस्य दिव्यत्वमुक्तं कृष्णीये—'सुखिनः प्रकृष्टकार्याः राजप्रतिरूपकाश्च राजानः। एकद्वित्रिचतुर्भिर्जायन्तेऽतः परं दिव्याः'। 'राशीनामुदयो लग्नम्' इत्यमरः। अन्यत्सर्वं कुण्डलीतत्त्वं ज्यौतिषजातकग्रन्थेभ्योऽवसेयम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

जब सूर्यादि पांच ग्रह उच्च स्थानोंमें थे, चन्द्रमा और बृहस्पति समान स्थानमें थे, नवमी तिथि, कर्क लग्न, पुनर्वसु नक्षत्र तथा सूर्य मेषराशिमें थे. ऐसे समयमें समस्त राक्षसरूप समिधाको जलानेके लिये एक अद्भुत तथा अभूतपूर्व (राम नामक तेज) पवित्र अयोध्यापुरीरूप मन्थनकाष्ठसे उत्पन्न हुआ। आग मन्थनकाष्ठसे उत्पन्न होती है उसमें होम किया जाता है, समिधायें जलती हैं इसीलिये ऐसा रूपक दिया गया है ॥ २९ ॥

अपि च—

अथ रामाभिधानेन कवेः सुरभयन् [1]गिरः।
अलंचकार कारुण्याद्रघूणामन्वयं हरिः ॥ ३० ॥

अथेति। अथ एतदनन्तरम् हरिः विष्णुः रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः, तदुक्तम्:—'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सदानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इति, तेन अभिधानेन नाम्ना कवेः वाल्मीकेः गिरः वाचः सुरभयन् मनोज्ञतां प्रापयन् कारुण्यात् दयावशात् रघूणाम् रघुवंशम् अलञ्चकार। भूतदयावशंवदः स्वाश्रितकाव्यप्रणेतृकविवागनुग्राहकश्च रामाभिधानो हरिः स्वजन्मना रघुवंशमन्वग्रहीदित्यर्थः। 'कारुण्यं करुणा घृणा' इत्यमरः। 'सुगन्धौ च मनोज्ञे च सुरभिर्वाच्यलिङ्गवत्' इति विश्वः। 'सुरभयन्' इत्यस्य वस्तुनः सुरभीकरिष्यन्नित्यर्थे पर्यवसानात् वर्तमानसामीप्ये प्रत्ययो बोध्यः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३० ॥

इसके बाद रामनाम से वाल्मीकिकी वाणीको अमर बनाने वाले भगवान्ने दयावश होकर रघुवंशको अलङ्कृत किया, अर्थात् रघुके कुलमें जन्म लिया ॥ ३० ॥

[2]तमेनमन्वजायन्त त्रयस्त्रेताग्नितेजसः।
[3]अग्रजस्यानुकुर्वन्तस्तैस्तैर्लोकोत्तरैर्गुणैः ॥ ३१ ॥

तमेनमिति। त्रेताग्नितेजसः आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणनामकमग्नित्रयं त्रेताग्निः तस्य तेज इव तेजो येषां ते त्रेताग्नितेजसः अतितेजस्विन इत्यर्थः। त्रयः भरत-

१. 'गिरा' इति पाठान्तरम्। २. 'तमेवम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अग्रजं सेऽनुकुर्वन्तः' इति पाठान्तरम्।

लक्ष्मणशत्रुघ्नसमाख्याः त्रयो भ्रातरः तैः तैः वर्णयितुमशक्यैः लोकोत्तरैः लोकासाधारणैः गुणैः सौशील्यविनयवत्त्वादिभिः अग्रजस्य ज्येष्ठस्य भ्रातू रामस्य अनुकुर्वन्तः अनुहरन्तः तत्सदृशगुणा इत्यर्थः। तमेनम् रामम् अनु अजायन्त उदपद्यन्त। पूर्वं रामो जातस्ततश्चातिप्रकाशवद्गुणयुक्ता गुणैः राममनुहरन्तश्च भरतादयस्त्रयो भ्रातरो जन्माग्रहीषुरिति भावः। अग्रजस्यानुकुर्वन्त इति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी, अनुकारेण सादृश्यप्रत्यये दण्डी—'तदन्वेत्यनुबध्नाति तच्छीलं तन्निषेधति। तस्य वानुकरोतीति शब्दाः सादृश्यवाचकाः' इति। 'तमेनम्' 'अनु' इत्यत्र 'अनुर्लक्षणे' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद्द्वितीया। 'अग्नित्रयमिदं त्रेता' इत्यमरः। एक एवाग्निस्त्रीण्याहवनीयादिरूपाणि इतः प्राप्तस्त्रेता, तदुक्तम्—'एक एवावसथ्याग्निरग्न्याधेयेन कर्मणा। संस्कृतस्त्रीणि रूपाणि ततस्त्रेतेति शब्द्यते'। 'त्रेता' पदे स्त्रीत्वं लोकात्, 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये'त्युक्तेः॥ ३१॥

दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य इन तीन नामोंसे प्रख्यात अग्नित्रयके समान तेजस्वी एवं लोकोत्तर अपने गुणोंसे ज्येष्ठ भ्राता रामके अनुकरण करने वाले तीन भाई रामके पीछे उत्पन्न हुए॥ ३१॥

भरतस्तेषु कैकेय्यास्[1]तनयो विनयोज्ज्वलः।
अन्यौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां कृतोदयौ॥ ३२॥

भरत इति। तेषु राममनुजातेषु त्रिषु कुमारेषु विनयोज्ज्वलः नम्रतागुणेन रमणीयः भरतः तदाख्यः कैकेय्याः केकयाधिपकन्याया दशरथद्वितीयपत्न्याः तनयः पुत्रोऽजायतेति शेषः। अन्यौ भरतातिरिक्तौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां तदाख्यायां दशरथकनिष्ठभार्यायाम् कृतोदयौ लब्धजन्मानावभूतामिति योजनीयम्। सङ्गृहीतोऽयमर्थो भट्टिना—'कौसल्ययाऽसावि सुखेन रामः प्राक् केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्। प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन' इति। केकयस्य राज्ञोऽपत्यं स्त्री कैकेयी। 'तस्यापत्यम्' इत्यण्। 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' इति यादेरियादेशे कैकेयीति। स्पष्टमन्यत्॥ ३२॥

उन तीनों कुमारोंमें विनययुक्त भरत कैकयी नामक रानीसे उत्पन्न हुए और लक्ष्मण एवं शत्रूघ्न सुमित्रासे पैदा हुए॥ ३२॥

एते ववृधिरे वीरा ब्रह्मक्षेमाय[2] दीक्षिताः।
[3]लोकानन्दमुकुन्दस्य चत्वार इव बाहवः॥ ३३॥

एत इति। वीराः शौर्योपपन्नाः ब्रह्मक्षेमाय ब्राह्मणहिताय दीक्षिताः सन्नद्धाः चत्वारो रामादयः कुमाराः लोकानन्दमुकुन्दस्य जगद्धितस्य विष्णोः चत्वारः च

१. 'कैकेय्याम्' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रजाक्षेमाय' इति पाठान्तरम्।
३. 'लोकानन्दा मुकुन्दस्य' इति पाठान्तरम्।

संख्यकाः बाहवः भुजा इव ववृधिरे वृद्धिं प्रापुः। यथा भगवतो विष्णोर्ब्रह्महिताय सततं कृतसङ्कल्पास्तिष्ठन्ति तद्वदमी चत्वारो रामादयः कुमारा अपि ब्रह्मक्षेमाय सततंतत्पराः सन्तो वृद्धिमगमन्नित्यर्थः। दीक्षा नियमग्रहणादिमाभिषेकः, सा सञ्जाता एषामिति दीक्षिताः—'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इतीतच्प्रत्ययः॥

ब्राह्मणोंकी भलाईके लिये तत्पर रहनेवाले ये वीरराजकुमार लोकानुग्रहपरायण भगवान्‌के चार हाथोंकी तरह अनुदिन वृद्धि प्राप्त करने लगे॥ ३३॥

अथ कदाचिदपरिमेयमायाभयानकयुद्धसमुद्धतदैत्यबलावस्कन्दकांदिशीकवृन्दारकानीकपरिवार्यमाणरथः[1] पङ्क्तिरथस्तपश्चर्याजातानामाश्चर्याणामायतनं त्रिशङ्कुयाजिनं[2] भगवन्तं पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदं प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासं बुधमिव सोमसुतं कुशिकसुतमद्राक्षीत्[3]।

अथेति। अथ एतदनन्तरम् (कियतीमवस्थावृद्धिंगतेषु राजकुमारेषु) कदाचित् एकदा अपरिमेयया अनन्तया परिच्छेत्तुमशक्यया मायया छलविद्यया भयानकम् भीषणम् युद्धम् समरः तत्र समुद्धतम् यत् दैत्यबलम् राक्षससैन्यम् तेन तत्कृतेन अवस्कन्देन आक्रमणेन कान्दिशीकाः भयद्रुताः ये वृन्दारकाः देवाः तेषाम् अनीकेन समुदयेन परिवार्यमाणः आवेष्टितः रथः यानम् यस्य तादृशः। (नानाविधाभिर्वञ्चनाभिर्भीषणाय युद्धायोद्यतस्य राक्षससैन्यस्याक्रमणेन भीतैर्देववृन्दैरुपसन्न इत्यर्थमिदं दशरथविशेषणं बोध्यम्) पङ्क्तिरथः दशरथः, तपश्चर्यायाः तपोऽनुष्ठानस्य सम्यगाचरणात् जातानाम् आश्चर्याणाम् विस्मयावहकर्मणाम् (ब्राह्मणत्वावाप्त्यर्थं चिरं तपस्यता विश्वामित्रेण बहून्याश्चर्यजनककार्याणि कृतानीत्यभिप्रायेणेत्थमुक्तम्) आयतनम् सद्मभूतम्। त्रिशङ्कुयाजिनं त्रिशङ्कुं हरिश्चन्द्रपितरं याजयति सदेहस्वर्गप्राप्तये यज्ञे प्रवर्त्तयति यस्तम्। भगवन्तम् सर्वविधसामर्थ्योपपन्नम्। पद्यप्रबन्धम् पद्यमयं काव्यग्रन्थम् इव दर्शितः प्रकटीकृतः सर्गभेदोऽध्यायबहुत्वं यत्र तथाभूतमृषिपक्षे प्रकटीकृतसृष्ट्यन्तररचनम्, (त्रिशङ्कुयाजनावसरे देवैरवरुद्धप्रसरो विश्वामित्रः सर्गान्तरमारचयितुमारब्धवान्, अत एव च—'सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तम्' इति चण्डकौशिके उक्तम्) प्राकृतव्याकरणम् प्राकृतभाषाव्याकरणं प्राकृतप्रकाशादिनाम्ना प्रथितम् तदिव दर्शितवर्णव्यत्यासम् प्रकटीकृताक्षरविपर्ययम्, ऋषिपक्षे जातिभेदम्, (क्षत्रियोऽपि सन्नयमात्मनो ब्राह्मणत्वं स्थापितवानितीत्थमुक्तम्, प्राकृतव्याकरणे वर्णव्यत्यासश्च प्रसिद्ध एव—यथा तालव्यशकारमूर्धन्यशकारयोः प्रायशो दन्त्यसकारभावः, बुधमिव ग्रह-

---

१. 'प्रतिपाल्यमानमहारथः' इति पाठान्तरम्। २. 'निःशङ्कं त्रिशङ्कु' इति पाठान्तरम्। ३. 'अद्राक्षीदप्राक्षीच' इति पाठान्तरम्।

विशेषमिव सोमसुतम् चन्द्रपुत्रम् ऋषिपक्षे सोमं सुनोतीति विगृह्य सोमसुतमित्यस्य सोमयाजिनमित्यर्थः करणीयः । कुशिकसुतम् कुशिकाख्यनृपतिपुत्रं विश्वामित्रं नाम मुनिमद्राक्षीत् दृष्टवान् । 'स्यान्माया शाम्बरी विद्या' 'घोरं भीमं भयानकम्' 'अनीकिनी बलं सैन्यम्' 'वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ' इति सर्वत्रामरः । श्लेषोत्थापितोपमात्रयमत्र गद्यखण्डे बोध्यम् ।

अनन्तर एक समय अनन्तछलकपटके कारण भयानक युद्ध करने वाले दैत्योंकी सेनाके आक्रमणसे भयभीत देवगण सैन्यों द्वारा परिवृत रथ वाले दशरथको तपस्याजनित आश्चर्योंके निधान, त्रिशङ्कुको यज्ञ कराने वाले भगवान्, पद्यप्रबन्ध की तरह सर्गभेद (अध्यायभेद एवं सृष्टयन्तर) करने वाले बुध की तरह सोमसुत (चन्द्रके) पुत्र तथा सोमनामक (यज्ञके अनुष्ठाता) विश्वामित्रके दर्शन प्राप्त हुए ।

तदनु यथाविधि[1] कृतसपर्येण मर्यादातीतम[2]हिम्ना महितेन गाधेतरहृदयेन गाधिनन्दनेन सत्रपरित्राणार्थमित्थम[3]भ्यर्थितोऽभूत् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात् विश्वामित्रदर्शनानन्तरम् यथाविधि यथाशास्त्रम् शास्त्रोक्तेन प्रकारेणेत्यर्थः । कृतसपर्येण विहितपूजेन । मार्यादातीतमहिम्ना अनन्तमहत्त्वशालिना महितेन सर्वपूजितेन गाधम् अगभीरम् तदितरत् अगाधम् गभीरं हृदयं चित्तं यस्य तेन गाधिनन्दनेन विश्वामित्रेण सत्रपरित्राणार्थम् यज्ञं रक्षितुम् इत्थम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अभ्यर्थितः प्रार्थितः अभूत् दशरथ इति कर्माध्याहार्यम् ।

अनन्तर यथाविधि सत्कार प्राप्त अमेय महत्त्वसे युक्त तथा सर्वपूजित एवं गभीराशय विश्वामित्रने यज्ञकी रक्षाके लिये इस प्रकार दशरथसे प्रार्थना की ।

राजन्, भ[4]वतस्तनयेन विनयाभिरामेण रामेण श[5]रासनमित्रेण सौमित्रिमात्रपरिजनेन क्रियमाणक्रतुरक्षो रक्षोदुरितमुत्तीर्य कृतावभृथो भवितुमभिलषामीति ।

राजन्निति । राजन् वर्णाश्रमपालनाधिकृत, भवतः विनयाभिरामेण विनयशोभितेन तव तनयेन पुत्रेण रामेण तदभिधानेन शरासनमित्रेण बाणमात्रसहायेन सौमित्रिमात्रपरिजनेन लक्ष्मणमात्रसहायेन क्रियमाणक्रतुरक्षः सम्पाद्यमानयज्ञविघ्नविरहः रक्षोदुरितम् राक्षसकृतं विघ्नम् उत्तीर्य समाप्य कृतावभृथः कृतयज्ञावसानस्नानः भवितुमभिलषामि इच्छामि । रामो लक्ष्मणसखः शरासनधरश्च मदीयं यज्ञं

---

१. 'प्रतिकृत', 'परिगृहीत' इति पाठान्तरम् । २. 'महिम्ना गाधेतर' इति पाठान्तरम् । ३. 'अभ्यर्थितः पार्थिवोऽभूत्' इति पाठान्तरम् । ४. 'तव कुमारेण' इति पाठान्तरम् । ५. 'शरासनमात्रमित्रेण' इति पाठान्तरम् ।

रक्षितुं मामनुयातु, तथासति मदीयो यज्ञः पूर्णत्वमुपैष्यतीति प्रार्थनाहृदयम्। 'दीक्षान्तोऽवभृथो यज्ञे' इति वैजयन्ती।

राजन्, आपके सुपुत्र विनयशाली राम केवल बाणधनुषमात्र लेकर लक्ष्मणके साथ हमारे यज्ञकी रक्षा करें, इस प्रकार हम राक्षसकृत उपद्रवोंसे मुक्ति पाकर यज्ञान्तस्नान करके निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं।

एतदाकर्ण्य[1] कर्णपरुषं महर्षिभाषितमतिमात्रपुत्रवात्सल्यात्कौसल्याजानिः सशल्यान्तःकरणोऽभूत्।

एतदिति। कर्णपरुषम् श्रुतिव्यथकम् एतत् पूर्वोक्तप्रकारम् रामप्रेषणप्रार्थनापरम् महर्षिभाषितम् विश्वामित्रोक्तिम् आकर्ण्य अतिमात्रपुत्रवात्सल्यात् अतिशयितपुत्रप्रेमवशात् कौसल्याजानिः दशरथः सशल्यान्तःकरणः खिन्नमनाः अभूत्। शल्येऽन्तःस्थिते हृदयस्य यादृशी व्यथा जायते तादृशी व्यथाऽजायतेति व्यञ्जयितुमिदं विशेषणम्। 'भाषितं वचनं वचः' 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्' इत्युभयत्रामरः।

इस प्रकार कानोंको कष्ट देने वाले महर्षिके वचन सुनकर पुत्र पर अटूट प्रेम रखने वाले महाराज दशरथने हृदयमें चोटका अनुभव किया।

ततस्तस्मिन्बहुप्र[2]कारै[3]रवार्यनिश्चये भगवति विश्वामित्रे दशरथस्तपनकुलहितेन पुरोहितेनैवमभिहितोऽभूत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम् तस्मिन् विश्वामित्रे बहुभिः प्रकारैः नानाविधैर्विकल्पैः 'अहमेव गमिष्यामि योद्धुं तैः कूटयोधिभिः। रामस्यास्य न पश्यामि मुनेऽहं युद्धयोग्यताम्। षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक। यत्नेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि' इत्यादिभिः अवार्यनिश्चये अपरिवर्त्तनीयरामप्रेषणरूपविचारे भगवति सर्वसामर्थ्ययोगिनि विश्वामित्रे दशरथः तपनकुलहितेन सूर्यवंशयोगक्षेमानुध्यानपरायणेन पुरोहितेन पुरोधसा वसिष्ठेन एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अभिहितः उक्तः अभूत्।

बहुत तरहसे कहने सुनने पर भी जब विश्वामित्रके निश्चयमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं लक्षित हुआ तब सूर्यवंशके हितैषी कुलपुरोहित वसिष्ठ ने दशरथ से इस प्रकार कहा।

प[4]र्याप्तभाग्याय भवानमुष्मै कुर्यात्सपर्यां कुशिकात्मजाय।
निर्यातुधानां वसुधां विधातुं निर्यातु रामः सह लक्ष्मणेन॥ ३४॥

---

१. 'एवंविधमाकर्ण्य' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रकारैरपि' इति पाठान्तरम्।
३. 'अपरिहार्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'पर्याप्तकामाय' इति पाठान्तरम्।

पर्याप्तेति। पर्याप्तम् प्रचुरम् भाग्यम् ब्रह्मवर्चसप्राप्तिरूपं सौभाग्यं यस्य तस्मै अमुष्मै अस्मै कुशिकात्मजाय गाधिनन्दनाय विश्वामित्राय सपर्याम् सत्क्रियाम् तत्प्रार्थितरामप्रेषणरूपवस्तुप्रदानस्वीकृतिलक्षणात् कुर्यात विदध्यात्। भवानिति शेषः। सत्क्रियापद्धतिमाह—निर्यात्विति। वसुधाम् पृथ्वीम् निर्यातुधानाम् राक्षससामान्यशून्याम् विधातुम् कर्तुम् लक्ष्मणेन सह रामः निर्यातु गच्छतु। विश्वामित्रो भवताऽऽदरणीयो रामश्च राक्षसवधाय प्रेषणीय इति भावः। इन्द्रवज्रावृत्तम्, 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' इति च तल्लक्षणम् ॥ ३४ ॥

महाराज, आप पर्याप्त सौभाग्यसम्पन्न महात्मा कुशिकनन्दका सत्कार करें, वसुधाको राक्षसशून्य करनेके निमित्त अपने कुमार रामको लक्ष्मणके साथ जानेकी आज्ञा प्रदान करें ॥ ३४ ॥

एवं वसिष्ठेन प्रतिष्ठापितधृतिर्दशरथः सुतप्रदानेन कुशिकसुतमनोरथमेव पूरयामास।

एवमिति। एवं प्रोदीरितप्रकारेण वसिष्ठेन स्वपुरोहितेन प्रतिष्ठापिता धृतिर्धैर्यं यस्य तादृशः प्रापितधीरभावः दशरथः सुतप्रदानेन लक्ष्मणानुगरामवनगमनस्वीकारात्मकसुतदानेन कुशिकसुतमनोरथम् विश्वामित्रेच्छाम् एव पूरयामास अपूरयत्। पूर्वं विश्वामित्राज्ञापालने सन्दिहानोऽपि वसिष्ठनिष्ठापितधैर्यो दशरथो रामस्य प्रेषणमन्वमंस्त इत्याशयः।

इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा धीरजके बंधाये जाने पर दशरथने अपने पुत्र रामलक्ष्मणके जानेकी अनुमति द्वारा विश्वामित्रकी अभिलाषा पूरी कर दी।

योगेन लभ्यो यः पुंसां संसारापेतचेतसाम्।
नियोगेन पितुः सोऽयं रामः कौशिकमन्वगात् ॥ ३५ ॥

योगेनेति। यः रामः संसारापेतचेतसाम् स्त्रीपुत्रधनादिरूपसंसारात् विरक्तमनसाम् पुंसाम् पुरुषाणाम् योगेन चित्तवृत्तिनिरोधात्मना ध्यानेन लभ्यः प्राप्यः (अर्थात् संसारासारतामवसाय ततो विरक्ताः पुरुषा यं रामं ध्यानविषयीकुर्वन्ति) सः रामः पितुः जनकस्य दशरथस्य नियोगेन आज्ञया कौशिकं विश्वामित्रम् अन्वगात् अनुजगाम। स्वयं परमात्मभूतोऽपि रामः पित्राज्ञापालनं लोककृत्यं कृतवानिति भावः। 'योगः संनहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु' इत्यमरः ॥ ३५ ॥

सांसारिक पदार्थोंकी ममतासे विरक्तहृदय पुरुष जिस रामका ध्यान किया करते हैं वे ही राम पिताकी आज्ञासे कौशिकमुनिके पीछे हो गये ॥ ३५ ॥

तत्र सत्रं परित्रातुं विश्वामित्रो महामुनिः।
सौमित्रिसहितं रामं नयन्नयमवोचत ॥ ३६ ॥

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये महामुनिः विश्वामित्रः सत्रं परित्रातुम् यज्ञं राक्षसोपद्रवेभ्यो रक्षितुम् सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः, तेन सौमित्रिणा सहितम् युक्तं रामम् नयन् तपोवनदिशि गमयन् अवोचत उक्तप्रकारं प्रोक्तवानित्यर्थः ॥३६॥

उस समय यज्ञकी रक्षाके लिये लक्ष्मणसे युक्त रामको अपने साथ तपोवन ले जाते हुए महर्षि विश्वामित्रने कहा ॥ ३६ ॥

बलेन तपसां लब्धे बलेत्यतिबलेति च ।
विद्येते मयि काकुत्स्थ विद्ये ते वितरामि ते ॥ ३७ ॥

बलेनेति । तपसाम् स्वाचरितानुष्ठानविशेषाणाम् बलेन सामर्थ्येन लब्धे प्राप्ते 'बला' इति 'अतिबला' इति च विद्ये मन्त्रात्मिके शक्ती मयि विश्वामित्रे विद्येते वर्त्तेते, ते बलातिबाले विद्ये (कर्मणी) ते तुभ्यं रामाय वितरामि ददामि । बलातिबलानामिके द्वे विद्ये मया तपस्तप्त्वा प्राप्ते ते तुभ्यं ददामीत्यर्थः। बलातिबलाविषये ब्रह्मयामलेऽभिहितम्—'उत्साहबलयोर्वृद्धिः परशस्त्रसहिष्णुता। न बाधा क्षुत्पिपासाभ्यां यतः सा कथिता बला' । 'यतः परस्य स्खालित्यं ह्वन्मनःकायकर्मणाम्। स्वोपाये च ह्यमोघत्वं भवेत्साऽतिबला मता। इदं विद्याद्वयं ज्ञातमात्रं सिद्धिकरं नृणाम्। विष्णुरेतद्‌द्वयं स्मृत्वा जितवान्मधुकैटभौ' ॥ ३७ ॥

हे ककुत्स्थवंशज राम, मैंने तपस्याके बलसे बला तथा अतिबला नामकी दो विद्यायें प्राप्त की हैं जो तुमको दे रहा हूँ ॥ ३७ ॥

ततो [1]गृहीतविद्यस्य दाशरथेः [2]प्रदेशमेकं प्रदर्श्य भगवानित्थमकथयत् ।

तत इति । ततः बलातिबलानामकविद्याद्वयप्रदानानन्तरम् , गृहीतविद्यस्य प्राप्तबलातिबलाख्यविद्याप्रभेदयुगलस्य दाशरथेः रामस्य प्रदेशमेकम् भूविभागमेकम् प्रदर्श्य अङ्गुल्या निर्दिश्य भगवान् विश्वामित्रः इत्थम् प्रोक्तप्रकारेण अकथयत् उक्तवान् ।

इस प्रकार बलातिबला नामक विद्यायें प्राप्तकर लेनेके बाद रामको एक प्रदेशविशेष दिखलाकर महर्षि विश्वामित्रने इस भांति कहा ।

अस्मिन्पुरा पुरभिदः परमेश्वरस्य
[3]भालान्तरालनयनज्वलने मनोभूः ।
सद्यः प्रपद्य शलभत्वममुञ्चदङ्गं
तस्मादमुं जनपदं विदुरङ्गसंज्ञम् ॥ ३८ ॥

---

१. 'परिगृहीत', 'प्रतिग्रहीत' इति च पाठान्तरम् । २. 'एकं प्रदेशम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'फालान्तराल' इति पाठान्तरम् ।

अस्मिन्निति। पुरा पूर्वस्मिन् समये अस्मिन् भवता दृश्यमाने प्रदेशे मनोभूः कन्दर्पः पुरभिदः त्रिपुरान्तकस्य परमेश्वरस्य शिवस्य भालान्तरालम् ललाटफलकम् तत्र यन्नयनम् तृतीयमक्षि, तत्र ज्वलने तदात्मकेऽग्नौ शलभत्वम् पतङ्गभावम् अपद्य प्राप्य सद्यः तत्क्षण एव अङ्गम् शरीरम् अमुञ्चत् त्यक्तवान्, तस्मात् कन्दर्पकृताङ्गत्यागसम्बन्धादमुं जनपदम् देशम् अङ्गसंज्ञं तदाख्यं विदुः जानन्ति। पुराकाले कामोऽत्र प्रदेश एव महादेवेन स्वतृतीयनेत्राहुतीकृतोऽतोऽमुं जनपदमङ्गनाम्ना व्यवहरन्ति लोका इत्यर्थः। 'नीवृज्जनपदौ देशविषयौ तूपवर्त्तनम्' इत्यमरः। 'समौ पतङ्गशलभौ' इति च॥ ३८॥

इसी प्रदेशमें प्राचीन कालमें भगवान् शङ्करने अपने तृतीय नेत्र की अग्निज्वालामें कामदेवको जलाकर खाककर दिया था, इसलिए इस देशका नाम अङ्ग हो गया॥ ३८॥

तदनु मानससरःप्रसृतां सरयूमतिक्रम्य वृत्रवधप्रवृद्धवृद्धश्रवःपङ्कक्षालनलब्धमलयोर्मलदकरूशनाम्नोर्[1]जनपदयोः सीम्नि कृतपदयोर्दाशरथ्योः पुनरप्येवमब्रवीत्।

तदन्विति। तदनु अङ्गदेशातिक्रमणानन्तरम् मानससरःप्रसृताम् मानसाख्यसरोवरात् प्रकटीभूताम् सरयूम् तदाख्यां नदीम् अतिक्रम्य उत्तीर्य वृत्रवधेन वृत्रासुरहत्यया प्रवृद्धः वृद्धिंगतः वृद्धश्रवसः इन्द्रस्य पङ्कः पाप्मा तस्य क्षालनेन प्रक्षालनेन लब्धमलयोः प्राप्तमालिन्ययोः मलदकरूशनाम्नोः तदाख्यया प्रसिद्धयोः जनपदयोः देशयोः सीम्नि अवधौ कृतपदयोः स्थापितचरणयोः समायातयोरित्यर्थः दाशरथ्योः दशरथ-पुत्रयोः रामलक्ष्मणयोः (भावे सप्तमी) पुनरपि एवम् अब्रवीत् उक्तवान्। अङ्गमतिक्रम्य सरयूमुत्तीर्य च रामलक्ष्मणौ यदा वृत्रासुरवधकलङ्कधावनेनेवेन्द्रकृतेन मलिनतामानीतयोर्मलदकरूशनामकदेशयोः सीमानमायातौ तदा विश्वामित्रस्तौ वक्ष्यमाणप्रकारेण जगादेत्यर्थः। 'पङ्कोऽस्त्री कर्दमैनसोः' इति निघण्टुः।

अनन्तर मानससरोवरसे निकली सरयू नदीको पार कर वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न इन्द्रके पापके प्रक्षालन स्थान होनेके कारण मलिन मलदक-रूशक देशकी सीमा पर आये हुए राम लक्ष्मणको विश्वामित्रने फिर कहा।

यक्षः सुकेतुर्द्रुहिणप्रसादाल्लेभे सुतां कामपि ताटकाख्याम्।
सुन्दः किलैनां परिणीय तस्यां मारीचनीचं जनयांबभूव॥ ३९॥

यक्ष इति। सुकेतुः तदाख्यः यक्षः देवयोनिविशेषः द्रुहिणप्रसादात् तपस्यासमाराधितब्रह्मलब्धवरप्रभावात् कामपि ताटकाख्याम् ताटकासंज्ञिकाम् सुताम् पुत्रीं लेभे प्राप्तवान्, एनाम् सुकेतुसुताम् ताटकाम् परिणीय विवाहविधिना परिगृह्य

1. 'लब्धमलदकरूशकनाम्नोः' इति पाठान्तरम्।

सुन्दः तदाख्यो दैत्यभेदः मारीचनीचं क्षुद्रवृत्तिकं मारीचं नाम पुत्रं तस्याम् ताटकायाम् जनयांबभूव उत्पादितवान्। सुकेतुर्नाम यक्षो ब्रह्मवरेण ताटकां नाम कन्यामाप, सा सुन्देन विवाहिता, तस्याश्च पुत्रो नीचो मारीचोऽजनि, नीच त्वं च तस्य यज्ञद्रोहपरायणत्वादुक्तम्। 'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः' इत्यमरः॥

सुकेतु नामक यक्षने ब्रह्माके प्रसादसे ताटका नामकी कन्या पाई थी, सुन्दसे उसका विवाह हुआ और उसीके गर्भ से नीच मारीच उत्पन्न हुआ है॥ ३९॥

[1]एकदा सुन्दे [2]निहते मारीचः [3]कुम्भसंभवनभिभूय तस्य शापादवाप कौणपताम्। ताटका[4]प्यभूत्पुरुषादिनी।

एकदेति। एकदा एकस्मिन् समये सुन्दे तदाख्ये ताटकापतौ मारीचपितरि च (अगस्त्येन) हते मारिते सति कुम्भसम्भवम् अगस्त्यम् अभिभूय आक्रमणेनानादृत्य (मारीचः) तच्छापात् अगस्त्यमुनिप्रदत्तशापात् कौणपताम् राक्षसताम् अवाप प्राप्तवान् ताटका तन्माताऽपि पुरुषादिनी नरमांसाशिनी राक्षसी अभूत्। समानापराधिनोर्द्वयोरपि समानदण्डार्हत्वादिति भावः। तथा चोक्तं रामायणे— 'अगस्त्यः परमक्रुद्धस्ताटकामभिशप्तवान्। पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना॥ इदं रूपं विहाय त्वं दारुणं रूपमाप्नुहि'।

सुन्दके अगस्त्य द्वारा मारे जाने पर मारीचने आक्रमण द्वारा अगस्त्यमुनिका अपमान किया और उनके शापसे राक्षसत्वको प्राप्त हुआ, उन्हींके शापसे ताटका नरमांसभक्षी राक्षसी हो गई।

सेयम[5]ब्जासनसिद्धसिन्धुरसहस्रप्राणा[6]त्मजेन सह जनपदविपदं विदधाना व्यापादनीया त्वयेति।

सेयमिति। सा इयम् ताटका अब्जासनस्य ब्रह्मणः वरात् सिद्धाः सिन्धुरसहस्रस्य सहस्रसंख्यकगजानां प्राणाः बलम् यस्याः सा तादृशी, ब्रह्मदत्तवरप्रभावात्सहस्रहस्तिबलसमानबलेति भावः। आत्मजेन पुत्रेण मारीचेन सह जनपदविपदम् स्वावासदेशोपद्रवम् विदधाना कुर्वती त्वया रामचन्द्रेण व्यापादनीया मारणीया। इत्येवमब्रवीदिति पूर्वोक्तेनान्वयः। 'सिन्धुरः सामजः कुम्भी' इति गजपर्यायेष्वमरः।

ब्रह्माके वरदानसे प्राप्त किया है हजार हाथियों का बल जिसने ऐसी वह ताटका अपने पुत्र मारीचके साथ इस देशमें उपद्रव करती है, आप उसका वध करें।

---

१. 'एकदा तु सुन्दे' इति पाठान्तरम्। २. 'विनिहते' इति पाठान्तरम्।
३. 'कुम्भसम्भवमुनिमभिभूय' इति पा०। ४. 'चाभूत्', 'अप्यासीत्' इति च पा०।
५. 'आजन्मसिद्ध' इति पाठान्तरम्। ६. 'प्राणा जनपदम्' इति पाठान्तरम्।

[1]रामस्तमाकर्ण्य स्त्रीवधशङ्कामकरोत् ।

राम इति । रामः तम् विश्वामित्रकथितं ताटकवृत्तान्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा स्त्रीवधशङ्काम् स्त्रीत्वात् ताटकायाः मारणे विचिकित्साम् अकरोत् कृतवान्, स्त्रीत्वादियमवध्येति मनसि भावयामासेत्यर्थः ।

विश्वामित्र कथित ताटका वृत्तान्त सुननेके बाद रामके हृदयमें यह द्विविधा उत्पन्न होने लगी कि यह स्त्रीजाति है, इसे मारे या नहीं ?

किञ्च, वैरोचनीं मन्थरां वसुन्धरापराधधुरन्धरां पुरन्दरेण निहतां जनार्दनकृत[2]मर्दनां च भार्गवजननीं प्रदर्श्य दाशरथेरमन्दां सुन्दवधूवधविचिकित्सामु[3]त्सारयामास ।

किञ्चेति । वसुन्धरायाः समग्राया भुवः अपराधे उपद्रवाचरणे धुरन्धराम् अग्रगण्याम् प्रमुखभागग्राहिणीम् वैरोचनीम् विरोचनाख्यस्य रक्षसः पुत्रीम्, मन्थरां नाम मन्थरेति नाम्ना प्रसिद्धाम् पुरन्दरेण इन्द्रेण निहताम् मारिताम्, जनार्दनेन विष्णोरवतारभूतेन परशुरामसंज्ञयाख्यातेन कृतम् मर्दनम् शिरश्छेदनं यस्यास्तां तथोक्ताम् भार्गवजननीम् रेणुकानाम्नीम् च प्रदर्श्य दृष्टान्तविधया निवेद्य (मुनिः) दाशरथेः रामस्य अमन्दाम् महतीम् सुन्दवधूवधविचिकित्साम् ताटकामारणविषयकं द्वैविध्यम् उत्सारयामास निरास्थत् । पुरा किलेन्द्रो जगदुपद्रवपरायणाया विरोचनाख्यराक्षसात्मजाया मन्थराया वधं कृतवान् परशुरामोऽपि पितुरादेशेन रेणुकायाः शिरोऽच्छैत्सीत्तदलं स्त्रीत्वेनास्या वधे विचिकित्सया, आततायिवधस्य शास्त्रानुमोदितत्वादित्थं विश्वामित्रो रामस्य द्वैविध्यमपासितवानिति तात्पर्यम् । वसूनि धारयतीति वसुन्धरा, 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' इति खच् । 'अरुर्द्विषदजन्तस्य' इति मुम् । पुरं दारयतीति पुरन्दरः, 'पूःसर्वयोर्दारिसहोः' इति खच् । 'खचि ह्रस्वः' इति ह्रस्वः । 'वाचं यमपुरन्दरौ च' इति निपातनान्मुमागमः । 'विचिकित्सा तु संशयः' इत्यमरः ।

भूमण्डलको अपने अपराधोंसे तंग करनेवाली विरोचन नामक राक्षसकी कन्या मन्थराको इन्द्रने मारा, रेणुकाको परशुराम अवतार ने तलवारकी घाट उतारा, इस प्रकार दृष्टान्त देकर विश्वामित्रने रामके हृदयसे स्त्रीवधशङ्काको दूर कर दिया ।

आश्रुतः श्रुतवृत्तेन तेन सुन्दप्रियावधः ।
तमेवान्ववदत्तस्य चापः शिञ्जारवच्छलात् ॥ ४० ॥

---

१. 'वाक्यं चैतत्' क्वचिन्न दृश्यते । २. 'कृतार्दनाम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'उत्सादयामास' इति पाठान्तरम् ।

आश्रुत इति। श्रुतवृत्तेन प्रख्यातचरित्रेण तेन रामेण सुन्दप्रियावधः ताटकाया मारणम् आश्रुतः प्रतिज्ञातः, विश्वामित्रोक्तिश्रवणात् स्त्रीवधशङ्कां परित्यज्य हनिष्यामि ताटकामिति प्रतिज्ञातवान् राम इत्यर्थः। तस्य रामस्य चापः धनुः शिञ्जारवच्छलात् चापगुणध्वनिमिषात् तम् ताटकावधम् एव अन्ववदत् आवर्त्तयत्। ताटकावधं प्रतिज्ञातवतो रामस्य चापः स्वगुणशब्दच्छलेन रामविहितं ताटकवधमन्ववादीत्, चापशब्देन ताटकावध इत्युक्त्वाऽचिरेण ताटका हतेत्यर्थो व्यञ्जितः। 'ऊरीकृतमुररीकृतमङ्गीकृतमाश्रुतं प्रतिज्ञातम्' इत्यमरः॥ ४०॥

अनन्तर रामने ताटकाको मारनेकी प्रतिज्ञा की और उनके चापने भी अपनी प्रत्यञ्चाके टंकारसे उसी अर्थको दुहराया॥ ४०॥

तत्काले पिशिताशनाशपिशुना संध्येव काचिन्मुने-
रध्वानं तरसा रुरोध रुधिरक्षोदारुणा दारुणा।
स्वाधीने हनने पुरीं विदधती मृत्योः स्वकृत्यात्यय-[1]
क्रीडत्किंकरसंघसंकटमहाशृङ्गाटकां ताटका॥ ४१॥

तत्काल इति। तत्काले रामशिञ्जारवसमये मृत्योः यमराजस्य पुरीम् नगरीम् स्वेषाम् यमराजकिङ्कराणाम् कृत्यम् प्राणिमारणव्यापारस्तत्र अत्ययः व्युत्क्रमः अन्यकर्त्तव्यस्यान्येनानुष्ठानरूपः विपर्यासः तेन क्रीडन् यथारुचि खेलन् यः किङ्करसङ्घः यमराजभृत्यनिवहस्तेन सङ्कटं सङ्कुलम् महत् विशालं शृङ्गाटकं चतुष्पथं यस्यां सा तां तथोक्ताम् विदधती कुर्वाणा, स्वाधीने स्वसाध्ये हनने जीवमारणे दारुणा भयङ्करी रुधिरक्षोदारुणा रक्तपङ्कचर्चिता पिशिताशनाशपिशुना राक्षसवधसूचिका सन्ध्या सायङ्काल इव काचित् ताटका तरसा वेगेन मुनेः विश्वामित्रस्य अध्वानं पन्थानं रुरोध अवरुध्य स्थिता। ताटकायाः सन्ध्योपमेयत्वं द्विशेषणद्वयसाम्यात्, तत्रैकं विशेषणं पिशिताशनाशपिशुनेति, तस्य स्ववधप्राथम्येन राक्षसवधसूचिका ताटका, सन्ध्यापि पिशिताशनानां रक्षसामाशस्य भोजनस्य पिशुना सूचिका, तत्कालप्राप्तत्वात्तस्य व्यापारस्य, द्वितीयं विशेषणं च रुधिरक्षोदारुणेति तच्च सन्ध्याया रक्ताभतया सुयोजम्। यमराजभृत्यकार्यं प्राणिमारणं स्वयमाचरन्ती ताटका तेभ्यः क्रीडितुमवकाशं प्रदायेव यमपुरीशृङ्गाटकं यमदूतसङ्कुलं कृतवतीवेत्युत्प्रेक्षागर्भं विदधतीत्यन्तं वाक्यं बोध्यम्। 'कर्णेजपः सूचकः स्यात् पिशुनो दुर्जनः खलः' 'रुधिरं कुङ्कुमासृजोः' 'क्षोदो रजसि पेषणे' 'दारुणं भीषणं घोरं भीष्मं भीमं भयानकम्' 'शृङ्गाटकचतुष्पथे' 'तरसी बलरंहसी' इति सर्वत्र कोशचयः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्॥ ४१॥

[1] 'स्वकृत्यात्ययात्' इति पाठान्तरम्।

राम द्वारा चालित धनुषके शब्दायमान होते ही राक्षसोंके नाशकी सूचिका तथा रुधिरपङ्कलिप्तदेहा सन्ध्याकी तरह ताटका—विश्वामित्रके मार्गको रोककर खड़ी हो गई, उसने अपने प्राणिवधव्यापारमें स्वतन्त्रता अपना कर दारुणता प्राप्त कर ली थी और प्राणियोंके मारने का भार अपने ऊपर लेकर यमराजके भृत्योंको छुट्टीसी दिलवा दी थी, जिससे यमराजके भृत्यगण खेलकूद मचा रहे थे और यमपुरीकी चौकमें चहलपहल सी मच रही थी ॥ ४१ ॥

अथ[1] दाशरथेः कर्णमविशत्ताटकागुणः ।
तथा[2] धनुर्गुणस्तूर्णं[3] प्राविशत्तज्जिघांसया ॥ ४२ ॥

अथेति । अथ ताटकागुणः ताटकायां वर्त्तमानः शौर्यक्रौर्यादिः दाशरथेः रामस्य कर्णम् श्रुतिविवरम् अविशत् प्रविष्टः, रामस्तदीयान् गुणान् मुनिभ्यः श्रुतवानित्यर्थः, तथा तत्कालमेव गुणः धनुषः प्रत्यञ्चा तज्जिघांसया ताटकावधकाम्यया तूर्णं शीघ्रम् धनुः रामचापं प्राविशत् रामचापो धृतमौर्वीको जात इत्यर्थः । यदैव रामस्ताटकागुणानाकर्णयामास तदैव ताटकावधेच्छया धनुषि प्रत्यञ्चां प्रातिष्ठिपदित्याशयः । गुणपदं शब्दार्थकं कल्पयित्वा प्राचीनकृतं व्याख्यानं तु न हृदयग्राहीति मयोपेक्षितम् ॥ ४२ ॥

रामके कानों तक नाटकाके कारनामे पहुँचे और शीघ्र उन्होंने नाटकाके वध की इच्छासे अपने धनुष पर डोरी चढ़ा दी ॥ ४२ ॥

ततो भाविनि संग्रामे बद्धश्रद्धस्य ताटका ।
स्वप्राणान्[4] रामबाणस्य वीरपाणमकल्पयत्[5] ॥ ४३ ॥

तत इति । ततः युद्धे प्रवर्त्तमाने ताटका भाविनि अग्रे वर्त्स्यमाने संग्रामे राक्षसैः समं युद्धे बद्धश्रद्धस्य बद्धादरस्य सन्नद्धस्येत्यर्थः, रामबाणस्य स्वप्राणान् स्वासून् वीरपाणम् वीरकर्त्तृकं युद्धावसारे क्रियमाणं पानम् मदसेवनम् अकल्पयत् कृतवती। वीराः स्वोत्साहवृद्धये रणारम्भे मद्यमुपयुञ्जत इति सम्प्रदायः, रामबाणोऽपि युद्धाय सन्नद्धेव ताटकाप्राणान् वीरपाणमिवाचचाम, वीराः कृतयाना यथा दुर्वारवीर्या जायन्ते तथा ताटकां हतवतो रामस्योत्साहोऽवर्धतेति भावः । 'वीराणां पानम् वीरपाणम्, 'वाभावकरणयोः' इति णत्वम् ॥ ४३ ॥

अनन्तर भावी संग्रामके बद्धकक्ष रामके लिये ताटकाने अपने प्राणोंको वीरपानके रूपमें उपहृत कर दिया अर्थात् वीर लोग जैसे युद्धोत्साहार्थं मद्यपान करते हैं उसी तरह रामने ताटकाके प्राणोंको कवलित कर लिया जो उनके उत्साहका वर्धक हुआ ॥ ४३ ॥

---

१. 'यथा' इति पाठान्तरम् । २. 'यथा' इति पाठान्तरम् ।
३. 'तूर्णमविशत्' इति पाठान्तरम् । ४. 'स्वप्राणैः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'वीरपानम्' इति पाठान्तरम् ।

[1]मुनिर्भृशाश्वोपज्ञानि ताटकामाथिने ददौ ।
अस्त्राणि जृम्भकादीनि जृम्भशासनशासनात् ॥ ४४ ॥

मुनिरिति । मुनिः विश्वामित्रः जम्भशासनशासनात् जम्भशासनः जम्भारिरिन्द्रस्तस्य शासनम् आदेशस्तस्मात् भृशाश्वोपज्ञानि भृशाश्वेन प्रथमं प्रकटीकृतानि जृम्भकादीनि ददौ समर्पितवान् । भृशाश्वः कृशाश्वो वेति मुनिनाम, तस्योपज्ञा आद्यं ज्ञानं यस्य तादृशानि भृशाश्वोपज्ञानि, 'उपज्ञोपक्रमे तदाद्याचिख्यासायाम्' इति क्लीवता । 'उपज्ञोपक्रमान्ताश्च तदादित्वप्रकाशनम्' इत्यमरः । 'ताटकामाथिने' इत्यत्र ताटकां मथ्नातीति विग्रहे मथ्नातेर्णिनिः । उक्तोऽयमेवार्थः प्रकारान्तरेण भवभूतिनाऽपि—'कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात् कौशिकंगताः । अथ तत्संप्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति' ॥ ४४ ॥

विश्वामित्रने भृशाश्व द्वारा पहले पहल आविष्कृत जृम्भकादि अस्त्र इन्द्रके आदेश से ताटकाघाती रामको समर्पित किये ॥ ४४ ॥

तत्र कञ्चन विरिञ्चिलोकप्रत्यादेशं [2]प्रदेशं प्रदर्शयन्नवोचत ।

तत्रेति । तत्र तपोवने कञ्चन अवर्णनीयम् विरञ्चिलोकस्य ब्रह्मलोकस्य प्रत्यादेशम् तिरस्काररूपम् ब्रह्मलोकतिरस्कारकर्त्तरि तिरस्कारस्वरूपतारोपोऽतिशयद्योतनाय, यथा—कादम्बर्यां 'प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्' इति । विरिञ्चिलोकप्रत्यादेशम् इत्यस्य ब्रह्मलोकातिशायिनमिति पर्यवसितोऽर्थः । प्रदेशम् स्थानविशेषम् प्रदर्शयन् अङ्गुल्या दर्शयन् अवोचत उक्तवान् । वक्ष्यमाणवाक्यं कर्म बोध्यम् ।

वहाँ पर एक ऐसा प्रदेश दिखलाते हुए-जिसके सामने ब्रह्मलोक भी तुच्छ है-विश्वामित्र मुनिने रामजीसे इस प्रकार कहा ।

प्रतिदिनमवदातैर्ब्रह्मभिर्ब्रह्मनिष्ठैः
प्रशमितभवखेदैः सादरं [3]सेव्यमाने ।
बलिनियमनहेतोर्वामनः काननेऽस्मिन्
बलिनियमपरः सन् ब्रह्मचारी चचार ॥ ४५ ॥

प्रतिदिनमिति । अवदातैः स्वच्छान्तःकरणैः विषयवैमुख्येन निर्मलमनोभिरित्यर्थः, अत एव ब्रह्मनिष्ठैः ब्रह्मपरायणैः प्रशमितभवखेदैः अपास्तसांसारिकक्लेशैः ब्रह्मभिः ब्रह्मर्षिभिः सादरं सेव्यमाने स्नेहपूर्वकम् अध्युषिते अस्मिन् भवता पुरोऽवलोक्यमाने कानने वनोद्देशे ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतपरायणः वामनः वामनरूपेणावतीर्णो

१. 'कृशाश्वो' इति पाठान्तरम् । २. 'प्रदेशमेकं प्रदर्श्यावोचदुपचीयमानपरमहर्षो महर्षिः' इति पाठान्तरम् । ३. 'सेव्यमानः' इति पाठान्तरम् ।

भगवान् विष्णुः बलिनियमनहेतोः विरोचनात्मजस्य बलेर्नियमनाय बन्धनाय हेतवे बलिः इष्टदेवतोपहारः, नियमाः शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि, तत्परस्तदासक्तः सन् चचार। अत्रैव प्रदेशे वामनोऽवात्सीत्, यत्र निर्मलस्वान्ताः शान्तसंसारबन्धना ब्रह्मनिष्ठाश्च ब्रह्मर्षयः सततमासते, अत्र स्थितेन च वामनेन बलिनो राक्षसविशेषस्य निग्रहाय बलयोऽदीयन्त स्वेष्टदेवताभ्यो नियमाश्चापाल्यन्त शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानात्मका इत्याशयः। 'बलिः पूजोपहारे[1] च करे दैत्यान्तरेऽपि च' इति नानार्थरत्नमाला। मालिनीवृत्तम्, 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति च तस्य वृत्तस्य लक्षणं बोध्यम् ॥ ४५ ॥

निर्मलान्तःकरण, संसारबन्धनसे मुक्त एवं ब्रह्मपरायण ऋषियों द्वारा सादर प्रतिदिन सेवित इस पवित्र काननप्रदेश में बलिको निगृहीत करनेके निमित्त ब्रह्मचारिवेषको धारण करके देवतोपहार तथा अन्यान्य शौचादि नियमोंमें आसक्त भगवान् विष्णुने वास किया था ॥ ४५ ॥

अपहृतविबुधार्तेर्वामनस्याजमूर्ते-[1][2]
रखिलभुवनभिक्षोराश्रमानोकहानाम्।
ततिरियमतिनीला व्याप्तदिग्व्योमसीमा
स्वयमपि परिमातुं लोकमभ्युद्यतेव ॥ ४६ ॥

अपहृतेति। अपहृता दूरीकृता विबुधानां देवानामार्त्तिः कष्टं येन तस्य अपहृतदेवजनपीडस्य अखिलभुवनभिक्षोः पादत्रयमितभूयाचनाव्याजेन समस्तसंसारयाचकस्य, अजमूर्त्तेः विष्णोरंशभूतस्य वामनस्य, आश्रमानोकहानाम् आश्रमवृक्षाणाम् अतिनीला अतिश्यामला व्याप्तदिग्व्योमसीमा परिच्छिन्नदिगाकाशावधिभागा ततिः पङ्क्तिः स्वयम् अपि लोकम् संसारम् परिमातुम् परिच्छेत्तुम् अभ्युद्यता तत्परा इव। यथा देवकष्टहरस्य वामनस्य आश्रमवृक्षाः भुवं परिच्छेत्तुमिवारभन्त, यथा भगवान् वामनः पादत्रयेण भुवं पर्यमिमीत, भगवत्साहचर्यवशादिव वृक्षाणां भूपरिच्छेदकत्वमुत्प्रेक्षितम्। 'अनोकहः कुटः सालः' 'सीमसीमे स्त्रियामुभे' इत्यमरः। पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ ४६ ॥

देवताओंके कष्टको दूर करने वाले, त्रिभुवनभिक्षुक विष्णुमूर्त्ति वामनके आश्रमवृक्षोंकी अतिश्यामल तथा दिग्दिगन्त तक फैली हुई पांत मानों स्वयं पृथ्वीका परिमाण करने पर अभ्युद्यत हो रही थी, इन वृक्षोंकी उचाई और विस्तारको देखकर ऐसा लगता है मानो ये वृक्ष भगवान् की प्रेरणासे तीनों लोकका परिमाण कर रहे हों ॥ ४६ ॥

---

१. क्वचिद् 'अपि च' इत्यधिकोऽवलोक्यते।
२. 'वामनव्याजमूर्तेः' इति पाठान्तरम्।

इति विविधरसाभिः कौशिकव्याहृताभिः
श्रुतिपथमधुराभिः पावनीभिः कथाभिः ।
गलितगहनकृच्छ्रं गच्छतोर्दाशरथ्योः
समकुचदिव सद्यस्तादृशं मार्गदैर्घ्यम् ॥ ४७ ॥

इतीति । इति प्रोक्तप्रकारेण विविधरसाभिः नानाविधास्वादप्रदाभिः श्रुतिपथमधुराभिः कर्णप्रियाभिः पावनीभिः पवित्रासम्पादनसमर्थाभिः कौशिकव्याहृताभिः विश्वामित्रेणोदीरिताभिः कथाभिः उपाख्यानात्मकवार्त्ताभिः गलितगहनकृच्छ्रं प्रशमितवनकष्टं यथा स्यात्तथा गच्छतोः यात्रां कुर्वतोः दाशरथ्योः रामलक्ष्मणयोः तादृशम् तथाविधम् अनुभवैकवेद्यव्यथम् मार्गदैर्घ्यम् मार्गस्य विशालत्वम् सद्यः सपदि समकुचत् इव क्षीणमिवाभूत् । यद्यप्यायामशालीमार्गो विपिनसम्भाव्यविविधकष्टसङ्कुलश्च सस्तथापि विश्वामित्रोक्तनानारसपूर्णविविधकथाश्रवणविनोद्यमानमानसौ रामलक्ष्मणौ सुखेनेव तद्वर्त्म तीर्णवन्तौ, मन्ये कथारसमहिम्ना तन्मार्गगतमायामित्वं सङ्कोचमिवासादयदित्याशयः । 'स्यात् कष्टं कृच्छ्रमाभीलम्' इत्यमरः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार नानारसपूर्ण, कानोंको प्रिय लगनेवाली, पवित्र कथायें, जो विश्वामित्रके द्वारा कही जाती थीं, सुनते हुए राम और लक्ष्मण वनयात्राके कष्टको भूलकर चलते आये, मानो उस कथाकी सरसताने उनके मार्गके विस्तारको सङ्कुचित बना दिया हो ॥४७॥

ततः सिद्धाश्रमं प्रविश्य विश्वामित्रः सत्रमारभत ।

तत इति । ततः तदीययात्रापूर्त्तिपूर्वकतपोवनप्राप्तौ विश्वामित्रः कौशिकः सिद्धाश्रमं तन्नाम्ना व्यवहृतं तपोवनस्यैकमवयवं प्रविश्य आगत्य सत्रम् यज्ञम् आरभत क्रतुदीक्षितोऽभूदित्यर्थः ।

अनन्तर विश्वामित्रने सिद्धाश्रममें प्रवेश करके यज्ञ प्रारम्भ कर दिया ।

तदनन्तरमन्तरिक्षान्तरालादापतन्तमन्तकानीकभयानकं[1] तं पलाशगणमवलोक्य पलायमानाः करगलितसमित्कुशाः[2] कुशिकनन्दनान्तेवासिनः ससम्भ्रममभिलषिताहवाय राघवाय न्यवेदयन् ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् यज्ञप्रारम्भात्परतः अन्तरिक्षान्तरालात् आकाशमध्यदेशात् आपतन्तम् सम्मुखमागच्छन्तम् अन्तकानीकभयानकम् यमसेनाभयङ्करम् तं ख्यातम् पलाशगणम् राक्षससमूहम् अवलोक्य दृष्ट्वा पलायमानाः इतस्ततो धावन्तः करगलितसमित्कुशाः हस्तस्रस्तकाष्ठदर्भाः कुशिकनन्दनान्तेवासिनः

१. 'भयानकं पलाश' इति पा० । २. 'करतलगलितपलाशसमित्' इति पाठान्तरम् ।

विश्वामित्रशिष्याः ससम्भ्रमम् सोद्वेगम् अभिलषिताहवाय युद्धकामुकाय राघवाय रामाय न्यवेदयन्, राक्षसानाम् आकाशे स्थितिमकथयन्नित्यर्थः। विश्वामित्रः सत्रमारभत, तच्छिष्यास्तानि तानि सवनान्यारभन्त, एतन्मध्य एवाकाशाद्राक्षसाः सम्मुखमागच्छन्तो निरैक्षिषत, तद्भयेन च तेषां याज्ञिकानां हस्तेभ्यः समिधः कुशाश्चास्रंसन्त, कान्दिशीकतांगताश्च ते युद्धसन्नद्धाय रामाय स्थितिं कथयामासुरित्याशयः।

अनन्तर आकाशके मध्यसे आते हुए यमराजके सैन्यके समान भयङ्कर राक्षसों को देखकर विश्वामित्रके शिष्योंके हाथोंसे समिध तथा कुश गिर गये, वे इधर उधर भागने लगे और घबड़ाहटके साथ युद्धके लिये सन्नद्ध रामके पास आकर उन्होंने सारी स्थिति कही।

हृत्वाद्रेः शिखराणि तानि परितः क्षिप्त्वा हसित्वा क्रुधा
कृत्वा हस्तविघट्टनं तत इतः स्थित्वा नटित्वा मुहुः।
सिक्त्वा क्ष्मामसृजा स्रजान्त्रकृतया बद्ध्वा कचान्खेचरान्
दग्ध्वाग्नेः सदृशा दृशा निशिचरा रुन्धन्ति रन्ध्रं दिवः॥ ४८॥

हृत्वेति। अद्रेः पर्वतस्य शिखराणि शृङ्गाणि हृत्वा आनीय (तानि शिखराणि च) परितः समन्ततः क्षिप्त्वा विकीर्य, हसित्वा उच्चैर्हासं कृत्वा, क्रुधा कोपेन हस्तविघट्टनम् करतलास्फालनं कृत्वा, तत इतः क्वचनापि अनिश्चिते देशे स्थित्वा अवस्थाय, मुहुः भूयोभूयः नटित्वा नृत्यं सम्पाद्य, क्ष्माम् पृथिवीम् असृजा रुधिरेण सिक्त्वा, अन्त्रकृतया अन्त्रनिर्मितया स्रजा मालया कचान् शिरोरुहान् बद्ध्वा संयम्य, अग्नेः सदृशया पावकतुल्यया रक्तया दृशा खेचरान् आकाशचारिणश्चारणादीन् दग्ध्वा ज्वलयित्वा निशिचराः राक्षसाः दिवः आकाशस्य रन्ध्रम् अन्तरालम् रुन्धन्ति आवृण्वन्ति। अतिभयानकचेष्टा ह्येते राक्षसा यतोऽमी पर्वतशृङ्गाणि क्षिपन्ति भयानकं नृत्यन्ति हसन्ति च, रक्तदृशश्चेमा इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, तल्लक्षणमन्यत्रोक्तम्॥ ४८॥

पहाड़ोंके शिखर लाकर इधर उधर बिखेरकर, हंसते हुए क्रोधसे हाथपर हाथ पटककर यहाँ वहाँ घूम कर और नाचकर, पृथ्वीको रक्तसे सींचकर, आंतोंकी बनी मालासे अपने बालोंको बांध कर, आगकी तरह दहकती हुई अपनी दृष्टिसे खेचरोंको दग्ध करके राक्षस आकाशको व्याप्त कर रहे हैं॥ ४८॥

तत्र,

तत्रेति। तस्मिन् समये यदा रामो विश्वामित्रशिष्यैरुपर्युक्तप्रकारेणोक्तस्तदेत्यर्थः।

उस समय (जिस समय विश्वामित्रके शिष्योंने रामको कहा)।

संक्रान्तवर्णान्तरगाधिसूनोः सम्पर्कपुण्यादिव [1]रामभद्रः।
क्षात्त्रक्रमात्पिप्पलदण्डयोग्यः पलाशदण्डाहृतपाणिरासीत् ॥ ४९ ॥

सङ्क्रान्तेति। क्षात्रक्रमात् क्षत्रियोचिताचारात् पिप्पलदण्डयोग्यः पिप्पलवृक्षशाखानिर्मेयदण्डधारणाधिकृतः अपि रामभद्रः रामचन्द्रः सङ्क्रान्तम् प्राप्तम् वर्णान्तरम् क्षत्रियत्वं विहाय ब्राह्मणत्वं येन तादृशस्य गाधिसूनोः विश्वामित्रस्य सम्पर्कपुण्यात् संसर्गकृतधर्मातिशयवशात् इव पलाशदण्डाहृतपाणिः पालाशदण्डग्रहणोत्सुककरः राक्षसनियमनसज्जबाहुश्च आसीत् अजायत। रामस्य 'पलाशदण्डाहृतपाणि'रिति विशेषणं तस्य राक्षसनिग्रहप्रवृत्तत्वमेव मुख्योऽर्थः, पलाशतरुशाखानिर्मितदण्डयुक्तकरत्वं द्वितीयोऽर्थस्तत्र क्षत्रियस्य रामस्य स्वधर्मप्रतीपाचरणे कथं प्रवृत्तिरित्यत्र वर्णान्तरसङ्क्रमणसमर्थमहर्षिविश्वामित्रसम्पर्कसम्भूतपुण्यातिशयस्य हेतुत्वमुत्प्रेक्षितमत्र पद्ये बोध्यम्। विश्वामित्रो वर्णान्तरं प्रापायं च तत्सम्पर्काद्ब्राह्मणधार्यं दण्डमेवाधारयदिति युक्तमेव, सम्पर्कस्यांशिकोत्कर्षमात्रसाधनसमर्थत्वादित्यर्थः। 'ननु ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्तिधर्मतः' इति मनुनोक्ततया क्षत्रियस्य पिप्पलदण्डयोग्यताकथनमनुचितमिति वाच्यम्, 'पालाशविल्वयोर्दण्डौ ब्राह्मणस्य, न्यग्रोधचलदलयोः क्षत्रियस्य' इति स्मृत्यनुसारेण तथोक्तेः। 'चलदल' पदमत्र पिप्पलपरम्। उत्प्रेक्षानुप्राणितो विरोधाभासाऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः', 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥ ४९ ॥

वर्णान्तर सङ्क्रमण करनेवाले विश्वामित्रके सम्पर्कके प्रभावसे रामभद्र क्षत्रियोचित क्रमसे पिप्पलदण्डके अधिकारी होने पर भी पलाशदण्डके लिये व्यग्रहस्त हो गये। जिसने अपने वर्णका त्याग करके वर्णान्तर प्राप्त कर लिया, उसके सम्पर्कके प्रसादसे रामने पिप्पलदण्डके बदले ब्राह्मणधार्य पलाशदण्ड ग्रहण कर लिया यह उचित ही है। पलाशदण्डका–राक्षसनिग्रह–अर्थ करके रामके पक्ष में लगाना चाहिये ॥ ४९ ॥

मारीचनीचमतिराहवमारचय्य
क्षिप्तः क्षणेन रघुनायकसायकेन।
मध्येपयोनिधि भयेन निमग्नमूर्ति-
र्वेषं पुपोष जलमानुषनिर्विशेषम् ॥ ५० ॥

मारीचेति। मारीचनीचमतिः मारीचनामकः क्षुद्रबुद्धिः आहवम् रामेण सह युद्धम् आरचय्य कृत्वा रघुनायकसायकेन रामबाणेन कर्त्रा क्षणेन क्षिप्तम् मध्येपयोनिधि

१. 'रामचन्द्रः' इति पाठान्तरम्।

सागरमध्ये क्षिप्तः प्रक्षिप्तः सन् भयेन पुनरपि रामबाणावपातभीत्या निमग्नमूर्त्तिः पानीयलीनकायः जलमानुषनिर्विशेषम् जलान्तर्वासिमानवशरीरतुल्यम् वेषम् आकृतिं पुपोष धारयामास। रामेण सह युध्यमानो मारीचो रामबाणेन सागरमध्ये क्षिप्यमाणः भयेन पयसि निलीनशरीरो जलमानुष इव प्रतीयते स्मेति भावः। आहूयन्ते शत्रवो यत्र स आहवो युद्धम् , 'आहवः संगरे यागे' इति विश्वः। पयोनिधेर्मध्ये इति मध्येपयोनिधि, 'पारेमध्ये षष्ठ्या वा' इति समासः, एदन्तत्वं च निपातनात्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५० ॥

मारीच नामक नीचमति राक्षस रामके साथ युद्ध करके रामके बाणों द्वारा क्षणभरमें समुद्र के बीचमें फेंक दिया गया, वहाँ भी भयके मारे वह डुबकी ही लगाये रहा, जलनिमग्न मारीच ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह जलमानुष हो ॥ ५० ॥

सुबाहुराहवोन्मत्तः कृत्तः काकुत्स्थपत्त्रिणा।
मुनीनामनभिप्रेतः प्रेतनाथातिथिः[1] कृतः ॥ ५१ ॥

सुबाहुरिति। मुनीनाम् अनभिप्रेतः असंमतः द्विष्ट इत्यर्थः, आहवोन्मत्तः युद्धोद्धतः सुबाहुस्तदाख्यो दैत्यभेदः काकुत्स्थपत्रिणा रामबाणेन कृत्तः खण्डितः सन् प्रेतनाथातिथिः यमराजस्य अतिथिः कृतः। मुनीनां द्विषन् युद्धदृप्तश्च सुबाहुर्नाम राक्षसो रामबाणेन खण्ड्यमानो यमपुरीं गमित इत्यर्थः। 'पत्त्रिणौ शरपक्षिणौ' इत्यमरः ॥ ५१ ॥

मुनियोंका द्वेषी तथा युद्धमदसे मत्त सुबाहु रामके बाणोंसे क्षतविक्षत करके यमपुरीको भेज दिया गया ॥ ५१ ॥

वंशस्पृशा हृदयहारिफलान्वितेन
रामेरितेन सहसा सहसायकेन[2]।
[3]स्नेहार्दितेन निरगादनुरागिणीव
प्राणावलिर्[4]हृदयतः पिशिताशनानाम् ॥ ५२ ॥

वंशस्पृशेति। वंशस्पृशा वेणुजन्मना सत्कुलजातेन च हृदयहारिफलान्वितेन हृदयविदारिबाणाग्रयुक्तेन मनोज्ञलाभसहितेन च स्नेहार्दितेन तैलादिस्निग्धद्रव्यपरिशोधितेन प्रेमपूर्णेन च रामेरितेन रामप्रेरितेन रामा वनिता तत्प्रेरितेन च सायकेन बाणेन सह अनुरागिणी सानुरागा रमणीव पिशिताशनानाम् रक्षसाम् प्राणावलिः जीवनसमुदयः सहसा झटिति निर्जगाम। यथा काचन युवतिः सद्वंशजन्मना मनोज्ञलाभयुक्तेन धनिना वनितान्तरानीतेन प्रेम

---

१. 'प्रेतनाथातिथीकृतः' इति पाठान्तरम्। २. 'रघुनायकसायकेन' इति पाठान्तरम्।
३. 'स्नेहान्वितेन' इति पाठान्तरम्। ४. 'प्राणावली' इति पाठान्तरम्।

पूर्णेन च पुंसा सहानुरागपारवश्येन सहसा निर्गच्छति, तथैव वंशवृत्तजातेन हृदयभेदकाग्रयुतेन रामप्रेरितेन वाणेन सह रक्षसां प्राणावलिर्निर्गतेत्यर्थः। रामस्य वाणा रक्षसां हृदये प्रविष्टास्तेषां प्राणावलिं सह नीत्वैव निरगच्छन्, अयमेवार्थः श्लेषपुरस्कृतसमासोक्त्या निवद्धोऽत्र। 'वंशः पृष्ठास्थिदेहोर्ध्वकाष्ठे वेणौ कुले गुणे' 'हृदयं मानसोरसोः' 'फलं वाणाग्रलाभयोः' 'स्नेहोऽस्त्री द्रवहार्दयोः' इति सर्वत्र ते ते कोषाः। अत्र प्राणवलिनिर्गमनसायकनिर्गमनयोः कार्यकारणयोः पौर्वापर्यस्यावश्यकत्वेऽपि सहजातत्वोपनिबन्धनादतिशयोक्तिमूला सहोक्तिरलङ्कारः, सा च समासोक्त्या सङ्कीर्यते। वसन्ततिलकं वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ ५२ ॥

वांससे उत्पन्न, हृदयको विदीर्ण करनेमें समर्थ फल (धार) से युक्त, राम द्वारा चलाये गये, स्नेह साधन तैलादि द्रव्यसे चिक्कणीकृत बाणके साथ राक्षसोंकी प्राणावली अनुरागिणी की तरह निकल गई, जैसे कोई अनुरागिणी स्त्री भी सद्वंशप्रसूत, मनोरम लाभसे सम्पन्न, किसी रमणी द्वारा प्रेषित, स्नेहयुक्त किसी नायकके साथ निकल खड़ी होती है ॥ ५२ ॥

अथ निशिचरमाथाद्वीतवैतानविघ्नो
मुनिरवभृथकृत्यं विश्वहृद्यं समाप्य।
अमनुत जयलक्ष्म्या राममाजौ समेतं
यजनजनितमूर्त्या योक्तुमव्याजलक्ष्म्या ॥ ५३ ॥

अथेति। अथ राक्षसवधानन्तरम् निशिचरमाथात् राक्षससंहारात् वीतवैतानविघ्नः समाप्तयजनप्रत्यूहः मुनिः विश्वहृद्यम् संसारप्रियम् अवभृथकृत्यम् यज्ञावसानसमयसाध्यं स्नानादिकार्यम् समाप्य कृत्वा, आजौ युद्धे जयलक्ष्म्या विजयश्रिया समेतम् उपपन्नम् युक्तं रामम् यजनजनितमूर्त्या जनकयज्ञतो धृतावतारया अव्याजलक्ष्म्या यथार्थतः श्रीरूपया सीतया योक्तुम् पाणिग्रहणपद्धत्या योजयितुम् अमनुत ऐच्छत्। अयमर्थः—रामकर्तृकाद्राक्षसंहाराद्विगतयागान्तरायो मुनिः समस्तलोकमनोरमं यज्ञान्तस्नानादिकार्यं समाप्य संग्रामे विजयलक्ष्मीसनाथमपि रामचन्द्रं यज्ञप्ररूढया जनकतनयया नाम यथार्थश्रिया योजयितुमैच्छत् इति ॥५३॥

अनन्तर राक्षसोंके मारे जानेके कारण यज्ञविघ्नके दूर जानेसे संसारको अच्छा लगने वाला यज्ञान्तस्नानरूप कर्म समाप्त करके रामको युद्धमें जयलक्ष्मीसे युक्त करके भी पुनः मुनिने यज्ञसे प्रादुर्भूत जनकतनयारूप सत्यलक्ष्मीसे योजित करानेकी इच्छा की ॥ ५३ ॥

अथ मिथिलां प्रति प्रस्थितः [2]कौशिकः [3]काकुत्स्थमित्थमकथयत्।

---

१. 'घाताच्छान्त' इति पाठान्तरम्। २. 'विश्वामित्रः' इति पाठान्तरम्।
३. 'काकुत्स्थयोः' इति पाठान्तरम्।

अथेति। अथ तादृशेच्छाकरणानन्तरम् मिथिलाम् देशविशेषम् प्रति प्रस्थितः चलितः कौशिकः कुशिकात्मजः काकुत्स्थम् रामचन्द्रम् इत्थम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अकथयत् उक्तवान्।

अनन्तर मिथिलाके लिये प्रस्थित विश्वामित्रने रामचन्द्रसे इस प्रकार कहा।

पुरा खलु कुशेशयासनजन्मा कुशाभिधानो[1] राजर्षिः [2]कुशाम्बप्रमुखै-श्चतुर्भिः[3] कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रजाख्यानां पुरीणां कर्तृभिः पुत्री बभूव।

पुरेति। पुरा पूर्वास्मिन् समये, खल्विति वाक्यालङ्कारे, कुशेशयं कमलमासनं यस्य स कुशेशयासनो ब्रह्मा तस्माज्जन्म यस्यासौ कुशेशयासनजन्मा ब्रह्मणो जातः कुशाभिधानः कुशनामकः राजर्षिः राजा भवन्नपि नैष्ठिकत्वान्मुनितुल्यः कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रजाख्यानां तत्तन्नाम्ना प्रसिद्धानां पुरीणां ग्रामाणां कर्तृभिः निर्मातृभिः चतुर्भिः चतुःसङ्ख्यकैः पुत्री पुत्रवान् बभूव। कुशस्य ब्रह्मणो लब्धजन्म-नश्चत्वारः पुत्रा अभूवन् ये कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रज-नामिकाश्चतस्रः पुरीरकल्पयन्नित्यर्थः। कुशेशयासनजन्मपदे कुशेशयं कमलं तदासनं यस्य स कुशेशयासनः पद्मासनो ब्रह्मा ततो जन्म यस्य सः तथेति व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः 'अवार्यो बहुव्रीहिर्जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनोक्तेः। 'शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः। 'कर्तृभिः पुत्री बभूव' इत्यत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया तस्याश्चाभे-दोऽर्थः, तदुक्तम्—'प्रकृत्यादिगणाज्जाता तृतीया तु तदात्मताम्। अवच्छेदकताबुद्धि प्रकारत्वादि शंसति' इति। ततश्च तत्तत्पुरीकर्त्रभिन्नपुत्रशालीति पर्यवसितोऽर्थः।

प्राचीन समयमें ब्रह्मासे उत्पन्न कुश नामक एक राजर्षि हुए, जिनके चार पुत्र हुए, जिन्होंने कौशाम्बी, महोदय, धर्मारण्य, गिरिव्रज नामकी चार नगरियाँ बसाईं।

कुशनाभस्तु घृताच्यां [4]कन्याशतमजनयत्।

कुशनाभस्त्विति। कुशनाभो नाम विश्वामित्रपितामहः स घृताची नामाप्सरा-स्तस्याम् कन्याशतम् शतसङ्ख्याकाः पुत्रीः अजनयत् उत्पादयामास। कुशनाभस्य घृताच्यां पुत्रीशतमजायतेत्यर्थः।

कुशनाभ नामक राजाने घृताचीमें सौ कन्याओंको जन्म दिया।

कन्यास्ताः सन्नद्धयौवनाः कामयमानः पवमानः प्रत्याख्यानात्प्रत्या-पन्नमन्युरासामवयवेष्वनार्जवमतनुत।

---

१. 'कुशिकाभिधानो' इति पाठान्तरम्। २. 'कुशनाभकुशाम्ब' इति पाठान्तरम्।
३. कर्तृभिश्चतुर्भिः' इति पाठान्तरम्। ४. 'कन्याशतं घृताच्याम्' इति पाठान्तरम्।

कन्याश्ना इति। कुशनाभात् घृताच्याम् उत्पन्नाः ताः शतसंख्याकाः सन्नद्धयौवनाः प्राप्तयुवावस्थाः कन्याः बालिकाः कामयमानः पत्नीभावेन लिप्समानः पवमानः वायुः प्रत्याख्यानात् कन्याकर्तृकादस्वीकारात् प्रत्यापन्नमन्युः कुपितः आसाम् कन्यानाम् अवयवेषु अङ्गेषु अनार्जवम् आर्जवम् सरलत्वं तदभावं कौटिल्यं वक्रताम् अतनुत अकरोत्। यदि मां निषेधसि तदा युष्माकं कायः कौटिल्यमापद्यतामिति शापमिवादादित्यर्थः। 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति विश्वः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'तासां तद्वचनं श्रुत्वा वायुः परमकोपनः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः'।

उन कन्याओंके जवान होने पर वायुने उनकी कामना की, उनके अस्वीकार करनेसे कुपित होकर वायुदेवने उनके अङ्गोंको कुटिल बना दिया।

अथ विदितवृत्तान्तेन [1]कुशनाभेन तेन क्षमामेव प्रतिक्रियां [2]मन्यमानेन चूलिसूनवे [3]सौमदेयाय राज्ञे ब्रह्मदत्ताय [4]दत्तास्ताः प्रकृतिस्था बभूवुः।

अथेति। अथ वायुना तथा विरूपतां गमितासु कन्यासु विदितवृत्तान्तेन ज्ञातकन्याऽनार्जवसमाचारेण कुशनाभेन तत्कन्यापित्रा क्षमाम् मर्षणम् एव प्रतिक्रियाम् उपायं मन्यमानेन क्षमैवात्र युक्ता न क्रोध इति कृतमतिना कुशनाभेनेत्यर्थः। चूलिसूनवे चूलिसंज्ञकमुनिपुत्राय सौमदेयाय सोमदा नाम गन्धर्वकन्या तदङ्गजाताय राज्ञे ब्रह्मदत्ताय तदभिधानाय दत्ताः सम्प्रदानीकृताः ताः कन्यकाः प्रकृतिस्थाः आसादितप्राक्तनस्वरूपा बभूवुः। कुशनाभो वायुकृतमपराधं क्षमया मर्षयित्वा ताः कन्याश्चूलिमुनेः सोमदाख्यगन्धर्वाङ्गनायां जाताय राज्ञे ब्रह्मदत्ताय दत्तवान् तस्मै दीयमानानाञ्च तासां कन्यानां वैरूप्यन्तन्महिम्नेव दूरीबभूवेत्यर्थः।

इसके बाद सब समाचार जानकर कुशनाभने क्षमाको ही उपाय माना और उन कन्याओंका विवाह राजा ब्रह्मदत्तके साथ कर दिया, जो चूलिनामक मुनिसे सोमदा नामक गन्धर्वाङ्गनामें उत्पन्न हुए थे, ब्रह्मदत्तके साथ विवाह होते ही वे कन्यायें प्रकृतिस्थ अर्थात् अविकृताङ्ग हो गईं।

पुनरपि कुशनाभस्तु पुत्रीयन्[5]पितुः [6]प्रसादादगाधसत्त्वान्गाधिसंज्ञानस्मत्तातपादानुदपादयत्।

पुनरिति। कुशनाभः तदाख्यो विश्वामित्रपितामहः तु पुनः अपि पुत्रीयन् आत्मनः पुत्रं कामयमानः पितुः स्वजनकस्य कुशस्य प्रसादात् अनुग्रहात् अगाधसत्त्वान्

---

१. 'कुशनाभेन क्षमामेव' इति पाठान्तरम्। २. 'मन्वानेन' इति पाठान्तरम्।
३. 'सौमतेयाय' इति पाठान्तरम्। ४. 'प्रदत्ताः' इति पाठान्तरम्।
५. 'पितृप्रसादात्' इति पाठान्तरम्। ६. 'प्रसादादस्मत्तात' इति पाठान्तरम्।

अमितपराक्रमान् गाधिसंज्ञकान् तदाख्यान् अस्मत्तातपादान् मम पितरम् आदरार्थे बहुत्वम् उदपादयत् अजनयत्।

कुशनाभने फिरसे पुत्रकी इच्छा करके अपने पिताके आशीर्वादसे अमित वीर्य और 'गाधि' नामसे प्रख्यात हमारे पिताको उत्पन्न किया।

इत्थं दाशरथिः कौशिकोत्पत्तिकथानिशमननिरायामयामिनीयामानुबन्धो[1] बन्धूकस्तबकसुन्दरबन्धुरेण[2] संध्यारागेण [3]प्राचीमुखेन शोणीकृतेन शोणाभिधानं [4]दधानेन नदेन प्रवर्तितप्र[5]त्यूषकृत्यः कृतनियमेन मुनिना सह गङ्गामुपतिष्ठमानेन पथा प्रातिष्ठत।

इत्थमिति। इत्थम् अनेन वर्णितेन प्रकारेण दाशरथिः रामः कौशिकस्य विश्वामित्रस्य उत्पत्तेः प्रादुर्भावस्य याः कथाः पूर्वाख्यानानि तासां निशमनेन आकर्णनेन निरायामः सङ्कुचितः यामिनीयामानाम् रात्रिप्रहराणाम् अनुबन्धो व्याप्तिकालो यस्य तादृशः, विश्वामित्रपूर्वजोत्पत्तिकथारससादरपानसंलग्नतयाऽज्ञातरात्रियामदैर्घ्यः, अन्यासक्तमनसा कालस्य सुखव्यत्येयत्वादित्थमुक्तं बोध्यमिदं रामविशेषणम्। बन्धूकस्य यः स्तवको गुच्छस्तद्वत् सुन्दरः रक्ताभः, बन्धुरः रमणीयश्च यः तेन तादृशेन सन्ध्यारागेण संध्याकृतलौहित्येन प्राचीमुखेन पूर्वदिशान्तरालेन शोणीकृतेन रक्ततां गमितेन इयमुत्प्रेक्षा विशेषणं चेदं शोणनदस्य, शोणनदो यद्यपि स्वयं रक्तजलमृत्तिकादिः, तथापि तस्य सन्ध्यारागरक्तत्वमुत्प्रेक्ष्यते। शोणाभिधानं दधानेन शोणसंज्ञायां धारयता नदेन जलमार्गेण प्रवर्त्तितप्रत्यूषकृत्यः आचरितप्रातर्निर्वर्त्यसन्ध्यावन्दनादिकार्यः कृतनियमेन कृताह्निककृत्येन मुनिना विश्वामित्रेण सह गङ्गाम् जाह्नवीम् उपतिष्ठमानेन गङ्गागामिना पथा मार्गेण प्रातिष्ठत चलितः। एवं प्रकारेण विश्वामित्रकुलेतिहासमाकर्णयन् रामो निशामतियतीं नावेदीद्, प्रभाते जाते च बन्धूकपुष्पवद्रक्तेन सन्ध्यारागेणेव रक्तेन शोणेन प्रातःकृत्यमवसाय्य कृतनियतकृत्येन विश्वामित्रेण सह गङ्गागामिना वर्त्मना चलित इति तात्पर्यम्।

इस प्रकार रामचन्द्र कौशिककी उत्पत्तिकथा सुनते रहे, रातके पहर उनको कथा सुनते रहनेके कारण बड़े नहीं मालूम पड़े, प्रातःकाल 'गुड़हुल' पुष्पके गुच्छके समान सुन्दर तथा प्रिय सन्ध्यारागसे रक्त प्राची दिशाके मुखरागसे रंगे गये और शोण नामसे प्रख्यात नदसे प्रातःकृत्य सम्पन्न करके कृतनित्यक्रिय मुनि विश्वामित्रके साथ रामचन्द्र गङ्गातटगामी मार्गसे चल पड़े।

---

१. 'निशमनेन निरायामायामिनीमनुभूय' इति पाठान्तरम्।
२. 'स्तवकबन्धुरेण' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्राचीमुखे शोणीकृते' इति पाठान्तरम्।
४. 'दधाने नदे' इति पाठान्तरम्।
५. 'प्रत्यूषःकृत्यः' इति पाठान्तरम्।

आजानपावनक्षीरां वृषानन्दविधायिनीम् ।
श्रुतिप्रणयिनीं सोऽयमापगामाप गामिव ॥ ५४ ॥

अजानेति । सोऽयम् रामः आजानपावनं स्वभावतः पवित्रं क्षीरं नीरं यस्याः सा ताम् अकृत्रिमपवित्रपयसम्, वृषानन्दविधायिनीम् वृषो धर्मं आनन्दः सुखं च तयोः कर्त्रीम् श्रुतिप्रणयिनीम् वेदपरिचिताम् ('सितासिते सरिते यत्र संगते' इत्यादिश्रुतिषु वर्णितत्वेन वेदपरिचितत्वं बोध्यम्) आपगाम् नदीम् गङ्गाम् गाम् धेनुमिव आप प्राप्तवान्, गौरपि आजानपावनक्षीरा स्वभावशुद्धपया भवति, वृषस्य वृषभस्यानन्दं च तद्रतिप्रदत्वेन विदधाति, श्रुतिप्रणायिनी वेदप्रिया वेदगीतमहिमत्वेन च भवति, अथवा 'श्रुतिप्रणयिनी' श्रुतिकल्पात्वेन श्रुतिसखी, 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि' इत्यादिश्रुत्या वेदवाचो धेनुत्वेन रूपणाच्छ्रुतिसख्यं धेनोर्बोध्यम्। 'क्षीरं स्यान्नीरदुग्धयोः' 'वृषः स्याद्वासवे धर्मे' 'प्रणयः स्यात्परिचये याच्ञयां सौहृदेऽपि च' इति सर्वत्र विश्वादयः कोशाः। श्लेषोत्थापितोपमाऽलङ्कारः ॥ ५४ ॥

स्वभावतः पवित्र दूधवाली तथा वृषको रतिद्वारा आनन्द प्रदान करनेवाली गायके समान स्वभावतः पवित्र जलवाली और धर्म तथा प्रसन्नता प्रदान करनेवाली एवं वेदोंमें वर्ण्यमान नदीको रामने प्राप्त किया। (वृष = बैल तथा धर्म, क्षीर = जल तथा दूध) ॥५४॥

अथ भागीरथीकथां श्रोतुकामाय रामाय भगवानिदं[1]मभाषत ।

अथेति । अथ अनन्तरम् भागीरथीकथाम् गङ्गोद्गमवृत्तान्तम् श्रोतुकामाय जिज्ञासमानाय रामाय रामचन्द्राय भगवान् विश्वामित्रः इदम् वक्ष्यमाणप्रकारम् अभाषत उक्तवान्। श्रोतुं कामो यस्य सः श्रोतुकामः, 'तुं काममनसोरपि' इत्यनुस्वारलोपः।

इसके बाद भागीरथी की उत्पत्तिकथा जाननेके लिये उत्सुक रामचन्द्रको भगवान् विश्वामित्रने इस प्रकार से कहा।

पुरा [2]मनोरमा नाम सुमेरोरभवत्सुता ।
गृहमेधी तयैवासीच्चक्रवर्ती धराभृताम् ॥ ५५ ॥

पुरेति। पुरा पूर्वस्मिन् समये मनोरमा नाम सुमेरोः हेमाद्रेः सुता कन्यका आसीत् अजायत, तया मनोरमया एव धराभृताम् भूधराणाम् चक्रवर्ती पर्वतसार्वभौमः हिमवान् गृहमेधी गृहेषु सङ्गतः गृहस्थ आसीत्। गृहेषु मेधते सङ्गच्छत इति गृहमेधी, 'मेधृ सङ्गमे' इति धातोस्ताच्छील्ये णिनिः। 'दारेष्वपि गृहाः स्मृताः' इत्यमरः ॥ ५५ ॥

---

१. 'इत्थम्' इति पाठान्तरम्।   २. 'तु मेनका नाम' इति पाठान्तरम्।

प्राचीन समयमें सुमेरुको एक कन्या हुई, जिसका नाम मनोरमा था, उसका विवाह पर्वतसमुदायके एकच्छत्र सम्राट् हिमालयसे हुआ ॥ ५५ ॥

कन्याद्वयममुष्यासीदेका मन्दाकिनी तयोः ।
अन्या भगवती साक्षाच्चन्द्रचूडकुटुम्बिनी ॥ ५६ ॥

कन्येति । अमुष्य मनोरमामुद्वहवतः पर्वतचक्रिवर्त्तिनः कन्याद्वयम् द्वे कन्यके अभूतामिति योजना । तयोः कन्ययोः एका 'मन्दाकिनी' नाम आसीत् । अन्या अपरा च या हिमालयस्य कन्या सा साक्षात् भगवती प्रत्यक्षपरमेश्वरी चन्द्रचूडकुटुम्बिनी महादेवस्य गृहिणी । मनोरमागर्भतो हिमालयस्य कन्याद्वयमजनि, मन्दाकिनी तयोरेका, अपरा च प्रत्यक्षपरमेश्वरी हरभार्येत्यर्थः । 'भार्या जायाऽथ 'पुम्भूम्नि दाराः स्यात्तु कुटुम्बिनी' इत्यमरः ॥ ५६ ॥

हिमालयको मनोरमामें दो कन्यायें उत्पन्न हुईं, एक मन्दाकिनी और दूसरी प्रत्यक्ष भगवती महादेवकी अर्धाङ्गिनी ॥ ५६ ॥

तां नदीं विबुधा लब्ध्वा नाकलोकमनीनयन् ।
तपस्यन्तीं गिरिर्गौरीं देवाय महते ददौ ॥ ५७ ॥

तां नदीमिति । विबुधाः देवाः ताम् नदीम् मन्दाकिनीम् लब्ध्वा प्राप्य देवलोकम् स्वर्गम् अनीनयन् प्रापितवन्तः, गिरिः हिमालयः तपस्यन्तीम् महादेवं वरं लब्धुम् तपस्याम् आचरन्तीम् गौरीम् नाम स्वपुत्रीम् महते देवाय सर्वाराध्याय शिवाय ददौ । हिमालयस्य द्वयोः कन्ययोः प्रथमां नदीरूपाम् मन्दाकिनीं देवाः स्वर्गं प्रापितवन्तः, शिष्टां गौरीञ्च गिरिः शिवपरिग्रहाभिलाषेण तपस्यामांचरन्तीम्महादेवाय सम्प्रदत्तवानिति भावः । 'तपस्यन्तीम्' इत्यत्र 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः' इति क्यच् ॥ ५७ ॥

देवोंने उनमें मन्दाकिनी नदीको पाकर स्वर्ग पहुँचा दिया और महादेवको वररूपमें पानेके लिये तप करती हुई पार्वतीको हिमालयने महादेवके हाथोंमें सौंप दिया ॥ ५७ ॥

शिवयोर्युञ्ज[1]तोर्वीर्यं दृष्ट्वा[2] धात्र्यां समर्पितम् ।
पावकः प्रतिजग्राह दैवतैरनुनाथितः[3] ॥ ५८ ॥

शिवयोरिति । शिवा च शिवश्च शिवौ तयोः शिवयोः पार्वतीपरमेश्वरयोः युञ्जतोः मैथुनतत्परयोः सतोः (शिवेनैव स्वस्य) वीर्यम् रेतः धात्र्यां समर्पितम् भुवि निक्षिप्तम् दृष्ट्वा विलोक्य दैवतैः इन्द्रादिभिः अनुनाथितः प्रार्थितः पावकः

१. 'युञ्जतः' इति पाठान्तरम् । २. धृत्वा धात्र्या' इति पाठान्तरम् ।
३. 'अनुमोदितः' इति पाठान्तरम् ।

प्रतिजग्राह स्वीकृतवान्। अयमाशयः—पार्वत्या सह मैथुनपरायणे हरे तद्भंजायमानमहौजःशालिसन्तानभयाद्देवा महादेवं स्ववीर्यं भूमौ पातयितुं प्रार्थितवन्तः, पावकं तदादातुं याचितवन्तः, तदनुसारेणैवात्र हरेण भूमौ रेतः पातितं पावकेन च तत्प्रतिगृहीतमिति वर्जितम् ॥ ५८ ॥

पार्वती और परमेश्वरके रतिपरायण होने पर महादेव द्वारा पृथिवीपर गिराये गये वीर्यको देवों द्वारा प्रार्थित पावकने उठा लिया ॥ ५८ ॥

अनपत्यान्[१]थामर्त्यान्बहुभार्यां च मेदिनीम्।
अकरोदम्बिकाक्रोधः[२] पुत्रालाभसमुद्भवः ॥ ५६ ॥

अनपत्यानिति। अथ एतदनन्तरम् पुत्रालाभसमुद्भवः पुत्राप्राप्तिजनितः अम्बिकाक्रोधः पार्वतीकोपः अमर्त्यान् देवान् अनपत्यान् सन्ततिवर्जितान् मेदिनीम् पृथ्वीम् च बहुभार्याम् अनेकेषां राज्ञाम् काले कालेंऽशभेदतश्च भोग्याम् अकरोत्। देवप्रार्थनया पार्वत्या धार्यं हरवीर्यं पावकेन गृहीतमिति देवानामुपरि पार्वत्याः कोपः शापद्वारा देवानामनपत्यतायै अकल्पत, पृथिव्यपि स्वोपरिवीर्यपातनावसरप्रदानात् कृतसम्मतिमेव देवप्रार्थितेऽर्थे जातेति तस्या अपि बहुभर्तृकत्वं शप्तम्। उक्तञ्च—'अथ शैलसुता राम त्रिदशानिदमब्रवीत्। समन्युरशपत्सर्वान् क्रोधसंरक्तलोचना। यस्मान्निवारिता चैवं सङ्गता पुत्रकाम्यया। अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ। एवमुक्त्वा सुरान् सर्वान् शशाप पृथिवीमपि। अवनेऽनेकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि'। इति रामायणे ॥ ५९ ॥

महादेवका वीर्य पावकने ग्रहण कर लिया, इससे पार्वतीको पुत्रलाभ नहीं हुआ और कुपित होकर उन्होंने देवोंको शाप दे दिया कि तुमको सन्तान होगी ही नहीं और पृथिवीको शाप दिया कि तुम अनेक राजोंकी भार्या होगी ॥ ५९ ॥

अथ सेनान्यमिच्छद्भिरुक्तः सब्रह्मभिः सुरैः।
वह्निरह्नाय जाह्नव्यां न्यषिञ्चद्वीर्यमैश्वरम् ॥ ६० ॥

अथेति। अथ एतदनन्तरम् सेनान्यम् सेनानायकम् तारकासुरसंहाराय कार्त्तिकेयं नाम देवसैन्याग्रगम् सब्रह्मभिः ब्रह्मणा समेतैः सुरैः देवैः उक्तः जाह्नव्यामेतदिन्दुशेखरवीर्यं क्षिपेति व्याहृतः सन् अह्नाय झटिति ऐश्वरम् वीर्यम् जाह्नव्याम् गङ्गापयसि न्यषिञ्चत् निक्षिप्तवान्। देवदानवयुद्धे तारकासुरं परासयितुं परवीर्योद्भवः सेनानीरेव क्षमत इति प्रतिपद्भिः सब्रह्मभिर्देवैश्शिववीर्यं जाह्नव्यां क्षेप्तुमादिष्टो वह्निर्झटिति तत्तत्र निक्षिप्तवानित्यर्थः। 'सेनानीरग्निभूर्गुहः' इति 'स्रागझटित्यञ्जसाह्नाय द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुते' इति चामरः ॥ ६० ॥

---

१. 'तथा' इति पाठान्तरम्। २. 'कोपः' इति पाठान्तरम्।

अनन्तर सेनानीको पानेकी इच्छा रखने वाले ब्रह्मासे युक्त देवोंके कहनेसे वह्निने महादेवके वीर्यको शीघ्र जाह्नवीमें छोड़ दिया ॥ ६० ॥

सापि सप्तार्चिषा क्षिप्तं तेजस्त[1]द्वोढुमक्षमा ।
हिमवत्प्रान्तकान्तारे श्रान्ता शरवणे जहौ ॥ ६१ ॥

साऽपीति । सप्तार्चिषा वह्निना क्षिप्तम् आत्मनि पातितम् तत् हरसम्बन्धि तेजः रेतोरूपम् वोढुम् धारयितुम् अक्षमा अशक्ता सा जाह्नवी अपि श्रान्ता कियत्कालपर्यन्तम् तद्वीर्यधारणात् खिन्ना हिमवत्प्रान्तकान्तारे हिमालयसमपीस्थे वने शरवणे शरप्रचुरे वने जहौ त्यक्तवती । वह्निनिष्ठ्यूतमैशं वीर्यं वोढुमसमर्था जाह्नवी तद्वीर्यं हिमालयपरिसरवर्त्तिवनैकदेशभूतशरप्रचुरवने क्षिप्तवतीत्यर्थः । 'सप्तार्चिर्दमुनाः शुक्रः' इति कोशः । 'शरवण' शब्दे 'प्रनिरन्तःशरेक्षु' इत्यादिना वनघटकनस्य णत्वम् ॥ ६१ ॥

जाह्नवीने भी अग्निद्वारा डाले गये हरवीर्यको अपने अन्दर रखनेमें असमर्थ होकर उसे हिमालयके पास वाले शरकण्डेके वनमें छोड़ दिया ॥ ६१ ॥

तत्राभूत्कृत्तिकाप्रीत्यै षोढारूढमुखाम्बुजम् ।
तारकध्वान्तविध्वंसि सद्यः षाण्मातुरं महः ॥ ६२ ॥

तत्रेति । तत्र शरवणे कृत्तिकाप्रीत्यै—सेनान्ये स्तन्यं पाययितुं देवैः प्रेरितानां षट्संख्याकानाम् कृत्तिकामातृणाम् प्रीत्यै सन्तोषाय षोढा षट्प्रकारेण षड्भिः प्रकारैः आरूढं प्रकटीकृतं मुखाम्बुजं मुखकमलं येन तत्तथोक्तम्, सद्यस्तारकाध्वान्तविध्वंसि तत्क्षण एव ध्वान्तरूपतारकासुरसंहारकम् षाण्मातुरम् षण्णां मातृणामपत्यम् महः कार्त्तिकेयरूपम् तेजः अभूत् प्रकटीभूतमित्यर्थः । अयमाशयः—जाह्नव्या शरवणे क्षिप्तं तद्धरवीर्यं कार्त्तवीर्यात्मना प्रकटीभूतम्, यद्देवप्रेषितकृत्तिकानामकवनिताषट्कानुरोधेनेव षडात्मविभक्तमुखम्, एकेनैकेन मुखेनैकस्याः स्तनपाने सर्वासां सन्तोषस्य सम्भवात्, तारकासंहारकरं च यदिति भावः । 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः' इत्यमरः ॥ ६२ ॥

उस शरवणमें महादेवके वीर्यसे कार्त्तिकेयरूप तेजका आविर्भाव हुआ, जो छः कृत्तिकाओंको प्रसन्न करनेके लिये छः मुँह धारण किये हुए था और जिसने तारकासुररूप अन्धकारका अन्त किया ॥ ६२ ॥

त्रैविध्यं श्रूयतां वत्स सरितस्त्रिदिवौकसाम् ।
यथोक्तं हव्यमश्नत्या देवताया इवाध्वरे ॥ ६३ ॥

---

१. 'त्सौढुमक्षमा' इति पाठान्तरम् ।

त्रैविध्यमिति। हे वत्स, त्रिदिवौकसाम् देवानाम् सरितः वियद्गङ्गायाः यथोक्तम् यथाशास्त्रप्रसिद्धम् त्रैविध्यम् त्रिप्रकारकत्वम् अध्वरे यागे हव्यम् हूयमानमाज्यादिद्रव्यम् अश्नत्याः भक्षयन्त्याः देवतायाः वह्नेः इव श्रूयताम्। अयमाशयः—यथैकापि वह्निदेवता आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निरूपेण त्रिप्रकारा भवति, तच्च तस्याः शास्त्रसमर्थितं त्रैविध्यम्, तद्वदेव देवसरिदपि त्रिप्रकारा, तच्च प्रकारत्रितयं त्वं मया वक्ष्यमाणं शृणु इति। उपमाऽलङ्कारेणात्र देवसरितो वह्न्युपमितपावनताप्रतिपत्तिः॥ ६३॥

हे वत्स राम, मैं आपको देवगङ्गाके तीनों भेद बताता हूँ, आप सुनें, देवगङ्गाके तीनों भेद उसी प्रकार हैं जैसे यज्ञमें हव्यग्रहण करनेवाली अग्निके आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणात्य नामक तीन भेद हैं॥ ६३॥

पुरीमयोध्यामध्यास्त सावित्रः सगरो नृपः।
केशिनीसुमतिभ्यां च लङ्घितप्रथमाश्रमः॥ ६४॥

पुरीमिति। सावित्रः सविता सूर्यः तस्यापत्यम् सावित्रः सूर्यवंशोद्भवः, केशिनीसुमतिभ्यां तदभिधानाभ्यां स्त्रीभ्यां लङ्घितप्रथमाश्रमः दूरीकृतब्रह्मचर्यव्रतः ताभ्यां गृहीतगार्हस्थः, केशिन्या सुमत्या च सहकृतविवाह इत्याशयः, सगरः तदाख्यः नृपः अयोध्याम् पुरीम् तदभिधानां नगरीम्, अध्यास्त अधिष्ठितवान्। सगरो नामैको राजाऽयोध्यायामजायत, यस्य केशिनी सुमतिश्चेति द्वे भार्ये आस्तां यश्च सूर्यवंशोद्भवश्चासीदित्यर्थः। पुरीमित्यस्य अध्यास्तेति क्रियायोगात्—'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मसंज्ञा॥ ६४॥

अयोध्यापुरीमें सगर नामक एक सूर्यवंशी राजा रहते थे, जिन्होंने केशिनी और सुमति नामक दो नारियों प्राप्त कर ब्रह्मचर्याश्रम छोड़ा था॥ ६४॥

स पुत्रीयन् सपत्नीकस्तपस्तेपे [1]समाः शतम्।
भृगुः प्रीतमनास्तस्मै ददौ दायादसम्पदम्॥ ६५॥

स पुत्रीयन्निति। स सगरः पुत्रीयन् पुत्रमात्मन इच्छन्, सपत्नीकः केशिनीसुमतिनामिकाभ्यां स्त्रीभ्यां सहितः सन् शतं समाः शतसम्वत्सरपर्यन्तम् तपः तेपे तपस्यामाचरितवान्। प्रीतमनाः सगरस्य तपसा सन्तुष्टान्तरङ्गः भृगुः नाम महर्षिः तस्मै सगराय दायादसम्पदम् पुत्ररूपां सम्पत्तिं ददौ दत्तवान्। दायं विभक्तद्रव्यमदन्तीति दायादाः, 'दायादौ सुतबान्धवौ' इत्यमरः। 'समाः शतम्' इत्यत्र 'अत्यन्तसंयोगे द्वितीया'। 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः॥ ६५॥

---

१. 'हिमालये' इति पाठान्तरम्।

उस सगरने पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षों तक तपस्या की, उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भृगुने उन्हें पुत्रका वरदान प्रदान किया ॥ ६५ ॥

असमञ्जं[1] सुतं लेभे वैदर्भी केशिनी तयोः ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणां सुमतिश्च यवीयसी ॥ ६६ ॥

असमञ्जमिति। तयोः सगरभार्ययोः केशिनीसुमत्योः मध्ये वैदर्भी विदर्भनृपपुत्री केशिनी नाम असमञ्जम् नाम सुतं पुत्रं लेभे प्राप। यवीयसी कनिष्ठा च सुमतिः पुत्रसहस्राणाम् षष्टिम् षष्टिसहस्रसंख्यकान् पुत्रान् लेभे इति पूर्वोक्तक्रिययाऽन्वयः। सगरतपसा तुष्टो मुनिर्भृगुः एकपुत्रपक्षं षष्टिसहस्रसंख्यकपुत्रपक्षं च निर्दिश्यानयोः कः पक्षो युवयोः का कामयते इति पृष्टे बहुपुत्रपोषणासमर्था ज्येष्ठा राज्ञी केशिनी पुत्रमेकं वृतवती, अन्या तु सुमतिः षष्टिसहस्रसंख्यकान् पुत्रान् वव्रे इति रामायणीकथाऽत्रानुसन्धेया ॥ ६६ ॥

उन दोनों रानियोंमें केशिनीने एकमात्र पुत्र 'असमञ्ज' प्राप्त किया और छोटी रानी सुमति को साठ हजार पुत्र प्राप्त हुए ॥ ६६ ॥

असमञ्जसचारित्रमसमञ्जमपोह्य[2] सः ।
आरब्धहयमेधः सन्नमुञ्चत तुरङ्गमम् ॥ ६७ ॥

असमञ्जसेति। सः सगरो नामः असमञ्जसम् अशोभनं चारित्रम् स्वभावो यस्य स तादृशम्, प्रजोपद्रवकारितया निन्दितवृत्तिकम् असमञ्जम् तन्नाम्ना प्रसिद्धम् केशिनीसमुद्भूतम् अपोह्य त्यक्त्वा आरब्धहयमेधः प्रारब्धाश्वमेधनामकयज्ञः सन् तुरङ्गमम् अश्वम् हयमेधाङ्गभूताश्वत्यागलक्षणेतिकर्त्तव्यताप्रथमसोपानभूतम् अमुञ्चत त्यक्तवान्। असमञ्जत्यागमग्रे वक्ष्यति—'सिद्धार्थको महामान्यस्तत्परित्यागमब्रवीत्। सरयूपतितानेकप्रजामारणकारणात्'। इति ॥ ६७ ॥

उस राजा सगरने दुष्ट स्वभावका होनेके कारण असमञ्जका त्याग कर दिया, क्योंकि वह प्रजाओंका उपद्रव करता था और अश्वमेध यज्ञको प्रारम्भ करके अश्वमेधीय अश्वको छोड़ा ॥ ६७ ॥

क्रव्याद्वपुषा सोऽयमहारि हरिणा हयः ।
ततस्तं नष्टमन्वेष्टुं सौमतेयाः प्रतस्थिरे ॥ ६८ ॥

क्रव्यादेति। सः अयम् अश्वमेधीयः हयः अश्वः क्रव्याद्वपुषा राक्षसवेषधारिणा हरिणा इन्द्रेण अहारि हृतः। इन्द्रोऽश्वमेधेन यक्ष्यमाणं सगरं दृष्ट्वा स्वपदभ्रंशशङ्कया तस्याश्वमेधीयमश्वं राक्षसवेषेणापहृतवानिति तात्पर्यम्। ततः इन्द्रकर्

१. 'असमञ्जसुतम्' इति पाठान्तरम्। २. 'अपास्य' इति पाठान्तरम्।

काश्वमेधीयहयहरणवृत्तान्तज्ञानात्परतः सौमतेयाः सुमतेः अपत्यानि पुमांसः सौमतेयाः षष्टिसहस्रसम्मिताः सुमतिगर्भसम्भूताः सगरसुताः नष्टम् अपहृतम् तम् अश्वम् अन्वेष्टुम् परितो मार्गयितुम् प्रतस्थिरेः चलिताः। 'समवप्रविभ्यः स्थः' इति 'प्रतस्थिरे' इत्यत्रात्मनेपदम् ॥ ६८ ॥

उस अश्वमेधीय अश्वको राक्षसवेषधारी इन्द्रने अपने पदभ्रंशके भयसे चुरा लिया, उस खोये हुए अश्वको ढूँढनेके लिये सुमतिके पुत्रोंने सभी दिशाओंमें प्रस्थान किया ॥६८॥

सर्वे सपर्वतामुर्वीं खनन्तः सगरात्मजाः।
चक्रुर्झर्झरितध्वान्तं नागलोकं नखांशुभिः ॥ ६६ ॥

सर्वे सपर्वतामिति। सर्वे सगरात्मजाः सगरतनयाः सपर्वताम् पर्वतैरुपेताम् उर्वीम् पृथ्वीम् खनन्तः अवदारयन्तः नखांशुभिः स्वनखप्रभाभिः नागलोकं पातालम् झर्झरितध्वान्तम् विनष्टतमसम् प्रकाशितमित्यर्थः। चक्रुः कृतवन्तः। अयमाशयः—अश्वमेधीयाश्वान्वेषणप्रसङ्गे पृथ्वीं नखैरवदारयन्तः सगरपुत्राः स्वनखप्रभां पातालेऽपि प्रसार्य तत्रत्यं तमो दूरीकृतवन्तः, पृथ्व्याः खनने तदधःस्थितपातालपर्यन्तं तन्नखांशवो व्याप्नुवन्निति तात्पर्यम्। झर्झरितध्वान्तमित्यस्य स्थाने जर्जरितध्वान्तमिति पाठो हृद्यः। 'अधोभुवनपातालं बलिसद्मरसातलम्' इत्यमरः। उक्तश्चायमर्थः कालिदासेन रघुवंशे—'गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे। तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः' ॥ ६९ ॥

सगरके सभी पुत्रोंने पर्वतोंसे युक्त सारी पृथ्वीको अपने नखोंसे खोदना प्रारम्भ किया और उनकी खुदाई इतनी गहरी हुई कि उनके नखोंकी कान्ति पातालमें फैल गई जिससे कि वहाँका अन्धकार नष्ट हो गया ॥ ६९ ॥

त एते तपसा दीप्ते तमः[2]स्तोमप्रमाथिनि।
कापिले ज्वलने वीरा लेभिरे शलभोपमाम् ॥ ७० ॥

त एते इति। ते एते वीराः उत्साहसम्पन्नाः सर्वे षष्टिसहस्रसंख्यकाः सगरपुत्राः तपसा व्रतोपवासादिनियमरूपया तपस्यया दीप्ते जाज्वल्यमाने तमःस्तोमप्रमाथिनि अज्ञानान्धकारदूरीकरणदक्षे कापिले कपिलमुनिसम्बन्धिनि ज्वलने कोपरूपाग्नौ शलभोपमाम् पतङ्गसादृश्यम् अलभन्त, अयमर्थः—सर्वेऽपीमे सगरपुत्राः कपिलकोपाग्निना दग्धा इत्यर्थः। इन्द्रः सगराश्वमपहृत्य कपिलाश्रमे बद्धवान्, अश्वमुपलभ्यायं कपिल एवास्माकमश्वस्य हर्तेति मत्वा तं पीडयन्तोऽमी राजपुत्राः कपिलेनोज्ज्वलितस्वकोपाग्नौ भस्मतां नीता इति प्रसङ्गार्थः ॥ ७० ॥

---

१. 'जर्जरित' इति पाठान्तरम्। २. 'स्तोय' इति पाठान्तरम्।

सभी वीर सगरके पुत्र तपस्यासे जाज्वल्यमान अज्ञानान्धकारको दूर करनेमें समर्थ कपिल की कोपाग्निमें शलभ की तुलनाको प्राप्त हुए, अर्थात् जैसे शलभ–फतिंगे आगमें गिरकर खाक हो जाते हैं वैसे जलकर खाक हो गये ॥ ७० ॥

असमञ्जसुतं पौत्रमंशुमन्तमथाब्रवीत् ।
सप्तिं हृत्वा समाधत्तां सप्ततन्तुं भवानिति ॥ ७१ ॥

असमञ्जेति । अथ पुत्रमरणवृत्तान्तप्राप्त्यनन्तरम् (सगरः) असमञ्जसुतम् असमञ्जनामकस्य केशिनीगर्भसंभूतस्य स्वपुत्रस्य पुत्रम् अंशुमन्तम् तदभिधया प्रसिद्धम् सप्तिम् अश्वमेधीयम् अश्वम् हृत्वा आनीय भवान् त्वम् मम सप्ततन्तुम् यज्ञम् अश्वमेधाख्यं मखम् समाधत्ताम् पूरयतु आरब्धस्यास्य ममाश्वमेधस्य पूर्तये भवान्नष्टमश्वमानीयोपहरत्वित्यर्थः । सप्तिः—अश्वः, 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः । सप्तभिर्गायत्र्यादिच्छन्दोभिस्तन्यत इति सप्ततन्तुः, 'सप्ततन्तवः संस्था यस्येति वा सप्ततन्तुः अश्वमेधः, 'सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः' इत्यमरः ॥ ७१ ॥

इसके बाद राजाने असमञ्जके पुत्र तथा अपने पौत्र अंशुमान् से कहा कि यज्ञके अश्वको उपलब्ध कराकर तुम हमारे इस यज्ञकी पूर्त्ति करो, अन्यथा यह यज्ञ अधूरा ही रह जायगा ॥ ७१ ॥

सोऽपि गत्वा बिलं तत्र दृष्ट्वा भस्मीकृतान्पितॄन् ।
साश्रुस्तेभ्योऽञ्जलिं दित्सुश्चरँल्लेभे तुरङ्गमम् ॥ ७२ ॥

सोऽपीति । सः अंशुमान् अपि बिलम् पातालाभ्यन्तरदेशम् गत्वा उपस्थाय तत्र भस्मीकृतान् कपिलकोपाग्निना भस्मतांगमितान् पितॄन् पितृस्थानीयान् पितृव्यान् सौमतेयान् दृष्ट्वा साश्रुः उद्गतनेत्रवारिः सन् तेभ्यः पितृभ्यः अञ्जलिम् निवापजलाञ्जलिम् दित्सुः दातुं कामयमानः (जलाशयान्वेषणाय) चरन् पर्यटन् तुरङ्गमम् अश्वमेधीयमश्वम् लेभे प्राप । अंशुमानपि तुरगान्वेषणप्रसङ्गेन पातालं गत्वा तत्र कपिलमहसाप्लुष्टान् स्वपितृव्यपादानपश्यत्तेभ्योऽञ्जलिदानार्थं यावज्जलार्थं पर्यटति तावत्तत्र चरन्तमश्वमवालोकतेत्यर्थः ॥ ७२ ॥

अश्वको ढूँढते हुए वे अंशुमान् भी पाताल चले, वहाँ उन्होंने कपिलद्वारा दग्ध अपने पितरोंको देखा, वे रोने लगे, अनन्तर उन्होंने उनको उद्देश्य करके जलाञ्जलि देनेकी इच्छा की, जलकी खोजमें वे जब इधर उधर भटक रहे थे, तब उन्हें अपना लक्ष्य यज्ञीय अश्व दीख पडा जो वहीं था ॥ ७२ ॥

मातुलो गरुडस्तेषामेनं तत्रैवमब्रवीत् ।
गङ्गामिहानयायुष्मन्नेषामेषा गतिः परा ॥ ७३ ॥

---

१. 'जलम्' इति पाठान्तरम् । २. 'चिरात्' इति पाठान्तरम् ।

मातुल इति। तेषाम् सौमतेयानां षष्टिसहस्रसंख्यकपुत्राणाम् मातुलः मातुर्भ्राता गरुणः गरुत्मान् तत्र पाताले एनम् अंशुमन्तम् नाम सगरपौत्रम् एवम् उक्तप्रकारेण अब्रवीत् उक्तवान्। तदुक्तमेवाह—हे आयुष्मान् दीर्घजीविन्, इह पाताले गङ्गां आनय प्रापय, एषाम् कपिलमहसा दग्धानां तव पितृव्यानाम् एषा गङ्गा परागतिः प्रकृष्ट उद्धरणोपायः अस्तीति शेषः। परमकारुणिकत्वात्सम्बन्धित्वाच्च गरुडस्तेषामुद्धरणोपायं गङ्गाऽऽनयनमुक्तवानंशुमत इत्याशयः ॥ ७३ ॥

कपिलशाप से दग्ध सगर पुत्रोंके मामा गरुड़ने अंशुमान्‌से पातालमें कहा कि तुम गङ्गाको यहाँ ले आओ, इनके उद्धारका एकमात्र यही अच्छा उपाय है ॥ ७३ ॥

ततस्तनयवृत्तान्तं श्रुत्वा लब्धतुरङ्गमः।
समाप्य सगरः सत्रं पुत्रशोकाद्दिवं गतः ॥ ७४ ॥

तत इति। ततः तदनन्तरम् तनयवृत्तान्तम् पुत्राणां दग्धत्वरूपं समाचारं श्रुत्वा आकर्ण्य लब्धतुरङ्गः अंशुमताऽऽनीताश्वमेधीयहयः सगरः सत्रम् प्रारब्धमश्वमेधं समाप्य पूरयित्वा पुत्रशोकात् षष्टिसहस्रसंख्यकस्वपुत्रापायजनितवैक्लव्यात् कारणात् दिवं गतः स्वर्गं गतः मृत इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

अनन्तर पुत्रोंका समाचार जानकर तथा अंशुमान् द्वारा आनीत अश्वमेधाश्वको प्राप्त करके सगरने अपना आरब्ध यज्ञ समाप्त किया और पुत्रोंके शोकमें शरीर त्याग दिया॥

अथांशुमानयं राज्यं चिराय परिपालयन्।
दिलीपे न्यस्तभूभारस्तपस्तेपे हिमालये ॥ ७५ ॥

अथेति। अथ अयम् सगरपौत्रः अंशुमान् राज्यम् राजकार्यं चिराय बहुकालपर्यन्तम् परिपालयन् कुर्वन् दिलीपे तदाख्ये स्वपुत्रे न्यस्तभूभारः दत्तराज्यः हिमालये तदाख्यया प्रसिद्धे पर्वते तपः तेपे तपस्यामाचरत्। सगरस्वर्गप्रयाणात्परतोंऽशुमान् बहुकालावधि राज्यधुरमूढ्वा जाते योग्ये तनये तत्र न्यस्तराज्यो भूत्वा गङ्गां नेतुमना हिमवत्पर्वतैकदेशे तपस्यां कर्त्तुमारेभे इत्यर्थः। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः ॥ ७५ ॥

सगरके स्वर्गगामी हो जाने पर अंशुमान्‌ने बहुत दिनों तक राज्य करके अपने पुत्र दिलीपको राजा बना दिया और स्वयं तपस्या करनेके निमित्त हिमालय पर चले गये॥७५॥

दिलीपेऽपि दिवं याते श्रुत्वा वृत्तं भगीरथः।
[1]अमर्त्यसरितं कर्तुं मेने मर्त्यतरङ्गिणीम् ॥ ७६ ॥

दिलीप इति। दिलीपेंऽशुमत्पुत्रेऽपि दिवं याते स्वर्गं गते सति वृत्तम् कपिलमहसा स्वपूर्वजानां दोहं गरुडेनांशुमन्तं प्रत्युक्तं तदुद्धारोपायं गङ्गानयनं च वृत्तं

१. अस्मात्पूर्वं 'पितॄन्विधातुं सुगतीन्विदधे मतिमान् मतिम्' इति अधिकः कश्चिद्दृश्यते।

समाचारं श्रुत्वा स्वपूर्वजेभ्यो वृद्धेभ्यः निशम्य भगीरथः दिलीपपुत्रोऽमर्त्यसरितम् देवापगां गङ्गाम् मर्त्यतरङ्गिणीम् मर्त्यलोकप्रवाहिनीं नदीम् कर्तुं मेने इयेष। स्वपूर्वजोद्धारकामनया गङ्गां भुवमानेतुमुद्युक्तवानित्यर्थः॥ ७६ ॥

दिलीपके भी स्वर्ग चले जाने पर उनके पुत्र भगीरथने सारा समाचार जानकर अपने पूर्वजोंके उद्धारार्थ देवनदीको पृथ्वी पर लानेकी इच्छा की॥ ७६ ॥

ततो गोकर्णमासाद्य तपस्यति भगीरथे।
देवो देवापगां वोढुमन्वमंस्त दयानिधिः॥ ७७ ॥

तत इति। ततः गोकर्णम् तदाख्यया प्रसिद्धम् सिद्धिक्षेत्रम् आसाद्य प्राप्य भागीरथे दिलीपपुत्रे तदाख्ये राजनि तपस्यति तपस्यापरायणे सति गङ्गां भुवमानेतुं घृततपश्चर्ये सतीत्यर्थः, दयाया निरवधिपरदुःखप्रहाणेच्छाया निधिः समुद्रः कृपासागरोऽत्यन्तदयालुः देवः शिवः देवापगां वोढुम् स्वर्लोकादापतन्तीममरसरितं शिरसा धारयितुम् अन्वमंस्त अङ्गीकृतवान्। 'तपस्यति' इति क्यजन्ताच्छतरि भावे सप्तमी, 'कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः' इति क्यच्॥ ७७ ॥

इसके बाद गोकर्णनामक सिद्धक्षेत्रमें तपस्या करते हुए भगीरथ पर प्रसन्न होकर अतिदयालु महादेवने आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको धारण करनेकी अपनी स्वकृति दी। अर्थात् यदि तुम गङ्गाको आकाशसे ला सको तो मैं उसे अपने शिर पर धारण करके तुम्हारा कार्य आसान कर दे सकता हूँ ऐसा वचन दिया॥ ७७॥

अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा।
शशाङ्कशङ्खसंभिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा॥ ७८ ॥

अथेति। अथ अनन्तरम् वीचीचयैः तरङ्गपरम्पराभिः छन्नम् व्याप्तम् दिगन्तगगनान्तरम् दिगवकाशव्योममध्यञ्च यया सा तादृशी, तरङ्गमालाव्याप्तदिगन्तनभोमध्या, शशाङ्कः चन्द्र एव शङ्खस्तेन संभिन्नानि सङ्गतानि ताराः नक्षत्राणि एव मौक्तिकानि मुक्तामणयस्तैः दन्तुरा निम्नोन्नता। अयमाशयः—गङ्गायां स्वर्गोत्तन्त्यां तदीयतरङ्गमालया दिगन्तो नभोमध्यञ्च व्याप्तमजायत, सा च गङ्गा शशाङ्करूपशङ्खेन मिलितस्तारागणरूपैर्मौक्तिकैः परिवृतेवाजायतेति विशेषणद्वयप्रतिपाद्यम्। अत्राग्रिम 'पपात' क्रियायान्वयः॥ ७८ ॥

अनन्तर तरङ्गसमुदायसे दिगन्त तथा आकाशमध्यको व्याप्त करती हुई और शशाङ्करूप शङ्खसे मिलित नक्षत्ररूप मुक्तामालासे परिवृत होती हुई (गङ्गा भूमिकी ओर चली)॥ ७८ ॥

तरङ्गाकृष्टमार्तण्डतुरङ्गायासितारुणा।
फेनच्छन्नस्वमातङ्गमार्गणव्यग्रवासवा॥ ७९ ॥

तरङ्गेति। तरङ्गैः वीचिभिः आकृष्टाः स्वमार्गात् प्रच्याव्यान्यत्र प्रवर्त्तिताः ये मार्त्तण्डतुरङ्गाः सूर्यरथाश्वाः तैः आयासितः पुनरश्वानामुचितमार्गप्रापणाय कृतप्रयत्नतांगमितः अरुणः सूर्यसुतो यया सा तादृशी—तरङ्गप्रेरणया मार्गाच्च्यावितसूर्याश्वतया तेषां स्थानप्रापणात्मनाश्रमेण खेदितानूरुरिति विशेषणार्थः। किञ्च—फेनेन स्वच्छः धवलीकृतो यः स्वमातङ्गः निजो गज ऐरावतस्तस्य मार्गणेऽन्वेषणे व्यग्रः संभ्रान्तो वासवो यया सा तादृशी, फेनेन सर्वतः प्रसृमरेण सर्वेषामपि जन्तूनां धवलीकृततया ऐरावतस्य विशिष्यपरिचेतव्यताया अभावेन व्यग्रतांगमितः शक्र इति भावः। तद्गुणालङ्कारः ॥ ७९ ॥

तरङ्गसे सूर्यके अश्वोंको मार्गच्युत करके सूर्यके सारथि अरुणको गङ्गाने परेशान कर रखा था और अपने फेनसे समस्त वस्तुको धवल बनाकर इन्द्रको ऐरावतको पहचाननेमें कठिनाई उत्पन्न कर दी थी ॥ ७९ ॥

आविःशाखाशिखोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा।
एकोदकनभोमार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा ॥ ८० ॥

आविरिति। आविः प्रत्यक्षा याः शाखाशिखाः शाखाग्रभागाः ताभिः उन्नेयम् ऊहितुं शक्यम् नन्दनद्रुमाणाम् स्वर्गोद्यानवृक्षाणाम् मन्दारादीनाम् कर्षणम् प्रवाहणं यस्याः सा तथोक्ता, गङ्गया स्वप्रवाहवेगवशान्मन्दारादयो द्रुमा अवाह्यन्त, जलनिमग्नानां च तेषां वृक्षाणां केवलाः शाखाशिखा उपर्यदृश्यन्त ता एव चान्तर्नदप्रवाहेण महतां तेषां वृक्षाणां नीयमानत्वं व्यञ्जयन्तीति भावः। एकोदकम् केवलजलाप्लुतम् यन्नभः व्योम तत्र मार्गे दिङ्मूढः दिशाज्ञानशून्यो दिवसेश्वरः सूर्यो यया सा, सम्पूर्णस्य नभसो जलाप्लुततया सूर्यस्य मार्गो दिङ्मोहग्रस्तो जातः सन् सूर्यं व्यामोहयदिति भावः ॥ ८० ॥

धराधामकी ओर हहराती हुई गङ्गाकी धार आ रही थी, उसकी प्रखर धारामें स्वर्गोद्यानके वृक्ष मन्दार आदि बहते जा रहे थे, जिनकी शाखाओंके अग्रभाग भर दीख रहे थे और वे ही दीखते हुए शाखाग्रभाग बता रहे थे कि इस धाराके गर्भमें बड़े बड़े पेड़ बहे जा रहे हैं, आकाशमार्गमें पानी ही पानीके भर जानेसे सूर्यको दिङ्मोह हो रहा था, वे अपने मार्गको पहचान ही नहीं पाते थे ॥ ८० ॥

आवर्तगर्तसम्भ्रान्तविमानप्लवविप्लवा।
नीलजीमूतशैवालकृतरेखा[२] हरित्तटा ॥ ८१ ॥

आवर्त्तेति। आवर्त्तं पयसो भ्रम एव गर्त्तः खातम् तत्र सम्भ्रान्तानाम् परिभ्राम्यताम् विमानानां व्योमयानानाम् प्लवः मज्जनम् विप्लवः उन्मज्जनं यस्यां सा

१. 'शाखि' इति पाठान्तरम्। २. 'लेखा' इति पाठान्तरम्।

तथोक्ता, यस्या गङ्गाया आवर्त्तेषु गर्त्ताकारेषु विमानानि मज्जन्ति उन्मज्जन्ति चेत्यर्थः। नीलजीमूताः श्यामवर्णा मेघा एव शैवालानि तैः कृतरेखः विरचितचिह्नः हरित् दिशा तद्रूपः तटः कूलं यस्याः सा तादृशी, यस्या गङ्गाया दिश एव तटस्थानीयाः, श्यामला मेघा एव शैवालरूपास्तटपरिसरचारिणः सन्तो मन्ये तटं रेखया अङ्कयन्तीवेति वक्तव्यसारः। 'स्यादावर्त्तोऽम्भसाम्भ्रमः' 'जलनीली तु शैवालम्' इत्युभयत्रामरकोशः। रूपकमलङ्कारः॥ ८१॥

गङ्गाके जलमें जो भ्रमियाँ चल रही थीं उनमें पड़कर विमान डूब रहे थे और उतरा रहे थे, उस आकाशमें बहती हुई अमरनदीकी धाराके दोनों तट दिशायें ही थीं, जिनके पास मेघरूप काले शैवाल रेखा सी बना रहे थे॥ ८१॥

अवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरङ्गिणी।
पपात पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे॥ ८२॥

अवलेपेति। अवलेपो गर्वस्तस्य भरः समुदयस्तेनाक्रान्ता पूर्णा मदीयं वेगं को नु सोढुमीश इति गर्वसंयुता सुरलोकतरङ्गिणी देवनदी पार्वतीकान्तस्य शिवस्य जटा एव कान्तारो वनं तस्य गह्वरे मध्यदेशे कुहररूपे पपात अवततार। 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः। अनयैव पपातेति क्रियया कुलकपूर्त्तिर्बोध्या॥ ८२॥

हमारे वेगको कौन सम्भालेगा इस गर्वसे पूर्ण देवनदी महादेवकी जटारूप काननकी खोहमें उतरी॥ ८२॥

अलब्धनिर्गमा शम्भोः कपर्दादमरापगा।
दधौ दूर्वाशिखालग्नतुषारकणिकोपमाम्॥ ८३॥

अलब्धेति। शम्भोः शिवस्य कपर्दात् जटाजूटात् अलब्धनिर्गमा अबहिर्भूता अप्राप्तबाह्यदेशसंस्पर्शेत्यर्थः, अमरापगा देवनदी गङ्गा दूर्वायाः शिखा अग्रभागस्तस्मिन् लग्ना संसक्ता या तुषारकणिका हिमबिन्दुस्तदुपमाम् तत्सादृश्यं दधौ प्राप्तवती। महादेवशिरसो निर्गममलभमाना गङ्गा तस्य शिरसि स्थिताया जटाया अतिविशालतया तदेकदेशे स्थिता सती दूर्वाग्रवर्त्तिहिमबिन्दुरिव प्रतिभाति स्मेत्यर्थः। अत्रोपमयाऽलङ्कारेण हरजटाजूटस्य विशालतातिशयो ध्वन्यते। 'कपर्दोऽस्य जटाजूटः' 'तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्युभयत्रामरः॥ ८३॥

गङ्गा महादेवके जटाजूटसे बाहर निकल नहीं सकी, वह उस शिवजटाजूटके एक देशमें ऐसी लगती थी, मानो दूबकी शिखापर ओसकी बूँद चमक रही हो॥ ८३॥

---

१. 'मण्डल' इति पाठान्तरम्।

अदृष्ट्वा तां नदीं तत्र तुष्टाव परमेश्वरम् ।
भगीरथो विधेः क्रौर्यात्परिक्षीणमनोरथः ॥ ८४ ॥

अदृष्ट्वेति । भगीरथः तत्र शिवजटाजूटे तां नदीं देवापगाम् अदृष्ट्वा अनवलोक्य (तस्यास्तदेकदेशनिलीनतया दर्शनविरहः) विधेः दैवस्य क्रौर्यात् प्रातिकूल्यात् परिक्षीणमनोरथः नष्टाभिलाषः (असफलस्वपूर्वजोद्धारसाधनीभूतामरापगाऽऽनयनप्रयासः) सन् (भगीरथः) परमेश्वरम् शिवं तुष्टाव स्तुतवान्, गङ्गायाः पुनर्दर्शनार्थमीशं प्रार्थयामासेत्याशयः ॥ ८४ ॥

भगीरथने जब महादेवकी जटामें छिपी गङ्गाको नहीं देखा तो वे भाग्यदोषसे अपने प्रयासकी असफलतासे दुःखी हुए और फिरसे गङ्गाको देखनेकी इच्छासे उन्होंने शिवकी स्तुति की ॥ ८४ ॥

गङ्गा सप्ताकृतिर्जाता न्यपतद्धर[1]मूर्धनि ।
तेन स्तुत्या प्रसन्नेन क्षिप्ता बिन्दुसरस्यपि ॥ ८५ ॥

गङ्गेति । गङ्गा सप्ताकृतिः सप्तधा विभक्तप्रवाहा जाता, सा च धरमूर्धनि हिमालयपर्वतशिखरे न्यपतत् पपात, स्तुत्या भगीरथकृतप्रार्थनया प्रसन्नेन प्रसादं प्राप्तवता तेन शिवेन सा गङ्गा बिन्दुसरसि बिन्दुसरोवरनामके कासारविशेषे क्षिप्ता प्रक्षिप्ता । हिमभूधरे एकधाराभावेन पतिष्यन्त्या गङ्गाया वेगं स पर्वतो न सहेतेति मत्वा गङ्गा स्वां धारां सप्तसु विभागेषु विभज्य हरशिरसः पपात, भगीरथकृतया स्तुत्या प्रसीददन्तःकारणश्च शिवस्तां बिन्दुसरोवरनामकेऽपि कासारे क्षिप्तवान् यतो भगीरथप्रयाससाफल्यमविलम्बेन सुकरञ्च स्यादिति तात्पर्यम् । 'अहार्यधरपर्वताः' इत्यमरः ॥ ८५ ॥

गङ्गा सात भागोंमें विभक्त होकर हिमालयके शिखोंपर उतरीं और भगीरथकृत स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर महादेवने गङ्गाको बिन्दुसरोवरमें भी डाल दिया जिससे भगीरथके प्रयत्नमें शीघ्र सफलता हो सके ॥ ८५ ॥

तासु प्राचीं गतास्तिस्रस्तिस्रः प्राचेतसीं दिशम् ।
अन्या पितृक्रियो[2]द्युक्तभगीरथपथानुगा ॥ ८६ ॥

तास्विति । तासु सप्तधा विभक्तासु गङ्गाधारासु तिस्रः धाराः प्राचीम् पूर्वां दिशङ्गताः, तिस्रः प्राचेतसीम् पश्चिमां दिशम् गताः इति शेषः, (तदित्थं षड्धारा द्वयोर्दिशयोर्गताः) अवशिष्टा चैका धारा पितृक्रियायाम् स्वपूर्वजोद्धारे उद्युक्तस्य धृतोद्योगस्य भगीरथस्य यः पन्था मार्गः तमनुगच्छतीति तथा, पूर्वजोद्धारसंलग्नभगीरथवर्त्मानुगामिनी जातेति शेषः, भगीरथमनुचचालेति भावः ॥ ८६ ॥

---

१. 'मूर्धतः' इति पाठान्तरम् । २. 'युक्ता भगीरथरथानुगा' इति पाठान्तरम् ।

उन सात धाराओंमेंसे तीन धारायें पूर्व दिशाको चलीं और तीन पश्चिमको गईं, सातवीं धारा पितरोंके उद्धारमें प्रयत्नशील भगीरथकी अनुगामिनी बनी ॥ ८६ ॥

सैषा भागीरथी जह्नोः सत्रक्षेत्रं समावृणोत् ।
तां स पीत्वा ततः शान्तो जहौ श्रोत्रेण वर्त्मना ॥ ८७ ॥

सैषेति । सा एषा भागीरथी गङ्गा जह्नोः तदाख्यस्य मुनेः सत्रक्षेत्रम् यज्ञभुवम् समावृणोत् आवृतवती, पयःप्रवाहेण वेष्टितवतीत्यर्थः, ततः तथाव्याप्तेः पश्चात् स जह्नुः तां गङ्गाम् पीत्वा निजसत्रक्षेत्रावरणजनितकोपान्निपीय शान्तः भगीरथकृतप्रार्थनया शान्तमनाः गतकोपश्च तां गङ्गां श्रोत्रेण वर्त्मना कर्णरूपेण मार्गेण जहौ विससर्ज । यज्ञक्षेत्रावरणजनितापराधां गङ्गां पीत्वा भगीरथस्तुत्या गतकोपो जह्नुर्गङ्गां कर्णमार्गेण त्यक्तवान् येनासौ पुरः प्रावहदित्यर्थः ॥ ८७ ॥

उस भागीरथी गङ्गाने आगे आकर जह्नु मुनिके यज्ञस्थानको आप्लावित कर दिया, अपने यज्ञ क्षेत्रके आप्लावित होनेसे क्रुद्ध जह्नु गङ्गाको पी गये, पश्चात् भगीरथकी प्रार्थनासे उनका कोप शान्त हुआ और उन्होंने अपने श्रवणमार्गसे गङ्गाको निकल जाने दिया ॥ ८७ ॥

तया तटिन्या जाह्नव्या [1]प्रापयत्त्रिदिवं पितॄन् ।
भगीरथः पुरं प्राप परिपूर्णमनोरथः ॥ ८८ ॥

तयेति । तया पूर्वोक्तप्रकारेणावतीर्णया जाह्नव्या जह्नुमुनिकन्यया तटिन्या नद्या भगीरथः पितॄन् स्वपूर्वजान् कपिलेन दग्धान् (गङ्गाजलोक्षितगात्रभस्मतयाऽर्जितेन पुण्येन) त्रिदिवम् स्वर्गम् प्रापयत् प्रापितवान् स्वर्गवासिनश्चकार, (ततः भगीरथः) परिपूर्णमनोरथः फलिताभिलाषः सन् पुरीम् स्वां नगरीम् अयोध्यां प्राप प्राप्त आगत इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

उस जाह्नवी नदीसे भगीरथने अपने पितरोंको स्वर्ग प्राप्त कराया और इस प्रकार सफल मनोरथ होकर वे अपनी राजधानी अयोध्यापुरीको वापस आये ॥ ८८ ॥

अथ दाशरथिराकर्णितभागीरथीकथस्तां सरितं विलङ्घ्य विशालां विलोक्य[2] पुरीं कस्येयमिति गाधिनन्दनमपृच्छत् । सोऽप्येवमवोचत् ।

अथेति । अथ एतदनन्तरम् दाशरथिः रामः आकर्णितभगीरथकथः श्रुतभगीरथोपाख्यानः ताम् सरितम् नदीं गङ्गाम् विलङ्घ्य उत्तीर्य विशालाम् नाम पुरीम् नगरीम् विलोक्य दृष्ट्वा 'कस्य इयम् पुरी' कोऽस्याः पुर्याः स्वामीति गाधिनन्दनम् विश्वामित्रम् अपृच्छत् पृष्टवान् । सोऽपि विश्वामित्रोऽपि एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेणावोचत् ।

---

१. 'आपय्य' इति पाठान्तरम् । २. 'पुरीं विलोकयन्' इति पाठान्तरम् ।

अनन्तर भगीरथोपाख्यान सुन लेनेके वाद रामचन्द्रने गङ्गा पार किया और उस पार में विशाल नगरी देखकर विश्वामित्रसे पूछा कि यह किसकी नगरी है? इसके उत्तरमें विश्वामित्रने इस प्रकार कहा।

पुरा खलु सुरासुराणां सुधानिमित्तं मिथोविरोधे प्रवृत्ते मायां विश्वमोहिनीं विश्वरूपः प्रदर्श्य दैतेयनिधनं शतधारपाणिना कारयामास।

पुरेति। पुरा पूर्वस्मिन् समये खलु इति वाक्यालङ्कारे सुरासुराणाम् सुराः देवाः असुराः राक्षसाः तेषाम् देवदानवानाम् सुधानिमित्तम् अमृतलाभाय मिथोविरोधे अन्योन्यवैरे प्रवृत्ते जाते विश्वरूपः सर्वात्मकः भगवान् विष्णुः विश्वमोहिनीम् जगन्मोहनक्षमरूपसम्पदुपेताम् मायाम् योषिदाकृतिम् प्रदर्श्य दर्शयित्वा दैतेयनिधनम् राक्षसवधम् शतधारपाणिना वज्रहस्तेन इन्द्रेण कर्त्रा कारयामास विधापितवान्। देवदानवयोरमृतार्थं विरोधे प्रसक्ते भगवान् विष्णुस्तयोवरदार्ढ्यमुपपादयितुं मोहिनीं युवत्याकृतिमाधाय मध्ये समुपाससाद, तां दृष्ट्वा तयोर्विरोधः प्रकृष्टसौन्दर्यवदङ्गनालाभलोभेन परां कोटिमाटीकते स्म, तत्रैव विरोध इन्द्रेण दानवा हता इति कथाऽत्र बोध्या। शतधारं पाणौ यस्य स शतधारपाणिः। शतधारं वज्रम्। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति पाणिपदस्य परनिपातः। दितेरपत्यानि पुमांसो दैतेयाः। 'सुरासुराणाम्' इत्यत्र 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' इत्येकवद्भावस्तु नाशङ्क्यः, देवदानवानां कार्यतो विरोधो न तु गोव्याघ्रादिवत्स्वभावतो विरोध इत्युक्तत्वात्।

पूर्व समयमें अमृतके लिये देवासुरविरोधके वढ़ने पर भगवान् विष्णुने अपनी विश्वमोहिनी मायारूप स्त्रीको आकृति दिखलाकर इन्द्रके हाथोंसे राक्षसोंका वध कराया था।

तेषां[1] जननी दितिरतिवेलमन्युः[2] शतमन्युशासनं कमपि पुत्रं लब्धुकामा पत्युर्मारीचस्य[3] वचनात्कुशप्लवे[4] सुचिरं तपश्चचार।

तेषामिति। तेषाम् राक्षसानाम् जननी माता दितिः तदाख्या पुत्राणां संहारेण अतिवेलमन्युः अत्यन्तकुपिता शतमन्युः इन्द्रः तस्य शासनम् निग्रहीतारम् कमपि सुतम् पुत्रम् लब्धुकामा इच्छन्ती पत्युः स्वभर्त्तुः मरीचस्य मरीचिपुत्रस्य कश्यपस्य वचनात् आदेशात् कुशप्लवे विशालातः पूर्वस्यां दिश्यवस्थिते कुशप्लवनामके स्थाने सुचिरं चिरकालपर्यन्तम् तपश्चचार तपस्यां कृतवती। यदा दितेस्सुता इन्द्रेण हतास्तदा तेनेन्द्रापराधेनात्यर्थंकुपिता दितिः स्वभर्त्तुः कश्यपस्यादेशमादायेन्द्रमारणसमर्थतनयप्राप्तिकामनया विशालापुरीतः पूर्वस्यां दिशि स्थिते कुशप्लव-

---

१. 'तेषां तु' इति पाठान्तरम्। २. 'अभ्युपगतमन्युः' इति पाठान्तरम्।
३. 'मारीचेः' इति पाठान्तरम्। ४. 'कुशप्लवने' इति पाठान्तरम्।

नामके क्वचन स्थाने घोरं तपश्चकारेत्याशयः। 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्' 'शतमन्युर्दिवस्पतिः' इत्युभयत्रामरः।

दैत्योंकी माता दितिने इन्द्रद्वारा अपने पुत्रोंके मारे जानेपर अतिकुपित होकर इन्द्रहन्ता पुत्रकी कामनाके कश्यप नामक अपने पतिकी आज्ञासे कुशप्लव नामक स्थानमें घोर तपस्या की।

तां कैतवेन [1]शुश्रूषमाणः शतधारपाणिः पादकलितक[2]चकलापामापन्ननिद्रामपवित्रेति निर्वर्ण्यावगाहिततदीयजठरः सप्तधा गर्भं निर्भिद्य निर्जगाम।

तामिति। ताम् तपस्यापरायणाम् दितिम् कैतवेन छलेन अवसरं लब्ध्वाऽस्या गर्भं विनाशयिष्यामीति मानसिकपापवृत्त्या शुश्रूषमाणः सेवमानः शतधारपाणिः इन्द्रः पादे पादस्थाने कलितः स्थापितः कचकलापः केशराशिः यया सा ताम् शय्यायां शिरःस्थाने पादौ कृत्वेत्यर्थः, एतादृशव्युत्क्रमस्य शास्त्रनिषिद्धाचरणरूपतया निन्दिताचरणपराणतया आपन्ननिद्राम् सुप्ताम् अपवित्रेति निवर्ण्य अशुचिं मन्यमानः अवगाहिततदीयजठरः प्रविष्टतत्कुक्षिः सप्तधा सप्तसु खण्डेषु गर्भम् तस्या दितेः कुक्षिस्थं पुत्रम् निर्भिद्य खण्डयित्वा निर्जगाम बहिरागतः। दितौ प्रतापशालिपुत्रप्राप्तिसमीहया तपस्यन्त्यामिन्द्रः कैतवेन तां परिचचार यद्यवसरं लभेय तदाऽस्या गर्भं निकृन्तामीति, सा कदाचित्पादस्थाने शिरः कृत्वाऽशेत, तस्यां दशायां निषिद्धाचरणकारितया तामशुचिं मत्वाऽवसरं लब्ध्वा शक्रस्तत्कुक्षिं प्रविश्य तस्या गर्भमच्छिनत्, सप्तधाऽजायत च्छेदनेन तद्गर्भं इति भावः।

इन्द्रने छलसे उसकी सेवा प्रारम्भ कर दी, एक समय दिति शय्यापर जिधर शिर रखना चाहिये, उधर पैर करके सोई थी, उस दशामें इन्द्रने उसे अपवित्र देखकर उसके गर्भमें प्रवेश करके उसके गर्भको सात खण्डोंमें टुकड़ा टुकड़ा करके छोड़ दिया और स्वयं बाहर निकल आये।

दितिरपि विदिततनयवृत्तान्ता[3] तान्यपि खण्डान्याखण्डलेन सप्तमरुतः कारयित्वा त्रिविष्टपं प्रविष्टा।

दितिरपीति। दितिः कश्यपस्य पत्नी दानवकुलजननी अपि विदिततनयवृत्तान्ता अवगतकुक्षिस्थपुत्रविषयकसप्तधाखण्डनात्मकसमाचारा तानि खण्डानि इन्द्रेण कृतानि शकलानि आखण्डलेन इन्द्रद्वारा सप्तमरुतः सप्तसंख्यकान् वायून् विधाय त्रिविष्टपं स्वर्गं प्रविष्टा गता। इन्द्रो मम गर्भं छिन्नवानिति ज्ञात्वा दितिः स्वगर्भस्य

---

१. 'शुश्रूषमाणः शक्रः' इति पाठान्तरम्। २. 'केश' इति पाठान्तरम्।
३. 'कदना' इति पाठान्तरम्।

सप्तापि खण्डानि सप्त मारुतान् इन्द्रद्वारा कारयित्वा स्वर्गं गतेत्यर्थः। सप्त वायवः आवहादयः, तन्नामानि यथा—'आवहः प्रवहश्चैव संवहोद्वहस्तथा। विवहाख्यः परीवाहः परावह इति क्रमात्' इति। सप्तैते मारुतस्कन्धा महर्षिभिरुदाहृताः। आवहो वर्त्तयेद्वायुर्मेघोल्कावृष्टिविद्युतः। वर्त्तयेत्प्रवहश्चापि तथा मार्त्तण्डमण्डलम्। संवहो मारुतस्कन्धस्तथा शीतांशुमण्डलम्। वर्त्तयेदुद्वहश्चापि तथा नक्षत्रमण्डलम्। पञ्चमो विवहाख्यस्तु तथैव ग्रहमण्डलम्। सप्तर्षिचक्रं स्वर्गङ्गां षष्ठः परिवहस्तथा। परावहस्तथा वायुर्वर्त्तयेत् ध्रुवमण्डलम्।

दितिको जब अपने गर्भस्थ पुत्रकी स्थितिका पता चल गया, तब उसने इन्द्रसे कहा कि तुम इन सात गर्भखण्डोंको सात वायुके रूपमें परिणत कर दो, इन्द्रके वैसा कर देने पर दिति स्वर्ग चली गई।

ततः—

तत इति। ततो दितेः स्वर्गगमनानन्तरम्।

दितिके स्वर्ग जानेके बाद।

अलम्बुषायामिक्ष्वाकोर्जातः कश्चिन्महीपतिः।
[1]विशालेति स्वनाम्नात्र विशालां विदधे पुरीम्॥ ८९॥

अलम्बुषायामिति। इक्ष्वाकोः भवदीयवंशाद्यपुरुषात् अलम्बुषायाम् तदाख्यायां स्वभार्यायां जातः कश्चित् महीपतिः राजा 'विशाल' इति स्वनाम्ना उपलक्षणभूतेन अत्र कुशप्लवनामकभूभागे विशालाम् नाम पुरीम् नगरीम् विदधे प्रतिष्ठापितवान्। विशालाख्यनृपतिस्थापितत्वमेव विशालापदप्रवृत्तिनिमित्तत्वमस्या नगर्या इत्यर्थः॥

इक्ष्वाकु नामक राजासे अलम्बुषा नामक रानीमें उत्पन्न विशाल नामक राजाने इस 'विशाला' नामक नगरीको अपने नामसे बसाया॥ ८९॥

तदनु तद्वास्तव्येन सुमतिनाम्ना नृपतिना कृतातिथ्यः [2]सराजपुत्रो भगवान् विश्वामित्रस्तत्र निशीथिनीं नीत्वा मिथिलां प्रति प्रस्थितः प्रतपःसामुत्तमस्य गौतमस्याश्रमं प्रदर्श्य तद्दारानुषक्तां कथामित्थमकथयत्।

तदन्विति। तदनु विशालानगरीवृत्तान्तकथनात्परतः तद्वास्तव्येन विशालाभिधनगरीवासिना सुमतिनाम्ना तदाख्येन नृपतिना नृपेण कृतातिथ्यः विहितातिथिसत्कारः सराजपुत्रो रामलक्ष्मणयुतः भगवान् विश्वामित्रो गाधिसुतः तत्र विशालायां निशीथिनीम् निशां नीत्वा व्यतियाप्य मिथिलां जनकपुरीं प्रति

१. 'विशालः स्वेन नाम्नात्र' इति पाठान्तरम्।
२. 'सराजपुत्रो विश्वामित्रः' इति पाठान्तरम्।

प्रस्थितः चलितः प्रतपसाम् तपस्विश्रेष्ठानाम् उत्तमस्य प्रधानस्य गौतमस्य तदा-ख्यस्यर्षेः आश्रमम् तपस्यास्थानम् प्रदर्श्य दर्शयित्वा तद्दारानुषक्ताम् गौतम-दाराहल्यासम्बन्धिनीम् कथाम् आख्यानम् इत्थम् अग्रे वर्णितेन प्रकारेण अकथ-यत् अवोचत्। इत्थं विशालानगरीवृत्तं निवेद्य विशाधीशेन सुमतिना कृतस्वागतो रामलक्ष्मणोपेतो विश्वामित्रो मुनिस्तत्रैव रात्रिं गमितवान्, प्रातश्च ते मिथिलां प्रति चलिताः, मध्येमार्गं च गौतमाख्यस्य प्रसिद्धतपस्विनो वासस्थानं तपोवनं दर्शयित्वा तद्भार्याहल्यावृत्तान्तं विश्वामित्रो रामलक्ष्मणावनेन प्रकारेणोक्तवा-नित्यर्थः। 'निशा निशीथिनी रात्रिः' इति कोशः।

इसके पीछे विशालावासी नृपति सुमतिने उन लोगोंका आतिथ्य सत्कार किया, वे लोग रातमें वहीं ठहर गये, सवेरे सब लोग मिथिलाके लिये प्रस्थान किये, रास्तेमें विश्वामित्रने रामको महातपस्वी गौतमका आश्रम दिखलाया और उनकी स्त्री अहल्याका वृत्तान्त इस भांति कहा।

अत्रागमद्गौतमधर्मदाराननार्यजुष्टेन पथा महेन्द्रः।
स[1] च क्रुधा निर्वृषणं वृषाणं भार्यामदृश्यां च मुनिश्चकार ॥ ९० ॥

अत्रेति। अत्र इहाश्रमे महेन्द्रः शक्रः अनार्यजुष्टेन सज्जनजनासेवितेन पथा दुष्टमार्गेण जारभावेनेत्यर्थः, गौतमधर्मदारान् गौतमगृहिणीम् अहल्याम् अग-मत् अङ्कशायिनीमकरोत्, स च गौतमो मुनिः क्रुद्धा स्वस्त्रीदूषणात्मकापराध-जनितकोपेन वृषाणम् इन्द्रम् निर्वृषणम् विगताण्डकोशम् भार्याम् स्वस्त्रियम् अहल्याञ्च अदृश्याम् तद्रूपं त्यक्त्वा पाषाणभावंगताम् चकार कृतवान्। 'दाराः पुंसि च भूम्न्येव' 'वासवो वृत्रहा वृषा' 'मुष्कोऽण्डकोशो वृषणः' इति सर्वत्रामरः। अत्राश्रम एव शक्रो गौतमधर्मदारानगमत्, गौतमश्चानेनापराधेन कुपितः सन्वि-गताण्डकोशं स्वभार्याम् अहल्यां च कृतपाषाणरूपपरिग्रहां कृतवानित्याशयः॥

इसी आश्रममें इन्द्रने गौतम की धर्मपत्नी अहल्याके साथ आर्यगर्हित आचरण जारभावेन संगम किया था, इससे कुपित होकर गौतमने इन्द्रको अण्डकोशरहित तथा अहल्याको अदृश्य अर्थात् पाषाणरूपमें परिवर्त्तित कर दिया ॥ ९० ॥

वनमेतद्गते रामे शापान्मुक्ता भविष्यसि।
इत्युक्त्वा गौतमः पत्नीं हिमाद्रिं तपसे ययौ ॥ ९१ ॥

वनमिति। रामे दशरथपुत्रे एतत् वनम् तपोवनम् गते प्राप्ते सति स्वमहत्त्व-शापात् पाषाणभावात् मुक्ता रहिता भविष्यसि, तवैष पाषाणभावो व्युपरमिष्य-तीति भावः। गौतमः तदाख्यो मुनिः पत्नीम् अहल्याम् इति एवं प्रकारेण उक्त्वा

---

१. 'क्रुद्धस्ततो' इति पाठान्तरम्।

पतसे तपः चरितुम् हिमाद्रिम् हिमालयं ययौ, एवं भार्यां कथयित्वा गौतमो हिमालयं तपस्यायै गतवानित्याशयः ॥ ९१ ॥

जब राम इस वनमें आवेंगे तब तुम शाप मुक्त होगी, इस प्रकार गौतम अपनी स्त्री अहल्यासे कहकर तपस्या करनेके लिये हिमालयकी ओर चले गये ॥ ९१ ॥

इत्थं[1] विदितवृत्तान्ते देवतानां गणे तदा।
पितॄणां प्रभवा[2]ल्लेभे मेषस्य वृषणं वृषा ॥ ९२ ॥

इत्थमिति। इत्थम् अनेन प्रकारेण देवतानां गणे अग्न्यादिदेवसमुदाये विदितवृत्तान्ते गौतशापादिन्द्रो निर्वृषणो जात इति समाचारज्ञे सति वृषा इन्द्रः पितॄणाम् पितृदेवतानां प्राभवात् प्रभुत्वात् सामर्थ्यातिशयात् मेषस्य हवनीयपशुविशेषस्यैडकस्य वृषणम् अण्डकोषं लेभे प्राप्तवान्। मेषवृषणं छित्त्वेन्द्रवृषणस्थाने योजयामासुरित्यर्थः ॥ ९२ ॥

जब देवोंको यह समाचार मिला कि इन्द्रका अण्डकोश गिर गया है तब पितरोंके प्रभावसे इन्द्रने मेषका अण्डकोश प्राप्त किया। मेषका अण्डकोश काटकर इन्द्रके अण्डकोशके स्थानमें जोड़ दिया गया ॥ ९२ ॥

तदेनामेनसो मुक्तां प्रतिगृह्णातु गौतमः।
इति तस्याश्रमं भेजे साकं रामेण कौशिकः ॥ ९३ ॥

तदेनामिति। तत् तस्मात् गौतमकृतशापावसाननियमस्यावश्यकत्वात् एनसः पापात् मुक्ताम् रहिताम् एनाम् अहल्याम् गौतमः प्रतिगृह्णातु भार्यात्वेन स्वीकरोतु, इति हेतोरहल्यां रामपादरजसा पावयितुम् कौशिकः विश्वामित्रः रामेण साकम् सह तस्य गौतमस्य आश्रमं स्थानम् भेजे। रामपादरजसाऽहल्यामुद्धृतां कृत्वा गौतमभार्यापदे प्रतिष्ठापयितुं विश्वामित्रो गौतमस्याश्रमं प्राप्तवानिति तात्पर्यम् ॥ ९३ ॥

इस प्रकार रामके पादरजःस्पर्शसे अहल्या इन्द्रसम्पर्कसंभव पापसे मुक्त होकर गौतम द्वारा स्त्रीरूपमें स्वीकृत हो जाय, इसलिये विश्वामित्र रामके साथ गौतमके आश्रममें गये ॥

दुः[3]खे सुखे च रज एव बभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः।
यस्माद्गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे ॥ ९४ ॥

---

१. 'ततो' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रभावात्' इति क्वचित्।
३. 'ततः। दुःखे' इति पाठान्तरम्।

दुःख इति। तादृग्विधे तादृशे वचसा निर्देष्टुमशक्ये महति दीर्घे गौतमधर्मपत्न्याः अहल्यायाः दुःखे इन्द्रसम्पर्कपातकमहिम्ना पाषाणभावेनावस्थानरूपे कष्टे, सुखे रामपादरजसा पाषाणभावं विहाय स्त्रीभावप्राप्तिपूर्वकस्वपतिगृहीतत्वात्मके आनन्दे च रजः रजोगुणः कामवासनाप्रवर्त्तकः, रजः रामपादरेणुश्च एव हेतुः कारणं बभूव अजायत। रजोगुणप्रकर्षादेव कामवासनया सेन्द्रसंसक्ता पाषाणभावं गतेति दुःखे तस्या रज एव हेतुः, रामपादरजसा स्पर्शे जाते सा शापमुक्ता पत्या स्वीकृत्यानुगृहीतेति परमानन्देऽपि रामपादरज एव कारणमित्युभयोरप्यवस्थयो रजसः कारणत्वमुक्तम्। तदेव विवृणोति—यस्मादिति। यस्मात् यतः सा अहल्या गुणेन गुणभूतेन रजसा 'इष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः' इति वर्णितस्वरूपेण गुणेन विकृतिंगता पापपङ्कस्पृष्टतया पाषाणभावं गमिता, रामस्य पादरजसा चरणरेणुना प्रकृतिं मानुषभावप्राप्तिपूर्विकां गौतमगृहिणीपदप्रतिष्ठां च प्रपेदे प्राप्तवती। उक्तश्चायमर्थः पाद्मे यथा—'सा ततस्तस्य रामस्य पादस्पर्शान्महात्मनः। अभूत्सुरूपा वनिता समाक्रान्ता महाशिला'॥ 'रजो रजोगुणे रेणावार्त्तवे च' इति नानार्थरत्नमाला। रज इति प्रकृतार्थद्वयश्लेषः। वसन्ततिलकं वृत्तम्, लक्षणमुक्तम्॥ ९४॥

गौतम की धर्मपत्नी अहल्याके महान् दुःख तथा सुख, दोनों भावोंमें रज ही कारण हुआ, क्योंकि रज नामक गुणके कारण कामासक्त होकर वह शिलाभावको प्राप्त हुई और रज–रामपादके रेणु–से शापोद्धृत होकर अपनी प्रतिष्ठाको प्राप्त कर सकी॥ ९४॥

तस्मिन्न[1]हल्यया गौतमेन च कृतमातिथ्यं विश्वामित्रः सराजपुत्रः प्रतिगृह्य मिथिलोपकण्ठभुवि[2] जनकयजनभवनमभजत।

तस्मिन्निति। तस्मिन् तत्र गौतमाश्रमे अहल्यया गौतमेन कृतम् विहितम् आतिथ्यम् विश्वामित्रः सराजपुत्रः रामलक्ष्मणाभ्यां सह प्रतिगृह्य स्वीकृत्य मिथिलोपकण्ठभूवि विदेहनगरीसमीपप्रदेशे जनकयजनभवनम् जनकाख्यस्य राज्ञो यज्ञशालाम् अभजत प्राप्तवान्। गौतमाश्रमे तत्कृतं सत्कारमुपभुज्य रामलक्ष्मणोपेतो विश्वामित्रो जनकनृपतेर्यज्ञशालां गत इत्यर्थः। 'मिथिलापुरी विदेहः' 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यमितोऽव्ययम्' इत्युभयत्रामरः।

उस गौतमाश्रममें अहल्या तथा गौतम द्वारा किये गये आतिथ्यको स्वीकार करके राम और लक्ष्मण सहित विश्वामित्र मिथिलापुरीके समीपमें वर्त्तमान जनककी यज्ञशालामें पहुँचे।

तदनु जनकेन विधिवद[3]भ्यर्चिते त[4]स्मिन्निमिकुलपुरोधाः शतानन्दो रघुनन्दनमेवमभाषत।

---

१. 'अहल्यया कृत' इति पाठान्तरम्। २. 'भुवि जातं' इति पाठान्तरम्।
३. 'अभ्यर्थिते' इति पाठान्तरम्। ४. 'तस्मिन्कुशिकसुते निमि' इति पाठान्तरम्।

तदन्विति। तदनु विश्वामित्रादीनां यज्ञशालाप्रवेशानन्तरम् जनकेन विदेहभूमिभृता विधिवत् यथाशास्त्रम् अभ्यर्चिते पूजिते तस्मिन् विश्वामित्रे निमिकुलस्य निमिर्नामजनकादिपूरुषस्तस्य पुरोहितः जनकवंशस्य कुलक्रमागतः पुरोहित इत्यर्थः, शतानन्दो नाम रघुनन्दनम् रामम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अभाषत अब्रवीत्, विश्वामित्रमाहात्म्यमुक्तवानिति भावः।

अनन्तर जनकद्वारा विश्वामित्रके यथाविधि सत्कृत किये जाने पर निमिवंशके कुलक्रमागत पुरोहित शतानन्दने रामसे इस प्रकार कहा।

तिष्ठन् क्षत्रार्हवृत्तौ मुनिरगमदसावाश्रमं ब्रह्मसूनो-
रातिथ्यं तत्र लब्ध्वा निरवधि [1]सुरभेः प्राभवादित्यवेत्य।
[2]सा तेन प्रार्थिताभूत्तदनु मुनिवरे नाभ्युपेते [3]चकर्ष
क्रोशन्तीं तां तयैव प्रचुरबलजुषा कान्दिशीको बभूव ॥६५॥

तिष्ठन्निति। अयमसौ विश्वामित्रो मुनिः क्षत्रार्हवृत्तौ क्षत्रियवर्णोचिताचारे राज्यपालनादौ तिष्ठन् वर्त्तमानः (मुनिभावात् प्राक्क्षत्रियव्यवहारं पालयन्नयं विश्वामित्रः) ब्रह्मसूनोः ब्रह्मात्मजस्य वसिष्ठस्याश्रमं तपोवनम् अगमत् आखेटक्रमेण गतवान्, तत्र वसिष्ठाश्रमे सुरभेः कामधेनोः प्राभवात् प्रभुत्वात्सामर्थ्यात् निरवधि निस्सीमम् आतिथ्यम् अतिथिसत्कारम् लब्ध्वा प्राप्य, इति उक्तमर्थम् कामधेनुप्रभावादेवात्र निःस्वाश्रमेऽपि मयेदृशमवनीपतिदुस्सम्पाद्यमातिथ्यमाप्तमिति अवेत्य ज्ञात्वा तेन विश्वामित्रेण सा वसिष्ठधेनुः प्रार्थिता याचिता अभूत्, विश्वामित्रस्तां धेनुं ययाचे, तदनु विश्वामित्रकर्त्तृकधेनुयाचनानन्तरम् मुनिवरे वसिष्ठे नाभ्युपेते न स्वीकुर्वति सति दातुमनिच्छतीत्यर्थः क्रोशन्तीम् आर्त्तस्वरं शब्दायमानां तां धेनुं विश्वामित्रः चकर्ष बलात् निनाय, प्रचुरबलजुषा पर्याप्तसामर्थ्योपपन्नया तया धेन्वा एव हेतुभूतया कान्दिशीको भयद्रुतो बभूव, धेनुबलादेव विदलितसकलसैन्यः सन् भयेन पलायित इति भावः। यदाऽयं विश्वामित्रो राजाऽवर्त्तत तदाऽऽखेटार्थं वनंगतः कदाचिद्वसिष्ठाश्रमे समुपस्थितस्तत्र वसिष्ठधेनुप्रभावान्नानाविधं भोगमाप्तवान्, धेनुरेवात्र सामग्रीसमाहारे कारणमिति च भूतार्थमज्ञासीत्, असाधारणसामर्थ्याया धेनोः परिचयस्तन्मानसं लोभाकृष्टमकरोत् ततश्च विश्वामित्रस्तां धेनुं मुनिं ययाचे, स च नान्वमंस्त, ततश्च राजमदमत्तो बलात्तां धेनुं क्रोशन्तीं नेतुमुपक्रममाणस्तस्या धेनोरपरिमितशक्त्या परास्तचतुरङ्गबलः सन् भयेन पलायतेति कथासारांशः। 'कान्दिशीको भयद्रुतः' इत्यमरः।

१. 'सुरभि' इति पाठान्तरम्। २. 'सोऽनेन प्रार्थितोऽभूत्' इति पाठान्तरम्।
३. 'चकर्षन्' इति पाठान्तरम्।

'सुरभिर्गवि च स्त्रियाम्' इति यादवः। स्रग्धरावृत्तम्—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्' इति च तल्लक्षणम् ॥ ९५ ॥

ये विश्वामित्र जब क्षत्रियोचित आचार पालन कर रहे थे अर्थात् राजा थे उस समय शिकारके प्रसङ्गसे एक बार वसिष्ठके आश्रममें आये, धेनुके प्रभावसे वसिष्ठने उनकी बड़ी खातिरदारी की, विश्वामित्रको भी यह मालूम हो गया कि सारा चमत्कार धेनुका है, विश्वामित्रने वसिष्ठसे उस धेनुकी याचना की। वसिष्ठने इस प्रार्थनाको स्वीकृत नहीं किया, इस पर बिगड़ कर चिल्लाती हुई धेनुको बलपूर्वक ले जाने लगे, इस पर धेनुने अपने प्रचुर प्रभावसे उनके बलको परास्त कर दिया और विश्वामित्र भयभीत होकर भाग खड़े हुए ॥ ९५ ॥

बहुशस्तद्बलचकितस्य तपोबलाधिगतविविधायुधनिगमस्य [1]भूयोऽपि सुरभिनिमित्तं समारब्धसमरस्य दिव्यास्त्रपरम्परां ब्रह्मदण्डेन निरुन्धन्नरुन्धतीजानिरवतस्थे।

बहुश इति। बहुशः नानाप्रकारेण तद्बलचकितस्य धेनुशक्त्या भीतस्य तपोबलेन तपस्यया अधिगतः प्राप्तः विविधायुधनिगमः नानाविधास्त्रविद्या येन तादृशस्य तपस्याप्रसादासादितानेकप्रकारकास्त्रविद्यस्य भूयः पुनरपि सुरभिनिमित्तं वसिष्ठकामधेनोः कृते समारब्धसमरस्य प्रारब्धयुद्धस्य विश्वामित्रस्य दिव्यानाम् अतिशयितसामर्थ्यशालिनाम् अस्त्राणाम् परम्पराम् समुदायम् ब्रह्मदण्डेन ब्रह्मतेजसा निरुन्धन् निराकुर्वन् अरुन्धतीजानिः वसिष्ठः अवतस्थे स्थितः, योद्धुमभिमुखीभूय स्थित इत्यर्थः। अरुन्धती जाया यस्य सः अरुन्धतीजानिः, 'जायाया निङ्' इति निङ्समासान्तः।

विश्वामित्रको धेनुके पराक्रमसे अनेक बार परास्त होना पडा, उन्होंने बड़ी बड़ी तपस्यायें करके अनेक प्रकारके अस्त्र प्राप्त किये और उनके बलपर उस धेनुके लिये लड़ाई छेड़ी। उनकी दिव्यास्त्रसंहतिको वसिष्ठने अपने ब्रह्मदण्डसे रोक लिया और वे उसी ब्रह्मदण्डके सहारे अड़िग बने रहे।

ततोऽयं जातव्यलीकः [2]क्षात्रात्तेजसः परं ब्राह्ममेव महो महीय इति निश्चित्य तत्सिद्धये दक्षिणस्यां दिशि तीव्रतरं तपश्चचार।

तत इति। ततः वसिष्ठब्रह्मदण्डस्य पुरः स्वदिव्यास्त्रपरम्पराणां पराजयस्य दर्शनानन्तरम् जातव्यलीकः सञ्जातखेदः अयम् विश्वामित्रः क्षात्रात् क्षत्रियसम्बन्धिनः तेजसः पराक्रमात् परम् उत्कृष्टम् ब्राह्मम् ब्राह्मणसम्बन्धि महः तेज एव

१. 'तस्मिन्कुशिकसुते निमि' इति पाठान्तरम्। २. 'क्षात्रतेजसः' इति पाठान्तरम्।

महीयः सारवत्तरम् इति निश्चित्य निर्धार्य तत्सिद्धये स्वस्य ब्राह्मतेजःसमधिगतये दक्षिणस्यां दिशि दिग्विभागे तीव्रतरं घोरतरम् तपः तपस्याम् चचार कृतवान्। अयमर्थः—वसिष्ठनिष्ठब्राह्मतेजसः पुरतः स्वक्षात्रपराक्रमस्य पराजयेन हेतुना क्षात्रपराक्रमापेक्षया ब्राह्मतेजसः समधिकसारताप्रत्ययप्रेरितो विश्वामित्रः स्वस्य ब्राह्मतेजोयुक्ततामर्जयितुं दक्षिणस्यां दिशि तीव्रं तपोऽतप्यतेति। 'व्यलीकमप्रिये दुःखे' इति वैजयन्ती।

इसके बाद विश्वामित्रको बड़ा दुःख हुआ, उनको विश्वास हो गया कि क्षात्र तेजसे ब्राह्म तेज प्रवल है, इसलिये उन्होंने ब्राह्म तेज पानेकी इच्छासे दक्षिण दिशामें जाकर घोर तप करना प्रारम्भ कर दिया।

अथ सावित्रः क्षत्रियस्त्रिशङ्कुः सशरीरः स्वर्गसिद्धिमभ्यर्थयमानो[1] वसिष्ठेन प्रत्याख्यातस्तस्य पुत्रैर्महोदयादिभिर्निर्बन्धकुपितैर्दत्तचण्डालभावस्तमेनं शरणमभजत।

अथेति। अथ तत्तपोऽनन्तरम् सावित्रः सवितुः सूर्यस्यापत्यम् पुमान् सावित्रः सूर्यवंशोत्पन्नः क्षत्रियः राजन्यः त्रिशङ्कुर्नाम सशरीरः तेनैव वपुषा अत्रैव जन्मनि स्वर्गसिद्धिम् परलोकप्राप्तिम् अभ्यर्थयमानः कामयमानः वसिष्ठेन स्वकुलपुरोहितेन (तथाविधमनुष्ठानं कारयितुमसकृदनुरुद्धेन) प्रत्याख्यातः (असाध्यमिदम् इति) निराकृतः, तथा निर्बन्धकुपितैः (कारयतस्तादृशमनुष्ठानं येनाहं सदेहः स्वर्गं प्राप्नुयामिति भूयोऽस्याग्रहेण) रुष्टैः तस्य वसिष्ठस्य पुत्रैः महोदयादिभिः दत्तचाण्डालभावः शापेन चाण्डालभावं गमितः त्रिशङ्कुः तम् एनम् विश्वामित्रं शरणमभजत रक्षकमविन्दत, वसिष्ठप्रतिपक्षतयाऽयं मां सदेहं स्वर्गं प्रापयिष्यतीति मत्वा विश्वामित्रशरणाग्रतोऽभूदित्याशयः।

इसके बाद सूर्यवंशीय राजा त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्ग जानेकी इच्छा हुई, उन्होंने अपने कुलपुरोहित वसिष्ठसे तदुचित अनुष्ठान करानेकी प्रार्थना की, किन्तु वसिष्ठने जवाब दे दिया, वसिष्ठके पुत्र महोदय आदिने बार बार आग्रह करने पर चिढ़कर त्रिशङ्कुको शाप देकर चाण्डाल बना दिया, अनन्तर त्रिशङ्कु विश्वामित्रकी शरणमें आया।

असावपि तन्मनोरथपरिपूर्तये[2] क्रतुमेकं प्राक्रमत[3]।

असाविति। असौ विश्वामित्रः अपि तन्मनोरथपरिपूर्त्तये त्रिशङ्कुकामनासाफल्याय सशरीरस्वर्गप्राप्तिरूपतदभिलाषसम्पत्त्यर्थम् इत्यर्थः, एकं क्रतुम् यागविशेषम् प्राक्रमत प्रारब्धवान्।

---

१. 'प्रार्थयमानो' इति पाठान्तरम्। २. 'पूर्तये' इति पाठान्तरम्।
३. 'कर्तुं प्राक्रमत' इति पाठान्तरम्।

विश्वामित्रने भी त्रिशङ्कुके मनोरथकी पूर्त्तिके लिये एक यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।

तत्र समागतेषु ब्राह्मणेषु जुगुप्सया [1]त्रिशङ्कोरनागतान्वसिष्ठपुत्रानयं शापेन श्वभक्षकानकरोत्।

तत्रेति। तत्र विश्वामित्रेण त्रिशङ्कुयाजने समागतेषु आयातेषु ब्राह्मणेषु विप्रेषु त्रिशङ्कोः तदाख्यान् नृपात् जुगुप्सया घृणया अनागतान् असमायातान् वसिष्ठपुत्रान् महोदयादीन् अयम् विश्वामित्रः शापेन श्वभक्षकान् अकरोत्, यतोऽस्मदुपक्रान्ते यागे ईर्ष्यया भागं भवन्तो न गृहीतवन्तस्ततो यूयं श्वभक्षका भवन्त्विति विश्वामित्रस्तानशपदित्यर्थः। 'त्रिशङ्कोर्जुगुप्सया' इत्यत्र 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' इति पञ्चमी।

उस यज्ञमें अन्य ब्राह्मण तो विश्वामित्रके डरसे शामिल हुए किन्तु त्रिशङ्कु पर घृणा रखनेके कारण वसिष्ठके पुत्र महोदय आदि नहीं आये, इस बातसे बिगड़कर विश्वामित्रने उन्हें शाप दे दिया कि वसिष्ठके पुत्र श्वभक्षक चाण्डाल हो जायँ।

[2]ततः क्रतुभुजां वर्गेऽपि स्वर्गादनवतीर्णे।

तत इति। ततः तदनन्तरम् क्रतुभुजाम् देवानाम् वर्गे समुदये अपि यज्ञभागान् ग्रहीतुम् स्वर्गात् अनवतीर्णे त्रिशङ्कोर्जुगुप्सया तत्र यज्ञेऽसमुपस्थिते सतीति योजनीयम्।

अनन्तर देवगण भी उस यज्ञमें अपना यज्ञभाग ग्रहण करने नहीं आये।

अयं महात्मा तपसः प्रभावादारोपयामास दिवं त्रिशङ्कुम्।
नीलाम्बरं निह्नुतराजवेषं वर्षानिशीथादविशेषवेषम्॥ ६६॥

अयमिति। महात्मा महानुभावः अयं विश्वामित्रः तपसः प्रभावात् स्वाचरिततपस्यासामर्थ्यात् नीलाम्बरम् (वसिष्ठसुतशापेन चाण्डालवेषधारितया) मलिनवस्त्रम्, निह्नुतराजवेषम् प्रच्छन्ननृपतिनेपथ्यम् (अत्रापि कारणं प्रागुक्तादविशिष्टम्) वर्षानिशीथात् वर्षर्तुसम्बन्धिनिशासमयात् अविशेषः साधारणो मिलितरूपो वेषो यस्य तादृशम्, वर्षर्तुरात्रिरपि मलिनाकाशशालितया नीलाम्बरो मेघावृतविधुमण्डलतया च निह्नुतराजवेषो भवतीति तथोक्तम्, 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे' इति विश्वः। 'अम्बरं वाससि व्योम्नि' इति च। त्रिशङ्कुम् तन्नामानं राजानम् दिवम् आरोपयामास स्वर्गं प्रति प्रहितवान्। अयमाशयः—महातपा विश्वामित्रः स्वतपःप्रभावात् त्रिशङ्कुं स्वर्गं प्रेपितवान्, यस्त्रिशङ्कुः नीलवस्त्रधरः प्रच्छन्नराजवेषश्चासीत् वसिष्ठसुतशापात् यथा वर्षर्तुनिशीथोऽपि व्योम्नि मेघसत्त्वान्नीला-

---

१. 'त्रिशङ्कुयजनेऽनागतान्' इति पाठान्तरम्। २. 'तत्र' इति पाठान्तरम्।

श्वरश्चन्द्रस्य घननिलयनात् निह्नुतराजवेषश्च भवतीति। अत्र श्लेषोत्थापितोपमाऽलङ्कारः। 'स्त्रियां भूम्नि वर्षाः' इति 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' इति चामरः। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ९६ ॥

महात्मा विश्वामित्र अपने तपके प्रभावसे मलिनवस्त्रधारी तथा राजलक्षणशून्य त्रिशङ्कुको—जो बरसातकी रात्रिके समान लग रहा था—क्योंकि बरसातकी रात भी मलिन आकाशयुक्त तथा चन्द्रमाके प्रकाशसे वर्जित होती है—स्वर्ग भेजा ॥ ९६ ॥

ततः—

अपातयत्स्वर्गमुपाश्रयन्तं संजातमन्युः शतमन्युरेनम्।
ततोऽवलम्ब्यास्य नियोगशङ्कुं लेभे त्रिशङ्कुर्गगने प्रतिष्ठाम् ॥ ९७ ॥

तत अपातयदिति। ततः तदनन्तरम् शतं मन्यवो यागा यस्य स शतमन्युरिन्द्रः संजातमन्युः 'किमर्थमयं चाण्डालः स्वर्गं प्रेषितः' इति समुत्पन्नक्रोपः सन् स्वर्गमुपाश्रयन्तम् त्रिदिवं प्रविशन्तम् एनम् त्रिशङ्कुम् अपातयत् स्वर्गात् पातितवान् अधःक्षिप्तवानित्यर्थः, ततः इन्द्रकृतहुङ्कारप्रभावेणाधःपतनाय प्रेर्यमाणः त्रिशङ्कुः अस्य विश्वामित्रस्य नियोगशङ्कुम् आदेशरूपामवलम्बनस्थूणाम् अवलम्ब्य 'त्वं तत्रैव तिष्ठ, माऽधः पत' इति विश्वामित्रनिदेशरूपमाश्रयमवलम्ब्य गगने आकाशे प्रतिष्ठम् स्थितिम् लेभे प्राप्तवान्। उपजातिर्वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ ९७ ॥

अयाज्ययाजन तथा अनधिकृतस्वर्गप्रवेश की धृष्टतासे रुष्ट इन्द्रने स्वर्ग जाते हुए त्रिशङ्कुको रोक दिया, इसके बाद विश्वामित्रके आदेशरूप अवलम्बनको प्राप्त करके वह त्रिशङ्कु वहीं आकाश में ठहर गया ॥ ९७ ॥

ततो [१]गीर्वाणगणप्रार्थनया परित्यक्तभुवनान्तरनिर्माणकर्माणं तत्र तपःप्रत्यूहः प्रत्युद्भूत इति पश्चिमायां दिशि पुष्करे पुष्कलं तपश्चरन्तम[२]मुमम्बरीषयज्ञपशुविनाशप्रायश्चित्तार्थं बह्वीभिर्गोभिः क्रीत्वा नरपशुतां नीयमानस्तावदृचीकस्य मध्यमपुत्रः शुनःशेपः शरणमयाचत।

तत इति। ततः त्रिशङ्कोरेवंविधायां दशायाम् जातायाम् गीर्वाणगणप्रार्थनया देवसमुदयानुरोधेन परित्यक्तं भुवनान्तरस्य सृष्टिभेदस्य कर्म व्यापारो येन तं तथोक्तम्। विसृष्टसृष्ट्यन्तरविधानयत्नम् तत्र दक्षिणस्यां दिशि तपःप्रत्यूहः तपस्याविघ्नः प्रत्युद्भूतः सञ्जात इति हेतोः पश्चिमायां दिशि पुष्करे नाम तीर्थविशेषे पुष्कलम् समग्रम् घोरं तपश्चरन्तम् तपस्यां कुर्वन्तममुम् विश्वामित्रम् अम्बरीषस्य तदाख्यस्य राज्ञः यज्ञपशोः बलितया क्लृप्तस्याजादेः विनाशे निमित्ते

---

१. 'सर्वगीर्वाणगण' इति पाठान्तरम्। २. 'अम्बरीषम्' इति पाठान्तरम्।

प्रायश्चित्तार्थम् वैगुण्यदूरीकरणार्थमनुष्ठेये कर्मविशेषे वलितयोपाहर्त्तुम् वह्वीभिः अनेकाभिः गोभिः मूल्यतया प्रदत्ताभिः क्रीत्वा नरपशुताम् वध्यनरभावम् नीयमानः प्राप्यमाणः तावत् शुनःशेपः तदाख्यया प्रथितः ऋचीकस्य तदाख्यस्य दरिद्रब्राह्मणस्य मध्यमः न ज्येष्ठो नापि कनिष्ठः पुत्रो मध्येभवः सुतः शुनःशेपो नाम शरणमयाचत रक्षितारमविन्दत। इत्थमत्र कथाद्वयम्—यदा शक्रस्त्रिशङ्कुं स्वर्गादपातयत्तदा तदीयेनानेनापमानेन कुपितो विश्वामित्रः 'अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः' इति सङ्कल्प्य सृष्टयन्तरं विधातुमारभत, तस्मिं तस्य सङ्कल्पं दृष्ट्वा देवास्तं स्तुत्या न्यवारयन्निति, सेयं कथाऽत्र गीर्वाणगणप्रार्थनया परित्यक्तभुवनान्तरनिर्माणकर्माणमिति विशेषणे समाविष्टा। द्वितीया च-अम्बरीषो नाम महाराजः क्रतुमारेभे, तस्य वलिपशुर्व्यपद्यत, तत्प्रायश्चित्तार्थमृत्विजो नरवलिमर्थयाञ्चक्रिरे, तदर्थं स ऋचीकस्य ब्राह्मणस्य मध्यमं पुत्रं शुनःशेपं शतसंख्याभिर्गोभिः क्रीत्वा नयति स्म, स च शुनःशेपोऽवश्यं भाविनमात्मनाशं सम्भावयन् विश्वामित्रं त्रातारमविन्दत, स च मन्त्रद्वयोपदेशेनाग्निं प्रसाद्य शुनःशेपस्य प्राणत्राणमम्बरीपस्य यज्ञे सम्पूर्णतां च व्यधापयदिति कथा 'अम्बरीषयज्ञे'त्यारभ्य 'शरणमयाचते'त्यन्ते भागे निबद्धा बोध्या। 'शुनःशेप' पदे शुन इव शेपो यस्येति समासे 'शुनःशेपपुच्छलाङ्गूलेषु' इति षष्ठ्या अलुक्।

इसके अनन्तर विश्वामित्रने देवगणकी प्रार्थनासे नवीन सृष्टि करनेका उद्यम छोड़कर वहाँ पर तपस्यामें विघ्न होते देख पश्चिम दिशामें वर्तमान पुष्करक्षेत्रमें कठोर तप करना प्रारम्भ किया, वहाँ अम्बरीपके यज्ञमें पशुके विनष्ट हो जाने पर प्रायश्चित्तार्थ नरवलिकी आवश्यकता आपड़ी, अम्बरीषने सौ गायोंसे ऋचीक नामक दरिद्र ब्राह्मणके मध्यमपुत्र शुनःशेपको खरीदा और लेकर चले, वह ब्राह्मणवालक विश्वामित्र की शरणमें आया।

अयं भगवान्निजतनयविनिमयेन रक्षितुमेनमुन्मुखः पराङ्मुखेभ्यस्तेभ्यो हविष्यन्दादिभ्यः शापेन वसिष्ठपुत्रदशां दत्त्वा गाथाद्वयप्रीताभ्यामिन्द्रोपेन्द्राभ्या[1]मम्बरीषं शुनःशेपं च परिपूर्णमनोरथौ कारयामास।

अयमिति। अयं भगवान् एष महात्मा विश्वामित्रः निजतनयविनिमयेन स्वपुत्रप्रत्यर्पणेन एनम् शुनःशेपम् रक्षितुम् बलिभावात् त्रातुम् उन्मुखः तत्परः पराङ्मुखेभ्यः शरणागतशुनःशेपप्राणत्राणाय स्वप्राणान् विपादयितुं न स्वीकुर्वद्भ्यः तेभ्यः हविष्यन्दादिभ्यः तन्नामधारिभ्यः स्वसुतेभ्यः वसिष्ठपुत्रदशाम् चाण्डालभावम् दत्त्वा शापेनोपपाद्य गाथाद्वयप्रीताभ्यां मन्त्रद्वयप्रसन्नाभ्याम् इन्द्रोपेन्द्राभ्याम् प्रयोजकर्त्तृभ्याम् अम्बरीषम् (यज्ञफललाभेन) शुनःशेपं च (प्राणदानेन) परिपूर्णमनो-

१. 'अम्बरीषं च शुनःशेपं च' इति पाठान्तरम्।

रथौ लब्धकामौ कारयामास विधापितवान्। इदमत्र वक्तव्यम्—शुनःशेपे शरणं प्रपन्ने विश्वामित्रस्तद्रक्षार्थं स्वसुतेष्वन्यतमं तत्स्थाने बलीकर्त्तुं तत्परोऽजायत, स्वपुत्रसमर्पणेन शरणागतं रक्षितुमैच्छत्, परं तत्पुत्रा हविष्यन्दादयस्तस्येमं विचारं न स्वीचक्रुस्तेन क्रुद्धो विश्वामित्रो निजपुत्रान् वसिष्ठतनयानिव शापेन चाण्डालतां प्रापयद्गाथाद्वयं च शुनःशेपायोपादिशद्याभ्यां प्रीताविन्द्रोपेन्द्रौ शुनःशेपस्य प्राणरक्षां नरबलिमन्तरेणैवाम्बरीषयज्ञपूर्त्तिं च व्यधत्तामिति।

भगवान् विश्वामित्र अपने पुत्रको देकर शरणागतकी जान बचानेको तैयार हो गये किन्तु उनके पुत्र हविष्यन्द आदि इस प्रस्तावसे सहमत नहीं हुए, इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्रने हविष्यन्द आदि अपने पुत्रोंको वसिष्ठपुत्रोंकी तरह चाण्डाल हो जानेका शाप दे दिया और दो गाथाओंसे तोषित इन्द्र और उपेन्द्रसे अम्बरीष तथा शुनःशेप दोनों को पूर्ण मनोरथ करवाया।

ततस्तपस्यन्तमेनं मेनकासङ्गतस्तपोभङ्गश्चिरमङ्गीचकार।

तत इति। ततः शुनःशेपत्राणानन्तरम् तपस्यन्तम् तपस्यामाचरन्तम् एनम् विश्वामित्रम् मेनकासङ्गतः मनेकासंसर्गात् तपोभङ्गः तपस्यावैमुख्यम् चिरम् बहुकालपर्यन्तम् अङ्गीचकार, चिरकालपर्यन्तमयं मेनकाख्ययाऽप्सरसा सह विहरमाणस्तपोविमुखोऽतिष्ठदित्यर्थः।

इसके बाद ये तपस्या करने लगे, किन्तु मेनकाके संसर्ग हो जाने पर ये बहुत दिनों तक तपस्यासे विमुख रहे।

पश्चात्पश्चात्तापाभिभूतोऽयमुत्तरे भूभृति कौशिकीतीरे घोरं तपश्चचार।

पश्चादिति। पश्चात् चिरं मेनकासहवासनन्तरम् पश्चात्तापाभिभूतः किमेतदनुचितमाचरितमिति अनुतापेन युक्तः अयम् विश्वामित्रः उत्तरे भूभृति उत्तरदिगवस्थिते हिमवदादौ पर्वते कौशिकीतीरे तदाख्यया प्रसिद्धाया नद्यास्तटे घोरम् अतिकठोरम् तपः चचार तपस्यामनुष्ठितवान्। मेनकासंसर्गस्यानुतापेन शुद्धिं कृत्वाऽयमुत्तरदिगवस्थिते पर्वते कौशिकीतीरे तीव्रं तपोऽतप्यतेति भावः।

पीछे पश्चात्तापसे युक्त होकर विश्वामित्रने उत्तरीय पर्वत पर जाकर कोशीके किनारे घोर तपस्या की।

तत्र जम्भारिप्रहितां रम्भां शैली भवेति शप्त्वा पूर्वस्यां दिशि निरस्तनिःश्वासं तपश्चरत्यमुष्मिन्नूष्मणा तपोग्नेरुद्विग्नितामरसखस्तामरसासनः सन्निधाय जितेन्द्रियत्वाद्ब्रह्मर्षिरसि, वसिष्ठोऽप्येवं व्याहरतु भवन्तमित्यभाषत।

---

१. 'ततः' इति पाठान्तरम्। २. 'उद्विग्नमानसः' इति पाठान्तरम्।

तत्रेति । तत्र कौशिकीतीरे जम्भारिप्रहिताम् इन्द्रेण प्रेषिताम् विश्वामित्रतपोभङ्गार्थमिन्द्रेण तदन्तिके समुपस्थापिताम् रम्भां नामाप्सरःसुन्दरीम् शैली भव शिलाभावं भजस्वेति शप्त्वा शापं प्रदाय पूर्वस्यां दिशि इन्द्रस्वामिकायां दिशायाम् निरस्तनिःश्वासम् प्राणायामपद्धत्या रुद्धप्राणवायुनिर्गमम् यथा स्यात्तथा तपः तपस्याम् चरति विदधति अमुष्मिन् विश्वामित्रे तपोऽग्नेः एतत्कृततपस्यातेजसः उद्विग्नितामरसखः उद्विग्नानां देवानां हितैषी तामरसं कमलमासनं वासो यस्य स तामरसासनो ब्रह्मा सन्निधाय विश्वामित्रसमीपमागत्य जितेन्द्रियत्वात् विषयवैमुख्येन कृतेन्द्रियग्रामनिग्रहत्वात् हेतोः ब्रह्मर्षिः असि भवसि, इतः प्रभृति स्वतपःप्रभावात् ब्रह्मर्षिकोटौ तव गणना भवतु, वसिष्ठः तव प्रतिपक्षः अपि एवम् ब्रह्मर्षिरसीति प्रकारेण भवन्तम् व्याहरतु कथयतु इत्थम् अनेन विधिना अभाषत। उत्तरस्यां दिशि तपस्यतोऽस्य विश्वामित्रस्य मोहनायेन्द्रेण रम्भा नाम सुन्दरी प्रहिता, तामयं शिला भवेति शशाप, स्वयं च पूर्वां दिशं गत्वा तपस्तप्तुमारेभे, तत्तपस्तेजसा देवा उद्विज्यन्त, तथासति तथाभूतानां देवानां सखा ब्रह्मा विश्वामित्रसमीपमुपेत्य तमवादीत्, यतस्त्वमिन्द्रियाणि सम्यङ् निगृहीतवानतस्त्वं ब्रह्मर्षिः सम्पन्नः, तव विरोधी वसिष्ठोऽपि त्वां ब्रह्मर्षित्वेन व्याहरतु इति। 'तपोऽग्नेरुद्विग्नितामरसखः' इत्यत्रैकदेशान्वयश्चिन्त्यः। 'स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः। घृताची मेनका रम्भा उर्वशी च तिलोत्तमा' इत्यमरः।

वहाँ पर भी इन्द्रने विश्वामित्रको तपश्च्युत करनेके लिये रम्भाको भेजा, विश्वामित्रने रम्भाको शाप दे दिया कि तुम शिला हो जाओ, शाप देकर वे पूर्व दिशामें जाकर प्राणायाम द्वारा श्वास निरोध करके तपस्या करने लगे, उनकी तपस्याके तेजसे देवगण उद्विग्न हो उठे, देवोंकी उद्विग्नता देखकर उनके हितैषी ब्रह्मा विश्वामित्रके पास आये और कहे—आपने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है अतः आप ब्रह्मर्षि हैं, आपके विरोधी वसिष्ठ भी आपको ब्रह्मर्षि कहेंगे।

असौ वसिष्ठनिर्देशाद्ब्रह्मर्षित्वमविन्दत।
यथोपनयसंस्काराद्द्विजन्मा ब्रह्मवर्चसम् ॥ ९८ ॥

असाविति। असौ विश्वामित्रः वसिष्ठनिर्देशात् वसिष्ठेन ब्रह्मर्षिभावेन स्वीकरणात् ब्रह्मणोऽनुरोधेन वसिष्ठेन तथाङ्गीकरणादित्यर्थः, 'ब्रह्मर्षित्वम्' ब्रह्मर्षिपदाभिलप्यताम् अविन्दत आप्तवान्, यथा द्विजन्मा ब्राह्मण उपनयसंस्कारात् उपनयनाख्यसंस्कारात् ब्रह्मवर्चसम् ब्रह्मतेजः विन्दत इति योजनीयम्। ब्रह्मणो वर्चः ब्रह्मवर्चसम्, 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' इत्यच्प्रत्ययः। उपमालङ्कारः॥ ९८॥

विश्वामित्रने वसिष्ठके स्वीकार कर लेने पर ब्रह्मर्षित्वको प्राप्त किया, जिस प्रकार द्विजन्मा ब्राह्मण उपनयनसंस्कारसे ब्रह्मवर्चसको प्राप्त करता है ॥ ९८ ॥

इति जनकपुरोधःश्लाघितो गाधिसूनुः
सह नृपतनयाभ्यां शर्वरीं तत्र नीत्वा ।
विधिवददिशदर्घ्यं पुष्पदर्भाग्रगर्भं[1]
सरसिजदयिताय ज्योतिषे छान्दसाय ॥ ६६ ॥

इति जनकेति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण जनकस्य राज्ञः पुरोधसा कुलपुरोहितेन शतानन्देन श्लाघितः प्रशंसितः गाधिसूनुः गाधिनामकनृपतितनयो विश्वामित्रः नृपतनयाभ्यां दशरथसुताभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां सह तत्र जनकयज्ञशालायां शर्वरीम् रात्रिम् नीत्वा व्यतियाप्य सरसिजदयिताय कमलकुलबान्धवाय छान्दसाय छन्दोमयाय सन्ध्यात्रितयभेदेन क्रमशो ऋगादिवेदत्रयस्वरूपाय ज्योतिषे तेजसे सूर्याय पुष्पदर्भाग्रगर्भम् कुसुमकुशाग्रमिश्रितम् अर्घ्यम् अर्घः पूजा तदर्थं जलमर्घ्यम् पूजार्थं जलम् विधिवत् शास्त्रविधिना अदिशत् प्रदत्तवान् । निशामतिवाह्य प्रभाते सूर्यार्घ्यं दत्तवानित्यर्थः । प्रातरर्घ्यप्रशंसायां श्रुतिर्यथा—'तदुह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः सन्ध्यायां गायत्र्याऽभिमन्त्रिता आप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति, ता एता आपो वज्राणि भूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति' । मालिनीवृत्तमेतत्, 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति तल्लक्षणम् ॥ ९९ ॥

इस प्रकार जनककुल के पुरोहित शतानन्द द्वारा प्रशंसित विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणनामक राजकुमारोंके साथ उसी जनकके यज्ञशालामें रात बिताकर प्रातःकालमें कमलकुलके बान्धव वेदस्वरूप तेजोमय सूर्यको फल और कुशमिश्रित अर्घ्य प्रदान किया ॥

तदनु जनकराजधानीं रामलक्ष्मणनिरीक्षणकौतुकादनवरतपतितेन[2] विकचकुवलयनिचयापचीयमानमेचकमरीचिमलिम्लुचेन[3] पौरनारीलोचन-[4] रोचिषा कवचितनरपतिपथां विश्वामित्रः प्रविश्य दशरथतनयाविदम्[5] अभाषत ।

तदन्विति । तदनु प्रभातायां रजन्याम् रामलक्ष्मणनिरीक्षणे तयोरवलोकने यत्कौतुकम् औत्सुक्यम् तस्मात् हेतोः अनवरतपतितेन सततपातिना विकचानि विकसितानि यानि कुवलयानि नीलकमलानि तेषां निचयः समुदायस्तस्य उपचीयमानाः अनुक्षणमेधमानाः याः मरीचयः कान्तयः तासाम् मलिम्लुचेन अपहरणपटुना लुण्टाकेन पौरनारीणां पुरवासिवनितानाम् लोचनरोचिषा नयनप्रभया कवचितनरपतिपथाम् आवृतराजमार्गाम् जनकराजधानीम् मिथिला-

१. 'दर्भाग्रगर्भं' इति पाठान्तरम् । २. 'पातितेन' इति पाठान्तरम् ।
३. 'मरीचिवीचिमलि' इति पाठान्तरम् । ४. 'पौरनारीजनविलोचन' इति पाठान्तरम् ।
५. 'इत्थम्' इति पाठान्तरम् ।

पुरीम् प्रविश्य विश्वामित्रः दशरथतनयौ रामलक्ष्मणौ । इदम् उक्तप्रकारेण अभाषत उक्तवान् । अयमाशयः—यदा रामलक्ष्मणाभ्यां सह विश्वामित्रो जनक-राजधानीं प्रविशन्नासीत्तदा तयोर्विलोकनायोत्सुकानां तत्पुरवासिवनितां विक-सितनीलाब्जकान्तिहारीणि नयनानि सततं राजमार्गे पतन्ति स्म, तत्तासां श्यामया नयनप्रभया राजमार्गं आव्रियतेव, तादृशीं तां पुरीं प्रविश्य विश्वामित्रो रामलक्ष्मणावुद्दिश्य यथावक्ष्यमाणमब्रवीत् इति । 'कौतूहलं कौतुकञ्च कुतुकं च कुतूहलम्' 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः' 'प्रतिरोधिपरास्कन्दिपाट-च्चरमलिम्लुचाः' इति सर्वत्रामरः । 'रोचिः शोचिरुभे क्लीबे' इति च ।

अनन्तर रामलक्ष्मणको देखनेके लिये उत्कण्ठित पौरनारियोंके बरावर पतित होने वाली, विकसित नीलकमलके समुदायकी समृद्ध श्यामकान्तिको हरनेवाली, आंखोंकी प्रभासे जिस नगरीका राजमार्ग व्याप्त हो रहा है, ऐसी जनक राजधानी मिथिला नगरमें प्रवेश करके विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा ।

अस्यां खलु नगर्यामारब्धयज्ञस्य राज्ञो जनकस्य भागधेयात्सीता-नामधेयभाजनमजीजनत्कन्यारत्नं रत्नगर्भा भगवती ।

अस्यामिति । अस्याम् मिथिलायाम् खल्विति वाक्यालङ्कारे आरब्धयज्ञस्य प्रारब्धमखस्य राज्ञः जनकस्य भागधेयात् भाग्यात् सीतानामधेयभाजनम् सीतेति संज्ञायाः पात्रम् (सीतानामकम्) कन्यारत्नम् पुत्रीजातौ मणिम् भगवती पूज्या रत्नगर्भा अजीजनत् जनयामास । एकदा हलमुखद्वारककर्षणेन यज्ञभूमिं परिष्कुर्वतो जनकस्य भाग्यात् पृथ्वी रत्नगर्भात्वात् सीतानामकं कन्यारत्नं प्राक-ट्यदित्यर्थः । 'जगती रत्नागर्भा च' 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः' 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' इति सर्वत्रामरः । 'नामधेयभागधेय' पदयोर्नामभाग-शब्दाभ्यां 'नामरूपभागेभ्यः स्वार्थे धेयो वक्तव्यः' इति धेयप्रत्ययः ।

इस नगरीमें यज्ञ करते हुए राजा जनकके सौभाग्यसे भगवती पृथ्वीने सीता नामक एक कन्या रत्नको जन्म दिया ।

अस्याः[1] पुनः किमपरं[2] माहात्म्यम् ।

अस्या इति । अस्याः मिथिलायाः किम् पुनः अपरम् इतो भिन्नम् माहात्म्यम् उत्कृष्टत्वम् वर्ण्यताम् इति शेषः । नेतः परं किमप्यस्या मिथिलाया माहात्म्यं वर्णनीयमस्ति यदत्र भगवती सीता जन्माग्रहीदित्याशयः ।

इससे बढ़कर इस मिथिलापुरीका क्या सौभाग्य कहा जाय ? यही इस नगरीका अहो भाग्य समझना चाहिये कि यहाँ सीताने जन्म ग्रहण किया ।

---

१. 'तस्याः पुनः' इति पाठान्तरम् । २. 'किं परं किमपि' इति पाठान्तरम् ।

यतः[1]—

देव्या[2] यस्या वसनमुदधिः पीठिका हाटकाद्रि-
र्हारः सिन्धुः सगरतनयस्वर्गमार्गैकबन्धुः ।
क्रीडाशैलः [3]प्रथमपुरुषक्रोडदंष्ट्रा च तस्याः
सीतामातुर्जगति मिथिलां सूतिकागेहमाहुः ॥१००॥

यतः, देव्या यस्या इति । यतः यस्मात् कारणात्, यस्याः सीतामातुः सीताजन्मप्रदानसौभाग्यशालिन्याः देव्याः वन्दनीयायाः पृथिव्याः उदधिः सागरः वसनम् आवरणकृत्यसम्पादनात् वस्त्रस्थानीयम्, हाटकाद्रिः स्वर्णाचलः सुमेरुः पीठिका उपवेशनसाधनपीठभूतः, तथा सगरतनयानाम् कापिले कोपाग्नौ शलभतां गतानाम् स्वर्गमार्गे स्वर्गवर्त्मनि एकबन्धुः अन्यानपेक्षः सुहृत्, (या कपिलेन दग्धतां नीतानां सगरपुत्राणां स्वर्गप्रयाणे स्वतन्त्रभावेनोपकारिका जाता सा) सिन्धुः नदी गङ्गा हारः मुक्तामाला, प्रथमपुरुषः पुराणपुरुषो विष्णुः स चासौ क्रोडः वराहावतारो भगवान् तस्य दंष्ट्रा दन्तः क्रीडाशैलो विहारपर्वतः, तस्या दीव्यति प्रकाशते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तत इति देवी तस्याः सीतामातुः धरण्याः मिथिलाम् तदाख्यया प्रसिद्धां जनकराजधानीम् सूतिकागेहम् प्रसवगृहम् आहुः कथयन्ति । अयमर्थः—यस्याः सीतामातुः पृथिव्या समुद्रो वसनस्थानीयस्तदावरणकार्यंकरत्वात्, हाटकाद्रिः सुमेरुः पीठरूपमुपवेशनस्थानम्, आपेक्षिकोत्तरदिगवस्थत्वात् सुमेरोरुत्तरदिश्यत्वात्, सगरतनयोद्धारप्रसिद्धा गङ्गा नदी मुक्तामालास्थानीया, धावल्यात्, भगवत आदिवराहस्य दंष्ट्राक्रीडाचलः, चिरं तत्रावस्थानात्, तस्या एव धारित्र्या मिथिलां विज्ञाः सूतिकागृहतया ब्रुवते, अत्र तदेकमात्रपुत्रीप्रसवस्य भूतत्वादिति । 'हिरण्यं हेम हाटकम्' 'सिन्धुर्ना सरितिस्त्रियाम्' इत्युभयत्रामरः । रूपकमलङ्कारः, मन्दाक्रान्तावृत्तम्, 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत्' इति च तल्लक्षणम् ॥ १०० ॥

जिस सीताजननी देवी वसुन्धराका समुद्र वस्त्र है, सुमेरु जिसका पीठ–आसन–है, सगरके पुत्रोंका उद्धार करके उन्हें स्वर्ग पहुँचानेमें बन्धुका कार्य करनेवाली गङ्गा जिसके गले की मुक्तामाला है और आदिवराहका दंष्ट्रामण्डल जिसका क्रीड़ापर्वत है, उस पृथ्वीका यह मिथिलापुरी प्रसूतीगृह कही जाती है ॥ १०० ॥

तत्र[4] सीताविवाहार्थममरैरपि दुष्करम् ।
जनकः कल्पयामास धनुरारोपणं पणम् ॥ १०१ ॥

---

१. 'कुतः' इति पाठान्तरम् । २. 'यस्याः पृथ्व्याः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'परमपुरुष' इति पाठान्तरम् । ४. 'अत्र' इति पाठान्तरम् ।

तत्रेति । तत्र मिथिलानगर्यां जनको नाम राजा सीतायाः पिता सीताविवाहार्थम् सीतापाणिग्रहाय अमरैः देवैः अपि दुष्करम् कर्तुमशक्यम् असुपूरम् धनुरारोपणम् शैवचापाकर्षणम् पणम् शुल्कम् कल्पयामास निरधारयत् । जनकः पणमकृत यः शैवं धनुरिदमारोपयिष्यति स सीतां परिणेष्यति, तच्च तद्धनुराकर्षणं दैवैरपि कर्तुमशक्यमस्तीति रामोत्कण्ठाजननाय सोल्लुण्ठनोक्तिरियं मुनेर्बोध्या ॥१०१॥

उस मिथिलापुरीमें जनकने पण किया है कि जो शैव चापका आरोपण कर देगा, सीता उसके साथ व्याह दी जायगी, परन्तु उनका यह पण इतना जबर्दस्त है कि देवोंके लिये भी उसे पूरा करना कठिन है ॥ १०१ ॥

ततो महर्षिर्जनकस्य राज्ञः सभां सुधर्मासदृशीं प्रपेदे ।
तौ चापतुश्चापविलोकलोलौ [1]सचापकौ कोसलराजपुत्रौ ॥ १०२॥

तत इति । ततः सीताविवाहपणश्रावणानन्तरम् महर्षिर्विश्वामित्रः राज्ञः पृथ्वीपतेः जनकस्य सुधर्मासदृशीम् देवसभासमाम् सभाम् आस्थानभूमिम् प्रपेदे प्राप्तवान् चापविलोकलोलौ धनुर्दर्शनलालसौ सचापकौ धनुर्धरौ तौ प्रसिद्धौ कोसलराजपुत्रौ दशरथतनयौ च आपतुः प्रापतुः सभामिति योजनीयम् । 'स्यात्सुधर्मा देवसभा' 'लोलो लम्पटो लालसश्च' इति क्रमशोऽमरयादवौ ॥ १०२ ॥

इसके पश्चात् महर्षि विश्वामित्र देवसभाके समान दीखने वाली महाराज जनककी सभामें पधारे, उनके साथ धनुर्धारी राम और लक्ष्मण भी उस सभामें आये क्योंकि वे धनुष देखना चाहते थे ॥ १०२ ॥

तत्र विधिवदभ्यर्चितः कथितदशरथतनयवृ[2]त्तान्तः कौशिकः कौशिकप्रमुखैरमरैरस्मत्कुलमहत्तरे देवराते निक्षिप्तं विशेषतः सीताशुल्कार्थं मया रक्षितमिदमिति जनकेन प्रदर्शितस्य चापस्या[3]रोपणाय राममादिदेश ।

तत्रेति । तत्र जनकस्य सभायाम् विधिवत् यथार्हम् अभ्यर्चितः जनकेन सत्कृतः कथितदशरथतनयवृत्तान्तः जनकं प्रति वर्णितरामकृतमखरक्षणताटकादिवधसमाचारः कौशिको विश्वामित्रः, कौशिकप्रमुखैरिन्द्रादिभिः अस्मत्कुलमहत्तरे महाश्रेष्ठे देवराते तदाख्ये राजनि निक्षिप्तम् समर्पितम् विशेषतः प्राधान्येन सीताशुल्कार्थम् सीताविवाहे पणत्वेन कल्पयितुम् मया जनकेन रक्षितम् स्थापितमिदं धनुरिति एवं कथयित्वा जनकेन प्रदर्शितस्य अङ्गुलिसंज्ञया ज्ञापितस्य चापस्यारोपणाय नमनाय रामम् आदिदेश आज्ञप्तवान् । अयमाशयः—सभामुपसेदुषि रामलक्ष्मणानुयाते विश्वामित्रे जनकस्तं सपर्यया सत्कृतवानुक्तवांश्च यदिदं पुरोहस्य

---

१. 'सचापलौ' इति पाठान्तरम् । २. 'वृत्तान्तः कौशिकप्रमुखैः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'आरोपणे' इति पाठान्तरम् ।

मानं धनुरस्मत्कुलश्रेष्ठाय देवरातायेन्द्रो दत्तवान्, मया च तदिदं धनुः सीताविवाहसमये पणत्वेन स्थापयितुं रक्षितमिति, तथोक्तवति जनके विश्वामित्रस्तस्य धनुषो नमनाय राममुक्तवानिति। 'वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्युभयत्रामरः।

जनककी सभामें पहुँचनेपर जनकने विश्वामित्रका यथोचित सत्कार किया, विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणका सारा समाचार जनकको सुना दिया, अनन्तर जनकने विश्वामित्रसे कहा कि आप जो यह धनुष देख रहे हैं वह इन्द्र द्वारा हमारे पूर्वज देवरातको मिला था, मैंने इसे सीताविवाहमें पण बनानेके लिये रख छोड़ा था, उनके इस प्रकार कहने पर विश्वामित्रने उस धनुषके आरोपणार्थ रामको आदेश प्रदान किया।

ततः[1]—

रामे बाहुबलं विवृण्वति धनुर्वंशे गुणारोपणं
मा[2] भूत्केवलमात्मना तिलकिते वंशेऽपि वैकर्तने।
आकृष्टं नितरां तदेव न परं सीतामनोऽपि द्रुतं
भङ्गस्तस्य न केवलं क्षितिभुजां दोःस्तम्भदम्भस्य च ॥१०३॥

ततः, रामे बाहुबलमिति। ततः आदेशश्रवणानन्तरम् रामे बाहुबलम् स्वभुजसामर्थ्यम् विवृण्वति प्रकाशयति सति केवलम् धनुर्वंशे हरचापदण्डे एव गुणारोपणम् प्रत्यञ्चाऽऽयोजनम् मा भूत् नाजायत, (किन्तु) आत्मना स्वेन रामेण तिलकिते भूषिते वैकर्त्तने सूर्यसम्बन्धिनि वंशेऽपि गुणारोपणम् शौर्यप्रकर्षरूपगुणयोगः अभूदिति शेषः तत् शिवधनुः एव न नितरामाकृष्टम् नमितम्, परं किन्तु सीतामनः सीताया हृदयमपि द्रुतम् शीघ्रम् आकृष्टम् स्वाभिमुखीकृतम्। केवलं तस्य धनुष एव भङ्गः खण्डशो भावः न अभूत् किन्तु क्षितिभुजां राज्ञां दोःस्तम्भदम्भस्य बाहुदण्डपराक्रमप्रभवगर्वस्य च भङ्गः नाश अभूदिति योजना। यदा विश्वामित्रेणाज्ञप्तो रामः स्वबाहुपराक्रमं प्रकाशयितुं प्रारम्भत तदा केवलं धनुर्दण्ड एव गुणारोपणं–प्रत्यञ्चासंयोगः–नाजायत, किन्तु रामजन्मनाऽलङ्कृते विकर्त्तनस्य सूर्यस्य कुलेऽपि गुणारोपणम्–शौर्यसम्बन्धकृत उत्कर्षोऽजायत, केवलं धनुरेव नाकृष्टं–न नमितम्–किन्तु सीतामनोऽपि द्रुतम् आकृष्टम्–रामाभिमुखम् अजायत, केवलं हरधनुष एव भङ्गो—द्विधा भवनं नाभूत् किन्तु राज्ञां बाहुबलस्य गर्वोऽप्यहीयतेत्यर्थः। 'वंशो वेणौ कुलेऽपि च' 'मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशौर्यसन्ध्यादिके गुणः' इत्युभयत्रामरः। 'दम्भस्तु कैतवे गर्वे' इति विश्वः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तं बोध्यम् ॥ १०३ ॥

---

१. 'ततः' इति क्वचिन्न। २. 'नाभूत्' इति पाठान्तरम्।

जब रामने अपने बाहुबलको प्रकट किया तब केवल उस धनुष पर ही गुण-प्रत्यञ्चा का आरोपण नहीं हुआ, किन्तु विकर्त्तन-सूर्य-वंशमें भी गुण-शौर्यका आरोप सम्बन्ध हुआ, केवल वह धनुष ही नहीं आकृष्ट हुआ—खींचा गया, किन्तु सीताका हृदय भी रामके प्रति आकृष्ट हुआ और केवल वह धनुष ही नहीं टूटा, अशेष राजगणके पराक्रमका गर्व भी टूट गया ॥ १०३ ॥

रामाकर्षणभग्नकार्मुकभुवा ध्वानेन रोदोरुधा
दृप्तक्षत्रयशःसितच्छदकुले जीमूतनादायितम् ।
वीरश्रीप्रथमप्रवेशसमये पुण्याहघोषायितं
[1]सीतायाः किल मानसे परिणये माङ्गल्यतूर्यायितम् ॥१०४॥

रामाकर्षणेति । रामाकर्षणेन रामकर्तृकेणाकर्षणेन भग्नम् द्विधाभूतं यत्कार्मुकं हरधनुस्ततो भूरुत्पत्तिर्यस्य तेन रामकृताकर्षणत्रुटितहरचापप्रभवेण रोदोरुधा द्यावाभूमी आवृण्वता व्यापिना ध्वानेन शब्देन कर्त्रा दृप्तानां शौर्यगर्वयुक्तानां क्षत्राणां यशः कीर्त्तिरेव सितच्छदो हंसस्तस्य कुले समुदये जीमूतनादायितम् मेघशब्दवदाचरितम्, यथा मेघशब्दं श्रुत्वा हंसास्तिरोभवन्ति तथैव रामभग्नहरचापध्वनिश्रवणेन गर्वितराजन्ययशांसि तिरोऽभूवँल्लुप्तानि जातानीत्युपमा । एवं तेनव ध्वानेन वीरश्रियो वीरलक्ष्म्याः प्रथमप्रवेश आद्यः समागमस्तत्र पुण्याहघोषायितम् स्वस्तिवाचनशब्दसादृश्यमाचरितम्, यथा कस्मिंश्चिन् माङ्गलिककर्मणि क्रियमाणे पुण्याहवाचनं क्रियते तथाऽत्र वीरलक्ष्मीप्रथमागमकार्ये हरचापभङ्गध्वनिरेव तत्कार्यं सम्पादितवान्, हरचापभवो रवो रामविजयश्रियः प्रथमागमे पुण्याहशब्द इव प्रत्यैयतेत्याशयः, किञ्च किलेति निश्चये सीतायाः मानसे परिणये हृदयेऽनुष्ठीयमाने रामेण सह विवाहकृत्ये माङ्गल्यतूर्यायितम् माङ्गलवाद्यध्वनित्वमनुष्ठितम्, हरचापध्वनिमाकर्ण्यैव सीता रामं पतित्वेनावृणोत्तत्र मानसे विवाहे मन्ये स चापध्वनिरेव मङ्गलपटहध्वनिकृत्यमनुष्ठितवानिति । 'हंसास्तु श्वेतगरुतः' इत्यमरः । उपमाऽत्रालङ्कारः, वृत्तं पुनरविपरीतम् ॥ १०४ ॥

रामके आकर्षणसे भग्न हरचापसे उत्पन्न आकाशपातालमें फैलने वाला वह शब्द घमण्डी राजोंके यशरूप हंसोंके लिये मेघशब्द सा बन गया, वीरलक्ष्मीके प्रथम समागमरूप माङ्गलिक कार्यमें पुण्याहवाचनका शब्द सा बन गया और सीताके मानसिक विवाहमें मङ्गल बाजेकी तरह बन गया । जैसे मेघशब्दसे हंस छिप जाते हैं उसी तरह राम द्वारा तोड़े गये महादेवके धनुषके शब्दसे गर्वयुत क्षत्रियोंके यश तिरोहित हो गये, रामकी विजय लक्ष्मीके प्रथमागमनमें उस शब्दने आरम्भसूचक पुण्याहशब्दकी तुलना प्राप्त की और सीताके सङ्कल्पात्मक विवाहमें मङ्गलवाद्यका कार्य किया ॥ १०४ ॥

१. 'मैथिल्याः' इति पाठान्तरम् ।

[1]रवः कठिनकर्षणत्रुटितचापजन्मा क्षणा-
दिशां द्विरद[2]चीङ्कृतैः कृतहरित्पतिस्वागतः।
जगद्भ्रमणकौतुकोच्चलितरामकीर्त्यङ्गना-
प्रयाणपटहध्वनिं प्रथयति स्म [3]तारध्वनिः ॥ १०५॥

रव इति। कठिनं दृढं यत् कर्षणम् नमनम् तेन त्रुटितो द्विधाभूतो यश्चापो हरधनु ततो जन्म यस्य सः कठिनकर्षणत्रुटितचापजन्मा दृढनमनत्रुटितशरासनसम्भूतो (रवः) क्षणात् अल्पेन कालेन दिशाम् द्विरदचीङ्कृतैः दिग्गजविहितचीङ्कारशब्दैः कृतं हरित्पतिभिः दिक्पालैः स्वागतम् सत्कारो यस्य तादृशः अल्पीयसैव कालेन दिगन्तव्यापीत्याशयः तारध्वनिः उच्चध्वनिः दीर्घः रवः शब्दः जगद्भ्रमणकौतुकेन संसारचंक्रमणकामनया उच्चलिता प्रस्थिता रामकीर्त्तिः रामप्रशस्तिरेव अङ्गना वनिता तस्याः प्रयाणे यात्रासमये यः पटहध्वनिर्वाक्यविशेषशब्दस्तं प्रथयति स्म तद्रूपतामाप्नोतीत्यर्थः। अयमाशयः–रामेण दृढाकर्षणवशाद्भग्नस्य धनुषः शब्दः क्षणेनैव दिक्षु व्यानशे, यत्र ततो भीता दिग्गजाश्चीत्कारमकुर्वत, मन्ये दिक्पालास्तस्य रवस्य स्वहस्तिशब्दैः स्वागतमकुर्वन्, किञ्च सशब्द इत्थं प्रतीयते यथा संसारभ्रमणाय चलिताया रामकीर्त्तिरूपललनाया यात्राप्रारम्भे पटहो वाद्यत इति। अत्र हरित्पतिकृतस्वागतेन तैरभिनन्द्यत्वं तेन च तेषां हिते जागरूकत्वं तेन च भाविराक्षसादिहननम्, रामकीर्त्तेरङ्गनाया जगद्भ्रमणप्रारम्भे मङ्गलतूर्यध्वनेर्जायमानतयाऽप्रतिहतं सञ्चरणं च व्यज्यते। पृथ्वीवृत्तम्—'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १०५ ॥

धनुषके दृढ आकर्षणसे उसके टूट जानेपर जो शब्द उत्पन्न हुआ वह तत्क्षण दश दिशाओंमें व्याप्त हो गया, दिग्गजोंके चिग्घाड़नेका जो शब्द हुआ वह ऐसा लगता था मानो दिक्पालगण उस धनुर्भङ्गोद्भव शब्दका स्वागत कर रहे हैं और वह धनुर्भङ्गजन्य शब्द संसारके भ्रमणार्थ उत्कण्ठासे प्रस्थित रामकीर्त्तिरूप ललनाकी यात्राकालमें प्रवृत्त मङ्गलवाद्य ध्वनिकी समानता प्राप्त कर रहा था ॥ १०५ ॥

तत्र[4] दशरथः सीतापरिणयकृतनि[5]श्चयजनकप्रहितदूताहूतः पुरोहिताभ्युपगमान्मिथिलामु[6]पागमत्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये सीतायाः परिणयाय रामेण सह विवाहाय कृतो निश्चयः अवधारणं येन तादृशो यो जनको मिथिलाधीशस्तेन प्रहितेन दूतेन प्रेष्ये-

---

१. 'नवः' इति पाठान्तरम्। २. 'फीत्कृतैः' इति पाठान्तरम्।
३. 'ताराध्वनिः' इति पाठान्तरम्। ४. 'तत्र सीता' इति पाठान्तरम्।
५. 'नियम' इति पाठान्तरम्। ६. 'उपागमद्दशरथः' इति पाठान्तरम्।

णाहूतः आकारितः दशरथः रामपिता पुरोहिताभ्युपगमात् वसिष्ठादेशात् मिथिलाम् जनकराजधानीम् उपागमत् आयातः। जनको रामेण सह सीताविवाहं प्रतिज्ञाय दशरथानयनाय दूतं प्रेषयामास, तदा दूतो दशरथो वसिष्ठात् पुरोहितादनुमतिमवाप्य मिथिलां प्रति प्रातिष्ठतेति भावः।

अनन्तर सीताके विवाहका निश्चयकर लेनेके बाद जनकने दूत भेजकर दशरथको बुला भेजा और कुलपुरोहितकी सलाह लेकर दशरथ मिथिला आये।

यत्कीर्तिस्तिलकायते सुरवधूसंगीतगोष्ठीमुखे
येनाद्यः पितृमान्पुमान्वसुमती येनैव राजन्वती।
इन्द्रः संगरसंकटेषु विजहौ वीरस्य यस्यो[1]न्मुख-
प्रेङ्खत्स्यन्दनकेतनाम्बरदशासंदर्शनाद्दुर्दशाम् ॥ १०६ ॥

यत्कीर्त्तिरिति। यस्य दशरथस्य कीर्त्तिः यशः प्रशस्तिः सुरवधूनां देवाङ्गनानां या सङ्गीतस्य गोष्ठी सभा तस्या मुखे प्रारम्भे एव मुखे वदने तिलकायते तिलकबिन्दुरिवाचरति देवाङ्गना अपि सङ्गीतगोष्ठीमाचरयन्त्यो यदीयं यशः प्रथमं गातुमिच्छन्तीत्यर्थः, येन दशरथेन आद्यः पुमान् पुराणपुरुषो विष्णुः पितृमान्, विष्णुरपि यस्य सुतभावेनावतीर्ण इत्याशयः, येन दशरथेनैव वसुमती पृथिवी राजन्वती सुराजशालिनी, इन्द्रः शक्रः संगरसंकटेषु युद्धरूपे विषमे वीरस्य युद्धकुशलस्य यस्य दशरथस्य उन्मुखम् अभिमुखं यथा स्यात्तथा प्रेङ्खन्त्यः वायुवशाच्चलन्त्यो याः स्यन्दनकेतनाम्बरदशाः रथनिबद्धध्वजपताकाञ्चलानि तासां सन्दर्शनात् अवेक्षणात् दुर्दशाम् दुरवस्थां भयकृताम् विजहौ, युद्धे समासक्तः शक्रो यस्य रथपताकाञ्चलं वायुमचलमभिमुखमागच्छदवेक्ष्य दशरथमायान्तमनुमाय स्वपक्षविजयसम्भावनादार्ढ्येन तात्कालिकीं स्वां दीनां दशामहासीदिति यावत्। यदीयं यशो देवाङ्गनाः प्रथमं गायन्ति, यं विष्णुरपि पितृत्वेनाहृत्य गौरविणं चक्रे, येन पृथिवी राजन्वती, यो युद्धे शक्रमपि साहायकेन विषमकष्टादुद्धरति, सोऽयं दशरथो मिथिलामुपागत इति पूर्वोक्तक्रियान्वयेन वाक्यार्थः। 'मुखं प्रधाने प्रारम्भे वक्त्रे' इति नानार्थमाला। 'सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्' इति 'वर्त्यवस्थांऽशुकांशेषु दशा' 'प्रतिज्ञाऽऽजि संविदापत्सु संगरः' इति च ते ते कोशाः। तिलकायत इत्युपमा। शार्दूलविक्रीडितमेव वृत्तम् ॥ १०६ ॥

जिस दशरथ की कीर्त्तिको देवाङ्गनायें अपनी संगीतगोष्ठीमें प्रथम स्थान प्रदान कर गाती हैं, जिसे पुराणपुरुषका पितृपद प्राप्त है, जिससे पृथ्वी सुराजयुक्त हुई है और इन्द्र जिसके रथध्वजपट की दशा अञ्चलको वायुद्वारा लहराती तथा अपनी तरफ आती

१. 'न्मुखः' इति पाठान्तरम्।

हुई देखकर युद्धस्थलकी दुर्दशासे मुक्त होते हैं अर्थात् युद्धमें सहायता करके जो इन्द्रको आपत्तिसे मुक्ति प्रदान करते हैं (वे दशरथ मिथिला आये) ॥ १०६ ॥

[1]जनकः स्वकनीयांसमाजुहाव कुशध्वजम् ।
हत्वा युधि सुधन्वानं साङ्काश्ये स्थापितं पुरे ॥ १०७ ॥

जनक इति । जनकः मिथिलाधीशः सुधन्वानं नामराजविशेषं युधि संग्रामे हत्वा साङ्काश्ये तदाख्ये पुरे स्थापितम् प्रतिष्ठापितम् स्वकनीयांसम् स्वानुजम् कुशध्वजम् आजुहाव आहूतवान् दूतमुखेनेति शेषः, तत्पुत्र्योरपि विवाहस्य चिकीर्षितत्वेन तदाह्वानस्यावश्यकत्वं बोध्यम् ॥ १०७ ॥

जनकने अपने छोटे भाई कुशध्वजको—जो युद्धमें सुधन्वाको मार कर उसकी राजधानी साङ्काश्यपुरीमें प्रतिष्ठित किये गये थे—दूत द्वारा बुला लिया ॥ १०७ ॥

तदनु ताभ्यामभ्यर्चितः सपुरोहितो दशरथस्तत्र पुत्राणां गोदानमङ्गलं निर्वर्तयामास ।

तदन्विति । तदनु कुशध्वजागमनात् परतः ताभ्याम् जनककुशध्वजाभ्याम् अभ्यर्चितः साधुसत्कृतः सपुरोहितः पुरोहितेन वसिष्ठेन सहितो दशरथस्तत्र मिथिलायाम् पुत्राणां रामादीनाम् चतुर्णां गोदानमङ्गलम् गोदानकेशान्तादिसंज्ञया प्रथितं विवाहात् प्राक्करणीयं संस्कारविशेषम् निर्वर्त्तयामास कृतवान् । गावो लोमानि दीयन्ते खण्ड्यन्ते यत्र तत् गोदानम् केशान्तः, उक्तञ्च कर्मेदं कालिदासेन—'अथास्य गोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्त्तयद् गुरुः इति ।

इसके पश्चात् कुशध्वज और जनकसे यथावत् सत्कृत होकर दशरथने वहीं पर अपने पुत्रोंका गोदानविधि सम्पन्न करवाया ।

जग्राह जनकात्सीतां तातादेशेन राघवः ।
आम्नायशासनेनार्चां यजमानादिवानलः ॥ १०८ ॥

जग्राहेति । राघवः रघोर्गोत्रापत्यं पुमान् श्रीरामः तातादेशेन पितुराज्ञया जनकात् सम्प्रदातुः सीताम् तदाख्यां तस्य पुत्रीम्, आम्नायशासनेन वेदवचनेन यजमानात् यजनपरात् गृहस्थादेः अर्चाम् होमादिसत्क्रियाम् अनलः वह्निरिव जग्राह गृहीतवान्, यथा वेदवचसा वह्निर्यजमानविहितां होमादिक्रियां स्वीकरोति तथैव दशरथाज्ञया रामः सम्प्रदातुर्जनकात् सीतां स्वीचकारेति भावः । उपमालङ्कारः ॥ १०८ ॥

पिताकी आज्ञासे रामचन्द्रने जनकद्वारा दी गई सीताको स्वीकार किया, जैसे वेदकी आज्ञासे वह्निदेव यजमानद्वारा की गई होमादि सत्क्रियाको स्वीकार करते हैं ॥ १०८ ॥

---

१. 'ततः । जनकः' इति पाठान्तरम् ।

आश्चर्यमेतत् ।

आश्चर्यमिति । आश्चर्यम् अद्भुतमेतत् , अजायतेति शेषः ।

यह आश्चर्य है ।

गुणमनिमिषचापे कञ्चिदारोप्य सीतां
कुशिकतनयवाक्यादग्रहीद्रामभद्रः ।
तदनु तदनुजन्मा मैथिलेन्द्रस्य चित्ते
निहितबहुगुणः सन्नूर्मिलां लक्ष्मणोऽपि ॥ १०९ ॥

गुणमिति । रामभद्रः रामः कुशिकतनयवाक्यात् विश्वामित्रवचनात् अनिमिषाः देवास्तेषां चापे धनुषि कञ्चित् एकम् गुणम् मौर्वीम् आरोप्य आसज्य सीताम् अग्रहीत् वैवाहिकेन विधिना स्वीकृतवान् , तदनु पश्चात्ततः तदनुजन्मा रामानुजः लक्ष्मणोऽपि मैथिलेन्द्रस्य मिथिलापतेः चित्ते हृदये निहितबहुगुणः स्थापितस्वीयविद्याविनयादिरूपगुणराशिः सन् ऊर्मिलां तदभिधानां सीतास्वसारम् अग्रहीत् इति योजना । रामो देवानां चापे गुणमेकं प्रत्यञ्चारूपमारोप्य सीतामुपयेमे तदनु लक्ष्मणोऽपि जनकहृदये स्वगुणराशिसमासक्त्योर्मिलया सह विवाहमकृतेति भावः । गुणपदमेकत्र प्रत्यञ्चापरमपरत्र विद्याविनयादिपरम् , चापे एकं गुणमारोप्य ज्येष्ठभ्रात्रा सीता लब्धा, कनीयांस्तु बहून् गुणान् विद्यादीन् हृदये मिथिलेशितुरारोप्योर्मिलामलभतेति वैचित्र्यं चमत्कारकम् 'गुणोऽप्रधाने रूपादौ मौर्व्यां सूदे' इति विश्वः । मालिनीवृत्तं लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ १०९ ॥

देवसम्बन्धी धनुष पर किसी एक गुण-प्रत्यञ्चाको आरोपित करके विश्वामित्रकी आज्ञा से रामने सीताको स्वीकार किया और उसके बाद उसके छोटे भाई लक्ष्मणने मिथिलापतिके हृदयमें अपने अनेक गुण–विद्या, विनय, सुशीलता आदि–को निहित करके ऊर्मिलाको पाया ॥ १०९ ॥

ततो भरतशत्रुघ्नौ कुशध्वजनियोगतः ।
माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्यामभूतां गृहमेधिनौ ॥ ११० ॥

तत इति । ततः रामलक्ष्मणविवाहोत्तरकाले कुशध्वजनियोगतः जनकभ्रातुः कुशध्वजस्य निदेशतः कथनात् तदीयमनुरोधमङ्गीकृत्येत्यर्थः, माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्याम् तदाख्याभ्याम् कुशध्वजतनयाभ्यां गृहमेधिनौ गृहस्थौ कृतदारपरिग्रहाविति भावः, अभूताम् जातौ । रामलक्ष्मणविवाहात्परतः कुशध्वजः स्वां कन्यां माण्डवीं भरताय श्रुतकीर्त्तिम् च शत्रुघ्नाय दत्तवान् , ताभ्यां च तौ पुत्रौ गृहस्थभावं भेजतुरित्यर्थः । गृहैर्दारैर्मेधेते इति गृहमेधिनौ । 'दारेष्वपि गृहाः' इत्यमरः ॥ ११० ॥

अनन्तर कुशध्वजके कहनेसे भरत और शत्रुघ्न यथाक्रमसे माण्डवी और श्रुतकीर्त्तिके साथ विवाह करके गृहस्थ बने ॥ ११० ॥

अथ दशरथः [१]तनयैः सह कृतविवाहैर्विदेहेभ्यः प्रतिनिवर्तमानः [२]संवर्तसमयसमुज्जृम्भितहुतवहदु[३]:सहरोषं भीषणदुर्वारपराक्रमं क्षत्रवर्गगर्वसर्वंकषपरश्वधधाराधीनरुधिरधारा[४]कल्पितपितृतर्पणं दर्पवतामग्रेसर[५]मुग्रप्रतापिनं तपःसमुचितव[६]ल्कलवसनमपि वासनावशादनतिपरिमुषितयुद्धश्रद्धं मध्येमार्गं [७]भार्गवं मुनिं राममद्राक्षीत् ।

अथेति । अथ चतुर्णामपि पुत्राणाम् विवा जाते कृतविवा : कृतदारपरिग्रहैः तनयैः पुत्रैः सह विदेहेभ्यः मिथिलातः प्रतिनिवर्त्तमानः परावर्त्तमानः संवर्त्तसमये प्रलयकाले समुज्जृम्भितः प्रवृद्धः यो हुतवहः वह्निः तद्वत् दुःसहः भीषणतया सोढुमशक्यः रोषः कोपो यस्य स तम् प्रलयकालप्रखरवह्निवदसह्यकोपमित्यर्थः, भीषणदुर्वारपराक्रमम् भयङ्करेण अवार्येण च पराक्रमेण युक्तम् , क्षत्रवर्गस्य क्षत्रियसमुदयस्य यो गर्वः शौर्यदर्पस्तस्य सर्वङ्कषः समग्रभावेन संहर्त्ता यः परश्वधः परशुः तस्य धारा तैक्ष्ण्यम् तदधीना तद्वशगा तया प्रवर्त्तिता क्षत्रियांश्छित्त्वा प्रवाहिता या रुधिरधारा शोणितस्रोतः तत्र कल्पितं पितृतर्पणं येन तादृशम् , यः क्षत्रियगर्वसंहारपरायणेन स्वपरशुना क्षत्रियांश्छित्त्वा तद्रुधिरधारायां पितृतर्पणं कृतवान् , तमित्यर्थः, दर्पवताम् शौर्यादिमदशालिनामग्रगण्यम् , तपःसमुचितवल्कलवसनम् तपस्योपयोगितरुत्वचं धारयन्तम् अपि वासनावशात् प्राक्तनसंस्कारमाहात्म्यात् अनतिपरिमुषिता सामस्त्येनानपगता युद्धश्रद्धा समरस्नेहो तादृशम् , मध्येमार्गं पथि भार्गवं मुनिम् भृगुवंशजम् तपस्विनम् रामं परशुरामम् अद्राक्षीत् दृष्टवान् । दशरथो यदा पुत्रान् विवाह्य तैः सह मिथिलातः परावर्त्तमान आसीत्तदा मार्गे परशुरामं नाम मुनिं दृष्टवान् यः प्रलयकालिकवह्निसमानरोषो, भयङ्करपराक्रमः, क्षत्रियवर्गगर्वहारिपरशुकृत्तक्षत्रियरुधिरमये पयसि कृततर्पणः, अतिदृप्तः, उग्रप्रतापः, तपस्विजनोचितवल्कलधरः सन्नपि पूर्वतनसंस्कारवशाद्युद्धकामुकश्चासीदिति वाक्यार्थः । 'संवर्त्तः प्रलयः कल्पः' 'परशुश्च परश्वधः' इत्युभयत्रामरः । 'उग्रप्रतापिनम्' इत्यत्र मतुवर्थीयोपपत्तिश्चिन्त्या, 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः' इति स्पष्टनिषेधात् ।

अनन्तर ब्याहे गये पुत्रोंके साथ जब दशरथ मिथिलासे लौट रहे थे, तब रास्तेमें उनको भार्गव परशुराम मिले, जो परशुराम प्रलयकालमें वर्धमान वह्निके सदृश रोषसे युक्त थे,

१. 'स्वतनयैः' इति पा० । २. 'दुर्निमित्तदूयमानान्तरङ्गः सवत' इति पाठान्तरम् ।
३. 'दुःसहरोपभीषणम्' इति पाठान्तरम् ४. 'परिकल्पितं' इति पाठान्तरम् ।
५. 'समुदग्रप्रतापम्' इति पा० । ६. 'वल्कलमयवसनं वसानम् इति पाठान्तरम् ।
७. 'भार्गवमुनिमन्विष्टरामभद्रम्' इति पाठान्तरम् ।

जिनका पराक्रम अतिभयङ्कर तथा अवार्य था, जिन्होंने क्षत्रियोंके गर्वको दूर करने वाले अपने परशुसे छिन्न क्षत्रियोंके रुधिरकी धारमें पितृतर्पण किया था, जो दर्पवालोंके अग्रगण्य थे, जिन्होंने तपस्वियोंके योग्य वल्कल तो पहन लिया था किन्तु संस्कारवश युद्धप्रिय बने रहे थे।

अप्राक्षीच्च तन्निरीक्षणादेव प्रक्षीणहर्षोऽपि महर्षिभिः [1]सह विधाय सपर्यामा[2]र्यशील, कुशलमिति।

अप्राक्षीच्चेति। तन्निरीक्षणात् भार्गवदर्शनात् प्रक्षीणहर्षः नष्टप्रमोदोऽपि (दशरथः) महर्षिभिः वसिष्ठादिमुनिभिः सपर्याम् परशुरामस्य यथोचितं सत्कारम् विधाय कृत्वा आर्यशील, हे सत्स्वभावशालिन् भगवन् परशुराम, कुशलम्? अपि भवतः कुशलमस्ति? इति अप्राक्षीत् पृष्टवान् च। यदैव दशरथो भार्गवमद्राक्षीत्तदैव तत्कर्त्तव्यस्मरणादस्यानन्दो गतो बभूव तथापि भद्रतापालनाय तं पूजयित्वा ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेदिति स्मृत्यनुरोधेन कुशलप्रश्नं कृतवानिति तात्पर्यम्। 'पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्या चार्हणाः समाः इत्यमरः।

परशुरामको देखते ही दशरथका हर्ष जाता रहा, फिर भी उन्होंने महर्षियोंके साथ करके परशुरामका समयोचित पूजन किया और कुशल प्रश्न किया।

अथ दशरथवाणीं तामशृण्वन्प्रसन्नां
भृगुपतिरिदमूचे [3]प्रश्रितं रामभद्रम्।
अवजिगमिषुरासं जीर्णचापात्तकीर्ते-
रविदितपरशोस्ते दोर्मदं कार्मुकेऽस्मिन्॥ १११॥

अथेति। अथ दशरथकृतकुशलप्रश्नानन्तरम् प्रसन्नाम् प्रसादगुणयुक्ताम् कोमलामिति यावत्, ताम्पूर्वोक्तप्रकाराम् दशरथवाणीम् दशरथभाषितम् अशृण्वन् उपेक्षयाऽनाकर्णयन् भृगुपतिः परशुरामः प्रश्रितम् विनीतम् रामभद्रम् इदं वक्ष्यमाणं वचनमूचे, वक्ष्यमाणप्रकारेणाह। जीर्णः पुराणत्वाद्गतसारो यश्चापो हरधनुस्तेन आत्तकीर्त्तेः लब्धयशसः पुराणं हरचापं भञ्जयित्वा लब्धेन यशसा विकत्थमानस्येत्यर्थः, अविदितपरशोः अज्ञातमदीयपरश्वधप्रभावस्य ते तव दोर्मदं भुजदर्पम् अस्मिन् मत्संबन्धिनि कार्मुके चापे अवजिगमिषुः ज्ञातुमिच्छुः आसम् अभूवम्। ... त्तिषि। अयमाशयः—दशरथोक्तमनाकर्णितकेनापमत्य परशुरामो राममाह यदहं तव पराक्रममत्र मया धार्यमाणे धनुषि परीक्षितुमागतोऽस्मि, शैवं धनुस्तु जीर्णतया निःसारमासीत्तद्भञ्जनेन त्वया यद्यशो लब्धं तेन तव गर्वो पृथैव, यदि त्वं यथार्थभावे

१. 'समम्' इति पाठान्तरम्। २. 'आर्यशीलः कुशलमन्वयुक्त' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्रस्थितम्' इति पाठान्तरम्।

चलत्वात् भविष्यसि तदेदं मम धनुर्नमयिष्यसि, तथाकरण एव तव वास्तवं यशो भविष्यतीति। इदमेव जिज्ञासुरत्रागतोऽस्मीति प्रसङ्गार्थः। मालिनीवृत्तम्, 'ननम-मययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १११ ॥

अनन्तर दशरथकी कोमल उक्तिको अनसुनी करके परशुरामने विनीतभावसे वर्त्तमान रामभद्रसे कहा कि तुमने पुराने शैवधनुषका भञ्जन करके यश प्राप्त कर लिया है, तुम हमारे परशुको नहीं जानते हो, इसलिये तुम्हारे भुजबलकी इस धनुष पर परीक्षा करनेकी इच्छा थी, इसीलिये इधर चला आया हूँ ॥ १११ ॥

आदाय तत्सगुणमाशु विधाय तत्र
सन्धाय बाणम[1]वधार्य तपोधनत्वम्।
[2]तज्जीवितस्य दयमानमना मनीषी
सम्भूतघोरसमराद्विरराम रामः ॥ ११२ ॥

आदायेति। मनीषी विवेकबुद्धिसम्पन्नः रामः तत् भार्गवकार्मुकम् आदाय गृहीत्वा आशु विनैव विलम्बम् तत्र धनुषि बाणं सन्धाय बाणमारोप्य, तपोधन-त्वम् परशुरामस्य तपस्वित्वम् अवधार्य विचार्य तज्जीवितस्य परशुरामप्राणानाम् दयमानमनाः दयायुक्तहृदयः सन् सम्भूतघोरसमरात् समुपस्थितभयानकयुद्धात् विरराम विरतः अभूत्। विवेकी रामोऽनुपदमेव परशुरामसम्बन्धिनि चापे बाण-मारोप्य परशुरामस्य ब्राह्मणत्वं दृष्ट्वा तदीयान्प्राणान् ग्रहीतुमनिच्छुस्तं मारयितुं नैच्छत्, अत एव चोपस्थितादपि युद्धाद् विरतिमेव भेज इत्यर्थः, 'जीवितस्य दयमानमनाः' इत्यत्र जीवितपदे 'अधीगर्थदयेशां कर्मणी'ति षष्ठी। वसन्ततिलकं वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ ११२ ॥

विवेकसम्पन्न रामचन्द्रने परशुरामके हाथसे धनुष लेकर शीघ्र उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी, परशुरामको तपस्वी ब्राह्मण जानकर दयासे उनपर प्रहार करके उनके प्राण नहीं लिये और उस उपस्थित युद्धसे विरत हो गये ॥ ११२ ॥

किञ्च—

तावुभौ भृगुवंशसम्भवौ चापदण्डजमदग्निसम्भवौ।
प्रह्वभावमवलम्ब्य केवलं राघवार्पितगुणौ बभूवतुः ॥ ११३ ॥

तावुभाविति। भृगुः परशुरामपिता, वंशो वेणुस्तौ सम्भव उत्पत्तिस्थानं ययो-स्तौ तथोक्तौ, चापदण्डजमदग्निसम्भवौ चापपरशुरामौ प्रह्वभावम् आरोपणप्रयुक्तं नम्रत्वम् शक्तिह्राससम्भवं च नम्रत्वम् अवलम्ब्य राघवार्पितगुणौ (चापे रामा-

१. 'अवधाय' इति पाठान्तरम्। २. 'तज्जीविताय' इति पाठान्तरम्।

र्पितप्रत्यञ्चत्वम्, परशुरामे रामार्पितस्वीयवैष्णवांशसत्त्वगुणत्वञ्चात्र विवक्षितं) तेन राघवेण अर्पितो गुणो यत्र राघवायार्पितो गुणो येनेति च विगृह्योपपत्तिः करणीया। बभूवतुः जातौ। अयमाशयः—भृगुत उत्पन्नः परशुरामः वेणुत उत्पन्नश्च चापदण्डस्तावुभौ नम्रौ जातौ (एकत्र नमनात् परत्र गुणह्रासवशात्) सन्तौ राघवार्पितगुणौ रामेणारोपितप्रत्यञ्चो धनुर्दण्डो जातः रामायार्पितस्वीयसत्त्वगुणश्च परशुरामो जात इति। अत्र चापदण्डजमदग्निसंभवयोः केवलप्रकृतयोः प्रकृतप्रह्वभावावलम्बनरूपैकक्रियाभिसम्बन्धात्तुल्ययोगितालङ्कारः, तथा च तल्लक्षणम्—'प्रस्तुतानां पदार्थानामन्येषां वा यदा भवेत्। एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता'॥ रथोद्धतावृत्तम्—'स्यान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति च तल्लक्षणम्॥

भृगुसे तथा वंशवृक्षसे उत्पन्न परशुराम तथा चापदण्ड नम्रता पराभव आधीन्य तथा नमनकृत प्रह्वताको प्राप्तकर राममें अपने गुण सत्त्वप्रकर्षरूप वैष्णव तेजको अर्पित किया और रामद्वारा आरोपित मौर्वीक हुआ॥ ११३॥

युगपत्प्राप्तगुणयोश्चाप[1]भार्गवरामयोः।
ऋजुता वक्रतां प्राप वक्रतापि तथार्जवम्॥ ११४॥

युगपदिति। युगपत् एककाले प्राप्तगुणयोः प्राप्तसाधुत्वमौर्वीकयोः (परशुरामः स्वकठोरतात्यागेन मार्दवं गुणं प्राप धनुश्च मौर्वीरूपं गुणं प्राप) चापभार्गवरामयोः धनुर्दण्डपरशुरामयोः सतोः ऋजुता चापगता सरलता नमनद्वारकां वक्रतां कुटिलतां प्राप, तथा भार्गवस्य वक्रतोग्रतालक्षणा आर्जवं सारल्यं साधुत्वमापेति बोध्यम्। अतिशयोक्तिरलङ्कारः, स्पष्टमन्यत्॥ ११४॥

परशुराम और उनका चाप दोनों को गुण–सौम्यता और प्रत्यञ्चा एक ही साथ प्राप्त हुआ, परन्तु परशुरामकी वक्रता सरलतामें परिणत हो गई और चापकी सरलता कुटिलतामें बदल गई॥ ११४॥

ततस्तत्क्षणममोघेन राघवः शरेण भार्गवस्य [2]स्वर्गतिं रुरोध।

तत इति। ततः धनुष आरोपणेन भार्गवपराजयं कृत्वा तत्क्षणं तस्मिन् काले अमोघेन अव्यर्थेन शरेण बाणेन रामः परशुरामस्य स्वर्गतिम् उत्तमं लोकं रुरोध वारयामास। वैष्णवे चापे आरोपितस्य शरस्य वैयर्थ्यासम्भवेन तेन भार्गवस्योत्तरं लोकमखण्डयदिति भावः।

इसके बाद रामने उस अमोघ बाणके द्वारा भार्गवकी उत्तमगति देहत्यागोत्तर प्राप्य स्वर्गको रोक दिया।

---

१. 'भार्गवयोस्तयोः' इति पाठान्तरम्। २. 'स्वर्गगतिम्' इति पाठान्तरम्।

स्थाने हि तत् ।

स्थाने इति । तत् रामकर्त्तृकं परशुरामस्वर्गतिरोधनम् स्थाने युक्तम्, तत्र युक्तिमग्रेऽभिधास्यति—'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः ।

रामने परशुरामकी स्वर्गतिको रोक दिया यह ठीक हुआ ।

नूनं जनेन पुरुषे महति प्रयुक्त-
माग: परं तदनुरूपफलं प्रसूते ।
कृत्वा रघूद्वहगतेः क्षणमन्तरायं
यद्भार्गवः परगतेर्विहतिं प्रपेदे ॥ ११५ ॥

नूनमिति । जनेन महति महामहिमशालिनि पुरुषे विषये प्रयुक्तम् कृतम् आगः अपराधः तदनुरूपफलम् यादृशोऽपराधस्तादृशं फलम् नूनं निश्चयेन प्रसूते उत्पादयति, जनो महापुरुषविषये यादृशमपराधं तदुचितं फलमवाप्नोति, तत्र दृष्टान्तमुपन्यस्यति—कृत्वेति । रघूद्वहो रघुवंशमुख्यो रामस्तस्य गतेः अयोध्योन्मुखाया उत्तरदेशप्राप्तेः क्षणम् कियन्तं कालं यावत्, अन्तरायम् विघ्नम् कृत्वा भार्गवः परशुरामः परगतेः स्वर्गादिप्राप्तेः विहतिं नाशं बाधां प्रपेदे प्राप्तवान् । रामस्यायोध्यां प्रति प्रस्थितस्य यात्रां कथोपकथनधनुर्नमनादेशप्रदानादिना परशुरामः कियतः कालस्य कृते प्रत्यबध्नात्, तत्फलतया तेन रामेण कृता स्वर्गतिविहतिरासादिता, अतः सिद्धमिदं यन्महापुरुषे विहितमागस्तदनुरूपं फलं जनयतीति । 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः । विशेषेण सामान्यसमर्थनात्स्माऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ११५ ॥

यदि कोई भी आदमी महान् जनके प्रति अपराध करता है तो उसको उसके अनुकूल दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है । परशुरामने थोड़ी देरके लिये रामकी गतिको रोका तो उन्हें उसके बदलेमें अपनी उत्तरगतिसे हाथ धोना पड़ गया (रामने उनकी स्वर्गतिका नाश कर दिया था) ॥ ११५ ॥

अथ सङ्क्रान्तया जामदग्न्यशक्तिसम्पदा सम्पन्नं पन्नगपरिवृढभोगभुजाभिरामं राम[1]मविरलमालिङ्ग्य मूर्ध्न्युपाघ्राय दशरथः [2]परिखयेव परिसरे परिसरन्त्या सरयूसरितानुविद्धामयोध्यां दारकान् सदारान् सादरमवलोकयन्तीनां पौरपुरन्ध्रीणां [3]नीरन्ध्रितगवाक्षैः कटाक्षैः सौन्दर्यवञ्चिता[4]पिञ्छैः [5]पिञ्छातपत्रायमाणधवलातपत्रः प्रविवेश ।

---

१. 'अविरलपुलकम्' इति पाठान्तरम् । २. 'सपरिखयेव' इति पाठान्तरम् ।
३. 'नीरन्ध्रत' इति पाठान्तरम् । ४. 'तापिञ्छैः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'पिञ्छातपत्रा' इति पाठान्तरम् ।

अथेति। अथ जामदग्न्यपरलोकबाधानन्तरं सङ्क्रान्तया विष्णोरवतारभूतं परशुरामं विहाय नवेऽवतारे रामे समागतया जामदग्न्यशक्तिसम्पदा जामदग्न्यसामर्थ्येन सम्पन्नम् युक्तम् पन्नगानां सर्पाणां परिवृढः प्रभुः शेषनागस्तस्य भोगः फणामण्डलम् तदुपमो भुजो बाहुस्तेनाभिरामं रमणीयम् शेषनागफणावत्सर्वसहाधारणक्षमबाहुना युक्तमित्यर्थः। रामम् स्वज्येष्ठपुत्रम् अविरलम् गाढम् आलिङ्ग्य आश्लिष्य मूर्ध्नि शिरोदेशावच्छेदेन उपाघ्राय आघ्राणं कृत्वा, (तथाकरणं स्नेहसूचनाय, कृच्छ्रनिर्गतं पुत्रं पितरौ शिरसि जिघ्रतः इति प्राचीनाचारः) परिखया परितः खाता परिखा, तया जलदुर्गरूपया इव परिखास्थाने स्थितया परिसरे समीपदेशे परिसरन्त्या वहन्त्या सरयूसरिता सरयूनामकनद्या अनुविद्धाम् वेष्टिताम्, अयोध्याम् तदाख्यां स्वराजधानीं दशरथः प्रविवेशेति वाक्यार्थः, तत्रैकं दशरथविशेषणमवशिष्यते—सदारानिति। दारकान् चतुरोऽपि राजपुत्रान् सदारान् कृतविवाहतया सभार्यान् सादरम् सबहुमानम् अवलोकयन्तीनाम् पौरपुरन्ध्रीणाम् नगरवर्त्तिवनितानाम् नीरन्ध्रितगवाक्षैः जालमार्गं व्याप्नुवद्भिः सौन्दर्यवञ्चितत्तापिच्छैः सौरूप्यपरास्ततमालतरुपुष्पैः कटाक्षैः दर्शनैः पिञ्छातपत्रम् मयूरबर्हमयं छत्रम् पिञ्छातपत्रायमाणम् मयूरबर्हनिर्मितच्छत्रतुलनां गतम् धवलातपत्रम् श्वेतच्छत्रं यस्य तादृशः। अयमर्थः—विष्णोरंशभूते परशुरामे वैष्णवीया शक्तिरासीत्सा रामे संक्रान्ता, तादृशश्चासौ महाशक्तिसम्पन्नः शेषनागोपभुजश्चाजायत, तादृशं परशुरामसंभावितकष्टादुद्धृतं दृष्ट्वा द्रवन्मनाः पिता दशरथो रामङ्गाढमाश्लिष्टवान् शिरस्याघ्रातवांश्च, अथ दशरथः स्वां पुरीं प्रविवेश या परिखाकार्यं परोद्रवनिवारणमिव कर्त्तुमयोध्यापरिसरे प्रवहति, दशरथेन सह चत्वारस्तत्तनयाः सस्त्रीका आसँस्तान्द्रष्टुं सोत्कण्ठा अयोध्यापुरनार्यो निजकटाक्षैर्गवाक्षानापूरयन्, गवाक्षनिर्गताभिस्तमालपुष्पश्यामतागर्वसर्वङ्कषाभिस्तन्नयनप्रभाभिः समापतिताभिर्दशरथस्य धवलमपि च्छत्रं श्यामाभं सन्मयूरबर्हकृतमिव प्रत्यभासतेति। 'वातायनं गवाक्षः' 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छः' 'पिच्छबर्हे नपुंसकम्' इति सर्वत्रामरः। अत्र धवलातपत्रस्य नैल्यप्रतीतेस्तद्गुणालङ्कारः।

इसके बाद परशुरामके परास्त हो जानेसे उनकी भी शक्ति राममें चली आई, उस शक्ति से युक्त, शेषनागके फणके समान भुजवाले रामको गले लगाकर शिर सूंघकर, दशरथ परिखाकी भांति समीपमें वहनेवाली सरयूनदीसे घिरी अयोध्या नामक अपनी पुरीमें आगये। जब वे पुरीमें प्रवेश कर रहे थे तो उनके साथ आते हुए उनके कृतविवाह तथा सस्त्रीक राजकुमारोंको देखनेके लिये उस नगरकी स्त्रियाँ उतावली हो रही थीं, उन्होंने अपने नेत्रोंकी कटाक्षच्छटासे गवाक्षोंको भर दिया था, उनकी नयनकान्ति—जो सुन्दरतामें तमालको परास्त कर रही थी—दशरथके श्वेतातपत्र पर पड़ रही थी। जिससे उनका श्वेत आतपत्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह मयूरपिच्छसे बना हो।

[1]लज्जावशादविशदस्मरविक्रियाभि-
स्ताभिर्वधूभिरतिवेलमवाप्तसौख्यान् ।
इक्ष्वाकुनाथतनयान् प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ॥ ११६ ॥

लज्जावशादिति । लज्जावशात् त्रपापारतन्त्र्यात् अविशदाः अस्फुटाः स्मरविक्रियाः कामचेष्टाः यासाम् ताभिः मुग्धात्वस्वाभाव्यात्तासां लज्जाभयपराधीनरतिकतया कामव्यापारेष्वप्रकाशेच्छाशालिभिस्ताभिः सीतादिभिः वधूभिः स्वस्वस्त्रीभिः अतिवेलम् अत्यर्थम् अवाप्तसौख्यान् लब्धप्रीतीन् चतुरः चतुःसंख्याकान् रामादीन् इक्ष्वाकुनाथतनयान् दशरथपुत्रान् तारुण्ययोगेन युवावस्थासम्बन्धेन चतुरः निपुणः प्रिय इत्यर्थः, रसानाम् शृङ्गारादिनवविधरसानाम् प्रथमः आद्यः शृङ्गारनामा सिषेवे सेवां कृतवान् । समुग्धवनितानां तेषां रामादीनां चतुर्णां राजपुत्राणां शृङ्गारः प्रववृत इत्यर्थः । शृङ्गारपदस्य संभोगविप्रलम्भोभयविधशृङ्गाररसवाचित्वेऽप्यत्र संभोगपर्यवसायिता बोध्या । संभोगश्च—'दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ । यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः' इत्युक्तलक्षणो बोध्यः ॥ ११६ ॥

लज्जावश जो अपने मनोभावोंको स्पष्टरूपसे प्रकट नहीं करती हैं ऐसी मुग्धा सीता आदि चारो स्त्रियों के साथ प्रसाद प्राप्त करते हुए उन चारो रामादि दशरथ पुत्रोंको यौवनमें प्रीतिकर शृङ्गार सुख प्राप्त होने लगा ॥ ११६ ॥

विद्ययेव त्रयीदृष्ट्या दर्भपत्राग्रधीः सुधीः ।
राजपुत्र्या तया रामः प्रपेदे प्रीतिमुत्तमाम् ॥ ११७ ॥

विद्ययेवेति । दर्भपत्राग्रधीः कुशाग्रबुद्धिः सुधीर्विद्वान् त्रयीदृष्ट्या वेदत्रयपर्यालोचनात्मिकया विद्यया ज्ञानेन इव रामस्तया सीताभिधया राजपुत्र्या जनककन्यया उत्तमाम् प्रीतिम् परमानन्दम् प्राप । यथा कश्चित्कुशाग्रबुद्धिर्विद्वान् वेदत्रयालोचनजन्यज्ञानेनानन्दति तथैव रामः सीतया परमानन्दमवापेति भावः । 'इति वेदास्त्रयस्त्रयी' इत्यमरः । उपमालङ्कारः ॥ ११७ ॥

जिस प्रकार कोई तीक्ष्णबुद्धि विद्वान् वेदत्रयके पर्यालोचनसे उत्पन्न विद्यासे परमप्रमोदको प्राप्त करता है उसी प्रकार रामने सीतासे प्रकृष्ट आनन्दको प्राप्त किया ॥ ११७ ॥

इति श्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे बालकाण्डं समाप्तम् ।



१. 'तत्र । लज्जा' इति पाठान्तरम् ।

अथ अयोध्याकाण्डम्

गच्छता दशरथेन निर्वृतिं भूभुजामसुलभां भुजाबलात्।
मातुलस्य नगरे युधाजितः स्थापितौ भरतलक्ष्मणानुजौ ॥ १ ॥

गच्छतेति। भुजाबलात् निजबाहुपराक्रमात् भूभुजाम् इतरमहीपालानाम् असुलभाम् दुरवापाम् निर्वृतिम् सुखम् अनुभवता, भुजबलेन सर्वत्र शान्तिस्थापनान्निर्वृतमानसतयाऽन्यमहीपालमनोरथाविषयसुखानुभविनेत्यर्थः। दशरथेन तदाख्येनायोध्याधीशेन भरतः लक्ष्मणानुजः शत्रुघ्नश्चेति भरतलक्ष्मणानुजौ नाम स्वपुत्रौ मातुलस्य भरतमातुः कैकेय्या भ्रातुः युधाजितः नगरे अश्वमेधपुरे स्थापितौ रक्षितौ। दौहित्रप्रियस्य तद्दिदृक्षावद्धभावस्य केकयाधीशस्य नगरेऽश्वमेधपुरसंज्ञके भरतशत्रुघ्नौ स्थापितौ, स्वयं च निजबाहुबलेन शमितसकलोपद्रवतया शान्तेरनुभवादित्यर्थः। भुजरूपेऽर्थे भुजाशब्द आवन्तोऽपि प्रयुज्यते, यथा—'त्रेतायां रघुनायकस्य महितख्याता भुजाया यथा' इति। 'निर्वाणं निर्वृतिः सुखम्' 'मातुर्भ्राता तु मातुलः' इत्युभयत्राप्यमरः। अयोध्याकाण्डस्यादौ वाल्मीकिना—'गच्छता मातुलकुलम्' इत्येवमारम्भः कृतः, भोजराजेनाप्यत्र गच्छतेत्यारम्भः कृतः, तत्र मङ्गलाचारदृष्टिश्चमत्कारसृष्टिकामना वा कारणं बोध्यम्। एवमग्रेतनकाण्डेष्वपि तत्तत्काण्डीयश्लोकाद्यक्षरानुकरणं कृतं वेदितव्यम्। रथोद्धता वृत्तम्, 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति च तल्लक्षणम् ॥ १ ॥

दशरथने अपने बाहुबलसे सर्वत्र अन्य नृपोंके लिये दुर्लभ शान्ति स्थापित करके असाधारण सुख प्राप्त किया था और भरत और शत्रुघ्नको उनके मामा युधाजितके अनुरोध करने पर ननिहालमें रख छोड़ा था ॥ १ ॥

अथ दशरथः पुत्रं रामं स्वतस्त्रिजगत्पति
स्वविषयमहीमात्रे कर्तुं पतिं विदधे मतिम्।
भुवनभरणे [1]कल्यं कल्याणभूधरमादरा-
त्स्वगृहपटलीधुर्यस्तम्भं विधातुमना इव ॥ २ ॥

अथेति। अथ भरतशत्रुघ्नयोर्मातुलनगरे प्रतिष्ठापनारपरतः दशरथः स्वतः भावात् विष्णोरंशतया त्रिजगत्पतिम् लोकत्रितयस्वामिनम् रामम् स्वविषयमहीमात्रे स्वायत्तधरैकदेशे केवले पतिम् राजानम् कर्तुं मतिं बुद्धिम् विदधे कृतवान्। भरतशत्रुघ्नयोर्मातुलकुलं गतयोर्दशरथः स्वतो लोकत्रयाधीशमपि रामं स्वशासनवर्तिदेशाधिपतिं कर्तुमकामयतेत्याशयः। तत्रोपमामुखेन दृष्टान्तमुपन्यस्यति—

१. 'कल्पं' इति पाठान्तरम्।

भुवनभरण इति। भुवनभरणे त्रिलोकोद्वहने कल्यम् समर्थम् कल्याणभूधरम् हेमाद्रिम् आदरात् अतियत्नात् स्वगृहपटलीधुर्यस्तम्भम् निजगृहनिवहभारवहनक्षमस्तम्भम् विधातुमनाः चिकीर्षुरिव। अयमाशयः—यथा कश्चिदतियत्नेन हेमाद्रिं सकलभूभारवहनक्षममपि स्वगृहमात्रभारवाहिस्तम्भभावेन नियोजयितुमिच्छेत्तद्वद्‌यं दशरथो विष्णवतारतया स्वभावतोऽखिललोकाधीशमपि रामं स्वाधिकारवर्त्तिधरामण्डलपतित्वेन वरीतुमैषीदिति। 'कल्याणमक्षये स्वर्णे कल्याणं मङ्गलेऽपि च' इति विश्वः। धुरं वहति धुर्यः, 'धुरो यड्ढकौ' इति यक्। उपमैवात्रालङ्कारः। हरिणीवृत्तम् 'भवति हरिणी न्सौ म्रौ स्लौ गो रसाम्बुधिविष्टपैः' इति तल्लक्षणम् ॥२॥

इसके बाद दशरथने उस रामचन्द्रको अपने अधिकारमें वर्त्तमान पृथ्वीमात्रका पति-राजा-बनाना चाहा जो राम स्वभावतः तीनो लोकोंके स्वामी हैं, जैसे कोई व्यक्ति संसारको धारण करनेमें समर्थ सुमेरुको आदरसे अपने घरका स्तम्भ बनाना चाहे ॥ २ ॥

तदनन्तरमसौ संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सह पौरवृद्धान् वृद्धश्रवःपुरोधसः समान्[1]समाहूय समादिदेश।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् तादृशसङ्कल्पानन्तरम् असौ दशरथः मन्त्रिभिः स्वामात्यैः सुमन्त्रादिभिः सह संमन्त्र्य विचार्य वृद्धश्रवाः इन्द्रः तस्य पुरोधाः पुरोहितः बृहस्पतिः तेन समान् तुलितान् पौरवृद्धान् विद्यया वयसा च श्रेष्ठान् ग्रामवासिनः समाहूय आमन्त्र्य समादिदेश उक्तवान्।

इसके बाद दशरथने मन्त्रियोंसे परामर्श करके इन्द्र पुरोहित बृहस्पतिके समान विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध नागरिकोंको आमन्त्रित करके कहा।

विदितमेव हि भवतां शिवतातिमेव मतिं दधानाः सुपथा[2] संचरमाणाः प्राणिनां दयमानमानसा मानधनाः यशः[3]समार्जनजागरूकाः जनोपताप[4]संमार्जनतत्पराः परां निर्वृतिमुपेत्य देवभूयं गताः सर्वे नः पूर्वपुरुषा इति।

विदितमेवेति। भवताम् युष्माकम् विदितं ज्ञातम् एव भवन्तो जानन्त्यमेव अस्य वक्ष्यमाणवाक्यार्थः कर्म। सम्प्रति वक्तव्यमाह—शिवतातिम् कल्याणकरीम् मतिम् दधानाः लोककल्याणकामनापरायणाः, सुपथा प्रशस्तमार्गेण नीतिशास्त्रोक्तया पद्धत्या संचरमाणाः व्यवहरन्तः प्राणिनां दयमानमानसाः जीवेषु सदयहृदयाः, मानधनाः अभिमानशालिनः, यशसः कीर्त्तेः समार्जने अर्जने सम्पादने जागरूकाः तत्पराः, जनोपतापस्य प्रजाजनक्लेशस्य संमार्जने दूरीकरणे तत्पराः

---

१. 'समान् पुरोहितान्' इति पाठान्तरम्।   २. 'सुसञ्चरमाणाः' इति पाठान्तरम्।
३. 'अयशःसंसरणिसंमार्जनजागरूकाः' इति पा०।   ४. 'मार्जनपराः' इति पाठान्तरम्।

संल्लग्नाः, पराम् निर्वृतिम् शाश्वतिकीम् शान्तिम् उपेत्य प्राप्य, देवभूयं गताः देवत्वं प्राप्तवन्तः सर्वे नः पूर्वपुरुषाः अखिला अस्माकं पूर्वजा इति। नाविदितमिदं भवतां यदस्मत्पूर्वपुरुषाः सर्वेऽपि कल्याणकरीं बुद्धिं धारयन्तः शास्त्रोक्तमार्गावलम्बिनः सकलजीवेषु दयालवोऽभिमानशालिनः कीर्त्तिसम्पादनसयत्नाः प्रजाकष्टनिवारणप्रयासपराश्च शाश्वतिकीं शान्तिमासाद्य देवत्वमाप्तवन्त इति। 'शिवतातिः शिवङ्करः' इत्यमरः। 'सुपथा सञ्चरमाणः' इत्यत्र 'समस्तृतीयायुक्तात्' इत्यात्मनेपदे शानच्। 'सुपथा' इत्यत्र 'पथो विभाषा' इति वैकल्पिकत्वात्समासान्ताभावः। 'देवभूयम्' इत्यत्र 'भुवो भावे' इति क्यप्। 'भवताम् विदित'मित्यत्र 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' इति वर्त्तमाने क्तः, 'क्तस्य च वर्त्तमाने' इति षष्ठी।

आप लोगोंको मालूम ही है कि हमारे पूर्वज जो सदा कल्याणबुद्धि रखते थे, नीतिशास्त्रके अनुसार बरतते थे, सभी प्राणियों पर दया रखते थे, अभिमान जिनका धन था, जो सदा यश अर्जन करना चाहते थे, जनता के कष्टको दूर करनेमें तत्पर रहा करते थे, वे परमशान्ति प्राप्त करके देवतत्वको प्राप्त हो गये।

तस्मादस्माभिरपि तेषां[1] मनीषामनुसरमाणैरेतावन्तं कालं परिपालिताः किल सकलाः प्रजाः।

तस्मादिति। तस्मात् यतो मम पूर्वजा प्रोक्ताचाराः ततः, पितुराचारस्य पुत्रैरपि परिपालनीयत्वाद्धेतोः अस्माभिः अपि तेषाम् पूर्वजानाम् मनीषाम् इच्छाम् (तदाचारानुमेयाम्) अनुसरमाणैः अनुवर्त्तमानैः एतावन्तम् कालं यावत् सम्प्रति पर्यन्तम् सकलाः समस्ताः प्रजाः प्रकृतयः परिपालिताः रक्षिताः। पूर्वजपथानुसरणेनाहमर्पायन्तं कालं यावत्प्रजापालनमकरवमधुना वृद्धोऽस्मि संवृत्त इति भावः।

हमने भी अपने पूर्वजों की इच्छा का अनुसरण करते हुए इतने दिनों तक सारी प्रजाका पालन किया।

प्रमाणमत्र परिपालन[2]क्रियामिमां मदीयामनुभवन्तो ननु भवन्त एव[3]।

प्रमाणमिति। अत्र मदुक्ते यथापूर्वजाचारमियं धरा मयैतावन्तं कालं यावत्पालितेत्येवंरूपेऽर्थे इमाम् सर्वजनानुभवगोचरीम् परिपालनक्रियाम् प्रजापालनपद्धतिम् अनुभवन्तः साक्षात् कुर्वन्तः भवन्तः यूयम् एव। भवन्तो मम वक्तव्यं प्रमापयितुं समर्था यतो भवन्तो जानन्ति मम व्यवहारमिति भावः। ननु पदमामन्त्रणाभिप्रायम्।

इस विषयमें हमारी प्रजापालनपद्धतिको अपनी आंखोंसे देखनेवाले आप ही प्रमाण हैं।

---

१. 'एतेषां सरणिमनु' इति पाठान्तरम्। २. 'क्रियामनुभवन्तो' इति पाठान्तरम्।
३. 'एवम्' इति पाठान्तरम्।

भवताम[1]भ्युपगमानां निगमानां प्रतीपगामिनीं पदवीं न प्रत्येति खलु लोकस्तदस्ति किंचिदभ्यर्थनीयम् ।

भवतामिति । भवताम् युष्माकम् अभ्युपगमानाम् स्वीकृतीनाम् भवद्भिः सिद्धान्तभावेन व्यवस्थापितानामित्यर्थः, निगमानाम् नीतिशास्त्राणाम् प्रतीपगामिनीम् विरुद्धाम् पदवीम् पन्थानम् लोकः जनसामान्यम् न प्रत्येति न श्रद्धत्ते, (भवन्तो यं सिद्धान्तमभ्युपगच्छन्ति स एव नीतिशास्त्रं, लोकस्तद्विरुद्धं वर्त्म नाश्रयति, यतः) तत् तस्मात् किञ्चित् अभ्यर्थनीयम् वक्तव्यमस्ति । भवतां सम्मतिं सर्वेऽप्याद्रियन्तेऽतोऽहमपि किमपि चिकीर्षितं भवद्भयो निवेद्य तत्र प्रसङ्गे भवतां सम्मतिं जिज्ञास इति ।

आप जिस सिद्धान्तको स्थिर करते हैं, वह नीतिशास्त्र होता है, उसके विरुद्ध मार्गपर लोग श्रद्धा नहीं करते हैं अतः मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है।

मम सुरनरगीतख्यातिभिर्हेतिभिर्वा
दिवि भुवि च समानप्रक्रमैर्विक्रमैर्वा ।
नियतमपरिहार्या या जरा सा मदङ्गे
विकचकमलषण्डे[2] चन्द्रिकेवाविरासीत् ॥ ३ ॥

ममेति । मम दशरथस्य सुरनरगीतख्यातिभिः देवमनुष्यस्तुतप्रतिष्ठैः हेतिभिः अस्त्रैः वा, दिवि स्वर्गे भुवि मर्त्यलोके च समानप्रक्रमैः तुल्यैः विक्रमैः पराक्रमैर्वा या नियतम् निश्चयभावेन अपरिहार्या परासयितुमशक्या सा जरा वृद्धावस्था मदङ्गे मम शरीरे विकचकमलखण्डे विकसितसरोजसमुदये चन्द्रिका कौमुदी इव आविरास्ते प्रकटीभवति । अयमाशयः—यस्या जरावस्थाया अपसारणं न मम सुरैर्मनुष्यैश्च वर्णितकीर्त्तयो हेतयः कर्त्तुमीशाः, नवा यां जरावस्थां दूरीकर्त्तुं मम दिवि भुवि च तुल्यरूपाः पराक्रमाः क्षमन्ते, सा वृद्धावस्था मम शरीरे प्रकटति, यथा विकसितकमलराशौ चन्द्रिकोदियात् । अनयोपमया यथा कमलानि चन्द्रिकया सङ्कुचितानि जायन्ते तथाऽनयावस्थया ममापि शरीरावयवाः शिथिलतां लभन्त इति प्रकाश्यते । 'हेतिः शस्त्रेऽपि नृस्त्रियोः' इति केशवः । 'पलितं जरसा शौक्ल्यं केशादौ विस्रसा जरा' इति 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इति चामरः । मालिनीवृत्तम् ॥ ३ ॥

जिसको देवों तथा मानवों द्वारा प्रशंसित हमारे अस्त्र भगा सकते हैं और न जिसे स्वर्ग और मर्त्य लोकमें समानरूपसे काम करने वाले हमारे पराक्रम दूर कर सकते हैं,

१. 'अभ्युपगतानां निगमानां वा' इति पाठान्तरम् । २. 'खण्डे' इति पाठान्तरम् ।

ऐसी वृद्धावस्था हमारे अङ्गोंमें प्रकट हो रही है जैसे विकसित कमलसमुदाय पर चाँदनी प्रकट हो रही हो ॥ ३ ॥

तस्मात्समस्तक्षत्रवर्गगर्वपाटन[1]वरिष्ठधारापरश्वधभरणभीषणवेषभार्गवभङ्गादपरिच्छिन्नतरशौर्यशालिनि सौजन्यभाजने जनानुरागनिलये निर्मत्सरे[2]वत्सले वत्सेऽस्मिन्विश्वंभराभारं चिरकालधार्यमाणमार्यै[3]रनुमतः सन्नवतार्य विश्रान्तिसुखमनुभवितुमभिलषामीति ।

तस्मादिति । तस्मात् स्वाङ्गे जराऽऽगमस्य स्फुटोपलब्धेः समस्तक्षत्रवर्गस्य कार्त्तवीर्याद्यशेषक्षत्रियजातेः गर्वस्य शौर्यदर्पस्य पाटने विदलने वरिष्ठा ख्याता धारा तैक्ष्ण्यम् यस्य तादृशस्य परश्वधस्य परशुरूपस्य अस्त्रस्य भरणेन धारणेन भीषणः भयङ्करो वेषः स्वरूपं यस्य तादृशस्य भार्गवस्य परशुरामस्य भङ्गात् पराजयात् अपरिच्छिन्नतरशौर्यशालिनि अपरिमितपराक्रमयुक्ते सौजन्यभाजने सुशीलतापात्रे जनानुरागनिलये लोकप्रीतिपात्रे निर्मत्सरे असूयाख्यदोषशून्ये वत्सले सर्वत्र स्नेहपूर्णे वत्से स्वपुत्रेऽस्मिन् रामे विश्वम्भराभारम् पृथिवीपालनव्यापारम् चिरकालधार्यमाणम् मया बहोः कालादुह्यमानम् (भारम्) आर्यैः पूज्यैः भवद्भिः अनुमतः अनुज्ञातः सन् अवतार्य स्वशिरसः अवरोप्य (रामे न्यस्य च) विश्रान्तिसुखम् भारापगमजन्यविश्रामप्रभवमानन्दम् अनुभवितुम् भोक्तुम् अभिलषामि इच्छामि । अयमाशयः—अहं जरावस्थया धृतोऽतः सर्वानपि क्षत्रियान् विगतगर्वान् विधाय प्रसिद्धिंगतया धारयोपेतस्य परशुनामकस्यास्त्रस्य धारणे नातिभयानकस्वरूपं परशुराममपि जित्वा स्वीयामपरिमितशक्तिसम्पन्नतां ख्यापितवति सौजन्ययुक्ते लोकप्रीतिपात्रेऽसूयाख्यदोषरहिते लोकानुरागिणि चास्मिन्स्वपुत्रे रामे स्वेन बहोः कालादुह्यमानां पृथिवीपालनभारं भवतामाज्ञया समर्प्य विश्रमसुखाभिलाषी अस्मीति । अतिशयेन ऊरुः महान् वरिष्ठः, 'प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्ध'इत्यादिना ऊरोर्वरादेशः । 'स्निग्धस्तु वत्सलः' इति विश्वः । विश्वम्भरा शब्दे 'संज्ञायां भृतॄवृजि' इत्यादिना खच् ।

मैं वृद्ध होता जा रहा हूँ अतः चाहता हूँ कि आप पूज्य महानुभावों की अनुमतिसे पृथ्वी पालनका भार, जिसे मैं चिरकालसे ढोता आ रहा हूँ, रामके ऊपर डाल कर विश्रामसुखका अनुभव करूँ। रामने समस्त क्षत्रिय जातिके गर्वको दूर करनेमें प्रसिद्ध धारवाले परश्वधके धारणसे भयङ्कर स्वरूपवाले परशुरामको परास्त करके अपने अपरिमित पराक्रमको प्रकाशित किया है, वह सौजन्यशाली तथा जनप्रिय है, वह लोगों पर प्रेम रखने वाला तथा असूयासे रहित है ।

---

१. 'पटुधारा' इति पा० । २. 'मत्समे च' इति पा० । ३. 'आर्यैरमात्यैः' इति पाठान्तरम् ।

ततः प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहस्तनित[1]नादाकर्णनसमुदीर्णनिरतिशयाह्लाद[2]संसर्गनिरर्गलनिर्गलत्केकालापिनः कलापिन इव जनाः प्रमदभ[3]वकलकलरवमुखरितहरिन्मुखा बभूवुः।

तत इति। ततः एतादृशकथनानन्तरम् प्रावृषेण्यः वर्षासमयसमुत्थितः यः पयोवाहव्यूहः मेघसमुदयः तस्य स्तनितनादः गर्जितशब्दः तस्याकर्णनम् श्रवणम् तेन समुदीर्णः प्रवृद्धः यः निरतिशयाह्लादः असीमहर्षः तस्य संसर्गेण संबन्धेन निरर्गलम् निष्प्रतिबन्धम् निर्गलन्ती प्रकटन्ती या केका मयूरवाणी तामालपितुं शीलं येषां ते तथोक्ताः, कलापिनः मयूरा इव जनाः दशरथपुरतः स्थिता लोकाः प्रमदभवेन आनन्दोत्थेन कलकलरवेण कलकलशब्देन मुखरितम् वाचालीकृतम् हरिन्मुखम् दिगन्तरं यैस्ते तथोक्ताः बभुवुः जाताः। पुरोदीरितं दशरथस्य प्रस्तावमाकर्ण्य वर्षासमयसमुत्थितमेघसमुदायविहितं स्तनितमाकर्ण्य प्ररूढेन महता प्रमोदेन सातिशयं प्रकाशीभवन्तीः केकाः आलपन्तो मयूरा इव पौरजना आनन्दजन्यकलकलशब्देन दिशो वाचालयामासुरित्यर्थः। 'प्रावृष एण्यः' इति प्रावृषेण्यपदसिद्धिः। 'केकावाणी मयूरस्य' 'कोलाहलः कलकलः' इत्युभयत्रामरः।

इतना सुनते ही बरसाती मेघमण्डल की गर्जितध्वनि सुननेसे आनन्दित होनेके कारण अप्रतिबन्धभावसे केका का आलाप करने वाले मयूरोंके समान पौरजन हर्षजनित कलकल शब्दसे दिगन्तरको शब्दायमान करने लगे।

आनन्दबाष्पविसरो[4]वदने प्रजाना-
माविर्बभूव मकरन्द इवारविन्दे।
रामस्य कान्तिमभिषेकदिने भवित्रीं
प्रक्षाल्य चक्षुरिव वीक्षितुमादरेण ॥ ४ ॥

आनन्देति। अरविन्दे कमले मकरन्दः पुष्परस इव प्रजानाम् जनानाम् वदने मुखे आनन्दबाष्पविसरः आनन्दाश्रुप्रवाहः, अभिषेकदिने रामराज्याभिषेककाले भवित्रीं भाविनीम् रामस्य कान्तिम् आदरेण स्नेहेन चक्षुः प्रक्षाल्य प्रमृज्य वीक्षितुम् इव। अयमर्थः—यथा कोऽपि द्रव्यवस्तुविशेषं सातिशयस्नेहेन द्रष्टुम् आदरेण चक्षुः प्रक्षाल्य वैगुण्यमपसार्य चक्षुषी सज्जीकरोति, तथैव प्रजाजनोऽपि रामस्याभिषेककाले भाविनं शोभातिशयं वीक्षितुमिव दशरथप्रस्तावश्रवणसमकालम् उद्गतेनानन्दाश्रुणा निजानि नेत्राणि प्रक्षालयामासुरिवेति। नयनयोरानन्दाश्रुप्रवाहो

---

१. 'निनदाकर्णन' इति पाठान्तरम्। २. 'निसर्गनिर्गलनिर्गलत्केका' इति पाठान्तरम्।
३. 'भरभव' इति पाठान्तरम्। ४. 'नयने' इति पाठान्तरम्।

मन्ये तयोः प्रक्षालनायोद्गतः, प्रक्षालनं च सातिशयस्नेहेन शोभामीक्षितुमिति हृदयम्। 'मकरन्दः पुष्परसः परागः सुमनोरजः' इत्यमरः। फलोत्प्रेक्षा, उपमा चालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

कमलकोशमें परागकी तरह प्रजाजनकी आंखोंमें आनन्दाश्रुप्रवाह छलक उठा, मानों प्रजाजन अभिषेकके अवसरपर बढ़ी हुई रामके मुखकी शोभाको भरपेट देखनेके लिये अपनी अपनी आंखोंको (अश्रुजलसे) धोकर साफ कर लेना चाहता हो ॥ ४ ॥

राजापि तेषां संपत्स्यमानमहोत्सवोत्सुकजनसंमर्दजनिष्यमाणरजोराजिपात[1]परिजिहीर्षयेव रोमाञ्चप्रपञ्चेन कञ्चुकिताङ्गानां प्रमाणातीतां प्रीतिं प्रपन्नानां हर्षप्रकर्षेण द्विगुणीकृतमानन्दमन्तर्नियम्य सुमन्त्रप्रमुखान् मन्त्रिमुख्यानेवमाचख्यौ।

राजेति। राजा दशरथः अपि तेषाम् सम्पत्स्यमानः भावी यः महोत्सवः रामाभिषेकरूपो महः तत्र उत्सुकस्य उत्कण्ठितस्य जनस्य संमर्देन समाहारेण जनिष्यमाणः करिष्यमाणः यः रजोराजिपातः धूलिराशिपतनम्। तस्य परिजिहीर्षया अपचिकीर्षया इव रोमाञ्चप्रपञ्चेन रोमोद्गमराशिना कञ्चुकिताङ्गानां व्याप्तदेहानाम् प्रमाणातीताम् अपरिमिताम् प्रीतिम् आनन्दम् प्रपन्नानाम् लब्धवताम् हर्षप्रकर्षेण महताऽऽनन्देन द्विगुणीकृतम् द्विगुणभावंगमितम् आनन्दम् हर्षम् अन्तर्नियम्य हृदये निगूह्य सुमन्त्रप्रमुखान् सुमन्त्रप्रभृतीन् मन्त्रिमुख्यान् प्रधानामात्याम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण चख्यौ उक्तवान्। भाविनं रामाभिषेकं नाम महोत्सवं द्रष्टुमनेके जनाः समागन्तारस्तेषामागमने भविष्यता जनसम्मर्देन धूलिभरो नभोमण्डलं पूरयिष्यति, तेन च पतता शरीरं मा मलिनं कारीति तद्धूलिभरापनुनुत्सयेव ते रोमाञ्चरूपं धूलिमार्जनसाधनं स्वस्वशरीरेषु पूर्वत एव न्यधिषत, प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरमिति स्मृतेः, तेषां रोमाञ्चाद्यनुमेयां तादृशीं रामविषयां प्रीतिं प्रेक्ष्य दशरथस्य स्वपुत्रसाद्गुण्यजन्माऽऽनन्दो द्विगुणीकृतः, परं दशरथस्तं योपचितमपि स्वमानन्दं धैर्यवित्तया नियम्य मन्त्रिणो वक्ष्यमाणप्रकारेणावोचदिति भावः। 'रोमाञ्चो रोमहर्षणम्' इत्यमरः।

राजा दशरथने होनेवाले रामराज्याभिषेकरूप महोत्सवके लिये उत्सुक जनसमूहके आनेसे जो धूल उड़ेगी उससे अपनी देहको बचाये रखनेके लिये रोमाञ्चरूप आवरणसे अपनी देहको आवृत करके रखनेवाले पौरजनोंके अपरिमित आनन्दसे दुगुनाये गये अपने मानसिक आनन्दको किसी प्रकार छिपाकर सुमन्त्रप्रभृति मन्त्रियोंसे इस प्रकार कहा।

---

१. 'व्रात' इति पाठान्तरम्।

अस्माननाश्रिततपोवनभूमिभागा-
नुन्मुच्य मार्गपरिपालनजागरूकान् ।
अम्लानमौग्ध्यमचिरादवलम्ब्य राम-
मेवंविधः कथमुदेति जनानुरागः ॥ ५ ॥

अस्मानिति ' अनाश्रिततपोवनभूमिभागान् अनधिष्ठितपुण्यारण्यप्रदेशान् वानप्रस्थ्यमनाप्तवतः मार्गपरिपालनजागरूकान् यथोचितप्रजारक्षणे सावधानान् अस्मान् वृद्धान् राज्ञः उन्मुच्य अम्लानमौग्ध्यम् वर्त्तमानबाल्यभावम् रामम् अवलम्ब्य आश्रयीकृत्य अचिरात् शीघ्रम् एवंविधः एतादृशः जनानुरागः लोकप्रीतिः कथमुदेति उत्पद्यते । अयमाशयः—सम्प्रत्यपि वयं वानप्रस्थाश्रमं गृहीत्वा तपोवनं न प्राप्ताः, यथोचितपद्धत्या प्रजानां पालनमपि सावधानतया कुर्म एव, अथापि अस्मान् विहाय अनपगतबाल्यप्रयुक्तमुग्धभावे रामे प्रजानामेतादृशोऽनुरागोऽचिरेण कथमुत्पद्यते ? कारणमत्र न विभाव्यत इति । यदा वृद्धौ राजा वानप्रस्थं गृह्णाति, प्रजापालने वाऽक्षमो भवति तदा प्रजानां यूनि राजपुत्रे प्रीतेरौचित्यप्राप्तत्वेऽपि तादृशकारणाभावेऽपि बालेऽत्र रामे कथं प्रजानुरागोदय इति । अत्र रामे प्रजानामनुरागस्य ज्ञानात् पितुर्दशरथस्य नासूयोदयः, किन्तु हर्ष एव, 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' इति स्मृतेः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५ ॥

अभी तक हम वानप्रस्थ लेकर तपोवन नहीं गये, सावधानीके साथ प्रजाका पालन भी हम कर ही रहे हैं, फिर भी हमें छोड़कर प्रजा इस दुधमुँहे राम पर इतनी शीघ्रतासे इस प्रकार कैसे अनुरक्त हो रही है ? ॥ ५ ॥

तेऽपि नियमितनिजमनोरथाय दशरथाय सविनयमेवं व्यजिज्ञपन् ।

तेऽपीति । ते सुमन्त्रप्रमुखाः अमात्या अपि नियमितनिजमनोरथाय निर्धारितरामाभिषेकरूपस्वाभिलाषाय दशरथाय राज्ञे सविनयम् सप्रश्रयम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण व्यजिज्ञपन् निवेदयामासुः । 'नियमितनिजमनोरथाय' इत्यस्य रामे प्रजानुरागस्य दर्शनात् नियमितः संकुचितः स्वमनोरथः राज्याभिलाषी येनेति विरागपक्षमपि केचिदाहुः ।

उन मन्त्रियोंने भी रामराज्याभिषेककी अवश्यकर्त्तव्यतारूप निश्चयपर पहुँचे हुए दशरथसे सविनय इस प्रकार निवेदन किया ।

देवे स्थितेऽपि तनयं तव रामभद्रं
लोकः स्वयं भजतु नाम किमत्र चित्रम् ।
चन्द्रं विना तदुपलम्भनहेतुभूतं
क्षीरोदमाश्रयति किं तृषितश्चकोरः ॥ ६ ॥

देव इति। देवे भवति स्थिते राजपदमलङ्कुर्वति सति अपि तव तनयं पुत्रम् रामभद्रं नाम लोकः प्रजाजनः स्वयम् आत्मना एव भजतु स्वराजपदेऽभिषेक्तुं समाश्रयतु नाम, अत्र तेषामीदृशे व्यापारे किं चित्रम् न किमप्याश्चर्यमित्यर्थः। तत्र दृष्टान्तमाह—चन्द्रं विनेति। तृषितः पिपासितः चकारः चन्द्रिकापायी पक्षिभेदः चन्द्रं विना विहाय तदुपलम्भनहेतुभूतं चन्द्रोत्पत्तिनिदानतां गतम् क्षीरोदम् क्षीरसागरम् आश्रयति किम्? नेति भावः। इदमाकूतम्—यथा पिपासितश्चकोरश्चन्द्रजनकं क्षीरसागरं परित्यज्य चन्द्रमसमेवाश्रयति तद्वत्प्रजाजनोऽपि त्वां विहाय राममेवाश्रयति, नात्र किमपि विस्मयस्थानम्, संसारस्य स्वार्थसाधनव्यग्रतयात्र विस्मयस्याप्राप्तस्थानत्वादिति भावः। क्षीराण्युदकानि यस्य सः क्षीरोदः, 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' इत्युदकस्योदादेशः। दृष्टान्तोऽलङ्कारः, वृत्तं पूर्ववत्॥ ६॥

आपके रहते हुए भी आपके पुत्र रामभद्रको प्रजा चाहती है. इसमें आश्चर्यकी बात क्या है? चन्द्रिकापायी चकोर प्यास लगने पर चन्द्रमाके ही आश्रयमें जाता है, चन्द्रमाके जन्मदाता समुद्रके आश्रयमें नहीं जाता है॥ ६॥

तदनन्तरं [1]तत्वरे तत्परस्तत्त्वविदां [2]वरिष्ठस्य वसिष्ठस्य शासनादभिषेकोपकरणाहरणाय सामात्यः पौरवर्गः।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरं तत्पश्चात् राज्ञो मन्त्रिणां च जाते प्रागुदीरिते विचारविमर्शे तत्त्वविदाम् सकलागमरहस्यज्ञातॄणाम् वरिष्ठस्य श्रेष्ठस्य वसिष्ठस्य तपनकुलपुरोहितस्य तदाख्यस्य मुनेः शासनात् आदेशात् तत्परः सावधानः सामात्यः मन्त्रिगणसहितः पौरवर्गः नगरवासिजनसमुदयः अभिषेकोपकरणाहरणाय रामराज्याभिषेकसामग्रीभूतच्छत्रचामरकनककरभशपुण्यतीर्थजलादिसङ्कलनाय तत्वरे शीघ्रतां चकार राजनि मन्त्रिभिः सममेवं विचारितवति सति वसिष्ठादेशमासाद्य मन्त्रिगणानुयातः पुरवासिराशिरभिषेकसामग्रीमुपपादयितुं शीघ्रतामुपचक्रम इत्यर्थः। 'तत्परे प्रसितासक्तौ' इत्यमरः।

इसके बाद तत्त्वज्ञानियोंमें अग्रगण्य वसिष्ठकी आज्ञासे मन्त्रिगण समेत नगरवासीजन रामके अभिषेककी सामग्री जुटानेमें तत्परतासे भिड़ गये।

आहूय रामं विनयाभिराममाविःप्रमोदः प्रभुरेवमूचे।
तवोत्तमाङ्गे मुकुटं विधातुमह्नाय तिष्ये दिवसे यतिष्ये॥ ७॥

आहूयेति। विनयाभिरामम् नम्रतयोपेतम् रामम् आहूय स्वसमीप आकार्य आविःप्रमोदः जायमानहर्षः प्रभुः राजा दशरथः एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण ऊचे उवाच, अह्नाय झटिति तिष्ये पुष्यनामकेन सर्वार्थसाधकनक्षत्रेण युक्ते दिवसे

---

१. 'तत्वरे तत्त्वविदां' इति पाठान्तरम्। २. 'वरस्य' इति पाठान्तरम्।

तवोत्तमाङ्गे त्वच्छिरसि मुकुटं राजचिह्नं कनकनिर्मितमलङ्कारविशेषम् विधातुम् कर्त्तुम् स्थापयितुमित्यर्थः। यतिष्ये चेष्टिष्ये राममाहूय राजा—झटिति तिष्ययुक्ते दिवसे तव शिरसि मुकुटं स्थापयितुं यत्नं करिष्यामीति प्रोवाचेत्यर्थः। तथा चोक्तमपि रामायणे—'श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषिञ्चतु मे सुतः' इति। 'पुष्ये तु सिध्यतिष्यौ' इति 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इति चामरः। उपजातिर्वृत्तम्, लक्षणं प्रागुक्तम्। अत्र कामन्दकीये नीतिशास्त्रे उक्तम्—'विनयप्रग्रहान् भूत्यै कुर्वीत नृपतिः सुतान्। अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते॥ विनीतमौरसं पुत्रं यौवराज्येऽभिषेचयेत्' ॥ ७॥

विनयोपपन्न रामको समीपमें बुलाकर आनन्दयुक्त राजा दशरथने कहा कि शीघ्र ही पुष्यनक्षत्रसे युक्त शुभ दिनमें तुम्हारे मस्तक पर राजमुकुट रखनेकी चेष्टा कर रहा हूँ ॥७॥

अथ दशरथमनोरथं कौशल्यायै निवेद्य स्वभवनमुपागतस्य रामस्य भगवान् वसिष्ठः संजातकौतुकः कौतुकमङ्गलं निर्वर्तयामास।

अथेति। अथ राज्ञा स्वमुद्दिश्य पूर्वमुक्तं श्रुत्वा दशरथमनोरथं रामराज्याभिषेकरूपं दशरथाभिलाषं कौसल्यायै स्वजनन्यै निवेद्य अभिधाय स्वभवनम् स्वावासप्रासादम् उपागतस्य आयातस्य रामस्य सञ्जातकौतुकः उत्पन्नहर्षः भगवान् वसिष्ठः कौतुकमङ्गलं रक्षासूत्रबन्धनात्मकं मङ्गलाचारं निर्वर्त्तयामास कृतवान्। यदा रामो राज्ञोऽभिप्रायं ज्ञात्वा स्वभवनमागतस्तदा तत्रागत्य वसिष्ठो रामस्य करे रक्षासूत्रं बबन्ध, तादृशस्य विधानस्य मङ्गलार्थंतयोपदिष्टत्वादिति भावः। 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हर्षसूत्रे कुतूहले' इति शाश्वतः।

इसके बाद राम दशरथके अभिप्रायको कौसल्यासे निवेदित करके अपने घर आये, उनके घर आनेपर वसिष्ठने प्रसन्न होकर रामके हाथ में रक्षासूत्रका बन्धन कर दिया।

आपूरयन्मङ्गलतूर्यघोषैराशावशावल्लभकर्णतालान्।
उज्जृम्भितः कोऽपि गिरामभूमिरुन्मस्तकः पौर[1]जनप्रमोदः ॥ ८ ॥

आपूरयन्निति। मङ्गलतूर्यघोषैः माङ्गलिकवाद्यादिभिः आशावशावल्लभानाम् आशासु दिशासु ये वशावल्लभाः करिणस्तेषां कर्णतालान् कर्णसञ्चालनजनितध्वनीन् आपूरयन् वर्धयन् कोऽपि वर्णयितुमशक्यः गिराम् वाचाम् अभूमिः अविषयः उन्मस्तकः उन्नतशिराः अतिमहानित्यर्थः पौरजनप्रमोदः नगरवासिजनानन्दः उज्जृम्भितः उत्थितोऽभूदित्यर्थः। नगरस्थितलोकानामानन्दध्वनिरतिमहान् प्रादुरासीत् येन दिग्गजकर्णताला व्यस्तायन्त, यश्च वचनानामविषयश्चासीदिति

१. 'पौरजनातिमोदः' इति पाठान्तरम्।

भावः। अत्र दिग्गजकर्णतालविस्तारणाभिधानं ध्वनीनां दिगन्तव्यापिताद्योतनाय। इह तूर्यघोषाणां दिग्गजकर्णतालपूरणासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसंबन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ८॥

माङ्गलिक वाद्यध्वनियोंसे दिग्गजोंके कर्णतालध्वनिको विस्तृत करनेवाला, अतिमहान्, वर्णन करनेमें अशक्य, नगरवासिजनोंका आनन्द शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ८॥

तत्र—

यामेवाहुर्निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुं
यस्याश्चित्तं प्रकृतिकुटिलं गात्रमित्रं बभूव।
अम्भोजिन्या शिशिर[1]सरितः कासरीवाच्छमम्भः
कैकेय्याः सा [2]हृदयमदयं मन्थरा निर्ममन्थ ॥ ९॥

तत्र, यामेवेति। तत्र रामराज्याभिषेकस्य सर्वतः प्रसृमरे सन्नाहे याम् मन्थराम् एव निशिचरकुलोन्मूलने रावणादिराक्षसानां वंशस्य समूलनाशे मूलहेतुम् आदिकारणम् आहुः कथयन्ति, यस्याः मन्थरायाः प्रकृतिकुटिलं स्वभावतो वक्रं चित्तम् गात्रमित्रम् शरीरसदृशम् बभूव अजायत, (मन्थरा रामस्य राज्याभिषेके क्रियमाणे कैकेयीबोधनद्वारा विघ्नं कृत्वा रामं वने प्रेषयामास, वनंगतश्च रामो वनितापहरणकारणात् सान्वयं रावणं हतवानिति तन्नाशे मन्थरायाः कारणत्वं समर्थितम्, किञ्च मन्थरा वपुषा वक्राऽऽसीत्तस्या मतिरपि प्रपञ्चपटुतया वक्रत्वेनोत्प्रेक्ष्यत इति तदीयकायचित्तयोर्वक्रतया सादृश्ये मित्रत्वमुपपद्यते, समानशीलयोः सख्यस्य स्वभावसिद्धत्वादित्याद्यपादद्वयतात्पर्यम्। सा मन्थरा अम्भोजिन्या कमलिन्या हेतुभूतया शिशिरायाः शीतलायाः सरितः जलाशयस्य अच्छं निर्मलम् अम्भः जलम् कासरी महिषी इव कैकेय्याः भरतमातुः अच्छम् निरस्तेर्ष्यादोषम् हृदयम् चित्तम् अदयम् निर्दयभावेन निर्ममन्थ क्षोभयामास ईर्ष्याजननेन मलिनीचकारेत्यर्थः। यथा कापि कासरी कमलवनवितानेन शीतलं जलाशयं प्रविश्य तत्रत्यममलं जलं विक्षोभयति तथैव मन्थरा कैकेय्याः स्नेहशीतले मनसि प्रविश्य तत्र रामे राजनि तवानिष्टमित्यादिभावान् जागरयित्वा तदीर्ष्यापङ्काविलं कृतवतीति भावः। 'अम्भोजिन्या शिशिरसरितः' इत्यत्रैकदेशान्वयश्चिन्त्यः। 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः। मन्दाक्रान्तावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद्गुरू चेत्' इति ॥ ९॥

जिस मन्थराको लोग राक्षसकुलके समूलनाश करने में आदिकारण मानते हैं, जिसका हृदय कुटिलतामें जिसकी देहका सादृश्य प्राप्त करता था (अर्थात् जिसतरह देह टेढी थी उसी

१. 'सरितः' इति पाठान्तरम्। २. 'सदयहृदयं' इति पाठान्तरम्।

तरह उसका हृदय भी कुटिल था) उस मन्थराने कैकेयीके निर्मल अन्तःकरणको निर्दयतासे क्षुभित करके गन्दा बना दिया, जैसे भैंस किसी कमलवनसे शीतल तालाबमें पैठकर उसके निर्मल जलको मथकर गन्दा कर देती है ॥ ९ ॥

अलघुचलितझञ्झावातनिष्पेषदोषा-
दशनिरिव कठोरः शीतलाम्भोदपङ्क्तौ ।
अपहृतजनसौख्यान्मन्थराभेदवाक्या-
दपि भरतजनन्यां हन्त दौर्जन्यमासीत् ॥ १० ॥

अलघुचलितेति । अलघु वेगेन चलितः प्रवृत्तः यः झञ्झावातः जलवृष्टियुतो महामारुतस्तेन तत्कृतः यः निष्पेषः सङ्घट्टनं स एव दोषः तस्मात्, शीतलाम्भोदपङ्क्तौ शिशिरजलदपटले कठोरः भयङ्करः अशनिः वज्रम् इव अपहृतजनसौख्यात् भ्रंशितरामराज्याभिषेकरूपलोकमनोरथात् मन्थराभेदवाक्यात् मन्थरायाः 'तव पुत्रो यथा राजा भवेत्तथा यतस्व, यदि रामो राजा भवति तदा तवोत्पीडनं भविष्यति, अस्ति चोपायः, राजा वरद्वयं ते दत्तवानधुना तदेव वरय' इत्यादिरूपाद्भेदजनकवचनात् भरतजनन्याम् कैकेय्याम् अपि, हन्तेति खेदे, दौर्जन्यम् असाधुभावः आसीत् अजायत । यथा झञ्झावातकृतसङ्घर्षवशादतिशीतलजलदमालायामपि वज्रं प्रकटयति तथैव भेदनिपुणमन्थरावाक्यात् कैकेयी अपि दुर्जनत्वमाश्रितवतीत्यर्थः । भरतजनन्यामपीत्यपिना संसारप्रसिद्धसाधोर्भरतस्य जन्मदात्री भूत्वापि कैकेयी कौटिल्यमभजतेति नितान्तानौचित्यध्वनिः । 'शीतलाम्भोदपङ्क्तौ कठोरोऽशनिरिव' इत्युपमया मन्थराभेदवाक्यात्प्राक्कैकेय्या नितरां प्रेमपूर्णमानसत्वं, तत्प्रक्रमे चातिक्रौर्यम्, ततश्च मन्थरावाक्यस्य भेदजनपाटवातिशयवत्त्वं च ध्वन्यते । उपमालङ्कारः स्फुटः । मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

जिस प्रकार जोरोंसे चलनेवाली झञ्झावायुके द्वारा किये गये संघट्टनके दोषसे अतिशीतल मेघमालामें भी वज्र उत्पन्न हो जाता है, उसी तरह लोगोंके सुखको हरनेवाले मन्थराके भेदवाक्योंसे भरतकी माता कैकेयीके हृदयमें भी कुटिलता का उदय हो आया । कैकेयी भी मन्थराके भेदवाक्यसे दुर्जन बन बैठी ॥ १० ॥

सैषा मन्थरा[1]भिधानपिशाचिकावेशपरवशनिजाशया पूर्वं दण्डके वैजयन्तपुरवास्तव्यशम्बरासुरसंगरसंगतवेदना[2]पनोदनार्थमात्मने [3]वितीर्णवराय दशरथाय वरद्वयं न्यवेदयत् ।

---

१. 'आवेशनिजाशया' इति पाठान्तरम् । २. 'अपोदनवेत्तनार्थम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'वितीर्णवराय' इति पाठान्तरम् ।

सैवेति । मन्थराऽभिधाना मन्थरासंज्ञा या पिशाचिका महाभूतग्रहः तस्या आवेशेन तत्कृताक्रमणेन परवशः परायत्तः निजाशयः स्वान्तःकरणं यस्याः सा तादृशी, मन्थरारूपपिशाचीकृतेनावेशेन विस्मृतस्वस्वभावेत्यर्थः। सा एषा कैकेयी, पूर्वम् पुरा, दण्डके वने, वैजयन्तपुरं नाम नगरम् , तत्र वास्तव्येन वसता, शम्बरासुरेण शम्बराख्यमहादैत्येन सह यः सङ्गरो युद्धम् तत्र सङ्गता लब्धा या वेदना अस्त्रप्रहारभवा पीड़ा तस्या अपनोदनार्थम् तदपनोदनहेतुकम् , आत्मने कैकेय्यै वितीर्णम् , शम्बरयुद्धे दशरथे क्षते तत्सेवाकारिण्या कैकेय्या वरद्वयं दशरथाल्लब्धम् इति विवक्षा। वराय भर्त्रे, तद्वरद्वयम् दशरथद्वारा दत्तं प्रसादचिह्नभूतं वरयुगम् । उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'स्मर राजन् पुरावृत्तं तस्मिन् देवासुरे रणे । तत्र चाच्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥ तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः। जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ ॥ तौ तु दत्तौ वरौ देव निक्षेपं मृगयाम्यहम् । तवैव पृथिवीपालसकाशे सत्यसङ्गर ॥'

मन्थरारूप पिशाचीके आवेशसे पराधीन हो गया है अन्तःकरण जिसका ऐसी कैकेयीने—पूर्वसमयमें दण्डक वनमें वैजयन्तपुरवासी शंवर नामक असुरके साथ युद्धमें लगी चोटकी परिचर्या करनेसे प्रसन्न होकर दशरथने जो दो वरदान दिये थे—उन वरोंके विषयमें अपने स्वामी दशरथसे निवेदन किया।

तयोरेकस्य संरम्भो भरतस्याभिषेचनम् ।
अन्यस्य वन्यवृत्त्यैव वने रामस्य वर्तनम् ॥ ११ ॥

तयोरेकस्येति । तयोः द्वयोः वरयोः मध्ये एकस्य वरस्य संरम्भः संवृत्तिः मूल्यम् भरतस्य अभिषेचनम् राज्याभिषेकः, अन्यस्य वरस्य (मूल्यम्) वन्यवृत्त्या मुनिजनसमुदाचारेण रामस्य वने कानने वर्त्तनम् वासः। यौ द्वौ वरौ पुरा त्वमदास्तयोरेकेन भरतो राज्येऽभिषिच्यतामपरेण च रामो मुनिवेषधरश्चतुर्दशवर्षाणि यावद्वने वस्तुमाज्ञाप्यतामिति भावः ॥ ११ ॥

उन दोनों वरोंमेंसे एक वरका मूल्य भरतराज्याभिषेक तथा दूसरेका मूल्य मुनिवृत्तिसे रामका वनवास हो (ऐसा कैकेयीने दशरथसे निवेदन किया) ॥ ११ ॥

तस्मिन् क्षणे वरयुगं चिर[1]तप्ततात्र-
नाराचवेधपरुषं श्रवसी विदार्य ।
सत्यप्रहाणचकितस्य नृपस्य काम-
मूरीचकार हृदये पुटपाकरीतिम् ॥ १२ ॥

---

१. 'क्षणतप्त' इति पाठान्तरम् ।

तस्मिन्निति। तस्मिन् क्षणे कैकेयीकृतवरप्रार्थनोपलक्षिते काले चिरतप्तो बहुं कालं यावदग्नौ प्रतापितो यस्ताम्रनाराचस्तीक्ष्णाग्रशस्त्रभेदस्तेन वेधः भेदनं तद्वत् परुषम् कठोरम् वरयुगं कैकेयीप्रार्थ्यमानं वरद्वयम् सत्यप्रहाणचकितस्य सत्यभङ्गभीतस्य नृपस्य राज्ञो दशरथस्य श्रवसी श्रवणे विदार्य पाटयित्वा हृदये नृपचित्ते कामम् अत्यन्तम् पुटपाकरीतिम् अन्तर्दाहावस्थाम् ऊरीचकार अङ्गीचकार। अयमाशयः—यदैव राजा सत्यवचनतया यदि वरं न ददे तदा सत्याच्च्यवेयेति भावितवाँस्तदा तस्या कैकेय्याः वरप्रार्थनारूपं वचनं तप्तनाराचवत् कर्णौ विभिद्य हृदये गत्वा तस्यान्तर्व्यथामसृजदिति। नाराचस्य चिरतप्ततोक्त्याऽग्निकृतसंतापप्रहणाधिक्यम्, ताम्रत्वोक्त्या तत्रैवातिशयः, सत्यप्रहाणचकितस्येति राज्ञा प्रार्थनाया अवश्यपूरयितव्यता, 'श्रवसी' इति द्विवचनेन वरद्वयकृतम् द्वयोरपि श्रवसोर्युगपद्व्यथनम्, 'मूषिकादियन्त्रमध्ये सुवर्णादिकं स्थापयित्वा सन्तापनं पुटपाकः' तस्य रीतिमूरीचकारेति वस्तुगत्या फलितयोपमया यथा पुटपाककृतदाहस्यात्यन्तिकमर्मव्यथकत्वं तथैवास्य वरप्रार्थनस्यापीत्याद्यर्थाश्च व्यज्यन्ते। सत्यभङ्गभीरो राज्ञो वरप्रदानवैमुख्याभावात् एतद्वरप्रार्थनाकृतकष्टस्य पुटपाकवद्व्यथकत्वमुक्तं बोध्यम्। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १२॥

कैकेयीने जब अपने वरोंकी याचना की उस समय सत्यभङ्गभीरु राजाके कानोंमें बहुत देरतक आगमें तपाये गये ताम्रनिर्मित बरछेके सदृश वे दोनों वर कष्टप्रद प्रतीत हुए, उन दोनों वरोंने राजाके कानोंको चीरकर उनके हृदयमें पुटपाककी स्थिति पैदा कर दी, अर्थात् जिस तरह पुटपाक द्वारा दह्यमान वस्तु निःशेष दग्ध होती है उसी तरह उनका हृदय अतिसन्तप्त हुआ॥ १२॥

[1]तनयविरहवार्तामात्रसंतप्यमाना-
दथ दशरथचित्ताच्चेतना निर्जगाम।
दवहुतवहरोचिर्ज्वालया [2]लेह्यमाना-
ज्झटिति गहनगुल्मादुज्जिहाना मृगीव॥ १३॥

तनयेति। अथ कैकेय्या वरप्रार्थनानन्तरम् तनयस्य पुत्रस्य श्रीरामस्य यो विरहः वनवासजनितो वियोगः तस्य वार्तामात्रेण वाचिकप्रसङ्गेन केवलसन्तप्यमानात् क्लिश्यमानात् दशरथचित्तात् राजहृदयात्—दवहुतवहः वनाग्निः तस्य रोचिर्ज्वालया प्रकाशशालिसन्तापेन लेह्यमानात् दह्यमानात् गहनगुल्मात् काननकुञ्जात् उज्जिहाना पलायमाना मृगी हरिणी इव चेतना बुद्धि झटिति शीघ्रम् निर्जगाम। यथा वनाग्निज्वालया ज्वलतो वनकुञ्जात् मृगी त्वरितं पलायते तथैव पुत्रविरह-

१. 'तदनुतनयवार्ता' इति पाठान्तरम्। २. 'लिह्यमानात्' इति पाठान्तरम्।

कथामात्रेण सन्तप्यमानाद्दशरथहृदयाच्चेतनाऽपससार, राजा मूर्च्छितोऽभूदित्यर्थः। 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीरितः' 'द्राग् झटित्यञ्जसाऽह्नाय' इति सर्वत्र शाश्वतः। पूर्णोपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ १३ ॥

रामरूप पुत्रके वियोग की बात सुननेसे ही सन्तप्यमान राजा दशरथके हृदयसे चेतना निकल गई, (वे मूर्च्छित हो गये) जैसे दवाग्निकी लपटोंसे ग्रस्त वननिकुञ्जसे भागती हुई मृगी निकल खड़ी होती है ॥ १३ ॥

अथ दशरथः कथमपि लब्धसंज्ञः कैकेयीमभाषत ।

अथेति। अथ मूर्च्छानन्तरम्। कथमपि महता कष्टेन केनाप्युपायेन' लब्धसंज्ञः समधिगतचैतन्यः दशरथः कैकेयीम् नाम इदम् वक्ष्यमाणप्रकारम् अभाषत उक्तवान् मूर्च्छां लब्धवतो दशरथस्य कथमपि जाते प्रबोधे सः कैकेयीमिदमाह स्मेति भावः।

इसके बाद दशरथको जब किसी तरह होश आया तब उन्होंने कैकेयीसे इस भाँति कहा।

रामः काममुपाश्रयिष्यति वनं त्यक्त्वा धृतं कौतुकं
लोकस्त्यक्ष्यति कौतुकं चिरधृतं तस्याभिषेके कथम्।
धर्मापायभयेन वत्सविरहं [1]वक्ष्यामि वक्ष्यामि किं
यावत्कल्पमकीर्तिरार्तिजननी जायेत जाये तव ॥ १४ ॥

रामः काममिति। रामः धृतम् वसिष्ठेन परिधापितमात्मना धार्यमाणम् कौतुकम् रक्षासूत्रं त्यक्त्वा कामम् अप्रतिहतम् वनम् उपाश्रयिष्यति अवगाहिष्यते प्रवेक्ष्यति, किन्तु लोकः सकलः प्रजाजनः तस्य रामस्य अभिषेके राज्यारोहणे चिरधृतम् बहुकालसञ्चितम् कौतुकम् उत्कण्ठातिशयम् कथम् त्यक्ष्यति केन प्रकारेण परिहास्यति? मदिङ्गितमात्रज्ञानेन रामो माङ्गलिकतया स्वकरे धृतं कौतुकं रक्षासूत्रं विहाय यथेच्छं वनं प्रवेक्ष्यति, परन्तु रामं राज्येऽभिषिच्यमानं द्रष्टुं प्रजाजनो यमभिलाषं चिरादपुषत्तं स कथं विहास्यतीति रामवनगमने प्रजाविद्रोहकथनेन कैकेयीं प्रति विभीषिकाप्रदर्शनं व्यज्यते। ननु भवानेव विबोध्य प्रजास्तद्विद्रोहमपनुदेदित्यत्राह—धर्मापायेति। धर्मस्य सत्यपालनरूपस्य अपायो भङ्गः ततो भयेन भीत्या अहम् वत्सविरहम् रामवियोगजं क्लेशं वक्ष्यामि सहिष्ये, (किन्तु) किं वक्ष्यामि? प्रजासु किमर्थमिदमकाण्डताण्डवमारचितमिति पृच्छन्तीषु किमुत्तरं प्रतिपत्स्ये? पत्नीप्रेमपारवश्यप्रदत्तवरद्वयसाफल्यविधानस्योत्तरतया प्रतिपत्तुमशक्यत्वेन किमप्युत्तरं वक्तुं न प्रभविष्यामीत्यर्थः। (इत्थम्) जाये, भार्ये, तव

[1]. 'द्रक्ष्यामि' इति पाठान्तरम्।

(इयम्) आर्त्तिजननी सकललोकपीडाकरी अकीर्त्तिः दुर्यशः यावत् कल्पम् कल्पान्तपर्यन्तम् जायेत उत्पद्येत। जायायास्तव पत्युः क्लेशं प्रति कारणत्वं न युक्तं नवेदृशाकीर्त्तिसमर्जनमपि हितमिति भावः। 'कौतुकं मङ्गले हर्षे हस्तसूत्रे कुतूहले' 'आर्त्तिः पीडा धनुष्कोटयोः' इत्युभयत्रामरः। वृत्त्यनुप्रासोऽलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ १४ ॥

राम तो हाथमें पहनाये गये अभिषेकाङ्गभूत मङ्गलसूत्र 'कौतुक' का त्याग कर सहर्ष वन चले जायँगे, किन्तु रामके राज्याभिषेक के लिये प्रजाजनके हृदयमें जो 'कौतुक' उत्कण्ठा बहुत दिनोंसे बसा हुआ है, प्रजाजन उसे कैसे छोड़ेगा? धर्मके भङ्ग होनेके भयसे मैं रामवियोगके कष्टको सह लूँगा, किन्तु अकस्मात् यह क्या हो गया? प्रजाजनके इस प्रश्नका मैं उत्तर क्या दूँगा? हे प्रिये, यदि तुम अपनी जिद्द पर अड़ती हो तो संसारको कष्ट पहुँचाने वाला तुम्हारा यह कलङ्क सदा सर्वदाके लिये स्थायी हो जायगा ॥ १४ ॥

वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं
रामं विना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः
कैकेयि मामुपयमं नयतीति मन्ये ॥ १५ ॥

वत्समिति। हे कठोरहृदये कठिनचित्ते कैकेयि, नयनाभिरामं जनसाधारणनेत्राकर्षकसौन्दर्यम् रामं विना मे मम जीवितम् प्राणस्थितिः खलु निश्चयेन न तिष्ठति न सम्भवति, सर्वजनप्रियरामविरहे मम जीवितमवश्यं नश्येदित्याशयः। रामवनवासाभिलाषप्रकाशनेनैव कैकेय्याः कठिनहृदयत्वं सम्बोधनेनोक्तम्। त्वयि त्वद्विषये धातुर्बलात् विधिवशात् जातपूर्वः पूर्वं जातः उपयमः मम विवाहः माम् उपयमम् यमस्य समीपम् नयति प्रापयतीति मन्ये सम्भावयामि, भाग्यवशात् पूर्वं त्वया सह जातो मम विवाहसम्बन्ध एवात्र मम यमसमीपप्रापणे कर्त्तृत्वं भजत इत्यर्थः। यदि त्वया सह मम विवाहो दैवेन नाकारयिष्यत तदा ममायमकालमृत्युर्नाजास्यतेति धिक्त्वेमनुचितारम्भमिति भावः। भार्यानामग्रहणस्य शास्त्रनिषिद्धत्वेऽपि राज्ञाऽत्र गृह्यमाणं 'कैकेयी'ति भार्या नाम तस्या ईदृशप्रियकार्यकरतयाऽभार्यात्वव्यञ्जनद्वारा कोपप्राचुर्यं गमयति। यमस्य समीपमुपयमम्, 'अव्ययं विभक्ती'ति समासः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

हे कठोरहृदये कैकेयि, राम, जो सभीका प्यारा है, उसके विना मेरा जीना असंभव है यह निश्चित है। इसलिये तुमको जिद्द छोड़ देना चाहिये। अगर इस स्थितिको जानकर भी तुम नहीं बदलती हो तो मानना होगा कि भाग्यवश तुम्हारे साथ हमारा जो 'उपयम' विवाह हुआ था वही आज मुझे 'उपयम' यमके समीप ले जा रहा है ॥ १५ ॥

तदनु निजमनोरथैक[1]परिपूरणे कृतादरा कैकेयी [2]सोपहासमवादीत्।

तदन्विति। तदनु दशरथवचनावसाने निजमनोरथैकपरिपूरणे स्वाभिलाषमात्र-साधने कृतादरा बद्धभावा कैकेयी सोपहासम् सोल्लुण्ठनम् (इदम्) अवादीत् उक्तवती। दशरथस्य वचनं श्रुत्वा स्वमनोरथमेव साधयितुं कृतमतिः कैकेयी वक्ष्यमाणं वचनमर्मान्यथकभङ्ग्या प्रोवाचेति तात्पर्यम्। 'सोल्लुण्ठनं तु सोत्प्रासं सोपहासं समाश्रयः' इति हलायुधः।

इसके बाद अपने अभिलाषको सिद्ध करनेके लिये सयत्न कैकेयीने तानेके साथ राजासे इस प्रकार कहा।

सत्यविप्लवमपत्यसंगतः संगतं भृशमपश्यतस्तव।
आश्रुतस्य विफलत्वमस्ति चेदाः श्रुतस्य रचितोऽयमञ्जलिः ॥ १६ ॥

सत्यविप्लवमिति। अपत्यसङ्गतः पुत्रमोहात् सङ्गतं प्राप्तम् सत्यविप्लवम् सत्य-वचनभङ्गं भृशम् अतितराम् अपश्यतः अनालोचयतः तव आश्रुतस्य प्रतिज्ञातार्थस्य वरद्वयं ते दास्यामीत्येवंरूपस्य विफलत्वम् मिथ्यात्वे पर्यवसानम् अस्ति भवति चेत् आः इत्युपहासद्योतकमव्ययम्, श्रुतस्य शास्त्रस्य अयमञ्जलिः रचितः प्रणामः कृत इत्यर्थः, पुत्रप्रेमवशाद्यदि भवादृशो धर्मशास्त्रज्ञो राजा समापतन्तं सत्यवचनभङ्गरूपं दोषं न गणयति स्वां प्रतिज्ञां व्यर्थीभवन्तीमवधीरयति, तदा नमोऽस्तु शास्त्राय, नास्ति तेन प्रयोजनम्, भवादृशामेव तदतिवर्त्तित्वे तदनुवृत्ति-रसिकजनदौर्लभ्यादिति भावः। उपहासस्थले नमस्कारस्य विधानं कविषु प्रसिद्धम्। तथा च स्मर्यते—'विन्दुद्वन्द्वतरङ्गिताग्रसरणिः कर्त्ता शिरोबिन्दुकम्। कर्मेति क्रम-शिक्षितान्वयकला ये केऽपि तेभ्योऽञ्जलिः'। रथोद्धतावृत्तम्, 'स्याद्रराविह रथोद्धता लगौ' इति च तल्लक्षणम् ॥ १६ ॥

पुत्रके मोहमें पड़नेसे आपके सत्य पर आंच आ रही है, परन्तु आप उसे एकदम नहीं देख रहे हैं, यदि इस तरह आप ही अपने वचन-प्रतिज्ञा-को असत्य करें तो शास्त्रको नमस्कार है। यदि शास्त्र मानने वाले आप सरीखे धर्मात्मा पुरुष मोहमें पड़कर शास्त्रकी अवहेलना करेंगे तब शास्त्रको कौन मानेगा ? ॥ १६ ॥

किं नागतस्ते श्रवसोः सकाशमरिंदमः सत्यगिरां पुरोगः।
श्येनामिषीभूतकपोतपोतजीवातवे शस्त्रनिकृत्तगात्रः ॥ १७ ॥

किन्नागत इति। सत्या गीर्येषां ते सत्यगिरः यथार्थवाचः तेषां पुरोगः अग्रगण्यः अरिन्दमः शत्रुविजयी, श्येनस्य श्येनपक्षित्वमभिनयतः इन्द्रस्य आमिषीभूतः भोग्यतांगतः यः कपोतपोतः कपोतशिशुस्तस्य जीवातवे जीवनाय शस्त्रनिकृत्तगात्रः

१. 'पूरणकृतादरा' इति पाठान्तरम्। २. 'सापहासम्' इति पाठान्तरम्।

खड्गखण्डितदेहः (शिविः) ते तव श्रवसोः कर्णयोः सकाशम् समीपम् नागतः किम् नायातः किम्? शिविनामको धर्मात्मा सत्यसंधश्च राजाऽऽसीत्, तस्य सत्यसन्धतां परीक्षितुमिन्द्रयमौ श्येन कपोतौ भूत्वा तदन्तिकमुपेयतुः, कपोतभूतश्च यमः श्येनोपद्रुतमात्मानं दर्शयन् यागदीक्षितं शिविं शरणं प्रपेदे, श्येनश्च मदामिषीभूतं विसृज कपोतमिममित्यभ्यधात्, शरणागतोऽयं मया रक्षणीय एतस्य स्थाने एतत्तुलितं मम मांसमेव गृहाण इत्यभिदधानः शिविः कपोतमेकस्यां तुलायामारोप्य परस्यां तुलायां स्वं देहं निकृत्य स्थापयितुं प्रारेभे, एवं गुरूभवतः कपोतस्य प्रतिरूपत्वेन स्वं शरीरं समस्तमेव श्येनाय दत्तवानिति पौराणिकी कथा। 'आमिषं भोग्यवस्तुनि' 'जीवातुर्जीवनौषधम्' इति चामरः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ १७ ॥

क्या आपने सत्यवादियोंमें अग्रगण्य शत्रुविजयी राजा शिविके विषयमें नहीं सुना है जिन्होंने श्येनके द्वारा अभिभूत कबूतरकी रक्षाके लिये खड्गसे काट काटकर अपनी समूची देह समर्पित कर दी थी ॥ १७ ॥

किञ्च—

अभ्यर्च्य कस्मैचिदुपाश्रिताय वितीर्य विप्राय विलोचने स्वे।
आपूरयत्कश्चिदलर्कसंज्ञः प्राज्ञः प्रतिज्ञां प्रथितप्रभावः ॥ १८ ॥

किञ्च, अभ्यर्च्येति। न केवलं शिविरेव, किन्त्वन्योऽपि सत्यवादी बभूवेति बोधयितुं—किञ्चेति। अभ्यर्च्येति। प्राज्ञः बुद्धिमान् प्रथितप्रभावः महापराक्रमः कश्चित् अलर्कसंज्ञः तदाख्यया ख्यातो राजा कस्मैचित् अज्ञातनामगोत्राय उपाश्रिताय याचकतया समीपमुपपन्नाय विप्राय ब्राह्मणाय अभ्यर्च्य सत्कारं कृत्वा स्वे निजे विलोचने नयने वितीर्य दत्त्वा प्रतिज्ञाम् वचनम् आपूरयत् सत्यापितवान्। पुरा काले कश्चिदलर्कनामानृप आसीदेकदा तदन्तिके ब्राह्मण एक आगत्य प्रार्थितं दातुं तं प्रतिज्ञया बबन्ध, परतश्च तस्य चक्षुषी ययाचे, सोऽपि प्रतिज्ञां पूरयितुं तस्मै स्वे नयने न्यतरदिति। कस्मैचित् अज्ञातगोत्राय स्वे नयने दत्तवतोऽलर्कस्य पुरः परमोपकारिणे स्वार्धाङ्गभूताय मल्लक्षणाय जनाय प्रार्थितवरद्वयरूपानतिकष्टकरवस्तुदातुस्तव किं महत्त्वमिति भावः। उक्तञ्च रामायणे—'तथा ह्यलर्कस्तेजस्वी ब्राह्मणे वेदपारगे। याचमाने स्वके नेत्रे उद्धृत्याविमना ददौ'। 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः' 'स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये' इति सर्वत्रामरः ॥ १८ ॥

पुराने समयमें अलर्क नामक एक बुद्धिमान् तथा प्रतापी राजा थे, उन्होंने याचनाके लिये आये हुए किसी ब्राह्मणको अपनी दोनों आंखें निकालकर दे दी थीं और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की थी ॥ १८ ॥

असुरसमरवेलाजातबाधावसाने
वरयुगमदिशस्त्वं प्रीतिपूर्वं यया मे ।
अशिथिलगुणबन्धाः सत्यसंधा नरेन्द्रा
जललिपिरिति कामं संगिरन्तां गिरं ताम् ॥ १९ ॥

असुरसमरेति । असुरसमरवेलायाम् वैजयन्तपुरवासिशम्बरनामकराक्षसेन सह युद्धस्य समये जाता उत्पन्ना या बाधा असुरशस्त्रप्रहारकृतः प्राणसंशयः तस्या अवसाने समाप्तौ (युद्धस्थलादपसार्य मया कृतया परिचर्यया जाते तव स्वास्थ्ये) यया गिरा वाचा त्वम् मे मह्यम् प्रीतिपूर्वम् सेवाजनितपरितोषपूर्वकम् वरयुगम् वरयोर्द्वयम् अदिशः प्रदत्तवान्, (सम्प्रति तदेव वरद्वयं दातुमनीहमाने त्वयि) अशिथिलगुणबन्धाः अविच्छिन्नदानदाक्षिण्यादिगुणगणाः सत्यसन्धाः सत्यनिष्ठाः नरेन्द्राः नृपाः ताम् त्वया दत्ताम् गिरम् वाचम् वरद्वयप्रदानप्रतिज्ञाम् जललिपिः जलेऽक्षरलेख इति कामम् यथेच्छं सङ्गिरन्ताम् कथयन्तु । यथा जले लिखिता लिपिस्तत्क्षण एव नश्यति तद्वदेव साऽपि प्रतिज्ञा तदैव नष्टा, न तस्याः सत्यमस्तीति सत्यपरा दानिनश्च राजानो भणन्तु, तवैवेदं लज्जाकरं स्यादित्यर्थः । 'सन्धा विधौ प्रतिज्ञायाम्' इत्यमरः । मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

शम्वर नामक असुरके साथ युद्धके अवसर पर लगी चोटके मिट जाने पर हमारी सेवासे प्रसन्न होकर स्नेहपूर्वक आपने जिस वाणीसे हमें दो वर दिये थे, उस वाणीको अपने दान दया आदि गुणोंको नहीं छोड़ने वाले सत्यपरायण राजगण अब पानी परका लेख कहेंगे। जैसे पानी पर लिखा न लिखा बराबर होता है, उसी तरह आपका कहना न कहना बराबर हो गया ॥ १९ ॥

किं बहुना ।

किं बहुनेति । किं बहुना अधिकेन कथनेन नास्ति प्रयोजनम् ।

अधिक क्या कहूँ ।

सत्योद्यां गिरमिह निर्वहस्व मा वा
सन्मानं भुवि न सहेय राममातुः ।
संस्थास्ये विषमुपभुज्य पश्यतस्ते
संनाहं त्यजसि न चेत्प्रवर्तमानम् ॥ २० ॥

सत्योद्यामिति । इह इदानीम् गिरम् प्राक्प्रदत्तम् वरयुगम् सत्योद्याम् यथार्थां निर्वहस्व पालय मा वा पालय, अत्र तव कामचारः, स्वं वचनं सत्यं कुरु असत्यं वा, नात्र मम निर्बन्धः, स्ववचनसत्यतारक्षायां भवतः स्वातन्त्र्यमस्तीति तात्पर्यम्।

(किन्तु) भुवि लोके राममातुः कौसल्यायाः सन्मानं प्रतिष्ठाम् राजमातृपदजनितं गौरवम् न सहेय न सृष्येय, तवासत्यवाक्त्वे तव दुःखं न स्यादिति संभवति परं मया कौसल्यागौरवं सोढुमशक्यं, सपत्नीवैशिष्ट्यस्य समधिकदुःखावहत्वादिति भावः । सम्प्रति विभीषिकागर्भं करणीयमुपन्यस्यति—चेत् यदि प्रवर्त्तमानम् प्रारभ्यमाणम् सन्नाहम् रामराज्याभिषेकसंभारं न त्यजसि न जहासि तर्हि विषं गरलम् उपभुज्य पश्यतः ते पश्यन्तं त्वामनादृत्य संस्थास्ये मरिष्यामि । यदि रामराज्याभिषेकं प्रारब्धसंभारं न निरुणत्सि तदा विषप्रयोगेणाहमात्मानं व्यापादयिष्यामीति भावः । 'क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्' इत्यमरः । 'पश्यतस्ते' इत्यत्र 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी । उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम् । अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता । अहं हि विषमद्यैव पीत्वापि हि तवाग्रतः । पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ॥' प्रहर्षिणीवृत्तम्—'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्' इति च तल्लक्षणम् ॥ २० ॥

आप अपनी वाणीको सत्य करें या न करें यह आपकी इच्छा पर है परन्तु मैं कौसल्याके सम्मानको नहीं सह सकती, अतः यदि आप इस होते हुए रामराज्याभिषेकके सन्नाह—तैयारी-को नहीं रोकेंगे तो मैं आपके सामने विष खाकर अपना प्राण छोड़ दूँगी ॥ २० ॥

एवं वादिनीमेनां भूयोऽपि भूपतिरवदत् ।

एवमिति । एवंवादिनीम् इत्थं कथयन्तीम् एनाम् कैकेयीम् भूयः पुनः अपि भूपतिः दशरथः अवदत् अवोचत् । इत्थं कथयन्तीं कैकेयीं राजा पुनरवादीदित्यर्थः ।

इस प्रकार कहती हुई कैकेयीको राजाने फिर कहा ।

अयि कठिनहृदये, [1]किमुन्मुक्तलोकमर्यादया दयापेतया त्वयेति ।

अयीति । अयि कठिनहृदये, कठोरचित्ते, उन्मुक्तलोकमर्यादया त्यक्तलोकव्यवहारया दयापेतया निर्दयया त्वया किम् , नास्ति तव प्रयोजनम् । यदि त्वमेवं लोकव्यवहारं दयां च त्यक्त्वा कठोरहृदयत्वमवलम्बसे तदा तव जीवनेन नास्ति फलम्, अतो यथारुचि त्वं विषमुपयोक्तुं प्राणाँश्चात्मनो विपादयितुमर्हसीति तात्पर्यम् ।

अयि कठोरहृदयवाली, तुम लोकमर्यादा त्याग करके जब निर्दयता पर उतर आई हो तब तुम्हारे जीने न जीने मे हमको क्या लाभ ? ।

नैवाभवस्त्वमिह शीलवतीषु गण्या
[2]नैवाभजत्पितृमतां गणनां स रामः ।

---

१. 'किमुक्तं मुक्त' इति पाठान्तरम् । २. 'अगमत्' इति पाठान्तरम् ।

नैवापमात्मजसुखान्यहमप्यनार्ये
नैवापमम्बु भरतेन न मे प्रदेयम् ॥ २१ ॥

नैवाभव इति। त्वम् कैकेयी इह अत्र संसारे शीलवतीषु सद्वृत्तिसम्पन्नासु स्त्रीषु गण्या गणनीया नैव अभवः अजायथाः, तव गणना सुशीलासु स्त्रीषु नैव भविष्यत्येतादृशासदाचारपरायणत्वादित्यर्थः। किञ्चैवं दृढदुष्टनिश्चयायां त्वयि सत्यां सः जगद्गीतकीर्तिः रामः पितृमताम् जीवत्पितृकाणाम् गणनाम् संख्यानम् नैव अभजत्, रामः पितृमत्तां न प्रापत्, पितृकार्यस्याभिषेकादेर्मयाऽकृतत्वेन तस्य पैतृकसुखाभावात् पितुः सत्वं तेन नैवानुभूतमित्यर्थः। हे अनार्ये असद्रशीले, अहमपि आत्मजसुखानि पुत्रसम्भवहर्षान् नैव आपम् प्राप्तवान्, मयापि वार्धके लिप्सितः पुत्रसुखं नैव प्राप्तं रामस्य त्वया वने प्रेषयितुमिष्यमाणत्वादित्यर्थः। मे मह्यम् भरतेन तव पुत्रेण नैवापम् निवापः पितृक्रिया तत्संबन्धि अम्बु जलम् न प्रदेयम् न दातव्यम्। रामे वनं गते मन्मरणस्यावश्यंभावितया तदा कर्त्तव्यत्वेनापतत्समानं मे जलाञ्जलिदानरूपं प्रेतकर्म त्वत्पुत्रतया त्वद्गर्भवासरूपनीचसंसर्गपापपराहतत्वेन भरतोऽपि मा कृषीष्टेत्याशयः। अत्र रामायणवचनम्—'रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम्। सपुत्रया त्वया नैव कर्त्तव्या सलिलक्रिया' इति। 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २१ ॥

इस संसारमें तुम्हारी गणना सद्वृत्तसम्पन्न स्त्रियोंमें नहीं होगी, रामको पिताके होनेसे जो सुख होना चाहिये वह नहीं मिल सका, अतः पितृमान् जनोंमें उसकी गणना न हो सकी। तुम्हारे इस कुकृत्यने मुझे बुढ़ापेमें पुत्रसुखका भोग नहीं करने दिया, जैसा जो तुमने किया. किया, परन्तु देखना, तुम्हारे इस आचरणसे मर्माहत होकर मैं मर जाऊँ तो भरत हमारा और्ध्वदेहिक कार्य न करे।

किञ्च—

वासस्त्वचां भवतु किञ्चन तारवीणां
छायाद्रुमाश्च भवनानि भवन्तु धन्याः।
कैकेयि तस्य शयनानि कथं भवेयु-
स्त्वच्चेतसोऽपि कठिनानि शिलातलानि ॥ २२ ॥

किञ्च, वास इति। हे कैकेयि, तारवीणां तरुसम्बन्धिनीनाम् त्वचां वल्कलानां वासः वस्त्रं तस्य रामस्य किञ्चन भवतु कथञ्चन जायताम्, धन्याः श्रीरामनिवाससम्बन्धेन माहात्म्यशालिनः छायाद्रुमाः नमेरुवृक्षाश्च भवनानि रामस्य निवासस्थानानि भवन्तु जायन्ताम् कथञ्चिदिदं द्वयं सोढुमीश्यत इत्यर्थः। किन्तु त्वच्चेतसः तव हृदयात् अपि कठिनानि कठोराणि शिलातलानि शिलाः रामस्य शयनानि शय्यास्थानानि कथं केन प्रकारेण भवेयुः जायेरन्। अयमाशयः—रा

कथञ्चन वल्कलं वसीत, छायावृक्षाश्च गृहभावेनोपयुञ्जीत, उभयमपीदं कष्टप्रदत्वेऽपि शरीरैकदेशसम्बद्धतया कथमपि मर्षयितुं शक्यते, परं त्वच्चेतसोऽपेक्षयाऽपि कठोराणि शिलातलानि नितान्तसुकुमारशरीतया कुसुमास्तरणशयनोचितस्य तस्य शय्याभावेनोपयोक्तुं कथं शक्यरेन्न संभाव्यमिदमित्यचेतयन्तीं त्वां धिगिति भावः, छाया प्रधाना द्रुमाः छायाद्रुमाः, शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपिसमासः। 'छायावृक्षो नमेरुः स्यात्' इत्यमरः। पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २२ ॥

वनवासमें राम किसी प्रकार वल्कलोंको वस्त्र बना सकता है, छायाप्रधान तरुओंका घरके रूपमें उपयोग भी किसी प्रकार कर सकता है, किन्तु तुम्हारे हृदयसे भी कठिन शिलाखण्ड उसके शयन कैसे हो सकेंगे यह तो बताओ अयि कैकेयी! जो सुकुमार शरीर पुष्पशय्यापर सोनेका अभ्यास रखता है भला वह पर्वतकी शिलाओंपर किस प्रकार सो सकेगा?॥ २२ ॥

एवं भर्त्रा भर्त्सिताप्यार्द्रचित्ता [1]नाभूदेषा मन्थराक्रान्तवृत्तिः।
राकाचन्द्रे राजमानेऽप्य[2]बाधं वीरुच्छन्ना चन्द्रकान्तस्थलीव ॥२३॥

एवमिति। एवम् प्रोक्तप्रकारेण भर्त्रा स्वामिना दशरथेन भर्त्सिता निन्दिता अधिक्षिप्ता आक्रुष्टा अपीत्यर्थः, मन्थराक्रान्तवृत्तिः राक्षसीरूपया मन्थरया नाम दास्या आक्रान्ता वृत्तिः वर्त्तनम् स्वभावो यस्याः सा तादृशी एषा कैकेयी आर्द्रचित्ता द्रुतहृदया दयालुरिति यावत्, नाभूत् नाजायत। तत्रोपमामाह—राका पूर्णमासी तस्याश्चन्द्रस्तस्मिन् अबाधं निष्प्रतिबन्धं मेघादिसम्बन्धाभावेन निर्मलं राजमाने दीप्यमानेऽपि वीरुच्छन्ना लताभिरावृता चन्द्रकान्तस्थली चन्द्रकान्तमणिमयी भूमिरिव। अयमाशयः—चन्द्रकान्तमयी भूश्चन्द्रे चकासति द्रवतीति तत्स्वभावः, परं सैव चन्द्रकान्तमयी भूर्यदा लतादिना पिधीयते तदा सत्यपि चन्द्रप्रकाशे न द्रवति, व्यवधायकत्वात्प्रकाशस्य, तथैव स्वभावात् कोमलहृदयापीयं कैकेयी मन्थराऽऽवेशवशादतिकठोरताधारिणी सती स्वामिना कृतया भर्त्सनयाऽपि नात्मनः स्वभावं प्रत्यपद्यतेति। 'लता प्रतानिनी वीरुत्' 'पूर्णे राका निशाकरे' इत्युभयत्रामरः। शालिनीवृत्तम्—तल्लक्षणं यथा—'शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः' इति ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे स्वामी द्वारा भर्त्सित होने पर भी मन्थराकी शिक्षासे विकृतमति कैकेयीका हृदय नहीं पसीजा, जैसे पूर्णिमाके चन्द्रमाके अखण्ड प्रकाशसे भी वह चन्द्रकान्तमणिमय भूमि नहीं पसीजती है जिसपर लतायें घिरी रहती हैं ॥ २३ ॥

तदनु मुहूर्तमात्रमपि राममुखावलोकनसुखम[3]नुबुभूषुर्दशरथः कुमारमानयेति सुमन्त्रमादिदेश।

---

१. 'मा भूत्' इति पाठान्तरम्। २. 'निशाया' इति पाठान्तरम्।
३. 'अनुबुभूषुः कुमारम्' इति पाठान्तरम्।

तदन्विति। तदनु कैकेय्या अवार्यनिश्चयतायाज्ञानात्परतः मुहूर्त्तमात्रम् यावद् असौ वनं न याति तावत् कियन्तं कालं यावत्, राममुखावलोकनसुखम् रामवदन-दर्शनजन्यमानन्दम् अनुबुभूषुः प्रेप्सुः दशरथः 'कुमारमानय' 'राममुपस्थापय' इति सुमन्त्रम् नाम स्वमन्त्रिणमादिदेश आज्ञप्तवान्। 'मुहूर्त्तमल्पकाले स्याद्घटि-काद्वितयेऽपि च' इति विश्वः।

इसके बाद कुछ देरके लिये रामके मुखको देखकर सुखका अनुभव करनेकी इच्छा-वाले दशरथने सुमन्त्रसे कहा कि 'रामको बुलाइये'।

तेन सत्वरं राजभवनं [1]प्रवेशितो रामः कृतप्रणामः पितरमथथाभूत-मुखवि[2]का समारादालक्ष्य चकितः[3] किमिदमिति कैकेयीमन्वयुङ्क्त।

तेनेति। तेन दशरथादिष्टेन सुमन्त्रेण सत्वरं शीघ्रतया राजभवनं राजमन्दिरं प्रवेशितः आनीतः कृतप्रणामः विहितपितृचरणवन्दनः रामः पितरम् दशरथम् अय-थाभूतसुखविकासम् अस्वाभाविकमुखचेष्टम् विकृतमुखश्रियमित्यर्थः, आरात् समीपे आलक्ष्य दृष्ट्वा चकितः साश्चर्यः कुतो राज्ञ इयं दशेति कारणानिर्णयेन विस्मयमाप-इत्यर्थः, किमिदम् कुतो हेतो राज्ञ इयं दशा इति कैकेयीम् पृष्टवान्। 'सत्वरं चपलं तूर्णम्' 'आरात् दूरसमीपयोः' 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इति सर्वत्रामरः।

सुमन्त्रके द्वारा शीघ्र राजभवन लाये गये रामने प्रणाम करनेके बाद देखा कि पिताजी-का मुख अस्वाभाविक रूपमें उदास हो रहा है तो उन्हें कोई कारणके ज्ञान नहीं रहनेके कारण बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कैकेयीसे राजाकी उदासीका कारण पूछा।

सापि पापाशया प्रत्यवादीत्।

सापीति। पापाशया दुष्टाभिप्राया अपवित्रसङ्कल्पेति यावत्, सा कैकेयी अपि प्रत्यवादीत् वक्ष्यमाणमुत्तरं दत्तवतीत्यर्थः। 'आशयः स्यादभिप्राये मानसाधारयो-रपि' इति विश्वः।

उस दुष्ट अभिप्राय रखने वाली कैकेयीने भी इस प्रकार उत्तर दिया।

वत्स, प्रतिश्रुतवरद्वयनिर्वहणे निपुणेतरस्तातस्ते सम्प्रति सानुश-यस्तनयवात्सल्यात्सत्यव्यत्यासत्रासाच्च गाढम[4]गाधे शोकसागरे निम-ज्जतीति।

वत्सेति। वत्स पुत्र राम, ते तव तातः पिता राजा प्रतिश्रुतस्य मह्यं दातुं प्रति-ज्ञातस्य वरद्वयस्य निर्वहणे पूरणे निपुणेतरः असमर्थः, सम्प्रति सानुशयः पश्चा-

१. 'प्रवेशितस्ततः' इति पाठान्तरम्। २. 'विलास' इति पाठान्तरम्।
३. 'चकितमतिः' इति पाठान्तरम्। ४. 'अगाधशोक' इति पाठान्तरम्।

त्तापयुतः, (एकतः) तनयस्य वात्सल्यात् पुत्रस्य स्नेहात् (अपरतः) सत्यव्य-त्यासत्रासात् सत्यवचनभङ्गभयात् च अगाधे गभीरे शोकसागरे दुःखोदधौ गाढम् अतिशयेन निमज्जति। तव पिता मह्यं वरद्वयं दातुं प्रतिज्ञां कृतवान्, अहं तद्व-रद्वयं याचितवती, सम्प्रत्ययं वरद्वयं पूरयितुं न क्षमते, पुत्रप्रेमपारवश्यात्, अपू-रणे च तस्य सत्यं च्यवते तदियमुभयतः पाशारज्जुरिमं महति क्लेशे निमज्जयति, एतदेवास्यौदासीन्ये कारणमिति भावः। 'तातस्तु जनकः पिता' 'अथानुशयो दीर्घद्वेषानुतापयोः' 'स्निग्धस्तु वत्सलः' 'प्रगाढं भृशकृच्छ्रयोः' इति सर्वत्रामरः।

बेटा, तुम्हारे पिता प्रतिज्ञात दोनों वरदानोंको पूरा करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर पश्चात्ताप कर रहे हैं और एक ओर पुत्रप्रेम तथा दूसरी ओर सत्यभङ्गके भयसे अगाध दुःखसागरके तलमें डूबे हुए हैं।

वरद्वयं तावत्तव मुनिवृत्त्यैव[1] वने वर्तनमवनेरवनं[2] भरतस्येति।

वरद्वयमिति। पूर्वत्रोद्दिष्टं वरद्वयं प्रतिज्ञातं वरयोर्युगलम् तावत् पदमवधारणा-र्थकम् इदमेव वरयुगलमिति तावदन्तपदसमुदयार्थः। तव रामस्य मुनिवृत्त्या तापसव्यवहारेण वने वर्त्तनम् अवस्थानम्, भरतस्य मम पुत्रस्य अवनेरवनम् पृथिवीपालने नियुक्तिः राज्याभिषेक इत्यर्थः। एकेन वरेण तव वनवासः परेण च भरतस्य राज्याभिषेको मया प्राथ्यंत इत्यर्थः।

ये ही दोनों वर हैं कि एकके द्वारा तुम मुनिवृत्तिसे वनमें वास करो और दूसरे वरसे भरतको पृथिवीपालनका अधिकार दिया जाय।

रामस्तदाकर्ण्य प्रमुदितहृदयः कृताञ्जलिरेनां[3] प्रति व्यजिज्ञपत्।

राम इति। तत् पूर्वोक्तं कैकेयीवचनम् आकर्ण्य श्रुत्वा प्रमुदितहृदयः प्रसन्न-चित्तः रामः कृताञ्जलिः विनयसूचकप्रणाममुद्रया युक्तकरयुगः सन् एनाम् कैके-यीम् प्रति व्यजिज्ञपत् उवाच। अत्र 'मनसो निर्विकारत्वं धैर्यं सत्स्वपि हेतुषु' इति लक्षितो रामस्य धीरभावो व्यञ्जितः।

कैकेयीके वचन सुनकर प्रसन्नचित्त रामने हाथ जोड़कर कैकेयीसे कहा।

भीतो भूभरतः किमम्ब भरतः किंवा वनात्पावना-
त्त्रस्तोऽहं सगरान्ववायककुदस्तातः कुतः शोचति।
दिव्यायाः सरितो निवापकरणाल्लघ्वीं प्रतिज्ञामिमा-
मावाभ्याम[4]भिपूरयिष्यति न चेत्पुत्री कथं स्यादयम्॥ २४॥

---

१. 'वन्यवृत्त्यैव' इति पाठान्तरम्। २. 'भरतस्य चेति' इति पाठान्तरम्।
३. 'एनां व्यजिज्ञपत्' इति पाठान्तरम्। ४. 'इह पूरयिष्यति' इति पाठान्तरम्।

भीत इति। हे अम्ब, मातः, किं भरतः मम भ्राता तव पुत्रः भूभरतः पृथिवीपालनरूपस्य भारस्य स्वीकारात् भीतः भयग्रस्तः किम् ? नैतत्सम्भाव्यते महासत्त्वे भरते यदसौ पृथिवीपालनात् त्रस्येदिति भावः, किंवा अथवा पावनात् सर्वविधपवित्रतापात्रात् वनात् काननात् अहम् रामस्त्रस्तः भीतिभाक्, इदमपि नास्तीत्यर्थः। (तदस्यां स्थितौ) सगरान्ववायककुदः सगरवंशस्य तिलकः श्रेष्ठभूतः इत्यर्थः, तातः मम पिता कथं किमिति शोचति चिन्तयति। मम पितुश्चिन्तायाः वरप्रदानरूपसत्यभङ्गविषयकचिन्तायास्तदैवावसरः स्याद्यदि भरते राज्याद्भियादहं च वनवासात् त्रस्येयं न चानयोरेकमपि कारणमवेक्षे, तदा सगरकुलतिलकतया दुष्पूरप्रतिज्ञापूरणव्यसनिस्वभावो मम पिता सुपूरेऽत्र वरद्वये किमिति चिन्तया खिद्यत इत्याशयः। दिव्यायाः स्वर्गवाहिन्याः सरितः मन्दाकिन्याः नामनद्याः निवापकरणात् जलाञ्जलिरूपतयोपस्थापनात् लघ्वीम् सरलाम् ईषत्कराम् इमाम् तुभ्यम् वरद्वयदानलक्षणाम् प्रतिज्ञाम् आवाभ्याम् मया भरतेन च चेत् यदि न अभिपूरयिष्यति पूर्णां करिष्यति, अयम् मम पिता (तदा) पुत्री कथं स्यात् कथं पुत्रवान् भवेत् ? सगरवंशे जातो भगीरथो दिव्यां सरितं पातालं नीत्वा स्वपितृणामुद्धरणे तां नदीमेव निवापजलतां प्रापय्य स्वां प्रतिज्ञां निरवहत् तस्यैव वंशे जन्म लब्धवता मम तातेन यदि मयि भरते च पुत्रे विद्यमाने लघ्वीयं वरदानप्रतिज्ञा न पूरिता तदाऽऽवाभ्यां पुत्राभ्यां सद्भ्यामपि तस्य पुत्रवत्ता कथं सिद्ध्येदित्याशयः। 'त्रासो भीतिर्भयम्' 'वंशोऽन्ववायः सन्तानः' 'ककुद्वत्ककुदं श्रेष्ठे वृषाङ्गे राजलक्ष्मणि' 'निवापः पितृतर्पणम्' इति सर्वत्र ते ते कोशाः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ २४ ॥

माँ, क्या पृथ्वीके भरणसे भरत डरता है ? अथवा पवित्रतम वनमें रहनेसे मैं ही घबड़ाता हूँ ? फिर सगरकुल श्रेष्ठ हमारे पिताजी इन वरोंकी पूर्त्तिकी क्या चिन्ता करते हैं। स्वर्गवाहिनी नदी मन्दाकिनीको निवापोदकके रूपमें उपस्थित करनेकी प्रतिज्ञाके सामने अतितुच्छ इस प्रतिज्ञाको हमारे पिताजी यदि हमारे और भरतके रहते हुए भी पूर्ण नहीं कर सके तो हम और भरत उनके पुत्र कैसे कहे जायेंगे और हमसे और भरतसे वे पुत्रवान् कैसे कहे जायेंगे ? ॥ २४ ॥

वनभुवि तनुमात्रत्राणमाज्ञापितं मे
सकलभुवनभारः स्थापितो वत्समूर्ध्नि।
तदिह सुकरतायामावयोस्तर्कितायां
मयि पतति गरीयानम्ब ते पक्षपातः ॥ २५ ॥

वनभुवीति। हे अम्ब, मातः मे मह्यम् वनभुवि काननभूमौ तनुमात्रत्राणम् स्वशरीररक्षामात्रम् आज्ञापितम् आदिष्टम्, वत्सस्य मम प्रीतिपात्रस्य भ्रातुः मूर्ध्नि

मस्तके सकलभुवनभारः सकललोकरक्षाकृत्यभरः स्थापितः बलान्निहितः। तत् आवयोः मम भरतस्य च इह अनयोः स्वकायमात्रपालनविश्वरक्षयोः सुकरतायाम् सुखं साध्यतायाम् तर्कितायाम् कस्य कार्यमल्पायासनिष्पाद्यमिति विवेचनायां क्रियमाणाय मयि मद्विषये ते गरीयान् अतिमहान् पक्षपातः स्नेहकृतः कर्त्तव्यत्रुटिः आदरातिशयो वा पतति भवति। अयमाशयः—ज्येष्ठोऽहं रामः कनिष्ठश्च भरतः इति स्वभावतः कार्यं विभजन्त्या त्वया मात्रा कठिनं कार्यं ज्येष्ठाय सुकरं च कार्यं कनिष्ठाय देयमासीत्, परं त्वं मय्यधिकं स्निह्यन्ती पक्षपातं कृत्वा व्यत्यस्तवतीमं साधारणं नियमं यन्मह्यमीषत्करं वने स्वतनुत्राणमात्रमादिष्टं, वत्सस्य भरतस्य च मूर्ध्नि सकलभुवनभारः स्थापित इति स्फुटो मद्विषये तव पक्षपात इति भावः। मालिनीवृत्तम् ॥ २५ ॥

वनप्रान्तमें केवल अपनी देहकी रक्षा करनेका कार्य मुझे दिया गया और सारी पृथ्वीके पालनका भार भरतके शिर पर डाल दिया गया। यदि यहाँ पर हम दोनों के कार्योंकी सुकरताका विचार किया जाय तो माँ, लोग तुमको रामके प्रति पक्षपात करनेका दोष देंगे ॥ २५ ॥

किञ्च—

तातः स्ववाचा व्यवहृत्य हृद्यं वत्साभिषेकोत्सवमङ्गलं मे।
प्रणामसंज्ञस्य मयार्पितस्य किं पूर्णपात्रस्य न पात्रमासीत् ॥ २६ ॥

किञ्च, तात इति। तातः पिता दशरथः स्ववाचा निजमुखेन मे मम हृद्यं प्रियं वत्साभिषेकोत्सवमङ्गलम् भरतराज्याभिषेकरूपं कल्याणं व्यवहृत्य उक्त्वा प्रणामसंज्ञस्य प्रणामरूपस्य मयाऽर्पितस्य पूर्णपात्रस्य उत्सवावसरे श्रेष्ठेभ्यः प्रदेयस्य किं पात्रम् योग्यः नासीत्? अयमाशयः—भरतो राज्येऽभिषेक्तव्य इति मम प्रियं निवेद्य पिता मम प्राणात्मकं मम स्वीकारं पश्येदित्युचितं, तत्कुतो नायमात्मना तन्मम प्रियमावेद्य मया समर्प्यमाणं प्रणामरूपं पूर्णपात्रं गृह्णातीत्यर्थः। उत्सवावसरे कल्याणं सूचयन्तः पूर्णपात्रप्रदानेन सत्क्रियन्त इति समुदाचारमवलम्ब्येयमुक्तिः। 'उत्सवादिषु यद्देयं पूर्णपात्रं तदुच्यते' इत्यभियुक्ताः ॥ २६ ॥

पिताजी अपने मुंहसे हमें यह कहते कि भरतको राज्याभिषेक दिया जायगा, वह मुझे बहुत प्रिय प्रतीत होता, प्रणामपूर्वक हम उसे स्वीकार करते। इस प्रकार खुशखबरी सुनानेके उपलक्ष्यमें हमारे द्वारा दिया जानेवाला पूर्णपात्र प्राप्त करनेके क्या वह पात्र नहीं थे? उचित तो यही था कि वह मुझे यह शुभ समाचार सुनाते और स्वीकारसूचक हमारा प्रणाम ग्रहण करते, किन्तु न जाने क्यों ऐसा नहीं करके आपके द्वारा यह शुभ सूचना दे रहे हैं ॥ २६ ॥

तत्क्षणमशनिहत इव पर्वतः सर्वतः परीतदवदहन इव वनस्पतिः दिवस्पतिपदभ्रंशविधुर इव नहुषः पपात निःसंज्ञः पङ्क्तिरथः।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्नेव क्षणे रामे एवं कथयति सत्येवेत्यर्थः, वज्रनिहतः वज्राहतः पर्वतः गिरिः इव, सर्वतः सर्वासु दिशासु परीतदवदहनः व्याप्तवनवह्निः वनस्पतिः वृक्ष इव, दिवस्पतिपदस्य इन्द्रपदस्य भ्रंशेन अपगमेन इन्द्रपदात्स्वस्य च्युत्या इत्यर्थः, विधुरः दुःखी नहुषः तदाख्यः प्रसिद्धो राजविशेषः इव निःसंज्ञः मूर्च्छितः पङ्क्तिरथः दशरथः पपात भूमौ पतितः। रामेण तातः स्वयं मह्यं किमिति भरताभिषेकं नासूचयदिति प्रोक्तमाकर्ण्य दशरथः सद्य एव वज्राहतगिरिवत् समन्ततो वह्निवृतो वृक्ष इव स्वर्गच्युतो नहुष इव चासंज्ञः सन्धरणावपतदित्यर्थः। पङ्क्तिरथः दशरथः 'पङ्क्तिश्छन्दोऽपि दशमम्' इत्युक्तेः 'वनस्पतिर्वृक्षमात्रे' इति विश्वः। 'शतमन्युर्दिवस्पतिः' इति 'विधुरः पत्यपेते स्यात् कष्टविश्लिष्टयोरपि' इति चामरयादवौ। पुरा किल नहुषो नाम ययातिपिता कुतश्चित्पुण्यसंभारादिन्द्रपदं प्राप्तवांस्तत्र चाहङ्कारवशादगस्त्यं हुङ्कृत्य तेन शप्तो धरण्यां पपातेति पौराणिकं वृत्तमत्र ध्यातव्यम्।

उसी समय रामकी बात सुनते ही दशरथ वज्राहत पर्वतकी तरह, वनवह्निसे चारों तरफ घिरे वृक्षकी तरह एवं इन्द्रपदके भ्रंशसे दुःखी नहुष राजाकी तरह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर गये।

ततः सा पितृनिदेश[1]माचरेति राममादिदेश।

तत इति। ततः दशरथे मूर्च्छामापद्य वक्तुमक्षमे सति सा कैकेयी पितृनिदेशम् राज्ञ आज्ञाम् आचर कुरु पालय इति रामम् आदिदेश आज्ञापितवती।

दशरथके मूर्च्छित हो जानेपर कैकेयीने रामसे पिताकी आज्ञाका पालन करनेको कहा।

स एषः—

मातुराज्ञां वहन्मूर्ध्ना मालामिव महायशाः।
वनाय रामो वव्राज जगतामवनाय च ॥ २७ ॥

स एषः, मातुरिति। सः एषः कैकेय्या पित्राज्ञापालनाय दिष्टः महायशाः प्रशस्तकीर्तिः रामः मातुः कैकेय्याः आज्ञाम् वनगमनरूपमादेशम् मालाम् पुष्पस्रजमिव मूर्ध्ना शिरसा वहन् धारयन् रामः वनाय काननाय जगताम् त्रयाणाम् अपि लोकानाम् अवनाय राक्षससंहारद्वारा पालनाय च जगाम प्रतस्थे। कैकेय्या वनं गन्तुमादिष्टो रामो मातुः कैकेय्या आदेशं शिरसा मालामिव निधाय लोकरक्षा-

१. 'निदेशविचारमचिरम्', 'निदेशमविचारम्' इति च पाठान्तरम्।

वनं जगामेत्यर्थः। अत्र 'वनाय अवनाय' इति विरोधप्रतिभासश्चमत्कारमूलम्। 'मालामिव' इत्युपमा॥ १२७॥

प्रशस्तकीर्त्ति रामजी माताकी आज्ञाको माला की तरह मस्तक पर लेकर संसारको रावणादि राक्षसकृत उपद्रवसे बचानेके लिये वनको चले गये॥ २७॥

असौ [1]समासाद्य सद्यः कौसल्यासदनमभिषेकप्रतिबन्धं कैकेयीनिर्बन्धमात्मनश्च वनवासं प्रणामानन्तरं तस्यै न्यवेदयत्।

असाविति। असौ रामः सद्यः अविलम्बेन कौसल्यासदनं स्वमातुर्भवनं समासाद्य गत्वा अभिषेकप्रतिबन्धम् स्वराज्याभिषेकस्य निरोधम्, कैकेयीनिर्बन्धम् कैकेय्या आग्रहातिशयम् वरद्वयप्रदानाय राजानं प्रति भूयो भूयोऽनुरोधम्, आत्मनः स्वस्य च वनवासं वनेऽवस्थानम् प्रणामानन्तरम् अभिवादनात् परतः तस्यै कौसल्यायै न्यवेदयत् उक्तवान्। रामः कैकेय्या वनं गन्तुमादिष्टस्तत्क्षणमेव स्वमातुर्भवनमुपेत्य तां प्रणम्य चोक्तवान् 'यन्मम राज्याभिषेको न भविष्यति यतः कैकेयी स्ववरद्वयं प्रसिद्धाकारं महताऽऽग्रहेण याचते, अतोऽहं वनं गच्छामि' इति।

रामजी कैकेयीकी आज्ञा प्राप्त कर लेनेके बाद झट अपनी माता कौसल्याके भवनमें गये और माताको प्रणाम करके अपने राज्याभिषेकका रुक जाना, कैकेयीका वर पानेका आग्रह और अपने वनवासकी सूचना दे दी।

सैत[2]दाकर्ण्य विदीर्णहृदया विषदिग्धमुखशिलीमुखविद्धश्रवणयुगलेव सहसा निपत्य[3] विललाप।

सैतदिति। सा कौसल्या एतत् राज्याभिषेकपुरस्कृतं रामवनगमनम् आकर्ण्य राममुखात् श्रुत्वा विदीर्णहृदया विदलितचित्ता सती विषदिग्धम् विषमूर्च्छितम् मुखम् अग्रभागो यस्य तादृशो यः शिलीमुखो बाणस्तेन विद्धम् छेदितम् श्रवणयुगलं कर्णद्वयं यस्याः सा तादृशी इव सहसा सपदि निपत्य भूमौ पतित्वा विललाप विलापं प्रारेभे। रामवनवासश्रवणसमकालमेव कौसल्या भूमौ निपपात, मन्ये तच्छ्रवणेन तस्या हृदयं विदीर्णमिव, तदीयं च कर्णद्वयं केनचित् विषमूर्च्छितेन बाणेन विद्धमिव, तथाभूता सा विलपितुं प्रवृत्तेति भावः। 'मुखं स्यादग्रभागेऽपि' 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्युभयत्रामरः।

इतना सुनते ही कौसल्याका हृदय विदीर्ण हो उठा, ऐसा मालूम पड़ा कि किसीने उसके कानोंमें विषमें बुझा बाण घुसेड़ दिया हो। वह धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

---

१. 'समासाद्य कौसल्या' इति पाठान्तरम्।   २. 'एतत्' इति पाठान्तरम्।
३. 'भूम्यां निपत्य' इति पाठान्तरम्।

रेखारथाङ्गसरसीरुहशङ्खचिह्ने
क्षेमंकरे तव करे जगतां त्रयाणाम् ।
कान्तारकन्दखननं रचयेति नून-
माबद्धवान्प्रतिसरं भगवान्वसिष्ठः ॥ २८ ॥

रेखेति । रेखाः रेखारूपाणि यानि रथाङ्गः चक्रम् , सरसीरुहम् कमलम्, शङ्खः शुक्तिभेदश्च तेषां चिह्नं यत्र तादृशे, चक्रकमलशङ्खात्मरेखायुक्त इत्यर्थः, त्रयाणां जगतां लोकानां क्षेमङ्करे कल्याणविधायके तव रामस्य करे नूनम् निश्चयेन (उत्प्रेक्षे) भगवान् वसिष्ठः मान्यो मुनिः कान्तारकन्दखननं वनमूलादिकावदारणं रचय कुरु इति उद्दिश्य प्रतिसरम् रक्षासूत्रम् आबद्धवान् निहितवान् । सामुद्रिकानुसारेण सौभाग्यसूचकानि यानि चक्रकमलशङ्खचिह्नानि तैरुपपन्ने तव हस्ते वसिष्ठः (श्वो भाविनो राज्याभिषेकस्य निर्विघ्नतया सम्पत्तये) यद्रक्षासूत्रं बद्धवान् मन्ये तद्रक्षासूत्रं तव करे कान्तारे कन्दोत्पाटनार्थमेव बद्धम् । वसिष्ठेन रक्षासूत्रं यदुद्दिश्य बद्धं तन्न फलितं, न च वैयर्थ्यं तत्र कल्पयितुं शक्यं, तस्य मुनेर्महाप्रभावत्वादतः फलवलकल्पनया रक्षासूत्रस्य कन्दखननप्रयोजनकत्वमुत्प्रेक्ष्यत इति हृदयम् । 'क्षेमङ्करे' इत्यत्र 'क्षेमप्रियमद्रेऽण् च' इति खच्प्रत्ययः । 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः । 'कान्तारं विपिनं वनम्' 'हस्तसूत्रे प्रतिसरोऽस्त्रियाम्' इत्युभयत्राभिधानरत्नावली । प्रतिसरस्यान्यार्थबद्धत्वेऽपि कान्तारकन्दखननार्थतायाः सम्भावनादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ॥ २८ ॥

चक्र, कमल एवं शङ्खकी रेखासे युक्त तुम्हारे इस त्रैलोक्य कल्याणकारी हाथमें भगवान् वसिष्ठने जो यह मंगलसूत्र पहनाया था वह मानो वनमें कन्दमूल खनने के लिये ही पहनाया था, अर्थात् इसका यही परिणाम हुआ ॥ २८ ॥

तत्र सौमित्रिरतिमात्रप्रवृद्धमन्युः शतमन्युसमानमेवमग्रजमकथयत् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन्नवसरे कौसल्यायां पूर्वोक्तप्रकारेण विलपन्त्यामित्यर्थः, सौमित्रिः लक्ष्मणः अतिमात्रप्रवृद्धमन्युः अत्यन्तकुपितः शतमन्युसमानम् इन्द्रतुल्यम् अग्रजम् ज्येष्ठभ्रातरम् रामम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अकथयत् उक्तवान् ।

उस समय लक्ष्मणजीका क्रोध जोरोंसे भड़क उठा और उन्होंने इन्द्रतुल्य अपने अग्रज रामजीसे इस प्रकार कहा ।

आर्य, [1]अकार्यमिदं [2]लोकगर्हणार्हायाः कैकेय्या [3]वचसा रजसा जरसा

१. 'न कार्यम्' इति पाठान्तरम् । २. 'लोकगर्हणीयायाः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'वचसा जरसा' इति पाठान्तरम् ।

च समाक्रान्तस्वान्ततया कृत्याकृत्यविवेकमूकस्य राज्ञः प्रज्ञाशैथिल्या-न्निःसृतेन वचसा सन्त्यज्य राज्यमटवीपर्यटनं विधातुम् ।

आर्येति । हे आर्य, पूज्य भ्रातः, अकार्यम् न कर्त्तुं योग्यम् इदम्, लोकगर्हणा-र्हायाः संसारकृतनिन्दापात्रीभूतायाः कैकेय्या वचसा वचनेन, रजसा रजोगुणेन कामासक्तिकरेण वासनात्मना जरसा वार्द्धकेन च समाक्रान्तस्वान्ततया युक्तचित्त-तया कृत्याकृत्यविवेके इदं कार्यमिदमकार्यमिति विचारे मूकस्य अक्षमस्य राज्ञः दशरथस्य प्रज्ञाशैथिल्यात् बुद्धिजाड्यात् निःसृतेन निर्गतेन (वनं याहीति) वचसा राज्यम् क्रमप्राप्तमभिषेकम् सन्त्यज्य परित्यज्य अटवीपर्यटनं कान्तारात् कान्तारा-न्तरे भ्रमणं विधातुम् कर्त्तुम् । अयमाशयः—लोकनिन्दितायाः कैकेय्या वचनेन कामा-तुरतया वार्धक्येन च भ्रष्टबुद्धे राज्ञः कथनात् न्यायप्राप्तं राज्यं परित्यज्य वनगमनं नितान्तमनुचितमिति । 'कुत्सा निन्दा च गर्हणे' 'रजो रजोगुणे धूलौ परागार्त्तवयो-रपि' इत्युभयत्रामरः ।

पूज्य भ्रातृवर, लोकनिन्दिता कैकेयीके कहनेसे रजोगुण तथा बुढ़ापेसे नष्टबुद्धि अत एव कृत्याकृत्यविचारशून्य राजाके अविचारपूर्ण आज्ञाको मानकर राज्यका त्याग करके वन जाना अनुचित होगा ।

किन्तु, तुभ्यमनभ्यर्थमानाय प्रथममेव पित्रा प्रदत्ता ननु पृथिवी ।

किन्त्विति । अनभ्यर्थयमानाय अयाचते तुभ्यं रामाय पित्रा दशरथेन प्रथमं पूर्वम् एव पृथिवी राज्यमिति तात्पर्यम् प्रदत्ता ननु । अयमाशयः—यदि त्वं वन-मगत्वा राज्यमेव पालयसि तदाऽपि तव नानौचित्यं, पृथिव्यास्तुभ्यं विनैव त्वत्प्रा-र्थनां पित्रा प्रदत्तपूर्वत्वात्, दत्तायास्तस्या अपहारस्य केनाप्याचरितुमशक्यत्वात्, तव तदधिकारस्य न्यायप्राप्तत्वाच्च, अतो राज्यपालनमेवोचितं न पुनर्वनगमनं, तादृशस्यादेशस्य पित्रा परकीयानुरोधपारवश्येन प्रदीयमानत्वेऽपि तत्र तस्य स्वर-साभावात्, सत्यपि वा स्वरसे तादृशस्वरसे बीजत्वेनाभ्यूहितस्य रजसश्चित्तदोष-रूपतया तदुत्थापितवचसोऽपालनीयत्वादिति ।

परन्तु पिताजीने तो विना प्रार्थनाके पहले ही आपको राज्य दे दिया था। फिर तो राज्य आपको न्यायप्राप्त ही है ।

क्षत्रधर्मोऽपि [1]धर्म्यात्पथः [2]प्रमाद्यापि वर्णाश्रमरक्षणतः समीचीनः प्रायेण पुरुषं निश्रेयसे नियोजयेत् ।

क्षत्रधर्मोऽपीति । धर्म्यात् धर्मे वर्त्तमानात् पथः मार्गात् प्रमाद्य अनवधानतां प्राप्य अपि वर्णाश्रमरक्षणतः प्रजापालनतः समीचीनः सम्पन्नगुणः क्षत्रधर्मः क्षत्रियाचारः

---

१. 'तथ्यात्पथः' इति पाठान्तरम् ।   २. 'प्रमाद्योऽपि' इति पाठान्तरम् ।

प्रायेण बाहुल्येन पुरुषं जनं निःश्रेयसे कल्याणे नियोजयेत् प्रवर्त्तयेत्। यदि कश्चित् क्वचित् अंशे विगुणतामापाद्यापि प्रजापालनमाचरेत् क्षत्रियस्तदा तस्य तद्वैगुण्यं दोषाय न कल्पते, मुख्यस्य प्रजापालनकर्मणः स्वनुष्ठितत्वादतो भवताऽपि क्वचिदंशे पित्राज्ञाया अक्षरशोऽनुवर्त्तनाभावाद् धर्म्यात्पथः प्रमाद्यापि यदि धर्मतः प्रजाः पाल्यन्ते तदा कल्याणमेव स्यात्, वनगमनस्य क्षत्रधर्माभावात्, 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्' इति भावः।

यदि क्षत्रमार्गसे वर्णाश्रमकी रक्षा करते रहते हैं तो आपका कल्याण ही होगा, भले ही वैसा करनेमें अक्षरशः पिताकी बात नहीं माननेके कारण धर्ममें थोड़ी सी त्रुटि आ जायगी, तथापि वन जानेसे राज्यपालन ही क्षत्रियके लिये कल्याणकर होगा।

नियतं [1]नियतिबलमतिलङ्घ्य पौरुषमेव [2]धीरस्य पुरुषार्था[3]न्समर्थयेत्।

नियतमिति। नियतं निश्चयेन नियतिबलम् भाग्यवादम् अतिलङ्घ्य तिरस्कृत्य पौरुषम् पुरुषकारः एव धीरस्य वीरस्य पुरुषार्थान् काम्यमानान् धर्मार्थकाममोक्षान् समर्थयेत् उपपादयेत्। वीरो हि जनो दैवबलं विहाय यदा पुरुषार्थे प्रयतते तदैव तस्यार्थाः सिद्धयन्ति, न भाग्यवादिताऽऽलम्बनेन, अतस्त्वमपि पुरुषकारमाश्रित्य स्वप्राप्यं राज्यं गृहाण, भाग्यायत्तमिदं वनगमनमिति प्रतीत्य मा च वनं गम इति भावः।

भाग्यके भरोसे नहीं रहकर पौरुषका आश्रयण करनेसे निश्चित ही वीरजन पुरुषार्थको सिद्ध कर सकेंगे, अतः आप भी भाग्यलब्ध वनगमनकी बात छोड़कर पुरुषार्थ करें। अपना अधिकार देखें।

मा भूत्त्वत्पदपद्मयोररुणिमा कान्तारसंचारतः
पाणौ पाटलिमा मनाक्प्रसरतु ज्याकर्षणादेव मे।
कैकेयीपरिभूततातवचने नम्रो भवान्मा स्म भू-
[4]त्किञ्चिन्मामकमार्य शौर्यजलधे नम्रं धनुर्वर्तताम् ॥ २६॥

माभूदिति। हे शौर्यजलधे, वीरतासागर, आर्य पूज्य, कान्तारे वने सञ्चारः भ्रमणम् ततः त्वत्पदपद्मयोः कमलतुल्ययोः तव चरणयोः अरुणिमा कठिनभूमिसञ्चारजन्यस्पर्शदोषवशोत्थितरक्ताभता मा भूत् न जायताम्, मे मम लक्ष्मणस्य पाणौ हस्ते (एव) ज्याकर्षणात् प्रत्यञ्चावमर्शनात् मनाक् स्वल्पः पाटलिमा रक्तता प्रसरतु जायताम्। भवान् वने भ्रान्त्वा स्वीयौ कमलतुल्यौ मृदू पादौ न रञ्जयतु केवलमहमेव धनुराकृष्य स्वं करतलं किञ्चित्पाटलवर्णं करोमि, भवान् वनं न यातु

१. 'नियतेर्बलं' इति पाठान्तरम्। २. 'पुरुषस्य धीरस्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'र्थानर्थयेत्' 'समर्पयेत्' इति च पा०। ४. 'किं वा' इति पाठान्तरम्।

अहमेव धनुषा भवद्वनगमनकामुकाञ्जनान् निहन्मि इति भावः। (किञ्च) कैकेय्या परिभूतस्य कामेन अन्येन वा वञ्चनशतेन वशीकृतस्य तातस्य पितुर्वचने आदेशे वनगमनराज्यत्यागरूपे भवान् नम्रः सौशील्यवशान्नतशिराः कृतसम्मतिः मा स्म भूत् न जायताम्, किन्तु मामकं मदीयं धनुः शरासनम् किञ्चित् नम्रम् ईषदाकृष्टम् वर्त्तताम् सम्पद्यताम्। भवान् पितुरादेशस्य पुरतो नम्रत्वं नाश्रयतु, धनुरेव ममेदं नम्रतां व्रजतु कामपराहतस्य नृपस्य वञ्चिकायाः कैकेय्यास्तत्पक्षपातिनामन्येषां वा प्राणानपहरत्वित्यर्थः। 'मौर्वीज्या शिञ्जिनीगुणः' 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्युभयत्रामरः। अत्र रामचरणधार्यरक्तत्वस्य निषेधमुखेन लक्ष्मणपाणौ पाटलत्ववर्णनं तथा रामधार्यनम्रताप्रतिक्षेपेण लक्ष्मणधनुषि नम्रताया वर्णनमेव चमत्कारस्थानम्। स चायं चमत्कारः परिसंख्यां प्रयोजयति। तथा चोक्तं तल्लक्षणम्—'एकस्य वस्तुनः प्राप्तावनेकत्रैकदा यदा। एकत्र नियमः सा हि परिसंख्या इति निगद्यते'॥ २९॥

हे वीरताके सागर पूज्य भ्रातृवर, वनमें इतस्ततः घूमनेसे आपके चरणकमलोंकी लाली न बढ़े, केवल हमारे हाथ धनुष पर डोरी चढ़ानेके कारण तनिक लाल हो जाय और कैकेयीके छलमें पड़कर अपने विवेकसे वञ्चित पिताकी बातोंके सामने आप नम्र मत बने, केवल हमारा यह धनुष ही नम्र–आकर्षित हो॥ २९॥

एवमाचक्षाणं लक्ष्मणं रामः सान्त्वयन्नेवावोचत्।

एवमिति। एवम् प्रोक्तेन प्रकारेण आचक्षाणम् कथयन्तम् लक्ष्मणम् सान्त्वयन् सामवादैर्बोधयन् एव न तु तदुक्तमनुमोदयन्, रामः वक्ष्यमाणदिशा अवोचत् उक्तवान् 'साम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः।

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मणको रामने समझाते हुए कहा।

वत्स, सवितृवंशजातानां पितृनिदेश एव देशिकः सर्वकर्मसु।

वत्सेति। वत्सेति स्नेहसम्बोधनम्, तेन च सान्त्वनस्य श्रोतव्यताध्वनिः। सवितृवंशजातानाम् सूर्यवंशे समुत्पन्नानां जनानाम् पितृनिदेशः जनकाज्ञा एव सर्वकर्मसु सकलकार्येषु देशिकः आचार्यः। सूर्यवंश्याः सर्वेष्वपि कार्ये पितुरादेशमेव प्रमाणभूतमुपदेशकं मन्यन्ते, न तु तदुक्तिमन्यथयितुं चिन्तयन्त्यपीति भावः।

भाई, सूर्यवंशी लोग सभी कार्योंमें पिताकी आज्ञाको ही देशिक–आचार्य–उपदेष्टा मानते आये हैं, अतः पिताका आदेश अपने लिये भी अनुल्लङ्घनीय है।

बहवः खलु पितृनिदे[१]शगौरवाद्ब्रोहत्यामपि मातृवधमपि तारुण्य-

१. 'वचन' इति पाठान्तरम्।

त्रिनिमयमपि [1]कण्डुरैणुकेयपूरुप्रभृतयः [2]कुर्वाणा निर्विचारमाचारवताम- ग्रण्या इति गण्यन्ते ।

वह्वेति । कण्डुर्नाम महर्षिः कश्चित्, रेणुकाया अपत्यं पुमान् रैणुकेयः परशु- रामः, पूरुः ययातिपुत्रः, ते कण्डुरैणुकेयपूरवस्तत्प्रभृतयस्तदाद्याः बहवः अनेके पितृनिदेशगौरवात् पितुराज्ञायां बहुमानात् गोहत्याम् अतिगर्हितं धेनुवधम् अपि, मातृवधम् जननीप्राणहरणम् अपि, तारुण्यविनिमयम् यौवनं पित्रे प्रदाय तदीय- वार्धक्यग्रहणम्, निर्विचारम् विनैव कर्त्तव्यमिदमकर्त्तव्यं वेति चिन्ताम्, कुर्वाणाः आचारवताम् प्रशस्ताचरणशालिनाम् अग्रगण्याः पुरोगाः इति गण्यन्ते संख्या- यन्ते । पुराकाले कण्डुनामको मुनिः पितुरादेशेन विना विचिकित्सां गामहन्, परशुरामश्च रेणुकाया निजमातुः शिरोऽच्छिनत्, एवमेव पूरुर्नाम ययातितनयः स्वं यौवनं प्रदाय पितुर्वार्धक्यमङ्गीचकार, सर्वेऽपीमे प्रशस्ताचारतया गण्यन्ते, अतः पितुरादेशो विनैव विचारमवश्यं पालनीयस्तन्मा तत्र विषये विपरीतं भाषिष्ठ इति भावः ।

पिताकी आज्ञासे महर्षि कण्डुने विना सोचे गोहत्या की, परशुरामने अपनी माताका शिर काट दिया और पूरुने अपनी जवानी देकर पिताका बुढ़ापा ग्रहण किया, ऐसे और भी बहुतसे दृष्टान्त हैं, जिनमें पुत्रोंने विना विचारे पिताकी आज्ञाका पालन किया, वे सभी आचारवानोंमें अग्रगण्य माने जाते हैं अतः हमको भी आचारवान् बननेके लिये पिताकी आज्ञाका विना 'ननु न च' किये पालन करना चाहिये ।

तस्मादवश्यं वश्य एव पितुरवगाहे गहनमिति ।

तस्मादिति । तस्मात् पितृनिदेशस्यावश्यपालनीयत्वात् हेतोः अवश्यम् निश्चयेन पितुः वश्यः आज्ञाकर एव गहनम् वनम् अवगाहे गच्छामि, नास्ति तत्र विवेचनाया अन्यस्य वा प्रकारस्य प्रसर इति भावः ।

इसलिये पिताकी आज्ञाको अवश्य मानकर हमको वन जाना है, इसमें विचारकी गुञ्जाइश नहीं है ।

तत्र विस्तृतपुत्रवात्सल्या कौसल्या तेन सह गन्तुमभिलषन्ती कृत- प्रणामेन रामेण सविनयमेवमभिहिता ।

तत्रेति । तत्र रामे एवमुक्त्वा कृतवनगमननिश्चये सति विस्तृतपुत्रवात्सल्या उद्रिक्तपुत्रस्नेहा कौसल्या रामजननी तेन रामेण सह गन्तुम् वनं प्रस्थातुम् अभि- लषन्ती कृतप्रणामेन पादयोः पतितेन रामेण सविनयम् सप्रश्रयम् एवम् वक्ष्य- माणदिशा अभिहिता उक्ता रामे वने गन्तुमुद्युञ्जाने पुत्रप्रेमपराधीना कौसल्यापि

---

१. 'मृकण्डु' इति पाठान्तरम् । २. 'कुर्वाणास्तेऽपि इति पाठान्तरम् ।

तेन सह वनं गन्तुमिच्छति स्म, तथाभूतां तां दृष्ट्वा तस्याः पादयोर्निपत्य रामस्तां सविनयं वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवानित्यर्थः।

उस समय पुत्रप्रेमसे विह्वल होकर कौसल्या भी रामके साथ वन जाने की इच्छा करने लगीं, तब रामने उनके चरणों पर गिरकर विनयपूर्वक उनसे इस प्रकार कहा।

कान्तारभाजि मयि केकयराजपुत्र्याः
कार्कश्यकन्दलितया दलितस्य वाचा।
तातस्य शोकदहनग्लपितं शरीरं
मातस्त्वया न तु कदाचिदुपेक्षणीयम् ॥ ३० ॥

कान्तारभाजीति। हे मातः जननि, मयि रामे कान्तारभाजि वनं गते सति केकयराजपुत्र्याः कैकेय्याः कार्कश्यकन्दलितया कठोरताप्रसूतया वाचा दलितस्य पीडितस्य तातस्य शोकदहनग्लपितं मद्वियोगजन्यदुःखाग्निपीडितं शरीरम् देहः त्वया तु कदाचित् कदापि न उपेक्षणीयम् अनादरणीयम् मम वनप्रवासे जाते कठोरया कैकेयीवाचा विदीर्णहृदयस्य मम तातस्य शोकपीडितं वपुस्त्वयैव रक्षणावेक्षणादिना पालनीयं त्वमपि यदि मामनुसरसि तदा नाहं तद्रक्षकं पश्याम्यतस्तव मया सह गमनं तातविपादकतया नितान्तमवाञ्छनीयमित्यर्थः। 'कर्कशं कठिनं क्रूरम्' इत्यमरः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३० ॥

हमारे वन चले जाने पर कैकेयीके कठोर वाक्योंसे पीड़ित पिताजीकी शोकसन्तप्त शरीरको उपेक्षा तो तुमको कदापि नहीं करना है, अतः उनकी देख-रेखके लिये तुमको अयोध्यामें ही रहना चाहिये ॥ ३० ॥

ततः सा तनयस्य स्वस्त्ययनाय समस्तदेवताकीर्तनपुरःसरीमाशिषमाचचक्षे।

तत इति। ततः रामस्य स्वगमननिषेधकं वाक्यमाकर्ण्य तनयस्य पुत्रस्य स्वस्त्ययनाय मङ्गलाय यात्राया निर्विघ्नसम्पत्तिपूर्त्तिपूर्वकसुखावस्थानादिफलकाय समस्तदेवताकीर्त्तनपुरस्सरीम् इन्द्रादिसकलदेवतास्तुतिपूर्विकाम् आशिषम् कल्याणकामनासूचकं वाक्यविशेषम् आचचक्षे उक्तवती। 'पुरस्सरी' पदस्य 'पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः' इति विहितटजन्ततया टिड्ढाणञ्ङीप्।

इसके बाद कौसल्याने अपने पुत्रके मङ्गलके लिये समस्त देवगणकी स्तुति करके आशीष दी।

[1]तदनु रामस्तामभिवन्द्य निष्क्रान्तः प्रक्रान्तनेपथ्यायाः सीतायाः प्रासादमाससाद।

---

१. 'तदनु' इति क्वचिन्न दृश्यते।

तदन्विति। तदनु मातुराशीर्वादस्य ग्रहणात् परतः रामः ताम् कौसल्यां नाम निजमातरम् अभिवन्द्य प्रणम्य निष्क्रान्तः तद्भवनाद्बहिरायातः प्रक्रान्तनेपथ्यायाः समारब्धराज्याभिषेकोचितवेषपरिग्रहायाः विधीयमानप्रसाधनाया इत्यर्थः। सीतायाः स्वप्रियायाः प्रासादम् भवनम् आससाद आगतवान्। सीतां स्ववनवासवृत्तं सूचयितुं तदावासमायात इत्यर्थः।

इसके बाद राम माताको प्रणामकर उसके भवनसे बाहर निकलकर सीताके प्रासादमें आये, उस समय सीताजी राज्याभिषेकोपयुक्त वेष धारण कर रहीं थीं।

कल्याणवादसुखितां सहसैव कान्तां
कान्तारचारकथया कलुषीचकार।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं
संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः ॥ ३१ ॥

कल्याणवादेति। कल्याणवादेन भाविनोऽभिषेकरूपस्य मङ्गलस्य कथनेन (केनापि कृतपूर्वेण) सुखिताम् सञ्जातहर्षाम् कान्ताम् प्रियां सीताम् (रामः) सहसा अकस्मात् एव कान्तारचारकथया स्ववनप्रयाणवार्त्तया विपिने कानने अम्भोदनादमुदिताम् मेघध्वनिप्रसीदन्मानसाम् मयूरीम् धनुर्ध्वनिना शरासनटंकारेण सन्त्रासयन् भयं प्रापयन् पुलिन्दः शबर इव कलुषीचकार क्षोभयामास। श्वो राज्याभिषेको भवितेति श्रुत्वा प्रसन्नमनसं सीतामकस्मात् स्ववनगमनवृत्तान्तकथनेन रामस्तथैव व्यथयामास यथा पुलिन्दः कानने मेघध्वनिमाकर्ण्य जायमानप्रमोदां मयूराङ्गनां स्वधनुष्टङ्कारेण व्यथयतीत्यर्थः। 'भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः। उपमाऽत्रालङ्कारः। वृत्तं पूर्वोक्तमेव ॥ ३१ ॥

'अभिषेक होने वाला है' यह खुशखबरी सुननेसे आनन्दित प्रिया सीताको अपने वन जानेकी बात कहकर रामने उसी प्रकार विचलित—व्यथित—कर दिया, जिस प्रकार वनमें मेघकी आवाज सुनकर प्रसन्नतासे नाचती हुई मयूरीको धनुष्टङ्कारसे शबर विचलित कर देता है ॥ ३१ ॥

अयमेनामनु[1]गन्तुमुपक्रान्तामकथयत्।

अयमिति। अयम् श्रीरामः अनुगन्तुम् वनं गच्छन्तम् राममनुसर्त्तुम् उपक्रान्ताम् प्रस्तुताम् एनाम् सीताम् अकथयत् उक्तवान्।

सीताजी भी रामके साथ वन जानेको प्रस्तुत हो गईं, तब श्रीरामने कहा।

१. 'उपगन्तुम्' इति पाठान्तरम्।

प्रिये जनकनन्दिनि प्रकृतिपेशलामीदृशीं
कथं ग्लपयितुं सहे तव शिरीषमृद्वीं तनूम्।
गृहीतहरिणीगणत्रिकविसारिनानाशिरा-
[1]क्षतक्षरितशोणितारुणवृकानने कानने ॥ ३२ ॥

प्रिय इति। हे प्रिये कान्ते जनकनन्दिनि जनकराजपुत्रि, गृहीतम् बुभुक्षयाऽऽत्तम् हरिणीगणस्य मृगीसमुदयस्य त्रिकम् पुच्छप्रान्तः तत्र विसारिण्यः प्रसृताः याः नानाशिराः बहुविधा रक्तवहा नाड्यः तासां क्षतेभ्यः छेदेभ्यः क्षरितेन च्युतेन शोणितेन अरुणानि रक्तानि वृकाणाम् हिंसकजन्तुभेदानाम् आननानि मुखानि यत्र तादृशे—हरिणीगणबुभुक्षया वृकास्तासामनुधावने क्रियमाणे तदीयं त्रिकमेव पूर्वमासाद्य तत्र स्वदन्तानासञ्जयन्ति, तथा सति तासां शिराभ्यस्तत्र स्थिताभ्यः क्षताभ्यश्चाजस्रं स्रवता शोणितेन तेषां वृकाणां मुखं रक्तं भवति यत्र, तादृश इत्यर्थः, कानने वने तव ईदृशीम् स्वानुभवैकवेद्यसौकुमार्याम् प्रकृतिपेशलाम् अकृत्रिमसुन्दरीम् शिरीषमृद्वीम् अतिसुकुमारीम् तव तनुम् देहलताम् ग्लपयितुं क्लेशयितुं कथं सहे क्षमो भवामि। नैतदुपयुज्यते, न वाहमेतत् कर्त्तुमेव क्षमे यदीदृशीं सुकुमारतरां तव तनुं वने हिंस्रजन्तुबहुले नीत्वा तत्रत्यक्लेशेन व्यथयेयमित्यर्थः। 'चारौ दक्षे च पेशलः' 'कोकस्त्वीहामृगो वृकः' इत्युभयत्रामरः। पृथ्वीवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'जसौ यसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' ॥ ३२ ॥

हे प्रिये जानकी, हरिणीगणको पुच्छदेशमें पकड़कर उनकी शिराओंसे रक्त की धार बहाकर अपने मुँहको रक्त बनानेवाले वृकोंसे युक्त जङ्गलमें ले जाकर तुम्हारी इस अनुपम सौकुमार्यशाली, अतिसुन्दर तथा कोमल देहको मैं किस प्रकार कष्ट देनेका साहस करूँगा अर्थात् यह कार्य मुझसे किस प्रकार हो सकेगा कि मैं तुम्हारे सदृश सुकुमारी ललनाको हिंसक जन्तुओंसे युक्त वनमें ले जाकर कष्ट दे सकूँगा ?॥ ३२ ॥

तदनु नानाविध[2]प्रयत्नेनाप्यनुन्मिषदनुजिगमिषाशैथिल्यायां मैथिल्यां लक्ष्मणेऽप्यनवसितानुगमनव्यवसाये वासिष्ठाय सुयज्ञाय भूषणमशेषं नागसहस्रेण सह शत्रुञ्जयाह्वयं [3]मातुलदत्तं मत्तहस्तिनमगस्त्यकौशिकाभ्यां च [4]महार्घाणि रत्नानि वितीर्य तदनु निर्जरारिवीर्यमुषी धनुषी निरपायत्राणकर्मणी वर्मणी निर्मर्यादशिलीमुखकृतानुषङ्गौ निषङ्गौ

१. 'क्षति' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रयत्नशतेन' इति पाठान्तरम्।
३. 'अतुलं मातुलदत्तं हस्तिनम्' इति पाठान्तरम्।
४. 'महार्हाणि च रत्नानि वितीर्य निर्जरारातिं' इति पाठान्तरम्।

निर्वर्तितवीरपाणौ कृपाणौ वरुणेन जनकसदसि दत्तमेतत्स[1]मस्तमायुध-जातमादाय मामनुगच्छेति सौमित्रिमन्वग्रहीत् ।

तदन्विति । तदनु रामस्य प्रागुक्ताद्वचनात् परम् नानाविधप्रयत्नेन बहुप्रकारेण वनकष्टनिवेदनात्मना प्रयासेनापि अनुन्मिषत् अप्रकटीभवत् अनुजिगमिषाया गन्तुमिच्छायाः शैथिल्यम् मन्दत्वं यस्यास्तस्याम् अमन्दीभूतवनगमनोन्मुखरामानुगमनसमीहायामित्यर्थः, मैथिल्याम् सीतायाम् ; सीतायाः वनगमनेच्छायाममन्दीभूतायामिति यावत् । (एवम्) लक्ष्मणे अपि अनवसितानुगमनव्यवसाये असमाप्तरामानुसरणप्रयासे राममनुसर्तुं धृतप्रयास इत्यर्थः । उभयत्रापि भावे सप्तम्यौ वासिष्ठाय वसिष्ठात्मजाय सुयज्ञाय तदभिधानाय अशेषम् समस्तम् भूषणम् स्वधारणीयं कुण्डलकेयूरादिकमलङ्काररराशिम् , नागसहस्रेण सहस्रसंख्याकैर्गजैः सह मातुलदत्तम् मातुलेनोपहारीकृतं शत्रुञ्जयाह्वयं शत्रुञ्जयसंज्ञकम् मत्तहस्तिनम् मत्तकरिणम् (वितीर्येति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः) अगस्त्यकौशिकाभ्यां तन्नामकाभ्यां मुनिभ्याम् महार्घाणि बहुमूल्यानि रत्नानि मरकतवैदूर्यादीनि च वितीर्य सम्प्रदाय, तदनु भूषणगजमणिदानात्परतः निर्जरारिवीर्यमुषी राक्षसशक्तिसंहारपरे धनुषी शरासने, निरपायत्राणकर्मणी अमोघरूपेण रक्षादक्षे वर्मणी कवचौ, निर्मर्यादशिलीमुखकृतानुषङ्गौ संख्यातीतवाणपूर्णौ निषङ्गौ बाणधारणपात्रे इषुधी, निर्वर्त्तितवीरपाणौ कृतवीरोचितपानौ युद्धायोद्यतावित्यर्थः, कृपाणौ खड्गौ, वरुणेन जलाधिपेन जनकसदसि विदेहसभायां दत्तम् समर्पितम् एतत् उक्ताभिधानम् समस्तम् सकलम् आयुधजातम् अस्त्रसमुदयम् आदाय गृहीत्वा मामनुगच्छ मानुयाहीति सौमित्रिम् लक्ष्मणम् (अनुसरणाज्ञाप्रदानेन) अन्वग्रहीत् अनुकम्पितवान् । यदा रामः कृतभूरिवनकष्टप्रदर्शनोऽपि केनापि प्रकारेण सीतां लक्ष्मणं च स्वमनुसर्तुं कृतनिश्चयाच्चालयितुं न प्राभवत्तदा स्वभूषणसमुदयं वसिष्ठपुत्राय सुयज्ञाय सह गजै रन्यैर्मातुलोपहृतं च शत्रुञ्जयनामकं करिवरं, कुम्भयोनिविश्वामित्राभ्यां च रत्नानि दत्तवान् , लक्ष्मणं च वनेऽपेक्ष्यमाणानि विधास्यमानराक्षससंहारकर्मण्युपयोक्ष्यमाणानि च तानि तानि शस्त्राण्यादाय चलितुमाज्ञाप्रदानकृपया सनाथयामासेति तात्पर्यम् । शत्रूञ्जयतीति शत्रुञ्जयः, 'संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः' इति खच् । महत् अर्घम् मूल्यं येषां तानि महार्घाणि बहुमूल्यानि, 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इति वैजयन्ती । 'तनुत्रं वर्म कञ्चुकम्' इत्यमरः । 'वीरपाणं तु यत्पानं वृत्ते भाविनि वा रणे' इत्यमरः । रामबाणानां वीरपाणविषये बालकाण्डेऽत्रैव ग्रन्थे प्रोक्तम्—'ततो भाविनि संग्रामे बद्धश्रद्धस्य ताटका । स्वप्राणान् रामबाणस्य वीरपाणमकल्पयत्' इति । 'तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' इत्यमरः।

१. 'सर्वमादाय' इति पाठान्तरम् ।

इसके बाद अनेकविध प्रयत्न करने पर भी सीताके हृदयमें वर्त्तमान अनुगमनेच्छाको शिथिल नहीं होते देख कर और लक्ष्मणके अनुगमनव्यवसायको अक्षुण्ण जानकर श्रीरामने वसिष्ठके पुत्र सुयज्ञको अपने समस्त अलङ्करण और हजार अन्य हाथियोंके साथ मामाके यहाँसे उपहारमें प्राप्त शत्रुञ्जय नामक मतवाला हाथी दे दिया और अगस्त्य तथा विश्वामित्रको अपने सभी वहुमूल्य रत्न सौंप दिये। इसके बाद उन्होंने लक्ष्मणके ऊपर कृपा करके उनसे कहा कि राक्षसोंकी शक्तिको हर लेने वाला धनुष, अमोघभावसे रक्षा करने में समर्थ कवच, अनन्त बाणोंसे भरे हुए तरकस, युद्धके लिये सन्नद्ध तलवारें, जनककी सभामें वरुण द्वारा दिये इन अस्त्रोंको लेकर मेरे साथ चलो।

सीतापि निजाभरणजातं[1] सुयज्ञपत्न्यै[2] न्यदात्।

सीतापीति। सीता अपि निजाभरणजातम् स्वधार्यमलङ्कारनिकरम् सुयज्ञस्य पत्न्यै स्त्रियै न्यदात् दत्तवती, यस्मै रामः स्वभूषणमदात्तस्य स्त्रियै सीताऽपि स्वभूषणमर्पितवतीति भावः।

सीताने भी अपने आभूषण सुयज्ञकी पत्नीको दे दिये।

[3]ततः सौमित्रिरपि स्वाधीनेन धनेन कञ्चित्कौसिल्याश्रितमुपाध्यायमतोषयत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम् सौमित्रिः लक्ष्मणः अपि स्वाधीनेन स्वायत्तेन धनेन रत्नकाञ्चनादिना द्रव्येण कञ्चित् कमपि कौसल्याश्रितम् कौसल्यायाः शरणे वर्त्तमानम् कौसल्यया सस्नेहं पाल्यमानमित्यर्थः। उपाध्यायम् गृहीतविद्यं विप्रम् अतोषयत् सन्तोषितवान् एतेन कौसल्याश्रितविप्राय लक्ष्मणकृतधनदानाभिधानेन लक्ष्मणस्य कौसल्यायां मातुरपेक्षयाऽधिकः स्नेहः सूच्यते।

इसके बाद लक्ष्मणने स्ववशवर्त्ती धन कौसल्याके आश्रयमें रहनेवाले किसी ब्राह्मण विशेष को दे दिया।

तत्र सकुटुम्बाय [4]त्रिजटाभिधानाय निर्धनाय द्विजातये [5]स्वहस्तनिक्षिप्तदण्डपतितदेशावधिकं गोधनं च[6] कपिञ्जलादिभ्यो द्विजातिभ्यश्च रघुपतिर्वित्तानि विविधानि वितताार।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् प्रस्थानसमये रघुपतिः रघुवंशतिलकः श्रीरामः सकुटुम्बाय सपरिवाराय त्रिजटाभिधानाय त्रिजटसंज्ञया प्रथिताय निर्धनाय दरिद्राय द्विजातये

---

१ 'गणम्' इति पाठान्तरम्　　२. 'विदधे' इति पाठान्तरम्।

३. 'सौमित्रिरपि स्वधनेन' इति पा०। ४. 'त्रिजटाभिधाय द्विजातये' इति पाठान्तरम्।

५. 'स्वहस्तनिक्षिप्तदण्डदेशा' इति पा०। ६. 'काम्पिल्यादिभ्यो' इति पाठान्तरम्।

ब्राह्मणाय स्वहस्तनिक्षिप्तदण्डपतितदेशावधिकं स्वकरेण क्षिप्तो दण्डो यावद्दूरे पतति तदवधिके प्रदेशे यावद् अवकाशं लभते, तावति प्रदेशे यावत् गोधनं स्थातुमर्हति तावदित्यर्थः, गोधनम् । गोसमुदायरूपं द्रव्यम् वितीर्येति वक्ष्यमाणेनान्वयः, कपिञ्जलादिभ्यः कपिञ्जलप्रभृतिसंज्ञया प्रसिद्धेभ्यः द्विजातिभ्यश्च विविधानि नानाप्रकारकाणि वित्तानि धनानि गोरत्नाश्वरयानादीनि विततार ददौ। 'गोकुलं तु गोधनं स्याद् गवां व्रजे' इत्यमरः ।

उस समय सपरिवार त्रिजट नामक गरीब ब्राह्मणको रामने अपने द्वारा फेंका गया दण्ड जितनी दूरीपर गिरेगा उतनी दूरीमें जितनी गायें खड़ी हो सकती हैं उतनी गायें देकर कपिञ्जल आदि ब्राह्मणोंको नानातरहके धन प्रदान किये ।

ततस्ते पौरनारीणां [1]निःश्वासझञ्झानिलचलदधरकिसलयाना[2]मस्रसलिलासारेण शोकपावकेन च वपूंषि मनांसि च सिक्त्वा दग्ध्वा च निषिद्धपरिजनानुगमनतया प्रकाशितप्रवास[3]सिद्धान्ताः शुद्धान्तान्निश्चक्रमुः।

ततस्त इति । ततः धनदानसमाप्तेः समनन्तरम्, निःश्वासाः सवेगं वहिर्भवन्तः श्वासाः एव झञ्झानिलाः सवर्षवायवस्तैः चलन्ति कम्पमानानि अधरकिसलयानि ओष्ठपल्लवाः यासाम् तादृशीनाम् दीर्घनिःश्वासेन झञ्झानिलरूपेण कम्पमानोष्ठपल्लवानामित्यर्थः, पौरनारीणाम् पुरवासिवनितानाम् वपूंषि देहान् अस्रसलिलासारेण नेत्राम्बुवृष्ट्या सिक्त्वा आर्द्रयित्वा मनांसि हृदयानि शोकपावकेन दुःखाग्निना दग्ध्वा प्रज्वाल्य च निषिद्धपरिजनानुगमनतया वारितभृत्यानुसरणतया प्रकाशितप्रवाससिद्धान्ताः ख्यापितवनवासव्यवस्थाः (अस्माभिस्त्रिभिरेव वनं गन्तव्यं मा कोपि नोऽनुगमादिति स्वीयं सिद्धान्तं भृत्यानामनुगमनं निषिध्यैव प्रकाशयन्त इत्यर्थः) ते सीतारामलक्ष्मणाः शुद्धान्तात् अन्तःपुरात् निश्चक्रमुः बहिर्भूताः । 'अस्रमश्रुणि शोणिते' इत्यमरः ।

इसके वाद सिताराम तथा लक्ष्मण, दीर्घनिःश्वासरूप झञ्झावातसे जिनके अधरपल्लव हिल रहे हैं, ऐसी पुरललनाओंकी देहको आंसूसे भिगोकर और उनके हृदयको शोकाग्निसे दग्ध करके परिजनके अनुगमनको रोकनेसे अपने वनवासके सिद्धान्तको प्रकाशित करते हुए अन्तःपुरसे निकल पड़े ।

तत्र—

सीता पुरा गगनचारिभिरप्यदृष्टा
मा भूदियं सकलमानवनेत्रपात्रम् ।

---

१. 'विश्वासान्निःश्वासजृम्भानिल' इति पाठान्तरम् । २. 'अश्रु' इति पाठान्तरम् । ३. 'सिद्धान्तात्' इति पाठान्तरम् ।

इत्याकलय्य नियतं पिदधे विधाता
[1]बाष्पोदयेन नयनानि शरीरभाजाम् ॥ ३३ ॥

तत्र सीतेति। तत्र तेषामन्तःपुरान्निर्गत्य प्रस्थानस्य समये पुरा इतः पूर्वकाले गगनचारिभिः आकाशगामिभिः अपि अदृष्टा अनवलोकिता (अपिशब्दोऽयमन्यलोचनविषयताया नितान्तव्यवच्छेदं ध्वनयति) इयम् पत्युरत्यन्तानुगामितया तमनुसरन्ती सीता सकलमानवनेत्रपात्रम् समस्तजनतादृष्टिविषयः माभूत् न जायताम् इति आकलय्य मनसि स्थापयित्वा नियतम् निश्चयेन विधाता ब्रह्मा शरीरभाजाम् सर्वेषां प्राणिनाम् नयनानि बाष्पोदयेन अश्रुजलाविष्करणेन पिदधे स्थगयामास यां सीतामसूर्यंपश्यराजदारतया गगनचारिणोऽपि (का कथा भूस्थितानाम्) न द्रष्टुमक्षमन्त, सैवेयं सम्प्रति धर्मं मत्वा राममनुसरन्ती वनं जिगमिषति, पथितां सकलोऽपि लोको मा द्राक्षीदिति मनसि विभाव्येव विधाताऽव्यभिचारेण जनसामान्यदृष्टिष्वश्रुपयः प्रादुर्भाव्य तत्रत्यां दृक्शक्तिं प्रतिबध्य च तस्या असूर्यं पश्यत्वमक्षुण्णमरक्षीदित्याशयः। रामवनगमनावसरे तमनुसरन्त्याः सीताया दर्शनेनोदयतोऽश्रुप्रवाहस्य नेत्रस्थगनार्थं विधात्रा प्रादुर्भावितत्वमुत्प्रेक्ष्यत इति हेतूत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'पिदधे' इत्यत्र भागुरिमतेनाल्लोपः। 'अपिधानतिरोधानपिधानाच्छादनानि च' इत्यमरः। वसन्ततिलकं वृत्तम्, तल्लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥३३॥

उस समय, जिस सीताको इससे पहले आकाशमें विचरने वाले जीव भी नहीं देख पाते रहे, उसीको इस समय सभी मनुष्य नहीं देख सकें, ऐसा सोचकर ही मानो विधाताने सभी प्राणियोंकी आँखोंमें आँसू भर दिया, जिससे उनमें देखनेकी शक्ति ही नहीं रही, इस प्रकार ब्रह्माने सीताकी असूर्यंपश्यता बचाली ॥ ३३ ॥

[2]ततः—

रुद्धापि यान्तमनुगच्छति मैथिली मां
वत्सो जहाति न कदाचन लक्ष्मणोऽपि।
इत्येतयोरनुगतिं प्रतिबोध्य गन्तुं
भूयोऽपि राजभवनं प्रविवेश रामः ॥ ३४ ॥

तत इति। रुद्धापि इति। रुद्धा बलान्निवारिता अपि इयं मैथिली यान्तम् वनाय प्रतिष्ठमानम् माम् अनुगच्छति अनुयाति, वत्सः अनुजः स्निग्धश्च लक्ष्मणः कदाचन अपि कस्मिंश्चिदपि काले (मां) न जहाति न त्यजति, अयमपि मामनुगन्तुमनाः सन्मदीयं सङ्गं न त्यजति। एतेन सङ्गत्यागेन वञ्चनया त्यागस्यापि अशक्यत्वं व्यञ्जितम् इति एवं प्रकारेण एतयोः सीतालक्ष्मणयोः अनुगतिम् अनुसरणरूपं

---

१. 'बाष्पोदकेन इति पाठान्तरम्। २. 'ततः' इति क्वचिन्नास्ति।

व्यापारम् प्रतिबोध्य पित्रे निवेद्य गन्तुम् वनं चलितुम् रामः भूयः पुनरपि राज-भवनं दशरथप्रासादम् प्रविवेश। पित्राज्ञापारवश्येन वनं प्रस्थितोऽहम् [सीता-लक्ष्मणौ मामनुगच्छतस्तदनयोर्वनगमने नाहमनुरोधकरः, किन्त्विमौ वार्यमाणौ-वपि न निवर्त्तेते तदत्रभवन्तः प्रमाणमिति पूज्याय पित्रे प्रतिपाद्य प्रस्थातुकामो रामः पुनरपि राजप्रसादं प्राविक्षदिति भावः। पूर्वोक्ताविपरीतं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

इसके बाद रोकने पर भी मैथिली सीता मेरे पीछे चल रही हैं और भाई लक्ष्मण भी किसी समय हमारा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं, इस बात की सूचना पिताको देकर वन जानेकी इच्छा रखने वाले राम पुनः दशरथके प्रासादमें प्रविष्ट हुए ॥ ३४ ॥

तस्मिन्सुमन्त्रेण विज्ञाय [1]प्रदर्शिते भूपतिर्भूताविष्ट इव विष्टरान्निपत्य सदारः सदारचितपरिदेवनो वनोत्कण्ठां स्वयमप्यकरोत्।

तस्मिन्निति। सुमन्त्रेण मन्त्रिणा तदभिधानेन विज्ञाप्य 'रामोऽयमायातः' इति सूचयित्वा प्रदर्शिते साक्षात्कारिते तस्मिन् रामे भूपतिः दशरथः भूताविष्टः पिशाचाक्रान्त इव विष्टरात् राजासनात् निपत्य स्खलित्वा सदारः कौसल्यारूपस्त्रिया सहितः सदा सर्वदा रचितपरिदेवनः कृतविलापः सन् स्वयम् आत्मनापि वनोत्कण्ठाम् वनगमनस्पृहाम् अकरोत् कृतवान्। मन्त्रिणा सुमन्त्रेण रामस्यागमनं सूचयित्वा दर्शिते रामे शोकवेगप्रकर्षेण स्वासनाद्भूमौ पपात राजा, यथाऽसौ भूतेन गृहीतः स्यादथ कौसल्यासहचरो राजा चिरं विलप्य वनं गन्तुमैषीदिति भावः, 'वृक्षासनयोर्विष्टरः' इति निपातितो विष्टरशब्दः।

रामके आनेके विषयमें सूचना देकर सुमन्त्रने जब रामको राजाके सामने कर दिया तब राजा पिशाचग्रस्तकी तरह आसनसे गिर पड़े और कौसल्याके साथ बड़ी देर तक विलाप करके उन्होंने खुद भी वन जानेकी इच्छा प्रकट की।

तदा सुमन्त्रः कैकेयीमब्रवीत्।

तदेति। तदा दशरथे सदारे वनं गन्तुमुत्कण्ठमाने सति सुमन्त्रः कैकेयीम (एतस्या आपदो निदानभूताम्) अब्रवीत् वक्ष्यमाणप्रकारेणाबोधयदित्याशयः।

राजाने जब खुद भी वन जानेकी उत्कण्ठा प्रकटकी तब सुमन्त्रने कैकेयीसे इस प्रकार कहा।

देवि, विरम[2] रामाभिषेकसमुन्मिषिताह्लादाङ्कुरावग्रहादाग्रहात्।

देवीति। हे देवि, राज्ञि, रामस्य अभिषेकः राज्यारोहणम् एव (अभिषेकः) जलसेकः तेन समुन्मिषितः प्रोद्भूतः आनन्दाङ्कुरः हर्षप्ररोहः तस्य अवग्रहात् प्रति-

---

१. 'दर्शिते दाशरथौ' इति पाठान्तरम्। २. 'विरम विरम' इति पाठान्तरम्।

बन्धरूपात् आग्रहात् वरयाचनारूपात् विरम निवर्त्तस्व। रामस्याभिषेकं श्रुत्वा लोकानां योऽयमानन्दाङ्कुरः प्रोद्गतस्तत्र प्रतिबन्धं विदधतोऽस्मादाग्रहान्निवर्त्तस्वेति भावः।

देवि छोड़ो इस अपने आग्रहको जिसने रामराज्याभिषेकसे होनेवाले आनन्दके अङ्कुरको समाप्त कर दिया है।

पुरा खलु [1]वरदप्रसादादवगतसकलप्राणिभाषणतया पर्यङ्कपर्यन्तपरिसरत्पिपीलिकालापे कृतहासं तव पितरं हसनकारणं पृष्ट्वा तद्विवरणं पत्युर्म[2]रणकरमित्यवेत्यापि भूयसो निर्बन्धात्कुपितेन राज्ञावज्ञाताया मातुस्ते [3]विधां मानुकुर्वीथा इति।

पुरेति। पुरा पूर्वस्मिन् समये वरदस्य वरदानेनानुग्रहीतुः कस्यचित् योगिनः प्रसादात् अनुग्रहात् अवगतसकलप्राणिभाषणतया सकलजीवभाषावेत्तृतया (सकलजीवभाषाज्ञानेन) पर्यङ्कस्य शयनीयस्य पर्यन्ते समीपे परिसरन्त्योः गच्छन्त्योः पिपीलिकयोः क्षुद्रजन्तुविशेषयोः आलापे परस्परसम्भाषणे कृतहासं हसितुं प्रवर्त्तमानं तव पितरम् हसनकारणं पृष्ट्वा केन हेतुना हससीति पर्यनुयुज्य तद्विवरणं हसनकारणकथनम् पत्युः स्वामिनः तव पितुः मरणकारणम् मृत्युहेतुरिति तदुक्त्या अवेत्य ज्ञात्वापि भूयसः बहोः निर्बन्धात् आग्रहात् भूयो भूयस्तस्यैव हासकारणप्रश्नस्यावर्त्तनात् कुपितेन क्रुद्धेन राज्ञा केकयेन अवज्ञातायाः तिरस्कृतायाः ते तव मातुः विधाम् प्रकारम् मा अनुकुर्वीथाः अनुहरेः। तव पिता कस्यापि योगिनो वरदानेन सकलप्राणिभाषणं जानाति स्म, एकस्यां निशि पर्यङ्के शयानः सः पर्यङ्कसमीपे सञ्चरन्त्योः पिपीलिकयोः परस्परालापमाकर्ण्याहसत्तद्धासकारणं पृष्ठवती तव माता। यद्यहमिदं स्वहासकारणमभिधास्यामि तदाऽस्मानं विपादयिष्यामीति राजोवाच। इत्थमेतद्धासकारणविवरणं पत्युर्मे मृत्युमावहेदिति तद्वचनादवगत्यापि तव माता तद्विषये समधिकमाग्रहं प्राकाशयत्तेन कुपितो राजा तदवज्ञां कृतवान्, तद्वत्त्वमपि स्वपत्युर्मृत्युं प्रयोजयन्तमिमं वरदानयाचनारूपमाग्रहं त्यजान्यथा स्वमातेवावज्ञापात्रं भविष्यसीति भावः।

पुराने समयमें किसी योगीके वरदानरूप अनुग्रहसे सभी प्राणियोंकी भाषा समझ सकनेके कारण पलङ्गके पास चलती हुई पिपीलिकाओंकी बातें सुनकर तुम्हारे पिताको हँसी आ गई, तुम्हारा मां ने हँसीका कारण पूछा, उत्तरमें तुम्हारे पिताने बताया कि यदि मैं अपनी हँसीका कारण बता दूंगा तो हमारी मृत्यु हो जायगी। इस प्रकार हँसीके

---

१. 'ब्रह्मणो वरप्रसादात्' इति पाठान्तरम्।   २. 'मरणहेतुः' इतिपाठान्तरम्।
३. 'मार्गं मा कुर्वीथाः' इति पाठान्तरम्।

कारणके कथनको पतिमृत्युका कारण समझकर भी तुम्हारी माताने बहुत जिद कि
इस पर तुम्हारे पिता कुपित हो गये और तुम्हारी माताकी अवज्ञा करदी, उसी तरह
आग्रह करके तुम भी अपनी मां का अनुकरण मत करो।

ततः—

कृतासमञ्जनिर्यासं सगरं केकयात्मजा।
[1]निदर्शनत्वे निर्दिश्य निरबध्नान्निजं पतिम्॥ ३५॥

ततः कृतासमञ्जेति। ततः स्वमातुरितिवृत्तस्य श्रवणात् परतः केकयात्मजा कैकेयी कृतासमञ्जनिर्यासम् विहितासमञ्जनामकस्वपुत्रपरित्यागम् सगरम् ना नृपम् निदर्शनत्वे उदाहरणस्थाने निर्दिश्य स्थापयित्वा निजम्पतिम् स्वपति दशरथम् निरबध्नात् भूयोऽपि स्ववरप्रदानविषये आगृह्णाति स्मेति भावः असमञ्जो नाम केशिनीगर्भसम्भवः सगरपुत्रः स्वचारित्रदोषेण सगरेण त्यक्तः, तद पुत्रपरित्यागो नेदं पूर्वतया भवतैव विधातव्यः किन्तु त्वत्पूर्वेषां राज्ञां श्रेष्ठेन सग रेणापि कृतस्तत्पूरय निजवचनमित्याग्रहं कृतवतीति भावः॥ ३५॥

इसके वाद कैकेयीने असमञ्ज नामक अपने पुत्रका त्याग करने वाले राजा सगर दृष्टान्त उपस्थित करके अपने पति दशरथसे वर देनेके लिये फिर आग्रह किया॥ ३५॥

तत्र—

सिद्धार्थको महामात्यस्तत्परित्यागमब्रवीत्।
सरयू[2]पातितानेकप्रजामरणकारणात्॥ ३६॥

तत्रेति। तत्र तस्मिन्नवसरे सिद्धार्थको नाम महामात्यः मुख्यमन्त्री तत्परित्या गम् असमञ्जस्य पित्रा त्यागम् सरयूपातितानाम् सरयूप्रवाहे निक्षिप्तानाम् अ कानाम् बहुसंख्यानाम् प्रजानाम् मरणात् मृत्युरूपात् कारणात् हेतोः अब्रवीत् सगरकृतासमञ्जत्यागो यद्भवत्या दृष्टान्तत्वेनोपन्यस्तस्तत्रासमञ्जकृतं प्रजानां बहू सरयूप्रवाहे पातनरूपं तदीयमसदाचरणं कारणं रामपरित्यागे तु तन्नास्ति, त दमसदुदाहरणमिति भावः॥ ३६॥

कैकेयी द्वारा प्रतिपादित असमञ्जदृष्टान्तके खण्डनमें महामात्य सिद्धार्थकने क कि सगरने असमञ्जका त्याग इसलिये किया था वह अनेक प्रजाजनको सरयूमें डालकर उनको मार दिया करता था (रामके त्यागमें तो वैसी बात नहीं है) अतः दृष्टान्त तो ठीक नहीं होता है॥ ३६॥

---

१. 'निदर्शनेन' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रतिता' इति पाठान्तरम्।

अथ दशरथेन रामः सपरिच्छद एव गच्छेति निर्दिष्टः केवलं खनित्रपिटकौ[1] वल्कलयुगलं च प्रार्थयत ।

अथेति । अथ एतदनन्तरम् सपरिच्छदः सपरिजनभृत्यवर्गः एव गच्छ वनं गच्छेति दशरथेन राज्ञा निर्दिष्टः आज्ञप्तः रामः केवलम् खनित्रपिटकौ खननसाधनम् कुद्दालादि पिटकम् फलाद्याहरणयोग्यं कण्डोलञ्च वल्कलयुगलं परिधानीयमुत्तरीयं च वल्कलवस्त्रयुग्मं प्रार्थयत याचितवान् । वनमेव गन्तव्यं चेन्नय भृत्यादिं परिजनमिति दशरथेनोक्तो रामः—केवलमहं 'खनित्रपिटकौ' 'वल्कलयुगलं चे'ति साधनमेवापेक्षे न भृत्यादिपरिकरमिति दशरथप्रस्तावं निषिद्धवानिति भावः ।

इसके बाद दशरथने रामसे कहा कि यदि वन ही जाना है तो परिजनभृत्य आदिको भी साथ लेते जाओ, परन्तु रामने केवल कुदाली, टोकरी तथा जोड़े वल्कलमात्रकी प्रार्थना की । (अन्य वस्तुको साथ लेना स्वीकार नहीं किया) ।

सुखोचितानां सुव्यक्तदिव्यलावण्यसम्पदाम् ।
त्रयाणामपि कैकेयी [2]वल्कलादीन्युपाहरत् ॥ ३७ ॥

सुखोचितानामिति । कैकेयी सुखोचितानाम् सुखपूर्वकजीवनयापनाभ्यस्तानाम् सुव्यक्ता दर्शनमात्रवेद्या प्रकटा दिव्या लोकविलक्षणा स्वर्गीया लावण्यसम्पत् सौन्दर्यसम्पत्तिः येषाम् तादृशानाम् त्रयाणाम् अपि सीतारामलक्ष्मणानाम् वल्कलानि वस्त्रतया कल्प्यमानानि वृक्षत्वक्स्वरूपाणि भूर्जपत्राकाराणि मुनिवासांसि उपाहरत् परिधानार्थमर्पितवतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

रामने जब वल्कलादि की याचना की तभी कैकेयीने—सदा सुखमें पले हुए तथा स्पष्ट दृश्यस्वर्गीय सौन्दर्यसे युक्त रामलक्ष्मण और सीताके लिये वल्कलादि मुनिवस्त्र अर्पित कर दिये ॥ ३७ ॥

अथ रघुकुलनाथो मध्यमाम्बानियोगा-
द्गुणवति परिधाने मङ्गलार्हे निराशः ।
अधिकुचतटवल्गज्जानकीबाष्पसेका-
दपगतखरभावं वल्कलं पर्यधत्त ॥ ३८ ॥

अथेति । अथ कैकेयीकर्तृकवल्कलादिसमर्पणानन्तरम् रघुकुलनाथः रघुकुलतिलकः श्रीरामः मध्यमाम्बायाः मध्ये भवायाः न ज्येष्ठायाः नापि कनिष्ठायाः अम्बायाः मातुः नियोगात् आदेशात् गुणवति मार्दवदर्शनीयत्वादिगुणशालिनि मङ्गलार्हे अभिषेकरूपकल्याणमयावसरयोग्ये परिधाने सौमवसनादिरूपे

---

१. 'पिटके' इति पाठान्तरम् ।   २. 'वल्कलान्युदपाहरत' इति पाठान्तरम् ।

निराशः वीतस्पृहः सन् अधिकुचतटम् स्तनप्रान्ते वलान्तः पतन्तः ये जानकी-बाष्पाः सीतानेत्राश्रुबिन्दवः तेषाम् (तत्कृतात्) सेकात् आर्द्रीकरणात् हेतोः अपगतः नष्टः खरभावः कार्कश्यं यस्य तत्तादृशम् वल्कलम् चीरम् पर्यधत्त परि-दधौ। यदा कैकेयी वल्कलादीन्युपहृत्य रामाय वल्कलं परिधातुमादिष्टवती तदा तदाज्ञाया अपरिहार्यतया मृदुनि माङ्गलिके च क्षौमवसनादौ वीतस्पृहः श्रीरामः समीपे स्थितायाः रामं वल्कलं वसानं दृष्ट्वा वेगेन प्रवहदश्रुपयसः सीतायाः कठि-नयोः स्तनयोः पतित्वा खण्डशो भूत्वा सर्वतः सञ्चरद्भिः बाष्पजलबिन्दुभिरीषदा-र्द्रतां गमिततयाऽपगतखरभावं वल्कलं पर्यधादिति भावः। अत्र बाष्पजलबिन्दूनां यथावदवस्थानां पातेन वस्त्रं क्लिन्नं सदपरिधेयतामापद्यतेऽतो बिन्दूनां खण्डशो-भावोऽपेक्षितः स च सीतास्तनपातेन साध्यते, तेन च तयोरतिकार्कश्यं ध्वन्यते। 'अन्तरीयोपसंव्यानपरिधानान्यधोंऽशुके' इत्यमरः। केचिदत्र कैकेय्यास्तृतीय-मातृत्वेन मध्यमाम्बापदस्यायुक्तत्वमाहुः। परे तु तस्या एव दशरथमध्यमस्त्रीत्वेन मध्यमाम्बापदं युक्तमेवेति समर्थयन्ते। ग्रन्थान्तरसंवादेन कैकेय्या मध्यमात्वमेव युक्तमिति वयम्। मालिनीवृत्तम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामने मझली माताकी आज्ञासे चिकने तथा मङ्गलमय अवसरके योग्य पट्टवस्त्रकी ओर से मनको हटाकर समीपमें खड़ी सीताके स्तनों पर गिरने वाले उसके आँसूकी बूँदोंसे मुलायम होकर पहननेकी स्थितिको प्राप्त हुए वल्कलधारण कर लिये ॥ ३८ ॥

[1]तत्राचित्रीयन्त सर्वे निर्विकारवदनलक्ष्मीकमिक्ष्वाकुकुलाध्यक्षमध्यक्ष-यन्तस्तेषामेव शोक[2]शङ्कुकीलितमानसानामाननेषु पारम्पर्येणास्फुरद्विकारः।

तत्रेति। तत्र श्रीरामकर्तृकवल्कलधारणवेलायाम् निर्विकारवदनलक्ष्मीकम् अविकृतमुखशोभम् धीरतयाऽम्लायन्मुखमित्यर्थः। इक्ष्वाकुकुलाध्यक्षम् इक्ष्वाकु-वंशवरिष्ठम् रामम् अध्यक्षयन्तः चक्षुषापश्यन्तः सर्वे तत्रत्या जनाः अचित्रीयन्त आश्चर्यिता जाताः। तेषाम् रामं निर्विकारमुखशोभमालोक्य विस्मयमानमान-सानाम् एव शोकशङ्कुना शोकशल्येन कीलितं विद्धम् मानसं येषां तेषाम् शुचा दूनचित्तानामित्यर्थः आननेषु मुखेषु पारम्पर्येण क्रमशः (एकस्मात् परत एकः एवं क्रमेण) विकारः प्रथमं वैकल्यं, ततः विवर्णभावः, ततः म्लानता ततो बा-ष्पायमाणतेत्यादिः अस्फुरत् प्रकटतां गतः। ये रामं निर्विकारं ददृशुस्ते आश्चर्यिताः सन्तः स्वयमेव शोकसन्तप्ताः (रामं प्राप्य विकारेण) विकृतमुखा अजायन्तेति भावः। निर्विकाररामदर्शनेन द्रष्टृमुखविकारस्योदयविस्मयस्थानमिति परमार्थः।

१. 'तत्र ये' इति पाठान्तरम्। २. 'संकीलित' इति पाठान्तरम्।

उस समय इक्ष्वाकुकुल श्रेष्ठ रामकी उस निर्विकार मुख शोभाको देखने वाले सभी आश्चर्यमें पड़ गये और शोकसन्तप्त उन दर्शकोंके मुखों पर ही क्रमशः विवर्णता, म्लानि आदि विकार प्रकट होने लगे।

किन्तु[1]—

सवल्कले दाशरथौ विषादादामीलिताक्षो यदभूद्वसिष्ठः।
तदेव जातं करणं महर्षेः काकुत्स्थयाथार्थ्यविलोकनस्य॥ ३९॥

किन्तु-सवल्कल इति। दाशरथौ दशरथपुत्रे रामभद्रे सवल्कले धृतचीरे सति विषादात् मनःखेदात् हेतोः वसिष्ठः यत् आमीलिताक्षः दर्शनपरिहारकामनया किञ्चिन्मुद्रितनयनः अभूत्, तदेव नयननिमीलनमेव महर्षेः तस्य वसिष्ठस्य काकुत्स्थो रामस्तस्य याथार्थ्यं वास्तविकं रूपं तस्य विलोकनं विभावनं तस्य करणं साधनम् जातम् अजायत। रामे वल्कलं वसाने दुःखाद् वसिष्ठो यदक्षिणीन्यमीलयत्तदेवाक्षिनिमीलनं वसिष्ठेन रामस्य वास्तविकपरब्रह्मरूपतायाः ज्ञाने साधनभावमभजतेति भावः। अत्र विषादकृतनयननिमीलनस्य तत्त्वानुसन्धानसाधनत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम्॥ ३९॥

श्रीरामके वल्कल धारण करने पर विषादसे वसिष्ठ ने जो आँखें मूँद ली, मानो वही वसिष्ठके लिये रामके यथार्थ स्वरूपके दर्शनका साधन हुआ। वसिष्ठने आँखें क्या बन्द की, भगवान् रामके वास्तविक तारकब्रह्मरूपताका ध्यान किया॥ ३९॥

अस्य पीताम्बरत्यागे किं जाता विक्रियाऽपुरा।
इति प्रत्यग्दृशां श्रेष्ठो वसिष्ठो नातिविव्यथे॥ ४०॥

अस्येति। अस्य श्रीरामस्य पीताम्बरत्यागे कौशेयवस्त्रपरिहारे जाते सति (विहाय कौशेयं चीरं धारयति रामे) अपुरा पूर्वमदृष्टा नूतना काऽपि विक्रिया विकारः मुखमालिन्यादिरूपा जाता उत्पन्ना किम्? नाजायतेति काक्वा व्यज्यते। इति रामस्य वल्कलधारणेऽप्यप्राप्तविकारताम् आलोच्य प्रत्यग्दृशाम् प्रत्यग्ब्रह्म-पश्यन्ति ये तेषां ज्ञानिनां श्रेष्ठः मुख्यः ज्ञानिनामग्रगण्यः वसिष्ठः नातिविव्यथे महान्तं क्लेशं नानुबभूव, किञ्चित्तु विव्यथ एव ज्ञानिनोऽपि लोकव्यवहारस्य पालनीयत्वादित्यर्थः। वल्कलधारिणो रामस्य बाह्याभ्यन्तरविकारविरहिततया विशुद्धचित्स्वभावतामनुसन्दधन्मुनिर्वसिष्ठो न शुशोचेति भावः॥ ४०॥

इस रामको पीताम्बर छोड़कर वल्कल धारण करनेसे कोई नवीन मुखमालिन्य आदि विकार उत्पन्न हुआ क्या? अर्थात् नहीं हुआ, ऐसा विचार करके ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठ अधिक व्यथित नहीं हुए॥ ४०॥

---

१. 'किन्तु' इति नास्ति क्वचित्।

सोऽयं मैथिलीवल्कलधारणमरुणदरुणसारथिकुलगुरुः ।

सोऽयमिति । स अयम् अरुणसारथिः सूर्यस्तस्य कुलं वंशस्तस्य गुरुः वसिष्ठः मैथिलीवल्कलधारणम् सीताकर्त्तृकचीरपरिधानम् अरुणत् न्यवारयत् । रामे वल्कलं धृतवति तदनुगामितया सीतामपि वल्कलं धारयन्तीं न्यषेधीद् भगवान् सूर्यवंश- कुलपुरोहित इति भावः । 'कुलगुरु' कथनेन तन्निषेधस्य पालनीयता व्यज्यते ।

सीता जब वल्कल धारण करने लगी तब सूर्यवंशके कुलगुरु वसिष्ठने उसे वल्कल धारण करनेसे रोक दिया ।

तत्र प्रयाणाय प्रणिपतन्तीं स्नुषा[1]माश्लिष्य प्रस्नुतपुत्रवात्सल्या कौसल्या बाष्पगद्गदमवदत् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये प्रयाणाय वनगमनाय प्रणिपतन्तीम् प्रणामं कुर्व- तीम् स्नुषाम् पुत्रवधूम् सीताम् आश्लिष्य आलिङ्गय प्रस्नुतपुत्रवात्सल्या उद्रिक्त- पुत्रप्रीतिः कौसल्या वाष्पगद्गदम् साश्रुतयाऽस्पष्टवर्णम् अवदत । स्नुषायामपि पुत्रसम्बन्धितयैव प्रीतेः सत्त्वेन स्नुषाप्रस्थानेन । पुत्रप्रीतेरुद्रेकस्य द्योतनं कृतम् ।

उस समय जानेके लिये सीता जब प्रणाम करने लगी तब कौसल्याको पुत्रप्रेम उमड़ आया और उन्होंने सीताको गलेसे लगाकर गद्‌गदस्वरसे कहा ।

घर्मे निदाघकिरणस्य करैः कठोरैः
कान्तारमध्यपदवीषु नखंपचासु ।
त्वां वीक्ष्य [2]संस्थुलपदां वनदेवताभि-
र्निन्दिष्यते नियतमेव निमेषहानिः ॥ ४१ ॥

घर्मे इति । घर्मे ग्रीष्मकाले निदाघकिरणस्य उष्णकरस्य सूर्यस्य कठोरैः तीक्ष्ण- तमैः करैः किरणैः नखान् पचन्तीति नखंपचास्तासु (चरणसन्तापनस्य का कथा, नखानामपि सन्तापातिशयेन द्विधाभवनमिव विदधतीषु कान्तारमध्यपदवीषु वनमध्यमार्गेषु संस्थुलपदम् परिस्खलच्चरणन्यासाम् त्वाम् वीक्ष्य दृष्ट्वा नियतमेव निश्चयेनैव वनदेवताभिः वनवासिदेवताभिः वनाभिमानिनीभिर्वा देवताभिः निमेष- हानिः अक्षिपातराहित्यम् निन्दिष्यते धिक्करिष्यते । अयमाशयः—ग्रीष्मसमये सूर्यस्यातिसन्तप्तैः किरणैर्नखानपि स्फोटयत्सु काननमध्यवर्त्मसु स्खलच्चरणं चलन्तीं त्वां दृष्ट्वा वनदेवताः स्वीयं निर्निमेषत्वं निश्चयेन निन्दिष्यन्ति, तास्त्वदीयामिमां कष्टां दशां द्रष्टुमपारयन्त्यो निजानि नयनानि मुद्रयितुमभिलषन्त्योऽपि यदा तत् कर्तुं न पारयिष्यन्ति तदा धिगिमां नो निर्निमेषतामिति, यदि वयं निमेषवत्यः

१. 'आलिङ्गय कौसल्या गद्गदम्' इति पाठान्तरम् । २. 'निस्तुलपदम्' इति पाठान्तरम् ।

युता अभविष्याम तदा सुकुमार्या अस्या ईदृशीं दशां नाद्रक्ष्याम चक्षूंषि च न्यमीलयिष्याम, तदेवं वक्ष्यन्तीति भावः। 'नखम्पचासु' इत्यत्र 'मितनखे च' इति खच्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४१ ॥

ग्रीष्मसमयमें सूर्यकी कठोर किरणोंसे नखोंको भी भुन देनेवाले वनमध्यमार्गमें गिरती पड़ती चलती हुई तुमको देखकर वनदेवतागण अपने निमेषपातराहित्यकी अवश्य निन्दा करेंगे, अर्थात् उनके हृदयमें यह भावना उठेगी कि यदि हमारी आंखें सनिमेष होतीं तो हम अपनी आंखें मूंदकर इस सुकुमारी ललनाकी इस कष्ट दशाको देखनेके सन्तापसे अपनो रक्षाकर पाते ॥ ४१ ॥

अथ मैथिलीनाथः सलक्ष्मणः सप्रदक्षिणं राजानं जननीजनं च प्रणम्य प्रतिषिद्धप्रतिहारचक्रो निश्चक्राम।

अथेति। अथ सलक्ष्मणः लक्ष्मणोपेतः मैथिलीनाथः सीतापतिः श्रीरामः राजानम् दशरथं जननीजनम् मातृगणञ्च सप्रदक्षिणम् प्रदक्षिणापूर्वकम् प्रणम्य नमस्कृत्य, प्रतिषिद्धम् अनुगमनान्निवारितम् प्रतिहारचक्रम् द्वारपालसमुदयो येन तथाभूतः निश्चक्राम अन्तः पुराद्बहिरागतः। रामादिषु प्रस्थितेष्वनुसरन्तो द्वारपालादयस्तैर्निवारिता इति भावः। 'द्वारि द्वाःस्थे प्रतीहारः' इत्यमरः।

इसके वाद रामने लक्ष्मणके साथ राजा तथा माताओंको प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया और अनुगमन करनेवाले द्वारपालोंको अनुसरण नहीं करने को कहकर अन्तःपुरसे प्रस्थान कर दिया।

रथोऽपि[1] दशरथाज्ञापरतन्त्रेण सुमन्त्रेण द्वारि समानीतः।

रथोऽपि इति। दशरथाज्ञापरतन्त्रेण राजादेशवशंवदेन सुमन्त्रेण मन्त्रिणा रथः यानम् अपि द्वारि अन्तःपुरद्वारदेशे समानीतः उपस्थापितः। यदैव रामोऽन्तःपुरान्निर्गतस्तत्काल एव सुमन्त्रो राजादेशेन तत्र रथमुपास्थापयदिति भावः।

दशरथकी आज्ञासे सुमन्त्रने भी दरवाजेपर रथ लाकर खड़ा कर दिया।

प्रारब्धयात्रस्य रघूद्वहस्य प्रागेव सीता रथमारुरोह।
आनीलरथ्यं रथमारुरुक्षोरह्नां प्रभोरग्रसरी प्रभेव ॥ ४२ ॥

प्रारब्धेति। सीता प्रारब्धयात्रस्य कृतप्रस्थानस्य वनं जिगमिषोरित्यर्थः। रघूद्वहस्य रघुकुलश्रेष्ठस्य रथम् यानम् प्रागेव रामस्यारोहणात् पूर्वमेव आरुरोह आरूढवती, (तत्रोपमामाह) आनीलरथ्यम् हरिताश्वयुतम् आरुरुक्षोः आरोढुमिच्छोः अह्नाम्प्रभोः दिनपतेः सूर्यस्य अग्रेसरी पुरोगामिनी प्रभा कान्तिः इव। यथोदेतुकामस्य सूर्यस्य

---

१. 'अपि' इति नास्ति क्वचित्।

हरितवर्णहययुक्तं रथमारोढुमिच्छत एव ततः पूर्वमग्रेसरी भवति प्रभा, यावत्सूर्य उदेतुमीहते तावत्प्रभा पुरः सरति, तथैव वनं गन्तुकामो रामो यदवधिरथं मारो-हत्ततः पूर्वमेव सीता तद्रथमारुहदित्यर्थः। अत्र प्रभासूर्योपमया रामसीतयोर्नित्या-नुबन्धकृतः प्रेमप्रकर्षः सूच्यते। रथ्यः—रथं वहतीति विग्रहे 'तद्वहति 'रथे'ति यत्। इन्द्रवज्रावृत्तं, तल्लक्षणं यथा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' ॥ ४२॥

वनयात्राके लिये प्रस्तुत रामचन्द्रके रथ पर रामसे पूर्व ही सीताजी आकर बैठ गयीं, जैसे हरितवर्ण अश्वसे युक्त रथ पर चलने वाले सूर्यकी प्रभा उनसे आगे ही चला करती है॥ ४२॥

दाशरथी च रथमारुरुहतुः।

दाशरथी इति। दाशरथी रामलक्ष्मणौ च रथम् यानम् आरुरुहतुः आरूढवन्तौ, सीतायां रथमारूढायां तत्पश्चात् रामलक्ष्मणावपि तत्रारूढवन्तावित्यर्थः।

सीताके रथारूढ हो जाने पर राम और लक्ष्मण भी रथ पर बैठ गये।

यथा यथा राघवराजधानीं विहाय सीता विपिनोत्सुकाभूत्।
तथा तथाऽजायत यातुकामा लङ्कां विना राक्षसराजलक्ष्मीः॥ ४३॥

यथायथेति। सीता यथायथा यावतांऽशेन राघवराजधानीम् रघुकुलराजधानी-मयोध्यां विहाय त्यक्त्वा विपिनोत्सुका वनं गन्तुमुत्कण्ठिता अभूत् अजायत, तथा तथा तावतांऽशेन राक्षसराजलक्ष्मीः रावणसाम्राज्यश्रीः लङ्काम् विना विहाय यातुकामा प्रस्थातुमनाः अजायत अभवत्, सीतावनवासे प्रारब्धे रावणराजश्रियो लङ्कातः प्रस्थानं प्रारभ्यत, तद्वनवासमूलकत्वात् तद्विनाशस्येति भावः। सीता यावन्तं देशमग्रेसरति वनपथि तावन्तं देशं प्रतिष्ठते लङ्कातो रावणश्रीरिति परमार्थः। उपजातिश्छन्दः, तल्लक्षणं यथा—'स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौगः' 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' इति॥ ४३॥

सीताजी रघुकुलकी राजधानी अयोध्यापुरीका त्याग करके जैसे जैसे वन जानेके लिये उत्कण्ठायुक्त होने लगी, वैसे वैसे राक्षसोंकी राजलक्ष्मी लङ्काको छोड़कर जानेकी इच्छा करने लगी॥ ४३॥

आबालवृद्धमनुगच्छति रामभद्र-
मेषा पुरी तदिह मा खलु निर्गुणा स्याम्।
इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाय
धूलिच्छलान्निजतनुं तमनु प्रतस्थे॥ ४४॥

आबालवृद्धमिति। एषा अयोध्याभिधाना पुरी नगरी आबालवृद्धम् बालान् वृद्धांश्चाभिव्याप्य रामभद्रम् वनं गच्छन्तं श्रीरामम् अनुगच्छति अनुसरति, तत् इह रामानुगमने सहयोगाप्रदानदोषात्) मा खलु निर्गुणा सदोषा गुणवर्जिता वा स्याम् जायेय, इति हेतोः आदरादिव रामविषयकबहुमानादिव धरा धूलिच्छलात् रजोव्याजात् निजतनुं स्वं वपुः बहुधा विधाय नानात्वं प्रापय्य तमनु रामस्य पृष्ठतः प्रतस्थे चचाल। रामे वनं प्रतिष्ठमाने समस्ताप्ययोध्यानगरी तमनुचचाल, तद्दृष्ट्वा पृथिव्याश्चिन्ताऽजायत, यदि अहमिमं नानुगच्छामि तदा लोका मां महदनुवृत्तिविमुखां निर्गुणां कथयित्वा दूषयिष्यन्ति, तदिमं भावं मनसि कृत्वा धरणी स्वां तनुं धूलिव्याजेन बहुधा कृत्वा राममनुचलितवतीति भावार्थः। 'पश्चात्सादृश्ययोरनु' इत्यमरः। 'राममनु' 'तमनु' इत्यनयोः 'अनुर्लक्षणे' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद् द्वितीया। उत्प्रेक्षापह्नुत्योः सङ्कर इति बुधेन्द्रः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥

यह अयोध्या नगरी आबालवृद्ध रामभद्रका अनुसरण कर रही है, कहीं मैं इस सौभाग्यसे वञ्चित रहनेके कारण निर्गुण–दोषी–न हो जाऊँ, ऐसा सोचकर आदरपूर्वक पृथ्वीने धूलिके छलसे अपनी देहको बहुधा विभक्त करके रामके पीछे चलना प्रारम्भ कर दिया। रामके पीछे चलती हुई जनराशिने धूल जो उड़ाई उसीकी यह उत्प्रेक्षा है, वह धूल क्या उड़ रही है ! मानों पृथ्वी बहुत रूप धारण करके रामका अनुगमन कर रही है ॥४०॥

नृपसुखविमुखेन स्वेन कान्तेन साकं
दुहितरि विधिपाकात्काननाय व्रजन्त्याम्।
अकुशलमिति मत्वा नूनमह्नाय धात्री
परिजनमुखबाष्पं पांसुभिः पर्यहार्षीत् ॥ ४५ ॥

नृपसुखेति। नृपसुखविमुखेन राजभोगविरक्तेन स्वेन स्वकीयेन कान्तेन रामेण साकम् दुहितरि पुत्र्याम् सीतायाम् विधिपाकात् दैवदोषात् काननाय वनाय व्रजन्त्याम् गच्छन्त्याम् अकुशलम् अमङ्गलम् इति मत्वा संभाव्य नूनम् निश्चयेन धात्री पृथ्वी जननी च अह्नाय झटिति परिजनमुखबाष्पं भृत्यमुखप्रसृतं नेत्रवारि पांसुभिः लोकोत्थापितधूलिभिः पर्यहार्षीत् परिहृतवती। अयमाशयः—यथा माता स्वतनयाया यात्राकालेऽमङ्गलं वस्तु दूरीकरोति, तद्वदियं सीताया माता धरणी भाग्यविपर्यासात् स्वसुतायां सीतायां रामरूपेण स्वप्राणनाथेन सह वनं गच्छन्त्याम् यदि भृत्या नेत्राश्रु पातयेयुस्तदा यात्रायाममङ्गलं प्रसज्येदिति भीत्येव परिजनमुखबाष्पं समन्तादुत्थितै रजोभिरपानुदत् इति। अत्र रजसा जलरूपाश्रुशोषणस्य मातृकृतामङ्गलशङ्काहेतुकापनोदनरूपत्वमुत्प्रेक्ष्यते। जीवितेशः प्राणनाथः कान्तो रमणवल्लभौ' इति प्रतापमार्त्तण्डः। 'धात्रीजनन्यामलकी वसुमत्युपमातृषु' इति विश्वः। मालिनीवृत्तम् लक्षणमुक्तपूर्वम् ॥ ४५ ॥

भाग्यवश राज्यसुखसे विमुख अपने प्राणनाथ श्रीरामके साथ सीता वन जा रही हैं, उस समय यदि परिजन की आँखों प्रकटित अश्रुजल चूपड़ेंगे तो यात्रामें रोदनरूप अमङ्गल हो जायगा-इस भयसे सीताकी माता पृथ्वीने झटसे (लोगों द्वारा उड़ायी गई) धूलि द्वारा परिजनोंके मुखमें प्रकटित अश्रुजलको सुखाकर दूर कर दिया ॥ ४५ ॥

रामानुसाररसनिर्गतपौरवर्गा[1]
संस्थानमात्रगृहचत्वरराजमार्गा।
निर्मुक्तभोगभुजगत्वगिव क्षणेन
लघ्वी बभूव रघुपुंगवराजधानी ॥ ४६ ॥

रामानुसारेति। रामस्य वनं गच्छतः भगवतो रामचन्द्रस्य अनुसारे अनुगमने रसोऽनुरागस्तेन निर्गतः राममनुप्रस्थितः पौरवर्गो ग्रामवासिनिवहो यस्याः सा तथोक्ताः अत एव संस्थानम् स्थलमात्रम् गृहाः चत्वराणि अङ्गणानि राजमार्गाश्च यस्याम् तथा, गृहाः केवलं स्थानमेव न तु तत्र कोऽपि विद्यते, एवमेवाङ्गणादयोऽपीति विशेषणस्यास्यार्थः। एतादृग् विशेषणद्वयोपेता रघुपुङ्गवराजधानी रघुवंशीयानां प्रधाननगरी अयोध्यापुरी निर्मुक्तभोगात्यक्तसर्पदेहा भुजगत्वक् निर्मोक इव क्षणेन कियतैव कालेन लघ्वी बभूव निःसारा जाता यथा सर्पदेहान्निर्गता त्वक् अतिलघ्वी जायते तद्वत् सकलपुरवासिषु राममनुगतेषु शून्यगृहचत्वरराजपथाऽयोध्या रिक्ता सती असाराऽजायतेति भावः। उपमाऽलङ्कारः। 'गुणे रागे द्रवे रसः' 'अङ्गणं चत्वराजिरे' 'प्रधाननगरी राज्ञां राजधानी निगद्यते' इति सर्वत्रामरप्रतापौ। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४६ ॥

जहाँ रामके अनुसरणमें अनुराग होनेके कारण सभी पुरजन रामके पीछे चले गये हैं, और घर, आँगन तथा सड़क सब केवल स्थान भर बच गये हैं, ऐसी राघवराजधानी अयोध्यानगरी सांप द्वारा त्यक्त केंचुलकी तरह हल्की असार हो गई ॥ ४६ ॥

अथ दशरथः सान्तःपुरजनः पुरान्निर्गत्य गत्यन्तराभावात्तमेव रामं सुचिरमालोकयन्नालोकपथमतिक्रान्ते[2] सुमन्त्राक्रान्तस्यन्दने[3] रघुनन्दने स्यन्दमानबाष्पप्रवाहो मोहमुपगम्य भूम्यां पपात।

अथेति। अथेत्यस्य रामनिर्गमनानन्तरमित्यर्थः। सान्तःपुरजनः सावरोधवर्गजनः दशरथः गत्यन्तराभावात् रामपरावर्त्तनादिप्रकारकोपायाभावात् तम् गच्छन्तम् एव रामम् सुचिरम् बहुकालपर्यन्तम् अवलोकयन् पश्यन् सुमन्त्राक्रान्तस्यन्दने। सुमन्त्राभिधमन्त्रिवाह्यमानरथे रघुनन्दने रामे आलोकपथम् दृष्टिविषयम्

१. 'सह' इति पाठान्तरम्। २. 'अवलोकयन्' इति पाठान्तरम्।
३. 'स्यन्दमान' इति पाठान्तरम्।

अतिक्रान्ते लङ्घितवति सति स्यन्दमानबाष्पप्रवाहः निर्गलदश्रुपूरः सन् मोहमुपगम्य मूर्च्छितो भूत्वा भूम्यां पृथिव्यां पपात पतितः। रामे नगराद्बहिर्गते यावदसौ दृश्यते स्म तावत्स्त्रीभिः सहितस्तमवलोकयन्नतिष्ठत्, परं स्वल्पेनैव कालेन सुमन्त्रवाह्यमानरथे रामे दृष्टिपथमतीत्याग्रे गते दशरथो मूर्च्छितः सन्नवनौ पतित इत्याशयः। 'दशोपायगमे गतिः' 'शताङ्गः स्यन्दनो रथः' 'आलोकौ दर्शनोद्योतौ' इति सर्वत्रामरः।

राम जब गांवसे बाहर निकल गये तब अन्तःपुरकी स्त्रियोंको साथ लेकर दशरथ भी गांवसे बाहर निकल आये और जब तक रामजी दीखते रहे तब तक तो वह उसी ओर ताकते रहे, परन्तु जब सुमन्त्र द्वारा चालित रथ पर आरूढ़ आँखोंके ओझल हो गये तब रोते हुए दशरथ मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर गये।

ततः परिजनकृताश्वासाल्लब्धसंज्ञाय राज्ञे कौसल्यासदनमरोचत।

तत इति। ततः दशरथमूर्च्छानन्तरम् परिजनकृताश्वासात् भृत्यजनविहितमूर्च्छापगमोपायात्। लब्धसंज्ञाय प्रत्यापन्नचेतनाय पुनः संज्ञां प्राप्तवत इत्यर्थः, राज्ञे दशरथाय कौसल्यासदनम् कौसल्याया निवासभवनम् अरोचत, कौसल्याभवने वासः प्रियोऽभवत्। एतेनेतः पूर्वं तस्य कैकेयीभवनवासः सूचितः, तेन तस्याः प्रेयसीभावः समर्थितः।

इसके बाद नौकरों द्वारा मूर्च्छाके छुड़ाये जानेसे होशमें आये हुए राजा दशरथको कौसल्याके भवनमें रहना पसन्द आया।

[1]अथ [2]दाशरथिरहमहमिकया सम्मूर्च्छन्महाजनौघदुरवगाहतया मन्दायमानस्यन्दनवेगः सकलजनविवेककोकनदं मुकुलयन् मोहतमसा तमसातटमुपागमत्। चरमगिरितटमपि[3] सहस्रदीधितिः।

अथेति। अथ अनन्तरम् दाशरथिः रामः अहमहमिकया अहं पूर्वमहं पूर्वमिति भावनया सम्मूर्च्छतः समुपतिष्ठतः सहगन्तुमासीदतः महतो विशालस्य जनौघस्य लोकसमुदायस्य दुरवगाहतया पारं गन्तुमशक्यतया ('अहमग्रे भविष्यामि' इत्यन्योन्यबद्धस्पर्द्धस्य जनराशेः सम्मर्देन पथो दुर्लभतयेति भावः। मन्दायमानस्यन्दनवेगः मन्दीभवद्रथगतिः सन् सकलजनानां विवेकः ज्ञानम् एव कोकनदम् रक्तकमलम् तत् मोहतमसा अज्ञानान्धकारेण मुकुलयन् संकोचं प्रापयन् सर्वानपि जनान् मोहं प्रापयन् इत्यर्थः, तमसाया तदाख्यायाः नद्याः तटम् तीरम् उपागमत् उपयातः, (तमसा सायमन्धकारेण कमलं सङ्कोचयन्) सहस्रदीधितिः सहस्र-

---

१. 'अथ' इति नास्ति क्वचित्। २. 'दाशरथिरपि' इति पाठान्तरम्।
३. 'शिखरम्' इति पाठान्तरम्।

किरणः सूर्यश्च अपि चरमगिरितटम् अस्ताचलशिखरम् उपागमदिति। अत्र य भगवान् रामः सर्वानपि स्वानुयात्रिकान् मोहपङ्के निमज्जयन् तमसातीरमाया स्तदा सूर्योऽपि कमलानि संकोचयन्नस्ताचलं प्राप्त इति 'मुकुलयन्' 'उपाग इति समानधर्माभिसम्बन्धोऽप्रस्तुते सूर्ये प्रस्तुते दाशरथौ च प्रतीयमानस्तुल्य गितानामकमलङ्कारं गमयति, 'प्रस्तुतानां पदानां पदार्थानामन्येषां वा यदा भवे एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता' इति तल्लक्षणात्। 'अहमहमि तु सा स्यात्परस्परं यो भवत्यहङ्कारः' इति 'रक्तोत्पलं कोकनदम्' इति चामरः।

'हम पहले साथ हो लें' 'हम पहले साथ हो लें' इस स्पर्धाके साथ जुटते हुए पौ वर्गकी भीड़में रामजीके रथकी गति धीमी पड़ गई, इसके बाद धीरे धीरे चलते हुए रा सभी लोगोंको मोहमें डालकर तमसा नदीके तट पर पहुँचे (सकल कमलको अन्धकार सङ्कुचित करते हुए) भगवान् सूर्य भी अस्ताचलके शिखर पर पधारे।

आविः प्रलापमटवीं भजतो जनस्य
काकुत्स्थपादविरहासहमानसस्य।
आस्तीर्णपर्णशयनान्यभवन्गृहाणि
मूलस्थलानि तमसातटभूरुहाणाम् ॥ ४७ ॥

आविः प्रलापमिति। काकुत्स्थपादस्य श्रीरामचरणारविन्दस्य विरहासहम वि योगासहिष्णुमानसं यस्य तथोक्तस्य रामविरहेक्षणमपि जीवितुमशक्तस्य अत एव आविः प्रलापम् आविर्भवत् परिदेवनम् सविलापम् अटवीम् काननम्। भज अटतो रामेण सहेत्याशयः जनस्य लोकस्य अस्तीर्णपर्णशयनानि विरचितप शय्यानि तमसातटभूरुहाणाम् तमसानदीतीरवर्त्तिवृक्षाणाम् मूलस्थलानि अधस्थ लानि गृहाणि भवनानि अभवन् अजायन्त रामविरहासहिष्णुतया सविला राममनुसरतो लोकस्य विरचितपत्रशयनानि तमसातटतरुमूलानि गृहकार्यं चक्रु लोका निशि तत्रैव विशश्रमुरित्याशयः। अत्र गृहाणीतिपदस्य साधुत्वे सन्दिहा रामचन्द्रबुधेन्द्राः किमभिप्रयन्तीति त एव जानीयुः। 'गृहं गेहोदवसितम्' इत्य मरेण 'गृहाणि नीध्रैरिव यत्र रेजुः' इति माघेन च तत्साधुतायाः प्रमापणं शक्य मिति मध्यस्थाः ॥ ४७ ॥

रामके विरहको सहनेमें असमर्थ तथा विलाप करते हुए रामके साथ वन जाने वाले लोगोंके लिये तमसातीरके वृक्षोंका अधोदेश ही घर बन गया, जहाँ पर पत्तोंके बिछाव डालकर उन लोगोंने रात्रिको विश्राम प्राप्त किया ॥ ४७ ॥

अथ निशीथे दाशरथिः सुमन्त्रेण संमन्त्र्य वञ्चितजनसंहतिर्वि विनतानन्दनेन स्यन्दनेन वेदश्रुतिगोम[1]तीनिष्यन्दिकानामनदीत्रयपरि

१. 'गोमतीनिष्यन्दिनां' इति पाठान्तरम्।

ष्कृतामिक्ष्वाकवे मनुना दत्तां वसुमतीमतीत्य विविधवनगहनवीरुत्तृण-पटलपिहितरथतुरगखुरमुद्रया पदव्या गङ्गातरङ्गसंगतमूलं गगनगङ्गालिङ्गितशृङ्गं शृङ्ग[1]वेरपुरालंकारमिङ्गुदीपादपमुपागमत् ।

अथेति । अथ सर्वेषु तमसातटतरुमूले शयानेषु निशीथे अर्धरात्रे सुमन्त्रेण मन्त्रिणा सम्मन्त्र्य कथमेषां सहचलतां पौराणां सङ्गान्मुक्तः स्यामिति विषये परामृश्य वञ्चितजनसंहतिः प्रतारितलोकसमुदयः दाशरथिः रामः अतिविनतानन्दनेन (विनता गरुडमाता तन्नन्दनो गरुडस्तमतिक्रान्तवता) वेगविजितगरुडेन स्यन्दनेन रथेन वेदश्रुतिः, गोमती, निष्यन्दिका चेति नाम यस्य तादृशेन नदीत्रयेण परिष्कृताम् भूषिताम् (तिसृभिरपि नदीभिः सस्यश्यामलां पवित्रतां नीताश्च) इक्ष्वाकवे नाम स्वपुत्राय मनुना तत्पित्रा दत्ताम् वसुमतीम् भूमिम् कोसलदेशम् अतीत्य लङ्घयित्वा, विविधानि नानाप्रकाराणि ह्रस्ववृक्षाणि दीर्घवृक्षाणि च, गहनानि दुर्गमारण्यानि, वीरुधो लताः, तृणानां घासादीनां पटलो राशिश्चैतैः पिहिता गोपिता-आच्छाद्य दुर्दर्शतां नीता-लोका मामनुगमन्विति बुद्ध्या तैस्तैरुक्तवस्तुभिराच्छादिता—तुरगखुरमुद्रा अश्वशफकृतचिह्नचयो यस्यां तया तथोक्तया पदव्या मार्गेण गङ्गातरङ्गसङ्गतमूलम् जाह्नवीतीरवर्त्तितया तत्तरङ्गप्रक्षाल्यमानमूलम् गगनगङ्गया मन्दाकिन्या आलिङ्गितं चुम्बितं शृङ्गमुपरितनो भागो यस्य तादृशम् आकाशप्रसृतशिखरमित्यर्थः, शृङ्गवेरपुरालङ्कारम् तदभिधानकनगरीभूषणभूतम् इङ्गुदीपादपम् तापसतरुभेदम् उपागमत् आयातः । निशि निद्रितेषु लोकेषु कथमेषां सङ्गो हीयेतेति विषये सुमन्त्रेण सह विचार्य रामो लोकान् सुप्तानेव परित्यज्यातिवेगवता यानेन कोसलदेशमुल्लङ्घ्य चलितः, अथापि लोकास्तुरगपदचिह्नैः पन्थानं परिचित्य मामनुसरिष्यन्तीति चिन्तयित्वा लोकानां मार्गज्ञानं मा जनीति तुरगखुरचिह्नानि गहनवनघासादिभिर्गोपितानि कृत्वा चलितः एवं चलंश्च गङ्गा तटे वर्त्तमानं विशालं शृङ्गवेरपुरभूषणायितमिङ्गुदीपादपं प्रापदिति तात्पर्यार्थः । अत्र रथस्यातिवेगवत्ता कथनेन रामस्य हृदि वर्त्तमाना लोकानुसरणभीतिरुक्ता, तेन च तस्य लोकप्रियताऽतिशयः, इक्ष्वाकवे मनुना दत्तामिति भूमिविशेषणेन पैतृकभूमेर्दुष्परिहरतया तामपि त्यजतो रामस्य दृढसन्धता, इङ्गुदीतरोर्गङ्गासङ्गतमूलतया पावनत्वम्, गगनगङ्गालिङ्गितशृङ्गतयाऽस्यौन्नत्यम् , शृङ्गवेरपुरालङ्कारत्वोक्त्या रमणीयत्वं चेत्याद्यर्था व्यज्यन्ते । 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' 'इङ्गुदी तापसतरुः' इत्युभयत्रामरः ।

इसके बाद अर्धरात्रिके समय सुमन्त्रके साथ परामर्श करके रामने लोगोंको धोखेमें डालकर (सोते छोड़कर) अति तेज चलनेमें गरुड़को भी मात कर देनेवाले रथसे वेदश्रुति,

---

१. 'शृङ्गिवेर' इति पाठान्तरम् ।

गोमदी और निष्यन्दिका नामक तीन नदियोंसे परिष्कृत—मनुके द्वारा अपने पु
इक्ष्वाकुको दी गई पृथ्वी (कोसलदेश) को लांघकर नानाप्रकारके वन, दुर्ग वीहड़, ल
घास फूस आदिसे घोड़ोंके खुर चिह्नोंको छिपानेवाले रास्तेसे गङ्गातरङ्गसे सिक्तमूल, एव
आकाशगङ्गाद्वारा आलिङ्गित शिखर (अतिपवित्र तथा अत्युच्च) शृङ्गवेरपुरको भूषि
करनेवाले इङ्गुदी वृक्षको प्राप्त किया।

ततः[1]—

दृष्ट्वा राममनेकजन्मरचितैर्दृश्यं शुभैः कर्मभिः
श्रुत्वा मातृवरद्वयादुपगतां वृत्तिं च वैखानसीम्।
अत्युज्जृम्भितहर्षशोकजनितैर्बाष्पैर्निषादाधिपः।
शीताशीतगुणान्वितैरविरलैः सम्पृक्तवक्त्रोऽभवत्॥४८॥

ततः, दृष्ट्वेति। ततः तदनन्तरम् राम इङ्गुदीपादमूलमुपागतमित्यर्थः निषादाधिप
निषादराजो गुहः अनेकजन्मरचितैः जन्मसहस्रकृतैः शुभैः कर्मभिः व्रतोपवासनियमा
दिभिः दृश्यम् साक्षात्कर्त्तुं योग्यम् रामम् दृष्ट्वा मातृवरद्वयात् कैकेयीप्रार्थितवरद्वानि
तयात् हेतोः उपगताम् प्राप्ताम् ताम् तादृशीम् चीरधारणावबोध्याम् वैखानसीम्
मुनिजनोचिताम् वृत्तिम् दशाम् (चीरादिधारणकृतां मुनिवृत्तिम्) श्रुत्वा सुम
न्त्रादिकथनेन निशम्य च शीतम् शीतलम् अशीतम् उष्णं च तावेव गुणौ वाष्प
धर्मौ ताभ्याम् अन्वितैः युक्तैः शीतलैरुष्णैश्चेति भावः अविरलैः सन्ततस्यन्दमानैः
अत्युज्जृम्भितौ उत्कटौ यौ हर्षशोकौ ताभ्यां जनितैः प्रसूतैः बाष्पैः अश्रुभिः
सम्पृक्तवक्त्रः युक्तमुखः अभवत् अजायत। यो रामो नानाजन्मपरम्पराविहित
सुचरितशतैः कैश्चिदेव योगिभिर्दृश्यते स मया दृष्ट इति हर्षेण निषादाधिपतेर्मुख
मतिशीतलानन्दपयसाऽसिच्यत, कैकेयीवरेण रामो वनवासे मुनिवेषं बिभर्तीति
श्रुत्वा च तदेव तन्मुखमन्तः खेदोष्णवाष्पैरयुज्यत, तदित्थं शीताशीतबाष्पप्रसरैः
संयुक्तमुखः समजायत गुहः, तस्य मनसि रामदर्शनेनानन्दस्तन्मुनिभावनिमित्त
श्रवणेन च विषादः सहैव प्रादुरभूतामिति भावः। यथाक्रममनूद्देशाद्यथासङ्ख्या
लङ्कारः। 'वैखानसो वने वासी वानप्रस्थश्च तापसः' इत्यमरः। शार्दूलविक्रीडितं
वृत्तम्, लक्षणं प्रागुक्तम्॥ ४८॥

अनेक जन्मोंमें किये गये पुण्यबलसे जो राम देखे जा सकते हैं उस रामको साक्षा
देखकर तथा कैकेयीके वरदानयाचना द्वारा प्राप्त उनकी मुनिवृत्तिको सुनकर निषादाधि
हृदयमें जो उत्कट हर्ष तथा शोक उत्पन्न हुए, उनसे उदित शीत तथा अशीत गुण उ
अश्रुप्रवाहोंसे उस निषादाधिपका मुँह भर गया, अर्थात् रामको देखकर उसको आन

१. 'तत्र' इति पाठान्तरम्।

अन्दान हुआ जिससे शीतल सानन्दाश्रु एवं उनकी मुनिवृत्ति सुनकर उसे जो महान् शोक हुआ उससे गरम दुःखाश्रु निकलकर मुंहको व्याप्त कर लिया ॥ ४८ ॥

सोऽयं [1]प्रियसुहृत्समासाद्य गुहः कृताञ्जलिरञ्जसा रघुनाथमनुनाथितवान् ।

सोऽयमिति । सोऽयम् यस्य हृदयं रघुनाथदर्शनेन हृष्टं, तन्मुनिवृत्त्या च व्यथितं तादृशः प्रियसुहृत् प्रियमित्रम् गुहः रघुनाथम् रामभद्रम् समासाद्य समीपमागत्य कृताञ्जलिः कृतकरसम्पुटः । अञ्जसा तत्त्वतः (हृदयेन, न त्वौपचारिकभावेन) अनुनाथितवान् प्रार्थितवान् राममिति शेषः । 'तत्त्वे त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम्' इत्यमरः ।

प्रियसखा वह निषादराज रामके पास आया और हाथ जोड़कर उसने रामसे सच्चे हृदय से इस प्रकार प्रार्थना की ।

देव, पितृनियोगप्रवणान्तःकरणमपि भवन्तं [2]विज्ञापयितुम[3]ज्ञजानपदरीतिर्भारती मां मुखरयति ।

देवेति । हे देव, हे स्वामिन् , पितुर्नियोगे आदेशे प्रवणम् आसक्तम् अन्तःकरणं मानसं यस्य तम् पित्राज्ञापालनोत्सुकचित्तम् अपि भवन्तम् विज्ञापयितुम् किञ्चिन्निवेदयितुम् अज्ञानां मूर्खाणाम् जानपदानाम् ग्राम्याणाम् रीतिः शैली यस्याम् तादृशी, मूर्खग्रामीणजनयोग्या भारती वाणी माम् मुखरयति वाचालं करोति प्रेरयतीत्यर्थः । यद्यपि भवान् पितुरादेशं पूरयितुं व्यवसितः तथापि किमपि विवक्षुरहमस्मि, तत्र विवक्षायां ग्राम्यजनौचिता भारती मां प्रवर्त्तयतीति भावः । मुखं वागस्यास्तीति मुखरनिरन्तरभाषी, ततस्तत्करोतीति णिच् । 'दुर्मुखे मुखराबद्धमुखौ' इत्यमरः ।

यद्यपि आप अपने पिताकी आज्ञापालनमें दत्तचित्त हैं तथापि मूर्खोंके योग्य भाषा मुझे आपसे कुछ प्रार्थना करनेको प्रेरित कर रही है ।

अस्त्येतदनिर्वार्यवीर्योद्भट[4]भटदुर्गवर्गयुक्तमनुषक्तभोग्यजातमन्थरं मन्थराहृदयतोदावहमस्मदीयं राज्यम् ।

अस्त्येतदिति । अनिवार्येण अतिक्रमितुमशक्येन वीर्येण पराक्रमेण उद्भटाः अनिवार्यवीर्योद्भटाः ये भटाः योद्धारः तैः दुर्गवर्गैः गिरिपरिखाप्राकारादिरक्षासाधनैश्च युक्तम् उपपन्नम् , अनुषक्तम् सततप्राप्यम् भोग्यजातम् भोगयोग्यफलमूलादिवस्तुनिवहस्तेन मन्थरम् पूर्णम् , मन्थराहृदयतोदावहम् मन्थराचेतो व्यथा-

---

१. 'प्रिय' इति नास्ति क्वचित् ।
२. 'विज्ञापितुम्' । इति पाठान्तरम् ।
३. 'अज्ञात' इति पाठान्तरम् ।
४. भटवर्गदुर्गयुक्तम्' इति पाठान्तरम् ।

करम्, एतत् अस्मदीयम् राज्यमस्तीत्यन्वयः। अत्र मन्थराहृदयतोदावहमित्य-नेन—मन्थरया चिन्तितस्या रामराज्यप्राप्तिविघटनस्यैतेन प्रकारेण व्यर्थतासम्पाद-नात् तदीयहृदयव्यथाऽऽवहत्वमभिप्रेयते। दुर्गयुक्ततया अनिवार्यवीर्ययुतभटयुक्त-तया चास्य राज्यस्य पराभिभवानर्हतया निश्चिन्ततयाऽवस्थानस्य संभवित्वं सू-च्यते। दुर्गोपयोग उक्तो मनुना यथा—'धनुर्दुर्गं महोदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव च नृदुर्गं गिरिदुर्गं च समाश्रित्य वसेन्नृपः'।

अजेयपराक्रमशाली योद्धाओं और नानादुर्गोंसे युक्त, सतत मिल सकनेवाले भोग्यपदार्थोंसे परिवृत मन्थराके हृदयमें व्यथा उत्पन्न करनेमें समर्थ हमारा यह राज्य वर्त्तमान है।

[1]तदेतदनिदम्प्रथमप्रवृत्तं परिगृह्य किञ्चिदनुगृह्य च[2] परिजनयोग्य[3]भा-ग्यभाजनममुं जनममुञ्चन्नेव [4]तातादेशं देशेऽस्मिन्विस्मयनीयानुभाव-मुनिवृन्दे मन्दाकिनीसन्दर्शनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशश्चतु-र्दशदशरथकथिताः समाः समापयतु भवानिति।

तदेतदिति। अनिदं प्रथमप्रवृत्तम् पूर्वत एव त्वदधिकारे स्थितत्वात् इदं प्रथ-मम् प्राथम्येन प्रवृत्तम् प्राप्तं न भवतीति तथा, तदेतत् मदीयं राज्यम्, परिगृह्य पाल-नीयत्वेन स्वीकृत्य, परिजनयोग्यभाग्यभाजनम् दासत्वप्राप्तियोग्यसौभाग्यशालि-नम् अमुम् मल्लक्षणम् जनम् किञ्चित् ईषत् अनुगृह्य अनुकम्प्य च, तातादेशम् वनवासरूपां पित्राज्ञाम् अमुञ्चन् अपरिहरन् एव विस्मयनीयानुभावमुनिवृन्दे आश्चर्यजनकप्रभावयुक्तमुनिगणोपेते अस्मिन् देशे प्रान्ते मन्दाकिनीसन्दर्शनेन गङ्गावलोकनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशः मन्दीभूतमातृवियोगकष्टः भवान् दशरथकथिताः दशरथेनोक्ताः चतुर्दश समाः हायनानि समापयतु गमयतु। अयमाशयः—इदं राज्यं न नूतनरूपेण भवदधिकारे गच्छति, किन्तु पूर्वत एव भवदीयमिति नैतद्ग्रहणे कोऽपि विमर्शावसरः, तदिदं राज्यं स्वीक्रियताम्, भव-दीयदास्ययोग्यतापात्रतयाऽऽत्मानं धन्यं मन्यमानोऽयं जनश्चानुगृह्यताम्, एवं कर-णेन पितुराज्ञापि वनवासरूपा न खण्डिता भवति, अत्र स्थितस्य भवतो महाश्चर्य-सामर्थ्या मुनयो दृशोः पथमवतरिष्यन्ति, गङ्गाविलोकनानन्देन भवतो मातृ-वियोगव्यथा मन्दायिष्यते, तदेवं भवान्दशरथादेशविषयाँश्चतुर्दशहायनानत्रानन्देन व्यतियापयतु' इति। 'हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः।

यह राज्य आपको नया नहीं मिल रहा है, आप इसे स्वीकार करें, दास होनेकी योग्यता युक्त मुझ पर तनिक दया करें, और पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हुए

१. 'तदिदमनिशम्' इति पाठान्तरम्। २. 'च' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'योग्यभाजनम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'तातादेशेन' इति पाठान्तरम्।

ही आश्चर्यजनक सामर्थ्यसे युक्त इस देशमें वास करें, यहाँ गङ्गाके दर्शनसे माताओंके वियोगसे होने वाला कष्ट कुछ मन्द पड़ जायगा, इस प्रकार आप दशरथद्वारा आदिष्ट चौदह वर्षोंको यहीं बितावें।

तस्मिन्नित्थं प्रार्थनाभाजि सख्यौ प्रत्याचख्यौ रामभद्रः प्रियोक्त्या।
मातुर्वाक्याद्वल्कलेनावृतं मे गात्रं क्षात्रप्रक्रियां नार्हतीति॥ ४६॥

तस्मिन्निति। सख्यौ अत्यागसहने तस्मिन् निषादराजे इत्थं प्रार्थनाभाजि पूर्वोक्तनिवेदनपरायणे मातुः कैकेय्याः वाक्यात् वरप्रार्थनारूपात् वल्कलेन वृक्षत्व-गात्मना मुनिधार्येण वस्त्रेण आवृतम् आच्छादितम् मे मम रामस्य गात्रम् वपुः क्षात्रप्रक्रियाम् राज्यपालनात्मकं क्षत्रियाचारं न अर्हति इति प्रियोक्त्या मधुरभाषणेन रामभद्रः प्रत्याचख्यौ तदुक्तिं न्यषेधत्। अत्रैव वसेति प्रार्थनापरायणस्य प्रियसुहृदो निषादराजस्याग्रहम्—मातुराज्ञया धृतमुनिवसन्तमिदं मम वपुरिह क्षत्रियोचिते राज्यपालनात्मनि कर्मणि नाधिकारं रक्षतीति प्रियोक्त्या न्यक्कृतवानिति भावः। अत्र मातुर्वाक्यादित्युक्त्या तद्वाक्यस्यावश्यपालनीयता, पितुर्दोषासंस्पृष्टता चोक्ता। शालिनीवृत्तमेतल्लक्षणं। प्रागुक्तम्॥ ४९॥

प्रियसखा निषादराजकी इस प्रकार प्रार्थनाको रामभद्रने माता कैकेयीकी आज्ञासे धृतवल्कल यह हमारा गात्र क्षत्रियोचित कार्यका अधिकार ही नहीं रखता है इस मधुर वचनके द्वारा खण्डित कर दिया।

ततस्तु तदनुरोधेन रोधस्तरोरधस्तात्सुमन्त्रनियन्त्रितरथ्ययोः[1] दाशरथ्योरातिथ्यं समधुपर्कं कर्तुमिव मन्दमन्दमरविन्दवृन्दस्यन्दमानमकरन्दबिन्दुसंदोहवाहिनि वाहिनीतरङ्गमरुति वाति काननगमनावस्थां काकुत्स्थस्य प्रेक्षितुमक्षमायामिव क्ष्माभृति चरमे तिरोहितायामह्नामधिदेवतायां सन्ध्यां चरमां रामः समाप्य तस्यां तरुमूलभुवि लक्ष्मणकल्पितं पर्णतल्पमभजत्।

तत इति। ततः रामनिषादराजयोः एवंवृत्ते कथोपकथने जाते तदनुरोधेन गुहप्रार्थनया रोधस्तरोः गङ्गानदीतटवृक्षस्य अधस्तात् अधोदेशे सुमन्त्रनियन्त्रितरथ्ययोः सुमन्त्राख्यसचिवनिरुद्धवाहयोः दाशरथ्योः दशरथपुत्रयोः रामलक्ष्मणयोः मधुपर्कः मधुगुडादिमिश्रितः सत्कारसमर्प्यः पदार्थः तेन सह समधुपर्कम् आतिथ्यम् अतिथिसत्कारम् कर्तुम् विधातुमिव (हेतूत्प्रेक्षा) अरविन्दवृन्दम् कमलकुलम् ततः स्यन्दमानः प्रवहन् यः मकरन्दबिन्दुसन्दोहः पुष्परसप्रवाहस्तं वहति सह

---

१. 'रथ्ययोः' इति पाठान्तरम्।

नयति तादृशे वाहिनीतरङ्गमरुति नदीवीचीसम्पर्किणि वायौ मन्दमन्दम् शनैः शनैः वाति चलति सति, (अत्र वायावपेक्षितं शीतलत्वमन्दत्वसुगन्धत्वरूपं गुणत्रयमपि निवेदितं बोध्यं तत्र शीतलत्वं नदीतरङ्गसम्पर्कविधया, मन्दत्वं शब्दो-पारूढम्, सुगन्धत्वं च मकरन्दबिन्दुसन्दोहवाहनेनेति विवेकः) काकुत्स्थस्य ककुत्स्थवंशतिलकस्य रामस्य काननगमनावस्थाम् वनवासदशाम् प्रेक्षितुं द्रष्टु-मक्षमायाम् इव स्ववंशजविपदुपनिपातस्य सहजासह्यतयेयं हेतूत्प्रेक्षा) अह्नाम् दिनानाम् अधिदेवतायाम् भास्कररूपायाम् चरमे क्ष्माभृति अस्ताचले तिरोहि-तायाम् अस्तमुपगतायाम् (अन्योऽपि किमपि स्वीयजनकष्टं द्रष्टुमनिच्छुः स क्वचन निभृते स्थाने प्रच्छादयति) रामः चरमाम् सायङ्कालकर्त्तव्याम् सन्ध्याम् उपासनाम् समाप्य अवसाप्य तस्याम् तरुमूलभुवि वृक्षाधो भूमौ लक्ष्मणकल्पितम् लक्ष्मणरचितम् पर्णतल्पम् पत्रनिर्मितं शयनीयम् अभजत् विश्रामाय प्रापत्। अयमाशयः—यदा रामो गुहकृतां तद्राज्यग्रहणप्रार्थनां प्रत्याख्यातवाँस्तदा गुहस्त-स्यां निशि तत्रैव स्थातुमागृह्णात्तदनुरोधेन च सुमन्त्रो रामलक्ष्मणाध्युषितरथ-वाहकानश्वान् गङ्गातीरतरोरधोदेशे नियन्त्रितवान्, तत्र तिष्ठतो रामलक्ष्मणयो-रातिथ्यमिव सम्पादयितुं वायुस्सुखकरो ववौ, रामस्य वनवासावस्थां द्रष्टुमसमर्थ इव सूर्यः पश्चिमाचले निलीनस्तज्जातायां सन्ध्यायामवसरप्राप्तां सायंसन्ध्यां समाप्य लक्ष्मणरचिते पर्णस्रस्तरे रामो विश्रान्तये समुपाविशदिति। 'अस्तस्तु चरमक्ष्मा-भृत्'। 'तल्पं शय्याट्टदारेषु' इत्युभयत्राप्यमरः।

इसके बाद निषादराजके अनुरोधसे गङ्गातटवर्त्ती वृक्षके नीचे सुमन्त्रने रथके अश्वोंको बांध दिया, राम और लक्ष्मणको मधुपर्कके साथ आतिथ्य करनेके ख्यालसे ही हो वैसे कमलराशिके मकरन्दसमुदायको लेकर तरङ्गसम्पर्की वायु मन्द मन्द बहने लगी और रामकी वनवासदशाको नहीं देख सकनेके कारण सूर्यदेव पश्चिमाचल में डूब गये, तब राम सायंसन्ध्या सम्पन्न कर वृक्षके नीचे जमीन पर लक्ष्मण द्वारा रचित पत्तोंकी सेज पर जा बैठे।

रामे विदेहसुतया तरुमूलसंज्ञ-
मन्तःपुरं विशति लक्ष्मणसौविदल्लम्।
निध्याय तं नियमितामितबाष्पवृष्टि-
र्निद्रां निरस्य निषसाद निषादनाथः॥ ५०॥

राम इति। रामे विदेहसुतया सीतया (सहशब्दाप्रयोगेऽपि तदर्थावगमात्तृ-तीया) लक्ष्मणसौविदल्लम् लक्ष्मणरूपेण कञ्चुकिना कृतरक्षम् तरुमूलसंज्ञम् वृक्षा-धोदेशनामकम् अन्तःपुरं शुद्धान्तं विशति सति। निषादनाथः गुहराजः तम् तद्-विधभूतलशायिनम् रामम् निध्याय विलोक्य नियमितामितबाष्पवृष्टिः अत्य-

रुद्धाविच्छिन्नाश्रुप्रवाहः सन् निद्राम् निरस्य विहाय निषसाद जाग्रदेव स्थित इत्यर्थः । लक्ष्मणेन सह संलपँस्तां निशामपनिद्र एव गमयामासेति तात्पर्यम् । 'सौविदल्लाः कञ्चुकिनः' 'निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्युभयत्रामरः । अत्र तरुमूलस्यान्तःपुरत्वरूपणात्तत्र रामस्य अक्लेशावस्थानं तेन तस्य समभावकृतं माहात्म्यं व्यङ्ग्यम् वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५० ॥

जब रामजी सीताके साथ लक्ष्मणरूप कञ्चुकीसे युक्त तरुमूल नामक अन्तःपुरमें जा बैठे तब उस निषादराजने इन्हें देख कर आने वाले अश्रुप्रवाहको किसी प्रकार रोक कर निद्रात्याग करके बैठे रहना प्रारम्भ कर दिया । (जिससे जागते हुए लक्ष्मणके साथ बातें करनेका अवसर प्राप्त हो) ॥ ५० ॥

व्यतीतायां विभावर्यामर्यममरीचिमालाहारिणि पूर्वोर्वीधरमूर्ध्नि विरचितजटाबन्धौ सह सीतया दाशरथी भागीरथीकच्छमगच्छताम् ।[1][2]

व्यतीतायामिति । विभावर्याम् रात्रौ व्यतीतायाम् समाप्तायाम् पूर्वोर्वीधरमूर्ध्नि उदयाचलशिखरे अर्यम्णः सूर्यस्य याः मरीचयः किरणाः तद्रूपमालाहारिणि सूर्यस्य करैरुल्लासिते सति प्रभाते जात इत्यर्थः । विरचितजटाबन्धौ विहितजटौ दाशरथी दशरथसुतौ रामलक्ष्मणौ सीतया सह भागीरथीकच्छम् गङ्गातटमगच्छताम्, प्रातः कृत्यानुष्ठानाय गङ्गातीरं जग्मतुरित्यर्थः । 'विभावरी तमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी' । 'जलप्रायमनूपं स्यात् पुंसि कच्छस्तथाविधः' इत्युभयत्रामरः । अत्र सीतया सहेत्युक्त्या पुनरावर्त्तनाभावं प्रति व्यञ्जना कृता ।

रातके बीत जाने पर जब पूर्वाचल पर सूर्य की किरणें चमकने लगीं, तब राम और लक्ष्मणने जटायें बनालीं, तथा सीताको साथ करके गङ्गातटकी ओर प्रस्थान किया ।

तत्र रामः प्रहृष्टचेताः सीतामाचष्ट ।

तत्रेति । तत्र गङ्गातटे प्रहृष्टचेताः पुण्यसलिलाया भागीरथ्याः दर्शनेन प्रसन्नहृदयो रामः सीताम् वक्ष्यमाणप्रकारेण आचष्ट उक्तवान् ।

यहाँ पर रामने इस प्रकार सीतासे कहा ।

मेध्याश्वमार्गपरिमार्गणसंभवस्य[3]
दिव्यौषधिं कपिलकोपमहाज्वरस्य ।
तातानुतर्पणपचेलिमभागधेयां
भागीरथीं भगवतीं शरणं भजामः ॥ ५१ ॥

---

१. 'अर्यममरीचिवीचिमाला' इति पा० । २. 'जटाबन्धौ दाशरथी' इति पाठान्तरम् ।
३. 'दुर्नयस्य' इति पाठान्तरम् ।

मेध्याश्वेति । मेध्यः पवित्रः यज्ञीयः यःअश्वः हयस्तस्य मार्गः पन्थाः तस्य परिमार्गणे अन्वेषणे सम्भवः उदयः यस्य तादृशस्य (मत्पूर्वजैः स्वयज्ञीयाश्वगवेषणे क्रियमाणे प्रकटीभूतस्येत्यर्थः) कपिलकोपः कपिलाख्यमहातपस्विक्रोधस्तद्रूपस्य महतः अतिसन्तापकस्य ज्वरस्य व्याधेः दिव्यौषधिम् सिद्धभेषजरूपाम् (अत्र गङ्गायाः सिद्धभेषजत्वेन रूपणस्य निर्वाहाय कपिलकोपे ज्वरत्वारोपः कृतः) तातानुतर्पणे पितृक्रियायाम् पूर्वजैर्मम विधीयमाने स्वपितृमोक्षणे) पचेलिमम् परिणतम् भागधेयम् भाग्यं यस्यास्तादृशीम् (अस्मत्पूर्वजोद्धरणविजृम्भमाणसौभाग्यामित्यर्थः) भगवतीम् पूज्याम् भागीरथीम् गङ्गाम् शरणं भजामः आश्रयत्वेनावलम्बामह इत्यर्थः। कपिलकोपानलदग्धस्वपूर्वजोद्धाराय भगीरथेन भुव्यानयनाद्गङ्गाया भागीरथीपदव्यवहार्यता बोध्या। अत्र परिमार्गणसम्भवत्वं कोपविशेषणम्। पचेलिमभागधेयामिति विशेषणेन परोपकारेण भाग्यवत्ता समर्थ्यमाना बोध्या। परम्परितरूपकमलङ्कारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

यज्ञीय अश्वके अन्वेषणकालमें प्रकटित कपिलमुनिके कोपरूप महाज्वरकी सिद्धौषधिस्वरूपा, एवं पितरोंके तर्पणमें उपयोग प्राप्त करनेके योग्य भाग्यसे युक्ता भगवती भागीरथीकी शरण में हम आ रहे हैं ॥ ५१ ॥

तदनन्तरं रामः सान्त्ववचननिवारितसुमन्त्रः ससौमित्रिर्मङ्गलानि प्रार्थयमानया तया मैथिल्या सह गुहेनानीतां नावमारुरोह ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरम् एतादृशकथनात् परतः सान्त्ववचननिवारितसुमन्त्रः प्रियोक्तिपरावर्त्तितसुमन्त्राभिधमन्त्रिमुख्यः रामः ससौमित्रिः लक्ष्मणेन सहितः मङ्गलानि शुभानि प्रार्थयमानया गङ्गां याचमानया तया सह चलन्त्या मैथिल्या सीतया सह गुहेन निषादराजेन आनीताम् उपस्थापिताम् नावम् तरिम् आरोह आरूढः । रामे नावमारोहति सति सीता मङ्गलानि प्रार्थयामास, तथा च वाल्मीकीये—'पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः' । इत्यादि ।

इसके बाद रामने प्रियवचनोंसे सुमन्त्रको लौटा दिया और लक्ष्मणके साथ गङ्गासे मङ्गलकी प्रार्थना करती हुई सीताको लेकर नावमें चढ़ गये ।

स एव निषिध्य निषादाधिपतेरनुगमनमपि तूर्णमेव [1]वितीर्णसुरसरित्पूरः संपूर्णसस्ये वत्साभिधाने जनपदे कृतपदश्च [2]ललदयवेधनचतुरश्चतुरो मृगान्निहत्य कुत्रचिद्वनस्पतिमूले निशामनैषीत् ।

१. 'अवतीर्णसरितपारः' इति पाठान्तरम् । २. चलल्लक्ष्य' इति पाठान्तरम् ।

स एष इति। स एषः रामः (यः प्रियोक्त्या सुमन्त्रं परावर्त्तितवान्) निषादाधिपतेः निषादराजस्य गुहस्य अनुगमनम् स्वेन सह प्रयाणम् अपि निषिध्य (स्वमनुयान्तं गुहमपि परावर्त्त्येत्यर्थः) तूर्णम् शीघ्रम् एव वितीर्णसुरसरित्पूरः लङ्घितगङ्गाप्रवाहः सम्पूर्णसस्ये धान्यादिपूर्णे वत्साभिधाने वत्ससंज्ञया प्रसिद्धे गङ्गादक्षिणभागस्थिते जनपदे देशे कृतपदः उपस्थितः चललक्ष्यवेधनचतुरः चञ्चलमृगादिलक्ष्यभेदननिपुणः चतुरः चतुस्संख्याकान् मृगान् निहत्य व्यापाद्य कुत्रचित् क्वापि वनस्पतिमूले वृक्षाधोदेशे निशामनैषीत् रात्रिं व्यतियापितवान् 'तूर्णम्' इत्युक्त्या सति विलम्बेऽन्यस्यापि सहगन्तुकामस्यौपस्थितिसम्भावना निराकृता। 'नीवृज्जनपदो देशविषयौ तूपवर्त्तनम्' इति कोषः 'वितीर्णसुरसरित्पूरः' इत्यस्य स्थाने 'निस्तीर्ण' इति पाठो हृद्यः।

पुनः रामचन्द्रने मन्त्री सुमन्त्रको लौटा देनेके बाद निषादराजको भी (तुम भी लौट जावो) यह कह कर शीघ्र ही गंगाको पारकर धान्यादिसे पूर्ण गंगाके दक्षिणभागमें स्थित 'वत्स' नामके देश में पदार्पण किया और चंचल मृगोंके वेधन करनेमें चतुर रामचन्द्रने चार मृगोंको मार कर किसी वृक्षके नीचे निवास कर रात्रिको व्यतीत किया।

अन्येद्युर्वन्येन पथा प्रयातास्ते [1]प्रयागे [2]प्रतायमानहोमधूमप्राग्भारं भारद्वा[3]जाश्रमं श्रयन्तश्चाभिवन्द्य तममन्दहर्षं [4]महर्षिमनेनादिष्टवर्त्मना वैकर्तनीपूरोपप्लवं प्लवेन वैणवेन निस्तीर्य शमधनजनसन्निधानशमित[5]शात्रवसकलसत्त्व[6]चरित्रविचित्रं[7] चित्रकूटाचलम[8]भजन्।

अन्येद्युरिति। अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिवसे वन्येन काननगतेन पथा मार्गेण प्रयाताः चलिताः ते सीतारामलक्ष्मणाः प्रयागे तदाख्ये स्थाने प्रतायमानः व्याप्नुवन् सर्वतः प्रसृमरः होमधूमस्य प्राग्भारः समूहो यत्र तादृशम् भारद्वाजाश्रमम् भरद्वाजाख्यमुनिनिवासदेशम् श्रयन्तः प्राप्नुवन्तः (ते) अमन्दहर्षम् जायमानप्रचुरप्रमोदम् तम्महर्षिम् भरद्वाजं नाम महामुनिम् अभिवन्द्य यथोचितविधिना प्रणम्य च अनेन भरद्वाजमुनिना आदिष्टवर्त्मना कथितेन मार्गेण वैकर्त्तनी यमुना तस्याः पूरः प्रवाह एव उपप्लवः मार्गप्रतिरोधकतया विघ्नः तम् वैणवेन वंशनिर्मितेन प्लवेन उडुपेन निस्तीर्य उत्तीर्य शमः शान्तिरेव धनम् सम्पत् येषाम्

---

१. 'प्रमाते' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रतीयमान''प्राग्द्वारं' इति पाठान्तरम्।
३. 'भारद्वाजाश्रममाश्रयन्तः' इति पाठान्तरम्। ४. 'महर्षिजनेन' इति पाठान्तरम्।
५. 'शात्रवसत्त्वचारित्रम्' इति पाठान्तरम्।
६. 'चरित्रं विचित्रम्' 'सत्त्वचारित्रं' इति पाठान्तरौ।
७. 'चित्रकूटमचलम्' इति पाठान्तरम्। ८. 'अभजन्त' इति पाठान्तरम्।

तादृशानाम् जनानाम् मुनीनां सन्निधानेन सहवासेन सततसाहचर्येण शमित-शात्रवाणि अपगतविरोधानि सकलसत्त्वानि सर्वे जीवा व्याघ्रमृगादयः तेषां चरितैः सह निर्विशङ्कभावावस्थानादिरूपैः विचित्रम् विस्मयावहम् चित्रकूटाचलम् तदा-ख्यया प्रथितं पर्वतम् अभजन् प्रापुः। परदिने वनमार्गेण चलित्वा होमधूमव्याप्तं भरद्वाजाश्रममागतास्ते रामसीतालक्ष्मणास्तत्राश्रमे भरद्वाजमभिवन्द्य भरद्वाजादि-ष्टेन मार्गेण यमुनातीरमायातास्तत्र वेणुप्लवेन तामुत्तीर्य च शान्तमुनिसहवासेन वैरं त्यक्त्वा सहवसद्भिर्विरोधिसत्त्वैर्दर्शकानां चेतसि विस्मयं जनयन्तं चित्रकूटं नाम गिरिं समायाता इत्यर्थः प्राग्भारशब्दः समूहार्थे रूढः इति बुधेन्द्रः। विक-र्त्तनः सूर्यस्तस्यापत्यं स्त्री वैकर्त्तनी यमुना। 'सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा' इति 'उडुपं तु प्लवः' इति चामरः।

दूसरे दिन जंगलकी राहसे वे सभी चलकर प्रयागमें वर्त्तमान होमधूमसे व्याप्त भर-द्वाजाश्रममें आये, वहाँ उनके आनेसे परमहृष्ट भरद्वाजको उन लोगोंने प्रणाम किया, और उनके बताये मार्गसे यमुनाके तट पर आकर बांसके बने बेड़ेसे यमुनाको पार करके उन्होंने शान्तिशील मुनियोंके साहचर्यसे विरोध छोड़कर रहते हुए विरोधि जन्तुओंके चरित्रसे लोगोंको आश्चर्यचकित करने वाले चित्रकूटको प्राप्त किया।

> अनुजरचितपर्णागारहृद्यासु माद्य-
> त्परभृत[1]गलचञ्चत्पञ्चमैर[2]ञ्चितासु।
> जनकदुहितृयोगाज्जातसाकेतसौख्य-
> श्चिरमरमत रामश्चित्रकूटस्थलीषु॥ ५२॥

अनुजेति। अनुजो लघुभ्राता लक्ष्मणः तेन रचितैः निर्मितैः पर्णागारैः पर्ण-शालाभिः हृद्यासु मनोहरासु अथ च माद्यत्परभृतानाम् मत्तकोकिलानाम् गलेभ्यः कण्ठेभ्यः चञ्चन्तः प्रसरन्तः प्रादुर्भवन्तः पञ्चमस्वरास्तैरञ्चितासु पूजितासु रमणीय-तातिशयं प्रापितासु इत्यर्थः चित्रकूटस्थलीषु चित्रकूटपर्वतस्थिताकृत्रिमभूमिषु जनकदुहितुः सीतायाः योगात् सङ्गमात् हेतोः जातसाकेतसौख्यः सम्पन्नायोध्याव-सजन्यानन्दः रामः चिरम् बहुकालपर्यन्तम् अरमत व्यहार्षीत्, लक्ष्मणनिर्मित-पर्णशालाशालितया वासयोग्यता, परभृतोदीरितपञ्चमस्वरयुक्ततया मनोहरत्वम्, प्रियासान्निध्याद्विहारभूमित्वेनोपयोगस्य सम्भावना, सर्वैरेभिश्च रामरतिप्रयोजक-ताऽऽवेदिता। 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिकः' 'पिकः कूजति पञ्चमम्' 'योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु' 'साकेतं स्यादयोध्यायां कोसलानन्दिनी तथा' इति सर्वत्र ते ते कोशाः। मालिनीवृत्तमेतत्, लक्षणमन्यत्रोक्तम्॥ ५२॥

१, 'कुलं' इति पाठान्तरम्। २. 'रञ्जितासु' इति पाठान्तरम्।

लक्ष्मण द्वारा बनाये गये उटजोंसे रमणीय तथा मतवाले कोकिलोंके कण्ठसे निकलने वाले पञ्चम स्वरसे मुखरित उस चित्रकूट पर्वतकी अकृत्रिम भूमिमें सीताके साथ रहनेसे अयोध्या सुखको प्राप्त करने वाले रामचन्द्रजीने बहुत दिनों तक विहार किया ॥ ५२ ॥

अथ मां वनवासनैर[1]स्यादपि [2]नाम रामः समाह्वयेदिति [3]प्रत्याशया परतन्त्रः सुमन्त्रः कानिचिदहानि गुहसकाशे नीत्वा निराशस्ततः प्रतिनिवृत्तो निवृत्तोत्सवामयोध्यामासाद्य [4]निर्दाशरथिरयं समागत इति शोकातिरेकातुरपौरजनजनितदीनाक्रन्दमन्दीभूतनेमि[5]घोषादवरुह्य रथाद्दशरथं प्रयाणोन्मुखप्राणम् प्राणंसीत् ।

अथेति। अथ रामे गङ्गामुत्तीर्य गते वनवासे क्लेशबहुले काननाधिकरणक निवासे वैरस्यात् अप्रीतेः अपि (अस्मदनुरोधस्य निष्फलत्वेऽपि कियन्त्यहानि वने स्थित्वा तत्रानुभूतेन क्लेशेन वनाद् विरक्तः सन्नपीत्यर्थः) नाम सम्भावनायाम् रामः माम् समाह्वयेत् आकारयेत् सहस्थित्यै रथोपस्थापनाय परावर्त्तनाय वाऽऽह्वयेदिति प्रत्याशया अभिलाषेण परतन्त्रः बद्धः सुमन्त्रः नाम मन्त्री गुहसकाशे निषादराजसविधे कानिचित् कतिपयानि अहानि दिनानि नीत्वा गमयित्वा ततः रामपरावर्त्तनविषयात् मनोरथात् रामकर्त्तृकस्वाह्वानाद्वा निराशः गताशः प्रति निवृत्तः परावृत्तः सन् गतोत्सवाम् निरानन्दाम् अयोध्याम् साकेतपुरीम् आसाद्य निर्दाशरथिः रामलक्ष्मणरहितः अयं सुमन्त्रः समागत इति हेतोः शोकातिरेकेण दुःखप्रकर्षेण आतुरैः पीडितैः पौरजनैः पुरवासिभिः जनितः कृतः यः दीनाक्रन्दः करुणविलापस्तेन मन्दीभूतः अन्तर्निहितः नेमिघोषः चक्रधाराशब्दो यस्य तादृशात् (रुदत्पौरजनचीत्कारान्तर्हितरथचक्रसञ्चरणशब्दादित्यर्थः) रथात् अवरुह्य अवतीर्य प्रयाणोन्मुखाः रामविरहस्यासह्यतया गन्तुकामाः प्राणा यस्य तं तथोक्तम् आसन्नमरणमित्यर्थः दशरथं प्राणंसीत् प्रणतवान् । 'नाम प्रकाश्य सम्भाव्यकुत्साभ्युपगमेषु च 'चक्रधाराप्रधिर्नेमिः' इत्युभयत्रामरः ।

इसके बाद सुमन्त्रने इस आशामें निषादराजके पास कुछ दिन बिताये कि कहीं राम को वनवास अच्छा न लगे और वे मुझे पुकारें, परन्तु सुमन्त्रकी यह आशा विफल हुई, वह अयोध्या लौट आये, उस समय अयोध्यामें निरानन्द छाया हुआ था, लोगोंने देखा कि सुमन्त्र रामलक्ष्मणके विना ही लौट आया है—बस, लगे शोक से आक्रन्द करने, उनके आक्रन्दशब्दमें रथके चक्केकी घड़घड़ाहट विलीन हो गई, सुमन्त्रने रथसे उतरकर आसन्नमृत्यु दशरथको प्रणाम किया ।

---

१. वैरस्यात्' इति पाठान्तरम् । २. 'नाम' नास्ति क्वचित् ।
३. 'प्रत्याशयो' इति पा० । ४. 'निर्दाशरथिः सारथिरिति शोकातिरेकात्पौर' इति पा० ।
५. 'नेमि' इति पाठान्तरम् ।

एतद्दर्शनेन विसंज्ञो दशरथः कौसल्यासुमित्राभ्यां समाश्वासितः कथं प्रयातं रामेण कथं कथितं मैथिल्या किंवृत्तः सौमित्रिरिति मुहुर्मुहुरश्रुकुण्ठित-कण्ठः सुमन्त्रमन्वयुङ्क्त।

एतदिति। एतद्दर्शनेन रामलक्ष्मणविहीनसुमन्त्रविलोकनेन विसंज्ञः रामस्मरणात् समुद्बुद्धमनोव्यथतया मूर्छितः कौसल्यासुमित्राभ्याम् स्वपत्नीभ्यां समाश्वासितः संज्ञां गमितः व्यजनवीजनपयः सेकादिना प्रत्यापन्नचेतनतां गमित इत्यर्थः दशरथो राजा कथम् केन प्रकारेण रामेण प्रयातम् गतम्? कथम् कथितम् सन्दिष्टम् मैथिल्या सीतया? किं वृत्तः, किमाचारः, कीदृगवस्थो वा सौमित्रिः लक्ष्मणः? इति एवम् अश्रुकुण्ठितकण्ठः बाष्परुद्धगलः दशरथः मुहुर्मुहुः भूयो भूयः सुमन्त्रम् अन्वयुङ्क्त पृष्टवान्। रामस्य सत्यसन्धतया गमनावश्यंभावाच्चकारप्रश्नः, सीतायाः कोमलहृदयतया श्वश्रूजनवशंवदतया च साऽवश्यं तासां समाश्वासनाय किमपि सन्दिशेदिति सम्भावनया तत्सन्देशप्रकारप्रश्नः, सौमित्रेः कोपनतया वीरतया च रामवनवासेन जायमानमनःक्लेशतया किमप्यत्याहितं कृतं स्यादिति तद्वृत्तप्रश्नः कृतो वेदितव्यः। 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः।

रामलक्ष्मणरहित सुमन्त्रको देखते ही दशरथ मूर्च्छित हो गये, कौसल्या और सुमित्राने उन्हें होश कराया, होशमें आने पर गद्गदकण्ठसे दशरथने सुमन्त्रसे वार वार यह प्रश्न किया कि राम कैसे गये? सीताने क्या कहा? और लक्ष्मणका क्या समाचार है?

सोऽपि राज्ञे व्यजिज्ञपत्।

सोऽपीति। सः सुमन्त्रः अपि राज्ञे दशरथाय वक्ष्यमाणप्रकारेण व्यजिज्ञपत् निवेदितवान्।

सुमन्त्रने भी दशरथसे इस प्रकार निवेदन किया।

देव, कथं ब्रवीमि, कठिनहृदयोऽहम्।

देवेति। हे देव, राजन्, कथम् केन प्रकारेण ब्रवीमि कथयामि, तद्वृत्तान्तस्य वक्तुमशक्यत्वात्केन प्रकारेण कथयामीति भावः। कठिनहृदयः कठोरचित्तः अहम्, तादृगवस्थाँस्तान् विहाय समागततया कुलिशकठोरचित्तेन मया किमुच्यतामिति भावः।

महाराज, मैं क्या कहूँ? मैं बड़ा कठोरहृदय हूँ (कि उन्हें वनमें छोड़कर लौट आया हूँ)।

सेवारसानुगतपौरमनोरथस्य
[1]दूरे रथस्य च सुतौ तव वर्तमानौ।

१. 'पारे' इति पाठान्तरम्।

भूत्वा विदेहदुहितुर्नवसौविदल्लौ
भागीरथीतटवने पथिकावभूताम् ॥ ५३ ॥

सेवारसेति । सेवारसेन परिचरणाभिलाषेण अनुगताः अनुयाता ये पौराः पुरवासिजनाः तेषाम् मनोरथस्य सहचलनरूपाभिलाषस्य रथस्य मया चाल्यमानस्य यानस्य च दूरे विप्रकृष्टदेशे वर्त्तमानौ स्थितौ तव सुतौ रामलक्ष्मणौ (सुतपौरजनपरित्यागेन तन्मनोरथदूरवर्त्तिता, रथस्यागृह्य परावर्त्तनाच्च रथादपि दूरवर्त्तिता बोध्या) विदेहदुहितुः सीतायाः नवसौविदल्लौ नूतनकञ्चुकिनौ भूत्वा (सीतारक्षणतत्परौ सन्तावित्यर्थः) भागीरथीतटवने गङ्गातीरवर्त्तिनि कानने पथिकौ पादचारेण गच्छन्तौ अभूताम् अजनिषाताम् । अनुगच्छतां पौराणां त्यागं कृत्वा रथं च परावर्त्य सीताया रक्षणे बद्धभावौ तौ तव पुत्रौ गङ्गातीरवर्त्तिवनमविशतामित्याशयः । अत्र पूर्वार्धे मनोरथरथयोर्दूरीकृतत्वरूपैकधर्मसम्बन्धात्केवलप्रकृतगोचरा तुल्ययोगिता, उत्तरार्धे सौविदल्लत्वोत्प्रेक्षेति संसृष्टिरलङ्कारयोः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५३ ॥

सेवाके लिये प्रेमपूर्वक साथ चलते हुए पुरवासियोंके मनोरथ तथा हमारे रथको दूर छोड़कर आपके पुत्रोंने सीताके सौविदल्ल–कञ्चुकी का नवीन रूप धारण करके पैदल गङ्गातीरवर्त्ती वनमें चले गये ॥ ५३ ॥

किञ्च[1]—

देव त्वत्तनयस्य कुन्तलभरं क्षीरैः स्वधेनूद्भवैः
सेक्तुं नालमरुन्धतीपतिरभूत्तस्याभिषेकोत्सवे ।
सिक्तो हन्त स एष मैथिलसुतावाष्पोदकोत्पादकै-
र्न्यग्रोधक्षरितैर्जटां रचयितुं क्षीरैर्निषादाहृतैः ॥ ५४ ॥

किञ्च–देवेति । हे देव, राजन् , अरुन्धतीपतिः वसिष्ठः अभिषेकोत्सवे राज्याभिषेकरूपे उत्सवे स्वधेनूद्भवैः कामधेनुप्रभूतैः क्षीरैः दुग्धैः त्वत्तनयस्य रामस्य कुन्तलभरम् कचकलापम् सेक्तुम् आर्द्रतां गमयितुम् न अलम् शक्तः अभूत् अजायत, तव पुत्रस्य यं केशपाशमभिषेकसमये वसिष्ठः स्वधेनुपयसा सेक्तुञ्च शक्तो जातः यस्याभिषेकः क्रियमाण एव प्रतिबद्ध इत्यर्थः, स एषः तव पुत्रस्य कुन्तलभरः जटां रचयितुम् विधातुम् निषादाहृतैः गुहानीतैः मैथिलसुतावाष्पोदकोत्पादकैः सीताया नयनयोरश्रुप्रवाहं प्रवर्त्तयद्भिः न्यग्रोधक्षरितैः वटवृक्षसम्भवैः क्षीरैः वटदुग्धैः सिक्तः, येषु तव पुत्रस्य केशेषु वसिष्ठकर्त्तृको धेनुपयः करणकश्च सेकोऽभिषेकाङ्गतया सम्भाव्यमान आसीत्तेष्वेव केशेषु गुहानीतैः सीतानयनं साश्रुकुर्वद्भिश्च

१. 'किन्तु' इति पाठान्तरम् ।

वटवृत्तदुग्धैर्जटाविरच्यन्त इति अहो विषमा दैवस्य गतिरिति भावः। शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५४ ॥

आपके कुमारोंके जिन केशों पर भगवान् अरुन्धतीपति अभिषेककालमें अपनी धेनुके दूधसे सेक नहीं कर सके, (जिनका अभिषेक होते २ रुक गया) उन्हीं केशों का सेक वटवृक्षके दुग्धसे जटा बांधनेके समय किया गया, वह वटवृक्षक्षीर निषादराज द्वारा लाया गया, तथा उस दुग्धको देखते ही सीताजी रोने लगीं ॥ ५४ ॥

तस्या विदेहदुहितुः पदयोर्नखेषु
लाक्षां विनाप्यरुणिमा सहसा बभूव ।
वन्ये पथि प्रियतमेन सह व्रजन्त्या
वैवर्ण्यमाविरभवन्न कदापि वक्त्रे ॥ ५५ ॥

तस्या इति । वन्ये पथि काननमार्गे प्रियतमेन प्रेयसा रामेण सह साकम् व्रजन्त्याः गच्छन्त्याः तस्याः विदेहदुहितुः जनकतनयायाः सीतायाः पादयोर्नखेषु चरणयोर्नखेषु लाक्षाम् विनाऽपि अलक्तकद्रवकृतलेपाभावेऽपि अरुणिमा रक्तत्वं सहसा अविलम्बेन आविरासीत्, (किन्तु) कदापि कुत्रापि समये वक्त्रे मुखे वैवर्ण्यं मालिन्यम् न आविरभवत् न प्रकटी बभूव । राममनुगच्छन्त्याः सीतायाश्चरणावलक्तद्रवकृतरञ्जनाभावेऽपि रक्तिमानं (मार्गकाठिन्यकृतम्) सहसैवाभजतामथापि तन्मुखं नाम्लासीदिति भावः। अत्र लाक्षाद्रवलेपरूपकारणाभावेऽपि चरणयोरारूण्योदयस्य कार्यस्य कथनाद्विभावना, कान्तारसञ्चाररूपकारणसद्भावेऽपि वैवर्ण्यरूपकार्यानुत्पत्तेर्विशेषोक्तिश्च, तदनयोः परस्परनैरपेक्ष्यात् संसृष्टिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

अपने प्रियतम रामचन्द्रके साथ वनके मार्गपर चलती हुई सीताके चरणोंके नखोंमें लाक्षाके विना भी अलक्तकद्रवकृतलेपके अभावमें भी लाली पैदा हो गई, परन्तु उनके मुख पर उदासी नहीं प्रकट हुई ॥ ५५ ॥

सीतापतेः किसलयैः परिकल्प्य तल्पं
सञ्चार्य सत्त्वदमनाय निशासु दृष्टिम् ।
धन्वी तदङ्घ्रिभजनादिव पुण्यलभ्या-
दस्वप्न एव वनवर्त्मनि लक्ष्मणोऽभूत् ॥ ५६ ॥

सीतापतेरिति । धन्वी धृतधनुः लक्ष्मणः वनवर्त्मनि कान्तारमार्गे निशासु रात्रिषु सीतापतेः रामस्य किसलयैः पल्लवैः तल्पम् शय्याम् परिकल्प्य रचयित्वा सत्त्वदमनाय उपद्रावकप्राणिनिग्रहहेतवे दृष्टिम् दृशम् सञ्चार्य व्यापार्य पुण्यलभ्यात् सुकृतातिरेकप्राप्यात् इव तदङ्घ्रिभजनात् रामचरणध्यानात् अस्वप्नः ...

विदप्यस्वप्नः सार्वदिकस्वापसम्बन्धशून्यः एव अभूत्, कथमपि कदाचिदपि निद्रां नासेवतेति भावः। सीतारामौ सुखं शयातामिति हेतवे लक्ष्मणः पल्लवैस्तयोः शयनीयं कल्पयामास, शयानयोश्च तयोः सत्त्वानि विघ्नं मा कार्षुरिति तेषां निग्रहाय दिशासु दमनपरायणां स्वां दृशं प्रसार्य पुण्यप्राप्यं तच्चरणध्यानमिवाभ्यस्यन् वनवर्त्मनि लक्ष्मणः स्वापं नान्वभूदिति निर्गलितार्थः। 'सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः। पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ ५६ ॥

लक्ष्मण सीतापति रामचन्द्रजीके पत्तोंकी शय्या तैयार कर देते थे, और रातभर हिंसक प्राणियोंको निगृहीत करनेके लिये चारो ओर दृष्टि डाला करते थे, धनुपधारण करके बैठे रहते थे, तथा पुण्यलभ्य रामभजन किया करते थे, इसप्रकार वनमार्गमें सदा जगते ही रहे, लक्ष्मण कभी सोये नहीं ॥ ५६ ॥

एवं सुमन्त्रनिवेदितपुत्रचरित्रश्चरमगिरिशिखरजुषि निगमवपुषि ज्योतिषि हृदयलग्नशोकशल्यां कौसल्यां [1]समाश्वास्य नरपतिरित्थमकथयत्।

एवमिति। एवम् उक्तप्रकारेण सुमन्त्रनिवेदितपुत्रचरित्रः सुमन्त्राभिहितरामचरितः नरपतिः दशरथः निगमवपुषि वेदतनौ (त्रयीमये) ज्योतिषि सूर्ये चरमगिरिशिखरजुषि पश्चिमाचलचूडावलम्बिनि सति अस्तोन्मुखे जात इत्यर्थः, हृदयलग्नशोकशल्याम् चित्तसङ्क्रान्तपुत्रवियोगशङ्कुम् कौसल्याम् राममातरम् समाश्वास्य धैर्यप्रदानादिना सान्त्वयित्वा इत्थमकथयत् एवमुक्तवान् 'कौसल्याम्' इति शेषः।

इस प्रकार सुमन्त्र द्वारा रामचरित्रके कहे जाने पर राजा दशरथने वेदस्वरूप ज्योति सूर्यके अस्ताचल पर पहुँच जाने पर हृदयमें शोकरूप कीलसे आहत कौसल्याको सान्त्वनाप्रदान करके इस प्रकारसे कहा।

पुरा खलु सरयूरोधसि विविधतरुनिवहपिहितदिव[2]स्पतौ मृगयास्पृहया कमपि समयमगमयम्।

पुरेति। पुरा पूर्वसमये खलु इति वाक्यालङ्कारे, सरयूरोधसि सरयूतटे विविधैः नानाजातीयैः तरुनिवहैः वृक्षसमुदयैः पिहितः आच्छादितः दिवस्पतिः सूर्यो यत्र तादृशे (सरयूरोधसि) मृगयास्पृहया आखेटकामनया कमपि समयम् कियन्तं चित्कालम् अगमयम् व्यतियापितवान्। 'तरुनिवहपिहितदिवस्पतौ' इति विशेषणेन तस्य स्थानस्य निविडकाननावृततया मृगया स्थानतोक्ता।

पूर्व समयमें नानाप्रकारके वृक्षोंके समुदायसे सूर्यको आच्छादित करने वाले सरयूके तट पर मृगयाके लोभसे मैंने कुछ समय विताया था।

---

१. 'आश्वास्य' इति पा०। २. 'विवस्वति वेतस्वति मृगया इति पाठान्तरम्।

तोयादानस[1]नादपुष्करगजभ्रान्त्या तपस्वी मया
विद्धः कश्चन शब्दवेधनविदा पाथः [2]सरय्वां हरन्।
तत्पित्रोर्जरदन्धयोरनुमृतिं कर्तुं [3]चितिं चिन्वतोः
शापो मय्यपतद्भवानपि सुतप्रेम्णा प्रणश्येदिति ॥ ५७ ॥

तत्र–तोयादानेति। तत्र सरयूतटे, तोयादानेन जलग्रहणेन सनादम् सशब्दम् पुष्करम् शुण्डाग्रं यस्य तादृशो यो गजो हस्ती तद्भ्रान्त्या भ्रमेण (जलमाददानोऽत एव च शब्दायमानशुण्डाग्रो हस्ती अयमिति जातभ्रमेण मया) सरय्वाम् नद्याम् पाथः जलम् हरन् नयन् कश्चन (श्रवणनामा) कोऽपिचित् तपस्विपुत्रः शब्दवेधनविदा शब्दवेधिबाणप्रयोगकुशलेन मया विद्धः भिन्नः मारित इत्यर्थः। कश्चिच्छ्रवणनामा तपस्विपुत्र सरयूप्रवाहाज्जलं गृह्णाति स्म, तज्जलादानकाले जलनिमज्जद्घटशब्देन जलमाददतो गजस्य भ्रमो मम मनसि जनितः, तेन चाहं तं गजं संभाव्य शब्दपातिनमिषुं विसृज्य हतवानित्याशयः। जरदन्धयोः वृद्धयोर्नयनरहितयोश्च तत्पित्रोः हततपस्विसुतजनकयोः अनुमृतिं कर्त्तुम् मृतं पुत्रमनुगन्तुम् चितिं चिन्वतोः चितां प्रार्थयमानयोः 'भवान् मत्पुत्रहन्ता त्वम् अपि सुतप्रेम्णा पुत्रवियोगेन प्रणश्येत् म्रियेत इति शापः आक्रोशः मयि अपतत् निपतितः, यदहमधुना सुतवियोगेन विपद्ये, तन्मा व्यथिष्ठाः, अवश्यंभाविनोऽस्यार्थस्यापरिहार्यत्वादित्यर्थः। 'पुष्करं करि हस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले' इत्यमरः। उक्तञ्च–'दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्ते वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्' इत्यादि। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५७ ॥

सरयूके तट पर मैं शिकारकी टोहमें घूम रहा था, उसी समय सरयूके किनारे एक तपस्वी घड़ोंमें पानी भर रहे थे, घड़ोंके भरते समय जो शब्द हुआ उसने मुझे धोखेमें डाल दिया, मैंने समझा कि कोई हाथी जल ले रहा है जिसके शुण्डाग्रकी यह आवाज सुनाई पड़ रही है, बस, इसी भ्रमसे मैंने शब्दवेधी बाण चलाकर उस तपस्वी बालकको वेध दिया। उसके मर जानेसे दुःखी अन्धे तथा बूढ़े उसके माता पिताने चिता बना देनेकी प्रार्थना की क्योंकि वह दोनों अपने प्रियपुत्रका साथ देना चाहते थे, चिताके बन जाने पर उन अन्धवृद्धोंने मुझे शाप दिया था कि जिस प्रकार हम अपने पुत्रके वियोगमें मर रहे हैं उसी प्रकार तुम भी वृद्धावस्थामें अपने पुत्रके वियोगमें प्राण त्याग करोगे ॥ ५७ ॥

अहं वैश्यस्य शूद्रायां जातस्तस्मान्न संभवेत्।
ब्रह्महत्येति मामुक्त्वा स्वर्गतो दुर्गतो मुनिः ॥ ५८ ॥

---

१. 'निदान' इति पाठान्तरम्। २. 'सरय्वा हरन्' इति पाठान्तरम्।
३. 'चिताम्' इति पाठान्तरम्।

अहमिति। दुर्गतः मया प्रहृतेन बाणेन दुरवस्थां गमितः मुनिः तपस्वी-'अहम् त्वया निहन्यमानः शूद्रायाम् शूद्रजातिमत्यामङ्गनायाम् वैश्यस्य जातः पुत्रः, तस्मात् ब्रह्महत्या मयि हते ब्राह्मणवधकृतं पापम् न संभवेत् न जायेत तवेति माम् दशरथम् उक्त्वा अभिधाय स्वर्गतः स्वर्गं प्रयातः। शूद्रजात्यङ्गनायां वैश्यादुत्पन्नस्य करण' जातिता स्मृत्युक्ता—तदुक्तममरकोशे—'शूद्राविशोस्तु करणः' इति ॥५८॥

वह मुनि जिसे मैंने शब्दवेधी बाण से आहत किया था, मैं शूद्रजातिकी स्त्रीमें वैश्यका पुत्र होनेके कारण 'करण' जातिका हूं, हमारे मरनेसे आपको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी, ऐसा कहकर स्वर्गको चला गया ॥ ५८ ॥

तदवश्यं वश्य एवास्मि मृत्योरिति [1]स्मृतिपथगतराम एव विरराम।

तदिति। तत्तस्मात् मुनिवृद्धशापस्यावश्यं फलेग्रहित्वात् अवश्यम् निश्चितरूपेण मृत्योः वश्यः वशंगतः एव अस्मीति स्मृतिपथगतरामः रामं स्मरन् राजा दशरथः विरराम निर्वचनोऽवसन्नप्रायः अभूदिति।

मुनिका शाप कभी व्यर्थ नहीं जायेगा, मुझे अवश्य ही मौतके अधीन होना पड़ेगा, ऐसा कहकर और रामका स्मरण करके दशरथ विरत हो गये।

मुनिशापकृतोत्पत्तिर्विपत्तिर्निष्प्रतिक्रिया।
ततो दशरथायाशु दिदेश दशमीं दशाम्[2] ॥ ५९ ॥

मुनिशापेति। मुनिशापेन हतपुत्रकान्धमुनिकृताक्रोशेन कृता विहिता उत्पत्तिर्यस्याः सा तादृशी निष्प्रतिक्रिया अप्रतिकारा उपायान्तरैरपि वारयितुमशक्या विपत्तिः कष्टा दशा आशु शीघ्रम् दशरथाय दशमीम् मृत्युलक्षणाम् दशाम् अवस्थाम् दिदेश दत्तवती अव्यर्थमुनिशापवशेन दशरथः पञ्चत्वं प्रापदित्यर्थः। कामस्य दशसु दशासु चरमा दशमी दशा मृत्युस्तत एवात्र दशमी दशा मृत्युरेव विवक्षिता बोध्या ॥ ५९ ॥

अन्धमुनिके शापसे उत्पन्न तथा उपायान्तरसे अपरिहार्य उस विपत्तिने दशरथको दशमी दशा मृत्यु प्राप्त करादी, मुनिशापके अव्यर्थ होनेके कारण दशरथका प्राणान्त हो गया ॥

[3]नाक्रान्तस्त्रिदिवः परैः सुमनसां कान्ता न वन्दीकृता
नाकीर्णं पुरुहूतशासनधरैः साकेतबाह्याङ्गणम्।
[4]नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ
नाकं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन्वाहने ॥ ६० ॥

१. 'नरपतिः श्रुतिमार्गंगत' इति पा०। २. एतदनन्तरम् 'किं बहुना' इति क्वचित्।
३. 'नाक्रान्तं त्रिदिवम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'नादिष्टं' इति पाठान्तरम्।

नाक्रान्त इति। (यद्यपि) त्रिदिवः स्वर्गः परैः शत्रुभिः न आक्रान्तः न आक्र-न्दितः, सुमनसाम् देवानाम् क्रान्ताः वनिताः न वन्दीकृताः नोपगृहीताः, न पुरुहूतशासनधरैः इन्द्राज्ञावाहकैः साकेतबाह्याङ्गणम् अयोध्यापुर्याश्चत्वरम् न आकीर्णम् व्याप्तम्, भूतलपरित्राणाय पृथिवीपालनाय सचिवाः सुमन्त्रादयः मन्त्रिप्र नादिष्टाः नाज्ञप्ताः (तथापि) शोकवशात् पुत्रवियोगकृतमनःखेदात् असौ दशरथ वाहने रथादौ आस्थाम् न वहन् अनादरपरायणः नाकम् स्वर्गम् अगात् गतवान्। पुरापि शत्रुभिः स्वर्गे आक्रम्यमाणे सति देवाङ्गनासु च तैरुपगृहीतासु सतीषु त द्वारायेन्द्रप्रेषितैः दूतैरयोध्यापुरप्राङ्गणे व्याप्ते सति स्वयं स्वर्गं गन्तुकामो दशरथ मन्त्रिणो भूतलपालनाय विधिवदादिश्य वाहनमारूढः प्रयाति स्म परमधुनातन तत्स्वर्गगतिः शोककृतत्वात् प्राक्तनस्वर्गगतितोऽतिविलक्षणेति भावः। 'सुमन पुष्पमालत्यो स्त्रीदेवबुधयोः पुमान्' इति वैजयन्तीकोशः। 'प्रग्रहोपग्रहौवन्द्याम् इत्यमरः। आकाशे त्रिदिवे नाकः' इति चामरः। शार्दूलविक्रीडितमेव वृत्तम् ॥६०॥

यद्यपि स्वर्गपर शत्रुओंका हमला नहीं हुआ, देवाङ्गनायें वन्दिनी नहीं बनाई ग इन्द्रका सन्देश लेकर आये हुए दूतोंसे अयोध्याका प्रांगण नहीं भरा, राजाने मन्त्रियोंके पृथ्वीकी रक्षाका भार भी नहीं सौंपा, तथापि पुत्रशोकवश सवारीकी ओर से भी उदा होकर यों ही स्वर्गको चले गये ॥ ६० ॥

अथ दशरथप्रशंसामांसलैः कैकेयीनिन्दाक्रन्दलितैः रामगुणकीर्तन [1]तद्द्विगुणितैरवरोधवधूजनपरिदेवनारवैर्मुखरितेषु दिङ्मुखेषु।

अथेति। अथ दशरथमृत्योः परतः दशरथप्रशंसामांसलैः दशरथस्य सत्यसन्ध स्वादिप्रकारकस्तुत्या सुन्दरैः, कैकेयीनिन्दया कन्दलितैः संभूतैः पापिष्ठयाऽनया राजा हत इति निन्दयोत्पन्नैरित्यर्थः। रामगुणकीर्त्तनेन रामस्य पितृभक्त्यादिगुण स्तुत्या द्विगुणितैः वृद्धिं गतैः अवरोधे अन्तःपुरे यो वधूजनः स्त्रीवर्गस्तस्य परिदे नारवैः विलापशब्दैः दिङ्मुखेषु दिगन्तरालेषु मुखरितेषु शब्दायमानेषु सत्सु राजनि मृते तदवरोधजने रामस्तुत्या कैकेयीनिन्दया राजप्रशंसया च समं सता शब्दं क्रन्दति सतीत्याशयः। 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः।

अनन्तर दशरथकी प्रशंसासे युक्त, कैकेयीकी निन्दासे उत्पन्न, तथा रामके गुणों द्विगुणित अन्तःपुरस्थित रानियोंके करुण विलापसे दिङ्मण्डलके गूँज उठने पर—

अभूदराजकम्लानसदृणं गगनाङ्गणम्।
आलोक्येव तदा शान्तमशेषं च महीतलम् ॥ ६१ ॥

---

१. 'तद्द्विगुणितैः इति पाठान्तरम्।

अभूदिति। अराजकम् न विद्यते राजा चन्द्रो यत्र तादृशम्, अत एव म्लान-सद्गुणम् तेजोहीननक्षत्रकुलम् गगनाङ्गणम् आकाशदेशम् आलोक्य दृष्ट्वा इव महीतलम् भूमण्डलम् अपि अराजकम् दशरथरूपनृपतिविरहितम्, अत एव म्लान-सद्गुणम् निष्प्रभसकलसज्जनम् अशेषम् सकलम् शान्तम् स्तिमितञ्च अभूत्। यथा चन्द्रे गते आकाशदेशो म्लानः प्रभाहीननक्षत्रसमुदयश्च भवति तद्वद्राजनिजातमृत्यौ सति महीतलमखिलमेव राजराहित्येन निष्प्रभसज्जनसमुदयं सत् स्तिमितमिवा-भूदिति भावः 'राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे' इत्यभिधानरत्नमाला। 'सत्क्षीवमृते सुजने' इति विश्वश्च ॥ ६१ ॥

जैसे चन्द्रमाके नहीं रहनेसे आकाश म्लान हो जाता तथा नक्षत्रगण निष्प्रभ हो जाते हैं उसी प्रकार राजाके मर जानेसे सारा संसार म्लान तथा सज्जनगण हतप्रभ हो उठे और समस्त महीतल उदास हो गया ॥ ६१ ॥

ततः प्रभाते वसिष्ठवचसा [1]सचिवास्तैलद्रोण्यां[2] निक्षिप्य क्षितिप-तेस्तनुं क्षिप्रमेव भरतमकथितदशर[3]थकथा एव आनयतेति दूतान्केकयेषु प्रेषयामासुः।

अथेति। अथ दशरथमृत्योः परतः वसिष्ठवचसा वसिष्ठादेशेन सचिवाः सुमन्त्रा-दयो मन्त्रिणः क्षितिपतेः दशरथस्य तनुम् शवम् तैलद्रोण्याम् तैलपूरितायाम् काष्ठाम्बुवाहिन्याम् नावि निक्षिप्य स्थापयित्वा क्षिप्रम् शीघ्रम् एव अकथितदश-रथकथाः अनुक्तदशरथमृत्युवृत्ताः एव भरतम् आनयत अयोध्यां प्रापयत इति दूतान् केकयेषु प्रेषयामासुः प्रजिध्युः। शवस्य तैलद्रोणीप्रक्षेपश्चोच्छूनत्वादिना भाविनो वैरूप्यस्य वारणार्थम्।

इसके बाद प्रातःकालमें वसिष्ठकी आज्ञासे मन्त्रियोंने राजाकी देहको तैलपूर्ण नावमें रख दिया और दशरथके समाचारकी सूचना विना दिये ही भरतको अयोध्या बुला लाओ ऐसा कह कर दूतोंको केकय भेजा।

तेऽपि जितपवनजवनवा[4]जिसंकोचितपथास्तुरगपतिपुरे [5]दुःस्वप्न-दूयमानमानसं भरतमभिवन्द्य गुरुनि[6]योगं व्यजिज्ञपन्।

तेऽपीति। ते दूताः अपि जितपवनाः वेगाधःकृतवायवः, जवनाः तीव्रगतयः ये वाजिन अश्वाः तैः सङ्कोचितपथाः अल्पीकृतमार्गदैर्घ्याः द्रुतलङ्घितदूरदेशा इत्यर्थः। तुरगपतेः अश्वपतेः नामकैकेयीपितुः पुरे नगरे दुःस्वप्नदूयमानमानसम्

---

१. 'सचिवा' इति नास्ति क्वचित्। २. 'नरपति निक्षिप्य क्षिप्रमेव' इति पा०।
३. 'रथमेव' इति पाठान्तरम्। ४. 'जवनहय' इति पाठान्तरम्।
५. 'दुःस्वप्नदूयमान' 'दुःस्वप्नदर्शनदूय' इति पा०। ६. 'निदेशम्' इति पाठान्तरम्।

दुःस्वप्नेन पितुर्दुरवस्थायाः स्वप्नकाले साक्षात्कारेण खिन्नहृदयम् भरतम् अभिवन्द्य प्रणम्य गुरुनियोगम् वसिष्ठादेशम् न्यजिज्ञपन् विज्ञापितवन्तः।

दूतोंने भी वायुको वेगमें मातकर देनेवाले अत एव शीघ्रगामी अश्वोंके प्रभावसे मार्गकी लम्बाईको दूर करके शीघ्र पहूँच कर अश्वपतिके नगरमें दुःस्वप्नदर्शनसे व्यथितहृदय भरतको प्रणाम कर वसिष्ठका आदेश सुना दिया।

सोऽयं मातामहेन युधाजिता चानुज्ञातः कतिपयैरेव दिनैरनिमित्त-[१]सम्पातेन सातङ्कः साकेतमाससाद।

सोऽयमिति। सोऽयं भरतः मातामहेन केकयराजेन अश्वपतिना युधाजिता मातुलेन च अनुज्ञातः गन्तुमनुमतः कतिपयैः कियद्भिः एव दिनैः (स्वल्पैरेव दिवसैः) अनिमित्तसम्पातेन अशकुनपरम्परया सातङ्कः सभयः साकेतम् अयोध्याम् आससाद प्राप्तवान्।

भरतने अपने मातामहसे तथा मामा युधाजितसे अनुमति प्राप्त करके कुछ ही दिनोंमें बार बार अशकुन होते रहनेसे भयभीत हृदय होकर अपनी पुरीमें प्रवेश किया।

अतिचकितमतिः पुरैव पश्यन्पुरमयथापुरचारपौरवर्गम्।
न्यविशत भरतः परीतदूतः [२]पितृभवनं पितृकाननादनूनम् ॥६२॥

अतिचकितेति। परीताः समन्ताद् वर्तमाना दूता यस्य स तथोक्तः यथापुरम् पूर्ववत्, तन्न भवति इति अयथापुरम् चारो व्यवहारो यस्य सः अयथापुरचारः तादृशः पौरवर्गो यत्र तादृशम् पूर्वव्यवहारविलक्षणव्यवहारशालिनगरवासिविशिष्टम् पश्यन् अवलोकयन् सः पुरैव पूर्वत एव अपशकुनदुःस्वप्नदर्शनादिना अतिचकितमतिः अत्यन्तभयसङ्क्रान्तबुद्धिः सन् [illegible]तः पितृकाननात् श्मशानस्थलात् अनूनम् अन्यूनम् श्मशानतुल्यम् (भूताक्र[illegible]तत्वेन निरानन्दत्वेन च श्मशानसादृश्यम्) पितृभवनम् स्वपितुर्दशरथस्य गृहम् न्यविशत प्रविष्टः। नगरवासिजनानां व्यवहारे प्राक्तनव्यवहारभेदमवलोकमानः पूर्वत एव चानिमित्तसम्पातादिना भीतहृदयो भरतो यथाकथञ्चिद्दशरथस्य भवनं प्रविष्टो यद्भवनं श्मशानमिव शून्यं भयकरं च प्रतीयते स्मेत्यर्थः। 'श्मशानं स्यात् पितृवनम्' इत्यमरः। पुष्पिताग्रावृत्तम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति लक्षणात् ॥ ६२ ॥

भरतजीने जब अयोध्यापुरीमें नागरिकोंके व्यवहार उनके प्राचीन व्यवहारसे विलक्षण देखे तो उनकी मति अतिभीत हो उठी, उनके पासमें साथ आनेवाले दूत विद्यमान थे वे श्मशानके सदृश शून्य तथा भूताक्रन्दयुक्त दशरथभवनमें प्रविष्ट हुए ॥ ६२ ॥

---

१. अनिमित्तसम्भूतस्वान्ताङ्कः' इति पा०। २. पितृकाननादनूने' इति पाठान्तरम्।

स पितरमनवेद्य तत्र मातुः सदनगतः प्रणिपत्य तामपृच्छत् ।
क नु मम गतवान्पितेति सैषा परुषतरं भरताय वाचमूचे ॥ ६३ ॥

सपितरमिति । स भरतस्तत्र दशरथभवने पितरम् दशरथम् अनवेद्य अदृष्ट्वा मातुः कैकेय्याः सदनं गृहं गतः ताम् मातरम् प्रणिपत्य प्रणम्य मम भरतस्य पिता दशरथः क्वनु गतवान् कुत्र गतः इति ताम् मातरम् अपृच्छत्, पृष्टवान्, सा एषा एवम्पृष्टा भरतस्य माता परुषतरम् अतिकठोरम् (यथा स्यात्तथा) भरताय ऊचे व्याहृतवती, पितृगृहं गतो भरतो यदा तत्र स्वं पितरं नालोकत तदा मातुरालयमासाद्य ताम्प्रणम्य च पिता क गत इति तामन्वयुङ्क्त, तथा पृष्टा च सा तं कठोरतरं वाक्यं वक्ष्यमाणलक्षणमभ्यधत्तेति भावः । वृत्तं पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

दशरथके भवनमें प्रवेश करके जब भरतजीने दशरथजीको वहाँ नहीं पाया, तब वह कैकेयी-माताके घर गये, उन्होंने पूछा कि पिताजी कहाँ गये ? इस प्रश्नके उत्तरमें कैकेयीने भरतसे अतिकठोर वचन कहा ॥ ६३ ॥

वनचर इव साकं मैथिलीलक्ष्मणाभ्यां
पितृविधिमभिरोद्धुं प्रस्थितो रामभद्रः ।
तदनु तव पिताभूत्कालधर्मानु[1]यात-
स्त्वमनुभव यथेच्छं निःसपत्नां धरित्रीम् ॥ ६४ ॥

वनचर इति । रामभद्रः रामः मैथिलीलक्ष्मणाभ्याम् सीतासौमित्रिभ्यां साकम् सह पितृविधिम् पितुर्दशरथस्य विधिम् आदेशम् (चतुर्दशवर्षाणि वनवासरूपम्) अभिरोद्धुम् यथावत् पालयितुम् वनचरः वनवासी मुनिः इव प्रस्थितः वनं गतः, तदनु तत्पश्चात् तव पिता कालधर्मानुयातः मृत्युं प्राप्तः अभूत् जातः, (इदानीं तयोरभावे) त्वम् निःसपत्नां निष्कण्टकाम् धरित्रीम् पृथ्वीम् (राज्यम्) यथेच्छम् यथारुचि अनुभव भुङ्क्ष्व रामो जनकाज्ञापालनाय मुनिवेषधरः सन् सीतासौमित्रिभ्यां सह काननं गतः, तव पिता च ततः पश्चान्मृतः, तदेवं न्यायोपनतस्ते राजभावः, तदनुभव यथेच्छं राज्यसुखमिति भावः मालिनीवृत्तम्, लक्षणं प्रागुक्तम् ॥

पिताके आदेशका पालन करनेके लिये मुनिवेषधारी सीता लक्ष्मणसहित राम वन गये, उसके बाद तुम्हारे पिता स्वर्गीय हो गये, अब तुम इस पृथ्वीका अकण्टक राज भोगो ॥

मयूरीव महानागं केकया केकयात्मजा ।
भारत्या भरतं चक्रे परिक्षुभितमानसम् ॥ ६५ ॥

मयूरीवेति । केकयात्मजा कैकेयीभारत्या रामवनगमनदशरथमरणाभिधायिन्या गिरा भरतम् मयूरी केकया स्ववाचा महानागम् इव सर्पम् इव परिक्षुभित-

---

१. 'अनुकूलः' इति पाठान्तरम् ।

मानसम् चलितहृदयञ्चक्रे विहितवती, यथा मयूर्याः केकां निशम्य ततो बिभेति सर्पस्तद्वत् भरतोऽपि कैकेय्या वाचं श्रुत्वाऽबिभेत्, सर्पस्य मयूर्या भयं मयूराणां भुजङ्गभोजतया बोध्यम्। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्' इत्यमरः॥६५॥

जिस प्रकारसे मयूरीकी केका सुनकर सांप काँप उठता है उसी प्रकारसे कैकेयीके पूर्वोक्त वात सुनकर भरत काँप उठे॥ ६५॥

तदनु भरतश्चिरतरं विलप्य विलुप्यमानविवेकः कैकेयीमकथयत्।

तदन्विति। तदनु कैकेयीवचनश्रवणानन्तरम् भरतः चिरतरम् बहुकालपर्यन्तम् विलप्य विलापं कृत्वा विलुप्यमानविवेकः गतकृत्याकृत्यबुद्धिः कर्तव्याकर्त्तव्यविचार-रहितो भूत्वेत्यर्थः। कैकेयीम् स्वमातरम् अकथयत् उक्तवान्। भरते विलुप्यमानवि-वेकविशेषणताया योजनात् तदुक्तीनाम् औचित्यशून्यत्वेऽपि क्षतिविरहो व्यञ्जितः।

इसके वाद बहुतकाल तक विलाप करते रहनेसे भरत कर्त्तव्याकर्तव्य विवेकशून्य हो गये तथा उन्होंने कैकेयीसे इस प्रकार कहा।

परिणतिपरुषाणां पाप्मनां सन्निपाता-
न्न हि भवसि चतुर्णां सा त्वमस्माकमम्बा।
तदिह तनयवत्यः संलपिष्यन्ति कामं
श्रुतिपुटरचितार्तेस्त्वां सवित्रीमकीर्तेः॥ ६६॥

परिणतिपरुषाणामिति। हे कैकेयि, परिणतिपरुषाणाम् पर्यन्तकठोराणाम् अति-दुरन्तानामित्यर्थः, पाप्मनाम् पापानाम् सन्निपातात् एकत्रीभावात् (त्वयि सम्भूयावस्थानात्) सा एतादृशकार्यकरी त्वम् चतुर्णाम् अस्माकम् अम्बा माता नहि भवसि न विद्यसे एतादृशकठोकार्यकारिणी स्त्री नास्माकं माता भवितुमर्हति, अतः त्वस्माकं माता नासीत्यर्थः। तत् तस्मात् कारणात् इह अस्मिन् लोके तनयवत्यः अन्या पुत्रसनाथाः स्त्रियः श्रुतिपुटरचितार्त्तेः विहितकर्णकुहरव्यथायाः अकीर्तेः अयशसः त्वाम् सवित्रीम् जननीम् कामम् यथेच्छं संलपिष्यन्ति। [पर्यन्त-कठोरनानाविधपापानां त्वयि समुदायभावेन स्थितेः त्वमस्माकं चतुर्णामपि भ्रातॄणां माता नासि, किञ्च संसारे यावत्यः पुत्रवत्यः स्त्रियः सन्ति तास्त्वेमां लोकश्रो-योर्व्यथां सृजन्तीमकीर्त्तिं परस्परालापप्रसङ्गे मुहुरावर्त्तयिष्यन्ति, तदिमां तव धिगिति भावः। 'अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा' इत्यमरः। मालिनीवृत्तम्॥ ६६॥

परिणाममें भयङ्कर फल देनेवाले पापोंके समुदायसे भरी होनेके कारण तुम कैकेयी निश्चय ही हम चारों भाइयोंकी माता न हों, (इस तुम्हारे गर्हित आचरणके कारण संसारकी समस्त पुत्रवती स्त्रियाँ कानोंको व्यथा प्रदान करनेवाली इस दुष्कीर्तिकी जननी तुम्हें कहा करेगीं॥ ६६॥

तदनु तन्मुखादाकृष्टदृष्टिरनुजमिदमवादीत् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात् तन्मुखात् कैकेयीवदनात् आकृष्टदृष्टिः अन्यत्रनीतनयनः तन्मुखविमुखः (पापिन्यास्तस्या मुखस्य द्रष्टुमयोग्यत्वेन ततोऽन्यत्र बद्धदृष्टिरित्यर्थः) इदं भरतविशेषणम् । अनुजम् शत्रुघ्नम् इदम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् ।

इसके बाद भरतने अपनी मांके मुखकी ओरसे आँखें फेरकर शत्रुघ्नसे कहा ।

[1]अविरलमिनवंशं दग्धुमाश्रित्य तापं
जनमनसि किरन्त्यां हन्त सत्यां भवत्याम् ।
अनुसवनमपापैर्देवता पूज्यमाना
वहति कथमिदानीमाश्रयाशाभिधानम् ॥ ६७ ॥

अविरलमिति । अविरलम् समृद्धम् (बहुलजनयुतम् , पुत्रपौत्रादिसम्पन्नपरिवारम्) इनवंशम् सूर्यकुलम् दग्धुम् भस्मसात्कर्त्तुम् आश्रित्य स्वसम्बन्धेन योजयित्वा (आत्मानं तत्र वंशे नीत्वा) जनमनसि लोकानां चित्ते तापम् खेदं किरन्त्यां ददत्यां भवत्याम् पूज्यमानायामस्यां कैकेय्याम् सत्यां विद्यमानायाम् , हन्तेति खेदे, अपापैः धार्मिकैः अनुसवनम् यज्ञावसरे पूज्यमाना सादरमाराध्यमाना (वह्निलक्षणा) देवता इदानीम् आश्रयाशाभिधानम् आश्रयाशपदप्रतिपाद्यताम् कथं वहति धारयति । अयमाशयः—पूर्वमाश्रयाशपदप्रतिपाद्यो वह्निरेव भवति स्म, तस्यैव स्वाश्रयतृणकाष्ठादिदाहकत्वस्वाभाव्यात् , परमिदानीं तु कैकेयी स्वेनाश्रीयमाणं सूर्यवंशमेव दाहयन्ती तत्तापेन लोकानां चेतसि व्यथयति, तदपहृतं वह्नेराश्रयाशपदवाच्यत्वम् , तस्यानन्यसाधारण्याभावादिति भावः । (वह्निरपि वंशे प्रकटयति तापं किरति च) स वनेष्वनुसवनम् , विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । 'आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः' । वृत्तं पूर्वमुक्तम् ॥ ६७ ॥

इस घन-समृद्ध सूर्यवंशको दग्ध करनेके लिये ही अपना सम्बन्ध इस वंशके साथ कायम करके (आज अपने इस आचरणसे) लोगोंके हृदयमें सन्ताप प्रदान करने वाली इन देवीजीके वर्त्तमान रहते यज्ञोंमें धर्मात्मा यजमानों द्वारा पूजी जाने वाली आग—अब किस प्रकार अपनेको आश्रयाशापदसे ख्यात कर सकेगी (अब तो केवल वही अपने आश्रयका नाश नहीं करती है कि उसका नाम आश्रयाश होगा, अब तो कैकेयी भी अपने आश्रय सूर्यवंशको दग्ध करके आश्रयाश पदकी भागिनी हो रही है, इस अवस्थामें आगको ही आश्रयाश क्यों कहा जायगा, अब तो वह साधारण हो जानेके कारण विशेषण बन गया, संज्ञा शब्द नहीं रहा, संज्ञाशब्द तो असाधारण हो सकता है ॥ ६७ ॥

---

१. 'अविकलम्' इति पाठान्तरम् ।

अविरतकृ[1]षितान्तं वत्समालोक्य धेनो-
रपि [2]समजशतानां मातुरस्रं बभूव।
तदिह तनयशोकं सन्तरेदेकपुत्रा
कथय कथमिदानीं कोसलेन्द्रस्य पुत्री ॥ ६८ ॥

अविरतेति। अविरता अविश्रमा चिरकालानुवर्त्तिनी च या कृषिः कृषिकर्म (क्षेत्रकर्षणं हलचालनरूपम्) तेन तान्तम् क्लान्तम् वत्सम् आलोक्य समं जायन्ते ये ते समजाः पुत्रास्तेषां शतस्य पुत्राणां शतस्य मातुः धेनोः गोरपि अस्रम् रुदितम् बभूव प्रकटीबभूव, (यस्या गोः शतं पुत्राः साऽपि स्वतनयेष्वेकं वत्सं चिरकृषिक्लान्तमालोक्य रोदिति, तिरश्चामपि दशेयं यत्ते स्वपुत्रकष्टं सत्स्वपि पुत्रेषु बहुषु न सहन्ते तदा) तत् तदा इह अस्याम् अवस्थायाम् एकपुत्रा पुत्रान्तरविरहिता राममात्रेण पुत्रिणी कोसलेन्द्रस्य पुत्री कौसल्या इदानीम् (भर्त्तरि विपद्यमाने पुत्रे च वनवासिनि) तनयशोकम् पुत्रविरहकृतं कष्टम् कथं केन प्रकारेण सन्तरेत् उत्तरेत् इति कथय। अशक्यं तस्याः शोकसन्तरणमिति भावः। यस्या धेनोः शतं पुत्राः सा यदि वत्सस्यैकस्य कष्टदर्शनमात्रेण रोदिति, सत्यपि तिर्यग्जातित्वे, तदा नृपवंश्यत्वेन कोमलभावा (सहैव पतिविपत्त्या) समापतितं तनयस्यैकमात्रस्य वनवासं कथं सन्तरेदिति कथयेति भावः। 'वत्सोना कुटजे वर्षे तर्णके तनयादिके' इति विश्वः। कस्याश्चिद्गोः स्ववत्सकष्टासहत्वे कोसलराजपुत्र्याः स्वपुत्रक्लेशासहतायाः अर्थापन्नत्वेनार्थापत्तिरलङ्कारः ॥ ६८ ॥

सौ बछड़ों की मां होने पर भी धेनु अपने एक बछड़ेको देर तक एकभावसे हलमें जुतते देख कर रो देती है, तब तुम्हीं बताओं कि कोसलन्द्रपुत्री कौसल्या जिसके एक ही पुत्र हैं, किस प्रकार इस पुत्रविरह क्लेशको पार कर सकेगी ? ॥ ६८ ॥

अपिबदियममन्त्रे कालयोगान्नरेन्द्रे
वरयुगरसनाभ्यां प्राणवायुम् तदीयम्।
अपनगरममुष्या वर्तनं युक्तरूपं
पितृवनवसुमत्यां क्वापि वल्मीकवत्याम् ॥ ६९ ॥

अपिबदिति। इयं कैकेयी (भुजगी च प्रतीयते) नरेन्द्रे राज्ञि दशरथे (विषवैद्ये च) कालयोगात् भवितव्यतावशात् अमन्त्रे मन्त्रणारहिते उपायचिन्ताविकले (भुजगविषशमकमन्त्रविस्मृतिशालिनि च) तदीयम् (राजसम्बन्धिनं विषवैद्यसम्बन्धिनं च) प्राणवायुम् वरयुगम् वरप्रदानद्वयमेव रसने जिह्वे ताभ्याम् अपि-

1. 'तृषितार्तम्' इति पाठान्तरम्। 2. 'तनुज' इति पाठान्तरम्।

वत् पीतवती यथा कापि सर्पिणी कस्यापि कालवशाद्–विस्मृतमन्त्रस्य विषवैद्यस्य प्राणवायुं द्विजिह्वतया द्वाभ्यां रसनाभ्यां पिबति, तथैवेयं कैकेयी भवितव्यतावशात् अकृतोपायस्यास्य राज्ञः प्राणवायुं वरयुगेन प्रार्थ्यमानेन हृतवती, तदेवमस्याः सर्पिण्या अत्र नगरे वासस्य सर्वथाऽवाञ्छनीयत्वेन) अमुष्याः कैकेय्याः अपनगरम् नगराद् अयोध्यापुरात् बहिः बहिर्देशे वल्मीकवत्याम् वामलूरशालिशालिन्याम् पितृवनवसुमत्यां श्मशानभूमौ वर्त्तनं युक्तरूपम् स्थानमुचितम् । नगराद्बहिरप-नगरम्, 'अपपरिवहिरञ्चवः पञ्चम्या' इति समासः। 'नरेन्द्रो वार्त्तिके राज्ञि विष-वैद्ये च कथ्यते' 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्' इत्युभयत्रामरः। अत्र पूर्वार्द्धवाक्यार्थस्योत्तरार्धवाक्यार्थं प्रति कारणतया वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम-लङ्कारः ॥ ६९ ॥

कालवशात् राजा उपाय चिन्तासे रहित हो गये, बस, कैकेयीने अपने दोनों वररूपी जीभसे उनकी प्राण वायुको पी गई—जैसे भवितव्यतावश किसी विषवैद्यको विषवेगशमक मन्त्र भूल जाने पर उसे सर्पिणी काट खाती है। अतः इस कैकेयीको नगरके बाहर किसी दीवारके भीड़से युक्त श्मशानभूमिमें रहना चाहिये, (क्योंकि सांपके रहने योग्य स्थान वही है) ॥ ५९ ॥

एषा निकृष्टमतिरात्मगुणोचितेषु
वंशेषु सत्सु बहुधा पिशिताशनानाम्।
माकन्दशालिनि वने विषवल्लरीव
हा हन्त केकयकुले कथमाविरासीत् ॥ ७० ॥

एषेति। निकृष्टमतिः नीचबुद्धिः एषा कैकेयी आत्मगुणोचितेषु स्वगुणेन जन्म-योग्येषु पिशिताशनानाम् राक्षसानाम् बहुधा अनेकशः वंशेषु कुलेषु सत्सु विद्य-मानेषु माकन्दशालिनि चूतवृक्षयुते वने उद्याने विषवल्लरी विषप्रदलता इव केकय-कुले कथं केन प्रकारेण आविरासीत् अजनि कैकेय्याः गुणाः अस्या राक्षसवंशे जन्मन औचित्यं समर्थयन्ते, सन्ति चानेके तद्वंशास्तत् कथमियं क्रूरकर्मा राक्षसानां वंशे न जनुरग्रहीत्, अस्याः केकयकुले जन्म तु माकन्दवृक्षोपेतोद्याने विषवल्लर्या जन्मनः सादृश्यमुपैतीति भावः। उपमालङ्कारः, वसन्ततिलकम् वृत्तम् ॥ ७० ॥

नीच बुद्धिवाली यह कैकेयी अपने गुणके उपयुक्त अनेक राक्षसवंशोंके विद्यमान रहने पर भी आम्र वृक्षोंसे युक्त उद्यानमें विषलताकी तरह इस केकयकुलमें किस प्रकार उत्पन्न हो गई ? ॥ ७० ॥

जननीतिविहीना मे जननीति स धर्मवित्।
निरयान्निरयाद्धीरो निरयादिव सानुजः ॥ ७१ ॥

जननीतीति। वीरः उदात्तचित्तः स धर्मवित् धर्मज्ञो भरतः मे मम भरतस्य जननी माता कैकेयी जननीति विहीना लोकमर्यादारहिता इति हेतोः (तस्याः समीपेऽवस्थानस्य तां प्रति किञ्चिन्निवेदनस्य चारण्यरुदितकल्पतया) निरयात् नरकात् इव (तस्याः कैकेय्याः) निरयात् (निलयात्—रलयोरभेदेन), गृहात् सानुजः सशत्रुघ्नः निरयात् निर्गतः। 'स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्' इत्यमरः ॥ ७१ ॥

वीर तथा धर्मज्ञ भरतने देखा कि हमारी माता कैकेयी लोकलज्जारहित है, इसे कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। अतः शत्रुघ्नके साथ नरकके समान कैकेयीके घरसे वह बाहर निकल आये ॥ ७१ ॥

तत्र[1] सामात्यः [2]समुपेत्य पत्युश्चि[3]ताधिरोहणमभिलषन्तीं कौसल्यां भरतः शपथशतैर्निवार्य वसिष्ठा[4]दिष्टेन पथा दशरथाय सदा[5] यागशीलाय यायजूकाभिप्रेतं प्रेतकृत्यम[6]करोत्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये सामात्यः मन्त्रिणा सुमन्त्रेण सहितः भरतः पत्युः स्वामिनो दशरथस्य चिताऽधिरोहणम् अनुगमनम् (तेन सह वह्निप्रवेशम्) अभिलषन्तीम् कामयमानाम् कौसल्याम् शपथशतैः अनेकप्रकारैः शपथैः निवार्य अवरुध्य (अनुगमननिश्चयाद् वारयित्वा) वसिष्ठादिष्टेन वसिष्ठकथितेन पथा प्रकारेण सदा यागशीलाय सततं यज्ञवृत्तये दशरथाय यायजूकाभिप्रेतम् यायजूकः अश्वमेधादियज्ञकर्त्ता तदभिमतं प्रेतकृत्यम् दाहादिमृतकसंस्कारम् अकरोत्।

उस समय मन्त्रियोंको साथ लेकर भरत कौसल्याके पास पहुँचे और दशरथके साथ चितामें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवाली कौसल्याको चिता-प्रवेशसे सैकड़ों शपथ द्वारा रोका और वसिष्ठ द्वारा बताये गये प्रकारसे सतत यज्ञपरायण दशरथका याज्ञिकोपयुक्त प्रेतकर्म सम्पादित किया।

तातै पितृवनं याते यातुं भ्रातृवनं तथा।
भरतः प्रार्थयामास प्राञ्जलिः प्रकृतीः कृती ॥ ७२ ॥

तात इति। कृती कृतपितृप्रेतकृत्यतया कृतार्थः भरतः ताते पितरि दशरथे पितृवनं श्मशानं याते, तथा तेन प्रकारेण (येन प्राकारेग रामो गतः) भ्रातृवनं भ्रात्रा रामेणाध्युषितं काननं यातुम् प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः सन् प्रकृतीः प्रजाः

---

१. 'ततः' इति पाठान्तरम्। २. 'समुपेत्य' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'चितारोहणम' इति पाठान्तरम्। ४. 'अधिष्ठितेन' इति पाठान्तरम्।
५. 'सदा यागशीलाय' इति नास्ति क्वचित्। ६. 'प्रेतकृत्यमशेषम्' इति पाठान्तरम्।

प्रार्थयामास। कृतपितृप्रेतकृत्यो भरतः कृताञ्जलिः सन् प्रजा रामाधिष्ठितवनं चलितुमाजुहावेत्यर्थः ॥ ७२ ॥

पिताके परलोकवासी हो जाने पर उन्हें श्मशान पहुँचाकर भरतने हाथ जोड़ कर प्रजाओंसे रामद्वारा अधिष्ठित वनको चलनेका अनुरोध किया ॥ ७२ ॥

अथ[1] ताभ्यां सुमित्राकौसल्याभ्यामन्तःपुरजनेन च [2]साकमनुनीतो भरतो भवनमभजत।

अथेति। अथ रामाध्युषितवनगमनविचारप्रकाशनात्परतः अनुनीतः (वसिष्ठसुमन्त्रादिः) प्रार्थितः भरतः कौसल्यासुमित्राभ्याम् मातृभ्याम् अन्तःपुरजनेन राजावरोधवनितावर्गेण च साकं सह भवनम् प्रासादम् अभजत प्राप्तः।

इसके बाद वसिष्ठ आदिके द्वारा अनुनीत भरत कौसल्या, सुमित्रा तथा अन्यान्य अन्तःपुरवासी परिवारके साथ राजभवनमें गये।

अथ यथाविधिविहितौर्ध्वदैहिकं गमितचतुर्दशदिवसं दिवसकरकुलहितेन[3] पुरोहितेन नगरवृद्धैः सार्धममात्याः समुपेत्य [4]मुकुटस्य भरणाय प्रार्थयामासुः।

अथेति। अथ गृहगमनानन्तरम् यथाविधि शास्त्रानुसारेण विहितौर्ध्वदैहिकम् कृतपरलोकक्रियम् गमितचतुर्दशदिवसम् ।व्यतियापिततावत्सङ्ख्यकदिवसम् (भरतम्) दिवसकरकुलपुरोहितेन सूर्यवंशपुरोधसा वसिष्ठेन नगरवृद्धैः पुरवासिवृद्धैश्च सार्धम् अमात्याः मन्त्रिणः समुपेत्य मुकुटस्य राजधार्यशिरोभूषणविशेषस्य भरणाय धारणाय (राज्यभारस्वीकाराय) प्रार्थयामासुः प्रार्थनां कृतवन्तः। ऊर्ध्वदेहोद्भवम्–और्ध्वदैहिकम्–मरणात्परतः कृत्यम्–श्राद्धम्, ऊर्ध्वदेहाच्च' इति ठक्, अनुशतकादेराकृतिगणत्वादुभयपदवृद्धिः। 'गमितचतुर्दशदिवसम्' इत्यस्य व्याख्यायां बुधेन्द्रा व्यर्थमेवाकाण्डताण्डवं कुर्वते, 'शुद्ध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः' इति मनूक्त्या द्वादशदिनानि यावदशुद्धिः, ततस्त्रयोदशे आद्यश्राद्धं चतुर्दशे सपिण्डीकरणादि चेति चतुर्दशदिवसव्यतियापनस्य श्राद्धाङ्गत्वात्। यत्तु तेन 'क्षत्रियस्य षोडशाहानि' इति स्मृतिरुद्धता, तत्प्रतिषेधाय च' क्षत्रियस्तु दशाहेन इत्यादिविशेषस्मृतिश्चोक्ता, तत्सर्वं तस्य भ्रमविजृम्भितमेव। अत्रोक्तं रामायणे— 'ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे। समेत्य रामकर्त्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन्'।

---

१. 'अथ' इति नास्ति क्वचित्। २. सह 'भरतः' इति पाठान्तरम्।

३. 'हितकरैर्नगरवृद्धैः' इति पाठान्तरम्।

४. 'मुकुटाभरणाय भरतं प्रार्थयामासुः' इति पाठान्तरम्।

इसके बाद भरतके द्वारा यथा-विधि श्राद्धक्रिया करके चौदह दिन बितानेके बाद मन्त्रिगणने सूर्यकुलपुरोहित वसिष्ठजी और गाँवके बड़े बूढ़ोंके साथ भरतके पास जाकर राज्यभार स्वीकार करनेकी प्रार्थना की।

ततस्तान्निर्बध्नतः सोऽयं प्रत्यवादीत्।

तत इति। ततः प्रार्थनायाः सद्यः स्वीकारेऽक्रियमाणे निर्बध्नतः राज्यभारग्रहण-चिह्नस्वरूपमुकुटधारणाय आग्रहातिशयं कुर्वतः तान् अमात्यान् सोऽयम् भरतः प्रत्यवादीत् आग्रहस्योत्तरस्वरूपेणोक्तवान्।

मुकुटधारण करनेके सम्बन्धमें मन्त्रियोंके द्वारा अत्याग्रह करने पर भरतने उन्हें कहा।

बहुभिरिह किमुक्तैस्त्यक्तसौमित्रि[1]वृत्ति-
मुकुटमपि[2] वहेयं युष्मदाज्ञा हि पूज्या।
मम परमवकाशः पर्णशालानुकूलः
क्वचिदपि विपुलायां नास्ति चेद्दण्डकायाम् ॥७३॥

बहुभिरिति। इह अस्मिन् मुकुटधारणस्य प्रसङ्गे बहुभिः नानाविधैः उक्तैः वचनैः किम्? किमपि फलं नास्तीत्यर्थः। उक्तशब्दे भावे क्तः। त्यक्ता परिहृता सौमित्रिवृत्तिः लक्ष्मणवद्रामानुगमनव्यापारो येन सः तादृशोऽहम् मुकुटम् अपि वहेयम् धारयेयम्, हि यतः युष्मदाज्ञा भवतामादेशः पूज्या सादरमङ्गीकर्त्तव्या, यदाहं लक्ष्मणवद्रामानुगमनं नाकृषि तदा भवदाज्ञामनुसृत्याहं मुकुटमपि धारयिष्यामि, नात्र विषये बहुव्याहारप्रयोजनं पश्यामि, किन्त्वेका मम तद्विषये भवति प्रार्थना, सा का? तत्राह—मम परमिति—परं किन्तु विपुलायाम् अतिविस्तृतायाम् दण्डकायाम् दण्डकारण्यभूमौ क्वचिदपि कुत्रापि तदेकदेशे मम पर्णशालाऽनुकूलः पर्णशाला-निर्माणपूर्वकवासयोग्यः अवकाशः नास्ति स्थानं न भवति चेत्। अयमर्थः—यदि विशालायां दण्डकाभूमौ कुत्रापि पर्णशालानिर्माणपूर्वकवासोपयोगिस्थानं मम न भविष्यति तदैव त्वदाग्रहं पालयिष्यामीति लक्ष्मणवत् रामसेवावसरलाभाभावेन हतजीवितोऽहं भवदाज्ञां पालयिष्यामि, परं सकृद्दण्डकावनवास।वसरलाभाय यत इत्याशयः॥ ७३॥

इस विषयमें बहुत कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, जब मैंने लक्ष्मणकी वृत्ति (रामानुगमन) छोड़ दी तो फिर मुझे आपकी आदरणीय आज्ञाका पालन करना ही है, (किन्तु एकबार यह देखलूं) कि मुझे विशाल दण्डकारण्यके किसी कोनेमें पर्णशाला बनाकर रहनेके लिये स्थान मिलता है या नहीं। यदि स्थान नहीं मिला तब तो मैं मुकुटधारण करूंगा ही, इसमें क्या सन्देह है॥ ८३॥

---

१. 'वृद्धि' इति पाठान्तरम्। २. 'अथ' इति पाठान्तरम्।

इत्युक्त्वा [1]श्रीरामसेवोत्सुकमना निश्चक्राम ।

इत्युक्त्वेति । इति पूर्वोक्तप्रकारेण उक्त्वा अभिधाय श्रीरामसेवोत्सुकमनाः रामआराधयितुं (सेवया समर्चयितुम्) व्यग्रचित्तः भरतः निश्चक्राम गृहाद्बहिर्बभूव ।

इस प्रकार कहकर रामकी सेवाके लिये व्यग्रहृदय भरतजी घरसे बाहर निकल पड़े ।

तत्र—

[2]अनुपधि रचयित्वा सत्पथे पांसुलत्वं
[3]सुजननयनसौख्यप्रातिकूल्यं च कृत्वा ।
नरपतिगृहमध्यात्तूर्णमुद्घूर्णमाना
कुटिलगतिरुदस्थान्मन्थरा नाम वात्या ॥ ७४ ॥

अनुपधीति । तत्र तस्मिन् समये, भरते राजभवनाद्बहिर्गच्छति सति अनुपधि अगूढम् प्रकटमित्यर्थः सत्पथे सतां वर्त्मनि पांसुलत्वं धूलिधूसरत्वं रचयित्वा (सज्जनमार्गं ज्येष्ठस्याधिकारप्राप्तं राज्यम् तदपहारेण कलङ्कयित्वा) सुजनानां सज्जनानां नयनसौख्यम् रामाभिषेकदर्शनमहोत्सवस्तस्य प्रातिकूल्यं विघ्नं च कृत्वा उत्पाद्य उद्घूर्णमाना गोलाकारेण भ्रमन्ती कुटिलगतिः वक्रगमना मन्थरानाम वात्या वातसंहतिः नरपतिगृहमध्यात् राजप्रासादमध्यभागात् तूर्णम् क्षिप्रम् उदस्थात् बहिर्निर्गतवती । वात्या वेगेनोद्ध्र्वमुत्तिष्ठति, गोलाकारेण भ्रमति, वक्रगमना च भवति, सा वर्त्मनि प्रकटभावेन धूलिं विकिरति, लोकानां नयनानि च सुखावलोकपदार्थप्रतिबन्धेन व्याकुलीकुरुते, तथाभूतेयं मन्थरानाम दासी सतां वर्त्म न्यायप्राप्तराज्यप्राप्तिरूपं (रामवनगमनप्रयोजकतया) कलङ्कितवती, लोकानां रामराज्याभिषेकदर्शनोद्भवसुखं प्रतिबद्धवती, इतस्ततः किं कुत्र भवतीति ज्ञानाय भ्रमति, कुब्जतया कुटिलगतिश्चेति श्लेषेण निर्व्यूढं साङ्गं रूपकमलङ्कारः । 'कपटोऽस्त्रीव्याजदम्भोपधयः' इत्यमरः ॥ ७४ ॥

उस समय सज्जनोचित मार्गको दूषित करके और सुजनोंके नेत्रानन्दमें विघ्न उत्पन्न करके (रामका न्यायप्राप्त राज्याभिषेक नहीं होने दिया यह सज्जनोचितमार्गको दूषित करना हुआ, और लोगोंको अभिषेक दर्शनजन्य आनन्दसे वञ्चित रखा, यही नेत्रानन्दमें विघ्नोत्पादन हुआ) चक्कर काटती हुई वक्रगतिशालिनी मन्थरा नामकी वात्या (आंधी) राजप्रासादसे बाहर निकली । (आंधी भी मार्गमें धूल भरती तथा लोगोंकी दृष्टिमें धूल डालकर देखनेमें प्रतिबन्ध पैदा करती ही है) ॥ ७४ ॥

---

१. 'राम' इति पाठान्तरम् । २. 'अनवधि' इति पाठान्तरम् ।
३. 'सुवन' इति पाठान्तरम् ।

केशहस्तं स्वहस्तेन गृहीत्वा तद्वधोद्यतम् ।
कौसल्या वारयामास क्रुद्धं रामानुजानुजम् ॥ ७५ ॥

केशहस्तमिति । ततः मन्थराया गृहान्निर्गमानन्तरम् क्रुद्धम् तद्दर्शनोद्दिप्तकोपम् स्वहस्तेन निजकरेण (मन्थरायाः) केशहस्तम् कचकलापम् गृहीत्वा तद्वधोद्यतम् मन्थरां हन्तुमुद्युञ्जानम् रामानुजो लक्ष्मणस्तस्यानुजम् कनीयांसं भ्रातरम् शत्रुघ्नम् कौसल्या राममाता वारयामास मा वधीरिति न्यषेधीत् राजभवनान्निर्गतां मन्थरां केशेष्वादाय तां हन्तुकामं शत्रुघ्नं दयालुस्वभावा कौसल्या किमनेन कृपणदासीप्राणहरणेनेति तद्वधाभिनिवेशान्निवारितवतीत्याशयः । 'पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः ॥ ७५ ॥

मन्थराका केश अपने हाथसे पकड़कर शत्रुघ्न उसे मारने पर उतारू हो गये, परन्तु कौसल्याने उनको उसे मारनेसे रोक दिया ॥ ७५ ॥

तत्र[1] सान्तःपुर एव पुरान्निर्गत्य शिल्पिवर्गसमीकृतसरणिर्भरतः पुरतः[2] प्रसृतनरगजरथतुरगचरणक्षुण्णक्षोणीतलसमुत्कीर्णेन रेणुनिकुरम्बेण जम्बालयन्नम्बरगङ्गां गङ्गां च सुमन्त्रभणितगुणनिवहगुहानुमत्या निस्तीर्य दूरादेवाश्रम[3]द्वारे निवेशितबलभारो भरद्वाजाभिवन्दनमकरोत् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये सान्तःपुरः कौसल्याद्यवरोधवधूजनसहितः एव भरतः पुरात् अयोध्यानगरात् निर्गत्य बहिर्भूय शिल्पिवर्गेण कारुनिवहेन समीकृता गर्तपाषाणगुल्माद्यपनयनेन सरलतां गमिता सरणिः मार्गः यस्य तादृशः पुरतः अग्रे प्रसृतानां चलितानां नरगजरथतुरगाणां मनुष्यकरियानाश्वानां चरणैः पादन्यासैः क्षुण्णं चूर्णितं मर्दितं यत् क्षोणीतलं पृथ्वीतलं ततः समुत्कीर्णेन उत्थितेन रेणुनिकुरम्बेण धूलिसमुदयेन अम्बरगङ्गां जम्बालयन् आकाशगङ्गायाः प्रवाहं पङ्किलतां लम्भयन्, सुमन्त्रेण स्वमन्त्रिणा भणितः कथितः गुणनिवहः सौजन्यादिगुणगणो यस्य तादृशस्य गुहस्य निषादराजस्य अनुमत्या सम्मत्या भरतोऽपि सम्मतिमादाय गङ्गां च निस्तीर्य उल्लङ्घ्य दूरादेव विप्रकृष्टदेश एव आश्रमद्वारे आश्रमस्य बहिर्देशे निवेशितबलभारः स्थापितसैन्यसमूहः भरद्वाजाभिवन्दनम् भरद्वाजनामकाय मुनये प्रणाममकरोत् । भरतं राममुद्दिश्य प्रयान्तं सर्वोऽप्ययं पुरवासिजनोऽनुजगाम, कारवः पुरः प्रचलिताः निम्नोन्नतां भूमिं समीचक्रुः, गमने कष्टाधिक्यं नानुभूयेत, तस्मिन् प्रयाते तत्पुरोगामिभिः पुरुषकरितुरगयानादिनिवहैः क्षुण्णाया धराया धूलिर्दिवि वितायमानस्तत्रवहन्त्याः आकाशगङ्गायाः

१. 'ततः' इति पाठान्तरम् । २. 'पुरतः' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'द्वारि' इति पाठान्तरम् ।

पयः कलुषीचकार, गङ्गातीरं गतश्च भरतो गुहस्य संमत्या गङ्गामुदतरत्, ततो भरद्वाजाश्रमं प्रपन्न आश्रमस्य द्वारे सेनाः स्थापयित्वा भरद्वाजं प्रणतवानित्यर्थः। 'निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः।

उस समय अन्तःपुरस्थ स्त्रीजनोंके साथ भरतजी गांवसे निकल पड़े, आगे आगे कारीगर लोग मार्गको सम बनाते जा रहे थे, आगे चलने वाले मनुष्य, हाथी, रथ तथा अश्वों द्वारा रौंदी गई पृथ्वीसे उड़ती हुई धूल आकाशगङ्गाके पानीको पङ्किल बना रही थी, भरतजी जब सब लोगोंके साथ गङ्गाके तट पर आये तब वहाँ पर उन्हें गुहसे भेंट हुई जिसके गुण उन्हें सुमन्त्रके कहनेसे ज्ञात थे, उसी गुहकी सम्मतिसे उन्होंने गङ्गा पार किया और दूरसे ही आश्रमके द्वार पर सेनाओंको रखकर भरद्वाज मुनिके पास जाकर उनकी वन्दना की।

सोऽयं प्रीतमना [1]मुनिर्भरद्वाजो भरतं जननीजनमपि प्रत्येकमालोक्य सेना[2]मप्याहूय यथोचितमातिथ्यमकुरुत।

सोऽयमिति। सोऽयं यो भरतेन प्रणतः सः मुनिः भरद्वाजः भरतस्य भद्रतामालोक्य प्रीतमनाः सन्तुष्टान्तरः सन् भरतं (तस्य) जननीजनम् मातृवर्गम् अपि प्रत्येकम् सर्वाः मातृः आलोक्य सेनाम् (भरतेनाश्रमोपप्लवभियाऽऽश्रमाद्बहिरवस्थापिताम्) अपि आहूय आश्रमे आगन्तुम् आदिश्य (सर्वेषाम्) यथोचितम् यथार्हम् आतिथ्यम् अतिथिसत्कारम् अकुरुत कृतवान्।

भरतको देख कर प्रसन्नचित्त भरद्वाज मुनिने भरतजी, उनकी मातायें सभीको एक एक करके अपनेसे देखकर तथा सेनाको आश्रमद्वार परसे आश्रममें बुलवाकर यथोचित सत्कार किया।

तथातिथ्यं चक्रे भरतबलभाजां तनुभृतां
भरद्वाजः सोऽयं भ्रुकुटिभट[3]कल्पाखिलसुरः।
तपस्तप्त्वा घोरं दिवि सुमनसस्तत्फलभुजो
यथा तेषां तोषं क्षणमभिलषेयुर्मुनिकृतम्॥ ७६॥

तथाऽऽतिथ्यमिति। भ्रुकुटया भ्रूविक्षेपमात्रेण (आज्ञया केवलया) भटकल्पाः भृत्युतुल्याः अखिलाः सुराः सकला देवा यस्य स तादृशः सोऽयं भरद्वाजः भरतबलभाजां भरतस्य चमूचराणाम् तथा तादृशम् आतिथ्यम् अतिथिसत्कारं चक्रे कृतवान् (अशनपानवसनादिसौविध्यं सम्पादितवान्) यथा घोरम् कष्टसाध्यं

---

१. 'मुनिर्भरतं तज्जननी' इति पाठान्तरम्। २. 'अस्याहूय' इति पाठान्तरम्।
३. 'कल्या' (वश्याः) इति पाठान्तरम्।

तपः सान्तपनादि तप्त्वा आचर्य सुमनसः देवाः सन्तः दिवि स्वर्गे तत्फलभुजः स्वतपस्याफलत्वेनोपनतानां सुखानां भोक्तारः सन्तोऽपि, मुनिकृतम् भरद्वाजविहितम् तेषाम् चमूचराणाम् तोषम् परितृप्तिम् क्षणं कियतः कालस्य कृते अभिलषेयुः कामयेरन् । आज्ञावशंवदसमस्तसुरो भरद्वाजो भरतचमूचराणां तादृशमातिथ्यं कल्पयामास यत्तेषामानन्दाय तीव्रतरतपस्याऽऽसादितदेवभावाः स्वर्गसुखमनुभवन्तोऽपि स्पृहयेयुरिति भावः । शिखरिणीवृत्तम्, 'रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी' इति लक्षणात् ॥ ७६ ॥

आज्ञावश हैं सभी देवगण जिसके ऐसे भरद्वाज मुनि भरतके सैनिकोंका ऐसा आतिथ्य सत्कार किया जिसके लिये अपनी कठोर तपस्यासे देवत्वको प्राप्त कर स्वर्ग सुखका भोग करने वाले भी कुछ देरके लिये चाह करें ॥ ७६ ॥

इति [1]तद्दिनं दिनशतकल्पं तत्र नीत्वा मुनेर्निदेशेन [2]सर्वे चित्रकूटवनोद्देशमविशन् ।

इतीति । इति एवं प्रकारेण दिनशतकल्पम् राममिलनव्यवधायकतया दुर्यापत्वेन दिवसशतायमानम् तद्दिनम् भरद्वाजाश्रमवासदिवसम् तत्र भरद्वाजाश्रमे नीत्वा गमयित्वा मुनेर्निदेशेन भरताज्ञया सर्वे भरतसहचारिणः चित्रकूटवनोद्देशम् चित्रकूटपर्वतवनभूमिम् अविशन् प्रविष्टाः चित्रकूटवनाभिमुखं प्राचलन्नित्यर्थः ।

इस तरह सौ दिनोंके बराबर उस दिनको वहाँ पर बिता कर भरद्वाजमुनिके आदेशसे सब लोग चित्रकूट वनकी ओर चले ।

तत्र संन्यस्तसैन्यस्तत इतो गुहेन सह राममन्विष्यन्हव्यगन्धिना गन्धवहेन [3]धूमगन्धेन च दूरादेव विभाव्यमानम् [4]चलमृगगणमहश्यरूपाभिर्वनदेवताभिरवकीर्यमाणबलिकुसुमम् [5]शेषपिशिताशनपिशाचोच्चाटनमन्त्रायमाणलक्ष्मणचापघोषश्रवणसमुचितसामीप्यप्रदेशं नूतनपरिकल्पितपर्णशालावास्तव्यवैखानसकुटुम्बि [6]निबिरीसभूभागमनोकहशाखावलम्बमानवल्ककलाजिनमम [7]र [8]तरु शाखापचितैरभिनवपल्लवभङ्गशबलैरम्बरचर[9]पतिपृतनागणकरकिसलयविमुक्तैर [10]विरलैः कुसुमनिकरैरभ्यर्च्यमानजानकी

१. 'दिनं दिन' इति पाठान्तरम् ।
२. 'सर्वेऽपि' इति पाठान्तरम् ।
३. 'होमधूमेन' इति पाठान्तरम् ।
४. 'अचपलमृग' इति पाठान्तरम् ।
५. 'अशेपित' इति पाठान्तरम् ।
६. 'नीनिबिडित' इति पाठान्तरम् ।
७. 'अमुं तरु' इति पाठान्तरम् ।
८. 'शाखारचितैः अम्बर' इति पाठान्तरम् ।
९. 'सेना' इति पाठान्तरम् ।
१०. 'इव नवपल्लवभङ्गशबलैः' इति पाठान्तरम् ।

निवासतरुमूलवेदिकमालक्ष्यमाणखड्गकार्मुकनिषङ्गमतिथिजनसपर्यापर्युत्सुकसौमित्रिसमाहृतकन्दमूलफलकल्पितैकदेशमविनाभूतजनकदुहितृचरणनलिनविन्यासमपहसित[1]साकेतरामणीयकं रामाश्रमं भरतः ससम्भ्रममभजत ।

तत्रेति । तत्र चित्रकूटवनप्रान्ते सन्यस्तसैन्यः अवस्थापितसेनासमुदयः भरतः गुहेन निषादराजेन सह तत इतः यत्र तत्र रामम् अन्विष्यन् गवेषयन् , हव्यगन्धिना हवनीयद्रव्यभूतागुरुचन्दनादिकृतगन्धयुतेन गन्धवहेन वायुना धूमगन्धेन होमधूमसौरभ्येण च दूरादेव विप्रकृष्टदेशत एव विभाव्यमानम् अनुमीयमानम् अचलमृगगणम् निर्भयावस्थितहरिणकुलम् , अदृश्यरूपाभिः अप्रकटस्वरूपाभिः वनदेवताभिः अवकीर्यमाणानि निक्षिप्यमाणानि बलिकुसुमानि पूजोपहारपुष्पाणि यत्र तादृशम् , अशेषाणां सकलानाम् पिशिताशनानाम् राक्षसानाम् एव पिशाचानाम् भूतानाम् उच्चाटनमन्त्रायमाणः अपसरणप्रयोजकमन्त्रवदाचरन् यः लक्ष्मणचापघोषः सौमित्रिशरासनशब्दस्तेन (अनुमीयमानः) समुचितसामीप्यप्रदेशः अदूरावस्थानं यस्य तादृशम् , नूतनपरिकल्पिताः अनतिचिरकालनिर्मिताः याः पर्णशालाः उटजाः तत्र वास्तव्याः वसन्तः ये वैखानसकुटुम्बिनः वानप्रस्थावलम्बिनः परिवारास्तैर्निबिरीसो निबिडो व्याप्तो भूभागो यस्य तादृशम् , अनोकहशाखासु वृक्षविटपेषु अवलम्बमानानि स्थापितानि वल्कलानि वृक्षत्वग्रूपपरिधानानि अजिनानि मृगचर्माणि च यत्र तथाभूतम् , अमरतरोः देवपादपस्य पारिजातस्य शाखाभ्यः अपचितैः संगृहीतैः अभिनवपल्लवभङ्गशबलैः नूतनकिसलययुक्तैः अम्बरचरा देवादयस्तेषां पत्युरधीश्वरस्येन्द्रस्य पृतनागणानाम् सैन्यसमूहानाम् करकिसलयैः हस्तरूपैः पल्लवैः कर्तृभिः विमुक्तैः विकीर्णैः अविरलैः बहुतरत्वेन सान्द्रैः कुसुमनिकरैः पुष्पचयैः अभ्यर्च्यमाना पूज्यमाना, जानकीनिवासतरुमूलवेदिका वैदेहीवासस्थानतां गतस्य तरोरधोदेशे वर्तमानावेदी यत्र तथोक्तम्, आलक्ष्यमाणः दृश्यमानः खड्गः, कार्मुकम् धनुः, निषङ्गः तूणीरश्च यत्र तादृशम् , अतिथिजनानाम् आगन्तुकलोकानाम् सपर्यायाम् आराधने आतिथ्यसत्कारे पर्युत्सुकेन उत्कण्ठितेन सततसावधानेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन समाहृतैः आनीतैः कन्दमूलफलैः कल्पितः पूर्णः एकदेशो भागविशेषो यस्य तथाविधम् , अविनाभूताः सततावस्थिताः जनकदुहितुः सीतायाः चरणनलिनविन्यासाः पादपद्ममुद्राः यत्र तथोक्तम् , अपहसितसाकेतरामणीयकम् , अयोध्यामप्यधरयन्तं रामाश्रमं रामनिवासस्थानम् ससम्भ्रमम् त्वरया अभजत अशिश्रियत् । 'निबिडं निबिरीसं च दृढं वाढं प्रचक्षते' इत्यमरः । अतिशयोक्तिरलङ्कारः ।

१. 'साकेतम्' इति पाठान्तरम् ।

चित्रकूटके एक देशमें सेनाको अवस्थित करके निषादराजके साथ इधर उधर रामजी-के अन्वेषण करने वाले भरतजी, हव्य वस्तुओंकी सुगन्धसे युक्त वायु तथा धूमगन्धसे दूरसे ही अनुमित होने वाले, निर्भय भावसे बैठे हुए हरिणोंसे युक्त, अदृश्यरूप वन-देवताओं द्वारा बिखेरे गये पूजापुष्पोंसे युक्त, समस्त राक्षसरूपी भूतोंको उच्चाटन करनेवाले मन्त्रके सदृश शब्द करनेवाले लक्ष्मणधनुषके शब्दके सुने जानेसे समीपस्थतया ज्ञायमान, नई वनी पर्णशालाओंमें निवास करनेवाले वानप्रस्थी परिवारसे व्याप्त भूभाग-वाले, जहाँ वृक्षोंकी शाखाओं पर बल्कल तथा मृगचर्म लटक रहे हैं ऐसे, पारिजात वृक्षकी डालियोंसे चुने गये नवीनपत्रोंसे संयुक्त इन्द्रके सैनिकोंके हाथसे छोड़े गये बहुत-पुष्पों द्वारा सीताके वासस्थानके रूपमें व्यवहृत होनेवाले वृक्षके नीचेकी वेदी जहाँ पूजी-गई है ऐसे, जहाँ तलवार धनुष तथा तरकस दीख रहे हैं ऐसे, अतिथियोंके सत्कारके लिये उत्कण्ठित लक्ष्मण द्वारा लाये गये कन्दमूल, फलसे पूर्णैकदेश, सीताके चरणकमलके चिह्नोंसे सर्वत्र व्याप्त तथा अयोध्याकी सुन्दरताको न्यून बनाने वाले रामाश्रमको शीघ्रतासे पा गये।

अथावासं शान्तेरकृतसुकृतानामसुलभं
नवाम्भोदश्यामं नलिननयनं वल्कलधरम्।
जटाजूटापीडं भुजगपतिभोगोपमभुजं
ददर्श श्रीमन्तं विपिनभुवि सीतासहचरम्॥ ७७॥

अथावासमिति। अथ आश्रमप्राप्त्यनन्तरम् शान्तेः शमस्य आवासम् साश्रय-स्थानभूतम् अत्यन्तशान्तमित्यर्थः, अकृतसुकृतानाम् अननुष्ठितपुण्यकर्मणाम् असु-लभम् दुरापम्, नवः सद्यः—सम्भृतसलिलो योऽम्भोदो मेघस्तद्वत् श्यामम् ईषत्कृष्णवर्णम्, नलिननयनम् पुण्डरीकाक्षम्, वल्कलधरम् वृक्षत्वक्परिधानम्, जटाजूटः जटाकलाप एव आपीडः शिरोऽलङ्कारो यस्य तं तथोक्तम्, भुजगपतेः शेषस्य भोगः कायस्तेन उपमासादृश्यं यस्य तादृशः वृत्तायतपीवरः बाहुर्यस्य तादृशम्, श्रीमन्तम् नित्यशोभासनाथम् प्रशस्यश्रीकं वा सीतासहचरम् जानकी-नाथम् श्रीरामम् विपिनभुवि काननभूमौ ददर्श भरत इति शेषः। भरतो वने रामं ददर्श। यो रामः नितान्तशान्तः पुण्यवद्भिरेव दृश्यो नवमेघवर्णः पुण्डरीकाक्षो वल्कलधरो जटालशिरा वृत्तायतबाहुः सीतया सहितश्चासीदित्यर्थः। 'शिखा, स्वापीडशेखरौ' इत्यमरः। शिखरिणीवृत्तम्॥ ७७॥

इसके बाद भरतने उस रामको देखा, जो शान्तिके निकेतन, पापियोंके लिये दुर्लभ, नवमेघवर्ण, कमलनयन, वल्कलधारी, शिरपर जटाजूट बाँधे, शेषसमान दीर्घ बाहुओंसे युक्त, नित्य शोभासम्पन्न, तथा सीतासे युक्त वनमें वास कर रहे थे॥ ७७॥

ततस्तस्योपान्ते जनकयजनाधीनजननां
ववन्दे वैदेहीं रजनिकररेखामिव नवाम्।

अरण्यानां पुण्यात्पदकमलमुद्रापरिचया-
दयोध्यासध्रीचीमविकलमवस्थां विदधतीम् ॥ ७८ ॥

तत इति। ततः रामदर्शनानन्तरकाले तस्य रामस्य चान्ते पार्श्वदेशे वामभागे इत्यर्थः, जनकयजनाधीनजननाम् विदेहराजकृतयज्ञसमुद्भवाम्, नवाम् प्रत्यग्रोदिताम् रजनिकररेखाम् कलाधरकलामिव स्थिताम्, पुण्यात्, पावनात् पदकमलमुद्रापरिचयात् निजपादपद्मविन्यासात् हेतोः अविकलम् समग्रभावेन अरण्यानां वनानाम् अयोध्यासध्रीचीम् साकेतपुरीसदृशीम् अवस्थाम् दशाम् विदधतीम् कुर्वतीम् वैदेहीम् जानकीम् ववन्दे प्रणनाम। अयमाशयः—भरतः प्राग् निजेष्टदेवं चिराकाङ्क्षितदर्शनं च रामं दृष्टवाँस्ततः परतो रामस्य वामभागेऽवस्थितां नवां चन्द्रकलामिवाम्लानसौन्दर्याम् जनकयज्ञसमुद्भूततया क्षेत्रवीर्यकृतकालुष्यरहिताम् पवित्रासम्पादकनिजचरणन्यासपात्रतासम्पादनविधयाऽरण्यमपि साकेतपुरीसादृश्यमखिलांशेन प्रापयन्तीं सीतां प्रणतवानिति। 'अधीनो निघ्न आयत्तः' 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्युभयत्रामरः। सहाञ्चतीति सध्र्यङ्, तस्य स्त्रियां सध्रीचीति रूपम्, 'सहस्य सध्रिः' इति सध्र्यादेशः। पूर्वार्धे उपमा। वृत्तं पूर्वोक्तमेव ॥ ७८ ॥

इसके बाद भरतने रामके समीपमें वर्तमान जनकके यागसे उत्पन्न नवीन चन्द्रकलाके समान अक्लिष्टसौन्दर्योपपन्न तथा अपने पवित्र चरणकमलके चिह्नोंसे युक्त करके वनको सर्वांशतः अयोध्यासदृश स्थितिप्रदान करने वाली सीताको प्रणाम किया ॥ ७८ ॥

स्वतःसिद्धं यस्मिन्नितरदुरवापं विजयते
सुमित्रापुत्रत्वादपि जगति रामानुजपदम्।
यदीयाक्षिद्वन्द्वप्रतिनिधि भवेदम्बुजयुगं
निशीथे निर्निद्रं यदि तमपि साक्षादकृत सः ॥ ७९ ॥

स्वतः सिद्धमिति। यस्मिन् लक्ष्मणे इतरदुरवापम् भ्रात्रन्तरदुर्लभम् (भिन्नगर्भसंभवतया अनुजपदव्यवहार्यतायाः समुचितस्वाभावात्) सुमित्रापुत्रत्वात् अपि सत्यपि सुमित्राजातत्वे रामानुजपदम् रामानुजशब्दव्यवहार्यत्वम्। स्वतः सिद्धम् अकृत्रिमम् जगति संसारे विजयते सर्वोत्कर्षेण प्रसिद्ध्यति, यदि अम्बुजयुगम् कमलपुष्पद्वयम्। निशीथे अर्धरात्रे निर्निद्रम् विकसितं भवेत् (तदा) यदीयाक्षिद्वन्द्वप्रतिनिधि यत्सम्बन्धिनयनद्वन्द्वसदृशम् भवेत् यस्य नयनयोस्तुलामधिरोहेत्। तम् लक्ष्मणम् अपि भरतः साक्षादकृत दृष्टवान्। यो लक्ष्मणः सत्यपि स्वस्य सत्यपि सुमित्रागर्भसंभूतत्वेन वैमात्रत्वे वैमात्रभ्रात्रन्तरविलक्षणव्यवहारत्वं प्रतिपद्य भ्रात्रन्तरदुर्लभं सोदरभ्रातृमात्रप्राप्यं रामानुजपदव्यपदेश्यत्वलक्षणं गौरवमकृत्रिमभावेन भुवि विख्यापयति, यस्य च नयने निशीथविकासिकमलशोभा-

सुधी तमपि लक्ष्मणं भरतो दृशोर्विषयीचकारेत्याशयः। निशीथप्रबुद्धकमलोपमया तन्नयनयोः सततविकासितया निर्निद्रतया रामसेवासमावर्जितस्वान्ततताध्वनिः, अत्र कमलानां निशासु विकासासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धस्य यद्यर्थोक्त्या कल्पनयाऽतिशयोक्तिरलङ्कार इति सर्वस्वकारः॥ ७९॥

जिस लक्ष्मणमें अन्य भाइयोंके लिये दुर्लभ रामानुजपद संसार में स्वतः प्रसिद्ध है, यद्यपि वह सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न हुए थे और यदि कमल अर्धरात्रमें विकसित हो तब जिनके नयनोंकी तुलना प्राप्त कर सकता है, ऐसे लक्ष्मणजीको भरतने देखा॥७९॥

तदनन्तरं मरुपथे [1]पृथुतरग्रीष्मोष्मणि दैवात्कृतोपलम्भमम्भोरुहतटाकं सुधा[2]सारपूरितापं भूरितापः सतृष्ण इव कृष्णसारः [3]सरभसं समुपेत्य [4]पादयोर्निपत्य चिरं रुदन्दशरथक[5]थां कथयित्वा मैथिलीसहिताय सलक्ष्मणाय रामाय शोकमूर्च्छां प्रायच्छत्।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् तेषां दर्शनात् परतः पृथुतरः अतिबहुलः ग्रीष्मोष्मा ग्रीष्मर्तुकृतः सन्तापो यत्र तादृशे भयङ्करतपनतापाकुले मरुपथे ऊपरदेशस्थमार्गे दैवात् भाग्यवशात् कृतोपलम्भम् प्रापितम् सुधासारपूरिताः अमृतसारपूर्णाः सुधाशीतला हृद्याश्च आपो जलानि यस्मिंस्तादृशम् अम्भोरुहतटाकम् कमलपूर्णं तटाकं सरः सतृष्णः पिपासाक्षामकण्ठः कृष्णसारः मृगविशेष इव संरभसम् वेगेन समुपेत्य (यथा मरुपथेऽतिसन्तप्ते भाग्यात्सजलं तटाकमुपलभ्य सतृष्णो मृगस्तत्र सवेगं सन्निधत्ते, तद्वद्भरतोऽपि राममुपेत्येत्युपमार्थः) समासाद्य, पादयोः रामस्य चरणयोर्निपत्य पतित्वा चिरम् रुदन् बहुकालपर्यन्तम् अश्रु मुञ्चन् दशरथकथाम् परलोकप्रयाणरूपाम् कथयित्वा अभिधाय मैथिलीसहिताय सीतायुताय सलक्ष्मणाय रामाय शोकमूर्च्छाम् पितृमरणश्रवणजनितमनःखेदकृतमज्ञानभावम् प्रायच्छत् दत्तवान्। भरतमुखात्पितुर्निधनं निशम्य ससीतलक्ष्मणो रामो मूर्च्छितो जात इत्यर्थः। 'दैवं दिष्टं भागधेयम्' 'रभसो वेगहर्षयोः' इत्युभयत्रामरः।

इसके बाद ग्रीष्मतापसन्तप्त मरुमार्गमें भाग्यवश उपलब्ध अमृतोपम जलसे परिपूर्ण जलाशयको जैसे प्यासा हरिण वेगसे दौड़कर प्राप्त करता है उसी तरह भरतजी रामके पास गये, उनके चरणोंमें गिरे और बड़ी देर तक रोते रहे, फिर दशरथकी परलोकयात्राकी कथा कही, जिसे सुनकर सीता, राम और लक्ष्मण सभी मूर्च्छित हो गये।

---

१. 'प्रथिततर' इति पाठान्तरम्। २. 'धारा' इति पाठान्तरम्।
३. 'सरभसमुपेत्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'निपत्य पादयोश्चिरतरं' इति पाठान्तरम्।
५. 'कथामपि' इति पाठान्तरम्।

[1]वेलोल्लङ्घनमेतेषां शोकोदन्वति तन्वति ।
अगस्त्यायितमेतस्मिन्वसिष्ठेनात्मवेदिना ॥ ८० ॥

वेलोल्लङ्घनमिति । एतेषाम् श्रीरामादीनाम् शोकोदन्वति दुःखसागरे एतस्मिन् दशरथमरणवृत्तान्तश्रवणसमेधिते वेलोल्लङ्घनम् मर्यादाऽतिक्रमम् तन्वति कुर्वति सति आत्मवेदिना आत्मतत्त्वज्ञेन वसिष्ठेन अगस्त्यायितम् अगस्त्यवदाचरितम् । यथा पुराऽगस्त्यः प्रवर्धमानवारितया तटमतिक्रामति समुद्रे तत्पयःपूरप्लवेन भुवनविनाशमुत्प्रेक्ष्य लोकानुजिघृक्षया सामुद्रमम्भश्चुलुकीकृत्य लोका अरक्षित मर्यादा चाम्भोनिधेरकारि, तथैव सर्वेषूद्वेलखेदेषु सत्सु वसिष्ठः संसारानित्यतामुपपाद्य तेषां शोकं नियमयामासेति भावः । 'उदन्वानुदधिः सिन्धुः' 'अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि' इत्युभयत्राप्यमरः ॥ ८० ॥

राम, लक्ष्मण और सीताके शोकरूप समुद्र जब मर्यादाका उल्लङ्घन करने लगा अर्थात् जब बहुत अधिक बढ़ गया तब आत्मवेदी वसिष्ठने अगस्त्यका कार्य किया । इसका तात्पर्य यह है कि जैसे अगस्त्यने बढ़ते हुए समुद्रको पीकर उसकी मर्यादा कायम की थी उसी तरह वसिष्ठने भी इन्हें आत्मोपदेश देकर शोकको नियन्त्रित किया ॥ ८० ॥

ततः [2]प्रतिपद्य संज्ञामनुज्ञया गुरोरमरसरिति विरचितसमुचितनिवापकृत्यं प्रणिपत्य [3]रामं प्रतिनिवर्तयितुं भरतः [4]प्रावर्तत ।

तत इति । ततः वसिष्ठकृतोपदेशानन्तरम् संज्ञाम् चैतन्यम् प्रतिपद्य प्राप्य गुरोः वसिष्ठस्यानुज्ञया आदेशेन अमरसरिति गङ्गायाम् विरचितसमुचितनिवापकृत्यम् अनुष्ठितयोग्यपितृश्राद्धम् , रामं प्रणिपत्य चरणयोर्निपत्य प्रतिनिवर्त्तयितुम् अयोध्यां परावर्त्तयितुम् भरतः प्रावर्त्तत प्रार्थनादिना अचेष्टत ।

वसिष्ठके उपदेशसे चैतन्यप्राप्त करके रामने गङ्गातटपर यथोचित पितृश्राद्ध संपन्न किया । इसके बाद भरतने रामके चरणोंपर गिरकर अयोध्या वापस चलने की प्रार्थना की ।

विकर्त्तनकुलस्य यदनुकूलं गुणगणस्य यदनुगुणं यशोरूपस्य यदनुरूपं समाचारस्य यत्समुचितं प्राचीनभाग्यस्य यद्योग्यं लोक[5]गर्हणाय यदनर्हं श्रुतस्य वा यत्सदृशं तादृशमाशयं प्रकाशयन्ती भरतोपज्ञा विज्ञापना ।

विकर्त्तनकुलस्येति । विकर्त्तनकुलस्य सूर्यवंशस्य यद् अनुकूलम् योग्यम् , गुणगणस्य भरतनिष्ठस्य दाक्षिण्यौदार्यशौर्यादेर्यत् अनुगुणम् अनुरूपम् , यशो-

---

१. एतत्पूर्वं 'जननीजनोऽपि तत्र निपत्य सुचिरमरोदीत्' इति क्वचिद् दृश्यते ।
२. 'प्रपद्य' इति पाठान्तरम् । ३. 'राममसकृत्प्रवर्तयितुम्' इति पाठान्तरम् ।
४. 'प्रार्थयत' इति पाठान्तरम् । ५. 'गर्हणीयाय' इति पाठान्तरम् ।

रूपस्य, प्रशस्तयशसः यद् अनुरूपम् योग्यम्, समाचारस्य समुचितव्यवहारस्य यत् समुचितम् युक्तम्, प्राचीनभाग्यस्य पुरातनपुण्यस्य यद्योग्यम् उचितम्, लोकगर्हणाय यद् अनर्हम् लोककृताया निन्दायाः यत् पात्रं न भवति, श्रुतस्य शास्त्रस्य यत् सदृशम् अनुकूलम्, तादृशम् आशयम् अभिप्रायं प्रकाशयन्ती आविष्कुर्वती भरतोपज्ञा भरतेन कृता विज्ञापना रामं प्रति प्रार्थना। अभूदिति क्रियापदमध्याहार्यम् भरतेन रामं प्रति तादृशाभिप्राया प्रार्थना कृता या सूर्यवंशीयस्य राज्ञः स्वरूपं न तिरोदधाति, तदीयं गुणगणं न तिरोभावयति, तदीयं यशो न लुम्पति, तदीयं समीचीनमाचारं न नीचैरञ्चयति, प्राक्तनं पुण्यराशिं नोपहासयति, लोकेन वा निन्द्यते नापि वा शास्त्रानुकूलतां जहातीति भावः। एतेन भरतकृतायाः प्रार्थनायाः स्वरूपानुरूपत्वमनन्यसाधारणत्वं च व्यक्तीकृतम्। यशोरूपस्येत्यत्र—'प्रशंसायां रूपम्'। 'प्रशंसावचनैश्च' इति समासः। भरतोपज्ञा प्रार्थना इत्यत्र 'उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्' इति समासः। 'विकर्त्तनार्कमार्त्तण्डमिहिरारुणपूषणः' 'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' 'उपज्ञोपक्रमाणां च तदादित्वप्रकाशनम्' इति सर्वत्रामरः।

भरतने रामसे ऐसी प्रार्थना की जो सूर्यकुलके योग्य थी, भरतके गुणानुरूप थी, भरतके प्रशंसनीय यशके साथ जिसका मेल बैठता था, भरतके समीचीन आकारका जिसके साथ समन्वय बैठता था, जिस प्रार्थनाको भरतके पुरातन पुण्योंने प्रभावित किया था, जिसकी निन्दा लोक नहीं कर सकते थे और जो शास्त्रके सदृश थी।

तत्क्षणं क्षणप्रभाभङ्गुरलक्ष्मीसमावेशलक्ष्मणि क्षोणीपतिशतधृतोज्झिते मुकुटे विघटिताशं [1]सादरं प्रणिपत्य मां पादुकाभ्यां परिष्कुरुतं युवामिति [2]रघुवरचरणौ स्वयमेव प्रार्थ्य [3]प्रतिश्रावयितुं स्थण्डिलशायि[4]चरणमिव बभार भरतस्योत्तमाङ्गम्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन् काले क्षणप्रभाभङ्गुरा विद्युच्चला या लक्ष्मीस्तस्याः समावेशस्य धारणस्य लक्ष्मणि चिह्नभूते (श्रीमानयमिति द्योतके) क्षोणीपतीनां राज्ञां शतैः पूर्वं धृते पश्चादुज्झिते (भुक्तोज्झिते) मुकुटे राजधार्ये कोटीरे विघटिताशम् त्यक्तस्पृहम् भरतस्योत्तमाङ्गम् शिरः कर्त्तृ सादरं प्रणिपत्य रामचरणयोर्नतं भूत्वा 'युवां रामचरणौ पादुकाभ्याम् स्वधार्याभ्यां माम् भरतशिरः परिष्कुरुतम्' इति रघुवरचरणौ रामपादौ स्वयम् आत्मनैव प्रार्थ्य निवेद्य प्रतिश्रावयितुम् स्वप्रार्थितमर्थं स्वीकारयितुम् स्थण्डिलशायिचरणम् भूमिशायित्वाचारम् इव बभार स्वीचकार। रामं प्रणतवद्भरतशिरो भुवि स्थितं सत्स्वप्रार्थनां स्वीकारयितुं

---

१. 'रामं प्रणिपत्य सादरम्' इति पाठान्तरम्। २. 'चरणद्वयम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'परिचरितुम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'चरितम्' इति पाठान्तरम्।

स्वेष्टदेवयोः श्रीरघुवरचरणयोः पुरतःस्थण्डिलशायितामिव दधारेत्यर्थः। यथा कश्चित्साधकः स्वेष्टदेवमाराधयन् तत्प्रसादपर्यन्तमधः शेते, तथा भरतस्य शिरो रामस्य चरणयोः सविधे कृतां प्रार्थनां ताभ्यां स्वीकारयितुमिवाधोदेशेऽतिष्ठत् इत्याशयः। अत्र प्रणिपातकालिकनमनस्य प्रार्थनास्वीकारावधिकस्थण्डिलशायित्वरूपत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

उस समय विद्युल्लताके समान चपल लक्ष्मीके आगमनके चिह्नरूप तथा सैकड़ों राजाओं द्वारा धारण करके छोड़े गये उस राजमुकुटके प्रति वीतस्पृह भरतका शिर आदरपूर्वक रामजीके चरणोंमें झुक कर उन चरणोंसे प्रार्थनाकी कि आप दोनों हमें अपनी पादुकाओंसे अलङ्कृत करें, इस तरह की प्रार्थना खुद करके अपनी इस प्रार्थनाको उन चरणोंसे स्वीकृत करवानेके लिये मानो भरतके शिरने उन चरणोंके आगे स्थण्डिलशायित्वको स्वीकार कर लिया। (तब तक रामके चरणोंने पादुका देना स्वीकार नहीं कर लिया, तब तक भरतका शिर जमीन पर ही पड़ा रहा)।

[1]त्वया मया च [2]कर्तव्यः सत्यवाचः [3]पितुर्विधिः।
इति प्रत्यादिशद्रामो भारतीमपि भारतीम् ॥ ८१ ॥

त्वयेति। सत्यवाचः सत्यवचनस्य पितुः दशरथस्य विधिः आदेशः 'त्वया राज्यं पालनीयं मया च वने वस्तव्यम्' इत्येवं रूपः त्वया भरतेन मया रामेण च कर्त्तव्यः अवश्यमनुष्ठातव्यः, 'यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरौ स पुत्रः' इत्यभियुक्तोक्तिस्मरणादिति भावः। इति एवमुक्त्वा रामः भारतीम् भरतस्येयं भारती ताम् भरतोक्ताम् भारतीम् वाचम् अपि प्रत्यादिशत् प्रत्याख्यातवान्, नानुमेने। अपि पदेन भरतस्यान्यादृशप्रार्थनाया अप्रत्याख्येयता ध्वननविधया रामस्यात्यन्तप्रीतिपात्रताव्यञ्जिता ॥ ८१ ॥

सत्यवादी पिताजीका आदेश तुमको और मुझको भी पालन करना ही चाहिये, इस प्रकार कहकर रामने भरतकी प्रार्थना तिरस्कार कर दिया, (अस्वीकार कर दिया) ॥८१॥

[4]तत्र जबालिप्रार्थनायामपि व्यर्थायाम्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये तस्मिन् विषये च, जाबालिप्रार्थनायाम् जाबालिमुनिकृतानुरोधे व्यर्थायाम् असफलायाम् जातायामित्यर्थः। उक्तञ्चात्र रामायणे—'आश्वासयन्तं भरतं जबालिर्ब्राह्मणोत्तमः। उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः' इत्यादि।

इस प्रसङ्गमें जब जाबालि द्वारा की गई प्रार्थना भी निष्फल हो गई, तब।

भरतस्तदनु प्रार्थ्यं लेभे लाभविदां वरः।

---

१. एतत्पूर्वम् 'तथाहि' इति क्वचित्।
२. 'कर्तव्यम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'पितुर्वचः' इति पाठान्तरम्।
४. 'तत्र' इति नास्ति क्वचित्।

काकुत्स्थपादुकाकारं [1]महार्घं मुकुटद्वयम् ॥ ८२ ॥

भरत इति। तदनु जाबालिप्रार्थनाया रामेण प्रतिषेधनात् परतः लाभविदाम् अधिकाधिकप्राप्तिप्रकारज्ञानाम् वरः श्रेष्ठः भरतः प्रार्थ्यं प्रार्थनां कृत्वा काकुत्स्थपादुकाकारम् रामधार्यपादुकास्वरूपम् महार्घम् बहुमूल्यम् मुकुटद्वयम् कोटीरयुगलम् लेभे प्राप। ज्येष्ठे राज्यविमुखे कनिष्ठराज्यपालनमनुचितं मत्वा भरतो रामपादुके राज्यासनेऽवस्थाप्य राज्यं पालयितुं तदीये पादुके प्रार्थनया प्रापेति भावः। एकमुकुटत्यागे न मुकुटद्वयप्राप्त्यभिधानाद् भरतलाभविदां वरत्वमुपपादनीयम् ॥ ८२ ॥

इसके बाद लाभ पहचानने वालोंमें श्रेष्ठ भरतजी ने प्रार्थना करके रामजीके चरणोंकी पादुका स्वरूप दो बहुमूल्य मुकुट प्राप्त कर लिये ॥ ८२ ॥

स एष सानुजः प्रायादयोध्यां भ्रातृशासनात्।
अटवीं पितृसंदेशाद्ययौ रामः सलक्ष्मणः ॥ ८३ ॥

स एष इति। सानुजः शत्रुघ्नसहितः स एषः भरतः भ्रातृशासनात् रामादेशमनुसृत्य अयोध्याम् नाम स्वराजधानीम् प्रायात् गतवान्, (तथा) (सानुजः) सलक्ष्मणः रामः पितृसन्देशात् दशरथनिदेशमनुरुध्य अटवीम् दण्डकावनम् ययौ गतवान्। एकस्य भ्रात्राज्ञापालनपरत्वे परस्य पित्राज्ञापालनरसिकतोपन्नैवेति भावः॥

शत्रुघ्न सहित भरत भ्राताकी आज्ञा मानकर अयोध्या चले आये और पिताकी आज्ञासे लक्ष्मण सहित राम वनमें चले गये ॥ ८३ ॥

विलङ्घ्य विविधान्देशान्भरतो धृतवल्कलः।
विषयं [2]स्वमुपाश्रित्य विषये विमुखोऽभवत् ॥ ८४ ॥

विलङ्घ्येति। धृतवल्कलः स्वज्येष्ठस्य वल्कलधारित्वे स्वस्योत्तमपरिधानताऽयुक्तेति मत्वा वृक्षत्वचं वसानः भरतः विविधान् नानाप्रकारान् देशान् भरद्वाजाश्रमादीन् विलङ्घ्य अतिक्रम्य स्वं विषयम् देशम् अवधम् उपाश्रित्य प्राप्य विषये भोग्यजाते विमुखोऽभवत् निरास्थोऽजायत रामानुकृत्या सकलभोगपराङ्मुखो जात इत्यर्थः ॥ ८४ ॥

राम वल्कलधारी हैं तो मुझे भी वल्कल ही पहनना चाहिये इस ख्यालसे वल्कलधारी भरतजी नाना प्रकारके देशोंको पार करके अपने देश अवधमें आकर सभी प्रकारके भोग्य विषयोंसे विमुख हो गये ॥ ८४ ॥

ततश्चायं यावदार्यस्य प्रत्यागमनं तावदयोध्यां नाध्यासे। तस्मिन्नवधिमतिक्रम्य [3]चिरायति सद्य एवाश्रयाशमाश्रित्यापि [4]प्राणान्नन्दयिष्या-

---

१. 'महर्घम्' इति पाठान्तरम्। २. 'समुपाश्रित्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'चिरायतीत्यस्याग्रे यदि' क्वचिदुपलभ्यते। ४. 'प्राणानपि निन्दिष्यामीति' इति पा०

मीति नन्दिग्रामसंज्ञमाश्रममशिश्रयत् ।

तत इति। ततः तदनन्तरम् च अयं भरतः यावत् आर्यस्य पूज्यस्य रामस्य प्रत्यागमनम् प्रत्यावर्त्तनम् तावत् तदवधि अयोध्याम् स्वराजधानीम् नाध्यासे नाधितिष्ठामि, तथाकरणे लोकानां चेतसि भरतो राज्यमारूढ इति भ्रमस्य सम्भवादिति भावः। अवधिम् नियतं चतुर्दशवर्षात्मकं कालम् अतिक्रम्य व्यतियाप्य चिरायति विलम्बमाने तस्मिन् रामे (अवधौ व्यतीतेऽप्यनागच्छति सतीत्यर्थः) सद्यः तत्क्षणम् एव आश्रयाशम् वह्निम् आश्रित्य प्रविश्य अपि प्राणान् असून् नन्दयिष्यामि प्रसन्नतां प्रापयिष्यामि (तदापि रामस्यानागमनेन भृशं व्यथमानानां मम प्राणानां मरणमेव त्राणं स्यादिति तात्पर्येणायं ग्रन्थः) इति एवं चिन्तयित्वा नन्दिग्रामम् अशिश्रियत् आवासभूमित्वेनाकल्पयत् इत्यर्थः ।

इसके बाद भरतने निश्चय किया कि जब तक रामजी नहीं लौटेंगे तब तक मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा। अवधिके वीत जाने पर भी यदि वह विलम्ब करेंगे तो आग में पैठ कर भी अपने इन प्राणोंको (यन्त्रणासे मुक्त करके) आनन्दित करूँगा, इसी सिद्धान्त पर उन्होंने नन्दिग्रामको वासभूमि बनाया ।

दाशरथिरपि शमधनजनकथितनिशिचरगण[1]रचितकदनपरिहरणाय गहनजठरमवजगाहे ।

दाशरथिरिति। दाशरथिः श्रीरामोऽपि शमधनाः शान्तिनिष्ठाजनाः मुनिजनास्तैः कथितस्य निवेदितस्य निशिचरगणरचितकदनस्य राक्षससमुदयाचरिताश्रमोपप्लवस्य परिहरणाय राक्षसगणमारणविधया निराकरणाय गहनजठरम् वनस्योदरम् अन्तरालमित्यर्थः अवजगाहे प्रविष्टवान् ।

रामजी भी शान्तिनिष्ठ मुनियों द्वारा निवेदित राक्षसकृत उपद्रवोंको दूर करनेके लिये वनके भीतरी भागमें पैठे।

विस्तीर्णाक्षैर्विपिनहरिणैर्वीतभीतिप्ररोहै-
र्दर्भग्रासेऽप्यकृतरुचिभिः सस्पृहं वीक्ष्यमाणः ।
रामः प्राप्य प्रकृतिमहितं स्थानमत्रेर्महर्षे-
र्जग्राहास्य प्रमुदितधियः प्रेमपर्यां सपर्याम् ॥ ८५ ॥

विस्तीर्णाक्षैरिति। वीतभीतिप्ररोहैः अपगतभयजन्मभिः (अतिसौम्यदर्शनतया रामादीनां तद्दर्शनेन भयं मनागपि मनस्यस्पृशद्भिः) विस्तीर्णाक्षैः आश्चर्यजनकसौन्दर्यशालिनामेषां दर्शनाय स्फारितनयनैः, दर्भग्रासे दर्भकवले अपि अकृतरुचिभिः अकृतास्थैः (अन्यासक्तचित्ततया दर्भग्रासमपि यथावदवस्थमेव मुखेऽ-

१. 'रचित' इति नास्ति क्वचित् ।

वस्थाप्य स्थितैरित्यर्थः, विपिनहरिणैः वनवासिभिर्मृगैः सस्पृहम् साभिलाषं वीक्ष्यमाणः दृश्यमानः रामः प्रकृतिमहितम् स्वभावतः पूजितम् महर्षेः महातपसः अत्रेः स्थानम् आश्रमम् प्राप्य आसाद्य प्रमुदितधियः प्रसन्नहृदयस्य अस्य महर्षेरत्रेः प्रेमपर्याम् स्नेहपूर्वाम् सपर्याम् पूजाम् अतिथिसत्कारम् जग्राह स्वीकृतवान्। 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हणाः समाः' इत्यमरः ॥ ८५ ॥

भयके लेशसे भी-रहित तथा स्फारित दृष्टि वाले वनमृगों द्वारा दर्भ ग्रासके विषयमें भी रुचि त्यागकर आदरपूर्वक देखे गये भगवान् रामने स्वभावतः पूजाके योग्य महर्षिके आश्रमको प्राप्तकर प्रसन्नहृदय महर्षि अत्रिद्वारा किये गये अतिथिसत्कारको स्वीकार किया॥

सीतामप्यनसूयाभिधानास्य पत्नी स्वभूषणैरतोषयत्।

सीतामपीति। अनसूयाभिधाना अनसूयानामा अस्य महर्षेरत्रेः पत्नी स्त्री सीताम् रामाङ्गनाम् अपि स्वभूषणैः स्वधार्यैः कटकुण्डलादिभिरलङ्कारैरतोषयत् प्रसादयामास। स्त्रीणां स्त्रीभ्योऽलङ्कारप्रदानस्य समधिकस्नेहसूचनार्थत्वात्तथाकृतमिति ज्ञेयम्।

महर्षि अत्रिको पत्नी अनसूयाने भी अपने गहनोंसे सीताको सन्तोषित किया।

खण्डनाय वसुधावधूमनःपुण्डरीकतुहिनत्विषां द्विषाम्।
दण्डकावनमवाप राघवश्चण्डभानुरिव मेघमण्डलम् ॥ ८६ ॥
इति विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणेऽयोध्याकाण्डः समाप्तः।

खण्डनायेति। राघवः रघुवंशोद्भवः श्रीरामः वसुधा पृथ्वी एव वधूः स्त्री तस्याः मन एव पुण्डरीकं कमलं तस्य कृते तुहिनत्विषाम् शीतकररूपाणाम् चन्द्राणाम् द्विषाम् रक्षोरूपशत्रूणाम् खण्डनाय मारणाय चण्डभानुः सूर्यः मेघमण्डलम् नभोदेशमिव दण्डकावनम् अवाप प्राप्तवान् यथा चन्द्रप्रभानिरासाय सूर्यो नभोमण्डलमध्यास्ते, तथैव राक्षसवधाय रामो दण्डकारण्यमाप्तवान्, चन्द्रो हि पुण्डरीकं ग्लपयति राक्षससमुदयरूपश्चन्द्रो वसुधाहृदयपुण्डरीकं ग्लपयतीति परम्परितरूपकम्। रामस्य राजतया वसुधायास्तत्पत्नीत्वं विष्णुरूपतया वा। शब्दालङ्कारसहचरं रूपकमलङ्कारः। रथोद्धतावृत्तम्—'स्यान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति च तल्लक्षणम् ॥ ८६ ॥

वसुधारूप स्त्रीके मनरूप कमलको मुरझा देनेमें तुहिनदीधिति (चन्द्रमा) के समान राक्षसस्वरूप शत्रुओंके संहारार्थ रामजी दण्डकारण्य पहूँचे, जैसे चन्द्रमाको निस्तेज बनानेके लिये सूर्य आकाशमें पहुँचते हैं ॥ ८६ ॥

इति मैथिल पण्डित श्रीरामचन्द्र मिश्र प्रणीते चम्पूरामायण 'प्रकाशे'
अयोध्याकाण्ड 'प्रकाशः'।

अथ अरण्यकाण्डम्

प्रविश्य विपिनं महत्तदनु मैथिलीवल्लभौ
महाबलसमन्वितश्चलितनीलशैलच्छविः ।
निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-
श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव ॥ १ ॥

प्रविश्येति । तदनु दण्डकावनप्रवेशात्परतः महाबलसमन्वितः अतिपराक्रमशाली चलितः जङ्गमो यो नीलशैलः इन्द्रनीलपर्वतस्तस्यच्छविः कान्तिरिव छविर्यस्य तादृशः मैथिलीवल्लभः सीतासहचरो रामः महत् दीर्घम् वनं दण्डकारण्यं प्रविश्य निशाचरा एव दवानलाः वनवह्नयः (वनवासिमुनिजनसन्तापकत्वात्) तेषां शरैः स्वबाणैः प्रशमनम् निर्वापणं विधातुं कर्त्तुम् सुरपथे व्योम्नि तडित्वान् मेघ इव सशरासनः धृतधनुः चचार बभ्राम । मेघोऽपि चलतो नीलाचलस्य शोभां बिभर्त्ति, शरैर्जलैः दवानलं शमयति, महाबलेन वायुना समन्वितश्च भ्रमतीति मेघसादृश्यं रामे उपपद्यते, किञ्च यथा मेघे विद्युत् प्रकाशते, तथा रामेण सह चलन्ती सीता द्योतत इत्यपि बोध्यम् । दण्डकावनं प्रविश्य रामो धृतधनुस्तत्र विचचार, तेन सह सीताऽऽप्यासीत् , तस्य तत्र चरणं च राक्षसवधोद्देश्यकम् यथा दावानल-शमनाय विद्युद्युक्तो मेघो वियति भ्रमतीति वाक्यार्थः । शरं तु नीरे' इति नानार्थ-माला । श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारः । पृथ्वीवृत्तम्—जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वीगुरुः' इति तल्लक्षणम् ॥ १ ॥

इसके बाद वनमें प्रवेशकर महापराक्रमी, चलित नीलाचलके सदृश श्यामकायकान्ति-शाली सीतासहचर रामजी अपने बाणरूप जलसे निशाचररूप दावानलको शान्त करनेके लिये आकाशचारी मेघकी तरह धनुषधारण करके भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १ ॥

[1]तदनु [2]कण्डूलवरशुण्डालकपोलकषणविषमि[3]तामितविटपसालषण्ड-निर्यातनिर्यासगन्धानप्यात्तगन्धान्विदधानै[4]राहुति[5]गन्धैरनुमीयमानानवि-नाभूतजलाशयानाश्रमभागानभितश्चरतोरातिथ्यश[6]मितमार्गश्रमयो[7]रामल-क्ष्मणयोरध्वानं [8]रुरोध विराधाभिधानो यातुधानः ।

---

१. 'ततः' इति पाठान्तरम् । २. 'कण्डूलापनयनपटुशुण्डाल' इति पा० ।
३. 'मितानमितविकटविटप' इति पा० । ४. 'श्राहुति' इति पाठान्तरम् ।
५. 'गन्धैर्धूमस्तोमैः' इति पाठान्तरम् । ६. 'अमित' 'प्रश्रमित' इति च पाठान्तरम् ।
७. 'दाशरथ्योः' इति पा० । ८. 'तरसा रुरोध', 'सहसा रुरोध' इति च पाठान्तरम् ।

तदन्विति। तदनु ततः पश्चात् कण्डूम् खर्जनाम् लाति गृहीतां करोतीति कण्डू-ला वरा उत्तमा शुण्डा वृक्षेषु घर्षणेन विषमिताः निम्नोन्नतीकृताः अमिताः अनेके विटपाः शाखा येषां तादृशा ये येषां तेषाङ्गजानामिति विशेष्यमन्तर्गूढम्, कपोलानाम् गण्डस्थलानाम् कषणेन येसालखण्डाः सर्जवृक्षाः तेभ्यः निर्यातः अपगतः निर्यास-गन्धः अन्तःसारा मोदो येषां ते तथोक्तास्तान् (कण्डूलशुण्डाशालिकरिकृतकपोल-कर्षणविषमीकृतशाखेभ्यो वृक्षेभ्यश्च्यवमानक्षीरतया निर्याततद्गन्धान् इदमेकमा-श्रमभागानित्यग्रे वक्ष्यमाणस्य विशेषणम्) अपि आत्तगन्धान् गृहीतसुगन्धीन् विदधानैः कुर्वद्भिः आहुतिगन्धैः। होमसुगन्धैः अनुमीयमानान्, 'इमे ऋष्यश्र-श्रमा भवितुमर्हन्ति आहुतिगन्धवत्त्वात् अन्याश्रमवत्' इत्याकारकानुमिति विषयी-क्रियमाणान्, अविनाभूताः सर्वत्रवर्त्तमानाः जलाशयाः सरोवरा यत्र तादृशान् आश्रमभागान् मुनिवासभूमीः अभितः समन्तात् चरतोः भ्रमतोः, आतिथ्येन मुनि-जनकृतातिथिसत्कारेण शमितः दूरीकृतो मार्गश्रमः पथिकृतः खेदो ययोस्तथाभूतयोः रामलक्ष्मणयोः अध्वानम् मार्गम् विराधाभिधानः विराधनामा यातुधानः राक्षसः रुरोध,आवृत्य स्थितः। हस्तिभिः कपोलकण्डूरपनेतुं घर्षितेभ्यो वृक्षेभ्यो यद्यपि नि-र्यासगन्धो बहिर्याति तथापि तत्राश्रमभागे गन्धापगमकृतान्यूनता नोद्भवति, हव्य-गन्धैस्तत्क्षतिपूरणात् होमगन्धैश्चाश्रमा अनुमीयन्ते, तानाश्रमान् परितो भ्रमन्तौ रामलक्ष्मणौ तदाश्रमवासिभिः कृतयाऽतिथिसेवया मार्गश्रमं विस्मरतः, तथाभूत-योरेव तयोर्मार्गं न्यरुणद्विराध इति हृदयम्। कण्डूलपदे सिध्मादित्वाल्लच्, शुण्डा-लशब्दे तु 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' इति मत्वर्थीयो लच्। 'साले' तु सर्ज-काश्यशिवकर्णकाः सस्य संवरः' 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी इति सर्वत्रामरः। 'आश्रमानभितः' इत्यत्र 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियो-गेऽपी'ति द्वितीया।

इसके बाद खुजलाने वाली शुण्डाओंसे युक्त हाथियों द्वारा किये गये कपोलघर्षणसे जिन वृक्षोंकी डालियां अस्तव्यस्त हो रही हैं ऐसे सर्जवृक्षोंसे (दूध बहनेके कारण) सारगन्धके निकलते रहने पर भी होमद्रव्यकी सुगन्धिसे पूर्णगन्ध, आहुतिकी गन्धसे जिनका अनुमान होता है एतादृश, जहाँ तहाँ जलाशयोंसे युक्त आश्रम मार्गोंके चारो तरफ राम लक्ष्मण भ्रमण कर रहे थे, उन्हें मुनियों द्वारा जो आतिथ्य सत्कार प्राप्त हो रहा था उससे उन्हें मार्ग कष्ट भूल रहा था, इसी अवस्थामें राम लक्ष्मणके मार्गको रोककर विराध नामक राक्षस आगेमें खड़ा हो गया।

स एष रोषभी[1]षणवेषस्त्रिशिखशि[2]खावतंसितविविधमृगश व[3] शतहृदय-

---

१. 'भीषणत्रिलोकी' इति पाठान्तरम्। २. 'शिखरावतंसित' इति पाठान्तरम्।
३. 'शतः' इति पाठान्तरम्।

शतह्रदातनयः सीतामपजहार, व्याजहार च दाशरथी।

स एष इति। रोषेण कोपेन भीषणो भयङ्करो वेषः स्वरूपं यस्य स तादृशः, त्रिशिखं त्रिशूलम् तस्य शिखा अग्रभागस्तेन अवतंसितानि प्रोतानि भूषणभावेनावस्थापितानि विविधानां मृगशवशतानां शतसंख्यकमृगशवानां हृदयानि वक्षःस्थलानि येन स तथोक्तः, स एषः शतहृदा विराधमाता तस्यास्तनयः पुत्रो विराध इत्यर्थः, सीताम् अपजहार अपहृत्य नीतवान्, दाशरथी रामलक्ष्मणौ च व्याजहार उवाच। उक्तश्चात्रप्रसङ्गे रामायणे—'त्रीन् सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान् द्वौ वृकौ पृषतां दश। सविषाणं वसा दिग्धं गजस्य च शिरो महत्। अवसज्यायसे शूले निनदन्तं महास्वनम्'। इति।

रोषसे भयङ्कर वेष वाला शूलके अग्रभागमें नानामृगोंके हृदयभागको अलङ्काररूपमें स्थापित किये उस विराधने सीताको हर लिया और राम लक्ष्मणसे कहा।

कौ युवां युवानौ, कुतस्त्यौ, वामाचारवत्प्रति[1]भाति वामाचारः। चीरं वपुषि, जटाः शिरसि, करे च चण्डकोदण्डः। क्वायमाकल्पः, क्वच कल्पलताकल्पेयमनल्पाभरणा तरुणीति।

कौ युवामिति। युवानौ यौवने वर्त्तमानौ युवाम् भवन्तौ कौ किं नामानौ किमन्वयौ किंजनपदौ वेति सामान्यप्रश्नः। कुतस्त्यौ कुत आगतौ? वाम् युवयोः आचारः वामाचारवत् कुटिलव्यवहारतुल्यः प्रतिभाति प्रतीयते, (यतो विरुद्धमाकल्पं बिभृतो भवन्ताविति भावः, तदुपपादयति—) वपुषि देहे चीरम् वल्कलवसनम्, शिरसि शिरोदेशे जटाः एकत्रीकृताः केशाः, (आभ्यां चिह्नाभ्यां निवृत्तिपथपथिकत्वमनुमीयमानं विरुणद्धि परतः प्रतीयमानश्चण्डोऽयं कोदण्डस्तदयं वामाचारो विवक्षितो वेदितव्यः) क्व अयम् एतादृशः वल्कलवसनजटाधारणादिरूपः आकल्पः वेषविन्यासः, क्व च कल्पलता कल्पा कल्पवल्लरीतुल्या (सकलाभिलाषपूरणदक्षा) अनल्पाभरणा बहुविधालङ्करणभूषिततरुणी युवतिः? नोभयमेकत्र युज्यते, भवति च भवतो रिति प्रश्नाशयः।

जवान आप दोनों कौन हैं? कहाँसे आते हैं? आप दोनोंके आचार बड़े बेढब मालूम पड़ रहे हैं। देह पर वल्कल तथा शिर पर जटा है, साथ ही साथमें प्रचण्ड धनुष है, कहाँ तो ऐसा वेष है और कहाँ यह कल्पलता समान और अनेक गहनोंसे भूषित जवान औरत है?

दाशरथिरपि कथितनिजान्वयो विराधाङ्के वेपमानां वि[2]देह दुहितरं

१. प्रतिभाति मे इति पाठान्तरम्। २. 'विदेहराज' इति पाठान्तरम्।

विलोक्य सकोपः सौमित्रिणा साकं रक्षोवक्षसि शिलीमुखान्नि[1]चखान।

दाशरथिरिनि। दाशरथिः रामः अपि कथित निजान्वयः विराधाय प्रतिपादित-स्ववंशः सन् विराधाङ्के विराधस्य क्रोडे वेपमानाम् अनिष्टाशङ्कया कम्पमानां विदेह-दुहितरम् जनकपुत्रीम् सीताम् विलोक्य दृष्ट्वा सौमित्रिणा लक्ष्मणेन साकं सह रक्षोवक्षसि विराधस्य हृदयदेशे शिलीमुखान् बाणान् निचखान निखातवान् प्रहृत-वानिति यावत्। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यमरः।

रामने अपने कुलका परिचय देकर विराधकी गोदमें भयसे कांपती हुई सीताको देखकर क्रोधसे लक्ष्मणके साथ विराधकी छाती पर बाण प्रहार करने लगे।

[2]विशिखे विशिखे [3]तस्मिन्विधातृवरवर्मणि।
सीतां विक्षिप्य[4] चिक्षेप शूलं रक्षो रघूद्वहे॥ २॥

विशिखेति। 'विधातुः ब्रह्मणः वरः अभयदानम् एव वर्म कञ्चुकं यस्य तस्मिन् विधातुर्वरस्य प्रसादादवध्यतां गते तस्मिन् विराधे विषये (तमुद्दिश्य प्रहृते) विशिखे विशिखे त्रुटिताग्रभागे (वज्रोपमतद्गात्रसम्पर्कवशात् त्रुटितपुंखे सति-त्यर्थः। तावतापि प्रहारेणाकिञ्चित्करेणापि स्वापमानमुत्प्रेक्ष्य) रक्षः राक्षसोऽसौ विराधः सीतां विक्षिप्य विहाय रघूद्वहे रामे (लक्ष्ये) शूलं नामास्त्रभेदं चिक्षेप प्रयुक्तवान्॥ २॥

जब ब्रह्माके वरदान रूप कवचसे आवृत उस राक्षस विराधकी देहके सम्पर्कसे रामका बाण निष्फलप्रहार-कुण्ठित हो गया तब उस राक्षस विराधने सीताको छोड़कर रामके ऊपर शूल चलाया॥ २॥

तदनु शूलमखण्डयदञ्जसा शितशिखं रघुनायकसायकः।
नियतमेव विराधविरोधिनां हृदयशूलमपि त्रिदिवौकसाम्॥ ३॥

तदन्विति। तदनु विराधविहितशूलप्रहारात् परतः रघुनायकसायकः रामबाणः शितशिखम् तीक्ष्णाग्रभागम् शूलम् अस्त्रभेदम् अञ्जसा त्वरितम् अखण्डयत् अच्छिनत्, तथा विराधविरोधिनाम् विराधकृतोपद्रवसन्तप्ततया तच्छत्रुभूतानाम् त्रिदिवौकसाम् देवानाम् हृदयशूलम् मनःखेदम् अपि नियतमेव अवश्यमेव अखण्डयत् दूरीचकार रामेण खण्ड्यमानम् विराधशूलमवेक्ष्य भाविरामविजय-सम्भावनया देवा अपगतमनःखेदा अजायन्तेत्युत्तरार्धार्थः। अत्रोभयोः शूलयोः

१. निजघान' इति पाठान्तरम्। २. एतत्पूर्वम् 'ततः' इति पाठान्तरं क्वचित्।
३. 'तत्र' इति पाठान्तरम्। ४. 'निक्षिप्य' इति पाठान्तरम्।

प्रकृतयोरेवैकत्र खण्डनक्रियायामन्वयात् तुल्ययोगितानामालङ्कारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्, 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणात् ॥ ३ ॥

इसके बाद तीक्ष्णमुख विराधशूलको रामके बाणने झटसे खण्डित कर दिया और इस प्रकार उस रामबाणने निश्चय ही विराधके शत्रु देवोंके हृदयशूल—मानसिक कष्टको खण्डित कर दिया, (देवोंके हृदयमें आश्वासन उत्पन्न हुआ) ॥ ३ ॥

विराधोऽपि क्रुधा सरभसमभिपत्य स्कन्धे निधाय रामलक्ष्मणौ गतिनिरोधा[1]पराधपरिहाराय हिमकराहि[2]मकरौ प्रस्थे वहन्विन्ध्य इव प्रतस्थे ।

विराधोऽपीति। विराधः तदाख्यो राक्षस अपि क्रुधा शूलखण्डनजनितेन कोपेन सरभसम् वेगेन अभिपत्य समीपमागत्य गतिविरोधापराधपरिहाराय स्वकृतस्य गतिविरोधरूपस्यापराधस्य मार्जनाय प्रसिषादयिषयेव रामलक्ष्मणौ स्कन्धे निधाय अवस्थाप्य प्रस्थे सानुनि हिमकरश्चन्द्रः अहिमकरः उष्णदीधितिः सूर्यस्तौ वहन् धारयमाणः विन्ध्यः विन्ध्याचल इव प्रतस्थे चचाल। इदमत्र बोध्यम्, पुराऽस्यर्थमुच्छ्रयमाणे विन्ध्यपर्वते सूर्याचन्द्रमसोर्गतिरोधोऽजायत, तेन तावकुप्यतां, तयोः प्रसादनाय विन्ध्यस्तौ स्वसानुनि धृत्वाऽचरत्, तथैव विराधोऽपि पूर्वं रामलक्ष्मणयोर्गतिमरौत्सीत्, तमात्मापराधं परिमिमार्जयिषुरिवासौ तौ स्कन्धदेशेऽवस्थाप्य प्रस्थित इत्युपमा। 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' इत्यमरः।

विराध भी क्रोधपूर्वक दौड़ कर पहले किये गये गतिरोध रूप अपने अपराधको दूर करनेके ख्यालसे राम और लक्ष्मणको कन्धे पर रखकर—शिखर पर सूर्य तथा चन्द्रमाको धारण करने वाले विन्ध्य पर्वतकी तरह चल दिया।

रामस्तत्र विराधवधोद्युक्तं सौमित्रिमेवमभिदधे ।

रामस्तत्रेति। तत्र तस्मिन् समये विराधवधोद्युक्तम् विराधं हन्तुमुद्यतम् सौमित्रिम् लक्ष्मणम् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अभिदधे उक्तवान्।

उस समय विराधको मारनेके लिये उद्यत लक्ष्मजीसे रामने इस प्रकार कहा।

या तु नः पदवी सैषा[3] यातुनश्चास्य लक्ष्मण ।
यातुकामं तयैवेदं यातु कामं न हन्यताम् ॥ ४ ॥

यातुन इति। हे लक्ष्मण, यातु या एव नः अस्माकम् पदवी मार्गः (येनवयाऽस्माभिर्गन्तव्यम्) सा एषा एव सर्वांशतः सैव अस्य यातुनः राक्षसस्य विराधस्य पदवी पन्थाः विद्यत इति शेषः। तयैव पदव्या यातुकामम् गन्तुमिच्छुत् इदम्

१. 'परिहरणायैव' इति पाठान्तरम्। २. 'मिहिरहिमकरौ' इति पाठान्तरम्।
३. 'सेयम्' इति पाठान्तरम्।

विराधलक्षणम् रक्षः कामं यातु यथारुचि गच्छतु, न हन्यताम् भवता न निष्यताम् । यामेव दिशं येन वर्त्मना वयं गन्तुकामास्तामेव दिशं तेनैव पथा... विराधो यियासति, तद्वयं तथेच्छं गच्छतु, भवता न हन्यताम् । (अस्मान् स्कन्धे वहतोऽस्य प्रस्थानेन वयमप्ययत्नलङ्घितगन्तव्यवर्त्मानो भवामस्तदलमस्य वधेनेति। "अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' 'नैर्ऋतो यातु रक्षसी' इत्युभयत्रामरः। यातुं कामः इच्छा यस्य तद्यातुकामम्, 'तुं काममनसो'रिति मलोपः। रामकर्तृक कान्तारसुखसञ्चरणकार्ये काकतालीयन्यायेनान्यस्यार्थस्य रक्षः कृतवहनस्योपस्थित्या सौकर्यात् समाधिर्नामालङ्कारः, तदुक्तं दर्पणे 'समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात्' इति ॥ ४ ॥

हे लक्ष्मण, हमलोगों को जिस मार्गसे जाना है इस राक्षसको भी उसी मार्गसे जाना है, यदि यह उसी मार्गसे चलता है तब इसे मत मारो (जोही कुछ दूर तक इसके कन्धे पर बैठे बैठे निकल चलेंगे) ॥ ४ ॥

अयि कवलय मामम् विमुञ्चेत्यतिकरुणं रुदतीमवेक्ष्य सीताम्।
अरमरचयतामुभावसिभ्यां पिशितभुजं भुजभारहीनमेनम् ॥ ५ ॥

अयि कवलयेति । अयि अरे राक्षस, माम् कवलय भक्षय, अमू इमौ रामलक्ष्मणौ विमुञ्च त्यज इति एवं प्रकारेण अतिकरुणम् अतिदीनम् रुदतीम् अश्रुमुञ्चतीम् सीताम् अवेक्ष्य विलोक्य उभौ रामलक्ष्मणौ एनम् पिशिताशम् विराधम् अरम् शीघ्रम् असिभ्याम् स्वस्वकरवालाभ्याम् भुजभारहीनम् बाहुकृतभारविहीनम् छिन्नभुजमित्यर्थः अरचयताम् व्यधत्ताम् । स्कन्धे सर्वान् समादाय गच्छति विराधे भीता सीता 'मामशान, जहीहि चेमौ' इति दीनभावेन विराधं साश्रुमुखी वक्तुमारभत, तां तथा दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणश्च स्वासिभ्यां तस्य बाहू अच्छिन्तामिति भावः । 'लघुक्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्यमरः । पुष्पिताग्रावृत्तम्—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' इति तल्लक्षणात् ॥ ५ ॥

अरे राक्षस, मुझे खाजा और इन दोनोंको छोड़ दे, इस प्रकार करुण रोदन करती हुई सीताको देखकर राम और लक्ष्मणने शीघ्र अपनी २ तलवारोंसे विराधके दोनों हाथ काटकर उसे हाथके मारसे मुक्त कर दिया ॥ ५ ॥

ततस्तीक्ष्णतर[1]प्रहरणगवाक्षितवक्षसा रक्षसा न परित्यक्तेषु प्राणेषु पराक्रमाविषयपराक्रमौ प्राक्रमेतामेतौ तदङ्गगलितरुधिरधारासेकेन ...क्षमायां काननक्षमायां राक्षसशवोचितम[2]वटमतिविशङ्कटमुत्पादयितुम्

१. 'क्षुरप्रप्रहरण' इति ताठान्तरम् । २, 'विकटमवटम्' इति पाठान्तरम् ।

तत इति। ततो विराधभुजच्छेदानन्तरम् तीक्ष्णतरैः प्रहरणैः शूलकुन्तबाणादिभिः करणैः गवाक्षितम् संजातगवाक्षम् शतच्छिद्रतां गमितं वक्षः उरोदेशो यस्य तेन तथोक्तेन रक्षसा राक्षसेन विराधेन न परित्यक्तेषु प्राणेषु (वक्षसि शतच्छिद्रेऽपि सप्राणे विराधे वर्त्तमाने इत्याशयः) महासत्त्वतया ब्रह्मवरेण वा तस्य प्राणेष्वनिर्गतेषु पराक्रमाविषये अन्यदीयपराक्रमाविषये परकीयपराक्रमेणासाध्ये कर्मणि पराक्रमः शक्तिर्ययोस्तौ तथोक्तौ अन्यासाध्यकार्यसाधनक्षमशक्तिसम्पन्नाविति भावः। एतौ रामलक्ष्मणौ तदङ्गेभ्यः विराधदेहावयवेभ्यः गलिता क्षरिता या रुधिरधारा शोणितप्रवाहस्तयोः सेकेन आप्लवेन खननक्षमायाम् खननयोग्यतां गतायाम् (कठिना हि वनभूमिर्विना सेकं खनितुमक्षमा, विराधाङ्गस्रवच्छोणितोक्षिततया मृदुभूय खननयोग्यायां सत्याम्) काननक्षमायाम् वनभुवि राक्षसशवोचितम् राक्षसदेहस्थापनयोग्यम् (विशालम्) अति विशङ्कटम् अतिमहान्तम् अवटम् गर्त्तम् उत्पादयितुम् रचयितुम् प्राक्रमेताम्। प्रारब्धवन्तौ तीक्ष्णतरैः प्रहरणैः क्षतस्य वक्षसो जातेपि शतच्छिद्रत्वे विराधप्राणानबहिर्गच्छतो निरीक्ष्य तस्य भूमौ खातायां स्थापनमेव लोकहितं सम्भावयन्तौ रामलक्ष्मणौ तदङ्गस्रवच्छोणितधारोक्षणमृदूभूतायां वनभुवि तच्छरीरस्थापनार्हावकाशं महान्तं गर्त्तं कर्त्तुं प्रक्रान्तवन्तावित्यर्थः। 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमा' 'विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्' गर्त्तावटौ भुवि श्वभ्रे' इति सर्वत्रामरसिंह।

इसके बाद तीक्ष्णतर अस्त्रोंके प्रहारसे विराधकी छातीमें खिड़कीसी बन गई (अनेक छिद्र बन गये) तथापि उसके प्राणोंको नहीं निकलते देखकर असाध्यसाधन समर्थ पराक्रमशाली राम-लक्ष्मण विराधकी देहसे बहती हुई रुधिर धारा द्वारा सिक्त होनेसे कोमलताको प्राप्त वनभूमिमें राक्षसशवके रखने योग्य अतिमहान् गढ़ा खोदना प्रारम्भ किया।

तत्क्षणमेव क्षणदाचरोऽपि संजातप्रत्य[1]भिज्ञो रामाय व्यजिज्ञपत्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्नेव समये गर्त्तखननकाल इत्यर्थः, क्षणदा रात्रिस्तस्यां चरति भ्रमतीति क्षणदाचरो राक्षसो विराधः अपि संजातप्रत्यभिज्ञो जातस्मृतिः समुत्पन्नप्राचीनघटनाविषयकप्रबोधः सन् रामाय व्यजिज्ञपत् निवेदितवान्। 'त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः।

उसी समय विराधको पुरानी बातोंकी स्मृति हो आई और उसने रामसे निवेदन किया।

आत्मनो गन्धर्वकुलसंभवं रम्भापरि[2]रम्भणारम्भसंरम्भं तच्छ्रवणकुपितवैश्रवणदत्तां[3] रक्षोरूपिणीं शापव्यापदं तस्यास्तथाविधमवसानम् च।

---

१. 'प्रत्यभिज्ञः सन्रामं' इति पाठान्तरम्। २. 'परिरम्भ' इति पाठान्तरम्।
३. 'दत्तः' इति पाठान्तरम्।

आत्मन इति। आत्मनः स्वस्य गन्धर्वकुलसम्भवम् देवगायकवंशे जन्म, रम्भाया नलकूवरस्त्रियाः कुबेरस्नुषायाः परिरम्भणस्य बलादालिङ्गनस्य आरम्भे आद्यकृतिरूपे संरम्भम् उद्योगम्, तच्छ्रवणेन तस्य मया कृतस्य रम्भालिङ्गनोद्योगस्याकर्णनेन कुपितः सञ्जातक्रोधो यो वैश्रवणः कुबेरस्तेन दत्ताम् आदिष्टाम् रक्षोरूपिणि राक्षसभावप्राप्तिस्वरूपाम् शापव्यापदम् शापरूपामापत्तिम् तस्याः शापरूपाया आपत्तेः तथाविधम् रामकृतवधसमाप्यम् अवसानम् समाप्तिम् च व्यजिज्ञपत् इति पूर्वोक्तक्रियया' वाक्यपूर्त्तिः। पुराहं गन्धर्वकुले जन्माग्रहीषम्, तत्र जन्मनि मया बलाद्रम्भायाः कुबेरस्नुषाया आलिङ्गनायोद्योगः कृतः, मदीयं तादृशमनुचितमुद्योगमाकर्ण्य कुपितः कुबेरो मां राक्षसभावेनाशपत्, परतः प्रार्थनादिना प्रसादितोऽसौ 'रामेण संयुगे निहतो राक्षसभावान् मोचयसे' इति शापान्तमाख्यदित्यभिहितवान्विराधो राममिति सरलार्थः। विश्रवसोऽपत्यं वैश्रवणः, 'विश्रवसो विश्रवणरवणौ' इति प्रकृतेर्विश्रवणादेशः। 'किन्नरेशो वैश्रवणः' इत्यमरः। उक्तार्थप्रसङ्गो रामायणे—'अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम्। तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन ह। प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः। यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे। तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति। इति वैश्रवणो राजा रम्भाऽऽसक्तमुवाच ह'।

विराधने रामजीसे निवेदन किया कि मैंने गन्धर्व वंशमें जन्म लिया, एक समय मैंने रम्भासे बलात् आलिङ्गन करने की चेष्टा की, मेरी इस अनुचित चेष्टासे क्रुद्ध होकर कुबेरने मुझे राक्षसभावका शाप दे दिया, (बड़ी प्रार्थनाके बाद) उन्होंने अपने शापका यह अन्त बताया कि रामके द्वारा मारे जाने पर तुम राक्षसत्वसे मुक्ति प्राप्त करेगा।

रक्षोवधः प्रकृत इत्ययमेव शंसे-
त्स्वर्गाय गायकपदं गमितो विराधः।
नागालयाय वपुरस्य वदेदितीव
श्वभ्रे तदक्षिपदिषुप्रहतं स रामः॥ ६॥

रक्षोवध इति। गायकपदं गमितः शापावसानद्वारा गन्धर्वभावं प्रापितः अयं विराध एव स्वर्गगतः सन् स्वर्गाय स्वर्गवासिलोकाय रक्षोवधः प्रकृतः राक्षसमारणं प्रारब्धम् इति शंसेत् कथयेत् अस्य विराधस्य वपुः शरीरम् (अतिमहत्तया पातालस्पृशि गर्त्ते निक्षिप्ततया पातालं गतं सत्) नागालयाय पातालवासिलोकाय (रक्षोवधः प्रकृतः इति शंसेत्) इतीव हेतोरस्मादेव स रामः इषुप्रहतं बाणविद्धं तत् विराधशरीरम् श्वभ्रे गर्त्ते आक्षिपत् क्षिप्तवान्। एकेनैव विराधवधेन स्वर्गपातालयोरुभयोरपि लोकयो राक्षसवधप्रारम्भसूचनां दत्तवान् राम इति भावः॥ ६॥

गन्धर्व रूपको प्राप्त कर शापान्तमें जब यह विराध स्वर्ग जायेगा तब वहाँ वालोंको यह खबर हो जायगी कि राक्षसोंका वध शुरू हो गया और इसकी देह इस गढ़ेमें रख दी जायगी, इससे पाताल वालोंको राक्षसवधके प्रारम्भ की सूचना मिल जायगी इसीलिये बाणविद्ध विराधदेहको रामने उस गढ़ेमें डाल दिया ॥ ६ ॥

तदनु नाकलोकभजनाय पुरुहूतेन समाहूतस्य भगवतः शरभङ्गस्याश्रमपदं रघुपतिरभजत ।

तदन्विति । तदनु विराधवधात् परतः रघुपतिः रामः नाकलोकभजनाय स्वर्गमाप्तुम् (स्वर्गे वासं कर्त्तुम्) पुरुहूतेन इन्द्रेण समाहूतस्य सादरमाकारितस्य भगवतः तपस्यामहिम्ना सर्वविधसामर्थ्यशालिनः शरभङ्गस्य तदाख्यस्यर्षेः आश्रमपदम् तपस्याप्रयोजनकावासदेशम् अभजत प्राप्तवान् । विराधं हत्वा भगवान् रामः सन्निकटस्वर्गप्रयाणदिवसस्य शरभङ्गनाम्नो महर्षेराश्रमं गतवानित्यर्थः ।

विराधको मारकर भगवान् रामचन्द्र इन्द्रद्वारा स्वर्गमें रहनेके लिये सादर बुलाये गये महर्षि शरभङ्गके आश्रममें गये ।

तत्र—

दशशतनयनेऽपि वीक्ष्यमाणे दशरथपुत्रसिषेविषैव जाता ।
मनसिजशरभङ्गकारिवृत्तेर्मनसि मुनेः शरभङ्गनामभाजः ॥ ७ ॥

तत्र-दशशतनयनेऽपीति । तत्र तस्मिन् समये रामे आश्रमं प्राप्ते सति दशशतनयने सहस्राक्षे वीक्ष्यमाणे दृश्यमाने अपि (स्वर्गं गच्छता तेन साक्षात्कर्त्तुं शक्येऽपीत्यर्थः) मनसिजः कामदेवः तस्य शराः बाणाः तेषाम् भङ्गः स्वव्यापारवैफल्यं तत् करोतीति मनसिजशरभङ्गकारिणीवृत्तिः व्यवहारो यस्य तस्य तथोक्तस्य कामबाणवैयर्थ्यकारिव्यवहारस्य सततनिःस्पृहस्येत्यर्थः शरभङ्गनाम्नो मुनेः मनसि हृदये दशरथपुत्रसिषेविषा रामाराधनेच्छा एव जाता, स्वर्गं गत्वा शक्रसाक्षात्कारापेक्षया महात्यागी शरभङ्गो रामाराधनमेव बहुमन्यतेति भावः । दशशतनयनं विहाय दशरथपुत्रसेवायाः स्वीकारोऽत्र चमत्कारकभावेनोपनिबद्धो बोद्धव्यः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ७ ॥

हजार नेत्रवाले इन्द्रके दर्शनका अवसर मिलने पर भी कामबाणको व्यर्थ करनेवाले परमविरक्त शरभङ्ग ऋषिके हृदयमें दशरथ पुत्र-रामकी सेवा करनेकी ही इच्छा हुई, अर्थात् स्वर्ग जानेकी बातको कुछ दिनोंके लिये टालकर शरभङ्गने रामका सत्सङ्ग ही करना इष्ट समझा ॥ ७ ॥

स मुनिराश्रमस्थं काकुत्स्थमातिथ्येन समाराध्य तत्सान्निध्याच्छुद्धां

मन्त्रपूता[1]माहुतिमि[2]वात्मतनुं अतनूष्मणि तनूनपाति पातयित्वा शाश्वतं पदं समाश्रितवान् ।

स मुनिरिति। स मुनिः शरभङ्गः आश्रमस्थम् स्वाश्रममागतम् काकुत्स्थम् रामचन्द्रम् आतिथ्येन अतिथिसत्कारेण समाराध्य अभ्यर्च्य, तत्सान्निध्यात् रामसम्पर्कमाहात्म्यात् शुद्धाम् विगतसकलदोषाम् आत्मतनुम् स्वदेहम् मन्त्रपूताम् मन्त्रमहिम्ना पवित्रीकृताम् आहुतिम् इव अतनूष्मणि समिद्धतमे तनूनपाति वह्नौ पातयित्वा (अतिप्रदीप्तेऽग्नौ शरीरं विसृज्य) शाश्वतम् नित्यं ब्रह्मलक्षणम् पदम् समाश्रितवान् गत इत्यर्थः । राममतिथिसेवयाऽभ्यर्च्य तत्सान्निध्यवशोपजातशरीरशुद्धिः शरभङ्गो निजान्तनुमग्नौ निक्षिप्य मुक्तो जात इति भावः । अत्रात्मघातदोषस्तु नोद्भाव्यः—'अनुष्ठानासमर्थस्य वानप्रस्थस्य जीर्यतः । भृग्वग्नेजलसम्पातैर्मरणं प्रविधीयते' इति स्मृत्या तस्यामवस्थायां वह्निप्रवेशस्यानुशिष्टत्वात् । तनुं न पातीति तनूनपात्–अग्निः । 'कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात् इत्यमरः ।

शरभङ्ग ऋषिने आश्रममें आये हुए भगवान् रामकी बड़ी अतिथि सेवाकी और उनके सान्निध्यसे शुद्ध अपनी देहको मन्त्रपूत आहुतिकी तरह धधकती हुई आगमें डालकर नित्यपद—ब्रह्मपद प्राप्त किया ।

ततस्तीक्ष्णतपसः [3]सुतीक्ष्णस्य निदेशेन[4] देशात्तस्मादुच्चलितः सलिलनिधिपानसम्भावितजीवनाभावशङ्कया शरणाश्रयणाय लम्बमाननीलाम्बुदकुटुम्बसन्देहावहेन नानानोकहनिवहेन पिहिताभोगमगस्त्याश्रमं [5]रामः ससंभ्रममासंसाद । अकथयच्च मैथिलीम् ।

तत इति । ततः शरभङ्गमोक्षानन्तरम् तीक्ष्णतपसः तीव्रतपस्यापरायणस्य सुतीक्ष्णस्य तदाख्यस्य मुनेः निदेशेन अनुज्ञया तस्माद्देशात् शरभङ्गाश्रमात् उच्चलितः कृतप्रस्थानः रामः—सलिलनिधेः समुद्रस्य पानम् अगस्त्यकृतमाचमनं तेन सम्भाविता या जीवनस्य जलस्य प्राणधारणस्य वाऽभावशङ्का अभावसम्भावना तया हेतुभूतया शरणाश्रयणाय अगस्त्यं शरणमुपगन्तुम् लम्बमानाः समागताः ये नीलाम्बुदाः कालमेघाः तेषां कुटुम्बः परिवारस्तत्सन्देहावहेन तत्संशयं जनयता (अगस्त्याश्रमवृक्षगणं दृष्ट्वा लोकानां मनसि समुद्रे मुनिना पीते जलाभावेन मेघानां जीवनं न चलेदतो मेघपरिवारा एवेमे मुनिं शरणं प्रपन्ना इति सन्देह

१. 'आहुतिम्' इति पाठान्तरम् । २. 'आत्मनस्तनुम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'सुतीक्ष्ण' इति पाठान्तरम् । ४. 'निदेशात्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'रामः ससंभ्रमम्' इति नास्ति क्वचित् ।

उत्पद्यते इति उत्प्रेक्षार्थः) नानानोकहनिवहेन विविधवृक्षसमुदयेन पिहिताभोगम् आच्छादितविस्तारम् अगस्त्याश्रमम् ससम्भ्रमम् आदरकृतेन वेगेन सह आससाद प्रापत् मैथिलीम् सीताम् च अकथयत् वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवान् ।

तीव्रतपस्याकारी सुतीक्ष्णमुनिके आदेशानुसार शरभङ्गमुनिके आश्रमसे चलकर समुद्रके पिये जानेसे जलके अभावमें जीवनाभावकी सम्भावनासे यह मेघपरिवारही अगस्त्यकी शरणमें आया हुआ है ऐसा सन्देह पैदा करनेवाले वृक्षगणसे वेष्टित अगस्त्याश्रमको आदर-कृतवेगसे आकर रामने सीतासे कहा ।

तस्येदमाश्रमपदं [1]सरसीरुहाक्षि
संख्याविहीनमहिमैकनिकेतनस्य ।
भर्ता समस्तसरितां कुपितस्य यस्य
हस्तारविन्दमकरन्ददशामवाप ॥ ८ ॥

तस्येदमिति । हे सरसीरुहाक्षि कमललोचने, इदम् पुरोदृश्यमानम् सङ्ख्याविहीनाः ये महिमानः प्रभावातिशयास्तेषाम् एकनिकेतनस्य अनन्याश्रयस्य तस्य अगस्त्यस्य आश्रमपदम् तपस्यास्थानम् , समस्तसरिताम् अखिलानाम् नदीनाम् भर्ता स्वामी समुद्रः कुपितस्य क्रुद्धस्य यस्य हस्तारविन्दयोः कमलतुलयोः करयोर्मकरन्दः परागविन्दुस्तस्य दशाम् अवस्थाम् तुलनाम् अवाप प्राप्तवान् । यस्यासीममाहात्म्यनिधेरगस्त्यस्य कुपितस्य सतः करे कृतः सकलनदीनाथः सागरोऽपि तत्करकमलमकरन्दविन्दुभावंगतस्तस्यैवाश्रमपदमिति भावः । अधिकालङ्कारप्रभेदोऽयम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

हे कमलनयने सीते, असीम माहात्म्यशाली उस महामुनि अगस्त्यका यह आश्रम है जिनके कुपित होने पर सकल नदियोंका स्वामी समुद्र जिनके करकमलमें मकरन्दविन्दुकी दशाको प्राप्त होगया, अर्थात् जिस प्रकार कमलमें मकरन्दविन्दु किसी अंश विशेषमें लगे रहते हैं, उनको रखनेमें कमलको कुछ आयास नहीं होता है उसी प्रकार अगस्त्य मुनिके हाथोंने समुद्रको अनायास अपने ऊपर रख लिया था ॥ ८ ॥

इह समदगजेन्द्रन्यस्तहस्तातिभारा-
त्पथि [2]नियमितशाखः सल्लकीवृक्ष एषः ।
अभिनयति निकामं संगतोच्छ्रायहानि-
र्मुनिवरकरपाताद्भुग्नविन्ध्याद्रिमुद्राम् ॥ ९ ॥

इहेति । अस्मिन्नगस्त्याश्रमे समदेन मत्तेन गजेन्द्रेण करिराजेन न्यस्तस्य स्थापितस्य हस्तस्य शुण्डादण्डस्यातिभारात् भाराधिक्यवशात् नियमितशाखः

१. 'सरसीरुहाक्षी' इति पाठान्तरम् । २. 'विनमित' इति पाठान्तरम् ।

भुग्नविटपः अत एव सङ्गता प्राप्ता उच्छ्रायहानिः औन्नत्यभङ्गो येन तादृशः एष पुरतो दृश्यः सल्लकीवृक्षः गजभक्ष्यवृक्षभेदः निकामम् अत्यर्थम् मुनिवरस्य अगस्त्यस्य करपातात् हस्तनिपातात् भुग्नः अवनतो यो विन्ध्याद्रिस्तस्य सुग्राम् सादृश्यम् अभिनयति प्रकटयति। अयमाशयः—अस्याश्रमे वर्त्तमानस्य सल्लकीवृक्षस्योपरि पल्लवग्रहणार्थं मत्तेन गजेन पातितस्य शुण्डादण्डस्य भारात्तस्य वृक्षस्य शाखा भुग्ना जाता, तदीयमौन्नत्यं चाहीयत, स तथा प्रतीयते यथा पुरा सुमेरुस्पर्धयोन्नमन् विन्ध्यो देवप्रार्थनया मुनिनाऽगस्त्येन स्वबाहुं पातयित्वा सुग्नतां गमितः स्यादिति भावः 'उच्छ्रायपदे घञुपपत्तिश्चिन्त्या। 'गन्धिनी गजभक्ष्या तु सुवहा सुरभी रसा। मेहरणा कुन्दरुकी सल्लकी ह्लादिनीति च' इत्यमरः। अत्राभिनयतेः सादृश्यपर्यवसायितयोपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ ९ ॥

इस आश्रममें स्थित मतवाले हाथियों द्वारा डाले गये शुण्डादण्डके भारसे जिसकी डालियाँ झुक गई हैं तथा ऊँचाई कम हो गई हैं ऐसे यह सल्लकी वृक्ष अगस्त्यमुनिके हाथके पड़नेसे झुके हुए विन्ध्य पर्वतकी तुलनाको प्राप्त कर रहे हैं ॥ ९ ॥

[1]अस्मिन्महापथधिया वदनं विगाह्य
निर्गन्तुमक्षमतया जठरे लुठद्भिः।
वन्यैर्गजैरजगराः पिशिताशनेभ्यो
वातापिदानवदशामुपदेशयन्ति ॥ १० ॥

अस्मिन्निति। अस्मिन् अगस्त्याश्रमे (अजगराणाम्) वदनम् व्यात्तं मुखम् महापथधिया महानयं मार्ग इति भ्रान्त्या मत्या विगाह्य प्रविश्य निर्गन्तुम् अक्षमतया वहिर्भवितुम् असमर्थतया जठरे अजगराणां तेषाम् कुक्षिदेशे लुठद्भिः इतस्ततः आवर्त्तमानैः वन्यैः गजैः करिभिः दृष्टान्तभूतैः अजगराः सर्पभेदाः पिशिताशनेभ्यः राक्षसेभ्यः वातापिदानवदशाम् वातापिनामकदानवेन प्राप्ताम् दशाम् उपदेशयन्ति ज्ञापयन्ति। अत्राश्रमे कतिपये महान्तोऽजगरास्सन्ति तेषां व्यात्ते मुखे महापथबुद्ध्या गजाः प्रविशन्ति परं बहिर्भवितुमशक्ततया तत्रैवावर्त्तन्ते, तान्दृष्टान्तभावेनोपस्थाप्य राक्षसानुपदिशन्तीमेऽजगरा यदत्रमापदं निधा अन्यथा तवापीयमेव दशा भविष्यति, यदि मदुक्तिं न विश्वसिषि तदा स्मरवातापि वृत्तान्तमिति भावार्थः। पूर्वमगस्त्यमुनिनोपद्रवीवातापी भक्षितो यथा स्मर्यते आतापी भक्षितो येन वातापी च महाबलः इति। अत्राजगराणामुपदेशनक्रियाऽसंबन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादसंबन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १० ॥

१. 'अस्मिन्' इति पाठान्तरम्।

इस आश्रममें कुछ अजगर हैं जिनके मुखमें सड़ककी तरह चौड़ी राह देखकर वनगज प्रवेश तो कर जाते हैं किन्तु बाहर नहीं निकल पानेके कारण उनके पेटमें ही घूमते रहते हैं, उनको दृष्टान्त बनाकर वे अजगर राक्षसोंको वातापिदानव की दशाका उपदेश किया करते हैं, अर्थात् राक्षसोंको बताते हैं कि यदि तुम यहाँ कुछ उपद्रव करोगे तो जैसे वातापिनामक तुम्हारा सगोत्र अगस्त्यके उदरमें पच गया उसी तरह तुम्हें भी हम अपने उदरमें पचा लेंगे, इन हाथियोंको देख कैसे पच रहे हैं ॥ १० ॥

[1]किञ्च—

चुलु[2]कगतसमुद्रास्वादने कुम्भयोने-
रितरकरनिरस्ता मक्षिकोत्साररीत्या।
गगनगतिविहीना ये घनाः पल्वलान्ते
विपिनमहिषवेषैः केवलं ते वलन्ते ॥ ११ ॥

किञ्च, चुलुकेति। ये घनाः मेघाः चुलुकगतस्य समुद्रस्य दक्षिणकरस्थस्य सागरस्य आस्वादने अगस्त्यमुनिकृतपानसमये मक्षिकोत्साररीत्या मक्षिकानिराकरणप्रक्रियया कुम्भयोनेः अगस्त्यस्य इतरकरनिरस्ताः वामेन करेण दूरे क्षिप्ताः, गगनगतिविहीनाः अगस्त्यकृतभूपातनजन्याङ्गभङ्गेन वियति विहर्त्तुमक्षमाः—ते घनाः केवलम् पल्वलान्ते अल्पजलाशयपरिसरे विपिनमहिषवेषैः वन्यमहिषाकृतिभिः वलन्ते सञ्चरन्ति। अयमाशयः—यथा कोऽपि किमपि वस्तुकरे निधाय पिबन् तत्रापतितां मक्षिकां वामेन पाणिनाऽपसार्य भूमौ क्षिपति, तत्र कदाचित् क्षिप्यमाणानां मक्षिकाणां मध्ये कासाञ्चिन्मक्षिकाणामङ्गभङ्गोऽपि सञ्जायते येन ता उत्पतितुं न शक्नुवन्ति, अगस्त्योपि समुद्रं पिबन् स्वपेयपदार्थे समुद्रे पततो मेघान् वामेन पाणिना निरास्थत्तत्र तत्कृतनिरासजन्याघातेन कतिचन मेघा गगनगतिविहीनाः समपद्यन्त, मन्येत एवेमे वनमहिषा भूत्वा पल्वलसमीपे सञ्चरन्ति इति। अत्र पल्वलगतवनमहिषाणां मेघत्वेनासम्भावनादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः, मालिनीवृत्तम्। 'पल्वलोऽल्पजलाशयः' इत्यमरः ॥ ११ ॥

अगस्त्य जब समुद्रका पान कर रहे थे उस समय समुद्रमें जो मेघ घूम रहे थे उन्हें उन्होंने बायें हाथसे मक्खी की तरह अलग फेंक दिया, उनके द्वारा फेंके जानेके कारण जो मेघ आकाशमें जानेकी शक्तिसे रहित हैं, वही मेघ तालाबके किनारे वनमहिषके रूपमें घूम रहे हैं ॥ ११ ॥

एवं विपिनविलोकनविस्मितमतिस्तदुटजनिकटमासाद्य रामः शिष्यैः

१. 'तत्र' इति पाठान्तरम्। २. 'चुलक' इति पाठान्तरम्।

प्रवेशितः सकललोकवन्द्यमानचरणारविन्दमरविन्दसम्भवमिव वृन्दारकैर्मुनिवृन्दारकैश्च परिवृतं कोपहुंकारनिरहङ्काराय नहुषाय भुजङ्गभावदूषिताय दत्तभुजङ्गभावं खगगतिनिरोधकल्यवैपुल्ययोर्दुरवगाहमहावनयोर्विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोर्गाधतागाधतातस्करकरोदरमुदरजातवेदोविरचितवातापिदानवावलेपलोपं लोपामुद्रावल्लभं सकलसरिद्वल्लभनिःशेषीकरणवाडवं वाडवप्रशस्तमपास्तसमस्ताशमप्युपगतदक्षिणाशं वृषैकतानजन्मानमपि कुम्भजन्मानं भगवन्तमगस्त्यमपश्यत् ।

एवमिति । एवम् अनेन प्रकारेण विपिनविलोकनेन वनदर्शनेन विस्मिता नानाप्रकारकवस्तुदर्शनाच्चकिता मतिर्बुद्धिर्यस्य स तादृशो रामः तदुटजस्य अगस्त्यमुनिपर्णशालायाः निकटं समीपदेशमासाद्य प्राप्य शिष्यैः अगस्त्यमुनेरन्तेवासिभिः प्रवेशितः अगस्त्यसमीपं नीतः सकललोकवन्द्यमानचरणारविन्दम्, समस्तजनप्रणम्यपादकमलम् वृन्दारकैः देवैः अरविन्दसम्भवम् ब्रह्माणम् इव मुनिवृन्दारकैः मुनिश्रेष्ठैः, परिवृतम् वेष्टितम्, भुजङ्गभावः परस्त्रीरूपायां शच्यां लम्पटत्वं तेन दूषिताय दुष्टचरित्राय कोपहुंकारेण कोपसूचकेन हुङ्कारशब्देन निरहङ्काराय अपगतगर्वाय नहुषाय नाम ययातिजनकाय राज्ञे दत्तभुजङ्गभावम् कल्पितसर्पयोनिप्रवेशम्, खे गच्छन्तीति खगाः पक्षिणस्तेषामपि गतिनिरोधे गमनप्रतिबन्धे कल्यं समर्थं वैपुल्यं विशालत्वं ययोस्तादृशयो दुरवगाहं दुष्करप्रवेशम् महत् विशालम् अनन्तञ्च वनं काननं पानीयञ्च ययोस्तथोक्तयोः विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोः विन्ध्याचलसमुद्रयोः गाधता औन्नत्यम् अगाधता गाम्भीर्यञ्च तयोस्तस्करम् अपहारकम् करोदरम् करोहस्त उदरं कुक्षिश्च यस्य तं तथोक्तम्, उदरजातवेदसि स्वीयजठरानले विरचितो विहितः वातापिदानवावलेपलोपः वातापिनामकदैत्यगर्वसंहारो येन तथाविधम्, लोपामुद्रावल्लभम् लोपामुद्रानामकस्वस्त्रीदयितम् सकलानाम् सरितां नदीनां वल्लभः प्रियः सागरस्तस्य निःशेषीकरणे पानेन क्षपणे वाडवम् वडवानलतुल्यम्, वाडवो ब्राह्मणस्तत्र तत्समुदाये प्रशस्तम् उत्तमम् विप्रश्रेष्ठम्, अपास्तसमस्ताशम् त्यक्तसकलस्पृहम् अपि उपगतदक्षिणाशम् आश्रितयाम्यदिशम् (समस्ताशात्यागिनोऽपि दक्षिणाया आशाया उपगमाद्विरोधः, पूर्वोक्तार्थेन तु परिहारो व्यक्तः) वृषैकतानम् धर्मैकास्तं जन्म यस्य तं तथो-

१. 'अरविन्दभवमिव वृन्दारकवृन्दैः' इति पाठान्तरम् ।

२. 'दत्तभुजङ्गभाय मतिनिरोध' इति पाठान्तरम् ।

३. 'कल्प' इति पाठान्तरम् । ४. 'उदरजातजातवेदो जितवातापि' इति पाठान्तरम् ।

५. 'लेपम्' इति पाठान्तरम् । ६. 'ब्राह्मणश्रेष्ठम्' इति पाठान्तरम् ।

कमपि कुम्भजन्मानम् घटोद्भवम् (वृषायत्तजन्मनः कुम्भजन्मत्वेन प्रतीयमानेन प्रतीयते विरोधः परं प्रागुक्तार्थेन परिहारः) भगवन्तं सकलसामर्थ्योपपन्नम् अगस्त्यमपश्यत् । 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । 'मुनिवृन्दारकैः' इत्यत्र 'वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानः' इति समासः । 'वृन्दारकादैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम्' इति 'वृन्दारकौ रूपिमुख्यौ' इति चामरः । दत्तभुजङ्गभावमित्यत्र प्रसङ्गावगतये—पुरा नहुषो नाम राजा पुण्यवशादिन्द्रभावं प्राप्य शचीसम्भोगाय नृयानमारुह्य गच्छन्नवलिप्ततया तद्यानवाहकान् अगस्त्यादीन्मुनीन् 'सर्प सर्प' इति प्रेरयन् कुपितेनागस्त्येन सर्पो भवेति शप्तो भुजङ्गयोनिं गत इति' पौराणिकी कथा स्मर्त्तव्या । दुरवगाहमहावनयोरित्यत्रत्य वनपदस्य काननजलोभयवाचितयोभयत्रान्वयः, 'वने सलिलकानने' इत्यमरः । 'तस्करकरोदरम्' इत्यस्य करनियमितविन्ध्यपर्वतत्वाद्उदरसमावेशितसमुद्रत्वाच्चोपपादनं ज्ञेयम् । लोपामुद्रेति अगस्त्यपत्नीनाम, तथा चामरः—'मैत्रावरुणिरस्यैव लोपामुद्रा सधर्मिणी' । 'वाडवो वडवानलः' 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इति चामरः ।

इस प्रकार वनको देखते हुए आश्चर्यमग्न भगवान् रामचन्द्रको अगस्त्यकी पर्णशालामें समी शिष्योंने उन्हें महर्षिके पास पहुँचाया । वहां जाकर उन्होंने सकललोकसे वन्दित पाद पद्म, जिस प्रकार ब्रह्मा देवोंसे परिवृत रहते हैं उसी तरह मुनियोंसे परिवृत, शचिके प्रति लम्पटभाव धारण करनेके कारण दूषित मनोवृत्ति तथा कुपित अगस्त्यके हुङ्कारसे निरहङ्कार आपको प्राप्त नहुष नामक राजाको सर्पभाव प्राप्त कराने वाले, पक्षिगण भी जिनकी ऊंचाई तथा गहराईसे पार नहीं पा सकते हैं ऐसे अतिविशाल कानन तथा जलराशिवाले विन्ध्यपर्वत और सागरको अवनत तथा रिक्त करने वाले बाहु तथा उदरसे युक्त, जठरानल द्वारा वातापि दानवके दर्पका संहार करनेवाले लोपामुद्राके स्वामी, समस्त नदियोंके स्वामी सागरको निश्शेषित करनेमें बड़वानलके समान, ब्राह्मणोंमें अग्रगण्य, सकल आशाके त्यागी होनेपर भी दक्षिणाशा दक्षिण दिशा (और दक्षिणकी आशा) को स्वीकार करने वाले, वृषधर्ममें एकतान जीवन होकर भी कुम्भसे जन्मग्रहण करने वाले, भगवान् अगस्त्यको देखा ।

प्रभामिवार्कीं तमसां निहन्त्रीं ब्राह्मीं दधानं नियमेन लक्ष्मीम् ।
तपोनिधिं शौर्यनिधिः [1]प्रसन्नः स्वनाम संकीर्त्य ननाम रामः ॥ १२ ॥

प्रभामिवेति । अर्कस्य सूर्यस्य इयम् आर्की ताम् प्रभाम् कान्तिमिव तमसां मोहप्रभवां ज्ञानानां निहन्त्रीम् नाशिकाम् ब्राह्मीम् लक्ष्मीम् ब्रह्मतेजः नियमेन व्रतोपवासादिना दधानम् धारयन्तम् तपोनिधिम् महातपसमगस्त्यम् प्रसन्नः अगस्त्योपगमेनानन्दितः शौर्यनिधिः अतिशूरः रामः स्वनाम निजाभिधानम् सङ्कीर्त्य

१. 'प्रपन्नः' इति पाठान्तरम् ।

उच्चार्य ननाम प्रणतवान्। यथा सूर्यप्रभा रात्रिकृतानां तमसां विघातिका तथाऽज्ञानकृतमोहानां विनाशिकां ब्राह्मण्यलक्षणां समृद्धिं व्रतोपवासादिना समर्जितवन्तं प्रसिद्धतपसमगस्त्यं महाशूरो रामः शास्त्रीयेण विधिना नामोच्चारणपूर्वकं प्रणतवानित्यर्थः प्रभामिवेत्युपमा उपजातिश्छन्दः ॥ १२ ॥

सूर्यकी प्रभाकी तरह अज्ञानतमको दूर करने वाली ब्राह्मण्यरूप समृद्धिको व्रतोंके अनुष्ठानद्वारा धारण करने वाले महातपस्वी अगस्त्यको प्रसन्नमना तथा महाशूर भगवान् रामने अपना नाम आदि बताकर प्रणाम किया ॥ १२ ॥

ततः परमहर्षेण महर्षिणा प्रणीताभिराशीर्भिः सह मुरशासनशरासनं सरसिजासनास्त्रं सौत्रामणं तूणीरयुग्मं रुक्ममयकोशं खड्गं च [1]प्रतिगृह्य तदाज्ञया गोदावरी[2]तटनिकटप्रकटितां पञ्चवटीमसेवत।

तत इति। ततो रामस्यागमनानन्तरम् परमहर्षेण अतिप्रसन्नेन (ब्रह्मरूपस्य सकलाभिलषणीयदर्शनस्य रामस्य स्वयमागत्य दर्शनदानकृपापरायणत्वमगस्त्यहर्षे कारणम्) महर्षिणा अगस्त्येन प्रणीताभिः प्रयुक्ताभिः आशीर्भिः शुभेच्छाभिः सह मुरशासनस्य मुरारेः सम्बन्धिशरासनम् चापम् सरसिजासनो ब्रह्मा तदस्त्रम् ब्राह्मास्त्रम्, सौत्रामणम् इन्द्रसम्बन्धितूणीरयुग्मम् निषङ्गयुगलम्, रुक्ममयकोशम् सुवर्णनिर्मितकोशपरिवृतं खड्गं च प्रतिगृह्य आसाद्य तदाज्ञया अगस्त्यादेशेन गोदावरीनामनदीविशेषस्तस्यास्तटस्य तीरस्य निकटे प्रकटिताम् प्रसिद्धाम् पञ्चवटीम् वटवृक्षपञ्चकयुतत्वेन तदाख्यया प्रथमानां भूमिम् असेवत आश्रयत्वेनाङ्गीकृतवान् इत्यर्थः। 'कोशोऽस्त्रीकुड्मले खड्गपिधाने' इत्यमरः।

इसके बाद परम हृष्ट महर्षि अगस्त्य द्वारा दिये गये आशीर्वादके साथ वैष्णव चाप, ब्राह्म अस्त्र, इन्द्र सम्बन्धी, दो तरकस और सोनेके म्यानसे युक्त तलवार प्राप्त करके उसी महर्षिके आदेशसे गोदावरी तटवर्त्ती प्रसिद्ध पञ्चवटी स्थानमें टिक गये।

तत्र विस्तृतपक्षद्वन्द्वमप्यप्रति[3]द्वन्द्वं शौर्यावस्था[4]प्रत्ययं कृतापरोक्षमिव तादृशं महामहीध्रकल्पं गृध्रराजमद्राक्षीत्।

तत्रेति। तत्र पञ्चवट्याम् विस्तृतं विशालतया ततं पक्षद्वन्द्वम् गरुद्युगलं यस्य तादृशम् अपि अप्रतिद्वन्द्वम् महाबलतया प्रतिस्पर्द्धिरहितम् (अत्र पक्षद्वन्द्ववतोऽप्यप्रतिद्वन्द्वताभिधानात् आपाततो विरोधप्रतिभासो वस्तुतस्तु पूर्वोक्तार्थकतया न विरोधः) शौर्यावस्थाप्रत्ययम् शरीरिणीमिव शौर्यावस्थाम् वीर्यवत्ता ज्ञानम् यथा

१. 'प्रगृह्य' इति पाठान्तरम्। २. 'तटप्रकटिताम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अप्रतिद्वन्द्वशौर्यं' इति पाठान्तरम्। ४. 'प्रत्ययाय' इति पाठान्तरम्।

रूपमुपगतं स्यात्तथा) कृतापरोक्षम् विहितदर्शनम् प्रत्यक्षीभूतम् इव तार्क्ष्यम् गरुडम्, महामहीध्रकल्पम् अतिविशालपर्वतसदृशम् गृध्रराजम् जटायुषम् अद्राक्षीत् दृष्टवान्। 'गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यः' इत्यमरः।

उस पञ्चवटीमें विशालपक्षसे युक्त होने पर भी अप्रतिद्वन्द्व शरीरधारी शौर्यावस्था ज्ञानके रूपमें विद्यमान प्रत्यक्ष दृश्य गरुड़के समान महापर्वतोपम गृध्रराज जटायुको रामने देखा।

पानेन हीनजलमब्धिमपास्य नूनं
मैनाक एष मुनिमाश्रयतीति जाताम्।
शङ्कामिमां रघुपतेः कथितात्मवंश-
स्त्वत्तातमित्रमहमित्यहरज्जटायुः॥ १३॥

पानेनेति। पानेन अगस्त्यकृतचुलुकीकरणेन हीनजलम् वारिविहीनम् अब्धिम् नाममात्रेण सागरम् अपास्य (तत्र निलायनासंभवात् परित्यज्य) त्यक्त्वा नूनम् निश्चयेन एषः प्रत्यक्षदृश्यः मैनाको नाम पर्वतः (स्वत्राणाय-महेन्द्रकोपतः) मुनिमगस्त्यम् आश्रयति शरणमुपैति इति एवम् प्रकाराम् जाताम् प्ररूढाम् रघुपतेः रामस्य शङ्काम् भ्रमम् कथितात्मवंशः प्रोक्तस्ववंशपरिचयः जटायुः त्वत्तातमित्रम् तव पितुर्दशरथस्य सुहृत् अहम् इति अहरत् दूरीकृतवान्। मैनाक एवायं शुष्के सागरे तं परित्यज्य मुनेः शरणमनुप्रपन्न इति रामस्य भ्रमं स्वपरिचयप्रदानविधया जटायुरपासयदित्याशयः भ्रान्तिमानलङ्कारः॥ १३॥

अगस्त्य द्वारा पिये गये रीते सागरको छोड़कर निश्चय ही यह मैनाकपर्वत अगस्त्य मुनिकी शरणमें आया है, इस रामके भ्रमको अपने वंशका परिचय तथा दशरथके साथ अपनी मैत्रीका वर्णन करके जटायुने दूर कर दिया॥ १३॥

रामस्तु दशरथमिव तं पश्यन् [1]काश्यपसंभूतं संपातेरनुजमनुजरचितपर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित्कालं गमयामास।

रामस्तु इति। रामस्तु तं काश्यपसंभूतम् काश्यपादुत्पन्नं सम्पातेः तन्नाम्नो गृध्रराजस्य अनुजं कनिष्ठभ्रातरं जटायुषम् दशरथमिव स्वपितुमित्रे पितृतुल्यादरस्यौचित्येन तमिव पश्यन् सादरं वीक्षमाणः अनुजरचितपर्णशालः। लक्ष्मणकल्पितोटजः पञ्चवट्याम् कञ्चित् कालम् कियन्तं समयं गमयामास व्यतियापितवान्।

रामने काश्यपकुलप्रसूत तथा सम्पातिके अनुज उस गृध्रराजजटायुको पिताजीकी तरह आदरसे देखा, और अपने अनुज लक्ष्मण द्वारा बनाये गये पर्णकुटीरमें रहकर पञ्चवटी नामक स्थानमें थोड़ा समय बिताया।

१. 'काश्यपकुलसंभूतम्' इति पाठान्तरम्।

अथ कदाचिदुपचीयमानमनोभववैभवः पाककपिश[1]कलममञ्जरी-पुञ्जपिञ्जरीभूतकेदारप्रपञ्चः [2]पञ्चबाणरणप्रयाणोचितवीरपाणवत्पत्रपुट-पात्रदृश्यावश्यायबिन्दुसंदोहश्चन्द्रातपे निरानन्दतां चन्दनानुलेपने निर्लो-लुपतां चन्द्रशालायां निराशतां [3]चन्द्रोपलस्थले निरास्थतां वातायन-सेवने निरुत्सुकतां वापीकूपोपकण्ठे निरुत्कण्ठतां वासरावसाने[4]ऽनाद-रतां वारिविहारे निराकाङ्क्षतामुत्पलमालायामुपेक्ष्यतामुपवनभजनेऽप्युद्वि-ग्नतां [5]च जनानां जनयन्गम्भीराभोगगर्भगृहस्य च [6]घनेष्टकारचितभित्ति-रश्लक्ष्णतिरस्करिणीपटलस्य च शशोदररोममृदुकम्बलस्य च कालागरु-धूमस्य च काश्मीराङ्गरागस्य च निर्धूमाङ्गारभरितहसन्तिकायन्त्रस्य च सुभगंकरः, रेणु[7]कणायमानतुषारधूलिधूसरवासरः सरसीरुह[8]दावपावक-स्तुहिनव्रणितला[9]सिकाधरदलदूरीकृतदंशकृत्यः प्रक्षीणतारुण्यपण्याङ्गना-ङ्गवत्प्रयातसौभाग्यप्रपासन्निवेशस्तालवृन्तविश्रान्तिकालः[10] कामिनीस्तन-भरगिरिदुर्गसीम्नि निर्भयनिलीननिदाघभावो दिवाभीतव्रातस्याप्यनति-भयंकरदिवाकरश्चकोरनिकरस्याप्यनतिक्षेमङ्करसुधा[11]करः कादम्बकदम्ब-स्याप्यनतिप्रियं[12]करकमलाकरः [13]कृतकरयुगलस्वस्तिकाबन्धनतया [14]नी-हारातङ्कशङ्कया हृदयकमलमिव गोपायन्तमश्रान्तदन्तवीणाव्यापारवेप-मानाधरपुटतया शीतिकापिशाचिकानिर्हरणाय निपुणं मन्त्रजपमिव कुर्व-न्तमविरलपुलकपालीककम्बलितकलेवरतया सकरुणविधिवितीर्णरोमकम्ब-लकृताङ्गरक्षमिव भिक्षामटन्तं दुर्गतवर्गं निर्घृणा कदाचिदपि कमल-नालो[15]कितवतीति तस्यै सासूय इव तदीयावासताम[16]रसं सपत्नकोशं

---

१. 'कलममञ्जमञ्जरी' इति पाठान्तरम्। २. 'पञ्चबाणप्रयाणो' इति पाठान्तरम्।
३. 'चन्द्रकान्तस्थले' इति पाठान्तरम्। ४. 'निरादरताम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'च' इति नास्ति क्वचित्। ६. 'घनेष्टिकारचितभित्तिश्लक्ष्ण' इति पाठान्तरम्।
७. 'करेणुकरनिकरवर्मकणायमान' इति पा०। ८. 'गहनदाव वनदाव इति च पा०।
९. 'लासिकाधरदूरीकृतवंशकृत्यः' इति पाठान्तरम्। १०. 'करः' इति पाठान्तरम्।
११. 'निशाकरः' इति पाठान्तरम्। १२. 'प्रीतिकर' इति पाठान्तरम्।
१३. 'करयुगकृत' इति पाठान्तरम्। १४. 'नीहारान्तक' इति पाठान्तरम्।
१५. 'नालोकयतीति' इति पाठान्तरम्।
१६. 'तामरसकोशं नाशयन्नङ्गजमतंगज' इति पाठान्तरम्।

विनाशयन्गगनमतङ्गजकरपुष्करोत्थि[1]तशीकरनिकराकारैरतिपरुषस्मरशर-ता[2]पप्रतप्तगगनाङ्गनाङ्गस्रवत्स्वेद[3]सदृक्षैर्[4]क्षीणहिमप्रकरैरध्वगान्तःकरणानि सीमन्तयन्हेमन्तसमयः समुदजृम्भत ।

अथेति । अथ शरदृतोरपगमे कदाचित् कस्मिंश्चित्समये उपचीयमानमनोभववभवः समेधमानकामसामर्थ्यः, (हेमन्तस्य कामोद्दीपकतया तदागमे कामसमृद्धेरौचित्यात्) पाकेन परिणामेन कपिशाः ईषत्पीतवर्णाः याः कलमञ्जर्यः शालिगुच्छास्तासां पुञ्जैः समुदयैः पिञ्जरीभूतः पीतवर्णतां गतः केदारप्रपञ्चः क्षेत्रराशिर्यस्मिन् तथोक्तः, परिणामपीताभिः शालिमञ्जरीभिः पीतवर्णीभूतक्षेत्रसमुदाय इत्यर्थः। 'शालयः कलमाद्याश्च' इत्यमरः। पञ्चबाणस्य कामदेवस्य यद् रणप्रयाणं युद्धयात्रा तदुचितम् तदुपयुक्तम् यद् वीरपाणम् वीरैः करणीयं मद्यपानम् तद्वत् तदिव पत्रपुटपात्रे तरुदलरूपेऽमत्रे दृश्यः प्रतीयमानः अवश्यायबिन्दुसन्दोहः नीहारकणराशिः यत्र तादृशः, हेमन्तर्तौ पत्रेषु नीहारबिन्दवो दृश्यन्ते ते विजययात्राकाले कामस्य वीरपाणवत् प्रतिभान्ति वीरा हि युद्धाय प्रतिष्ठमानाः स्वोत्साहवर्धनाय पात्रे मद्यमादाय पिबन्ति, मन्ये पत्रपुटपात्रे धृता अवश्यायबिन्दवो मनसिजवीरेण पास्यमाना मद्यसमुदया एव सन्तीत्युत्प्रेक्षार्थः । 'अवश्यायस्तु नीहारः' इत्यमरः। 'वीरपाण' पदे 'वा भावकरणयोः' इति णत्वम्। चन्द्रातपे चन्द्रमयूखे निरानन्दताम् आनन्दप्रदता-विरहम्, (हेमन्ते शैत्यातिशयेन चन्द्रकिरणाः शैत्यवर्द्धकतया न रोचन्ते जनेभ्य इति हेतोरित्थमुक्तम्) चन्दनानुलेपने चन्दनचर्चायाम्। निर्लोलुपताम् आदरशैथिल्यम् (चन्दनलेपस्यापि शीतसमेधकतयाऽनिष्यमाणत्वमित्यर्थः) चन्द्रशालायाम् शिरोगृहे (अनावृते प्रासादशिरसि) निराशताम् अभिलाषाभावम्, चन्द्रोपलस्थले चन्द्रकान्तमणिबद्धकुट्टिमे निरास्थताम् आदरविरहम्, वातायनसेवने गवाक्षजालसमीपे उपविश्य तत आगच्छतो 'वायोः' समुपभोगे निरुत्सुकताम् उत्कण्ठाऽभावम्, वापीकूपोपकण्ठे तडागकूपादिजलाधारपरिसरे निरुत्कण्ठताम् उत्सुकताविरहम्, वासरावसाने दिनान्तसमये अनादरताम् आदरवैधुर्यम्, वारिविहारे जलक्रीडायाम् निराकाङ्क्षताम् आकाङ्क्षाशून्यत्वम्, उत्पलमालायाम् कमलनिर्मितस्रजि उपेक्ष्यताम् त्याज्यताबुद्धिम्, उपवनभजने उद्यानविहारे उद्विग्नताम् असहमानताम् जनानां लोकानाम् जनयन् उत्पादयन्, (अशीतसमये चन्द्रातपादयः पदार्था लोकैरानन्दप्रदत्वेनोपयुज्यमाना अपि अगच्छता हेमन्तेनर्त्तुना शैत्यसमेधनद्वारा आनन्दप्रदत्वरहिताः क्रियमाणाः लोकैर्नाद्रियन्त इति प्रघट्टकस्यास्य सारभूतम्)

१. 'शशिकर' इति पाठान्तरम् ।   २. 'जाततप' इति पाठान्तरम् ।
३. 'स्वेदबिन्दु' इति पाठान्तरम् ।   ४. 'अक्षीणमहिमहिमप्रसारैः' इति पा० ।

गम्भीरः तुषारवातादिप्रवेशानर्हः आभागो विस्तारो यस्य तादृशस्य गर्भगृहस्य वाससदनस्य, ('गर्भागारं वासगृहम्' इत्यमरः) घनाभिः निविडसंयोगाभिः इष्टकाभिः रचिताया भित्ति कुड्यम् तस्याः, (तादृशभित्तेः शीतनिरोधकतयाऽत्र प्रशंसा) अश्लक्ष्णम् अकृशम् सुघटितम् यत्तिरस्करिणी पटलं तस्य, शशोदररोमवत् मृदुकोमलं यत्कम्बलम् तस्य, कालगुरुधूमस्य, काश्मीराङ्गरागस्य कुङ्कुमलेपस्य, (कुङ्कुमलेपस्य शीतदोषनिवारकत्वात्) निर्धूमाङ्गारैः विगतधूमज्वलदङ्गारैर्भरितं पूर्णं यद्धसन्तिकायन्त्रं तस्य, (हसन्तिकायन्त्रम् 'अंगीठी' इति प्रसिद्धम्) सुभगङ्करः सौभाग्यसम्पादकः, (शीतवृद्धौ पूर्वप्रोक्तपदार्थानाम् आदरपात्रताप्राप्त्या तत्सौभाग्यवर्द्धकत्वं हेमन्त उक्तम्) रेणुकणायमानाभिः रजः कणवदवभासमानाभिः तुषारधूलिभिः धूसरो मलिनो वासरो दिनं यस्मिंस्तादृशः, सरसीरुहाणां कमलानां कृते दावपावकः वनाग्निः दाहक इत्यर्थः, (हेमन्ते हिमवातेन कमलानि दह्यन्त इति भूतार्थमाधारीकृत्येयमुक्तिः) तुहिनेन तुषारेण व्रणितानि व्रणवन्ति कृतानि यानि लासिकानां पण्यस्त्रीणामधरदलानि ओष्ठपल्लवानि तेषाम् दूरीकृतम् परिहृतम् दंशकृत्यं दन्तक्षतक्रिया यस्मिंस्तादृशः, स्वतः स्फुटितानि लासिकाधरदलानि यत्र रतिकालिकं दंशं न सहन्ते तादृश इति भावः। 'नर्तकी लासिके समे' इत्यमरः। प्रक्षीणतारुण्याः अपगतयौवनाः याः पण्याङ्गनाः वेश्याः तद्वत् ता एव प्रपातसौभाग्यः अपगतरामणीयकः प्रपासन्निवेशः पानीयशालासंस्थानं यत्र तादृशः, (यथा वृद्धानां वेश्यानां कामिहृदयानावर्जकत्वं तथा प्रपाणामपि हेमन्ते पान्थजनानाकर्षकत्वमिति बोध्यम्) तालवृन्तानां विश्रान्तिकालः व्यजनानां विश्रमसमयः (घर्मापनोदनप्रयोजनकप्रयोगाणां तेषां हेमन्ते विश्रामकाल एवेति भावः) कामिनीनां युवतीनां स्तनभरः कुचभार एव गिरिरौन्नत्यात्तत्र दुर्गसीम्नि तद्रूपे दुर्गे निर्भयं भयरहितभावेन निलीनः प्रच्छन्नः निदाघभावः उष्मा यत्र तथोक्तः, (हेमन्ते कामिनीकुचभरस्यात्यन्तोष्णतया इयं रूपकानुप्रेक्षा) दिवाभीतव्रातस्य घूकसमूहस्य अपि अनतिभयङ्करः ईषद्भयङ्करः दिवाकरः सूर्यो यत्र तथाभूतः, (हैमन्तिकसूर्यस्य मन्दप्रभतया दिवाभीता अपि ततो न पुरेव बिभ्यतीति भावः) चकोरनिकरस्य चन्द्रिकापायि पक्षिभेदसमुदयस्यापि अनतिक्षेमंकरः अतितरां हितसाधको न भवति तथा सुधाकरश्चन्द्रो यस्मिन् तादृशः (चन्द्रकिरणानामपि प्रालेयावृततया चकोरतर्पणशक्तिसङ्कोचादित्थमुक्तम्) कादम्बकदम्बस्य' हंसनिकरस्य (कादम्बः कलहंसः स्यात् इत्यमरः) अपि अनतिप्रियङ्करः (शैत्याधिक्यप्रयोजकतयाऽनभिप्रेतः) कमलाकरो नलिनवनं यत्र तादृशः, कृतं करयुगलस्य हस्तद्वयस्य स्वस्तिकाबन्धनम् व्यत्यस्तभावेनावस्थापनं येन सः कृतकरयुगलस्वस्तिकाबन्धनस्तस्य भावस्तत्ता तया बहुस्वस्तिकाकारेण स्थापयित्वेत्यर्थः, नीहारातङ्कशङ्कया तुषारकृतभयसंभा-

वनया हृदयकमलम् स्वहृत्पद्मम् गोपायन्तम् रक्षन्तमिव (दरिद्रो जनः शीता-बाधामल्पयितुं स्वबाहू स्वस्तिकाकारेण स्थापयति, मन्ये स स्वहृदयं कमलरूपं तुषारभयादिव तथा कृत्वा रिरक्षिषतीति) अश्रान्तः कदाप्यविरतो यो दन्त-वीणाव्यापारः दन्तरूपवाद्यवादनम् (शीतेन दन्ताः कटकटायन्ते तदेवोत्प्रेक्ष्य ते वीणावादनव्यापाररूपतया) तेन वेपमानः कम्पयुक्तोऽधरपुटो यस्य तस्य भाव-स्तथा तया, शीतिका शैत्यबाधा एव पिशाचिका राक्षसी तस्याः निर्हरणाय दूरी-करणाय निपुणं तत्र कर्मणि दक्षं मन्त्रजपम् इव कुर्वन्तम् (दरिद्राणां शीतपीडि-तानां दन्ताः शब्दायन्ते, तत्र कर्मणि तदधरपुटानामपि चलनं जायते चलदधर-पुटास्ते मन्ये शीतबाधारूपपिशाचीं दूरीकर्तुं क्षमं मन्त्रमिव जपन्तीत्युत्प्रेक्षार्थः) अविरला सन्तता या पुलकपाली रोमाञ्चराजिस्तया कम्बलितः आच्छादितः कलेवरो यस्य तस्य भावस्तया सकरुणेन दयालुना विधिना ब्रह्मणा वितीर्णेन दत्तेन रोम कम्बलनेन लोमरूपेण कम्बलेन कृताङ्गरक्षम् इव (शीतेन दरिद्राणां कलेवरो रोमाञ्चति, मन्ये दयमानो विधाता दत्तेन कम्बलेन तदङ्गमावृणोति, तेन कम्बलेन च तेषां शरीरं त्रायत इत्यर्थः) एतादृशं दुर्गतवर्गं दरिद्रराशिम् निर्घृणा निर्दया कमला लक्ष्मीः कदाचिदपि नालोकितवती स्वकृपाकटाक्षेण कदापि न सनाथितवती इति हेतोः तस्यै कमलायै सासूयः घृतकोप इव तदीयावासतामरसं कमलावासस्थानं कमलं सपत्रकोशं सपत्रसमुदयं विनाशयन् क्षपयन् (इयं लक्ष्मी-र्दुर्गतान्नेक्षते, अतोऽस्यां कमलायां कुपितो हेमन्तो यदा लक्ष्म्याः कामपि क्षतिं नाशकत् कर्तुं तदा तदावासतामरसमेव सपत्रकोशं व्यनाशयत् तत्राप्रभवतस्त-दीय कोपस्य स्वभावसिद्धत्वादिति भावः) गगनम् आकाश एव मतङ्गजो हस्ती तस्य करपुष्करम् शुण्डादण्डाग्रभागस्तेन उत्थितः उपरिक्षिप्तो यः शीकरनिकरो जलविन्दुभरस्तदाकारैस्तत्तुल्यैः, अतिपरुषः अतिभीषणो यः स्मरशरतापः काम-वाणबाधा तेन प्रतप्ता या गगनाङ्गना आकाशरूपा वनिता तस्या अङ्गेभ्यः स्रवन् च्यवमानो यः स्वेदः घर्मजलविन्दुस्तत्सदृक्षैः अक्षीणहिमप्रकरैः अतनुप्रालेयसमु-दयः करणभूतैः अध्वगान्तः करणानि पान्थहृदयानि सीमन्तयन् विदारयन् द्विधा-कुर्वन् हेमन्तसमयः समुदजृम्भत प्रकटीभूतः। अत्र सन्दर्भे सर्वत्र रूपकोत्प्रेक्षयोः सङ्करः केवलमेकत्र लक्ष्मीक्षतिसम्पादनसामर्थ्याभावे तदावासकमलसंहारप्रतिपाद-नात्प्रत्यनीकालङ्कारः।

इसके बाद कदाचित् कामदेवके सामर्थ्यको बढ़ाने वाला, पके हुए पीले पीले धानकी बालियोंसे खेतोंको पीतवर्ण बनाने वाला, कन्दर्पकी विजय यात्रा होने वाली है, वह मदिरा पान करेगा, उसीके लिये प्रस्तुत 'वीरपाण' के सदृश प्रतीत होने वाली पत्ते रूप दोनोंमें दृश्यमान ओसरूस मदिरासे युक्त, चांदकी रोशनीमें आनन्दके अभाव, चन्दन लेपमें अनिच्छा, खुली छत पर बैठनेमें अनुत्सुकता, जलभरी वापी आदि शीतल स्थानोंमें

-बैठनेसे अरुचि, दिनान्तके प्रति अनादर, जलक्रीड़ाके प्रति उदासीनता, कमलमालाके प्रति उपेक्षा, उद्यानविहारके विषयमें उद्विग्नताको लोगोंके हृदयमें पैदा करने वाला, बन्द कमरों वाले आवासगृह, ईंटकी बनी दीवारों, घनी सिरकियों, खरहेकी गोदके समान मुलायम कम्बलों, अगरका धूम, कुङ्कुमकृत लेप एवं जलते हुए अङ्गारोंसे भरी अंगीठीके सौभाग्यको चमकाने वाला, धूल कणके सदृश दीखने वाले तुषारसे धूमिल दिनोंसे युक्त, कमलोंके लिये दावानल स्वरूप, शैत्याधिकसे फटे हुए नर्त्तकियोंके ओठोंको कामिजन कृतदंशनसे मुक्त कराने वाला, बूढ़ी वेश्याओंकी तरह सौभाग्य हीन हो गई है पानीय शाला जिसमें ऐसा, तालवृन्तोंको विश्राम प्रदान करने वाला, युवतियोंके स्तन पर्वत रूपी दुर्गमें जिसमें निर्भय होकर गर्मी निवास करता हैं ऐसा, जिसमें घूकोंको भी सूर्यसे अधिक भय नहीं होता है, चकोरोंको भी चन्द्रमा अधिक प्रिय नहीं लगते हैं, राजहंसोंको भी कमलाकर अधिक प्रिय नहीं प्रतीत होता है, ऐसा, जिस ऋतुमें अपने हाथोंको स्वस्तिक रूपमें समेट कर पालेके भयकी संभावनासे गरीब लोग मानों अपने हृदयकमलकी रक्षा करते हैं, उनके दांत खटखटाते रहते हैं जिनसे उनके ओठ कँपाया करते हैं, मानों वे गरीब शैत्यरूप पिशाचको भगाने वाला मन्त्र जपा करते हैं, रोमाञ्चसे उनकी देह भरी रहती है मानो ब्रह्माने दया करके उनकी देह पर कम्बल डाल दिये हों, जिनसे वह अपनेको ठंढकसे बचा रहे हों, जो भीख मांगते हैं, इस तरहके गरीब दुखिया लोगों पर निर्दय होकर इस लक्ष्मीने अपनी कृपादृष्टि कभी नहीं फेरी, इसी हेतु लक्ष्मी पर कुपित होकर जिसने लक्ष्मीके आवासस्थान कमलको उसके पत्रकोशके साथ समाप्त कर दिया है, आकाशरूप हाथीके कराग्रसे निकलने वाले जलबिन्दुके समान, तथा अतिभयङ्कर कामबाणके सन्तापसे दबाई गई आकाशरूप वनिताके शरीरसे चूने वाले स्वेदके समान प्रतीत होने वाले अधिक तुषारपातसे पान्थोंके हृदयको विदीर्ण करने वाला हेमन्त समय प्रकटित हुआ।

यत्र कान्ता न पश्यन्ति क्लान्ता विरहवह्निना।
निशावसानवेलां च वेलां च व्यसनाम्बुधेः॥ १४॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् हेमन्तर्त्तौ विरहवह्निना प्रियवियोगाग्निना क्लान्ताः पीडिताः कान्ताः रमण्यः निशावसानवेलाम् रजनीविरामकालम्, व्यसनाम्बुधेः स्वदुःखसागरस्य वेलाम् तटं च न पश्यन्ति, दुःसहविरहवेदनावशाद्रात्रेर्लंघीयस्या अपि दुस्तरत्वे तादृशदीर्घतररात्रेरन्तं न संभावयन्ति, एवमेव स्वदुःखसागरस्यापि समाप्तिं नाशंसन्ते इत्याशयः वेलाकालमर्यादयोरपि इत्यमरः अत्र वेलयोरुभयोरेकत्र दर्शनान्वयात्प्रकृतविषया तुल्ययोगिताऽलङ्कारः॥ १४॥

जिस हेमन्त ऋतुमें विरहरूप अग्निसे पीडित स्त्रियाँ रात्रिके समाप्त होनेके समयको तथा स्वदुःखसागरको वेला-किनारेको नहीं देखती हैं। अर्थात् हेमन्तकी लम्बी

रातें ऐसी लगती हैं कि वह कभी समाप्त ही नहीं होगी, इसी प्रकार उनके दुःखका कभी अन्त भी होगा ? ऐसा उनको प्रतीत नहीं होता है ॥ १४ ॥

तत्र पर्णशालामध्यमध्यासीनं लक्ष्मणाग्रजमु[1]पससाद शूर्पणखा ।

तत्रेति । तत्र हेमन्तर्त्तौ पर्णशालाम् पर्णकुटीरम् अध्यासीनम् अधितिष्ठन्तम् लक्ष्मणाग्रजम् रामम् शूर्पा इव नखानि यस्याः सा शूर्पणखा नाम रावणस्वसा उपससाद प्राप्तवती । एकदा रामस्य समीपे शूर्पणखा समायातेत्यर्थः । 'शूर्पणखा-शब्दे नखमुखात्सञ्ज्ञायाम्' इति न ङीप् 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम् ।

उसी समय पर्णशालामें आसीन रामजीके समीप शूर्पणखा नाम की राक्षसी आई ।

तस्मिन्नुज्जृम्भितोष्णस्तनतटदयिताहीनसंहारकाले
काले प्रालेयधाराकवचितगगनाभोगदिक्चक्रवाले ।
कामान्धा राक्षसी सा पतिमतिमतनोन्मैथिलीप्राणनाथे
लक्ष्मीलीलारविन्दे नवपिशितधियं तन्वती श्येनिकेव ॥ १५ ॥

तस्मिन्निति । प्रालेयधाराभि नीहारासारैः कवचितः आच्छादितः गगनाभोगः व्योममण्डलं यस्मिन् तादृशे हिमवृष्टिव्याप्तदिगन्तराले इत्यर्थः उज्जृम्भितम् प्रवृद्धम् उष्णम् ऊष्मा यत्र सः उज्जृम्भितोष्णः तादृशः स्तनतटः कुचण्डलम् यस्या सा चासौ दयिता तया हीनानां विरहितानां संहारस्य मृत्योः काले समये ऊष्मसंयुक्तकुचयुतप्रेयसीवियुक्तजनानां मृत्युजनके समये तस्मिन् काले हेमन्ते, लक्ष्मीलीलारविन्दे कमलाकरवर्ति लीलाकमले नव पिशितधियम् सद्योमांसखण्ड-भ्रमम् तन्वती कुर्वती श्येनिका श्येनाङ्गना इव सा कामान्धा कामपीडालुप्तविवेका राक्षसी शूर्पणखा मैथिलीप्राणनाथे सीताहृदयेश्वरे पतिमति स्वामिबुद्धिम् अतनोत् अकरोत् । अतिसमृद्धोष्णताशालिकुचमण्डलोपेतनायिका विरहिणां जनानां प्राण-हरे तथा प्रालेयासारव्याप्तनभोमण्डले तस्मिन् हेमन्तकाले लक्ष्म्याः लीलाकमले नूतनामिषखण्डमतिं विदधाना श्येनाङ्गना इव कामाकुला शूर्पणखा रामो मे स्वामी भवतु इति बुद्धये तमुपाससादेति अत्रोपमया यथा लक्ष्मीलीलाकमलं श्येन्याः कृते दुरापं तथा रामोऽपि दुर्लभो राक्षसस्येति वस्तुव्यज्यते 'चक्रवालं तु मण्डलम्' 'पिशितं सरसं मांसम्' इत्युभयत्रामरस्रग्धरावृत्तम् लक्षणं यथा 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्' ॥ १५ ॥

हिमवर्षासे व्याप्त हैं आकाशमण्डल तथा दिशायें जिसमें ऐसे, एवं उष्णस्तनतटयुक्त दयितासे रहित व्यक्तियोंके लिये मृत्युकाल स्वरूप उस हेमन्त कालमें—लक्ष्मीके लीला-कमलमें मांसखण्ड की बुद्धि करनेवाली श्येनीकी तरह वह कामान्धा राक्षसी शूर्पणखा

---

१. 'उपससर्प' इति पाठान्तरम् ।

मैथिलीके जीवितेश रामजीके विषयमें पति बुद्धि कर बैठी, उस राक्षसीने रामसे पति बनने की प्रार्थना की ॥ १५ ॥

ततस्तेन जानकिजानिरिति जानीहि [1]जनमिमं ममानुजमतिमनुज[2]बलमबालमबलावियुक्तं युक्तमाश्रयितुं तवेति रामेण प्रत्याख्याता सौमित्रिमुपेत्य यथामनीषितमभाषत।

तत इति। ततः तदनन्तरम् तेन रामेण—इमम् मल्लक्षणं जनम् जानकीजाया यस्य स जानकीजानिः सीतापतिः इति जानीहि अवगच्छ, अहं सीतया स्त्रिया युक्त इति विद्धि, (अतो नाहं तव योग्यः, अस्यां स्थितौ) मम अनुजम् कनिष्ठभ्रातरम्, अतिमनुजबलम् मानवपराक्रमाधिकपराक्रमशालिनम्, अबलावियुक्तम् प्रियाविरहितम् तव आश्रयितुं युक्तम् त्वया आश्रयणं कर्त्तुं योग्यम्, (मदीयो भ्राता मनुष्यसामर्थ्याधिकसामर्थ्योपपन्नः स्त्रीरहितोऽयं लक्ष्मणस्त्वया पतित्वेन वरीतुमुपसर्पणीय इति) इति एवं प्रकारेण रामेण प्रत्याख्याता तिरस्कृता (शूर्पणखा) सौमित्रिम् उपेत्य लक्ष्मणसमीपम् आसाद्य यथामनीषितम् यथास्वमनोरथम् अभाषत अब्रवीत्, मां पत्नीत्वेनानुगृहाणेति स्वमाशयं प्रकाशयामासेत्यर्थः। 'जानकीजानिः' इत्यत्र 'जायाया निङ्' इति समासान्तो निङ्।

इसके बाद रामने शूर्पणखासे कहा—मेरी स्त्री जानकी तो वर्त्तमान हीं है, अतः छोड़ो मुझे, हमारे छोटे भाई, मनुष्याधिक सामर्थ्यशाली तथा स्त्रीरहित यह लक्ष्मण तुम्हारे योग्य हैं, तुम उन्हें ही आश्रित करो, इस प्रकार रामसे तिरस्कृत होकर वह राक्षसी लक्ष्मणके पास पहुँची और अपना मनोरथ उनसे कहा।

तेनापि भद्रे ? तस्य दासोऽहं दासभार्यापदमनार्यं नन्वार्याया[3]कुलजातायास्तस्मात्तमेव [4]भजेथाः।

तेनापीति। तेन लक्ष्मणेन अपि (सा अभिहितेति पुरोवक्ष्यमाणेनान्वयः, उक्तमुद्धरति-भद्रे इत्यादिना) हे भद्रे, कल्याणि, तस्य आर्यस्य पूज्यस्य रामस्य अहं लक्ष्मणो दासः, आर्यायाः पूज्यायाः कुलजातायाः सत्कुलप्रसूतायास्तव दासभार्यापदम् दासस्य मम स्त्रियाः पदम् दासीत्वमित्यर्थः अनार्यम् अश्रेष्ठम् निन्दितम्। दासोऽहं मम स्त्री भूत्वा त्वं दासीभावमुपैष्यसि तदनुचितं तवेति हेतोः (मां विहाय) तम् राममेव भजेथाः आश्रयस्व। दास्यस्वाम्ययोरन्यतरे वरणीये दास्यं हित्वा स्वाम्यमेव वरीतुमुचितमतो मां विहाय राममेव वृणुष्वेति परमार्थः।

---

१. 'जनममुम्' इति पाठान्तरम्। २. 'बलमबला' इति पाठान्तरम्।
३. 'कुलसम्भूतायाः' इति पाठान्तरम्। ४. एतदनन्तरम्' 'किञ्च' इत्यधिकं क्वचित्।

लक्ष्मणने भी शूर्पणखासे कहा—हे कल्याणि, मैं तो उनका दास हूँ, आप श्रेष्ठा तथा उच्चकुल प्रसूता हैं, आपके लिये दासीपद उपयुक्त नहीं है, अतः मुझे छोड़कर आप रामको वरण करें।

[1]अक्रूरसत्त्वां भयानककाननसञ्चाराचतुरां विहाय वैदेहीं तत्रभवतीमेवासौ परिग्रहीष्यतीति लक्ष्मणेनाभिहिता [2]वीतमतिः सा तदीयं [3]वचनमनुमतममनुत।

अक्रूरसत्त्वामिति। अक्रूरसत्त्वाम् कोमलचित्ताम् भयानके कानने यः सञ्चारो भ्रमणं तत्र अचतुराम् अनिपुणाम् वैदेहीम् सीताम् विहाय त्यक्त्वा तत्र भवतीम् (क्रूरसत्त्वतया कठिनकार्यक्षमां काननभ्रमणनिपुणां त्वामेव) एव असौ रामः परिग्रहीष्यति भार्याभावेन स्वीकरिष्यति, इति एवं प्रकारेण लक्ष्मणेनाभिहिता उक्ता वीतमतिः नष्टबुद्धिः सा तदीयं लक्ष्मणोक्तम् वचनम् अनुमतम् इष्टम् हितम् अमनुत ज्ञातवती 'प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु इत्युक्ततया रामः सम्प्रति कोमलहृदयां वनभ्रमणकातरां च सीतां विहाय तत्कार्यक्षमां त्वामेवाश्रयिष्यति, इत्थं लक्ष्मणेनोक्ता सा नष्टबुद्धिः शूर्पणखा तदुक्तौ श्रद्धामकरोदित्याशयः।

कोमलहृदया तथा वनभ्रमणमें अनिपुणा सीताको छोड़कर रामजी तुमको ही स्वीकार कर लेंगे इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा ठगी गई नष्टबुद्धि वह राक्षसी उनकी बातों पर विश्वास करके उसे ही अपना हित समझने लगी।

दशरथात्मजयुग्मनिरीक्षणक्षणसमाकुलबुद्धिरियं दधौ।
उभयकूल[4]समस्थितशाद्वलभ्रमगतागतखिन्नगवीदशाम्॥ १६॥

दशरथेति। दशरथात्मजयुग्मस्य दशरथपुत्रद्वितयस्य निरीक्षणेन बिलोकनेन कामातुरदृशा दर्शनेन क्षणं किञ्चित् कालपर्यन्तं समाकुलबुद्धिः अनयोः कतरं पतिभावेनाश्रयामीति व्यग्रमतिः इयम् शूर्पणखा उभयोः कूलयोः तयोः समस्थितम् समभावेन वर्त्तमानस्य शाद्वलस्य घासस्य (विषये) भ्रमः कतरस्मिन् कूलेऽवस्थितं घासमश्नामीत्यनिश्चयस्तेन यद्गतागतम् उभयोः कूलयोः पर्यायेण यातायातम् तेन खिन्ना श्रान्ता या गौः तस्याः दशाम् अवस्थाम् दधौ प्राप। यथोभयोः नदीकूलयोः समभावेन स्थिते घासे कतरस्मिन् कूले स्थितं घासमश्नामीत्यवधारयितुमशक्ता काचन गौः क्षणमेकत्र कूले समायाता, तदैवापरकूलस्थितघासे जाग्रल्लोभा सा तं तटं विहायान्यं तटमुपसर्पति, यातायातेनामुना चात्मानं

---

१. 'क्रूरसत्त्व' इति पाठान्तरम्। २. 'विदितं हितमिति तदीयम्' इति पाठान्तरम्। ३. 'वचनममनुत' इति पाठान्तरम्। ४. 'समुस्थित' इति पाठान्तरम्।

खेदयति तथैव सा शूर्पणखा रामं लक्ष्मणं च समानसौन्दर्यौ निरीक्ष्य कतर-माश्रयामीति विषये निर्णयमलभमाना क्षणं रामपार्श्वे क्षणं च लक्ष्मणसमीपे समागच्छन्ती विव्यथे, नचालभत कमपि तयोरिति भावः। निदर्शनाऽलङ्कारः॥ १६॥

दशरथके दोनों पुत्रोंको देखकर, थोड़ी देरके लिये रामको वरूं या लक्ष्मणको इस विषयमें निश्चय पर नहीं पहुचती हुई शूर्पणखा किसी नदीके दोनों तटों पर स्वभावसे उगे घासके लोभमें यहाँ वहाँ यातायातसे थकी हुई गायकी दशाको प्राप्त हुई॥ १६॥

वृषस्यन्ती वृषस्कन्धं राघवं रावणानुजा।
भूयः शूर्पणखा भेजे शूर्पकारातिबाधिता॥ १७॥

वृषस्यन्तीति। शूर्पकः शम्बरापरनामा कश्चिदसुरस्तस्यारातिः शत्रुः कामदेवस्तेन अतिबाधिता सातिशयपीडिता अत एव वृषम् पुमांसमिच्छति रतयेऽपेक्षत इति वृषस्यन्ती कामुकी तथा पुरुषमपेक्षमाणा शूर्पणखा नाम रावणानुजा रावण-भगिनी वृषस्कन्धम् वृषस्य स्कन्धौ भुजशीर्षे इव स्कन्धौ भुजशीर्षे यस्य तम् तथोक्तम् महापुरुषतयोन्नतांसम् राघवम् भूयः पुनः भेजे प्राप। सकृत्प्रत्या-ख्यातापि शूर्पणखा कामकदर्थिता सती पुनरपि रामं प्रापेति भावः। वृषः पुमान्, 'वृषः स्याद् वासवे धर्मे सौरमेये च शुक्लजे पुंराशिभेदयोः' इति विश्वः। तमि-च्छति वृषस्यति, 'सुप आत्मनः क्यजिति क्यचि 'अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि इत्यसुक् तत शतरि स्त्रियाम् 'वृषस्यन्ती' इति रूपम्॥ १७॥

अतिशय कामपीडासे युक्त रति की इच्छासे पुरुष की अपेक्षा करनेवाली रावणकी छोटी बहन शूर्पणखा उन्नत स्कन्ध रामके पास पुनः आई॥ १७॥

तदनु जनकदुहितुरनितर[1]युवतियोग्यं भाग्यं [2]रामस्य रूपरामणीयकं च[3] निरूप्य पुनरेवमचिन्तयत्।

तदन्विति। तदनु भूयो रामसमीपप्राप्त्यनन्तरम् जनकदुहितुः सीतायाः अनि-तरयुवतियोग्यम् इतरयुवतीजनदुर्लभम् (तादृशमहासत्त्वपुरुषपत्नीत्वलक्षणम्) भाग्यं सौभाग्यम् रामस्य रूपरामणीयकम् सौन्दर्यं च निरूप्य सावधानं परामृश्य पुनः भूयः एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अचिन्तयत् अशोचत्।

इसके बाद सीताको छोड़कर इतर स्त्रियोंके लिये दुर्लभ सौभाग्यको और रामके रूप लावण्यको देखकर शूर्पणखाने फिर विचार किया।

---

१. 'युवती' इति पाठान्तरम्। २. 'रामस्य रामणीयकम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'च' इति नास्ति क्वचित्।

लावण्याम्बुनिधेरमुष्य दयितामेनामिवैनं जनं
कस्मान्नासृजदस्मदन्वयगुरोरुत्पत्तिभूः पद्मभूः।
आस्तां[1] तावदरण्यवासरसिके हा कष्टम[2]स्मिन्निमां
कान्तिं काननचन्द्रिकासमदशां किं निर्ममे निर्ममे ॥ १८ ॥

लावण्येति। लावण्यमेव अम्बुजलं तस्य निधेः समुद्रस्य सौन्दर्यरूपजलसागरस्य अतिसुन्दरस्य अमुष्य रामलक्ष्मणस्य जनस्य एनाम् दयिताम् प्रियाम् सीताम् इव एनम् मल्लक्षणम् जनम् अस्मदन्वयगुरोः अस्मद्वंशादिपुरुषस्य पुलस्त्यस्य उत्पत्तिभूः जन्मदाता पद्मभूः कस्मात् कुतो हेतोः नासृजत् न सृष्टवान्, अतिसुन्दरस्यास्य रामस्य प्राणप्रियां सीतामिव अस्मद्वंशाद्यपुरुषस्रष्टा विधाताऽस्मवंशगां मां किमिति न सृष्टवान्, इत्याद्यपादद्वयार्थः। आस्तां तावत्, विरमत्वियं कथा, विधाता यदि तथा नादयत, हा कष्टम् अतिचिन्तनीयमिदम्, निर्ममे ममता लेशासंस्पृष्टे अरण्यवासरसिके वनवासप्रियेऽस्मिन् रामलक्ष्मणे जने इमाम् अनुभवैकवेद्याम् काननचन्द्रिकासमदशाम् वनविकीर्णज्योत्स्नासदृशाम् कान्तिम् परमां शोभाम् किम् किमर्थम् निर्ममे निर्मितवान्? निर्ममे इत्यनेन परपीडानभिज्ञत्वम्, काननचन्द्रिकासमदशाम् इत्यनेन एतस्य रूपं न वनवृत्तित्वयोग्यमिति चावेद्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १८ ॥

सौन्दर्यवारि के सागर इस पुरुषकी इस प्रेयसी सीताके सदृश-हमारे कुलश्रेष्ठ पुलस्त्यके जन्मदाता ब्रह्माने हमें क्यों नहीं बनाया? ब्रह्माने जो हमारेवंशके आदि पुरुष कहे जाते हैं, हमको सीता समान सौन्दर्य क्यों नहीं प्रदान किया? अथवा इस बातको छोड़ दीजिये, इस निर्दयी तथा वनवासको पसन्द करनेवाले रामकी इस कान्तिको-जो वनमें बिखरी चन्द्रज्योत्स्ना की तरह बेकार बीत रही है-क्यों बनाया? ॥ १८ ॥

सीतामाहर्तुकामामसुलभविषयप्रार्थनोद्दामकामां
सौमित्रिः शस्त्रपाणिर्दशमुखभगिनीं तामनार्यां निवार्य।
कामक्रोधात्म[3]कानामहमहमिकया प्रेक्षतामायतानां
तस्याः श्वासानिलानामकुरुत तरसा मार्गविस्तारकृत्यम् ॥ १९ ॥

सीतामाहर्तुकामामिति। सीताम् आहर्तुकामाम् अपजिहीर्षन्तीम्, असुलभः दुर्लभःयो रामपत्नीत्वप्राप्तिलक्षणो विषयः पदार्थस्तत्र प्रार्थनया अभिवाञ्छया उद्दामः अतिसमृद्धः कामो यस्यास्तादृशीम् रामपत्नीत्वप्राप्तिरूपदुर्लभवस्तुप्रार्थनया तदपूर्त्योच्छृङ्खलीभूतमनोभावामिति भावः अनार्याम् नीचचारित्राम् तां दशमुखभगि-

१. 'एतदरण्य' इति पाठान्तरम्।   २. 'अस्मिञ्जने' इति पाठान्तरम्।
३. अधिकानाम्' इति पाठान्तरम्।

नीम् रावणस्वसारम् शस्त्रपाणिः धृतशस्त्रः सौमित्रिः लक्ष्मणः निवार्य सीताहरणव्यापारान्निवर्त्य कामक्रोधात्मकानाम् कामेन रामविषयकवासनात्मना क्रोधेन तद्‌पूत्युदितेन लब्धजन्मनाम् अहमहमिकया अहं पूर्वमहम्पूर्वमिति प्रतिस्पर्धया प्रेङ्खताम् बहिर्निर्गच्छताम् आयतानाम् दीर्घाणाम् तस्याः शूर्पणखायाः श्वासानिलानाम् श्वासवायूनाम् मार्गविस्तारम् पथो दैर्घ्यम् एवं कृत्यम् तरसा वेगेन अकुरुत कृतवान् । कामेन क्रोधेन चायतश्वासधारिण्यास्तस्याः श्वासानिलनिर्गममार्गभूतां नासिकामाच्छिनत् इत्यर्थः । पूर्वोक्ताविपरीतं वृत्तम् ॥ १९ ॥

शस्त्र हाथमें लेकर लक्ष्मणने अपनी प्रार्थनाके असफल हो जाने से उद्दाम कामशालिनी तथा सीताका हरण करने को प्रस्तुत उस शूर्पणखाका निवारण किया और कामक्रोधसे लब्धजन्मा जोरोंसे चलने वाले उस श्वासके निर्गम मार्ग–उसकी नाकका छेदन कर दिया ॥ १९ ॥

ततस्तस्या निकृत्तकर्णनासिकायाः कनीयस्याः परिभवं वदने वचने च दृष्ट्वा श्रुत्वा च जनस्थानवर्ती समरमुखमुखरः खरश्चतुर्दशसहस्र[1]संख्याकशाखं चतुर्दशाध्यक्षरक्षितं रक्षोबलं रामलक्ष्मणौ जिघृक्षुः प्रेषयामास ।

तत इति । ततः शूर्पणखानासाच्छेदानन्तरम् जनस्थानवर्त्ती वनमध्यवासी समरमुखे युद्धप्राग्भागे मुखरः सिंहनादकरः युद्धशूर इत्यर्थः खरो नाम राक्षसः निकृत्तकर्णनासिकायाः छिन्नश्रोत्रघ्राणायाः कनीयस्याः अनुजायाः परिभवम् लक्ष्मणकृतम् अपमानम् वदने मुखे (छिन्नतत्तदंशविलोकनविधया) दृष्ट्वा प्रत्यक्षीकृत्य वचने तदुक्तौ श्रुत्वा आकर्ण्य च चतुर्दशसहस्रसंख्याकशाखम् चतुर्दशसहस्रव्यूहयुतम् चतुर्दशाध्यरक्षितम् चतुर्दशाभिरध्यक्षैः सेनापतिभिः रक्षितम् व्यवस्थापितम् रक्षोबलं रक्षः सैन्यम् रामलक्ष्मणौ जिघृक्षुः निग्रहाय ग्रहीतुकामः प्रेषयामास प्रजिघाय ।

इसके बाद वनके मध्यमें रहनेवाला तथा युद्धमें शूर खरनामक राक्षसने अपनी छोटी बहनके नाक कान कटे देखकर चौदह हजार व्यूहोंसे युक्त चौदह सेनापतियोंसे नियन्त्रित राक्षस सैन्यको राम और लक्ष्मणको पकड़कर लानेके लिये भेजा ।

अथ दाशरथिर्निरीक्ष्य दिक्षु रक्षोगणमुपसर्पन्तमपसर्पभूतया[2] शूर्पणखया [3]दर्शितसरणि[4]मरणिरिव मन्थनात्पूर्वम्[5]नाविष्कृततेजः प्रसर[6]

---

१. 'सहस्रसंख्यं' इति पाठान्तरम् ।
२. 'भूतया तया' इति पाठान्तरम् ।
३. 'निदर्शित' इति पाठान्तरम् ।
४. 'अरणिमिव' इति पाठान्तरम् ।
५. 'प्राक्' इति पाठान्तरम् ।
६. 'प्रसर' इति पाठान्तरम् ।

सीतारक्षणे लक्ष्मणमादिश्य यातुधानवधं तथाविधमकरोत् ।

अथेति । अथ एतदनन्तरम् अपसर्पभूतया चरकार्यं कुर्वत्या शूर्पणखया नाम राक्षस्या दर्शितसरणिं निवेदितमार्गम् रक्षोगणम् राक्षससमुदयम् दिक्षु समन्ततः उपसर्पन्तम् स्वसमीपमायान्तम् निरीक्ष्य दृष्ट्वा मन्थनात् पूर्वम् सङ्घर्षणात् प्राक्काले अनाविष्कृतः अप्रकटितस्तेजः प्रसरो येन तथाभूतः अप्रकटितप्रभाव इत्यर्थः अरणिः मन्थनकाष्ठम् इव रामः लक्ष्मणम् सीतारक्षणे आदिश्य आज्ञाप्य तथाविधम् तादृशं यातुधानवधम् राक्षससंहारम् अकरोत् कृतवान् चरभूतयेव शूर्पणखयोपदर्शिताध्वानं राक्षसगणं समन्तादायान्तमालोक्य रामो घर्षणपूर्वकालवर्ति मन्थनदारुवदप्रकटीकृतशौर्योष्मा रामो लक्ष्मणे सीतारक्षणभारं समर्प्य तथाविधं राक्षससंहारमकरोत्–यथेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । निर्मन्थ्यदारुणित्वरणिः इत्यमरः । 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी' इति चामरः ।

इसके बाद गुप्तचरका कार्य करनेवाली शूर्पणखा द्वारा जिनको मार्गज्ञान कराया गया है ऐसा राक्षसोंको चारो ओरसे आते देखकर मन्थनसे पूर्वकालमें वर्तमान अरणि की तरह अप्रकटित निजतेज रामने सीता की रक्षाका भार लक्ष्मणको सौंपकर उस प्रकारसे राक्षसोंका वध किया ।

यथा[2] तपोधननिधनकरकरनिकुरुम्बमिदं परुषभाषणस्पृहयालु[3] तालुजातमिदं परदारनिरीक्षणनिरपत्रपनेत्रवृन्दमिदं [4]तापसावसथचारणचतुरं चरणयुगलमिदमिति निशिततरनिज[5]शरश[6]कलीकृतनिशिचरशरीरा[7]वयवानाहृत्याहृत्य प्रत्युटजं [8]प्रदर्शयद्भिस्तपोधनाध्वशुद्धिं विधध्वमिति गृध्रराजनिदेशादिव देशान्तरा[9]दापतद्भिः कङ्क[10]काप्राचीकप्रायैः[11]पतद्भिरनवकाशमभूदाकाशम् ।

यथेति । यथा येन प्रकारेण (तथाविधमिति प्रागुक्तं राक्षसवधप्रकारमेव विवरीतुमयं सन्दर्भः) इदं तपोधनानां तपस्विनाम् निधनकरम् प्राणहरम् करनिकुरुम्बम् बाहुसमुदयः, इदम् दृश्यमानम् परुषभाषणस्पृहयालु कठोरभाषणबद्धाभिलाषं

---

१. 'अतनुत' इति पाठान्तरम् । २. 'यथा' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'तालुजालमिदं' इति पाठान्तरम् ।
४. 'तापसावसथचारणचतुरं चरणयुगलमिदं' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'निज' इति नास्ति क्वचित् । ६. 'शरशतशकलित' इति पाठान्तरम् ।
७. 'निशिचरावयवान्' इति पाठान्तरम् । ८. 'दर्शयद्भिः' इति पाठान्तरम् ।
९. 'आपतद्भिः पतद्भिः' इति पाठान्तरम् । १०. 'काक' इति नास्ति क्वचित् ।
११. 'पतद्भि' इति नास्ति क्वचित् ।

तालु मुखावयवभेदः, इदम् परदारनिरीक्षणनिरपत्रपम् परकीयस्त्रीविलोकने निर्लज्जम् नेत्रवृन्दम् नयनसमूहः, तापसानाम् तपोरतानाम् आवसथे निवासदेशे यत् चारणम् यथेच्छभ्रमणम् तत्र चतुरम् निपुणम् इदम् चरणयुगलम् पादद्वन्द्वम् इति एवम्प्रकारेण (प्रदर्श्य) निशिततरैः अतितीक्ष्णैः निजशरैः रामबाणैः शकलीकृतान् खण्डितान् निशिचरशरीरावयवान् राक्षसाङ्गानि आहृत्य आहृत्य आनीय आनीय प्रत्युटजम् प्रत्येकपर्णशालासु प्रदर्शयद्भिः (उत्पातिराक्षसावयवानामेषा दशा जातेति दृष्टान्तप्रदर्शनेन बोधयद्भिः) तपोधनाध्वशुद्धिम् मुनिजनमार्गपरिष्कारम् (राक्षसशोणितमांसाप्लुतं मुनिजनवर्त्मजातं तस्य शोधनम्) विधध्वम् कुरुत इति एतादृशात् गृध्रराजनिदेशात् जटायुषः प्रेरणात् इव देशान्तरात् इतरस्थानात् आपतद्भिः समागच्छद्भिः कङ्को गृध्रः, काकः स्वनामप्रसिद्धः, प्राचीको मांसाशिपक्षिभेदः, तत्प्रायैः तद्बहुलैः पतद्भिः पक्षिभिः आकाशम् व्योम निरवकाशम् व्याप्तम् अभूत्। रामेण तथा राक्षसा अहन्यन्त यथा समन्ततो गृध्रादिपक्षिभिरापतितम्, मन्ये ते गृद्ध्रादिपक्षिणो जटायुषो मुनिजनवासस्थलपरिष्कारार्थादेशं प्राप्येव समायाताः, किञ्च ते गृध्रादिपक्षिणो राक्षसानां तांस्तानत्याचारान् कृतवन्ति तानि तान्यङ्गानि रामेण खण्डितानि लब्धैवैभिः स्वाचारानुसारिणी दुष्परिणतिरिति प्रत्युटं प्रदर्शयन्ति चेति तात्पर्यम् । "निकुरुम्बं कदम्बकम्' 'कङ्को गृध्रो लोहपृष्ठः' इति च सारावली। 'प्राचीक' शब्दस्य मांसाशिपक्षिभेदार्थत्वे कोशान्तरं मृग्यम्, स्वरसतो बुधेन्द्रानुसारतश्च मयोक्तार्थादरःकृतः। अमरसिंहस्तु 'प्राचिकोल्का पिपीलिका इत्याह, तत्र 'मधुमक्षिकाः प्राचिकाः' इति तद्व्याख्यातारः ।

(रामने इस प्रकार राक्षस वध किया) जिससे तपोधनोंकी हत्या करनेवाले यह हाथ हैं, कठोर वाणी का प्रयोग करनेवाले यह तालु हैं, दूसरेकी औरतोंको घूरनेवाले यह निर्लज्ज नयनवृन्द हैं, तपस्वियोंके आवासस्थलमें यथेच्छभ्रमण करनेवाले यह चरण हैं, इस प्रकारसे तीक्ष्णतर रामबाणों द्वारा खण्डित राक्षसे शरीरावयवोंको लालाकर प्रति कुटीमें प्रदर्शित करनेवाले, तपोधनोंके मार्गकी शुद्धि करनेके लिये जटायुद्वारा आहूत होकर देशान्तरसे आनेवाले गृध्र, काक, प्राचीक आदि पक्षियोंसे आकाशव्याप्त हो गया।

ततो[1] निकृत्तशिरसि त्रिशिरसि विस्रगन्धिना शरीरस्रुतवसास्रोतसा प्रेत्यापि क्रियमाणाश्रमदूषणे दूषणे[2] च रोषभीषणवीक्षणखरः खरो राघवमाहवायाह्वयत ।

तत इति । ततः राक्षससैन्यसंहारात् परतः त्रिशिसि त्रिशिरोनामके राक्षसचमूपतौ निकृत्तशिरसि रामबाणेन च्छिन्नमस्तके सति, विस्रगन्धिना आमगन्ध-

१. 'तत्र' इति पाठान्तरम् । २. 'च' इति नास्ति क्वचित् ।

शालिना शरीरस्रुतवसा स्रोतसा देहच्चरितमेदः प्रवाहेण प्रेत्य मृत्वा अपि दूषणे तदाख्ये राक्षसे क्रियमाणाश्रमदूषणे विधीयमानमुनिजनावासदूषणे रोषभीषणवीक्षणखरः कोपभयङ्करः नयनदुर्दर्शः खरो राघवम् रामम् आह्वयत युद्धार्थमाकारितवान् । राक्षससैन्यसंहारं कृत्वा रामस्त्रिशिरसः शिरश्चिच्छेद, आमगन्धयुतेन देहच्युतवसाप्रवाहेण दूषण नामा राक्षसो यावज्जीवनमपकृत्याप्यपरितुष्यन् मृत्वाप्याश्रममदूषयत्तदा च कोपभयङ्करनेत्रतया द्रष्टुमक्षमः खरो नाम राक्षसो रामेण सह युद्धायोपतस्थे इत्यर्थः । 'विस्रंस्यादामगन्धि च' 'हन्मेदस्तु वपा वसा इत्युभयत्रामरः । 'आह्वयत' इत्यत्र 'स्पर्धायामाङः' इत्यात्मनेपदम् ।

इसके वाद रामके द्वारा त्रिशिराके शिरके काटे जानेपर देहसे चूते हुए मेदाके प्रवाहसे दूषणनामक राक्षस द्वारा मरनेके वाद भी आश्रमके अपकारके किये जानेपर, कोपसे भयङ्कर आंखोंसे अति दुर्दश खरनामक राक्षसने रामको लड़नेके लिये ललकारा ।

तत्र विपश्चिद्भिरप्यनिश्चीयमानजयापजय[1]मनिमेषैरप्यननुसन्धीयमानशरसन्धानमोक्षमभूदभूतपूर्वं द्वन्द्वयुद्धम् ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये रामेण सह खरे युध्यमाने सति, विपश्चिद्भिः विद्वद्भिरपि अनिश्चीयमानजयापजयम् अनिर्णीयमानजयपराजयम्, अनिमेषैः पक्ष्मपातरहितैः अपि अनुसन्धीयमानौ नावबुध्यमानौ शरसन्धानमोक्षौ बाणग्रहणत्यागौ यत्र तादृशम् अभूतपूर्वम् अपूर्वम् द्वन्द्वयुद्धम् सहायान्तरसाहायकानपेक्षि द्वयोः संग्रामरूपम् अभूत् अजनि । अतिशयोक्तिरलङ्कारः ।

इसके वाद राम और खरका द्वन्द्वयुद्ध हुआ जिसमें विद्वान् भी जय पराजयका निर्णय नहीं कर सकते थे और पक्ष्मपातरहित देवगणको भी यह नहीं मालूम पड़ता था कि कब वाण धनुष पर रखा गया और कब वह छोड़ा गया और जिसके सदृश युद्ध कभी पहले हुआ नहीं था ।

[2]ततः खरो गृहीतकोदण्डः [3]सकृदनुभूयमाननमनोन्नमनायासः समरसमापन[4]चतुरं चतुराननास्त्र[5]सन्धानदशार्हं दाशार्हशरासनं ग्राहयितुकाम इव रामहस्तात्प्राक्तनं चापं शरैरपजहार ।

तत इति । ततो रामखरयोर्द्वन्द्वयुद्धे प्रवृत्ते सति गृहीतकोदण्डः चापपाणिः सकृत् एकवारम् अनुभूयमानः प्रतीतिपथमवतरन् नमनोन्नमनायासः शरसन्धान बाणमोक्षप्रयासो यस्य तादृशः अतितीव्रवाणप्रहारीत्यर्थः खरः समरसमानचतुरम्

---

१. 'अनिमिषैः' इति पाठान्तरम् । २. 'तत्र' इति पाठान्तरम् ।
३. 'त्वसकृत्' इति पाठान्तरम् । ४. 'चतुरः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'सन्धानार्हम्' इति पाठान्तरम् ।

शत्रुक्षयद्वारायुद्धावसानसमर्थम्, चतुराननास्त्रसन्धानदशार्हम् ब्राह्मास्त्रसन्धानक्रियायोग्यम् (रामम्) ब्राह्मेणास्त्रेण खरशिरसश्छेत्स्यमानतया तथोक्तिः, दाशार्हं शरासनम् वैष्णवचापम् ग्राहयितुकामः अवलम्बयितुमिच्छन् इव रामहस्तात् प्राक्तनम् पूर्वानुवृत्तम् चापम् धनुः शरैः स्वबाणैः अपजहार खण्डितवान्। यावत् रामस्य हस्ते पुराणमिदं धनुः स्थास्यति तदाऽपरं धनुरयं नादास्यत इति बुद्ध्यैव खरो रामस्य प्राचीनं धनुः स्वीयैः शरैरच्छैत्सीत् इत्यर्थः।

इसके बाद खरने धनुष ग्रहण किया, वह अपने धनुष पर बड़ी तेजीके साथ बान रखता और उसे छोड़ता था, उसने युद्धको शीघ्र समाप्त करनेमें निपुण वैष्णव चापको ब्रह्मास्त्रधारी राम द्वारा ग्रहण करवानेके लिये रामके हाथमें वर्त्तमान पुराने धनुषको अपने बाणोंके प्रहारसे दूर कर दिया।

सोऽपि कोपपावकेन[1] पावकिताननः कुम्भसम्भवदत्तं धनुराधत्त।

सोऽपि इति। सोऽपि श्रीरामचन्द्रोऽपि कोपपावकेन खरकृतकोदण्डभञ्जनेन जनितो यः कोपस्तद्रूपेण पावकेन अग्निना पावकितम् अग्निवद्रक्तं कृतम् आननं मुखं यस्य सः तथोक्तः सन् कुम्भसम्भवदत्तम् अगस्त्यार्पितम् वैष्णवं धनुः चापम् आधत्त गृहीतवान्। 'अगस्त्यः कुम्भसम्भवः' इत्यमरः।

कोपसे रक्त मुख होकर भगवान् रामने भी अगस्त्य द्वारा प्रदत्त वैष्णव धनुषधारण किया।

खरपरुषि शरासने गृहीते खरकिरणान्वयशेखरेण तेन।
खररघुवरयो रणं समाप्तं खरनखरायुधयोरिव क्षणेन॥ २०॥

खरपरुषीति। तेन खरकिरणान्वयशेखरेण सूर्यवंशालङ्कारेण रामेण खरपरुषि तीक्ष्णपर्वणि (निविडपर्वयुते) शरासने वैष्णवे धनुषि गृहीते स्वकरे धृते सति खररघुवरयोः खरासुरश्रीरामयोः–खरो गर्दभः नखरायुधः सिंहश्च तयोरिव रणं युद्धम् क्षणेन कियतैव कालेन समाप्तम् अन्तं प्राप्तवत्। यथा गर्दभसिंहयोर्युद्धमल्पीयसैव कालेन समाप्तिमुपयाति तथैव वैष्णवचापधारिणो रामस्य खरेण सह युद्धं प्रवर्त्तमानमवसितमित्युपमा। खराणि निविडानि तीक्ष्णानि वा परूंषि पर्वाणि यस्य तत् खरपरुट्, तस्मिन् खरपरुषि 'ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' इत्यमरः। 'अविर्षां समरानीकरणाः' इति चामरः॥ २०॥

सूर्यवंशभूषण भगवान् रामने जब निविड़ पर्वसे युक्त वैष्णव चाप धारण कर लिया तब जैसे गर्दभ और सिंहका युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाता है उसी तरह खरासुर और रामका युद्ध शीघ्र समाप्त हो गया॥ २०॥

---

१. 'पावकयावक्तिताननः' इति पाठान्तरम्।

खरवधपरिशुद्धे दण्डकारण्यभागे
मुनिभिरभिहितानामाशिषां तादृशीनाम् ।
स्वयमचरमपात्रं स्वैर्गुणैर्मन्थराभू-
त्तदनु मनुकुलेन्दुः सानुजः शौर्यराशिः ॥ २१ ॥

खरवधेति । दण्डकारण्यभागे दण्डकावनप्रान्ते खरवधपरिशुद्धे खराख्यराक्षससंहारेण पवित्रे निरुपद्रव इत्यर्थः (जायमाने) मुनिभिः खरवधेन प्राप्तसौख्यैर्ऋषिभिः अभिहितानाम् उदीरितानाम् तादृशीनाम् तथाविधानाम् (अमोघतया सर्वविधसौभाग्यप्रदायिनीनाम्) आशिषाम् अचरमपात्रम् प्रथमं स्थानम् स्वगुणैः रामवनवासप्रयोजकस्वीयकौटिल्यरूपगुणैः स्वयम् मन्थरा अभूत् जाता, तदनु सानुजः सलक्ष्मणः शौर्यराशिः वीरतानिधानम् मनुकुलेन्दुः मनुवंशप्रकाशकः श्रीरामः अभूदिति शेषः, रामेण खरे हते तेन च दण्डकावनप्रान्ते निरुपद्रवतां गते प्रसन्नान्तःकरणैः मुनिभिर्या अमोघाः स्वाशिषो दत्तास्तासाम् प्रथमं पात्र मन्थरा नाम कैकेयी दासी अजायत, यतः सैव रामवनवासमुपपाद्य खरादीनां वधे कारणतामभजत, रामस्तु तासामाशिषां द्वितीयं स्थानमासीदित्याशयः ॥ २१ ॥

खरके मारे जानेके कारण दण्डकावन प्रान्तके निरुपद्रव हो जाने पर मुनियों द्वारा दी गई अमोघ आशिषोंका प्रथम पात्र अपने गुणोंसे मन्थरा खुद बनी, बादमें लक्ष्मण समेत तथा शूरता निधान श्रीराम उन आशिषोंके पात्र बने ॥ २१ ॥

तथाहि—

प्राग्मन्थरेति महिषीति वरद्वयीति
धर्मव्ययव्यथितभूपतिभारतीति ।
काकुत्स्थकाननकथेति च सन्ति संज्ञाः
पौलस्त्यही[1]नभुवनत्रयभाग्यपङ्क्तेः ॥ २२ ॥

प्राग्मन्थरेति । प्राग् आदौ मन्थरा इति (ततः) महिषी राज्ञी कैकेयी इति (ततः) वरद्वयी राज्ञा दशरथेन कैकेय्यै प्रदत्तम् वरद्वयम् इति (ततः) धर्मव्ययेन धर्मलोपेन असत्यभाषणकृताधर्मेण व्यथितस्य खिन्नस्य भूपतेः दशरथस्य भारती—रामं प्रति प्रयुक्ता—'चतुर्दशवर्षाणि वने वस' इति रूपा वाणी इति (ततः) काकुत्स्थस्य रामस्य काननकथा वनवासवार्त्ता इति च पौलस्त्येन रावणेन हीनस्य विरहितस्य भुवनत्रयस्य लोकत्रयस्य भाग्यपङ्क्तेः भाग्यलिपेः संज्ञाः पर्यायाः सन्ति । रावणहीनं जगद्भावीति लोकत्रये वसतां जनानां या भाग्यलिपिः सैव तस्तैः शब्दैर-

१. भीत' इति पाठान्तरम् ।

धीयते, मन्थरा, कैकेयी, वरद्वयम्, दशरथवाक् सर्वेऽपीमे शब्दा रावणकृतोपद्रवहीनलोकत्रयवासिजनानां सौभाग्यमेवाभिधत्त इति भावः। एतेन मन्थराया अचरमाशीःपात्रत्वं समर्थितं वेद्यम् ॥ २२ ॥

सबसे पहले मन्थरा, बादमें क्रमशः—रानी कैकेयी, उनके दोनों वरदान धर्मके भयसे व्यथित राजा दशरथके वचन, रामकी वनवासवार्त्ता यह सभी शब्द रावणसे रहित लोकत्रयके भाग्यलिपिका ही प्रतिपादन करने वाले हैं, इन सभी शब्दों द्वारा उनका भाग्य ही समझा जाता है क्योंकि यह सारे शब्द एक ही वस्तु–रावण हीन लोकत्रयकी भाग्यलिपि–की संज्ञायें हैं ॥ २२ ॥

अथ शूर्पणखा लङ्कामपि जनस्थानमिव विजनस्थानं काकुत्स्थेन कारयितुं दशकण्ठोपकण्ठे कृत्येव निपत्य रामलक्ष्मणयोर्याथातथ्यं वैदेह्या देहसौन्दर्यं खरप्रमुखैः साकमनीकस्य चतुर्दशसहस्र[1]संख्याकस्य पञ्चताकरणकारणभूतामात्मावज्ञां च विज्ञापयामास।

अथेति 'अथ खरादिराक्षसवधानन्तरम् जनस्थानम् खराध्युषितं वनभागम् इव लङ्काम् रावणराजधानीम् अपि काकुत्स्थेन ककुत्स्थवंश्येन रामेण विजनस्थानम् (सर्वराक्षससंहारविधया) निर्जनं स्थलं कारयितुम् विधापयितुम् कृत्या मरणप्रयोजकक्रिया विशेषाधिष्ठातृदेवता इव दशकण्ठस्य रावणस्य उपकण्ठे समीपे निपत्य पतित्वा' (उपेत्येत्याशयः) रामलक्ष्मणयोः याथातथ्यम् यथार्थस्वरूपम्, वैदेह्याः सीतायाः देहसौन्दर्यम् शरीरलावण्यम्, खरप्रमुखैः खरादिभिः साकम् सह चतुर्दशसहस्रसंख्याकस्य तावत्परिमाणस्य पञ्चताकरणे मरणे कारणभूताम् हेतुतां गताम् आत्मावज्ञाम् स्वावमाननाम् श्रवणनासाकर्त्तनरूपां च विज्ञापयामास रावणायाभिहितवती। खरादिषु मृतेषु वनं यथा राक्षसैः शून्यमजनि तथैव लङ्कामपि निर्जनस्थानतां प्रापयितुं कृत्या इव शूर्पणखा रावणमुपससाद, तत्र रामस्य यथार्थं परिचयं सीतायाः परमं कायिकसौन्दर्यम्, खरादिभिः सह चतुर्दशसंख्याकाः सेनाहतास्तासां वधे चायम्ममापमान एव कारणतां गतोऽर्थान्ममैवापमानमालोक्य खरादयो रामेण युद्धयमानास्तेन व्यापादिता इति सर्वं वृत्तान्तं रावणाय न्यवेदयदित्यर्थः। 'कृत्या क्रियादेवतयोः' यथार्थं तु यथायथम्' 'स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः' 'साकं सत्रा समं सह इति तत्र तत्रामरः।

इसके बाद दण्डकावनकी तरह लङ्काको भी रामके द्वारा निर्जनस्थान बनवानेके लिये शूर्पणखा कृत्याकी तरह रावणके पास जाकर गिरी और उसने रामका यथार्थ परिचय, सीताके सौन्दर्य प्रकर्ष एवं खर आदि प्रधानोंके साथ चौदहहजार संख्यक सैन्यकी

---

१. 'संख्यस्य' इति पाठान्तरम्।

मृत्युका कारण अपना अपमान (लक्ष्मण द्वारा किया गया नासाकर्णच्छेदन रूप) कह सुनाया।

स दण्डकायां कृतदण्डकायां स्वसारमेनां प्रथितस्त्वसारः।
निशाम्य रामस्य निशम्य वृत्तं चक्रे रुषं राक्षसचक्रवर्ती॥ २३॥

सदण्डकायामिति। प्रथितः सकलभुवनविदितः सारो भुजबलं यस्य तादृशः सः राक्षसचक्रवर्ती रक्षसामधिपती रावणः दण्डकायाम् तदाख्यवने कृतदण्डः विहितनासाकर्णच्छेदनरूपपातनः कायो देहो यस्याः सा ताम्। लक्ष्मणेन च्छिन्ननासाकर्णतया विकृतशरीरामित्यर्थः स्वसारं निजभगिनीं शूर्पणखाम् निशाम्य दृष्ट्वा रामवृत्तम् यथोक्तं चरितं च निशम्य शूर्पणखामुखादाकर्ण्य रुषम् कोपं चक्रे कृतवान्। रजनीचरचक्रवर्ती रावणो विकृताननायाः स्वसुदर्शनेन रामस्य वृत्तान्तस्य खरवधादेः श्रवणेन च भृशं चुकोपेति तात्पर्यम्। 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः। अत्र श्लोके 'निशाम्य' 'निशम्य' इत्युभयमपि प्रयुक्तं तत्राद्यस्य 'दृष्ट्वा' इत्यर्थः, अत एव तत्र मित्वकृतं ह्रस्वत्वं न मित्वस्यदर्शनातिरिक्त एवार्थेऽनुशिष्टत्वात्—'शमोऽदर्शने' इति स्मरणात्, 'निशम्य' इत्यस्य च श्रुत्वेत्यर्थस्तत्र चादर्शनार्थतामूलकं मित्वकृतं ह्रस्वत्वमुपपन्नम्॥ २३॥

प्रसिद्धपराक्रम तथा राक्षसचक्रवर्त्ती वह रावण दण्डसे विकृताङ्ग अपनी बहन शूर्पणखाको देखकर तथा उसके मुखसे रामका सारा वृत्तान्त सुनकर बहुत कुपित हो गया॥ २३॥

ततः प्रस्थाप्य जनस्थाने राक्षसानष्टौ [1]नष्टनीतिरयं ताटकेयं हाटकमृगं पुरस्कृत्य [2]सीताह्वां हरिणीं ग्रहीतुं तस्यावसथमाससाद।

तत इति। ततः कोपानन्तरम् नष्टनीतिः भ्रष्टमार्गः अयम् रावणः जनस्थाने खराध्युषितवनप्रान्ते अष्टौ राक्षसान् प्रस्थाप्य प्रहित्य (तत्परिपालनार्थमादिश्य) 'ताटकायाः अपत्यं पुमान्' ताटकेयस्तं मारीचम् नाम हाटकमृगशरीरम् मारीचम् पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा (रामवञ्चनाय पुरश्चालयित्वा) सीताह्वाम् सीताभिधानाम् हरिणीम् मृगीम् ग्रहीतुम् तस्य मारीचस्य आवसथम् (यत्रासौ काञ्चनमृगभावमासाद्य रामवञ्चनार्थमवस्थितं प्रदेशम्) आससाद प्राप्तः 'हिरण्यं हेमहाटकम्' 'आख्याह्वे अभिधाने च नामधेयं च नाम च 'स्थानावसथवास्तु च' इति सर्वत्रामरः।

इसके बाद दुर्नीति रावण जनस्थानकी रक्षार्थ आठ राक्षसोंको भेजकर मारीचको सुवर्णमृग बनाकर रामको ठगनेके लिये कहकर सीतारूप हरिणीको फंसानेके लिये जहाँ मारीच था वहाँ पर आया।

१. 'नष्टमतिः' इति पाठान्तरम्। २. 'सीताह्वयां' इति पाठान्तरम्।

मारीचोऽप्याकर्णितरावणमतः[1] प्रयत्नशतैरप्यनिवार्यमाणे[2] तस्मिन् सुबाहुमेव बहुमन्यमानो गत्यन्तराभावात्तदभ्यर्थनामङ्गीकृत्य[3] जातरूपमयमृगरूपं गृहीत्वा सीतां वञ्चयितुं[4] पञ्चवटीमगाहत।

मारीचोऽपीति। आकर्णित रावणमतः श्रुतरावणभिप्रायः मारीचः अपि तस्मिन् रावणे प्रयत्नशतैः नानाविधैः प्रयासैः (उच्चावचबोधनादिभिः) अपि अनिवार्यमाणे स्वनिश्चयाद् वारयितुमपार्यमाणे सति सुबाहुम् स्वभ्रा तारम् (रामेण मख-रक्षणप्रसङ्ग एव हतम्) बहुमन्यमानः (धन्यः सुबाहुर्यः पूर्वमेव युध्यमानो हतो मया तु वञ्चनेनात्मानं मलिनीकृत्य मरणीयमिति स्वनिन्दापूर्वकम्) प्रशंसन् गत्यन्तराभावात् उपायान्तरानुपलब्धेः तदभ्यर्थनाम् रावणानुरोधम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य जातरूपमयमृगरूपम् सुवर्णमृगाकारं गृहीत्वा आधाय सीतां वञ्चयितुं प्रतारयितुम् पञ्चवटीम् तन्नामकं रामावासस्थानम् अगाहत प्रविष्टः 'चामीकरं जातरूपं महाराजतकाञ्चने' इत्यमरः।

रावणके अभिप्रायको समझकर मारीचने बहुत तरहसे समझाने बुझानेका प्रयत्न किया किन्तु रावण अपने निश्चयसे जब नहीं डिगा, तब सुबाहु नामक अपने भाईकी जो मखरक्षासमयमें राम द्वारा मारा गया था—प्रशंसा करता हुआ मारीच गत्यन्तर नहीं देखकर रावणकी बात मानकर सीताको छलनेके लिये सुवर्णमृगका शरीर धारण करके पञ्चवटीमें प्रविष्ट हुआ।

दशमुखोऽपि जलधरपथस्थापितरथो दाशरथिविघट्टने कृतास्थस्तस्थौ।

दशमुखोऽपीति। दशमुखः रावणः अपि जलधरपथस्थापितरथः आकाशदेशसंस्थापितनिजस्यन्दनः सन् दाशरथिविघट्टने रामलक्ष्मणयोः पृथक्करणे वियोजनद्वारा भिन्नदेशस्थतासम्पादने कृतास्थः विहितमतिः तस्थौ स्थितः, कथं रामलक्ष्मणौ वियोक्ष्येते इति सप्रयत्नः स्थित इत्याशयः।

रावणने आकाशमें अपना रथ खड़ा कर लिया और इस ताकमें बैठा रहा कि कब राम लक्ष्मण एक दूसरेसे बिछुड़ते हैं।

विपिनमवजगाहे राक्षसानां करोटी-
रसकृदसकृदाविर्बाष्पमालोक्य शोचन्।
कृतरुचिरिव वर्त्मन्यङ्कुशानां कुशानां
पथिकचरणलाविन्यङ्कुरे न्यङ्कुरेषः॥ २४॥

---

१. 'मतिः' इति पाठान्तरम्।
२. 'तास्मिन्रावणे' इति पाठान्तरम्।
३. 'अभ्युपेत्य' इति पाठान्तरम्।
४. 'अगाहत' इति पाठान्तरम्।

विपिनमिति। एष न्यङ्कुः मायामृगरूपो मारीचः असकृत् असकृत् पुनः पुनः आविर्बाष्पम् साश्रुनयनं राक्षसानाम् हतानां खरादिरक्षसाम् करोटीः शिरोऽस्थीनि आलोक्य दृष्ट्वा शोचन् (कथमेतेऽतिबलाः खरादयोऽनेन हताः ? किं ममाप्ययमेव हन्ता ? किं ममापि शिरोऽयमेव लुठिष्यति ? इत्यादि) चिन्तयन् , वर्त्मनि वनमार्गे अङ्कुशानाम् तीक्ष्णतया सृणिभावं भजताम् कुशानाम् दर्भाणाम् पथिकचरणलाविनि तीक्ष्णमुखतया पान्थपादच्छेदके अङ्कुरे कृतरुचिः कृताभिलाप इव विपिनम् पञ्चवटीम् अवजगाहे प्रविष्टः। स हिरण्यमृगरूपो मारीचः सीतावञ्चनाय पञ्चवटीमायातः, तत्रागच्छता तेन मध्यमार्गं खरादीनां शिरांसि लुठन्ति दृष्ट्वा बहुचिन्तितम्, मार्गे कण्टकवदतितीक्ष्णानि पथिकचरणलावीनि बालकुशतृणानि अखादन्नपि तत्र न्यस्तमुख इवासौ चरति, येन पश्यतां चेतःसु तस्याकपटमृगत्वं पदमादधीतेत्यहो वञ्चकसंसार इति भावः। 'कृष्णसारन्यङ्कुः' इत्यमरः। 'शिरोऽस्थनि कपालः स्त्री करोटिः' इति चामरः ॥ २४ ॥

वह मायामृग रूपधारी मारीच पुनः पुनः आंखोंमें आंसू भरकर मरे हुए राक्षसोंकी खोपड़ियाँ देखता हुआ शोचता था (कि हाय, इनकी कैसी दुर्गति की गई है ? क्या हमारे भाग्यमें भी यही बदा है ?) और वनमार्गमें अङ्कुश की तरह मालूम पड़ने वाले तथा पथिकोंके चरणोंमें चुभने वाले कुशोंमें अपनी रुचिको प्रकटित सा करता हुआ वह वनमें पैठ गया। (कुशोंके प्रति अपनी इच्छा प्रकट करके वह अपनेको वास्तविक मृग सिद्ध करना चाहता था, (जिससे कि उसके कथाके प्रति लोगोंका ध्यान नहीं जाय) ॥२४॥

तदनु जनकपुत्रीयाञ्चया तं[1] जिघृक्षु-
　　र्हरिणमनुजगाहे चापमादाय रामः।
समय इति च भेजे [2]वक्त्रमातत्य मृत्युः
　　कुशिकसुतमखाजौ भ्रष्टमेनं जिघांसुः ॥ २५ ॥

तदन्विति। तदनु मारीचरूपे मायामृगे वनं प्रविष्टे सति जनकपुत्रीयाञ्चया सीतायाः 'इमं मृगम्म आहर' इत्याकारकप्रार्थनया हेतुभूतया तं मृगम् जिघृक्षुः रामः 'चापमादाय धृतधन्वा सन् हरिणम् मृगम् अनुजगाहे अनुधावितवान् , कुशिकसुतस्य विश्वामित्रस्य मखे यज्ञे या आजिः युद्धम् तत्र भ्रष्टम् पलायिततयाऽप्राप्तम् एनम् मारीचम् जिघांसुः हन्तुमिच्छुः मृत्युः कालधर्मश्च समयः अयमेवास्य कवलीकरणस्यावसरः इति प्रतीत्य वक्त्रम् मुखम् आतत्य व्यादाय 'एनम् मारीचम् भेजे प्राप। सीताया आग्रहेण रामो हरिणमनुससार' तन्मन्ये विश्वामित्रयज्ञसमरावसरे भाग्यवशात्समुद्रे निलीनं मारीचं जिघांसुर्मृत्युरेव मुखं व्यादा-

१. 'तज्जिघृक्षुः' इति पाठान्तरम्।　　२. 'पाशम्' इति पाठान्तरम्।

च्चामुमुपासर्पत इत्यर्थः। 'समित्याजि समिद्युधः' इत्यमरः। अत्र पूर्ववाक्यार्थस्यो-
त्तरवाक्यार्थे हेतुतया काव्यलिङ्गमलङ्कारः॥ २५॥

इसके बाद सीताकी प्रार्थनासे उस सुवर्ण मृगको पकड़नेके लिये धनुष लेकर रामने
वनमें प्रवेश किया, इसीको अवसर समझ कर मारीचको—जो विश्वामित्र यज्ञ रक्षार्थ
उपस्थित युद्धमें निकल भागा था—मारनेकी इच्छासे मौत भी मुँह बाकर मारीचके पास
आ खड़ी हुई॥ २५॥

आकृष्य दूरमुटजादथ [1]दर्शिताशः
[2]क्रव्याश एष रघुनाथशरेण विद्धः।
कार्तस्वरेण तनुतां विजहौ हतोऽस्मी-
त्यार्तस्वरेण सह रामवचोनिभेन॥ २६॥

आकृष्येति। क्रव्यम् मांसमश्नातीति क्रव्याशः मांसाशी राक्षस एषः मायामृग-
रूपो मारीचः दर्शिता प्रकटीकृता आशा ग्रहणसम्भावना येन तादृशः (हस्तलग्न इव
भूत्वा रामस्य हृदि तद्ग्रहणाशां सञ्चार्य माययाऽन्तर्धाय पुनर्विप्रकर्षं भजतीत्येवं
पुनरिति वञ्चनया) रामम् उटजात् पर्णशालातः दूरम् विप्रकृष्टदेशम् आकृष्य
नीत्वा रघुनाथशरेण रामबाणेन विद्धः आहतः सन्—'हतः अस्मि-प्रिये' इति
रामवचोनिभेन रामस्येवार्त्तस्वरेण रामक्रियमाणेनेव दीनशब्देन सह कार्त्तस्वरे-
रानुताम् सुवर्णमृगदेहं विजहौ त्यक्तवान् उटजाद्दूरमाकृष्य रामं समायासृगरूपो
मारीचः हा कृतोऽस्मि' इति रामस्वरसदृशस्वरेणालप्य (यथा लक्ष्मणो रामत्राण-
याश्रमं जह्यात्तदपगमे च रावणः सीतामेकाकिनीमपहरेत् इति) सुवर्णमृगदेहं
त्यक्तवानित्याशयः। 'पललं क्रव्यमामिषम्' 'हिरण्यं हेमहाटकम्। रुक्मं कार्तस्वरम्'
इति चामरः। अत्रार्त्तस्वरेण सह सुवर्णदेहत्यागकथनात् सहोक्तिरलङ्कारः॥ २६॥

तदुपरान्त मांसभक्षी मारीचने अपनी मायासे स्वयं पकड़े जानेकी आशा प्रकट
करता हुआ, रामको पर्णशालासे दूर ले जाकर और रामके बाणसे बद्ध होकर, दीनस्वरसे
हा लक्ष्मण, हा सीते इस रामके वचन सदृश वचन का उच्चारण करता हुआ अपने
प्राणको त्याग दिया॥ २६॥

एतदाकर्ण्य विदीर्णहृदया हृदयदयितप्रेम्णा कर्तव्याकर्तव्यमजानती
जानकी जानीहि भ्रातरमिति सौमित्रिमादिदेश।

एतदिति। एतत् रामस्वरसदृशं मारीचकृतमार्त्तस्वरम् आकर्ण्य विदीर्णहृदया
रामानिष्टशङ्कया क्षतचित्ता जानकी सीता हृदयदयितप्रेम्णा रामस्य स्नेहेन

१. 'दर्शिताङ्गः' इति पाठान्तरम्। २. 'क्रव्यादः' इति पाठान्तरम्।

निष्टसंभावनायां सञ्जातायाम् कर्त्तव्याकर्त्तव्यम् अजानाना किङ्कर्त्तव्यं किमकर्त्तव्यमिति विवेक्तुमशक्ता मूढा इत्यर्थः, सती भ्रातरं जानीहि-गच्छ, कथं राघवः करुणं विलपतीति जानीहि-अथवा विलपन्तममुं भ्रातरं रामं जानीहि तस्यैवायं स्वरस्तदाशु तमनुसन्धेहि' इति एवं प्रकारेण सौमित्रिम् लक्ष्मणम् आदिदेश आज्ञप्तवती।

रामके सदृशस्वरको सुनकर विदीर्णहृदया तथा प्राणनाथ रामके प्रति प्रेमसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्यके ज्ञानसे शून्य सीताने लक्ष्मणको कहा-कि यह स्वर तुम्हारे ही भाई के हैं, उनका पता लगाओ।

ततश्[1]आर्ये, न कार्यमिदमादिष्टम्। दिष्टदोषान्मिथ्याप्रतीतिः [2]परिभवति भवतीं परम्।

ततश्चेति। हे आर्ये, पूजनीये, इदम् भवत्या कार्यम् कर्तुमर्हम् न आदिष्टम् न आज्ञप्तम्, भवत्या आज्ञा इयं न पालनीया प्रतिभाति, दिष्टदोषात् भाग्यप्रातिकूल्यात् मिथ्या प्रतीतिः विपर्यस्तं ज्ञानम् अरामस्वरेऽपि रामस्वरत्वभ्रमः भवतीम् परिभवति व्यथति। भवत्या यदाज्ञप्तं तन्नोचितं तन्मूलभूतस्य रामविपत्तिपातस्यैव भ्रमेणोपस्थापितत्वात्, भ्रमात्मकज्ञानाधारेण प्रवर्त्तितस्य वचसोऽपालनीयत्वात्, भ्रमात्मकज्ञानमूलाया आज्ञायाः पालने चानर्थान्तरोपनिपातसंभवादिति भावः।

हे आर्ये सीते, आपका यह आदेश अपालनीय है, भाग्यके दोषसे आपको मिथ्या प्रतीति भ्रम घेरे हुआ है। (आप जिस स्वरको रामका स्वर समझ कर उन्हें विपत्ति मग्न समझ रही हैं वह भ्रम है)।

त्रिभुवनैकधनुर्धरस्य शौर्यराशेरा[3]र्यस्य कः श्रद्धीत कोण[4]पघुणनिमित्तां विपत्तिमिति प्रणिपत्य प्रत्याचक्षाणं [5]लक्ष्मणं हृदयतोदकारिण्या वाण्या मोहविह्वला सा बह्वतर्जयत्।

त्रिभुवनैकेति। त्रिभुवनैकधनुर्धरस्य लोकत्रये अद्वितीयधानुष्कस्य शौर्यराशेः वीरतासमुद्रस्य आर्यस्य पूजनीयस्य रामस्य कोणपो राक्षसः स एव घुणः कीटविशेषः तन्निमित्ताम् तदुत्थितां कः श्रद्दधीत विश्वस्यात्। न कोऽपि तत्र विश्वासं कुर्यात् इति प्रणिपत्य प्रणम्य प्रत्याचक्षाणं तदाज्ञां निषेधन्तं नोचिता तवाज्ञा तदिमां संहरेति ब्रुवाणमित्यर्थः, लक्ष्मणम् हृदये तोदः पीड़ा तं करोतीति तया मर्मवेधिन्या वाण्या वाचा सा मोहविह्वला प्रियविपत्तिसंभावनारूपाज्ञानेन विकला

---

१. 'आर्येण कार्यं' इति पाठान्तरम्।   २. 'पराभवति' इति पाठान्तरम्।
३. 'रामार्यस्य' इति पाठान्तरम्।   ४. 'कौणप' इति पाठान्तरम्।
५. 'लक्ष्मणं' इति नास्ति क्वचित्।

सीता बहु बहुशः अतर्जयत् अभर्त्सयत्। त्वं विपत्तिपतितं भ्रातरं नावेक्षसे कि त्वामिति 'बहुधाऽनिन्ददित्यर्थः।

तीनों लोकमें अद्वितीय धनुर्धारी वीरताके सागर पूजनीय रामको घुनके सदृश राक्षसोंसे भला क्या विपत्ति हो सकती है, इस तरह सीताकी आशाका उनके चरणों गिर कर निषेध करते हुए लक्ष्मणको सीताने दिलमें चुभ जाने वाली बातें कह कर कोशा।

भूयोऽपि लक्ष्मणः [1]प्रजावतीं परुषभाषिणीमेवमभाषत।

भूयोऽपीति। भूयः पुनरपि लक्ष्मणकृतप्रत्याख्यानात् परतोऽपि परुषभाषिणीं कठोरकथनपरायणाम् प्रजापतीम् स्वभ्रातृजायाम् लक्ष्मणः एवम् वक्ष्यमाणप्रकार अभाषत अवोचत 'प्रजावती भ्रातृजाया' इत्यमरः। रघुवंशेप्ययं शब्दः प्रयुक्त- "प्रजावतीदोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव'।

पुनः कठोर कथा कहने वाली अपनी भाभी सीतासे लक्ष्मणने इस प्रकार कहा।

सुमुखि ! मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासी[2]।
स्तदभजमवितर्कं मातृसम्पर्कसौख्यम्।
अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्तिं
त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता ॥ २७॥

सुमुखीति। हे सुमुखि मधुरभाषितया सुन्दरवदने, यत् यतः त्वम् मम सत्यम् अकपटभावेन सुमित्रा नाम अम्बा (सुमित्रान्तमजननी वत्सदा मधुरभाषिणी) आसी अभवः, तत् ततः अवितर्कम्' निःशङ्कम् मातृसम्पर्कसौख्यम् जननीसहवास- कृतमानन्दम् अभजम् प्रापम्, त्वया जनन्येव पाल्यमानः सुखमवात्सम् इत्या- शयः। अहह इति खेदव्यञ्जकमव्ययम्, सपदि इदानीम् विधिपाकात् दैवप्राति- कूल्यात् दुरुक्तिम् कर्णकटुवचनम् व्याहरन्ती आलपन्ती सती (इह) विपिनमध्ये कानने मध्यमाम्बा कैकेयी नाम माता जाता असि। पूर्वं त्वया सुमित्रयेवाहं मधु- रमभाषिषि, परमधुना दौर्भाग्यवशात्कैकेय्येव कटूच्ये, तदिदं खेदावहमित्यर्थः। 'विधिर्विधाने दैवेऽपि' इत्यमरः, 'व्याहार उक्तिर्लपितम्' इति च मालिनीवृत्तम् लक्षणमन्यत्रोक्तम् ॥ २७ ॥

हे सुमुखि, तुम अबतक हमारे लिये सुमित्रा माताके समान थी, अतः तुम्हारे साथ रहकर मैं माँके पास रहनेका आनन्द पाता रहा, किन्तु खेद है कि भाग्यविपर्यसे इस समय इस वनमें तुम दुर्वचनका उच्चारण करती हुई कैकेयी माता बन रही हो ॥ २७॥

१. 'परुषभाषणीं प्रजावतीं' इति पाठान्तरम्। २. 'ऽऽसीव' इति पाठान्तरम्।

इत्युक्त्वा [1]भ्रातृसमीपगामिनि लक्ष्मणे तत्क्षणमेव रन्ध्रान्वेषीदशकन्धरः स्यन्दनं विहाय विहायःस्थलादवतीर्य निजान्तःकरणेऽप्यमान्तं रागं वहिः प्रकटयन्निव [2]कपटसंन्यासिवेषः [3]पर्णशालाभ्यर्णमासदत् ।

इत्युक्त्वेति । इति उक्तप्रकारेण उक्त्वा अभिधाय लक्ष्मणे भ्रातृसमीपगामिनि रामसविधंगते तत्क्षणम् तत्कालम् एव (लक्ष्मणशून्यसत्याश्रमे) रन्ध्रान्वेषी छिद्रप्रतीक्षापरः अवसरं प्रतिपालयन् इत्यर्थः, दशकन्धरः रावणः स्यन्दनं रथं विहाय त्यक्त्वा विहायःस्थलात् आकाशदेशात् अवतीर्यः अधोऽवरुह्य निजान्तःकरणे स्वहृदये अपि अमान्तम् मातुमपारयन्तम् रागम् मात्सर्यम् (परद्रोहम्) बहिः प्रकटयन् इव आविष्कुर्वन् इव (यद्वस्तु क्वचनप्रदेशेन माति तत्ततो बहिः प्रकटति, रावणस्यापि हृदयेऽभिमानो राग एव तद्रक्ताम्बररूपेण वहिर्भूत इति विवक्षितोऽर्थः) कपटसन्न्यासिवेषः धृतच्छद्मपरिव्राजकरूपः पर्णशालाभ्यर्णम् सीताऽध्युषितोटजसमीपम् आसदत् आगतः । 'शताङ्गः स्यन्दनो रथः' 'रागोऽनुरक्तौ मात्सर्ये' 'उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्राः' इति च सर्वत्रामरः ।

इस प्रकार सीतासे कहकर लक्ष्मणजी भाईके पास चले, इसी समय मौका देखनेवाला रावण रथको छोड़ आकाशसे उतरकर अपने अन्तःकरणमें नहीं अट सकनेके कारण बाहर आजानेवाले राग-मात्सर्यको (वस्त्ररागसे) प्रकट करता हुआ माया सन्यासीका वेष ग्रहणकर सीताकी पर्णशालाके समीप पहुँचा ।

रामाश्रमाद्विगतलक्ष्मणसन्निधाना-
स्सीतां जहार चपलः पिशिताशनेन्द्रः ।
मालां [4]नवोत्पलमयीं पललभ्रमेण
देवालयादिव निरस्तजनादलर्कः ॥ २८ ॥

रामाश्रमादिति । चपलः अवशेन्द्रियः पिशिताशनेन्द्रो राक्षसाधिपती रावणः विगतलक्ष्मणसन्निधानात् लक्ष्मणसद्भावरहितात् रामाश्रमात् रामोटजात् सीताम् जनकपुत्रीम्—निरस्तजनात् दूरीभूतपुरोहितादिलोकात् देवालयात् मन्दिरात् अलर्कः श्वा पललभ्रमेण मांसभ्रान्त्या नवोत्पलमयीम् नवविकसितकमलगुम्फिताम् मालाम् स्रजम् इव जहार अपहृतवान् । कुतोऽपि पुरोहितादिलोकशून्यात् देवमन्दिरात् कुक्कुरः कमलमालां मांसबुद्ध्या हरेत्तद्वत् लक्ष्मणे रामसमीपं गते तत्सान्निध्यवञ्चिताद् रामस्याश्रमात् अवशहृदयतया लोलुपो रावणः सीतामहार्षीदित्यर्थः । 'शुनको भषकः श्वा स्यादलर्कस्तु स योगितः' इत्यमरः । अलर्कस्य यथा मालाहरणे

१. 'भ्रातृजायां भ्रातृ' इति पा० । २. 'धृतकाषायपटसन्यासवेषः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'पर्णशालामाससाद' इति पा० । ४. 'मद्योत्पल' इति पाठान्तरम् ।

न क्वापि स्वार्थसिद्धिः किन्तु केवलं पुरोहितादिकृतदण्डपातादिना प्राणवधस्तथैव रावणस्यापि सीताहरणेन न स्वेष्टसिद्धिः किन्तु रामकृतः सवंशोच्छेद एवेत्युपमया व्यज्यते वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २८ ॥

चपलचित्त रावणने लक्ष्मणके सान्निध्यसे रहित रामाश्रमसे सीताको हरलिया। जैसे पगला कुत्ता निर्जन देवालयसे मांसबुद्धिसे नवोत्पल निर्मितमालाका हरण करता है ॥२८॥

हा नाथ ! क्व चिरायसीति बहुशो व्याक्रुश्य बाष्पाविलं
चक्षुर्दिक्षु विमुञ्चतीं दशरथस्याद्यामवेक्ष्य स्नुषाम् ।
रे रे [1]राक्षस मा वधूं [2]प्ररुदतीं मुञ्चेति गृध्राधिपो
रुद्ध्वाध्वानमनल्पकोपमकरोदग्रेवणं रावणम् ॥ २९ ॥

हा नाथेति । हा इति खेदे, हे नाथ स्वामिन् क्व कुत्र चिरायसि विलम्बमाचरसि! इति एतेन प्रकारेण बहुशः बहुवारं व्याक्रुश्य क्रन्दनं कृत्वा बाष्पाविलं साश्रु चक्षुः नेत्रम् दिक्षु दिगन्तरेषु विमुञ्चतीम् विक्षिपन्तीम् दशरथस्य राज्ञः आद्याम् स्नुषाम् ज्येष्ठपुत्रकलत्रत्वात् ज्येष्ठां पुत्रवधूम् सीताम् अवेक्ष्य विलोक्य—गृध्राधिपः जटायुः रे रे राक्षस, अरे नीच राक्षस, मा—एवं मा कृथाः, सीतापहरणसाहसं मा कुरु इत्यर्थः, प्ररुदतीम् सातिशयमश्रुमुञ्चतीम् वधूम् स्नुषाम् मुञ्च त्यज, इति एवं कथयित्वा अग्रेवणम् वनस्याग्रे अध्वानम् रुध्वा निरुध्य रावणम् अनल्पकोपम् अतिकुपितम् अकरोत् । जटायुषो दशरथसुहृत्तया स्वसुहृत्स्नुषायां सीतायां स्नुषाशब्दप्रयोग उपपन्न एव । रे रे राक्षस मा—इति वाक्यस्य क्रियाराहित्यमत्यन्तसंभ्रमद्योतनार्थम् । अग्रेवणम् इत्यत्र वनस्याग्रे इति विग्रहे षष्ठीसमासे सति 'वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्यः' इति णत्वम् । अत एव ज्ञापकाच्चाग्रे शब्दस्य पूर्वप्रयोगोऽपि । 'हीनसम्बोधने तु रे' इत्यमरः । 'रौ रौ राक्षस' इत्यस्य स्थाने 'रे रे रावण' इत्यस्यापि वक्तुं शक्यत्वे रावणशब्दो नीचकार्यकारिणस्तस्य नाम्नोऽप्यनुपादेयतां ध्वनयितुमेव त्यक्तः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २९ ॥

हा नाथ, आप कहाँ देर कर रहे हैं, इस तरह बार बार रोती हुई तथा अश्रुपूर्ण नयनोंसे दिशाओंकी ओर देखती हुई दशरथकी बड़ी पुत्रवधूको देखकर गृध्रराज जटायुने अरे नीच राक्षस ! ऐसा अकार्य मत कर, इस रोती हुई मेरी पुत्रवधूको छोड़ दे, इस प्रकारसे रास्ता रोककर वनके अग्रभागमें रावणको अतिकुपित कर दिया ॥ २९ ॥

समभूत्समये तस्मिन्समरं समरंहसोः ।
मिथोमथनसंक्रुद्धगृध्रराक्षसराजयोः ॥ ३० ॥

---

१. रावण इति पाठान्तरम् । २. प्रतिरुधामुञ्च इति पाठान्तरम् ।

समभूदिति । तस्मिन्समये सीताहरणकाले समं रंहो वेगो ययोस्तथोक्तयोः समानवेगवतोः मिथोमथनाय परस्परप्रणाशाय संक्रुद्धौ सातिशयकुपितौ यौ गृध्रराजराक्षसराजौ जटायूरावणौ तयोः समरम् युद्धम् समभूत् अजायत। सीताहरणसमये समानवेगयोर्जटायूरावणयोः परस्परप्रणाशाय कुपिततां बिभ्रतोर्युद्धमजनीत्यर्थः ॥ ३० ॥

उस समय समान वेगवाले गृध्रराज जटायु एवं राक्षसराज रावणके बीच बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ क्योंकि वे दोनों ही एक दूसरेको मारने के लिये अतिकुपित थे ॥ ३० ॥

दशमुखरथमाशु ध्वस्तरथ्यं विसूतं
शिथिलतरवरूथं शीर्णचक्रं स चक्रे।
गरुदभिहतशक्तिप्रास[1]बाणासखड्ग-
त्रिशिखविशिखतूणीपाशकुन्तः शकुन्तः ॥ ३१ ॥

दशमुखरथमिति। स शकुन्तः पक्षी जटायुः गरुद्भिः पक्षैः अभिहताः विपाटिताः शक्तयः, त्रिशूलाकारा आयुधविशेषाः, प्रासाः कुन्ताः, बाणासाः, शरासनानि, खड्गः प्रसिद्धनामा चन्द्रहासः, त्रिशिखम् त्रिशूलम्, विशिखाः बाणाः, तूणी तूणीरमिषुधिः, पाशश्च येन तादृशः स्वपक्षक्षतरावणसम्बन्धितत्तद्युद्धसाधनः सन् आशु दशमुखरथं रावणस्यन्दनम् ध्वस्तरथ्यम् विनष्टघोटकम्, विसूतम् चालकहीनम्, शिथिलतरवरूथम् अतिविपन्नरथगुप्तिम्, तथा शीर्णचक्रम् विनष्टरथाङ्गं चक्रे कृतवान्। जटायुः प्राक् तदीयानि तानि तानि युद्धे सहायताकराणि शस्त्राणि पक्षपातेन विसृज्य ततो रावणस्य रथम् अश्वेन शून्य चालकेन हीनम्, रथगुप्तिविवर्जितम् क्षतरथाङ्गं च चक्र इत्यर्थः। 'शकुन्तपक्षिशकुनि' 'कोदण्डकार्मुकम्—इष्वासः' 'तूणीतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः' 'प्रासस्तु कुन्तः' 'गरुत्पक्षच्छदाः पत्रम्' 'रथ्यो वोढा रथस्य यः' 'सूतः क्षत्ता च सारथिः' 'रथगुप्तिर्वरूथो ना' इति सर्वत्रामरः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३१ ॥

उस पक्षी जटायुने अपने डैनोंकी मारसे शक्ति, भाला, धनुष, तलवार, त्रिशूल, बाण तथा तरकस बच्छीं, पाश आदि रावणके युद्धसाधनोंको नष्ट करके उसके रथको भी नष्टाश्व, विगतसारथि, छतरीशून्य तथा क्षतचक्र बना दिया ॥ ३१ ॥

राक्षसासिक्षतः क्षिप्रं पपात पततां वरः।
मैथिलीपक्षपातेन पक्षपात[2]मवाप्य सः ॥ ३२ ॥

राक्षसासिक्षत इति। सः पतताम् पक्षिणां वरः श्रेष्ठः जटायुः मैथिलीपक्षपातेन सीतासहायताकरणेन कारणभूतेन पक्षपातम् गरुद्भङ्गम् अवाप्य लब्ध्वा राक्षसासिना

१. 'बाणासि' इति पाठान्तरम्। २. 'अवाप' इति पाठान्तरम्।

रावणखड्गेन क्षतः विदलितः सन् पपात भूमाविति योजनीयम्। सीतासहायता-करणाद्रावणस्तस्य पक्षौ च्छित्त्वा तं भूमावपातयदिति भावः ॥ ३२ ॥

सीताकी सहायता करनेके कारण पक्षिराज जटायु अपने पंखोंको रावणकी तलवारसे कटवा कर पृथ्वी पर आ गिरा ॥ ३२ ॥

तत्क्षणमन्यरथाधिरूढेन रावणेन भूयोऽपि नीयमाना जानकी [1]शृङ्ग-सङ्गतप्लवङ्गपञ्चके [2]पञ्चचूड इव [3]क्ष्माधरे कस्मिंश्चित्सुग्रीवसात्कृतदश-ग्रीवप्रतापानलसदृशं वालिविनाशपिशुनमहोल्कापातप्रतिमं रामसाहा-य्यकप्रोत्साहनाय पुत्रमभिपतत्पतङ्गबिम्बशङ्कावहं कनक[4]पिशङ्गकौशेयम-योत्तरीयान्तरितमाभरण[5]जालमपातयत्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन् समये अन्यरथाधिरूढेन जटायुषा रथस्य प्रथ-मस्य भग्नतया द्वितीयं रथमास्थितवता रावणेन भूयः पुनः अपि नीयमाना अप-ह्रियमाणा जानकी सीता शृङ्गसङ्गतप्लवङ्गपञ्चके शृङ्गोपविष्टवानरपञ्चके पञ्चचूडे शिखरपञ्चकोपेते इव कस्मिंश्चित् क्ष्माधरे पर्वते सुग्रीवसात्कृतः सुग्रीवाधीनतां गमितो यो दशग्रीवप्रतापानलः रावणप्रतापतपनस्तेन तुल्यम् सदृशम्, वालि-विनाशपिशुनमहोल्कापातप्रतिमम् वालिमरणख्यापकोल्कापातेन समानम् रामसा-हायकप्रोत्साहनाय रामस्य सहायतायै प्रोत्साहयितुम् पुत्रम् अभि स्वसुतं सुग्रीव-मुद्दिश्य अभिपततः पृथ्वीमागच्छतः पतङ्गबिम्बस्य सूर्यमण्डलस्य शङ्कामावहति भ्रमं जनयति तथाभूतम्, कनकपिशङ्गं सुवर्णवर्णं यत् कौशेयमयोत्तरीयम् क्षौमं संव्यानं तत्रान्तरितं गोपितम् आभरणजालम् भूषणगणम् अपातयत्। अयमा-शयः—यत्र रथे रावणोऽधिरूढस्तं यदा जटायुरभञ्जयत्तदा सोऽन्यं रथमारुह्य सीतामपाहरत्, तेन नीयमाना च सा ऋष्यमूकपर्वतोपरि पञ्चप्लवङ्गमानपश्यत्, तस्य पर्वतस्य पञ्चशिखराणि इव प्रतिभान्ति स्म, तत्र पर्वते सा कौशेये स्वकीये उत्तरीये बद्ध्वा स्वं भूषणगणमपातयत्, भास्वन्ति तानि भूषणानि पतन्ति सन्ति सुग्रीवस्य हस्ते समर्प्यमाणस्य रावणप्रतापानलस्य भ्रममकुर्वत, वालिनाशसूच-कोल्कापातसादृश्यमवहन्, रामस्य सहायतायै स्वपुत्रस्य सुग्रीवस्य उत्साहं सं-र्धयितुं सुग्रीवाभिमुखमागच्छतः सूर्यस्य मण्डलमिवाभासन्तेत्युत्प्रेक्षात्रयार्थः। राव-णेन नीयमाना सीता हारनूपुरादिस्वाभरणगणं कौशेये स्वोत्तरीये बद्ध्वा सुग्रीवा-दीनां वानराणां तदानीमृष्यमूकशिखरेऽवस्थितानां पुरतोऽपातयद्येनामी वान-रावणेन नीयमानां मां श्रीरामाय कथयेयुरिति भूषणपातनं वर्णितम्।

१. 'ऋष्यमूकशृङ्ग' इति पाठान्तरम्। २. 'पञ्चचूडाधर इव' इति पाठान्तरम्।
३. 'क्ष्माधरकुमारे इति पाठान्तरम्। ४. 'कपिशकौशेक' इति पाठान्तरम्।
५. 'भारम्' इति पाठान्तरम्।

उस समय रावण दूसरे रथ पर बैठकर सीताको लेकर चला, हरण की गई सीताने शिखर पर पांच वानरोंके बैठे रहनेके कारण—पञ्चशिखर वाला प्रतीत होने वाले किसी पर्वत पर अपने गहने सोनेकी तरह पीतवर्ण उत्तरीयमें बाँध कर गिरा दिये, वह आभूषण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों रावणका प्रतापानल सुग्रीवके हाथोंमें सौंपा जारहा हो, वालिके विनाशको सूचित करनेवाला उल्कापात हो रहा हो अथवा रामकी सहायता करनेके लिये सूर्यभगवान् अपने पुत्र सुग्रीवको प्रोत्साहित करनेकी इच्छासे सुग्रीवके समीप आरहे हों।

तत्पतनमपि स्वतेजःपतनमिव [1]नालक्षयंल्लङ्कालङ्कारभूतामशोकवनिकां मैथिलीमनय[2]दनयाभिज्ञो दशग्रीवः।

तत्पतनमिति। तत्पतनम् सीताभूषणगणपतनम् अपि स्वतेजःपतनम् इव स्वप्रतापसमाप्तिम् इव न आलक्षयन् अनालोचयन् अनयाभिज्ञः नीतिज्ञानविधुरः दशग्रीवः रावणः मैथिलीम् सीताम् लङ्कालङ्कारभूताम् लङ्कापुरीभूषणायमानाम् अशोकवनिकाम् अनयत् प्रापितवान्। रावणेनात्र पापकर्मणि प्रवर्त्तमानेन स्वतेजो भ्रंशितम्, असदाचारस्य निस्तेजस्कतास्वाभाव्यात्, परं तत्तेन यथा ज्ञातम्, तथा सीतापतितभूषणगणपतनमपि तेन न ज्ञातम्, भाग्यवैगुण्यादित्यर्थः।

उन गहनोंके गिरनेका ज्ञान रावणको नहीं हुआ, जैसे उसे अपने तेजोभ्रंशका ज्ञान नहीं हुआ इस तरह वह अनीतिज्ञ रावण सीताको उस अशोकवाटिकामें पहुँचा दिया जो लङ्कामें भूषणरूप थी।

अशोकवनिका लेभे राक्षसीपरिवेष्टिताम्।
सीतां मारुतिबालाग्निस्तम्भनार्हामिवौषधिम्॥ ३३॥

अशोकवनिकेति। अशोकवनिका लङ्कास्थिता रावणस्य काचिद्वाटिका राक्षसीपरिवेष्टिताम् सीतायाः रक्षार्थं तस्या भयमुत्पाद्य रावणेऽनुरागजननार्थञ्च नियुक्ताभी राक्षसस्त्रीभिः परिवृताम् सीताम् मैथिलीम् मारुतेः हनूमतो यो वालाग्निः पुच्छवह्निस्तस्य स्तम्भने स्वमध्यसञ्चारनिरोधे अर्हाम् क्षमाम् ओषधिम् भेषजम् इव भेजे प्राप। सीता राक्षसीगणपरिवृताऽशोकवनिकामध्यमायाता, मन्ये साऽशोकवनिकाया हनूमत्पुच्छवह्ने रक्षायां स्तम्भनौषधकार्यमिवाकृत। सर्वो लङ्काभागो हनूमता दग्धः, परमशोकवनिका तेन न स्पृष्टापि, तत्र सीतायास्तत्रोपस्थितिरेव कारणमभूदतः सीतामारुतिवालाग्निस्तम्भनार्हौषधिरूपेणोत्प्रेक्षिता॥ ३३॥

राक्षसीगणसे परिवृत सीताको अशोकवाटिकाने हनूमान् की पूँछमें लगी आगको रोकनेकी ओषधिके रूपमें प्राप्त किया। सीताके वहाँ होनेसे ही अशोकवाटिका नहीं जली, इसीलिये उसे ओषधिरूपमें उत्प्रेक्षित किया गया॥ ३३॥

---

१. 'न पश्यन्' इति पाठान्तरम्।   २. 'अनयज्ञो' इति पाठान्तरम्।

काकुत्स्थोऽप्यथ रक्षसामधिपतेर्वाग्वागुरावेष्टिते
कृत्वा हाटकताटकेयहरिणे शार्दूलविक्रीडितम् ।
आगच्छन्ननुजेन तत्र गदितामाकर्ण्य वार्तां ततः
सीतासङ्गमलालसस्तदुटजं रामः प्रतस्थे द्रुतम् ॥ ३४ ॥

काकुत्स्थोऽपीति । अथ काकुत्स्थः राघवः रामः अपि रक्षसाम् अधिपतेः राक्षसराजस्य रावणस्य वाग्वागुरावेष्टिते वचनरूपजालेन परिवृते (रावणोक्त्यनुसारेण सुवर्णमृगीभूयावस्थिते) हाटकं सुवर्णं तस्य यः ताटकेयहरिणः मारीचरूपो मृगस्तत्र (सुवर्णमृगभावमालम्ब्य स्थिते ताटकापुत्रे मारीचे) शार्दूलविक्रीडितम् व्याघ्रकृत्यम् (तन्मारणरूपं कर्म) कृत्वा अनुजेन लक्ष्मणेन सह आगच्छन् आश्रमाभिमुखं परावर्त्तमानः तत्र मार्गे ततः लक्ष्मणात् गदिताम् उक्ताम् वार्त्ताम् (सीता तं कथं रामसमीपं गन्तुं प्रेरितवती, स कथं न्यषेधत्ततः सा कथं कटूक्तिभिस्तमखेदयदित्यादिरूपाम्) आकर्ण्य श्रुत्वा सीतासङ्गमलालसः सीतादर्शनघनोत्कण्ठः सन् द्रुतम् शीघ्रं तदुटजं सीतापर्णशालां प्रतस्थे चलितः । रामो मायामृगरूपं मारीचं व्यापाद्यागच्छन्मध्ये मार्गं सीताया लक्ष्मणेन सह जातां वार्त्तां निशम्य तद्दिदृक्षासोत्कण्ठोद्रुतगत्या सीताया उटजं प्रति प्रस्थित इति भावः ॥ ३४ ॥

इसके बाद रामजी रावणके आदेशानुसार मृगवन में खड़ा सुवर्णमृगरूप मारीचके ऊपर व्याघ्रका विक्रम दिखला कर लक्ष्मणके साथ आते हुए रास्तेमें लक्ष्मणसे सीताकी बातें सुन कर सीताको देखनेके लिये उत्कण्ठित होकर शीघ्र उनकी पर्णशालाकी ओर चले॥३४॥

अयं कथं स्यादिति बाष्पगर्भमालोक्यमानो वनदेवताभिः ।
विलोकयन्केवलपर्णशालां [1]विनष्टचेता विललाप रामः ॥ ३५ ॥

अयं कथमिति । अयं श्रीरामः केवलपर्णशालां सीतारहितमुटजम् विलोकयन् पश्यन् कथं स्यात् ? कां दशामनुभवेत् ! इति वनदेवताभिः काननाधिष्ठात्रीभिर्देवताभिः बाष्पगर्भम् साश्रुनयनं विलोक्यमानः दृश्यमानः रामः (केवलपर्णशालां विलोकयन्) विनष्टचेताः नष्टचैतन्यः सन् विललाप परिदिदेव । सीताविरहितपर्णशालादर्शनेन रामस्य का स्थितिर्भवति ? गभीराशयोऽयमापत्तावस्थां विचलति न वा ? इति जिज्ञासया वनदेवताभिः साश्रुनयनं निरीक्ष्यमाणो रामः सीताविरहितायाः पर्णशालाया आलोकमात्रेण नष्टचैतन्यः सन् विलापं प्रारेभे इत्यर्थः । 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः ॥ ३५ ॥

सीताशून्य पर्णशालाको देखकर रामकी क्या हालत होती है इस बातकी जानकारीके लिये वनदेवताओं द्वारा आँखोंमें आँसू भर कर देखे जाते हुए रामचन्द्र सीतारहित पर्णशालाको देखकर बेचैन हो विलाप करने लगे ॥ ३५ ॥

---

१. 'विलीनचेताः' इति पाठान्तरम् ।

हा कष्टमत्र न हि सा किमिदं प्रवृत्त-
मालोकयामि चटुलामिह पादमुद्राम्।
मां वीक्ष्य नूनमगृहीतमृगं मुहूर्त-
मन्तर्हिता तरुषु रोषवतीव सीता ॥ ३६ ॥

हा कष्टमिति। हा कष्टम् अतिकष्टमुपस्थितम्, अत्र पर्णशालायाम् सा सीता न हि नास्ति, किमिदं प्रवृत्तम्? सीताया अदर्शनं किमर्थं जातम्? इह अत्र पर्णशालापरिसरे चटुलाम् इतस्ततो विशृङ्खलभावेन स्थिताम् पादमुद्राम् चरणन्यासम् आलोकयामि पश्यामि। नूनम् सम्भावयामि, माम् अगृहीतमृगम् अनाहृतस्वर्णमृगम् वीक्ष्य दृष्ट्वा रोषवती कुपिता सीता मुहूर्त्तम् अल्पस्य कालस्य कृते तरुषु वृक्षगुल्मेषु अन्तर्हिता छन्ना जाता। लोके दृश्यते—किमपि स्वप्रार्थितं वस्तु विनैव समायातं पतिं दृष्ट्वा तस्य स्त्री कोपं प्रकाशयितुं क्वापि कोणे निलीय पत्युश्चिन्तां समेधयन्ती तद्धृदयमावर्जयितुं प्रयस्यति, तमेव भावमन्तर्निधाय कविकल्पनेयं प्रवृत्ता। 'मुहूर्त्तमल्पकाले स्याद् घटिकाद्वितयेऽपि च' इति विश्वः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अहा, बड़ी तकलीफकी बात है, यहाँ सीता नहीं है? यह क्या हो गया? इस आश्रमके समीप देशमें अस्तव्यस्त चरणचिह्न दीख रहे हैं। मालूम पड़ता है कि मुझे सुवर्णमृगके बिना आते देखकर रुष्ट हो सीता इन वृक्षोंमें कहीं छिपकर बैठ गई है ॥ ३६ ॥

त्वदभिलषितपूर्त्या[1] वञ्चितः पञ्चवट्या-
मचरमचरमोऽहं मोहभाजां प्रजानाम्।
तदिह सरलबुद्धे! नैष रोषस्य कालः
सुमुखि! मम मुखं किं सोढसीतावियोगम् ॥ ३७ ॥

त्वदभिलषितेति। हे सरलबुद्धे ऋजुमते, हे सुमुखि सुवदने, सीते, त्वदभिलषितपूर्त्या त्वन्मनोरथपूरणेन त्वदभिलषितहिरण्यमृगाहरणेन वञ्चितः रहितः (तथाकर्त्तुमशक्तः) अहम् मोहभाजाम् व्यामोहवतां प्रजानाम् अचरमः प्रथमः अहम् पञ्चवट्याम् तन्नामकवनभूमौ अचरम् भ्रान्तवान्। यद्यप्यहं त्वभिलषितं मृगं नाहर्तुमशकं तथापि तत्र ममौदासीन्यं न कारणं किन्त्वशक्तिरेव, यतोऽहं यथासाध्यं वने भ्रान्तवान्, व्यामोहशालितयोपयुक्तभ्रमणापेक्षयाऽधिकभ्रमणं कृतवानतो मम ज्ञानकृतोऽनायमपराधः किन्त्वशक्तिकृतोऽतश्चात्र कोपस्य नावकाशो भवत्या इत्याशयः। तत् तस्मादिह रोषस्य कालः समयो न, ममाशक्तिकृतेऽपराधे त्वया न कोपितव्यमित्यर्थः। ननु तवाशक्तिकृत एवापराधः काममस्तु तथापि मदभिल-

[1] 'पूर्त्यै' इति पाठान्तरम्।

षितमपूर्णमेवेति मया किमिति कोपो न करणीय इत्यत्राह—मम सुखं किं सोढ सीतावियोगम् ? कदापि सीताया वियोगे मम सुखं सोल्लासं न स्थातुमलमत स्त्वया सत्यपि कोपकारणे मदनुरोधेन कोपमकृत्वा साक्षाद्भाव्यमिति भावः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३७ ॥

मैं तुम्हारे मनोरथकी पूर्त्ति करनेमें असमर्थ तो रहा, (किन्तु इसमें मेरा औदासीन्य कारण नहीं है क्योंकि) मैं व्यामोहित होकर मुग्धजनोंकी पहली श्रेणीमें पहुँच बनके इधर ऊधर भटकता रहा। इसलिये–हे सरले एवं सुमुखि सीते, यह कोप करनेका अवसर नहीं है, क्या हमारा सुख कभी भी तुम्हारे वियोगको सह सका है ? ॥ ३७ ॥

यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि !
चान्द्रं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि ।
यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः ॥ ३८ ॥

यद्यस्तीति। यदि अपूर्वमृगे स्वर्णमृगापेक्षयापि विलक्षणे हरिणे तव कौतुकम् उत्कण्ठा लिप्सा अस्ति तदा चान्द्रम् चन्द्रमसा ध्रियमाणं हरिणम् हरामि तव कृते आनयामि, हे मृगाक्षि हरिणनयने मम सन्निधेहि प्रत्यक्षीभव। (आनीते च चान्द्रे हरिणे) मया हृतम् आनीतम् एवम् चान्द्रं हरिणं न मुञ्चसि न त्यजसि तावत् मृगाङ्कः चन्द्रमाः तव वक्त्रतुलाम् मुखसादृश्यं दधातु। यावच्चान्द्रो हरिणस्तव समीपे तिष्ठति तावच्चान्द्रस्य हरिणरहिततया (निष्कलङ्कतया) चन्द्रस्त्वन्मुखसा दृश्यं धारयत्वित्याशयः। अत्र व्यतिरेकालङ्कारो व्यङ्ग्यः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥३८॥

हे मृगलोचने सीते, यदि तुमको विलक्षणमृग पानेकी इच्छा है तो कहो मैं तुम्हारे लिये चन्द्रमावाला (चन्द्रमाकी गोदमें चलनेवाला) हरिण ले आता हूँ। जब तक उस मृगको तुम नहीं छोड़ोगी तब तक चन्द्रमा तुम्हारे मुखका सादृश्य प्राप्त करेगा। (जब तक चन्द्रमाका मृग तुम्हारे पास रहेगा, तबतक चन्द्रमा मृगरूप कलङ्कसे रहित होनेके कारण तुम्हारे मुखकी तुलना प्राप्त कर सकेगा) ॥ ३८ ॥

सप्राणा चेज्जनकतनया किं न तिष्ठेत मह्यं
हिंस्रैः सत्त्वैर्न [1]खलु निहता रक्तसिक्ता न [2]पृथ्वी ।
[3]गोदावर्या पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या-
द्युक्तं नक्तञ्चरकवलनात्संस्थिता सर्वथा सा ॥ ३९ ॥

---

१. 'किल विहता' इति पाठान्तरम् । २. 'भूमिः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'गोदावर्याः' इति पाठान्तरम् ।

सप्राणा चेदिति। जनकतनया सीता सप्राणा जीवन्ती चेत् (भवेत्) तदा मह्यं किन्न तिष्ठेत मम पुर आत्मानं किमिति न प्रकाशयेत्? एतेन तस्या जीविताभावविषयको निश्चयो व्यञ्जितः। ननु सत्यपि सीतामरणनिश्चये यावत्तत्कारणं न निर्णीयते तावत्तन्निश्चयमूलशैथिल्यमस्त्येव तेन तन्निश्चययितुं पूर्वपूर्वोपस्थितकारणपरिहारपूर्वकमुत्तरोत्तरकारणमुपन्यस्यति-हिंस्रैरिति। खलु निश्चयेन हिंस्रैः सत्त्वैः व्याघ्रादिक्रूरजन्तुभिः न निहता न व्यापादिता (यतः) रक्तसिक्ता रक्तरञ्जिता अत्र पृथ्वी भूमिर्न विद्यत इति शेषः, यदि सा व्याघ्रादिभिर्व्यापादिताऽभविष्यत्तदा रक्तपातोऽत्राद्रक्ष्यत न च स दृश्यतेऽतो नास्ति तत्सम्भव इत्यर्थः। नन्वेवमपि गोदावर्यां नामनद्यां तत्तटे विहरन्ती स्यात्तदीयजले निमग्नेति चेत्तत्राह—रामशून्या रामविरहिता सा सीता गोदावर्यां गोदावरीपरिसरे पुलिनविहृतिं तटविहारं न कुर्यात् न विदधीत, विहारस्य प्रियसाहचर्ये समधिकाऽऽस्वाद्यतया मया विरहितायास्तस्यास्तत्राप्रवृत्तेरित्याशयः। अतो निर्धारयति—युक्तमिति। सा सीता नक्तञ्चरकवलनात् राक्षसकर्तृकभक्षणात् हेतोः सर्वथा असंशयं संस्थिता मृतेति युक्तमुपपन्नमित्यर्थः। 'संस्था स्थितौ व्यवस्थायां नाशे' इति विश्वः। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ ३९ ॥

यदि जनकनन्दिनी जीती रहती तो अवश्य हमारे सामने प्रकट होती, उसे व्याघ्र आदि खा गये ऐसी बात नहीं कही जा सकती है क्योंकि यहाँकी पृथ्वी रक्तरञ्जित नहीं है और यह भी कल्पना नहीं की जा सकती है कि वह गोदावरीके तटपर विहार करते समय डूब गई होगी, क्योंकि वह हमें छोड़कर अकेली विहार करनेके लिये जा नहीं सकती है, इसलिये यही ठीक जंचता है कि उसे राक्षसोंने अपना ग्रास बना लिया है, वह अब इस संसारमें नहीं है ॥ ३९ ॥

लोकान्तरप्रणयिनं श्वशुरं प्रणन्तु-
माज्ञप्तकालमतिलङ्घ्य यदि प्रयासि।
विज्ञाप्य मामपि समाह्वय साध्वि! तस्मै
सौमित्रिरेव भरते निदधातु राज्यम् ॥ ४० ॥

लोकान्तरप्रणयिनमिति। आज्ञप्तकालम् पित्रा निर्दिष्टं चतुर्दशवर्षात्मकं वनवासकालम् अतिलङ्घ्य अतिक्रम्य (अधुनैव वनवासत्यागात्तदुक्तिमनादृत्य) यदि लोकान्तरप्रणयिनम् स्वर्गवासिनम् श्वशुरम् मम पितरं दशरथम् प्रणन्तुम् वन्दितुम् प्रयासि गच्छसि (गतासि) तदा तस्मै विज्ञाप्य पतिवियुक्ताहं क्षणमपि स्थातुं न शक्नोमि तन्मम पतिमत्राकारयेति पित्रे निवेद्य माम् अपि समाह्वय आकारय, हे साध्वि पतिव्रते, सौमित्रिः लक्ष्मण एव भरते राज्यं समर्पयतु—रामे लोकान्तरमते भरतो न्यायतो राजा भवेदिति भरतं लक्ष्मण एव बोधयत्वित्यर्थः। अत्र रामस्य

सीतायां परलोकागतायां तदनुवृत्तावौत्सुक्यद्योतनेन प्राणेभ्योऽपि तस्याः प्रियतरत्वं व्यञ्जितम् । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४० ॥

यदि पिताजी द्वारा निर्धारित चतुर्दशवर्षात्मक वनवास कालका उल्लङ्घन करके तुम स्वर्गीय पिताजीको प्रणाम करने के लिये स्वर्ग गई हो तो पिताजीसे कहकर मुझे वहीं बुलालो लक्ष्मण ही भरतको राज्य लौटा देंगे ॥ ४० ॥

इत्थं विलप्य दयितां विपिने विचिन्वन्
रामो न तत्र धृतिमान्न च लक्ष्मणोऽपि ।
तादृग्विधामपि [1]कथां कथयन् स्ववाचा
वाल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः ॥ ४१ ॥

इत्थमिति । इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण विलप्य विलापं कृत्वा दयितां प्रियां सीतां वने विचिन्वन् अन्वेषयन् रामः तत्र तस्मिन् समये न धृतिमान् च्युतधैर्यः, न च लक्ष्मणः अपि धृतिमान् आसीदित्यनुषज्यते, विलपन्तौ रामलक्ष्मणौ सीतामन्वेषयन्तौ भृशमधीरावभूतामित्यर्थः । तादृग्विधाम् तथाविधाम् रामविलापतदधैर्यादिवर्णनपरां कथाम् वृत्तान्तम् स्ववाचा कथयन् प्रकाशयन् वल्मीकाज्जन्म यस्य स तादृशश्चासौ मुनिः परमर्षिः वाल्मीकिः एव कठोरचेताः कठिनहृदयः आसीदिति योजनीयम् । रामविलापप्रकाशनरूपमतिकठोरकृत्यं यद्वाल्मीकिरन्वतिष्ठत्तेन तस्य कठिनहृदयत्वं स्फुटीकृतमिति भावः । वृत्तं पूर्वोक्तमेव ॥ ४१ ॥

इस प्रकार विलाप करके प्रियतमा सीताको वनमें ढूढ़ते हुए रामको धैर्य नहीं रहा और न लक्ष्मण ही धैर्य रख सके, इस प्रकारकी कथाको भी अपनी वाणीसे प्रकाशित करनेमें कठोर हृदय वाल्मीकि ही समर्थ हो सके हैं । (हमलोग कोमलहृदय-भावुक हैं हमसे उस कथाका प्रकाशित करना अशक्य कार्य है) ॥ ४१ ॥

[2]ततः प्रारभमाणप्रयाणान्प्राणानवष्टभ्य जटायुस्तत इतः क्रियमाणसीतान्वेषणं सलक्ष्मणं राममालक्ष्यन्नवोचत ।

तत इति । ततः तदनन्तरम् प्रारभमाणम् आद्यकृतिमत् उपक्रममाणम् प्रयाणं गमनं येषाम् तान् तथोक्तान् प्राणान् (गन्तुमिच्छतः प्रारब्धयात्रानपि प्राणान्) अवष्टभ्य नियम्य अवरुध्य जटायुः—सलक्ष्मणम् लक्ष्मणानुगतं रामम् तत इतः अत्र तत्र क्रियमाणसीतान्वेषणम् सीतामन्वेषयन्तम् रामम् आलक्षयन् पश्यन् अवोचत उक्तवान् ।

१. 'दशाम्' इति पाठान्तरम् । २. 'तत्र' इति पाठान्तरम् ।

इसके बाद जानेके तैयार अपने प्राणोंको रोककर जटायुने लक्ष्मणके साथ इधर ऊधर सीताका अन्वेषण करते हुए रामको इस प्रकार से कहा।

आयुष्मन्! मां खड्गविक्षतपक्षतिं क्षितितले निक्षिप्य [1]क्षिप्रमपजहार मैथिलीं रावण इति।

आयुष्मन्निति। हे आयुष्मन् चिरजीविन्, खड्गेन रावणचन्द्रहासेन विक्षते खण्डिते पक्षती पक्षौ यस्य स तादृशम् रावणखड्गच्छिन्नपक्षं माम् जटायुषम् क्षितितले भूमौ निक्षिप्य पातयित्वा रावणः मैथिलीम् सीताम् क्षिप्रम् त्वरया अपजहार अपहृतवान्, 'स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्' 'लघुक्षिप्रमरं द्रुतम्' इत्युभयत्रामरः।

आयुष्मन्, अपनी तलवारसे हमारे डैनोंको काट कर मुझे पृथ्वी पर गिराकर रावण सीताको शीघ्रतासे हरकर ले गया।

स्वयमपि शरभङ्गस्वीकृतां भङ्गहीनां
सपदि गतिमवाप्तः संहृतायुर्जटायुः॥
नयनसलिलमिश्रं रामहस्तेन दत्तं
दशरथदुरवापं प्राप नैवापमम्भः॥ ४२॥

स्वयमपीति। संहृतम् समाप्तमायुः जीवनकालः यस्य स संहृतायुः समाप्तजीवनलीलः जटायुः स्वयम् आत्मना अपि शरभङ्गस्वीकृताम् शरभङ्गनाम्ना मुनिना वह्नौ स्वां तनुं हुत्वा प्राप्ताम् भङ्गहीनाम् अनपायाम् (कदाप्यविनाशिनीम्) गतिम् स्वर्गप्राप्तिलक्षणाम् स्थितिम् अवाप्तः यातः सन् नयनसलिलमिश्रम् अश्रुयुक्तम् रामहस्तेन दत्तम् उपहृतं दशरथदुरवापं दशरथेन न लब्धम् नैवापम् मरणोत्तरलभ्यम् जलाञ्जलिरूपम् अम्भः जलम् प्राप लब्धवान्। जटायू रामाय सीताहरणवृत्तमावेद्य समाप्तजीवनलीलः सन् यथा शरभङ्गो रामदर्शनात् परतो वह्नौ प्रविश्य स्वर्गतस्तथैवापुनरावृत्तये स्वर्गतः, स्वर्गते च तस्मिंस्तस्मै रामो रुदन्नम्भो वितीर्णवान्, एवञ्च जटायू रामेण वितीर्णमश्रुसलिलपूर्णं जलाञ्जलिमवाप्तवान्यन्न प्राप रामेण पुत्रीसन्नपि दशरथस्तन्मृत्युकाले रामस्य तत्समीपेऽसत्त्वादिति भावार्थः। 'पितृदानं निवापः स्यात्' इत्यमरः। मालिनीवृत्तम्॥ ४२॥

समाप्त हो गया है जीवनकाल जिसका ऐसा वह जटायु स्वयं भी शरभङ्ग द्वारा प्राप्त तथा अविनाशी स्वर्गलोक प्राप्त करके रोते हुए राम द्वारा प्रदत्त उस जलाञ्जलिको प्राप्त किया जिसे (रामके पिता) दशरथजी भी नहीं प्राप्त कर सके थे (क्योंकि दशरथकी मृत्युके समय राम उनके पास नहीं थे)॥ ४२॥

---

१. 'क्षिप्रतरम्' इति पाठान्तरम्।

अथ दक्षिणारण्यानीं [1]प्रति प्रस्थिते काकुत्स्थे राक्षसी काचिदयोमुखीनाम सौमित्रिमभिभूय तदीयेन शस्त्रेण शूर्पणखासिद्धिमभजत।

अथेति। अथ जटायुषे मोक्षं प्रदाय काकुत्स्थे रामचन्द्रे दक्षिणारण्यानीम् दक्षिणदिगवस्थितं महद्वनम् प्रति प्रस्थिते चलिते सति अयोमुखी नाम काचित् काचित् राक्षसी सौमित्रिम् अभिभूय मया सह रमस्वेत्याद्युक्त्या कदर्थयित्वा तदीयेन लक्ष्मणसम्बन्धिना शस्त्रेण खड्गेन शूर्पणखासिद्धिम् शूर्पणखाप्राप्ताम् यथा अङ्गभङ्गरूपां दशाम् अभजत प्रापत्। तदुक्तं रामायणे—'एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः। कर्णनासे स्तनौ तस्या विचकर्तारिसूदनः'।

जटायुको मुक्तिप्रदान करनेके बाद जब रामजी दक्षिणके घोर जङ्गल की ओर चले तब अयोमुखी नामक राक्षसी उनके समीप आई और उसने लक्ष्मणसे रतिकी प्रार्थना की, उन्होंने इस अयुक्त प्रार्थनासे क्रुद्ध होकर उसकी भी वही दशा की जो उन्होंके शूर्पणखाकी की थी।

[2]ततः क्रौञ्चारण्यसरण्या प्रयातावेतौ महर्षेः स्थूलशिरसः शापात्कोणपतां प्रपन्नः पन्नगपतिभोगभीषणाभ्यां भुजाभ्यां बबन्ध यथार्थनामा कबन्धः।

तत इति। ततः अयोमुखी कर्णनासादिच्छेदनात्परतः क्रौञ्चारण्यसरण्या क्रौञ्चवनमार्गेण प्रयातौ चलितौ एतौ (कर्मणि-द्वितीयाद्विवचने रूपम्) रामलक्ष्मणौ स्थूलशिरसा नाम महर्षेः शापात् कोणपतां राक्षसभावं प्रपन्नः प्राप्तः यथार्थनामा अन्वर्थाभिधानः कबन्धः (कबन्धपदं क्रियायुक्तं शिरोहीनं देहमाह, तस्यापि शिरो-राहित्येन तन्नाम्नो यथार्थता) पन्नगपतिभोगभीषणाभ्याम् शेषनागतनुवद्विशाल-तया स्वभावतो भयङ्कराभ्याम् भुजाभ्याम् बाहुभ्याम् बबन्ध रुरोध। 'अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः। सरणिः' 'कबन्धोऽस्त्री क्रियायुक्तमपमूर्धकले-वरम्' इत्युभयत्रामरः।

इसके बाद क्रौञ्चारण्यके मार्गसे जानेवाले राम और लक्ष्मणको स्थूलशिरा नामक महर्षिके शापसे राक्षसत्वको प्राप्त कबन्धने शेषनागकी देहकी तरह दीर्घ और विशाल अत एव भयङ्कर अपने बाहुओंसे बाँध लिया।

तदनन्तरमनश्रुपात्रेषु राक्षसीनेत्रेषु [3]सदोत्पादिततरवारिभ्यां रामलक्ष्मणयोस्तरवारिभ्यां कबन्धबाहुयुगलं [4]कदलीलावमलूयत।

---

१. 'प्रति' इति क्वचिन्नास्ति। २. 'तदनु' इति पाठान्तरम्।

३. 'सदोत्पादितवारिभ्यां तरवारिभ्यां रामलक्ष्मणयोः' इति पाठान्तरम्।

४. 'लावमिव' इति पाठान्तरम्।

तदनन्तरमिति। कवन्धबाहुभ्यां बद्धयो रामलक्ष्मणयोः अनश्रुपात्रेषु अश्रुपात्रतामस्पृशत्सु (राक्षसानां महाविक्रमतया तद्गृहेषु कस्यापि शोकावसरस्यानागमनेनाश्रुप्रवाहकथावर्जितेषु) राक्षसीनेत्रेषु सदोत्पादिततरम् निरन्तरमतिशयेन च प्रकटीकृतम् वारिबाष्पोदकं याभ्यां तादृशाभ्यां (राक्षसवधं विधाय राक्षसीः सततमतिशयेन च रोदयद्भ्याम्) रामलक्ष्मणयोः तरवारिभ्यां खड्गाभ्यां कवन्धबाहुयुगलम् कवन्धनामकराक्षसस्य बाहुद्वयम् कदलीलावम् कदलीम् रम्भातरुम् इव लूत्वा ('उपमाने कर्मणि च' इति णमुल्) अलूयत अच्छेदि। रामलक्ष्मणौ कवन्धबाहुभ्यां बद्धौ सन्तौ कवन्धस्य हस्तावच्छिन्ताम् ताभ्यां स्वखड्गाभ्यां यौ पूर्वमश्रुकथयाऽपि विरहितेषु राक्षसीजननयनेषु तत्पतिपुत्रादिमारणद्वारा बाष्पवारिणो वासमिवासृजतामिति भावः। 'तरवारिर्मण्डलाग्रः खड्गकौक्षेयकौ समौ' इत्यमरः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः। चिच्छेद रामो वेगेन, सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः'।

इसके बाद आँसूसे अपरिचित राक्षसियोंके नयनोंमें सदा आँसूरूप जलको पैदा करते रहने वाले राम और लक्ष्मणके खड्गोंने कवन्धके दोनों हाथोंको कदली वृक्षकी तरह काट दिया।

तदनु दनुकबन्धेनादरादर्थितौ तौ
गिरितटभुवि देहं देहतुस्तस्य भीमम्।
अकथयदथ शापापायतुष्टः स रामं
तपनतनयमैत्र्या मैथिलीं प्राप्नुहीति॥ ४३॥

तदन्विति। तदनु बाहुच्छेदनान्तरम् दनुश्चासौ कवन्धो दनुकवन्धः राक्षसः कवन्धः (दनुजार्थे दनुपदप्रयोगः, यद्वा दनुरिति तस्य पूर्वतनं नाम) तेन आदरात् बहुमानपूर्वम् अर्थितौ स्वस्यास्तनोरग्निसात्कारणायानुरुद्धौ तौ रामलक्ष्मणौ तस्य कवन्धस्य भीमम् अतिभयङ्करम् देहम् कायम् गिरितटभुवि पर्वतोपत्यकाभूमौ देहतुः भस्मचक्रतुः। अथ दाहात्परतः शापापायतुष्टः स्थूलशिरः संज्ञकमुनिदत्तशापोपशमप्रसन्नः सः कबन्धः तपनतनयस्य सूर्यपुत्रस्य मैत्र्या सुग्रीवसख्येन हेतुना मैथिलीं सीतां प्राप्नुहि आसादय इति रामम् अकथयत उक्तवान्। उक्तमत्र रामायणे 'श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः'। इत्यारभ्य—'स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे' इत्यन्तेन सन्दर्भेण। मलिनीवृत्तम्॥ ४३॥

इसके बाद कवन्धद्वारा आदरपूर्वक प्रार्थित होकर राम और लक्ष्मणने उसकी देहको पर्वतोपत्यका भूमिमें अग्निसात् कर दिया, इस अग्निदाहसे अपने दानवयोनिजन्म प्रयोजक ऋषिशापके छूट जानेसे सन्तुष्ट उस कवन्धने रामसे कहा कि सूर्यके पुत्र सुग्रीवके साथ मैत्री करके आप सीताका उद्धार कर सकेंगे॥ ४३॥

तस्मिन्नृष्यमूकमार्गमुपदिश्य स्वर्गं गते मतङ्गाश्रमवासिन्या

तपस्विन्या[1] शबर्या कृतां सपर्यां[2] परिगृह्य रामस्तदनुज्ञया मनोज्ञविविधवि[3]हगकूजितं मृगगणविहरण[4]मनोहरं गहनपदमवगाह्य व्याकोशकुशेशयपरिचयकषायैर्वनदेवतालतादोलानुकूलैः कूलायतलीलापरवशवशावल्लभमदाम्बुभिः शम्बरारातिशरधिसदृश तटरुहसहकार[5]शिखरविसरदासवासारशीकरशेखरैर्विविधलतालासिकालास्योपदेशदेशिकायमानैः कायमानसमानाभोगलतागृहकेलिलुब्धलुब्धकपुरन्ध्रीशिथिलधम्मिल्लमल्लिकागन्धमांसलैर्मल्लिकाक्षपक्षविक्षोभक्षोदीभूतपाथःपाथेयैस्तटवनपवनैरनुकम्प्यमानः पम्पामभजत् ।

इति श्रीमद्विदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे श्रीमदरण्यकाण्डः समाप्तः।

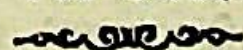
तस्मिन्निति । ऋष्यमूकमार्गम् ऋष्यमूकनामकसुग्रीवाधिष्ठितपर्वतप्रापकपन्थानम् उपदिश्य अभिधाय तस्मिन् कवन्धे स्वर्गं गते दिवं प्रयाते सति रामः मतङ्गस्य ऋषेराश्रमे तपस्यार्थें निवासदेशे वसति तच्छीलया मतङ्गमुन्याश्रममधितिष्ठन्त्या शवर्या शवरजातिकुलोत्पन्नया तन्नामख्यातया भक्तया कृताम् उपपादिताम् सपर्यां पूजाम् प्रतिगृह्य तदनुज्ञया शवर्याः अनुमत्या मनोज्ञानाम् हृदयहारिणाम् विविधानाम् नानाप्रकारकाणाम् विहगानाम् पक्षिणां कूजितम् शब्दो यत्र तादृशम् कूजद्घद्यनानाविधखगम् मृगगणविहरणमनोहरम् हरिणसमुदायसञ्चाररमणीयम् गहनपदम् अरण्यस्थानम् अवगाह्य प्रविश्य तटवनपवनैः पम्पासरस्तीरवर्तिवायुभिः अनुकम्प्यमानः शैत्यसुगन्धिसम्पादनविधयाऽनुगृह्यमाणो रामः पम्पाम् अभजदिति वाक्यार्थः । अत्र वायुविशेषणानि व्याख्यातुमुपक्रम्यन्ते व्याकोशम् विकसितं यत् कुशेशयं कमलं तस्य परिचयः सम्पर्कस्तेन कषायैः कषायरसवद्भिः (सुगन्धिपदार्थस्वादः प्रायेण कषायो वर्ण्यते—'यथा चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः' इति कुमारे कालिदासः) विकसितानां कमलानां सम्पर्कमहिम्ना कषायरसयुक्तैरिति भावः। वनदेवतायाः वनाधिष्ठातृदेवतायाः या लतादोला लतारूपदोलाधिरोहणक्रिया तदनुकूलैः तत्र क्षमैः, दोलाधिरोहणे दोलाचालनाय वायुवेग उपयुज्येत, लतारूपां दोलामधिरोहन्त्यां वनदेवतायां तां चालयन् वायुस्तदनुकूलतामाचरतीति तथोच्यते। कूले पम्पासरस्तीरे आयता अविच्छेदेन प्रवृत्ता या लीला क्रीडा तत्परवशो यो वशावल्लभः मत्तमतङ्गजस्तस्य मदाम्बु दानवारि चुम्बन्ति तथोक्तास्तैः पम्पासरस्तटे तिर्यग्दन्तप्रहारादिक्रीडाप्रवृत्तमहेभमदवारिस्पर्शरसिकैरित्यर्थः। शम्बरारातिः कामस्तस्य शरधिः तूणीरम् तत्सदृशानि तत्तुल्यानि यानि

१. 'तपस्विन्या' इति नास्ति क्वचित्। २. 'रामः परिगृह्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'मनोज्ञकूजितविहङ्गमृग' इति पाठान्तरम्। ४. 'विहार' इति पाठान्तरम्।
५. 'तटसहकार' इति पाठान्तरम्।

तटरुहसहकारशिखराणि पुलिनप्ररूढाम्रमञ्जर्यः—(शिखरपदं मञ्जरीपरं तस्या एव तत्स्थाने सत्त्वात्) तेभ्यः आम्रशिखेरभ्यः विसरन् सर्वतः प्रसरणशीलः यः आसवासारः मकरन्दधारासम्पातः तस्य शीकरकणाः विन्दुलवाः एव शेखराः अवतंसाः येषां तैस्तथोक्तैः, पम्पासरोवरतीररूढाम्रतरुमञ्जरीप्रसरन्मकरन्दविन्दुकणविरचितावतंसैः—मकरन्दबिन्दुवाहिभिरिति परमार्थः। विविधानां नानाप्रकाराणां लतालासिकानाम् वल्लीरूपनर्त्तकीनाम् लास्योपदेशे नृत्यकलाशिक्षणे देशिकायमानैः आचार्यभावं भजद्भिः, लतानर्त्तयद्भिरित्यर्थः। कायमानम् शरीरपरिमाणं तत्समानः तन्मानतुलितपरिमाणो यो लतागृहः कुञ्जस्तत्र केलौ कामक्रीडायां लुब्धा अभिलाषुका या लुब्धकपुरन्ध्री शबरवनिता तस्याः शिथिलात् प्रियकृतकर्षणवशाद्गलितवन्धात् धम्मिल्लात् केशपाशात् (च्युतानाम्) मल्लिकानाम् पुष्पभेदानाम् गन्धैः सुगन्धैः मांसलैः पूर्णैः—शरीराभोगपरिमितलताकुञ्जक्रीडच्छबरकामिनीकेशच्युतमल्लिकापरिमलहारिभिरित्याशयः। मल्लिकाक्षाः मलिनचञ्चुचरणाः हंसभेदाः तेषां पक्षविक्षोभैः पक्षतिचालनैः क्षोदीभूतानि खण्डशः कृतानि यानि पाथांसि पम्पासरोजलानि तानि पाथेयानि पथिभक्ष्याणि येषां तैस्तथोक्तैः—हंसाहतपयःप्रसृमरजलविन्दूनादाय वहद्भिरित्याशयः। अत्र गद्यांशे क्रमशः—'पूजा नमस्यापचितिः सपर्याऽर्चार्हणाः समाः' 'कमलं शतपत्रं कुशेशयम्' 'रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे' 'वशा स्त्री करिणी वन्ध्या' 'शिखरं शैलवृक्षाग्रशिखापुलककोटिषु' 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारः' 'शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः' 'नर्त्तकीलासिके समे' 'लास्यं नृत्यं च नर्त्तने' 'कवरी केशवेशोऽथ धम्मिलः' 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षाः' इति कोशाः।

कबन्ध राम और लक्ष्मणको ऋष्यमूकका मार्ग बताकर स्वर्ग चला गया, उसके बाद रामने मतङ्गाश्रमवासिनी शबरी द्वारा की गई पूजा स्वीकृत की और उसकी अनुमतिसे नाना प्रकारके पक्षियोंके शब्दसे सुन्दर एवं मृगगणके सञ्चारसे रमणीय वनस्थानमें प्रवेश करके विकसित कमलकी सुगन्धसे सुरभित, वनदेवताओंके लतारूप झूलेके लिये उपयुक्त, पम्पाके तटमें क्रीड़ा करते हुए मत्त हाथियोंके दानवारिको चूमने वाले, कामदेवकी तरकस के सदृश तीरवर्त्ती आम्रमञ्जरियोंसे फैलने वाली मकरन्दविन्दुओंका वहन करने वाले, लतारूप नर्त्तकियोंको नृत्य सिखानेमें अचार्य पद पर नियुक्त, देहके परिमाणसे बने लताकुञ्जमें क्रीडाकी इच्छा रखने वाली शबरयुवतीके खुले हुए केशपाशसे च्युत मल्लिकापुष्पकी सुगन्धसे पूर्ण और काले चोंच और चरणवाले हंसोंके पक्षप्रहारसे चूर्णित पम्पाजलरूप पाथेय लेकर बहते हुए पवनसे सौरभ्य तथा शैत्य प्रदान द्वारा अनुगृहीत हो पम्पा सरोवरके पास पदार्पण किया।

इति मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते चम्पूरामायण'प्रकाशे' अरण्यकाण्डप्रकाशः।



अथ किष्किन्धाकाण्डम्

स तां सतां बुद्धिमिव प्रसन्नां पम्पां वियोगज्वरजातकम्पः।
विलोकयंल्लोकनिविष्टकीर्तिरार्तिं रघूणां प्रवरः प्रपेदे ॥ १ ॥

स तामिति। सः तत्तद्राक्षससंहारकर्मप्रसिद्धः अत एव च लोकनिविष्टकीर्तिः सकलभुवनव्याप्तयशाः सताम् सज्जनानां बुद्धिम् मतिम् इव प्रसन्नाम् अपास्तसमस्तदूषणाम् स्वच्छसलिलाञ्च पम्पाम् नाम सरः विलोकयन् पश्यन् वियोगज्वरेण सीताविरहसन्तापेन जातः कम्पो वेपथुर्यस्य तादृशः रघूणां प्रवरः रघुवंशतिलकः आर्त्तिम् पीडाम् प्रपेदे प्राप। पम्पासरसः प्रसन्नपयः पूर्णतया कामोद्दीपकतया तत्रागतस्य रामस्य सीताविरहव्यथा वव‍ृधे इत्यर्थः। 'सतां बुद्धि'मित्युपमा। 'आर्त्तिः पीडा धनुष्कोटयोः' इत्यमरः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ १ ॥

प्रसिद्ध पराक्रम तथा लोकत्रयगीतकीर्त्ति रघुकुल तिलकने जब सज्जनोंके अन्तःकरणकी तरह स्वच्छ निर्मल पम्पा सरोवरको देखा तो वह विरहसन्तापसे कांप उठे और उनकी पीड़ा बहुत बढ़ गई ॥ १ ॥

ततस्तस्यास्तटवने नानानोकहनिवहपरिष्कृते निभृतेतर[1]भ्रमणपरभृतव्रातचञ्चूमयविपञ्चीसमुदञ्चितपञ्चमाञ्चिता सन्तताकुञ्चित[2]पञ्चशरशरासनवञ्चितपथिकजनसञ्चारप्रपञ्चा प्रमदचञ्चलचञ्चरीककुलकञ्चुकितमाधवी माधवी भूतिरुदजृम्भत।

तत इति। ततः रामे पम्पातटमुपागते सति नानानोकहनिवहपरिष्कृते विविधवृक्षव्यूहविभूषिते तस्याः पम्पायास्तटवने तीरवर्त्तिनि कानने निभृतं शान्तम् अनिभृतं चञ्चलं भ्रमणं सञ्चरणं येषां तादृशानाम् चपलतया तत इतः सञ्चरताम् परभृतव्रातानाम् कोकिलनिकराणाम् चञ्चूमयीभ्यः चञ्चूरूपाभ्यः विपञ्चीभ्यः वीणाभ्यः समुदञ्चितः प्रकटितो यः पञ्चमः रागः तेन अञ्चिता प्रशस्ता, (यत्र तत्र भ्रमद्भिः कोकिलैः स्वचञ्चूवीणायाः प्रकटितैः पञ्चमरागैर्युक्तेत्यर्थः) संततम् सर्वदा आकुञ्चितम् शरसन्धानाय अवनमितम् यत्पञ्चशरशरासनं कामदेवकार्मुकं तेन वञ्चितो निवारितः पथिकजनानां विरहिपान्थलोकानां सञ्चारप्रपञ्चो यातायातप्रचारो यस्याम् सा तादृशी, (अनवरतबाणवर्षिकामशरासनभयात् पथिकजनप्रचाररहिता—कामपीडाभयाल्लोका यत्र पथि न प्रवर्त्तन्ते किन्तु भवनमेव सेवन्ते इत्यर्थः) प्रमदचञ्चलम् आनन्दचपलं यच्चञ्चरीककुलं भ्रमरसमूहस्तेन कञ्चुकिता

---

१. 'परिभ्रमण' इति पाठान्तरम्।

२. 'शरासनशरासारवञ्चितसञ्चरपथिकप्रपञ्चा' इति पाठान्तरम्।

आवृता माधवी नाम लता यस्यां सा तादृशी माधवी वासन्ती भूतिः पुष्पसौरभादिसम्पत् उदजृम्भत प्रकटीभूय स्थिता। वसन्तकालः समुपस्थित इत्यर्थः। 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि' 'चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियाम्' 'वीणा तु वल्लकी विपञ्ची' 'वासन्ती माधवीलता' इति सर्वत्रामरः।

इसके बाद नानाप्रकारके वृक्षोंके समुदायसे शोभित पम्पातटवर्त्ती वनमें इतस्ततः घूमते हुए कोकिलोंकी चोंचरूप वीणासे निकले हुए पञ्चमरागसे मुखरित, कामकेशर सन्धानार्थ अवनत शरासन द्वारा पथिकोंके सञ्चरणको रोकनेवाली, हर्षसे चञ्चल भ्रमर-समुदायसे माधवीलताको आवृत करनेवाली वासन्ती शोभा प्रकटित हुई।

यत्र कान्तैर्वियुक्तानां युक्तानामपि सुभ्रुवाम्।
दोलाकर्म वितन्वन्ति मनांसि च वपूंषि च॥ २॥

यत्रेति। यत्र यस्मिन् वसन्तसमये कान्तैः स्वप्रियैः वियुक्तानाम् विरहितानाम् युक्तानाम् तत्सङ्गतानामपि सुभ्रुवाम् रमणीनाम् मनांसि चेतांसि वपूंषि शरीराणि च दोलाकर्म दोलावच्चलनम् दोहारोहणं च वितन्वन्ति कुर्वन्ति। यत्र वसन्तकाले प्रियैर्वियुक्तानां रमणीनां मनांसि वासन्तोद्दीपकसामग्रीसमवधाने सम्भूतया कामबाधया भृशं कम्पन्ते, प्रियसंयुक्तानाञ्च वनितानां शरीराणि दोलाधिरोहणसुखमनुभवन्तीति पर्यायेणान्वयो बोध्यः। यथासङ्ख्यमलङ्कारः॥ २॥

जिस वसन्त समयमें कान्तसे वियुक्त रमणियोंके हृदय झूलेकी तरह (कामव्यथा के भयसे) झूलते रहते हैं और कान्तसङ्गत रमणियोंके शरीर झूलेपर झूलते हैं॥ २॥

करतलै[1]रपचायमथेक्षणैरपचयं च वनेषु जनेषु च।
सुमनसां मनसामपि यद्दिने विरचयन्ति विलोलविलोचनाः॥ ३॥

करतलैरिति। यद्दिने यस्य वसन्तस्य दिनेषु विलोलविलोचनाः चञ्चलाक्ष्यः करतलैः निजकरकमलैः वनेषु काननेषु सुमनसाम् पुष्पाणाम् अपचायम् लवनम् अथ ईक्षणैः नेत्रैः जनेषु दर्शकवृन्देषु मनसाम् तच्चित्तानाम् अपचयं रागाकुलत्वलक्षणमपहारं च विरचयन्ति सम्पादयन्ति। येषु वसन्तर्त्तोर्दिवसेषु चञ्चलनयनाः सुन्दर्यो निजकरकमलैर्वनस्थितानि कुसुमानि लुनन्ति, (तादृशव्यापारैः सहचरनायकं प्रति नखक्षतदानं कर्त्तुं समुद्बोधनं क्रियते इति कामशास्त्रस्थितिः) किञ्च जनानां विषये निजनेत्राणि व्यापारन्त्यस्तास्तेषां मनांस्यपहरन्ति कामाकुलानि कुर्वन्तीत्यर्थः, 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्' 'अपहारस्त्वपचयः' इत्युभयत्रामरः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्॥ ३॥

---

१. 'रुपचाय' इति पाठान्तरम्।

जिस वसन्तके दिनोंमें चञ्चला सुन्दरियाँ अपने हाथोंसे वनमें फूलोंको चुनती हैं और लोगोंके प्रति अपनी आँखें व्यापारित करके उनके दिलको चुराती हैं ॥ ३ ॥

तस्मिन्नसमशरसमरसमये पम्पां समया[1] पर्यटन्पर्याकुलहृदयो हृदयदयितां हृदि लक्षयंल्लक्ष्मणमिदमभाषत ।

तस्मिन्निति । तस्मिन् असमशरः विषमबाणः पञ्चबाणः कामस्तस्य समरसमये विजययात्राकाले कामोद्दीपके वसन्त इत्यर्थः, पम्पाम् समया पम्पासरःसमीपे पर्यटन् भ्रमन्, पर्याकुलहृदयः व्याकुलचित्तः हृदयदयिता हृदयेश्वरीम् सीतां हृदि लक्षयन् निरन्तरभावनया मानसप्रत्यक्षविषयतां गमयन्, लक्ष्मणम् इदं वक्ष्यमाणलक्षणम् अभाषत । 'पम्पां समया' इत्यत्र—'अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि' इति द्वितीया ।

कामकी उस विजययात्रा की वेलामें (वसन्तऋतुमें) पम्पाके निकट घूमते हुए व्याकुल हृदय रामने निरन्तर भावना द्वारा हृदयेश्वरी सीताका मानसप्रत्यक्ष करके लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा ।

आधौ सिद्धौषधिरिव हिता केलिकाले वयस्या
पत्नी त्रेतायजनसमये क्षत्रियाण्येव युद्धे ।
शिष्या देवद्विजपितृसमाराधने बन्धुरार्तौ
सीता सा मे शिशिरितमहाकानने का न जाता ॥ ४ ॥

आधाविति । (या सीता) मे आधौ मानस्यां व्यथायाम् सिद्धौषधिः सञ्जीवनाद्यौषधिरिव हिता पथ्या, केलिकाले क्रीडासमये वयस्या सखी साहचर्यपरायणेत्यर्थः । त्रेतायजनसमये आहवनीयाद्यग्नित्रयस्य अर्चाकाले पत्नी सहधर्मचारिणी, युद्धे क्षत्रियाणी क्षत्रजातीया, (स्वभावतो निर्भीकोत्साहवर्धनादिना युद्धोद्यतस्य मम सहायिका च) देवाः इन्द्रादयः, द्विजाः ब्राह्मणाः, पितरो मातृपितृप्रभृतिपूज्यजनास्तेषां समाराधने शिष्या अन्तेवासिनी भयेन भक्त्या चोचितोपचारपरायणतया शिष्यात्वोपचारः, आर्त्तौ पीडायाम् बन्धुः प्रियसुहृत्, सा एतादृशी सीता शिशिरितमहाकानने स्वसान्निध्यमहिम्ना शीतलीकृतेऽत्र वने का न जाता सर्वविधमपि प्रागुक्तरूपं साहायकमुपपादयन्त्या तया सर्वासामपि क्रियाणां सम्पादनात्सर्वरूपता गृहीतेत्यर्थः । एतादृशरूपगुणशालिन्याः सीतायाः साहचर्याभावे कथं मया जीवितं धारणीयमिति भावः । तुलनार्थं दृश्यताम्—'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ । करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्न मे हृतम्' इति रघुवंशे । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ ४ ॥

---

1. 'समन्तात्' इति पाठान्तरम् ।

गतधैर्यः अधीरः सन् सुदूरम् वालिनो विप्रकृष्टतरं स्थानम् अपासरत् पलायितः। वालिनः पराक्रमं प्रतिकर्त्तुमनीशः सुग्रीवो रामशरागमनवर्त्मनि तथैव दृष्टिं दधौ यथा कश्चिद्दरिद्रो दातरि साभिलाषां दृशं दधाति, परं तथा प्रतीक्षायामपि यदा रामबाणो नैवागतस्तदा सोऽधीरः सन् प्राणरक्षायै दूरं पलायिष्टेति भावः।

सुग्रीव जब वालिका पराक्रम नहीं सह सका तब वह रामके बाणके आनेके मार्गकी ओर उसी तरह देखने लगा जैसे कोई दरिद्र याचक दाताकी ओर देखता है, परन्तु फिर जब रामका बाण उसकी मददके लिये नहीं आया तब वह दूर भाग गया।

तमेनमृष्यमूके मूकवत्त्रपया निषण्णं विषण्णहृदयं [1]दयालुरालोक्य त्रैलोक्यैकधन्वी रामस्तद्भेदमवगन्तुकामः कामप्यभिज्ञानमालां सुग्रीवग्रीवायां बाणनिवारणनिपुणां सिद्धौषधिमिव बध्वा भूयोऽपि वालिनमाहवायाह्वयेति तमादिदेश।

तदेनमिति। तत् ततः ऋष्यमूके तदाख्ये पर्वते त्रपया पराजयजन्यलज्जया मूकवत् निषण्णम् स्थितं विषण्णहृदयम् विषादपूर्णं हृदयम् एनम् सुग्रीवमालोक्य दृष्ट्वा दयालुः कृपायुक्तः त्रैलोक्यधन्वी संसारप्रसिद्धो धनुर्धरः तद्भेदम् को वाली कश्च सुग्रीव इति भेदबुद्धिमासाद्य (तौ) अवगन्तुकामः रामः कामपि अभिज्ञानमालाम् परिचयप्रदां पुष्पस्रजम् बाणवारणनिपुणाम् रामत्यक्तशरपरासिकाम् सिद्धौषधिम् सिद्धभैषज्यम् इव सुग्रीवग्रीवायां सुग्रीवस्य कण्ठदेशे बद्ध्वा आसज्य भूयोऽपि पुनरपि वालिनम् आहवाय युद्धाय आह्वय आकारय इति तम् सुग्रीवम् आदिदेश आज्ञप्तवान्। यदा रामः पराजितं सुग्रीवं त्रपामूकमृष्यशृङ्गे स्थितमपश्यत्तदा तस्य हृदि दयोदिता, तया प्रेरितश्चासौ सुग्रीवस्य कण्ठे मालामेकां बद्धवान् यया भेदेन ज्ञायमानोऽसौ रामबाणेन न विध्येत, किन्तु वाली एव विध्येत, तथा जाते गच्छ पुनर्वालिनं युद्धायाह्वयेति सुग्रीवमाज्ञप्तवानिति भावः।

पराजित होकर सुग्रीव लज्जासे मूकसा होकर ऋष्यमूकपर आकर बैठ गया, उसे बड़ा दुःख हुआ, उसकी यह स्थिति देखकर रामको दया आ गई, इसके बाद त्रैलोक्य प्रसिद्ध धनुर्धर रामने वालि और सुग्रीवमें भेदपूर्वक पहचान हो सके इसलिये सुग्रीवके गलेमें एक माला डाल दी, जो माला सुग्रीवको रामके बाणसे बचानेमें सिद्धभेषजका काम दे। इस तरह उसकी रक्षाका उपाय करके रामने सुग्रीवको कहा कि वालिको फिरसे युद्धके लिये ललकारो।

पुनरप्यवाप्य किष्किन्धां पर्जन्य इव गर्जति तस्मिन्सुत्रामपुत्रस्ता-

---

1. 'हृदयालुः' इति पाठान्तरम्।

राभिहितां हितोक्तिमतिक्रम्य दुरतिक्रमतया नियतेः समारब्धसमरो [1]दाशरथेर्निशिततरशरशकलितनिजविशालवक्षःस्थलः क्षितितले [2]निपपात।

पुनरपीति। तस्मिन् सुग्रीवे पुनः अपि किष्किन्धाम् नाम पुरीम् अवाप्य आगत्य पर्जन्ये मेघे इव गर्जति सति सुत्राम्णः इन्द्रस्य पुत्रो वाली ताराभिहिताम् तारानामकस्वस्त्रिया उक्ताम् हितोक्तिम् 'अयं सुग्रीवोऽन्यस्य कस्यापि साहाय्यं सम्भाव्य योद्धुमायातस्तन्मा युध्यस्व' इति कल्याणकरं वचनम् अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य नियतेः भाग्यरेखायाः दुरतिक्रमतया अनुल्लङ्घ्यतया (साफल्यावश्यंभावेन) समारब्धसमरो युद्धं प्रारभ्य दाशरथेः रामस्य निशिततरेण अतितीक्ष्णेन शरेण बाणेन शकलितं भिन्नं निजं स्वीयं वालिसम्बन्धिविशालं पृथुलं वक्षःस्थलं हृदयप्रदेशो यस्य तथोक्तः सन् क्षितितले पृथिव्यां निपपात पतितः, सुग्रीवे पुनर्योद्धुमायाते तारा वालिनं निषिद्धवती यदयं सुग्रीवः कस्याप्यन्यस्य बलमासाद्य गर्जति तदलमधुना युद्धेन, परं महामहिमशालिनो भाग्यलेखस्यावश्यं भावितया वाली तद्धितोक्तिमनाकर्ण्य योद्धुं प्रवृत्तः सन् रामक्षिप्तेन खरतरेण बाणेन हृदि विद्धो भूमौ पपातेति तात्पर्यम्।

फिर सुग्रीव किष्किन्धामें आकर मेघकी तरह गरजने लगा, ताराने वालीको बहुत समझाया कि मत युद्ध करो परन्तु इन्द्रपुत्र वालीने भाग्यलिपिकी अवश्य भवितव्यतासे प्रेरित होकर उसका कहना नहीं माना, लड़ना प्रारम्भ कर दिया इसके बाद रामके तीक्ष्ण बाणने उसकी छाती छेद डाली और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

अथ विदितवृत्तान्ता [3]सन्तताश्रुनिष्यन्दकलुषित[4]तरतारा तारा नगरान्निर्गत्य वारिवारितं वारणयूथपतिमिव [5]निर्भयनिरीक्ष्यमाणसुग्रीवमुद्गतग्रीवमुत्थातुमक्षमतया क्ष्मातलार्पितकूर्परयुगलं [6]गलदसृक्प्रसरशारशरीरं शरासनशिखर[7]न्यस्तहस्तेन सन्निकर्षस्थितेन काकुत्स्थेन कृतसंलापमपेताडम्बरमिवाम्बु[8]निधिमस्तोन्मुखमिव मयूखमालिनं वालिनमालिङ्ग्य स्वाङ्कोत्तंसिततदुत्तमाङ्गा रघुनाथमित्थमकथयत्।

अथेति। अथ वालिनो भूमिपतनानन्तरम्, सन्तताश्रुनिष्यन्देन अनवरताश्रुप्रवाहेण कलुषिततरे रूषिते तारे नेत्रद्वयकनीनिके यस्याः सा तादृशी तारा वालि

१. 'दाशरथिशरशकलीकृतवक्षःस्थल' इति पाठान्तरम्।
२. 'सहसा पपात' इति पाठान्तरम्।
३. 'सन्तत' इति नास्ति क्वचित्।
४. 'कलुषिततारा तारान्तरात्' इति पा०।
५. 'सुग्रीवं निर्भयनिरीक्ष्यमाणं' इति पा०।
६. 'गलगलदसृक्पूर' इति पाठान्तरम्।
७. 'विन्यस्त' इति पाठान्तरम्।
८. 'अम्बुधिम्' इति पाठान्तरम्।

पत्नी नगरात् किष्किन्धापुरात् निर्गत्य बहिर्भूय वार्याम् गजबन्धन्याम् वारितम् निरुद्धम् वारणयूथपतिम् गजराजम् इव निर्भयनिरीक्ष्यमाणः अभयभावेन दृश्यमानः सुग्रीवो येन तं तथोक्तम्, उद्गता उत्थिता ग्रीवा कण्ठदेशो यस्य तादृशमुत्थापितशिरसम्, उत्थातुमक्षमतया असमर्थतया क्ष्मातले पृथ्वीतले अर्पितम् न्यस्तम् कूर्परयुगलं कफोणिद्वयं येन तथोक्तम्, गलता स्रवता असृक्प्रसरेण शारं कृष्णरक्तसितवर्णयुक्तं शरीरं यस्य तादृशम्, शरासनशिखरन्यस्तहस्तेन धनुरग्रस्थापितबाहुना सन्निकर्षस्थितेन समीपवर्त्तिना काकुत्स्थेन रामेण कृतसंलापम् प्रवृत्तवार्त्तालापम्, अपेताडम्बरम् कल्लोलाद्यभावेन स्तिमितम् अम्भोनिधिम् समुद्रम्, अस्तोन्मुखम् अस्ताचलशिखरारूढम् मयूखमालिनम् सूर्यम् इव (स्थितम्) वालिनम् आलिङ्ग्य आश्लिष्य स्वाङ्कोत्तंसिततदुत्तमाङ्गा स्वक्रोडभूषणीकृतवालिमस्तका (तारा) रघुनाथम् रामम् इत्थम् अनेन प्रकारेण अकथयत् अवोचत्। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' 'वारी तु गजबन्धनी' 'यूथनाथस्तु यूथपः' 'स्यात् कफोणिस्तु कूर्परः' 'कृष्णरक्तसिते शारः' 'उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः' 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इति सर्वत्रामरः।

खबर पाकर अनवरत रोते रहनेसे सूज गई हैं कनीनिकायें जिनकी ऐसे नयनों वाली तारा किष्किन्धापुरीसे बाहर निकली, आकर उसने बाझमें फंसे गजराज की तरह निर्भय नयनोंसे सुग्रीव की ओर देखने वाले, शिर उठाये हुए, उठ नहीं सकनेके कारण पृथ्वीपर घुटनोंके बल बैठे हुए, रक्त के बहते रहनेके कारण रक्तश्याम और श्वेत वर्ण शरीरवाले, धनुषके अग्रदेशमें हाथ डाले हुए समीपस्थित रामचन्द्रजीसे बातें करते हुए, शान्तसागरकी तरह निस्तरङ्ग, अस्तोन्मुख सूर्यकी तरह क्षीणप्रभ वालीको गले लगाकर उसके शिरको अपनी गोदमें रखकर रघुनाथसे इस प्रकार कहा।

कारुण्यं निरवधि यत्तव प्रसिद्धं
शीतांशोः सहजमिवार्त्तिहारि शैत्यम्।
तत्सर्वं मनुकुलनाथ! रम्यकीर्ते!
मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम्॥ १४॥

कारुण्यमिति। हे मनुकुलनाथ, मनुवंशनायक, हे रम्यकीर्त्ते, रमणीययशोभूषण, श्रीराम, शीतांशोः चन्द्रस्य सहजम् स्वभावसिद्धम् आर्त्तिहारि परपीडानिवारकम् शैत्यम् शिशिरत्वम् इव तव निरवधि असीमम् यत् कारुण्यं दयालुत्वं (स्वभावसिद्धत्वेन परपीडानिराकरणपटुतया च) प्रसिद्धम् लोकविख्यातम्, सर्वम् समस्तं तत् कारुण्यम् मत्पापात् मत्कृतदुष्कृतरूपाद्धेतोः त्वया कथं निरस्तम् त्यक्तमिति कथय अभिधेहि? यथा चन्द्रः स्वभावतः शीतलकरः परसन्तापशमकश्च प्रसिद्ध्यति तथा त्वमपि स्वभावतो दयालुः परपीडानिराकरणव्यसनी चाख्यायसे, तद्

हे मनुवंशप्रदीप रघुनाथ, मया कृतेन पापेन हेतुभूतेन स्वीयं स्वाभाविकं तत्कारुण्यं कथमेकपद एवाहासीस्तन्मे कथयेति भावः। 'कारुण्यं करुणा घृणा' इत्यमरः। प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ १४ ॥

हे मनुवंशनाथ, हे सुन्दर कीर्त्तिवाले, जैसे चन्द्रमाका स्वाभाविक शैत्य दूसरोंको पीड़ाके हरणमें प्रसिद्ध है उसी तरह तुम्हारी दयालुता भी परपीडाहरणमें प्रसिद्ध है, फिर हमारे पापके कारण तुमने अपनी स्वाभाविक दयालुताका क्यों त्याग कर दिया, कृपया यह तो बता दो ॥ १४ ॥

एवंविधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां
मां राक्षसीति रघुपुङ्गव ! साधु बुद्ध्वा।
बाणं विमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !
श्रेयो भवेद्दयितसङ्गमकारिणस्ते ॥ १५ ॥

एवंविध इति। हे ताटकारे, ताटकाप्राहणहारिन्, रघुपुङ्गव रघुवंशतिलक, प्रियतमे प्राणनाथे स्वामिनि एवंविधे ईदृशीं दशामुपेते मृते अपि अनपेतजीवाम् अनिर्गतप्राणाम् जीवन्तीम् माम् 'राक्षसी' इति एवं प्रकाराम् साधु सत्यं बुध्वा अवगत्य सम्प्रति मयि राक्षसीत्वेन सम्यगवगतायाम् (राक्षसीत्वप्रकारकसम्यग्ज्ञानविषयीभूतायाम्) मयि तारायाम् बाणं विमुञ्च प्रहर, (मयि प्रियवियोगे जीवनधारणेन ख्यापितराक्षसीभावायां बाणं विसृज्य मां मारयित्वा प्रियनिकटप्रेषणपरत्वेन) दयितसङ्गमकारिणः प्रियसंयोगसम्पादकस्य तव श्रेयः कल्याणं भवेत्, 'न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति' इत्युक्तेरिति भावः ॥ १५ ॥

प्रियतमकी ऐसी दशा (मृत्यु) हो जाने पर भी जिसका प्राण नहीं निकला है वही मैं राक्षसी हूँ, ऐसा ठीक तरहसे समझकर आप मुझे बाणसे मारें, हे रघुवंशतिलक, ताटकारे, ऐसा करनेसे आप मुझे प्रियतमके पास पहुँचा देंगे, इससे आपका भला होगा ॥ १५ ॥

साधारणी [1]क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
[2]मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन् !।
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम ! मृगयुर्दयते मृगीणाम् ॥ १६ ॥

साधारणीति। हे सत्यवादिन्, अमिथ्याभाषिन्, क्षितिभुजाम् राज्ञाम् मृगया आखेटकम् साधारणी अनिषिद्धानुमता (न दोषाय न वाभ्युदयाय) इति त्वया जनसंसदि लोकसभायाम् पूर्वम् इतः पूर्वस्मिन् काले उक्ता अभिहिता, हे राम, तत्

१. 'क्षितिभृताम्' इति पाठान्तरम्। २. 'उक्तम्' इति पाठान्तरम्।

तस्मात् इह अस्मिन् समये शाखामृगीं वानरीं मां तारां शरेण बाणेन मारय जहि, को नाम मृगयुः आखेटव्यसनी मृगीणाम् हरिणाङ्गनानाम् दयते अनुकम्पते। राज्ञां मृगया दोषाय न भवतीति त्वया सकललोकसमक्षमुक्तां मां त्वमधुना बाणेन जहि न हि कोऽपि मृगयुर्मृगीषु धृतानुकम्पो भवतीत्यर्थः। अत्र सत्यवादिन्नित्यनेन प्रतारकत्वाभावः, जनसंसदीत्यनेनापलापासंभवः, अहमुक्तेत्यनेन च साध्यन्तरानावश्यकत्वम्, शरेणेत्येकवचनेन मद्वधस्य सुखसाध्यत्वम् को नामेत्यादिना चरमवाक्येन चार्थितस्य सकलाचारपरिप्राप्तत्वमित्याद्यर्था व्यङ्ग्याः। 'मृगीणां दयते' इत्यत्र 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी ॥ १६ ॥

राजाओंके लिये शिकार साधारण सी बात है ऐसा आपने भरी सभामें मुझसे कहा था, अतः हे सत्यवादिन्, राम, आप अपने बाणसे मुझे मारें, मैं वानरी ही तो हूँ, कोई भी शिकारी क्या मृगी पर दया दिखाता है। (फिर मुझ शाखामृगी (वानरी) पर आप क्यों दया दिखा रहे हैं) ॥ १६ ॥

संत्रस्य पूर्वममुतस्तव बन्धुरेष
भेजे यथाद्रिमकुतोभयमृष्यमूकम्।
भर्ता ममायमपि रामशरैरभेद्यं
प्राप्तो मदीयहृदय[1]च्छलमद्रिदुर्गम् ॥ १७ ॥

संत्रस्येति। अमुतः वालिनः संत्रस्य भीतिं प्राप्य पूर्वम् पुरा तव रामस्य बन्धुः प्रियसुहृत् एषः सुग्रीवः यथा अकुतोभयम् निर्भयसञ्चारयोग्यम् ऋष्यमूकं नाम अद्रिम् पर्वतम् भेजे प्रपन्नः, (तथा) अयम् पुरोदृश्यमानः मम ताराया भर्त्ता स्वामी वाली अपि रामशरैः रामस्य तव बाणैः अभेद्यम् अवेध्यम् मदीयहृदयच्छलम् मच्चेतोरूपम् अद्रिदुर्गम् पर्वतरूपमतिकष्टसञ्चारम् गुप्तिस्थानम् प्राप्तः, अतस्तत्र भवतः साध्यं नास्तीत्याशयः। स्पष्टमन्यत् ॥ १७ ॥

इसी वालीसे डरकर आपके प्रियबन्धु सुग्रीव जैसे पहले निर्भयसञ्चार स्थान इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहा करते थे, उसी तरह हमारे स्वामी भी हमारे हृदयरूप पर्वत दुर्गमें पहुँच गये हैं, जो रामके बाणोंसे वेधा नहीं जा सकता है (अतः आप मेरे हृदयमें वर्तमान वालीका बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे) ॥ १७ ॥

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली
वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या
धन्वी कथं भवसि राघव ! मामविद्ध्वा ॥ १८ ॥

१. 'स्थलम्' इति पाठान्तरम्।

नाहमिति। अहं सुकेतुतनया ताटका न अस्मीति शेषः, ('यक्षः सुकेतुर्द्रुहिणप्रसादाल्लेभे सुतां कामपि ताटकाख्याम्' इति पूर्वमुक्तम्) (अहम्) सप्तानां सालानां समाहारः सप्तसाली सप्तसङ्ख्यकसर्जतरुसमुदायः च न, अस्मीत्यत्रापि योज्यम्, त्रिभुवनप्रथितप्रभावः सकललोकख्यातप्रतापः वाली च न भवामि, (यान् भवान् सुखमभिनत्) किन्तु वज्रहृदया कुलिशकठोरचित्ता अत एव च विशिखैः बाणैः अभेद्या भेत्तुमशक्या तारा नाम अस्मि, ननु याऽसि साऽसि, किन्तस्ततस्तत्राह—हे राघव, राम, मामविध्वा माम् अभित्त्वा त्वं कथं धन्वी धानुष्कः भवसि, लक्ष्यभूतां मां पुरो विहाय तव धनुर्धरत्वं विफलं स्यात्, निमित्तापराद्धेषोः कस्यचिद्धनुर्धरत्वस्याख्यामात्रतापर्यवसायित्वादिति भावः॥ १८॥

न मैं ताटका हूँ, न मैं सातसाल वृक्ष हूँ और न मैं त्रिभुवनख्यात पराक्रमी वाली ही हूँ, मैं वज्रसमान कठोरहृदया तारा हूँ, मुझ पर आपके शरोंका कुछ नहीं चल सकता है, हे राघव, जब तक आप मुझे नहीं वेध लेते तब तक धन्वी होने का क्या दावा करते हैं॥ १८॥

क्षितिपतितनयानां हन्त गर्भेश्वराणां
किमु निरवधि मौग्ध्यं शौर्यवज्जन्मसिद्धम्।
मम हृदि निरपाये वर्तमाने कपीन्द्रे
रघुवर! यदमुष्मै तिष्ठसे चापपाणिः॥ १९॥

क्षितिपतीति। गर्भेश्वराणाम् गर्भप्रभृतिसदैश्वर्यशालिनाम् क्षितिपतितनयानाम् राजकुमाराणाम् निरवधि अनन्तम् मौग्ध्यम् मुग्धत्वम् कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञानशून्यत्वम् किमु किम् शौर्यवत् शौर्येण तुल्यम् वीरत्वमिव जन्मसिद्धम् जन्मजातम्, यथा राजपुत्रा जन्मत एव शूरा भवन्ति तथैव जन्मत एव कृत्याकृत्यविवेकविधुरा अपि भवन्ति किमिति भावः। हन्तपदं तेषां तथाभावे खेदं प्रकाशयितुम्। राजपुत्राणां मुग्धतां प्रमाणयितुं दृष्टान्तभावेन रामस्यैव मुग्धतां यो न हन्तुं शक्यते तस्यापि वधाय सन्नद्धतामुपन्यस्यति—मम हृदीति। निरपाये सर्वविधभयवर्जिते एकान्तसुरक्षिते मम हृदि हृदयदुर्गे वर्त्तमाने अधिष्ठिते कपीन्द्रे, हे रघुवर, यत् यतः अमुष्मै वालिने चापपाणिः करधृतधनुः तिष्ठसे स्वाभिप्रायं (हननोद्यमरूपं) प्रकाशयसि। यतोऽतिसुरक्षिते मम हृदि वर्त्तमाने कपीन्द्रेऽपि तवेयं धृतचापताऽतो राजपुत्राणां मौग्ध्यं सिध्यतीति भावः। 'तिष्ठसे' इत्यत्र 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इत्यात्मनेपदम्। 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति विश्वः॥ १९॥

जन्मतः सम्पत्तिके पात्र राजपुत्रगण जिस तरह स्वभावतः बहादुर हुआ करते हैं उसी तरह कर्त्तव्याकर्त्तव्यके ज्ञानसे वञ्चित भी हुआ करते हैं क्या? क्योंकि हे रघुवर, सभी

प्रकारसे सुरक्षित हमारे हृदयरूप दुर्गमें वर्त्तमान वालीके प्रति आप धनुष ताने खड़े हैं। (इससे तो राजपुत्रोंकी मूढ़ता ही समर्थित हो रही है)॥ १९॥

एवं विलपन्त्या हारायिताश्रुधारायास्तारायाः परिदेवनरवैर्बाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणै[1]रक्षीणैर्निश्वासानिलैश्च कृताश्वास इव लब्धसंज्ञो वाली निजनन्दनं रघुनन्दने[2] समर्प्याङ्गदमङ्गसङ्गिनीं काञ्चन काञ्चन[3]स्रजं शोकावनतग्रीवाय सुग्रीवाय दत्वा निजभुजबलप्रशान्तासुरोऽ[4]यं प्रशान्तासुरभूत्।

एवमिति। एवं प्रोक्तप्रकारेण विलपन्त्याः परिदेवनपरायाः हारायिता स्रग्भावं गता अश्रुधारा नेत्रजलप्रवाहो यस्यास्तस्याः तारायाः स्वभार्यायाः परिदेवनरवैः क्रन्दनैः, वाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणैः नयनवारिबिन्दुकृतसेचनैः निश्वासानिलैः दीर्घनिःश्वासमारुतैश्च (प्रायेण हि मूर्च्छामुपगतास्तारस्वरेणोच्यमानाः पयसा सिच्यमाना व्यजनैर्वीज्यमानाश्च पुनश्चैतन्यमागच्छन्ति, तद्रूपैश्चैभिः परिदेवननेत्रजलकणसेकनिःश्वासानलैर्वालिनः प्रत्युज्जीवनमुपनिबद्धम्) कृताश्वासः प्रत्यागतजीवितः इव लब्धसंज्ञः प्रत्यापन्नचैतन्यः सन् वाली निजनन्दनम् स्वपुत्रमङ्गदं रघुनन्दने रामे समर्प्य रक्षणावेक्षणादिकर्म कर्त्तुं निवेद्य अङ्गसङ्गिनीम् देहलग्नाम् ग्रीवावस्थिताम् काञ्चन कामपि (इन्द्रदत्तामतिसुन्दरीम्) काञ्चनस्रजम् हेममालाम् शोकावनतग्रीवाय मुमूर्षुस्वभ्रातृदशादर्शनजन्यविषादनतमस्तकाय सुग्रीवाय दत्वा निजभुजबलप्रशान्तासुरः स्वबाहुसामर्थ्यक्षपितराक्षसचक्रः अयम् वाली प्रशान्तासुः अपगतप्राणः अभूत् अजनि।

इस तरह विलाप करती हुई, आँसूकी धारा, जिसका हार बन रही है ऐसी ताराके रोदन शब्द, अश्रुजलकणकृत सेचन एवं निःश्वासपवनसे पुनरुज्जीवित सा किया गया अतएव चेतनाको प्राप्त वालीने अपने पुत्र अङ्गदको रामके हाथोंमें सौंपा और सदा साथ रहनेवाली अपनी हेममाला शोकसे शिर झुकाकर बैठे हुए सुग्रीवके गलेमें डाल दी, इस तरह अपने बाहुबलसे सकल राक्षसोंका क्षय करनेवाला वह बहादुर शान्त हो गया।

तत्र हा सकलभुवनबहुमतबाहु[5]बल गोलभगन्धर्वसिन्धुरपञ्चताकरणपञ्चानन दशमुखभुजभुजङ्गभोग[6]निरोधाहितुण्डिकायितबालवलय वालिन्,

---

१. 'अक्षीणश्वासानिलै' इति पाठान्तरम्। २. 'इक्ष्वाकुनन्दने' इति पाठान्तरम्।
३. 'मालाम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'अयम्' इति क्वचिन्नास्ति।
५. 'बलानलशलभायितबललितगन्धर्व' इति पाठान्तरम्।
६. 'निरोधायाहि' इति पाठान्तरम्।

[1]कथं गतोऽसीति बाष्पाविलमुखा वलीमुखास्तस्य रामाज्ञया यथाभिप्रेतं प्रेतकृत्यं [2]सर्वं निर्वर्तयामासुः ।

तत्रेति । तत्र तदा वालिमरणकाले हा सकलभुवने समस्तलोके बहुमतम् अतिपूजितं बाहुबलम् भुजपराक्रमो यस्य स तथोक्तस्तत्सम्बोधने रूपम् , गोलभः तदभिधानो यो गन्धर्वः देवयोनिभेदस्तस्य सिन्धुरस्य तद्रूपगजस्य पञ्चताकरणे निधने पञ्चानन सिंहरूप, दशमुखो रावणस्तस्य भुजा बाहव एव भुजङ्गाः सर्पास्तेषाम् भोगाः फणारूपा अग्रभागास्तेषां निरोधे निस्तेजस्कतासम्पादने अहितुण्डिकीविषवैद्यस्तद्वदाचरितं बालवलयं पुच्छकेशसमुदयो यस्य तादृश, (निजपुच्छलोमसमुदयनिरस्तरावणभुजसामर्थ्येत्यर्थः) कथंगतः अपुनरावृत्तये प्रयातो मृतोऽसीति बाष्पाविलमुखा अश्रुपूर्णमुखाः वलीमुखाः वानरास्तस्य वालिनः रामाज्ञया रामस्यादेशेन यथाभिप्रेतम् यथाभितम् प्रेतकृत्यं दाहादिसंस्कारम् सर्वं निरवशेषं निर्वर्त्तयामासुः कृतवन्तः । 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृता वहेश्च फणकाययोः' 'विषवैद्यो जाङ्गलिको व्यालग्राह्यहितुण्डिकः' इत्युभयत्रामरः ।

वालीके मरजाने पर हा, समस्त संसारमें प्रशंसित बाहुपराक्रमशाली, हा गोलभ नामक गन्धर्वरूप हाथीको मारनेमें सिंहरूप, हा रावणके भुजारूप सर्पोंको निस्तेज बनानेमें विषवैद्य समान बालोंसे युक्त, हा वाली, तुम कहाँ गये ? इस तरह रोते हुए अश्रुयुत वानरोंने वालीकी प्रेतक्रिया रामकी आज्ञासे उचित क्रमसे सम्पन्न कर दी ।

ततो[3] जाम्बवत्प्रमुखा वलीमुखगणा दाशरथिनिदेशात्सुग्रीवं काञ्चनकलशोदकैरभ्यषिञ्चन् ।

तत इति । ततो वालिप्रेतकृत्यसम्पादनानन्तरम् , जाम्बवत्प्रमुखाः जाम्बवदादयः वलीमुखगणाः वानराः दाशरथिनिदेशात् रामस्यादेशात् सुग्रीवम् काञ्चनकलशोदकैः सुवर्णघटाहृतैः पयोभिः अभ्यषिञ्चन् अभिषिक्तवन्तः । वालिनः प्रेतकृत्यं सम्पाद्य जाम्बवदादयो मन्त्रिणो रामस्यादेशेन सुग्रीवं किष्किन्धाराज्येऽभिषिक्तवन्त इत्याशयः ।

वालीके प्रेतकृत्यको सम्पन्न करके जाम्बवान् आदि वानरोंने रामके आदेशसे सोनेके घड़ोंमें जल लाकर सुग्रीवका राज्याभिषेक सम्पादित किया ।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे रामश्यामपयोमुचा ।
अभिषेक्तुं स्थिता मेघास्तन्महीं महिषीमिव ॥ २० ॥

अभिषिक्ते त्विति । सुग्रीवे राम एव श्यामपयोमुक् कृष्णमेघस्तेन अभिषिक्ते स्नपिते राज्यपदे प्रतिष्ठापिते सति मेघाः वारिधराः तन्महीम् सुग्रीववशवर्त्तिनीम् पृथ्वीम्

---

१. 'विलप कथं' इति पाठान्तरम् । २. 'सर्वे' इति पाठान्तरम् ।
३. 'तत' इत्यारभ्य 'अभ्यषिञ्चन्' पर्यन्तं क्वचिन्नास्ति ।

महिषीम् राज्ञीम् इव अभिषेक्तुम् स्नपयितुम् स्थिताः प्रवृत्ताः। सुग्रीवरूपे राजनि रामरूपेण श्यामघनेन अभिषिक्ते सति मेघाः सुग्रीवपत्नीमिव तन्महीं स्नपयितुमारेभिरे, लोके राजनि पूर्वमभिषिक्ते प्रधानपुरोधसा, तदीयां पत्नीमितरे पुरोधसः स्नपयन्तीति समुदाचारमनुरुध्येयमुत्प्रेक्षा। 'रामश्यामपयोमुचा' इति रूपकसङ्कीर्णोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ २० ॥

रामरूप श्यामघनने जब सुग्रीवका अभिषेक कर दिया तब मेघोंने भी सुग्रीवकी पृथ्वीको अभिषिक्त करना प्रारम्भ कर दिया, मानो वे सुग्रीवके अभिषिक्त हो जाने पर उसके साथ राज्यारूढ़ होनेवाली उसकी रानीका अभिषेक कर रहे हों ॥ २० ॥

आर्यार्यान्वेषणा कार्या शरदीत्युक्तसंविदा।
कपीन्द्रेणार्थितो रामः किष्किन्धावर्तनं प्रति ॥ २१ ॥

आर्यायेति। हे आर्य स्वामिन् राम, शरदि शरत्समये आर्यान्वेषणा आर्यायाः पूज्यायाः सीताया अन्वेषणम् कार्या कर्त्तव्या, इति उक्तसंविदा प्रकाशितस्वप्रतिज्ञेन कपीन्द्रेण सुग्रीवेण रामः किष्किन्धावर्त्तनम् किष्किन्धापुरप्रवेशम् प्रति उद्दिश्य प्रार्थितः अनुरुद्धः। हे आर्य, अहं शरदि सीतामन्वेषयामीति स्वां प्रतिज्ञामुद्घोष्य सुग्रीवः किष्किन्धापुरीं प्रविश्य प्रावृषं यापयितुं रामं प्रार्थितवानित्यर्थः। 'संविदागूः प्रतिज्ञानम्' इत्यमरः ॥ २१ ॥

हे आर्य राम, मैं शरद् ऋतुमें सीताजीका अन्वेषण करवाऊँगा इस तरह अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करके सुग्रीवने रामसे प्रार्थना की कि तब तक आप किष्किन्धापुरीमें ही चलें (इस बरसातमें वनमें क्यों रहेंगे ?) ॥ २१ ॥

न योग्या नगरप्राप्तिरित्युक्तवति राघवे।
सुग्रीवप्रार्थनाप्यासीद्भरतप्रार्थनासमा ॥ २२ ॥

न योग्येति। नगरप्राप्तिः पुरवासः न योग्या वने वस्तुमाज्ञप्तस्य मम नगरवासो न योग्यः इति राघवे रामे उक्तवति कथितवति सति सुग्रीवप्रार्थना सुग्रीवकृता रामस्य नगरवासविषया प्रार्थना अपि भरतप्रार्थनासमा भरतानुरोधतुल्या आसीत् अभवत्। यथाभरतकृतं नगरप्राप्त्यनुरोधं रामो व्यर्थीचकार तथैव सुग्रीवकृतमपि तादृशमनुरोधं व्यर्थीकृतवानिति तात्पर्यम् ॥ २२ ॥

जब हमने वनमें वासकी प्रतिज्ञा ली है तब हमारे लिये नगरमें प्रवेश करना ठीक नहीं है, इस प्रकार रामके कहने पर सुग्रीवकी भी प्रार्थना भरतकी प्रार्थनाके समान व्यर्थ सिद्ध हुई ॥ २२ ॥

दत्तार्जुनविकासेन धार्तराष्ट्रान्निरस्यता।
तेन जीमूतकालेन देवकीनन्दनायितम् ॥ २३ ॥

दत्तार्जुनेति। दत्तः कृतः अर्जुनविकासः अर्जुनाख्यतरुपुष्पितत्वं येन तेन तथोक्तेन, धार्त्तराष्ट्रान् हंसान् निरस्यता दूरङ्गमयता (वर्षासु हंसा मानसं प्रतिष्ठन्ते इत्यभिसन्धायेदमुक्तम्) तेन जीमूतकालेन वर्षासमयेन देवकीनन्दनायितम् देवकीनन्दनः कृष्णस्तद्वदाचरितम्, कृष्णोऽपि अर्जुनस्य पृथापुत्रस्य विकासं विजयादिना प्रामुख्यं दत्त इति दत्तार्जुनविकासता तस्य, एवं धार्त्तराष्ट्रान् धृतराष्ट्रतनयान् दुर्योधनादीन् निरस्यति हानिं गमयति, जीमूतवत् कालः श्यामश्च भवति इति मेघसादृश्यं सर्वथा वहति। श्लिष्टविशेषणेयमुपमा। 'अर्जुनः ककुभे पार्थे' 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षास्ते धार्त्तराष्ट्राः सितेतरैः' 'कालश्यामलमेचकाः' इति सर्वत्रामरः॥ २३॥

अर्जुन वृक्षको विकसित करनेवाला और हंसोंको दूर भगा देनेवाला यह वर्षा समय देवकीनन्दन कृष्णकी समता प्राप्त करने लगा क्योंकि कृष्ण भी पार्थ अर्जुनको सर्वत्र विजय प्राप्त कराकर विकास-प्रमुखता-प्रदान करते एवं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको क्षति पहुँचाते थे, कृष्णमेघकी तरह श्याम भी तो थे ही। (अर्जुन-वृक्ष तथा पार्थ, धार्त्तराष्ट्र दुर्योधनादि तथा हंस, काल-समय एवं श्याम, इन तीन पदोंमें श्लेष है)॥ २३॥

[1]अस्माकं रूपलक्ष्मीमसकृदुपहसत्यात्मकान्त्या तदास्तां
भर्तारं नः सुरेन्द्रं किमपि न गणयन्वालिनं द्राग्जघान।
इत्थं मत्वैव वैरं झटिति घनघटा राघवस्याहवोत्था-
माशामाशाश्च रुद्ध्वा स्तनितमिषमहासिंह[2]नादान्वितेनुः॥२४॥

अस्माकमिति। रामः अस्माकम् मेघानाम् रूपलक्ष्मीम् श्यामकताकृताम् आकारसम्पदम् असकृत् भूयोभूयः आत्मकान्त्या इन्द्रनीलसमच्छाया स्वदेहकान्त्या उपहसति तिरस्करोति, तद् आस्ताम् एकतस्तिष्ठतु, (महात्मानो नात्मापमानं गणयन्तीति न तत्र ध्यानं दीयते, परं स्वाम्यवमानना तु न सोढव्या तदाह-) नः अस्माकम् भर्त्तारम् स्वामिनम् (न केवलमस्माकमेव स्वामिनं किन्तु देवानामप्यधीश्वरम्) सुरेन्द्रम् किमपि न गणयन् तृणाय मन्यमानः (इन्द्रपुत्रवधे प्रवर्त्तमानस्य रामस्येन्द्रविषयकानादरः स्फुट एव) वालिनम् इन्द्रपुत्रतया प्रथमानम् द्राग् अविचार्यैव झटिति जघान हतवान्। इत्थम् अनेन प्रकारेण (एव) वैरम् रामेण सह शत्रुत्वं मत्वा अभ्युपेत्य घनघटाः मेघसमुदयाः (कर्त्तृपदमिदम्) राघवस्य रामस्य आहवोत्थाम् रावणेन सह युद्धायोदिताम् आशाम् उत्साहप्रगुणमभिलाषम्, आशाः दिशश्च रुध्वा आवृत्य स्तनितमिषेण गर्जितच्छलेन महासिंहनादान् दीर्घान् ध्वनिकलरवान् वितेनुः चक्रुः। अन्योऽपि कोऽपि स्वशत्रोरवकाशवर्त्म निरुध्य गर्जन्

१. 'तत्र, आस्माकीम्' इति पाठान्तरम्। २. 'नादं ततान' इति पाठान्तरम्।

स्वपौरुषाडम्बरं नाटयति, तद्वन्मेघोऽपि रामस्याशामवरुध्य जगर्जेति सापह्नवोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुतम्' 'आशा दिगतितृष्णयोः' इत्युभयत्रामरः ॥ २४ ॥

यह राम हमारी रूपलक्ष्मीका अपने शरीरकी श्यामल आभासे वारवार उपहास करता है यह बात तो तब तक दूर रहे, (इसकी उद्दण्डता इतनी बढ़ गई है कि) इसने स्वामी देवेन्द्रकी भी तनिक भी पर्वाह नहीं करके उनके पुत्र वालीको झटसे मार दिया (यह स्वाम्यपमान तो नहीं सहा जा सकता है) इस तरह मेघोंने रामके साथ अपना शत्रुत्व समझकर उनकी युद्धाभिलाषा (आशा) और सभी दिशाओंको आवृत करके अपना गर्जनरूप सिंहनाद करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २४ ॥

उपचितजीवनधारा सत्पथभाजो निरस्तसन्तापाः ।
भूपा इव नवमेघाः पौरस्त्यमहाबलाकुलिताः ॥ २५ ॥

उपचितेति । उपचिताः प्रवृद्धवेगाः जीवनधाराः जलधाराः यैस्ते तथोक्ताः, सत्पथभाजः आकाशरूपोचिताध्वसञ्चारिणः, निरस्तसन्तापाः अपहृतनिदाघकृतोष्माणः, नवमेघाः प्रावृषेण्या नवा वारिधराः भूपाः राजान इव पौरस्त्यस्य पूर्वदिशाऽऽगतस्य वायोः महाबलेन सामर्थ्यप्रकर्षेण आकुलिताः इतस्ततः क्षिप्यमाणाः सन्तीत्यर्थः, भूपपक्षे—सततदानप्रवृत्ततया उपचितजीवनधाराः दानवारिप्रवाहेण प्रवाहितजलधाराः, सत्पथभाजः सदाचारमार्गानुसारिणः, निरस्तसन्तापाः अपाकृतजनताकष्टाः भूपाः (रलयोरभेदात्) पौरस्त्यस्य पौलस्त्यस्य रावणस्य महता दुष्प्रधर्षेण बलेन सैन्येन आकुलिताः व्यग्रीकृता सन्तीति वर्णनीयम् । एतत्पद्यगतभूपपक्षीयार्थेन तात्कालिकी राजदशावर्ण्यमाना नीतिवर्त्तिनोऽपि राज्ञ उपद्रवतो रावणस्य हन्तव्यता प्रत्याय्यते । 'पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः । श्लेषसङ्कीर्णोपमाऽलङ्कारः, आर्याभेदो वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या' इति ॥२५॥

जलकी धाराको प्रवृद्ध करने वाले, आकाशचारी, लोकसन्तापहारी नव जलधरोंके सदृश राजगण जो सतत दान करनेके कारण जलधार बहाते हैं, नीतिमार्गसे चलते तथा लोगोंके कष्टको दूर करते हैं, इस समय पूर्वी वायुके झकोरेसे मेघ चलायमान हो रहे हैं और राजगण रावणकी बलवती सेनासे व्याकुलित हैं ॥ २५ ॥

तेन किल रघुपतिरतिमात्रप्रवृद्धमन्युः शतमन्युशरासनशारतरतारापथां [1]घनरवमुखरितहरिन्मुखाभोगां कदम्बवनपवना[2]कम्पनिराडम्बरकादम्बकुटुम्बामम्बुदकवलिताम्बरां शिलीन्ध्रसंबन्धबन्धुरवसुन्धरां विकच-

---

१. 'वनतरघनरव' इति पाठान्तरम् ।   २. 'कम्पन' इति पाठान्तरम् ।

कुटजनिचयकवचितमहारण्यां प्रावृषेण्यां प्रक्रियां प्रेक्षमाणो लक्ष्मणमिदमभाषत।

तेनेति। तेन वर्षासमयेन अतिमात्रप्रवृद्धमन्युः अत्यर्थोपचितक्रोधः शतमन्योः इन्द्रस्य शरासनेन धनुषा (इन्द्रधनुषा) शारतरः रक्तकृष्णश्वेतवर्णस्ताराप... आकाशदेशो यस्यां तां तथोक्ताम्, घनरवेण मेघशब्देन मुखरितः शब्दायमानः हरिन्मुखाभोगः दिक्चक्रवालविस्तारो यस्यां तादृशीम्, कदम्बवनपवनस्य नीपवनवायोः आकम्पेन चलनेन निराडम्बरम् स्तिमितं कादम्बकुटुम्बम् हंसकुलं यस्याम् तादृशीम्, अम्बुदकवलिताम्बराम् मेघव्याप्तनभोऽङ्गणाम्, शिलीन्ध्रसमन्धेन कन्दलीसमुद्गमेन वन्धुरा रमणीया वसुन्धरा पृथ्वी यस्यां तां तथोक्ताम्, विकचैः विकसितैः कुटजनिचयैः गिरिमल्लिकासमुदयैः कवचितं व्याप्तं महारण्यं महावनं यस्यां तां तथोक्ताम्, प्रावृषेण्यां वर्षाकालिकीं प्रक्रियाम् दशाम् प्रेक्षमाणः पश्यन् रघुपतिः लक्ष्मणम् इदम् वक्ष्यमाणलक्षणं वाक्यम् अभाषत उक्तवान्। 'शतमन्युर्दिवस्पतिः' 'नीपप्रियककदम्बाश्च हरिप्रिये' 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' 'कदल्यं च शिलीन्ध्रः स्यात्' इति सर्वत्र शब्दार्णवः। 'कुटजो गिरिमल्लिका' इति हलायुधः।

वर्षाके आनेसे अतिकुपित, इन्द्रधनुपसे लाल, काला और श्वेत वर्णसे चित्रित आकाश वाली, मेघके शब्दसे दिशाओंको मुखरित करने वाली, कदम्बवनकी वायुसे हंससमुदायको स्तब्ध करने वाली, मेघसे आकाशको व्याप्त करने वाली, कन्दलीके उग आनेसे सुन्दर पृथ्वीशालिनी, गिरिमल्लिकाके विकाससे व्याप्त है महावन जिसमें ऐसी, वरसातकी प्रक्रिया (स्थितिको) देखते हुए रघुपतिने लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा।

अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै-
रहंयूनां यूनामपहरति धैर्यं जलधरैः।
स्मराधारा धारा[1]परिचितजडा वान्ति सहसा
नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोगः परिणमेत्॥ २६॥

अयं काल इति। अयं कालः वर्त्तमानो वर्षासमयः कालप्रमथनगलाभैः कालप्रमथनस्य मृत्युञ्जयस्य गलाभैः कण्ठसमानच्छायैः (सद्यः सम्भृतसलिलत्वात् हरकण्ठवन्नीलवर्णैरित्यर्थः) अभिनवैः नूतनैः (वृष्टिप्राक्कालिकत्वमेव मेघानां नूतनत्वं बोध्यम्) जलधरैः मेघैः अहं यूनाम् तारुण्यगर्वशालिनाम् यूनाम् युवकानां धैर्यम् निर्विकारचित्तत्वम् अपहरति दूरीकरोति, तेषामपि मनस्सु प्रसह्य कामविक्रियां प्रारभन्त इत्यर्थः। स्मराधाराः कामस्याश्रयभूताः धारापरिचितजडाः

१. 'परिचय' इति पाठान्तरम्।

वारिकणसम्पर्कशीतलाः नभस्वन्तः वायवः सहसा अतिवेगेन वान्ति चलन्ति, (तदस्यां स्थितौ) वियोगः प्रियाविरहः कथमिव केन प्रकारेण स्वन्तः सुखावसानः परिणमेद् जायेत। मेघे यूनां धैर्यस्य लोपाय बद्धोद्यमे वायौ चातिवेगेन शीतले वाति प्रियाविरहस्य परिणामः सुखावहो नैव भावीति भावः। 'अहंयुः स्यादहङ्कारी' 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' इत्युभयत्रामरः। छेकानुप्रासालङ्कारः॥२६॥

यह वर्षा समय महादेवके कण्ठके सदृश श्यामवर्ण नये मेघोंसे तारुण्याभिमानशाली युवकोंके धैर्यका अपहरण करता है और कामके आधारभूत जलबिन्दु शीतल वायु वेगसे बह रही है, भला ऐसे समयमें प्रियाका वियोग स्वन्त–सुपरिणाम–कैसे हो सकेगा? ॥२६॥

महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मनो
मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते।
पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां
नरेषु वनितासु वा दधति हन्त के का इति॥ २७॥

महासमरेति। प्रतिदिशं सर्वासु दिशासु मनोजन्मनः कामदेवस्य महासमरसूचकः महतो रणस्य ज्ञापकः मयूरगलकाहलीकलकलः मयूराणां नीलकण्ठानां गला एव काहल्यो वाद्यभेदास्तेषां कलकलः ध्वनिः समुज्जृम्भते प्रकटीभवति, मयूरकण्ठनिःसृतः शब्दो मन्मथस्य सर्वासु दिशासु प्रवर्त्तमानं रणं ज्ञापयन्नुद्भवतीत्यर्थः। ननु कथं ज्ञायते मयूरशब्दानां कामरणख्यापकतेति चेत्तत्राह—पयोदेति। पयोदमलिने मेघश्यामले दिने नरेषु पुरुषेषु के परुषविप्रयोगव्यथां कठोरां वियोगपीडाम् वनितासु स्त्रीषु वा काः परुषविप्रयोगव्यथाम् दुःसहां वियोगवेदनां दधति धारयन्ति। मयूराणां वाणी केकापदाभिलप्या, 'केका वाणी मयूरस्य' इति स्मरणात्, तदेकं केकापदं द्विधा विभज्य प्रश्नार्थकपरतया योजयित्वा चोत्प्रेक्षेयं प्रवृत्ता। 'वाद्यभाण्डविशेषे तु काहलिः काहलः कलः' इत्यमरः। पृथ्वीवृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम्॥

प्रत्येक दिशामें कामदेवके युद्धकी सूचना देनेवाला यह मयूरके कण्ठरूप काहलि नामक वाद्यका शब्द सुना जारहा है, वह 'केका' शब्द क्या है मानो बरसात पूछ रही है, पुरुषों में 'के' कौन कठोर विरहयातना भुगत रहे हैं और औरतोंमें 'का' कौन कठोर विरहवेदना पा रही है। ('केका' शब्दको दो भागोंमें बाँटकर यह उत्प्रेक्षा खड़ी की गई है)॥ २७॥

अम्भोधरोदरविनिर्गतवारिधारा-
सम्मर्दमांसलसमीरसमीर्यमाणैः।
आमोदवीचिनिचयैः कुटजप्रसूनै-
राकाशमेतदवकाशविहीनमासीत्॥ २८॥

अम्भोधरोदरेति। अम्भोधरोदरेभ्यः मेघमालाऽन्तरालेभ्यः निर्गताः बहिर्भूताः याः वारिधाराः जलधारास्तासां सम्मर्देन सातिशयसंयोगेन (अभिव्याप्त्या) मांसलः बलवान् (अत्यर्थोद्वेगजनकः वारिपूर्णतयाऽधिकवेगेन पतनशीलत्वाच्च ज्ञापितमांसलः) यः समीरो वायुस्तेन समीर्यमाणैः कम्प्यमानैः आमोदवीचिनिचयैः सुगन्धपूर्णैः कुटजप्रसूनैः गिरिमल्लिकाकुसुमैः एतत् आकाशम् अवकाशविहीनम् निरन्तरव्याप्तमासीत् अभवत्। मेघनिर्गतवारिकणसम्पर्कप्रबलवायुकम्पितैः (आमोदानां सुगन्धानां वीचिस्तरङ्गस्तन्निचयः तत्समूहो यत्र तादृशैः) कुटजप्रसूनैराकाशं व्याप्तमासीत् इत्यर्थः। 'बलवान् मांसलो मतः' इत्यमरः॥ २८॥

मेघके गर्भसे निकली हुई जलधारासे सम्पर्क होनेके कारण प्रबल वायुद्वारा कम्पित एवं सुगन्धकी तरङ्गोंसे पूर्ण कुटजपुष्पोंसे आकाश खचाखच भर गया॥ २८॥

घनश्यामलपत्रस्य व्योमन्यग्रोधशाखिनः।
प्ररोहा इव लक्ष्यन्ते वारिधारा धरां गताः॥ २९॥

घनश्यामलेति। घनाः मेघाः एव श्यामलानि कृष्णवर्णानि पत्राणि दलानि यस्य तथोक्तस्य व्योमन्यग्रोधशाखिनः आकाशरूपवटवृक्षस्य—धरां गताः जलभारेण धरणीं स्पृशन्त्यः वारिधाराः पयोधरच्युताः जलधाराः—प्ररोहा इव जटा इव लक्ष्यन्ते प्रतीयन्ते। वटतरोः समन्तात्तज्जटा लम्बमाना धरां स्पृशन्ति, तथैवाकाशात्पतन्त्यो वारिधारा जटाकारा धरां स्पृशन्ति, तथा चाकाशतरोर्जटा एवामूर्जलधारा इति प्रत्ययः सुघटः। 'न्यग्रोधो बहुपाद्वटः' इत्यमरः॥ २९॥

मेघसे श्यामवर्ण पत्रोंवाले आकाशरूप वटवृक्षकी पृथ्वीको छूती हुई जलधारा ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो उस आकाशरूपी वटवृक्षकी बरोहें जमीनको चूम रही हैं॥ २९॥

[1]अम्भःपूरसुसंपूर्णास्तटस्थतरुपुष्पिणीः।
नदीः पश्येह सौमित्रे प्रवृद्धाश्च दिने दिने॥ ३०॥

अम्भःपूरेति। अम्भःपूरेण जलप्लवेन सुसंपूर्णाः भृताभ्यन्तरभागाः तटस्थैस्तरुभिः हेतुभिः पुष्पिणीः सुमनोव्याप्ताः पवनपातितपुलिनप्ररूढविटपिच्युतपुष्पव्याप्ता इत्यर्थः, इह प्रावृषि दिने दिने अहरहः प्रवृद्धाश्च अतिसमृद्धाश्च नदीः पश्येति सौमित्रं सम्बोध्य रामेणोक्तम्। वर्षर्त्तौ पूर्वं पूर्णता ततः प्रवृद्धिश्च क्रमाद् भवति नदीनां तदत्र दृश्यत्वेनाभिहितम्॥ ३०॥

हे लक्ष्मण, पानीसे लबालब भरी हुई एवं तटवर्त्ती वृक्षोंसे गिरते हुए फूलोंसे व्याप्त और दिनानुदिन बढ़ती हुई इन नदियोंको तो देखो॥ ३०॥

---

१. अयं श्लोकः क्वचिन्न विद्यते।

अम्भोधिपाने सलिलेन साकमापीतमौर्वाग्निशिखाकलापम्।
तप्तोदरा वारिधारा वमन्ति विद्युल्लतोन्मेषमिषेण नूनम्॥ ३१॥

अम्भोधीति। अम्भोधिपाने समुद्रसकाशात् पानीयग्रहणवेलायाम् सलिलेन पीयमानेन जलेन साकम् सह आपीतम् कुक्षौ कृतम् और्वाग्निशिखाकलापम् वाडववह्निज्वालासमुदयम् तप्तोदराः कुक्षिनिक्षिप्तवडवानलशिखाभरेण दह्यमानोदरदेशा अमी वारिधराः मेघाः नूनम् उत्प्रेक्षे विद्युल्लतोन्मेषमिषेण चपलाचमत्कृतिव्याजेन वमन्ति उद्गिरन्ति, कोऽपि जनः पयसि पीयमाने तेन समं यदि किमप्युष्णं वस्तु निगिरेत्तदा तेन वस्तुना तस्योदरं धक्ष्यते, तथादशश्चासौ केनाप्युपायेन तदुष्णं वस्तु वमिष्यति, तथैवायं मेघसमुदायः समुद्राज्जलं पिबन् वाडववह्निज्वालाकलापं निगीर्णवांस्तेन दह्यमाने चोदरे विद्युल्लताव्याजेन तमेव शिखाकलापं वमतीति स्फुटोऽर्थः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः, अत्र वमति पदोपादानात् जुगुप्साऽश्लीलत्वं तु नाशङ्कनीयं, वमतेरत्र निरसनार्थे लाक्षणिकतया चमत्काराधायकत्वात्, तदुक्तं दण्डिना—'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते॥ ३१॥

समुद्रसे जल लेते समय जिस वाडवानलकी शिखाराशिको मेघोंने उदरस्थ कर लिया था वह शिखाराशि जब उनकी पेटमें दाह उत्पन्न करने लगी है तब वह मेघ उस शिखाराशिको विद्युत् के प्रकाशके बहाने उगल रहे हैं॥ ३१॥

इत्थं प्रवृत्तेषु घनदिनेषु दाशरथिना कथमपि नीतेषु तदाकार[1]कान्ति गमितमिव शनैःशनैर्मेघमण्डलं पाण्डुरमभूत्।

इत्थमिति। इत्थम् अनेन प्रकारेण प्रवृत्तेषु प्रक्रान्तेषु घनदिनेषु वर्षादिवसेषु दाशरथिना रामेण कथमपि महता कष्टेन नीतेषु यापितेषु तदाकारकान्तिम् रामरूपच्छविम् गमितम् रामस्वरूपसादृश्यम् गमितम् प्रापितम् इव नभस्तलम् व्योम पाण्डुरम् पाण्डुवर्णम् अभवत्। शरदागमेन आकाशं पाण्डुरमजायत, मन्ये विरहपाण्डुरस्य रामरूपस्यानुकरोतीवाकाशमिति तात्पर्यम्।

इस तरह बरसातके दिनोंको रामने किसी प्रकार व्यतीत किया, धीरे धीरे मेघमण्डल पाण्डुवर्ण होने लगा, मानों मेघमण्डलको भी रामकी पाण्डुरता स्वीकार करा दी गई हो।

तस्य [2]चापव्यापारवेलायां न संनिधातव्यमित्यन्त[3]रिक्षादन्तर्हितं किल पाकशासनशरासनम्।

---

१. 'कान्तिविजितमिव' इति पाठान्तरम्। २. 'चापस्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'अन्तरिक्षान्तरात्' इति पाठान्तरम्।

तस्येति। तस्य भगवतो रामस्य चापव्यापारवेलायाम् शरासनकर्षणावसरे न सन्निधातव्यम् न सन्निधौ स्थातव्यम् इति हेतोः पाकशासनशरासनम् इन्द्रधनुः अन्तरिक्षात् आकाशात् अन्तर्हितम् प्रच्छन्नम् अदृश्यतांगतम्। महति व्यापारवति क्षुद्रस्यावस्थातुमयुक्ततया रामचापव्यापारावसरे समायाते शक्रचापस्य तिरोधानं सञ्जातमित्याशयः।

जब रामके शरासनके चलनेका समय आगया तब हमारा चलना उचित नहीं है ऐसा सोचकर इन्द्रका शरासन (इन्द्रधनुष) आकाशसे अन्तर्हित हो गया।

रघुपतिचापघोषसमयो भवितेति [1]किल
व्युपरतमुद्भटं घनघटाजनितं स्तनितम्।
श्वसितमरुद्भिरस्य[2] विजितः किल शान्तिमगा-
त्परिचितकेतकीकुटजनीपवनः पवनः॥ ३२॥

रघुपतीति। रघुपतिचापघोषसमयः रामधनुष्टंकारकालः भविता भविष्यति इति हेतोः घनघटाजनितम् मेघमालाकृतम् उद्भटम् धीरम् स्तनितम् गर्जितम् व्युपरतम् शान्तम्, अस्य रामस्य श्वसितमरुद्भिः निःश्वासवायुभिः विजितः परिचितकेतकीकुटजनीपवनः केतकीनां कुटजानां गिरिमल्लिकानां नीपानां कदम्बानाञ्च वनानि श्रान्तवान् पवनः वायुः शान्तिम् अगात् लब्धवान्। मेघानां गर्जितं शान्तमभवन्मन्ये तद्रामस्य चापघोषं भाविनमुत्प्रेक्ष्यैव शान्तमजायत, वर्षाकालावसाने पवनः शान्तोऽभवन्मन्ये विरहजेन रामस्य निःश्वासेन पराजितः सन्नेव शान्तोऽभवत्। वर्षाकाले केतक्यः कुटजाः कदम्बाश्च विकसन्तीति तत्परिचितस्य वायोः सुगन्धपूर्णता व्यञ्जिता। तत्कुटकं नाम वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु तत्कुटकम्'॥ ३२॥

रामजी के धनुष्टंकारका समय आरहा है इसीकारणसे मेघमालाका जोरदार गर्जन थम गया और केतकी, कुटज तथा कदम्ब वनसे परिचय रखनेवाला पवन शान्त हो गया, मानो उसको रामके निःश्वासोंने परास्त कर दिया हो॥ ३२॥

तापोपशान्तिनटनात्कृतलोकहर्षा
वर्षानटी गगनरङ्गतलात्प्रयाता।
अम्भोदवाद्यमचिरेण शशाम सर्वं
निर्वापिताश्च सहसैव तडित्प्रदीपाः॥ ३३॥

---

१. 'भिया व्युपरत' इति पाठान्तरम्। २. 'अत्र' इति पाठान्तरम्।

गतधैर्यः अधीरः सन् सुदूरम् वालिनो विप्रकृष्टतरं स्थानम् अपासरत् पलायितः। वालिनः पराक्रमं प्रतिकर्त्तुमनीशः सुग्रीवो रामशरागमनवर्त्मनि तथैव दृष्टिं दधौ यथा कश्चिद्दरिद्रो दातरि साभिलाषां दृशं दधाति, परं तथा प्रतीक्षायामपि यदा रामबाणो नैवागतस्तदा सोऽधीरः सन् प्राणरक्षायै दूरं पलायिष्टेति भावः।

सुग्रीव जब वालिका पराक्रम नहीं सह सका तब वह रामके बाणके आनेके मार्गकी ओर उसी तरह देखने लगा जैसे कोई दरिद्र याचक दाताकी ओर देखता है, परन्तु फिर जब रामका बाण उसकी मददके लिये नहीं आया तब वह दूर भाग गया।

तमेनमृष्यमूके मूकवत्त्रपया निषण्णं विषण्णहृदयं [1]दयालुरालोक्य त्रैलोक्यैकधन्वी रामस्तद्भेदमवगन्तुकामः काममप्यभिज्ञानमालां सुग्रीवग्रीवायां बाणनिवारणनिपुणां सिद्धौषधिमिव बध्वा भूयोऽपि वालिनमाहवायाह्वयेति तमादिदेश।

तदेनमिति। तत् ततः ऋष्यमूके तदाख्ये पर्वते त्रपया पराजयजन्यलज्जया मूकवत् निषण्णम् स्थितं विषण्णहृदयम् विषादपूर्णहृदयम् एनम् सुग्रीवमालोक्य दृष्ट्वा दयालुः कृपायुक्तः त्रैलोक्यधन्वी संसारप्रसिद्धो धनुर्धरः तद्भेदम् को वाली कश्च सुग्रीव इति भेदबुद्धिमासाद्य (तौ) अवगन्तुकामः रामः काममपि अभिज्ञानमालाम् परिचयप्रदां पुष्पस्रजम् बाणवारणनिपुणाम् रामत्यक्तशरपरासिकाम् सिद्धौषधिम् सिद्धभैषज्यम् इव सुग्रीवग्रीवायां सुग्रीवस्य कण्ठदेशे बद्ध्वा आसज्य भूयोऽपि पुनरपि वालिनम् आहवाय युद्धाय आह्वय आकारय इति तम् सुग्रीवम् आदिदेश आज्ञप्तवान्। यदा रामः पराजितं सुग्रीवं त्रपामूकमृष्यशृङ्गे स्थितमपश्यत्तदा तस्य हृदि दयोदिता, तया प्रेरितश्चासौ सुग्रीवस्य कण्ठे मालामेकां बद्धवान् यया भेदेन ज्ञायमानोऽसौ रामबाणेन न विध्येत, किन्तु वाली एव विध्येत, तथा जाते गच्छ पुनर्वालिनं युद्धायाह्वयेति सुग्रीवमाज्ञप्तवानिति भावः।

पराजित होकर सुग्रीव लज्जासे मूकसा होकर ऋष्यमूकपर आकर बैठ गया, उसे बड़ा दुःख हुआ, उसकी यह स्थिति देखकर रामको दया आ गई, इसके बाद त्रैलोक्य प्रसिद्ध धनुर्धर रामने वालि और सुग्रीवमें भेदपूर्वक पहचान हो सके इसलिये सुग्रीवके गलेमें एक माला डाल दी, जो माला सुग्रीवको रामके बाणसे बचानेमें सिद्धभेषजका काम दे। इस तरह उसकी रक्षाका उपाय करके रामने सुग्रीवको कहा कि वालिको फिरसे युद्धके लिये ललकारो।

पुनरप्यवाप्य किष्किन्धां पर्जन्य इव गर्जति तस्मिन्सुत्रामपुत्रस्ता-

1. 'हृदयालुः' इति पाठान्तरम्।

राभिहितां हितोक्तिमतिक्रम्य दुरतिक्रमतया नियतेः समारब्धसमरो [1]दाशरथेर्निशिततरशरशकलितनिजविशालवक्षःस्थलः क्षितितले [2]निपपात।

पुनरपीति। तस्मिन् सुग्रीवे पुनः अपि किष्किन्धाम् नाम पुरीम् अवाप्य आगत्य पर्जन्ये मेघे इव गर्जति सति सुत्राम्णः इन्द्रस्य पुत्रो वाली ताराभिहिताम् तारानामकस्वस्त्रिया उक्ताम् हितोक्तिम् 'अयं सुग्रीवोऽन्यस्य कस्यापि साहाय्यं सम्भाव्य योद्धुमायात्तन्मा युध्यस्व' इति कल्याणकरं वचनम् अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य नियतेः भाग्यरेखायाः दुरतिक्रमतया अनुल्लङ्घ्यतया (साफल्यावश्यंभावेन) समारब्धसमरो युद्धं प्रारभ्य दाशरथेः रामस्य निशिततरेण अतितीक्ष्णेन शरेण बाणेन शकलितं भिन्नं निजं स्वीयं वालिसम्बन्धिविशालं पृथुलं वक्षःस्थलं हृदयप्रदेशो यस्य तथोक्तः सन् क्षितितले पृथिव्यां निपपात पतितः, सुग्रीवे पुनर्योद्धुमायाते तारा वालिनं निषिद्धवती यदयं सुग्रीवः कस्याप्यन्यस्य बलमासाद्य गर्जति तदलमधुना युद्धेन, परं महामहिमशालिनो भाग्यलेख्यस्यावश्यं भावितया वाली तद्धितोक्तिमनाकर्ण्य योद्धुं प्रवृत्तः सन् रामक्षिप्तेन खरतरेण बाणेन हृदि विद्धो भूमौ पपातेति तात्पर्यम्।

फिर सुग्रीव किष्किन्धामें आकर मेघकी तरह गरजने लगा, ताराने वालीको बहुत समझाया कि मत युद्ध करो परन्तु इन्द्रपुत्र वालीने भाग्यलिपिकी अवश्य भवितव्यतासे प्रेरित होकर उसका कहना नहीं माना, लड़ना प्रारम्भ कर दिया इसके बाद रामके तीक्ष्ण बाणने उसकी छाती छेद डाली और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

अथ विदितवृत्तान्ता [3]सन्तताश्रुनिष्यन्दकलुषित[4]तरतारा तारा नगरान्निर्गत्य वारिवारितं वारणयूथपतिमिव [5]निर्भयनिरीक्ष्यमाणसुग्रीवमुद्गतग्रीवमुत्थातुमक्षमतया क्ष्मातलार्पितकूर्परयुगलं [6]गलदसृक्प्रसरशारशरीरं शरासनशिखर[7]न्यस्तहस्तेन सन्निकर्षस्थितेन काकुत्स्थेन कृतसंलापमपेताडम्बरमिवाम्बु[8]निधिमस्तोन्मुखमिव मयूखमालिनं वालिनमालिङ्ग्य स्वाङ्कोत्तंसिततदुत्तमाङ्गा रघुनाथमित्थमकथयत्।

अथेति। अथ वालिनो भूमिपतनानन्तरम्, सन्तताश्रुनिष्यन्देन अनवरताश्रुप्रवाहेण कलुषिततरे रूषिते तारे नेत्रद्वयकनीनिके यस्याः सा तादृशी तारा वालि-

१. 'दाशरथिशरशकलीकृतवक्षःस्थल' इति पाठान्तरम्।
२. 'सहसा पपात' इति पाठान्तरम्।
३. 'सन्तत' इति नास्ति क्वचित्।
४. 'कलुषिततारा तारान्तरात्' इति पा०।
५. 'सुग्रीवं निर्भयनिरीक्ष्यमाणं' इति पा०।
६. 'गलगलदसृक्पूर' इति पाठान्तरम्।
७. 'विन्यस्त' इति पाठान्तरम्।
८. 'अम्बुधिम्' इति पाठान्तरम्।

पत्नी नगरात् किष्किन्धापुरात् निर्गत्य बहिर्भूय वार्याम् गजबन्धन्याम् वारितम् निरुद्धम् वारणयूथपतिम् गजराजम् इव निर्भयनिरीक्ष्यमाणः अभयभावेन दृश्यमानः सुग्रीवो येन तं तथोक्तम्, उद्गता उत्थिता ग्रीवा कण्ठदेशो यस्य तादृशमुत्थापितशिरसम्, उत्थातुमक्षमतया असमर्थतया क्ष्मातले पृथ्वीतले अर्पितम् न्यस्तम् कूर्परयुगलं कफोणिद्वयं येन तथोक्तम्, गलता स्रवता असृक्प्रसरेण शारं कृष्णरक्तसितवर्णयुक्तं शरीरं यस्य तादृशम्, शरासनशिखरन्यस्तहस्तेन धनुरग्रस्थापितबाहुना सन्निकर्षस्थितेन समीपवर्त्तिना काकुत्स्थेन रामेण कृतसंलापम् प्रवृत्तवार्त्तालापम्, अपेताडम्बरम् कल्लोलाद्यभावेन स्तिमितम् अम्भोनिधिम् समुद्रम्, अस्तोन्मुखम् अस्ताचलशिखरारूढम् मयूखमालिनम् सूर्यम् इव (स्थितम्) वालिनम् आलिङ्ग्य आश्लिष्य स्वाङ्कोत्तंसिततदुत्तमाङ्गा स्वक्रोडभूषणीकृतवालिमस्तका (तारा) रघुनाथम् रामम् इत्थम् अनेन प्रकारेण अकथयत् अवोचत्। 'तारकाक्ष्णः कनीनिका' 'वारी तु गजबन्धनी' 'यूथनाथस्तु यूथपः' 'स्यात् कफोणिस्तु कूर्परः' 'कृष्णरक्तसिते शारः' 'उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः' 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इति सर्वत्रामरः।

खबर पाकर अनवरत रोते रहनेसे सूज गई हैं कनीनिकायें जिनकी ऐसे नयनों वाली तारा किष्किन्धापुरीसे बाहर निकली, आकर उसने बाझमें फंसे गजराज की तरह निर्भय नयनोंसे सुग्रीव की ओर देखने वाले, शिर उठाये हुए, उठ नहीं सकनेके कारण पृथ्वीपर घुटनोंके बल बैठे हुए, रक्त के बहते रहनेके कारण रक्तश्याम और श्वेत वर्ण शरीरवाले, धनुषके अग्रदेशमें हाथ डाले हुए समीपस्थित रामचन्द्रजीसे बातें करते हुए, शान्तसागरकी तरह निस्तरङ्ग, अस्तोन्मुख सूर्यकी तरह क्षीणप्रभ वालीको गले लगाकर उसके शिरको अपनी गोदमें रखकर रघुनाथसे इस प्रकार कहा।

कारुण्यं निरवधि यत्तव प्रसिद्धं
शीतांशोः सहजमिवार्तिहारि शैत्यम्।
तत्सर्वं मनुकुलनाथ! रम्यकीर्ते!
मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम्॥ १४॥

कारुण्यमिति। हे मनुकुलनाथ, मनुवंशनायक, हे रम्यकीर्त्ते, रमणीययशोभूषण, श्रीराम, शीतांशोः चन्द्रस्य सहजम् स्वभावसिद्धम् आर्त्तिहारि परपीडानिवारकम् शैत्यम् शिशिरत्वम् इव तव निरवधि असीमम् यत् कारुण्यं दयालुत्वं (स्वभावसिद्धत्वेन परपीडानिराकरणपटुतया च) प्रसिद्धम् लोकविख्यातम्, सर्वम् समस्तं तत् कारुण्यम् मत्पापात् मत्कृतदुष्कृतरूपाद्धेतोः त्वया कथं निरस्तम् त्यक्तमिति कथय अभिधेहि? यथा चन्द्रः स्वभावतः शीतलकरः परसन्तापशमकश्च प्रसिद्ध्यति तथा त्वमपि स्वभावतो दयालुः परपीडानिराकरणव्यसनी चाख्यायसे, तद्

हे मनुवंशप्रदीप रघुनाथ, मया कृतेन पापेन हेतुभूतेन स्वीयं स्वाभाविकं तत्कारुण्यं कथमेकपद एवाहासीस्तन्मे कथयेति भावः। 'कारुण्यं करुणा घृणा' इत्यमरः। प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ १४ ॥

हे मनुवंशनाथ, हे सुन्दर कीर्त्तिवाले, जैसे चन्द्रमाका स्वाभाविक शैत्य दूसरोंकी पीड़ाके हरणमें प्रसिद्ध है उसी तरह तुम्हारी दयालुता भी परपीडाहरणमें प्रसिद्ध है, फिर हमारे पापके कारण तुमने अपनी स्वाभाविक दयालुताका क्यों त्याग कर दिया, कृपया यह तो बता दो ॥ १४ ॥

एवंविधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां
मां राक्षसीति रघुपुङ्गव ! साधु बुद्ध्वा।
बाणं विमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !
श्रेयो भवेद्दयितसङ्गमकारिणस्ते ॥ १५ ॥

एवंविध इति। हे ताटकारे, ताटकाप्राहणहारिन्, रघुपुङ्गव रघुवंशतिलक, प्रियतमे प्राणनाथे स्वामिनि एवंविधे ईदृशीं दशामुपेते मृते अपि अनपेतजीवाम् अनिर्गतप्राणाम् जीवन्तीम् माम् 'राक्षसी' इति एवं प्रकाराम् साधु सत्यं बुध्वा अवगत्य सम्प्रति मयि राक्षसीत्वेन सम्यगवगतायाम् (राक्षसीत्वप्रकारकसम्यग्ज्ञानविषयीभूतायाम्) मयि तारायाम् बाणं विमुञ्च प्रहर, (मयि प्रियवियोगे जीवनधारणेन ख्यापितराक्षसीभावायां बाणं विसृज्य मां मारयित्वा प्रियनिकटप्रेषणपरत्वेन) दयितसङ्गमकारिणः प्रियसंयोगसम्पादकस्य तव श्रेयः कल्याणं भवेत्, 'न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति' इत्युक्तेरिति भावः ॥ १५ ॥

प्रियतमकी ऐसी दशा (मृत्यु) हो जाने पर भी जिसका प्राण नहीं निकला है वही मैं राक्षसी हूँ, ऐसा ठीक तरहसे समझकर आप मुझे बाणसे मारें, हे रघुवंशतिलक, ताटकारे, ऐसा करनेसे आप मुझे प्रियतमके पास पहुँचा देंगे, इससे आपका भला होगा ॥ १५ ॥

साधारणी [1]क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
[2]मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन् !।
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम ! मृगयुर्दयते मृगीणाम् ॥ १६ ॥

साधारणीति। हे सत्यवादिन्, अमिथ्याभाषिन्, क्षितिभुजाम् राज्ञाम् मृगया आखेटकम् साधारणी अनिषिद्धानुमता (न दोषाय न वाभ्युदयाय) इति त्वयैव जनसंसदि लोकसभायाम् पूर्वम् इतः पूर्वस्मिन् काले उक्ता अभिहिता, हे राम, तत्

१. 'क्षितिभृताम्' इति पाठान्तरम्। २. 'उक्तम्' इति पाठान्तरम्।

तस्मात् इह अस्मिन् समये शाखामृगीं वानरीं मां तारां शरेण बाणेन मारय जहि, को नाम मृगयुः आखेटव्यसनी मृगीणाम् हरिणाङ्गनानाम् दयते अनुकम्पते । राज्ञां मृगया दोषाय न भवतीति त्वया सकललोकसमक्षमुक्तां मां त्वमधुना बाणेन जहि न हि कोऽपि मृगयुर्मृगीषु धृतानुकम्पो भवतीत्यर्थः। अत्र सत्यवादिन्नित्यनेन प्रतारकत्वाभावः, जनसंसदीत्यनेनापलापासंभवः, अहमुक्तेत्यनेन च साध्यन्तरानावश्यकत्वम् , शरेणेत्येकवचनेन मद्वधस्य सुखसाध्यत्वम् को नामेत्यादिना चरमवाक्येन चार्थितस्य सकलाचारपरिप्राप्तत्वमित्याद्यर्था व्यङ्ग्याः। 'मृगीणां दयते' इत्यत्र 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति षष्ठी ॥ १६ ॥

राजाओंके लिये शिकार साधारण सी बात है ऐसा आपने भरी सभामें मुझसे कहा था, अतः हे सत्यवादिन् , राम, आप अपने बाणसे मुझे मारें, मैं वानरी ही तो हूं, कोई भी शिकारी क्या मृगी पर दया दिखाता है। (फिर मुझ शाखामृगी (वानरी) पर आप क्यों दया दिखा रहे हैं) ॥ १६ ॥

संत्रस्य पूर्वममुतस्तव बन्धुरेष
भेजे यथाद्रिमकुतोभयमृष्यमूकम् ।
भर्ता ममायमपि रामशरैरभेद्यं
प्राप्तो मदीयहृदय[1]च्छलमद्रिदुर्गम् ॥ १७ ॥

संत्रस्येति । अमुतः वालिनः संत्रस्य भीतिं प्राप्य पूर्वम् पुरा तव रामस्य बन्धुः प्रियसुहृत् एषः सुग्रीवः यथा अकुतोभयम् निर्भयसञ्चारयोग्यम् ऋष्यमूकं नाम अद्रिम् पर्वतम् भेजे प्रपन्नः, (तथा) अयम् पुरोदृश्यमानः मम ताराया भर्त्ता स्वामी वाली अपि रामशरैः रामस्य तव बाणैः अभेद्यम् अवेध्यम् मदीयहृदयच्छलम् मच्चेतोरूपम् अद्रिदुर्गम् पर्वतरूपमतिकष्टसञ्चारम् गुप्तिस्थानम् प्राप्तः, अतस्तत्र भवतः साध्यं नास्तीत्याशयः। स्पष्टमन्यत् ॥ १७ ॥

इसी वालीसे डरकर आपके प्रियबन्धु सुग्रीव जैसे पहले निर्भयसञ्चार स्थान इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहा करते थे, उसी तरह हमारे स्वामी भी हमारे हृदयरूप पर्वत दुर्गमें पहुँच गये हैं, जो रामके बाणोंसे बेधा नहीं जा सकता है (अतः आप मेरे हृदयमें वर्त्तमान वालीका बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे) ॥ १७ ॥

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली
वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः ।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या
धन्वी कथं भवसि राघव ! मामविद्ध्वा ॥ १८ ॥

---

१. 'स्थलम्' इति पाठान्तरम् ।

नाहमिति। अहं सुकेतुतनया ताटका न अस्मीति शेषः, ('यक्षः सुकेतुर्द्रुहिणप्रसादाल्लेभे सुतां कामपि ताटकाख्याम्' इति पूर्वमुक्तम्) (अहम्) सप्तानां सालानां समाहारः सप्तसाली सप्तसङ्ख्यकसर्जतरुसमुदायः च न, अस्मीत्यत्रापि योज्यम्, त्रिभुवनप्रथितप्रभावः सकललोकख्यातप्रतापः वाली च न भवामि, (यान् भवान् सुखमभिनत्) किन्तु वज्रहृदया कुलिशकठोरचित्ता अत एव च विशिखैः बाणैः अभेद्या भेत्तुमशक्या तारा नाम अस्मि, ननु याऽसि साऽसि, किन्नस्ततस्तत्राह—हे राघव, राम, मामविध्वा माम् अभित्त्वा त्वं कथं धन्वी धानुष्कः भवसि, लक्ष्यभूतां मां पुरो विहाय तव धनुर्धरत्वं विफलं स्यात्, निमित्तापराद्धेषोः कस्यचिद्धनुर्धरत्वस्याख्यामात्रतापर्यवसायित्वादिति भावः॥ १८॥

न मैं ताटका हूँ, न मैं सातसाल वृक्ष हूँ और न मैं त्रिभुवनख्यात पराक्रमी वाली ही हूँ, मैं वज्रसमान कठोरहृदया तारा हूँ, मुझ पर आपके शरोंका कुछ नहीं चल सकता है, हे राघव, जब तक आप मुझे नहीं वेध लेते तब तक धन्वी होने का क्या दावा करते हैं॥ १८॥

क्षितिपतितनयानां हन्त गर्भेश्वराणां
किमु निरवधि मौग्ध्यं शौर्यवज्जन्मसिद्धम्।
मम हृदि निरपाये वर्तमाने कपीन्द्रे
रघुवर! यदमुष्मै तिष्ठसे चापपाणिः॥ १९॥

क्षितिपतीति। गर्भेश्वराणाम् गर्भप्रभृतिसदैश्वर्यशालिनाम् क्षितिपतितनयानाम् राजकुमाराणाम् निरवधि अनन्तम् मौग्ध्यम् मुग्धत्वम् कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञानशून्यत्वम् किमु किम् शौर्यवत् शौर्येण तुल्यम् वीरत्वमिव जन्मसिद्धम् जन्मजातम्, यथा राजपुत्रा जन्मत एव शूरा भवन्ति तथैव जन्मत एव कृत्याकृत्यविवेकविधुरा अपि भवन्ति किमिति भावः। हन्तपदं तेषां तथाभावे खेदं प्रकाशयितुम्। राजपुत्राणां मुग्धतां प्रमाणयितुं दृष्टान्तभावेन रामस्यैव मुग्धतां यो न हन्तुं शक्यते तस्यापि वधाय सन्नद्धतामुपन्यस्यति—मम हृदीति। निरपाये सर्वविधभयवर्जिते एकान्तसुरक्षिते मम हृदि हृदयदुर्गे वर्त्तमाने अधिष्ठिते कपीन्द्रे, हे रघुवर, यत् यतः अमुष्मै वालिने चापपाणिः करधृतधनुः तिष्ठसे स्वाभिप्रायं (हननोद्यमरूपं) प्रकाशयसि। यतोऽतिसुरक्षिते मम हृदि वर्त्तमाने कपीन्द्रेऽपि तवेयं धृतचापताऽतो राजपुत्राणां मौग्ध्यं सिध्यतीति भावः। 'तिष्ठसे' इत्यत्र 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' इत्यात्मनेपदम्। 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति विश्वः॥ १९॥

जन्मतः सम्पत्तिके पात्र राजपुत्रगण जिस तरह स्वभावतः बहादुर हुआ करते हैं उसी तरह कर्त्तव्याकर्त्तव्यके ज्ञानसे वञ्चित भी हुआ करते हैं क्या? क्योंकि हे रघुवर, सभी

प्रकारसे सुरक्षित हमारे हृदयरूप दुर्गमें वर्तमान वालीके प्रति आप धनुष ताने खड़े हैं। (इससे तो राजपुत्रोंकी मूढ़ता ही समर्थित हो रही है)॥ १९॥

एवं विलपन्त्या हारायिताश्रुधारायास्तारायाः परिदेवनरवैर्बाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणै[1]रक्षीणैर्निश्वासानिलैश्च कृताश्वास इव लब्धसंज्ञो वाली निजनन्दनं [2]रघुनन्दने समर्प्याङ्गदमङ्गसङ्गिनीं काञ्चन काञ्चन[3]स्रजं शोकावनतग्रीवाय सुग्रीवाय दत्वा निजभुजबलप्रशान्तासुरोऽ[4]यं प्रशान्तासुरभूत्।

एवमिति। एवं प्रोक्तप्रकारेण विलपन्त्याः परिदेवनपरायाः हारायिता स्रग्भावं गता अश्रुधारा नेत्रजलप्रवाहो यस्यास्तस्याः तारायाः स्वभार्यायाः परिदेवनरवैः क्रन्दनैः, वाष्पाम्बुकणाभ्युक्षणैः नयनवारिबिन्दुकृतसेचनैः निश्वासानिलैः दीर्घनिःश्वासमारुतैश्च (प्रायेण हि मूर्च्छामुपगतास्तारस्वरेणोच्यमानाः पयसा सिच्यमाना व्यजनैर्वीज्यमानाश्च पुनश्चैतन्यमागच्छन्ति, तद्रूपैश्चैभिः परिदेवननेत्रजलकणसेकनिःश्वासानलैर्वालिनः प्रत्युज्जीवनमुपनिबद्धम्) कृताश्वासः प्रत्यागतजीवितः इव लब्धसंज्ञः प्रत्यापन्नचैतन्यः सन् वाली निजनन्दनम् स्वपुत्रमङ्गदं रघुनन्दने रामे समर्प्य रक्षणावेक्षणादिकर्म कर्तुं निवेद्य अङ्गसङ्गिनीम् देहलग्नाम् ग्रीवावस्थिताम् काञ्चन कामपि (इन्द्रदत्तामतिसुन्दरीम्) काञ्चनस्रजम् हेममालाम् शोकावनतग्रीवाय मुमूर्षुस्वभ्रातृदशादर्शनजन्यविषादनतमस्तकाय सुग्रीवाय दत्वा निजभुजबलप्रशान्तासुरः स्वबाहुसामर्थ्यक्षपितराक्षसचक्रः अयम् वाली प्रशान्तासुः अपगतप्राणः अभूत् अजनि।

इस तरह विलाप करती हुई, आँसूकी धारा, जिसका हार बन रहीं है ऐसी ताराके रोदन शब्द, अश्रुजलकणकृत सेचन एवं निःश्वासपवनसे पुनरुज्जीवित सा किया गया अतएव चेतनाको प्राप्त वालीने अपने पुत्र अङ्गदको रामके हाथोंमें सौंपा और सदा साथ रहनेवाली अपनी हेममाला शोकसे शिर झुकाकर बैठे हुए सुग्रीवके गलेमें डाल दी, इस तरह अपने बाहुबलसे सकल राक्षसोंका क्षय करनेवाला वह बहादुर शान्त हो गया।

तत्र हा सकलभुवनबहुमतबाहु[5]बल गोलभगन्धर्वसिन्धुरपञ्चताकरणपञ्चानन दशमुखभुजभुजङ्गभोग[6]निरोधाहितुण्डिकायितबालवलय वालिन्,

---

१. 'अक्षीणश्वासानिलै' इति पाठान्तरम्। २. 'इक्ष्वाकुनन्दने' इति पाठान्तरम्।
३. 'मालाम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'अयम्' इति क्वचिन्नास्ति।
५. 'बलानलशलभायितबललुलितगन्धर्व' इति पाठान्तरम्।
६. 'निरोधायाहि' इति पाठान्तरम्।

[1]कथं गतोऽसीति बाष्पाविलमुखा वलीमुखास्तस्य रामाज्ञया यथाभिप्रेतं प्रेतकृत्यं [2]सर्वं निर्वर्तयामासुः ।

तत्रेति । तत्र तदा वालिमरणकाले हा सकलभुवने समस्तलोके बहुमतम् अतिपूजितं बाहुबलम् भुजपराक्रमो यस्य स तथोक्तस्तत्सम्बोधने रूपम् , गोलभः तदभिधानो यो गन्धर्वः देवयोनिभेदस्तस्य सिन्धुरस्य तद्रूपगजस्य पञ्चताकरणे निधने पञ्चानन सिंहरूप, दशमुखो रावणस्तस्य भुजा बाहव एव भुजङ्गाः सर्पास्तेषाम् भोगाः फणारूपा अग्रभागास्तेषां निरोधे निस्तेजस्कतासम्पादने अहितुण्डिकीविषवैद्यस्तद्वदाचरितं बालवलयं पुच्छकेशसमुदयो यस्य तादृश, (निजपुच्छलोमसमुदयनिरस्तरावणभुजसामर्थ्येत्यर्थः) कथंगतः अपुनरावृत्तये प्रयातो मृतोऽसीति बाष्पाविलमुखा अश्रुपूर्णमुखाः वलीमुखाः वानरास्तस्य वालिनः रामाज्ञया रामस्यादेशेन यथाभिप्रेतम् यथाभितम् प्रेतकृत्यं दाहादिसंस्कारम् सर्वं निरवशेषं निर्वर्त्तयामासुः कृतवन्तः । 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृता वहेश्च फणकाययोः' 'विषवैद्यो जाङ्गलिको व्यालग्राह्यहितुण्डिकः' इत्युभयत्रामरः ।

वालीके मरजाने पर हा, समस्त संसारमें प्रशंसित बाहुपराक्रमशाली, हा गोलभ नामक गन्धर्वरूप हाथीको मारनेमें सिंहरूप, हा रावणके भुजारूप सर्पोंको निस्तेज बनानेमें विषवैद्य समान बालोंसे युक्त, हा वाली, तुम कहाँ गये? इस तरह रोते हुए अश्रुमुख वानरोंने वालीकी प्रेतक्रिया रामकी आज्ञासे उचित क्रमसे सम्पन्न कर दी ।

ततो[3] जाम्बवत्प्रमुखा वलीमुखगणा दाशरथिनिदेशात्सुग्रीवं काञ्चनकलशोदकैरभ्यषिञ्चन् ।

तत इति । ततो वालिप्रेतकृत्यसम्पादनानन्तरम् , जाम्बवत्प्रमुखाः जाम्बवदादयः वलीमुखगणाः वानराः दाशरथिनिदेशात् रामस्यादेशात् सुग्रीवम् काञ्चनकलशोदकैः सुवर्णघटाहृतैः पयोभिः अभ्यषिञ्चन् अभिषिक्तवन्तः । वालिनः प्रेतकृत्यं सम्पाद्य जाम्बवदादयो मन्त्रिणो रामस्यादेशेन सुग्रीवं किष्किन्धाराज्येऽभिषिक्तवन्त इत्याशयः ।

वालीके प्रेतकृत्यको सम्पन्न करके जाम्बवान् आदि बानरोंने रामके आदेशसे सोनेके घड़ोंमें जल लाकर सुग्रीवका राज्याभिषेक सम्पादित किया ।

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे रामश्यामपयोमुचा ।
अभिषेक्तुं स्थिता मेघास्तन्महीं महिषीमिव ॥ २० ॥

अभिषिक्ते त्विति । सुग्रीवे राम एव श्यामपयोमुक् कृष्णमेघस्तेन अभिषिक्ते स्नपिते राज्यपदे प्रतिष्ठापिते सति मेघाः वारिधराः तन्महीम् सुग्रीववशवर्त्तिनीम् पृथ्वीम्

१. 'विलय कथं' इति पाठान्तरम् । २. 'सर्वे' इति पाठान्तरम् ।
३. 'तत' इत्यारभ्य 'अभ्यषिञ्चन्' पर्यन्तं क्वचिन्नास्ति ।

महिषीम् राज्ञीम् इव अभिषेक्तुम् स्नपयितुम् स्थिताः प्रवृत्ताः। सुग्रीवरूपे राजनि रामरूपेण श्यामघनेन अभिषिक्ते सति मेघाः सुग्रीवपत्नीमिव तन्महीं स्नपयितुमारेभिरे, लोके राजनि पूर्वमभिषिक्ते प्रधानपुरोधसा, तदीयां पत्नीमितरे पुरोधसः स्नपयन्तीति समुदाचारमनुरुध्येयमुत्प्रेक्षा। 'रामश्यामपयोमुचा' इति रूपकसङ्कीर्णोत्प्रेक्षालङ्कारः॥ २०॥

रामरूप श्यामघनने जब सुग्रीवका अभिषेक कर दिया तब मेघोंने भी सुग्रीवकी पृथ्वीको अभिषिक्त करना प्रारम्भ कर दिया, मानो वे सुग्रीवके अभिषिक्त हो जाने पर उसके साथ राज्यारूढ़ होनेवाली उसकी रानीका अभिषेक कर रहे हों॥ २०॥

आर्यार्यान्वेषणा कार्या शरदीत्युक्तसंविदा।
कपीन्द्रेणार्थितो रामः किष्किन्धावर्तनं प्रति॥ २१॥

आर्येति। हे आर्य स्वामिन् राम, शरदि शरत्समये आर्यान्वेषणा आर्यायाः पूज्यायाः सीताया अन्वेषणम् कार्या कर्त्तव्या, इति उक्तसंविदा प्रकाशितस्वप्रतिज्ञेन कपीन्द्रेण सुग्रीवेण रामः किष्किन्धावर्त्तनम् किष्किन्धापुरप्रवेशम् प्रति उद्दिश्य प्रार्थितः अनुरुद्धः। हे आर्य, अहं शरदि सीतामन्वेषयामीति स्वां प्रतिज्ञामुद्घोष्य सुग्रीवः किष्किन्धापुरीं प्रविश्य प्रावृषं यापयितुं रामं प्रार्थितवानित्यर्थः। 'संविदागूः प्रतिज्ञानम्' इत्यमरः॥ २१॥

हे आर्य राम, मैं शरत् ऋतुमें सीताजीका अन्वेषण करवाऊँगा इस तरह अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करके सुग्रीवने रामसे प्रार्थना की कि तब तक आप किष्किन्धापुरीमें ही चलें (इस बरसातमें वनमें क्यों रहेंगे?)॥ २१॥

न योग्या नगरप्राप्तिरित्युक्तवति राघवे।
सुग्रीवप्रार्थनाप्यासीद्भरतप्रार्थनासमा॥ २२॥

न योग्येति। नगरप्राप्तिः पुरवासः न योग्या वने वस्तुमाज्ञप्तस्य मम नगरवासो न योग्यः इति राघवे रामे उक्तवति कथितवति सति सुग्रीवप्रार्थना सुग्रीवकृता रामस्य नगरवासविषया प्रार्थना अपि भरतप्रार्थनासमा भरतानुरोधतुल्या आसीत् अभवत्। यथाभरतकृतं नगरप्राप्त्यनुरोध रामो व्यर्थीचकार तथैव सुग्रीवकृतमपि तादृशमनुरोध व्यर्थीकृतवानिति तात्पर्यम्॥ २२॥

जब हमने वनमें वासकी प्रतिज्ञा ली है तब हमारे लिये नगरमें प्रवेश करना ठीक नहीं है, इस प्रकार रामके कहने पर सुग्रीवकी भी प्रार्थना भरतकी प्रार्थनाके समान व्यर्थ सिद्ध हुई॥ २२॥

दत्तार्जुनविकासेन धार्तराष्ट्रान्निरस्यता।
तेन जीमूतकालेन देवकीनन्दनायितम्॥ २३॥

दत्तार्जुनेति। दत्तः कृतः अर्जुनविकासः अर्जुनाख्यतरुपुष्पितत्वं येन तेन तथोक्तेन, धार्त्तराष्ट्रान् हंसान् निरस्यता दूरङ्गमयता (वर्षासु हंसा मानसं प्रतिष्ठन्ते इत्यभिसन्धायेदमुक्तम्) तेन जीमूतकालेन वर्षासमयेन देवकीनन्दनायितम् देवकीनन्दनः कृष्णस्तद्वदाचरितम्, कृष्णोऽपि अर्जुनस्य पृथापुत्रस्य विकासं विजयादिना प्रामुख्यं दत्त इति दत्तार्जुनविकासता तस्य, एवं धार्त्तराष्ट्रान् धृतराष्ट्रतनयान् दुर्योधनादीन् निरस्यति हानिं गमयति, जीमूतवत् कालः श्यामश्च भवति इति मेघसादृश्यं सर्वथा वहति। श्लिष्टविशेषणेयमुपमा। 'अर्जुनः ककुभे पार्थे' 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षास्ते धार्त्तराष्ट्राः सितेतरैः' 'कालश्यामलमेचकाः' इति सर्वत्रामरः॥ २३॥

अर्जुन वृक्षको विकसित करनेवाला और हंसोंको दूर भगा देनेवाला यह वर्षा समय देवकीनन्दन कृष्णकी समता प्राप्त करने लगा क्योंकि कृष्ण भी पार्थ अर्जुनको सर्वत्र विजय प्राप्त कराकर विकास-प्रमुखता-प्रदान करते एवं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको क्षति पहुँचाते थे, कृष्णमेघकी तरह श्याम भी तो थे ही। (अर्जुन-वृक्ष तथा पार्थ, धार्त्तराष्ट्र दुर्योधनादि तथा हंस, काल-समय एवं श्याम, इन तीन पदोंमें श्लेष है)॥ २३॥

[1]अस्माकं रूपलक्ष्मीमसकृदुपहसत्यात्मकान्त्या तदास्तां
भर्तारं नः सुरेन्द्रं किमपि न गणयन्वालिनं द्राग्जघान।
इत्थं मत्वैव वैरं झटिति घनघटा राघवस्याहवोत्था-
माशामाशाश्च रुद्ध्वा स्तनितमिषमहासिंह[2]नादान्वितेनुः॥२४॥

अस्माकमिति। रामः अस्माकम् मेघानाम् रूपलक्ष्मीम् श्यामकताकृताम् आकारसम्पदम् असकृत् भूयोभूयः आत्मकान्त्या इन्द्रनीलसमच्छाया स्वदेहकान्त्या उपहसति तिरस्करोति, तद् आस्ताम् एकतस्तिष्ठतु, (महात्मानो नात्मापमानं गणयन्तीति न तत्र ध्यानं दीयते, परं स्वास्यवमानना तु न सोढव्या तदाह-) नः अस्माकम् भर्त्तारम् स्वामिनम् (न केवलमस्माकमेव स्वामिनं किन्तु देवानामप्यधीश्वरम्) सुरेन्द्रम् किमपि न गणयन् तृणाय मन्यमानः (इन्द्रपुत्रवधे प्रवर्त्तमानस्य रामस्येन्द्रविषयकानादरः स्फुट एव) वालिनम् इन्द्रपुत्रतया प्रथमानम् द्राग् अविचार्यैव झटिति जघान हतवान्। इत्थम् अनेन प्रकारेण (एव) वैरम् रामेण सह शत्रुत्वं मत्वा अभ्युपेत्य घनघटाः मेघसमुदयाः (कर्त्तृपदमिदम्) राघवस्य रामस्य आहवोत्थाम् रावणेन सह युद्धायोदिताम् आशाम् उत्साहप्रगुणमभिलाषम्, आशाः दिशश्च रुध्वा आवृत्य स्तनितमिषेण गर्जितच्छलेन महासिंहनादान् दीर्घान् उच्चकलरवान् वितेनुः चक्रुः। अन्योऽपि कोऽपि स्वशत्रोरवकाशवर्त्म निरुध्य गर्जन्

१. 'तत्र, आस्माकीम्' इति पाठान्तरम्। २. 'नादं ततान' इति पाठान्तरम्।

स्वपौरुषाडम्बरं नाटयति, तद्वन्मेघोऽपि रामस्याशामवरुध्य जगर्जेति सापह्नवोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुतम्' 'आशा दिगतितृष्णयोः' इत्युभयत्रामरः ॥ २४ ॥

यह राम हमारी रूपलक्ष्मीका अपने शरीरकी श्यामल आभासे वारवार उपहास करता है यह बात तो तब तक दूर रहे, (इसकी उद्दण्डता इतनी बढ़ गई है कि) इसने स्वामी देवेन्द्रकी भी तनिक भी पर्वाह नहीं करके उनके पुत्र वालीको झटसे मार दिया (यह स्वाम्यपमान तो नहीं सहा जा सकता है) इस तरह मेघोंने रामके साथ अपना शत्रुत्व समझकर उनकी युद्धाभिलाषा (आशा) और सभी दिशाओंको आवृत करके अपना गर्जनरूप सिंहनाद करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २४ ॥

उपचितजीवनधारा सत्पथभाजो निरस्तसन्तापाः।
भूपा इव नवमेघाः पौरस्त्यमहाबलाकुलिताः ॥ २५ ॥

उपचितेति । उपचिताः प्रवृद्धवेगाः जीवनधाराः जलधाराः यैस्ते तथोक्ताः, सत्पथभाजः आकाशरूपोचिताध्वसञ्चारिणः, निरस्तसन्तापाः अपहृतनिदाघकृतोष्माणः, नवमेघाः प्रावृषेण्या नवा वारिधराः भूपाः राजान इव पौरस्त्यस्य पूर्वदिशाऽऽगतस्य वायोः महाबलेन सामर्थ्यप्रकर्षेण आकुलिताः इतस्ततः क्षिप्यमाणाः सन्तीत्यर्थः, भूपपक्षे—सततदानप्रवृत्ततया उपचितजीवनधाराः दानवारिप्रवाहेण प्रवाहितजलधाराः, सत्पथभाजः सदाचारमार्गानुसारिणः, निरस्तसन्तापाः अपाकृतजनताकष्टाः भूपाः (रलयोरभेदात्) पौरस्त्यस्य पौलस्त्यस्य रावणस्य महता दुष्प्रधर्षेण बलेन सैन्येन आकुलिताः व्यग्रीकृता सन्तीति वर्णनीयम्। एतत्पद्यगतभूपपक्षीयार्थेन तात्कालिकी राजदशावर्ण्यमाना नीतिवर्त्तिनोऽपि राज्ञ उपद्रवतो रावणस्य हन्तव्यता प्रत्याय्यते। 'पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्' इत्यमरः। श्लेषसङ्कीर्णोपमाऽलङ्कारः, आर्याभेदो वृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चादश सार्या' इति ॥२५॥

जलकी धाराको प्रवृद्ध करने वाले, आकाशचारी, लोकसन्तापहारी नव जलधरोंके सदृश राजगण जो सतत दान करनेके कारण जलधार बहाते हैं, नीतिमार्गसे चलते तथा लोगोंके कष्टको दूर करते हैं, इस समय पूर्वी वायुके झकोरेसे मेघ चलायमान हो रहे हैं और राजगण रावणकी बलवती सेनासे व्याकुलित हैं ॥ २५ ॥

तेन किल रघुपतिरतिमात्रप्रवृद्धमन्युः शतमन्युशरासनशारतरतारापथां [1]घनरवमुखरितहरिन्मुखाभोगां कदम्बवनपवना[2]कम्पनिराडम्बरकादम्बकुटुम्बामम्बुदकवलिताम्बरां शिलीन्ध्रसंबन्धबन्धुरवसुन्धरां विकच-

१. 'घनतरघनरव' इति पाठान्तरम्। २. 'कम्पन' इति पाठान्तरम्।

कुटजनिचयकवचितमहारण्यां प्रावृषेण्यां प्रक्रियां प्रेक्षमाणो लक्ष्मण:मिदमभाषत ।

तेनेति । तेन वर्षासमयेन अतिमात्रप्रवृद्धमन्युः अत्यर्थोपचितक्रोधः शतमन्योः इन्द्रस्य शरासनेन धनुषा (इन्द्रधनुषा) शारतरः रक्तकृष्णश्वेतवर्णस्ताराप आकाशदेशो यस्यां तां तथोक्ताम्, घनरवेण मेघशब्देन मुखरितः शब्दायमानः हरिन्मुखाभोगः दिक्चक्रवालविस्तारो यस्यां तादृशीम्, कदम्बवनपवनस्य नीप-वनवायोः आकम्पेन चलनेन निराडम्बरम् स्तिमितं कादम्बकुटुम्बम् हंसकुटुम्बं यस्याम् तादृशीम्, अम्बुदकवलिताम्बराम् मेघव्याप्तनभोऽङ्गणाम्, शिलीन्ध्रसम-न्धेन कन्दलीसमुद्गमेन बन्धुरा रमणीया वसुन्धरा पृथ्वी यस्यां तां तथोक्ताम्, विकचैः विकसितैः कुटजनिचयैः गिरिमल्लिकासमुदयैः कवचितं व्याप्तं महारण्यं महावनं यस्यां तां तथोक्ताम्, प्रावृषेण्यां वर्षाकालिकीं प्रक्रियाम् दशाम् प्रेक्षमाणः पश्यन् रघुपतिः लक्ष्मणम् इदम् वक्ष्यमाणलक्षणं वाक्यम् अभाषत उक्तवान्। 'शतमन्युर्दिवस्पतिः' 'नीपप्रियककदम्बाश्च हरिप्रिये' 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' 'कदल्यं च शिलीन्ध्रः स्यात्' इति सर्वत्र शब्दार्णवः । 'कुटजो गिरिमल्लिका' इति हलायुधः ।

वर्षाके आनेसे अतिकुपित, इन्द्रधनुषसे लाल, काला और श्वेत वर्णसे चित्रित आकाश वाली, मेघके शब्दसे दिशाओंको मुखरित करने वाली, कदम्बवनकी वायुसे हंससमुदायको स्तब्ध करने वाली, मेघसे आकाशको व्याप्त करने वाली, कन्दलीके उग आनेसे सुन्दर पृथ्वी-शालिनी, गिरिमल्लिकाके विकाससे व्याप्त है महावन जिसमें ऐसी, वरसातकी प्रक्रिया (स्थितिको) देखते हुए रघुपतिने लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा ।

अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै-
रहंयूनां यूनामपहरति धैर्यं जलधरैः ।
स्मराधारा धारा[1]परिचितजडा वान्ति सहसा
नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोगः परिणमेत् ॥ २६ ॥

अयं काल इति । अयं कालः वर्तमानो वर्षासमयः कालप्रमथनगलाभैः कालप्रमथनस्य मृत्युञ्जयस्य गलाभैः कण्ठसमानच्छायैः (सद्यः सम्भृतसलिलतया हरकण्ठवन्नीलवर्णैरित्यर्थः) अभिनवैः नूतनैः (वृष्टिप्राक्कालिकत्वमेव मेघानां नूतनत्वं बोध्यम्) जलधरैः मेघैः अहं यूनाम् तारुण्यगर्वशालिनाम् यूनाम् युवकानां धैर्यम् निर्विकारचित्तत्वम् अपहरति दूरीकरोति, तेषामपि मनस्सु प्रसह्य काम-विक्रियां प्रारभन्त इत्यर्थः । स्मराधाराः कामस्याश्रयभूताः धारापरिचितजडाः

१. 'परिचय' इति पाठान्तरम् ।

वारिकणसम्पर्कशीतलाः नभस्वन्तः वायवः सहसा अतिवेगेन वान्ति चलन्ति, (तदस्यां स्थितौ) वियोगः प्रियाविरहः कथमिव केन प्रकारेण स्वन्तः सुखावसानः परिणमेत् जायेत। मेघे यूनां धैर्यस्य लोपाय बद्धोद्यमे वायौ चातिवेगेन शीतले वाति प्रियाविरहस्य परिणामः सुखावहो नैव भावीति भावः। 'अहंयुः स्यादहङ्कारी' 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' इत्युभयत्रामरः। छेकानुप्रासालङ्कारः॥२६॥

यह वर्षा समय महादेवके कण्ठके सदृश श्यामवर्ण नये मेघोंसे तारुण्याभिमानशाली युवकोंके धैर्यका अपहरण करता है और कामके आधारभूत जलबिन्दु शीतल वायु वेगसे बह रही है, भला ऐसे समयमें प्रियाका वियोग स्वन्त–सुपरिणाम–कैसे हो सकेगा ? ॥२६॥

महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मनो
मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते।
पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां
नरेषु वनितासु वा दधति हन्त के का इति॥ २७॥

महासमरेति। प्रतिदिशं सर्वासु दिशासु मनोजन्मनः कामदेवस्य महासमरसूचकः महतो रणस्य ज्ञापकः मयूरगलकाहलीकलकलः मयूराणां नीलकण्ठानां गला एव काहल्यो वाद्यभेदास्तेषां कलकलः ध्वनिः समुज्जृम्भते प्रकटीभवति, मयूरकण्ठनिःसृतः शब्दो मन्मथस्य सर्वासु दिशासु प्रवर्त्तमानं रणं ज्ञापयन्नुद्भवतीत्यर्थः। ननु कथं ज्ञायते मयूरशब्दानां कामरणख्यापकतेति चेत्तत्राह—पयोदेति। पयोदमलिने मेघश्यामले दिने नरेषु पुरुषेषु के परुषविप्रयोगव्यथां कठोरां वियोगपीडाम् वनितासु स्त्रीषु वा काः परुषविप्रयोगव्यथाम् दुःसहां वियोगवेदनां दधति धारयन्ति। मयूराणां वाणी केकापदाभिलप्या, 'केका वाणी मयूरस्य' इति स्मरणात्, तदेकं केकापदं द्विधा विभज्य प्रश्नार्थकपरतया योजयित्वा चोत्प्रेक्षेयं प्रवृत्ता। 'वाद्यभाण्डविशेषे तु काहलिः काहलः कलः' इत्यमरः। पृथ्वीवृत्तम्, लक्षणमन्यत्रोक्तम्॥

प्रत्येक दिशामें कामदेवके युद्धकी सूचना देनेवाला यह मयूरके कण्ठरूप काहलि नामक वाद्यका शब्द सुना जारहा है, वह 'केका' शब्द क्या है मानो वरसात पूछ रही है, पुरुषों में 'के' कौन कठोर विरहयातना भुगत रहे हैं और औरतोंमें 'का' कौन कठोर विरहवेदना पा रही है। ('केका' शब्दको दो भागोंमें बाँटकर यह उत्प्रेक्षा खड़ी की गई है)॥ २७॥

अम्भोधरोदरविनिर्गतवारिधारा-
सम्मर्दमांसलसमीरसमीर्यमाणैः।
आमोदवीचिनिचयैः कुटजप्रसूनै-
राकाशमेतदवकाशविहीनमासीत्॥ २८॥

अम्भोधरोदरेति। अम्भोधरोदरेभ्यः मेघमालाऽन्तरालेभ्यः निर्गताः बहिर्भूताः याः वारिधाराः जलधारास्तासां सम्मर्देन सातिशयसंयोगेन (अभिव्याप्त्या) मांसलः बलवान् (अत्यर्थोद्वेगजनकः वारिपूर्णतयाऽधिकवेगेन पतनशीलत्वाच्च प्लावितस्थलः) यः समीरो वायुस्तेन समीर्यमाणैः कम्प्यमानैः आमोदवीचिनिचयैः सुगन्धपूर्णैः कुटजप्रसूनैः गिरिमल्लिकाकुसुमैः एतत् आकाशम् अवकाशविहीनम् निरन्तरव्याप्तमासीत् अभवत्। मेघनिर्गतवारिकणसम्पर्कप्रबलवायुकम्पितैः (आमोदानां सुगन्धानां वीचिस्तरङ्गस्तन्निचयः तत्समूहो यत्र तादृशैः) कुटजप्रसूनैराकाशं व्याप्तमित्यर्थः। 'बलवान् मांसलो मतः' इत्यमरः॥ २८॥

मेघके गर्भसे निकली हुई जलधारासे सम्पर्क होनेके कारण प्रबल वायुद्वारा कम्पित एवं सुगन्धकी तरङ्गोंसे पूर्ण कुटजपुष्पोंसे आकाश खचाखच भर गया॥ २८॥

घनश्यामलपत्रस्य व्योमन्यग्रोधशाखिनः।
प्ररोहा इव लक्ष्यन्ते वारिधारा धरां गताः॥ २९॥

घनश्यामलेति। घनाः मेघाः एव श्यामलानि कृष्णवर्णानि पत्राणि दलानि यस्य तथोक्तस्य व्योमन्यग्रोधशाखिनः आकाशरूपवटवृक्षस्य—धरां गताः जलभावेन धरणीं स्पृशन्त्यः वारिधाराः पयोधरच्युताः जलधाराः—प्ररोहा इव जटा इव लक्ष्यन्ते प्रतीयन्ते। वटतरोः समन्तात्तज्जटा लम्बमाना धरां स्पृशन्ति, तथैवाकाशात्पतन्त्यो वारिधारा जटाकारा धरां स्पृशन्ति, तथा चाकाशतरोर्जटा एवामूर्जलधारा इति प्रत्ययः सुघटः। 'न्यग्रोधो बहुपाद्वटः' इत्यमरः॥ २९॥

मेघसे श्यामवर्ण पत्रोंवाले आकाशरूप वटवृक्षकी पृथ्वीको छूती हुई जलधारा ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो उस आकाशरूपी वटवृक्षकी वरोहें जमीनको चूम रही हैं॥ २९॥

[1]अम्भःपूरसुसंपूर्णास्तटस्थतरुपुष्पिणीः।
नदीः पश्येह सौमित्रे प्रवृद्धाश्च दिने दिने॥ ३०॥

अम्भःपूरेति। अम्भःपूरेण जलप्लवेन सुसंपूर्णाः भृताभ्यन्तरभागाः तटस्थैस्तरुभिः हेतुभिः पुष्पिणीः सुमनोव्याप्ताः पवनपातितपुलिनप्ररूढविटपिच्युतपुष्पव्याप्ता इत्यर्थः, इह प्रावृषि दिने दिने अहरहः प्रवृद्धाश्च अतिसमृद्धाश्च नदीः पश्येति सौमित्रं सम्बोध्य रामेणोक्तम्। वर्षर्तौ पूर्वं पूर्णता ततः प्रवृद्धिश्च क्रमाद् भवति नदीनां तदत्र दृश्यत्वेनाभिहितम्॥ ३०॥

हे लक्ष्मण, पानीसे लबालब भरी हुई एवं तटवर्त्ती वृक्षोंसे गिरते हुए फूलोंसे व्याप्त और दिनानुदिन बढ़ती हुई इन नदियोंको तो देखो॥ ३०॥

---

१. अयं श्लोकः क्वचिन्न विद्यते।

अम्भोधिपाने सलिलेन साकमापीतमौर्वाग्निशिखाकलापम् ।
तप्तोदरा वारिधारा वमन्ति विद्युल्लतोन्मेषमिषेण नूनम् ॥ ३१ ॥

अम्भोधीति । अम्भोधिपाने समुद्रसकाशात् पानीयग्रहणवेलायाम् सलिलेन पीयमानेन जलेन साकम् सह आपीतम् कुक्षौ कृतम् और्वाग्निशिखाकलापम् वाडववह्निज्वालासमुदयम् तप्तोदराः कुक्षिनिक्षिप्तवडवानलशिखाभरेण दह्यमानोदरदेशा अमी वारिधराः मेघाः नूनम् उत्प्रेक्षे विद्युल्लतोन्मेषमिषेण चपलाचमत्कृतिव्याजेन वमन्ति उद्गिरन्ति, कोऽपि जनः पयसि पीयमाने तेन समं यदि किमप्युष्णं वस्तु निगिरेत्तदा तेन वस्तुना तस्योदरं धक्ष्यते, तथादग्धश्चासौ केनाप्युपायेन तदुष्णं वस्तु वमिष्यति, तथैवायं मेघसमुदायः समुद्राज्जलं पिबन् वाडववह्निज्वालाकलापं निगीर्णवांस्तेन दह्यमाने चोदरे विद्युल्लताव्याजेन तमेव शिखाकलापं वमतीति स्फुटोऽर्थः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । 'और्वस्तु वाडवो वडवानलः' इत्यमरः, अत्र वमति पदोपादानात् जुगुप्साऽश्लीलत्वं तु नाशङ्कनीयं, वमतेरत्र निरसनार्थे लाक्षणिकतया चमत्काराधायकत्वात्, तदुक्तं दण्डिना—'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते ॥ ३१ ॥

समुद्रसे जल लेते समय जिस वाडवानलकी शिखाराशिको मेघोंने उदरस्थ कर लिया था वह शिखाराशि जब उनकी पेटमें दाह उत्पन्न करने लगी है तब वह मेघ उस शिखाराशिको विद्युत् के प्रकाशके बहाने उगल रहे हैं ॥ ३१ ॥

इत्थं प्रवृत्तेषु घनदिनेषु दाशरथिना कथमपि नीतेषु तदाकार[1]कान्तिं गमितमिव शनैःशनैर्मेघमण्डलं पाण्डुरमभूत् ।

इत्थमिति । इत्थम् अनेन प्रकारेण प्रवृत्तेषु प्रक्रान्तेषु घनदिनेषु वर्षादिवसेषु दाशरथिना रामेण कथमपि महता कष्टेन नीतेषु यापितेषु तदाकारकान्तिम् रामरूपच्छविम् गमितम् रामस्वरूपसादृश्यम् गमितम् प्रापितम् इव नभस्तलम् व्योम पाण्डुरम् पाण्डुवर्णम् अभवत् । शरदागमेन आकाशं पाण्डुरमजायत, मन्ये विरहपाण्डुरस्य रामरूपस्यानुकरोतीवाकाशमिति तात्पर्यम् ।

इस तरह बरसातके दिनोंको रामने किसी प्रकार व्यतीत किया, धीरे धीरे मेघमण्डल पाण्डुवर्ण होने लगा, मानों मेघमण्डलको भी रामकी पाण्डुरता स्वीकार करा दी गई हो।

तस्य [2]चापव्यापारवेलायां न संनिधातव्यमित्यन्त[3]रिक्षादन्तर्हितं किल पाकशासनशरासनम् ।

---

१. 'कान्तिविजितमिव' इति पाठान्तरम् । २. 'चापस्य' इति पाठान्तरम् ।
३. 'अन्तरिक्षान्तरात्' इति पाठान्तरम् ।

तस्येति। तस्य भगवतो रामस्य चापव्यापारवेलायाम् शरासनकर्पणावसरे न सन्निधातव्यम् न सन्निधौ स्थातव्यम् इति हेतोः पाकशासनशरासनम् इन्द्रधनुः अन्तरिक्षात् आकाशात् अन्तर्हितम् प्रच्छन्नम् अदृश्यतांगतम्। महति व्यापारवति क्षुद्रस्यावस्थानुमयुक्ततया रामचापव्यापारावसरे समायाते शक्रचापस्य तिरोधानं सञ्जातमित्याशयः।

जब रामके शरासनके चलनेका समय आगया तब हमारा चलना उचित नहीं है ऐसा सोचकर इन्द्रका शरासन (इन्द्रधनुष) आकाशसे अन्तर्हित हो गया।

रघुपतिचापघोषसमयो भवितेति [1]किल
व्युपरतमुद्भटं घनघटाजनितं स्तनितम्।
श्वसितमरुद्भिरस्य[2] विजितः किल शान्तिमगा-
त्परिचितकेतकीकुटजनीपवनः पवनः॥ ३२॥

रघुपतीति। रघुपतिचापघोषसमयः रामधनुष्टंकारकालः भविता भविष्यति इति हेतोः घनघटाजनितम् मेघमालाकृतम् उद्भटम् धीरम् स्तनितम् गर्जितम् व्युपरतम् शान्तम्, अस्य रामस्य श्वसितमरुद्भिः निःश्वासवायुभिः विजितः परिचितकेतकीकुटजनीपवनः केतकीनां कुटजानां गिरिमल्लिकानां नीपानां कदम्बानाञ्च वनानि भ्रान्तवान् पवनः वायुः शान्तिम् अगात् लब्धवान्। मेघानां गर्जितं शान्तमभवन्मन्ये तद्रामस्य चापघोषं भाविनमुत्प्रेक्ष्यैव शान्तमजायत, वर्षाकालावसाने पवनः शान्तोऽभवन्मन्ये विरहजेन रामस्य निःश्वासेन पराजितः सन्नेव शान्तोऽभवत्। वर्षाकाले केतक्यः कुटजाः कदम्बाश्च विकसन्तीति तत्परिचितस्य वायोः सुगन्धपूर्णता व्यञ्जिता। तत्कुटकं नाम वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु तत्कुटकम्'॥ ३२॥

रामजी के धनुष्टंकारका समय आरहा है इसीकारणसे मेघमालाका जोरदार गर्जन थम गया और केतकी, कुटज तथा कदम्ब वनसे परिचय रखनेवाला पवन शान्त हो गया, मानो उसको रामके निःश्वासोंने परास्त कर दिया हो॥ ३२॥

तापोपशान्तिनटनात्कृतलोकहर्षा
वर्षानटी गगनरङ्गतलात्प्रयाता।
अम्भोदवाद्यमचिरेण शशाम सर्वं
निर्वापिताश्च सहसैव तडित्प्रदीपाः॥ ३३॥

---

१. 'भिया व्युपरत' इति पाठान्तरम्। २. 'अत्र' इति पाठान्तरम्।

तापोपशान्तिनटनादिति । वर्षा प्रावृट्काल एव नटी नर्त्तकी तस्याः तापोपशान्तिः ग्रीष्मजनितसन्तापोपशमस्सा एव नटनम् नर्त्तनक्रिया तेन कृतो जनितो लोकानां हर्षः प्रमोदो यया सा तादृशी सती गगनरङ्गतलात् आकाशरूपनृत्यभूमेः प्रयाता गता। सर्वम् समस्तम् अम्भोदवाद्यम् मेघरूपं वीणावेणुमृदङ्गादिवादनयन्त्रम् : शशाम मौनमवाप, सहसैव च हठादेकपदे तडित्प्रदीपाः विद्युत्प्रकाशरूपाः दीपाः निर्वापिताः शान्ताः । वर्षा गता, तया लोकानां तापशमनविधया महान् प्रमोदो जनितः, तदपगमे मेघगर्जितमवसितम् , विद्युतोऽपि शान्ताः, मन्ये वर्षारूपा नर्त्तकी सन्तापशमनरूपेण स्वनृत्येन सर्वान्प्रसाद्य गता, मेघगर्जितं तन्नृत्योपयोगितया प्रयुज्यमानमधुना तदपगमे प्रयोजनाभावाद्विरतमेवं रङ्गशालाप्रकाशस्यानावश्यकतया प्रदीपतयोपयुक्तपूर्वा विद्युतोऽपि निर्वापिता इत्याशयः। रज्यन्तेऽस्मिन्नटा इति रङ्गो नाट्यस्थानम् । 'रङ्गौ तु स्थानरागौ च' इति वैजयन्ती। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

वर्षारूपा नर्त्तकी अपने तापोपशमनरूप नृत्यसे समस्त संसारको खुश करके आकाशरूप रङ्गस्थलसे चली गई, उसके चले जाने पर मेघरूप वाद्य बन्द हो गया और तुरत ही बिजलीस्वरूप प्रदीप बून गये ॥ ३३ ॥

क्रमेण वाहिनीजातं सकलं भाविनीं वानरवाहिनीपूर्तिमसहमानमिव तनिमानमभजत ।

क्रमेणेति। क्रमेण एकैकशः सकलं समस्तम् वाहिनीजातम् नदीसमूहः वानरवाहिनी कपिसेना तस्याः पूर्त्तिम् समग्रताम् असहमानम् असृष्यमाणम् इव तनिमानम् कृशताम् अभजत प्राप्तम् । सर्वोऽपि परोदयात् खेदमनुभवन् परोदये कार्श्यमुपैति विशेषतः सति साजात्ये, वाहिनीजातं (नदीसमूहः) वाहिनीत्वसाजात्यात् वानरवाहिन्याभाविन्यां समृद्धावक्षमीव सत् क्रमशः कृशत्वमापदिति भावः। 'सेनानद्योश्च वाहिनी' इत्यमरः।

धीरे धीरे सभी नदियाँ दुबली (रिक्त) होने लगीं, मानो उनसे भाविनी वानरसेना की समृद्धि सही नहीं जायगी। वाहिनी–नदी–वाहिनी–सेनाकी भाविनी समृद्धिसे जलती सी दुबली होती गई।

[1]तथा दुर्दिनापाये लङ्कायामपि राजहंसनिःशङ्कसंचारो [2]भविष्यतीति मत्वा किल भूम्यामपि समजनि राजहंसनिःशङ्कसंचारः ।

तथेति। तथा किञ्च दुर्दिनापाये वर्षर्तुकृतमेघाच्छन्ननभस्वरूपदिनदोषव्युपरमे (भाग्योदये च) लङ्कायाम् अपि राजहंसनिश्शङ्कसञ्चारः राजहंसयोः रघुवंशावतं-

१. 'तथा' इति नास्ति क्वचित्, 'तदा' इति पा० । २. 'संभविष्यति' इति पाठान्तरम्।

सतया राजसु श्रेष्ठयोः रामलक्ष्मणयोः निःशङ्कसञ्चारः निर्भयभ्रमणम्, भविष्यति इति मत्वा सम्भाव्य भूम्याम् अपि राजहंसानां पक्षिभेदानां निःशङ्कसञ्चारः निर्भयभ्रमणं समजनि अजायत। शरदि हंसाः सञ्चरन्ति तत्र सुदिने वर्षर्तुसमाप्तौ च लङ्कायां भाविनो रामलक्ष्मणयोः सञ्चारस्य सूचनमेवोद्देश्यमित्युत्प्रेक्षाभावार्थः।

दुर्दिन–मेघाच्छन्न–दिनके बीत जाने पर लङ्कामें भी राजहंस–राजशेखर–राम और लक्ष्मणका निर्भयभ्रमण होगा ऐसा सोचकर (बरसातके बाद) पृथ्वीपर भी राजहंस पक्षीगण निर्भय भ्रमण करने लगे।

एवं प्रोषितायामपि प्रोषितजनशेमुषीमुषि प्रावृषि।

एवमिति। एवम् अनेन प्रकारेण प्रोषितानाम् प्रवासिनाम् (विरहिणाम्) जनानां लोकानां शेमुषीम् बुद्धिं मुष्णाति हरति या तस्यां वियोगिजनचैतन्यलोपिन्यां प्रावृषि वर्षाकाले प्रोषितायाम् गतायाम् व्यतीतायाम् अपि। 'धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः इत्यमरः।

इस तरह प्रवासी लोगोंके ज्ञानको हरने वाली बरसातके बीत जाने पर भी।

कामक्षिप्तपृषत्कभिन्नहृदयच्छिद्रप्रणालीगल-
न्मैत्रीसारलघौ [1]प्रतिश्रवभरं निर्वोढुमप्यक्षमे।
सुग्रीवे [2]चिरसंस्थितां शमयितुं रागान्धतां तादृशीं
किष्किन्धां द्रुतमाप कोपकलुषो रामाज्ञया लक्ष्मणः॥ ३४॥

कामक्षिप्तेति। कामेन कन्दर्पेण क्षिप्तैः प्रहृतैः पृषत्कैः बाणैर्भिन्नं विदीर्णं यद्धृदयं चेतः तत्र यत् छिद्रं बाणकृतं रन्ध्रम् एव प्रणाली जलनिर्गममार्गस्ततः निर्गलन् निर्गच्छन् यो मैत्रीसारः सख्यरूपस्थिरांशा यस्य तस्मिन् कामप्रहृतबाणभिन्नहृदयतया चित्तापगतसख्यस्मरण इत्यर्थः, प्रतिश्रवभरं प्रतिज्ञाभारम् निर्वोढुम् पूरयितुम् अपि अक्षमेऽसमर्थे सुग्रीवे सति, चिरसंस्थितां चिरानुवर्तिनीम् तादृशीम् (सख्यसंबन्धमपि विस्मारितवतीम्) रागान्धताम् कामपरायणताम् शमयितुम् अपसारयितुम् कोपकलुषः सुग्रीवस्यालस्येन कुपितः लक्ष्मणः, रामाज्ञया रामस्यादेशेन द्रुतम् शीघ्रम् किष्किन्धाम् आप प्रापत्। कामबाणभिन्नहृदयगलितप्रतिज्ञापयसि सुग्रीवे प्रतिज्ञातं सख्यानुरूपं सीतान्वेषणकार्यं विस्मृतवति सति तस्य चिरवर्धमानां रागान्धतां दूरीकर्तुं कुपितो लक्ष्मणः रामाज्ञया किष्किन्धां गतवानित्याशयः। 'प्रणाली पयसः पद्व्याम्' 'अङ्गीकाराभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः' इत्यमरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ३४॥

१. 'प्रतिश्रुतगिरम्' इति पाठान्तरम्। २. 'संश्रिताम्' इति पाठान्तरम्।

कन्दर्प द्वारा प्रहृत वाणोंसे सुग्रीवका हृदय चलनी बन गया था और उन छिद्रोंकी राहसे मित्रतारूप पानी निकल गया था, वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेमें असमर्थ हो रहा था, तब सुग्रीवकी चिरस्थित रागान्धताको दूर करनेके लिये कुपित लक्ष्मण श्रीरामके आदेशसे किष्किन्धा पहुँचे ॥ ३४ ॥

[1]ततः सौमित्रि[2]रतिरुष्टः प्रविष्ट इत्यङ्गदेन विज्ञापितोऽप्यनङ्गसंगर-संगतपरिश्रमादजातजागरः सुग्रीवस्तद्दर्शन[3]त्राससंचलितसकलप्लवंगबल[4]-किलकिलायितेन प्रबुद्धः सचिवयोः प्लक्षप्रभावनाम्नोः प्रभावेण प्रकृतिं प्रपेदे ।

तत इति । ततः लक्ष्मणस्य किष्किन्धाप्रवेशानन्तरम् , अतिरुष्टः अत्यन्तकुपितः सौमित्रिः लक्ष्मणः प्रविष्टः किष्किन्धामागतः, इति उक्तप्रकारेण अङ्गदेन वालिनन्दनेन विज्ञापितः सूचितः अपि अनङ्गसङ्गरः कामक्रीडायुद्धम् तत्र सङ्गतः लब्धो यः परिश्रमः कायखेदः तस्मात् अजातजागरः अनुत्पन्ननिद्राक्षयः अप्रबुद्धः सुग्रीवः तद्दर्शनत्रासेन लक्ष्मणावलोकनजनितभयेन सञ्चलिताः विद्रुताः ये सकलप्लवङ्गाः समस्तवानराः तेषां किलकिलायितेन शब्देन प्रबुद्धः जातजागरः सचिवयोः स्वमन्त्रिणोः प्लक्षप्रभावनाम्नोः तदभिधानयोः प्रभावेण भयनिवर्त्तकसान्त्वनवचनप्रयोगेण प्रकृतिं स्वास्थ्यं प्रपेदे प्राप्तवान् । यदा लक्ष्मणः किष्किन्धामायातस्तदा तदागमनं सुग्रीवाङ्गदोऽसूचयत्परं रतिश्रमालसस्य तस्य निद्रा नाच्यवत, परतो लक्ष्मणदर्शनत्रासवशात्किलकिलाशब्दं कुर्वतां कपीनां तैः शब्दैः प्रबुद्धः सुग्रीवो भीतो जातः, परं प्लक्षप्रभावनामानौ तन्मन्त्रिणौ तं प्रकृतिं प्रापयतामित्यर्थः । 'श्रमः खेदोऽध्वरत्यादेः' इति ।

इसके बाद अङ्गदने सुग्रीवसे जाकर कहा कि कुपित लक्ष्मणजी पधारे हैं, परन्तु सुग्रीव सुरतश्रमसे इतना थका हुआ था कि उनकी नींद नहीं खुली, जब पीछे लक्ष्मणको आते देखकर वानरगण डरकर किलकिला शब्द करने लगे तब सुग्रीवकी नींद टूटी और प्लक्ष तथा प्रभाव नामक मन्त्रियोंने सान्त्वना देकर उसे प्रकृतिस्थ किया ।

[5]तस्मिन्सुग्रीवे राघवरोषस्य कारणं निरूपयति सति [6]सद्य एव मुखरित[7]हरिन्मुखोऽभू[8]ल्लक्ष्मणस्य ज्याघोषः ।

---

१. 'तत्र' इति पाठान्तरम् ।
२. 'अतीव रुष्टः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'जातत्राससंकुलित' इति पाठान्तरम् ।
४. 'कुल' इति पाठान्तरम् ।
५. 'ततस्तस्मिन्' इति पाठान्तरम् ।
६. 'सद्य एव' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'दिङ्मुखः' इति पाठान्तरम् ।
८. 'लक्ष्मणज्याघोषः' इति पाठान्तरम् ।

तस्मिन्निति । तस्मिन् मन्त्रिसान्त्वनया प्रकृतिं प्रपन्ने सुग्रीवे राघवरोषस्य कारणं निरूपयति किमिति राघवः कुपितः स्यादिति विचारयति सति सद्यः तत्क्षणम् एव मुखरितहरिन्मुखः वाचालीकृतसकलदिगन्तरः सर्वान् दिगवकाशान् पूरयन् लक्ष्मणस्य ज्याघोषः धनुष्टङ्कारः अभूत् । यावत्सुग्रीवो रामकोपकारणं विभावयत्येव तावल्लक्ष्मणो धनुरास्फाल्य तच्छब्देन दिशोऽपूरयदित्यर्थः ।

जब तक सुग्रीव रामके कोपके कारणका अनुसन्धान ही कर रहा था, तब तक हठात् दिशाओंके अन्तरालको मुखरित करता हुआ लक्ष्मणका धनुष्टंकार हो उठा ।

तत्रासनं द्रुतमपास्य पतिः कपीनां
तत्रास नम्रवदनो घनचापघोषात् ।
संतोष[1]मोक्षमिव भूरि भजन्भुजंगः
संतापनाशपिशुनात्तरुणाभ्रघोषात् ॥ ३५ ॥

तत्रासनमिति । तत्र तस्मिन् लक्ष्मणधनुष्टङ्कारकाले सन्तापनाशपिशुनात् ग्रीष्मर्तुकृततापावसानसूचकात् तरुणाभ्रघोषात् नवमेघशब्दात् सन्तोषमोक्षम् आनन्दविघातं भूरि अत्यर्थं भजन् आसादयन् भुजङ्गः सर्पं इव घनचापघोषात् लक्ष्मणधनुष्टङ्कारात् सन्तोषमोक्षं स्वानन्दावसानं भूरि साकल्येन भजन् आप्नुवन् कपीनां पतिः वानरराजः सुग्रीवः द्रुतम् शीघ्रम् आसनम् अपास्य त्यक्त्वा नम्रवदनो नतमुखः तत्रास भयं प्राप । अयमाशयः—यथा नवमेघशब्दे जायमाने मयूरनृत्यसम्भावनया मयूराणां च स्वघातकतया सर्पा आनन्दं विहाय त्रासमनुभवन्ति । तथा लक्ष्मणचापघोषात् स्वानन्दावसानमुत्प्रेक्षमाणः सुग्रीवो नम्रमुखसन्नासनादुत्थाय भयमवापेति । 'सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गः' 'नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्' इत्युभयत्राप्यमरः । उपमात्रालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मकृत सन्तापके अवसानकी सूचना देनेवाले नवमेघके शब्दसे आनन्दविघातको पूर्णरूपसे पानेवाला सर्प जैसे भयभीत हो उठता है उसी तरह आनन्दविघातका अनुभव करनेवाला वानरराज सुग्रीव लक्ष्मणके कठोर चापकी आवाजको सुनते ही आसन छोड़कर नतमुख हो भयभीत हो उठा ॥ ३५ ॥

[2]तत्र प्रतिश्रुत[3]कार्यप्रोत्साहनाय [4]कुपितेन भ्राता [5]प्रेषित इति मारुतिना धार्यमाणधैर्यः सुग्रीवः सौमित्रिं सान्त्वयितुं तारां प्रेषितवान् ।

---

१. 'पोषम्' इति पाठान्तरम् । २. 'ततः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'कार्यस्य' इति पाठान्तरम् । ४. 'प्रणयकुपितेन' इति पाठान्तरम् ।
५. 'प्रेषित एष इति' इति पाठान्तरम् ।

नत्रेति । तत्र तस्मिन् समये प्रतिश्रुतस्य प्रतिज्ञातस्य सीतान्वेषणरूपस्य कार्यस्य प्रोत्साहनाय प्रवर्त्तनाय कुपितेन त्वया कृते विलम्बे रुष्टेन रामेण भ्राता लक्ष्मणः प्रेषितः त्वदन्तिके प्रहित इति एभिः शब्दैः मारुतिना हनूमता धार्यमाण-धर्यः धीरतांगमितः स्थैर्यं लम्भितः सुग्रीवः सौमित्रिं लक्ष्मणं सान्त्वयितुं कोपदूरी-करणविधया प्रकृतौ प्रत्यवस्थापयितुम् तारां नाम पूर्वं वालिनः सम्प्रति स्वस्य स्त्रियं प्रेषितवान् ।

उस समय सुग्रीवको हनूमान्ने कहा कि आपने रामके साथ, जो सीतान्वेषणकी प्रतिज्ञा की थी, उसीके लिये प्रोत्साहन देनेके वास्ते आपके द्वारा किये गये विलम्बसे क्रुद्ध होकर रामने अपने भाईको आपके पास भेजा है, हनूमान्की इस उक्तिसे सुग्रीवको कुछ तसल्ली हुई और उसने लक्ष्मणको सान्त्वना प्रदान करनेके वास्ते ताराको भेजा ।

द्रग्वारुणीभजननिह्नुतराजतेजो
निष्क्रान्ततारमुपशान्ततमोविकारम् ।
पूर्वाशया विशति सत्पथभाजि मित्रे
सत्यं निशान्तसमयस्य निशान्तमासीत् ॥ ३६ ॥

द्रागिति । द्राक् झटिति वारुणी सुरा तस्याः भजनेन सेवनेन निह्नुतम् अन्तर्हि-तम् राज्ञः सुग्रीवस्य तेजः प्रतापो यत्रेति निशान्त (गृह) पक्षे, निशान्त (प्रभात) पक्षे च वारुण्याः वरुणस्वामिकायाः प्रतीच्या दिशः भजनेन सेवनेन प्राप्त्या निह्नु-तम् अन्तर्हितं राज्ञः चन्द्रमसः तेजः कान्तिर्यत्र तथोक्तमित्यर्थः, निष्क्रान्ता लक्ष्मणसान्त्वनाय गता तारा यस्मात्तन्निष्क्रान्ततारम् इति गृहपक्षे, निष्क्रान्ताः अस्तंगताः ताराः नक्षत्राणि यत्र तत्तादृशमिति प्रभातपक्षे, उपशान्ततमोविकारम् समाप्ततमोगुणविकाररूपमोहम् इति गृहपक्षे, प्रभातपक्षे तु तमसः शान्तत्वं स्फुट-मेवार्थः । सत्पथभाजि उचितमार्गे व्योम्नि चरति तच्छीले व्योमचारिणि मित्रे सूर्ये पूर्वाशया पूर्वदिशाक्रमेण विशति नभोमध्यमागच्छति सति पूर्वाशया पूर्व-प्रतिज्ञातसीतान्वेषणरूपार्थकामनया सत्पथभाजि सदाचारपालनपरे मित्रे कृत-सख्यबन्धे लक्ष्मणरूपे सुहृदि विशति किष्किन्धावर्त्तिसुग्रीवभवनमागच्छति सति च सत्यं निशान्तं सुग्रीवभवनं निशान्तसमयस्य प्रातःकालस्य (सदृशम्) आसीत् इत्यर्थः । अयमाशयः—यथा प्रातःकालिकं व्योम पूर्वदिशाक्रमेण सूर्ये समागच्छति सति पश्चिमदिशा प्राप्त्याऽस्तमितचन्द्रप्रकाशं निर्गततारागणं शान्तान्धकारं च जा-यते तथा सुग्रीवभवनं पूर्वप्रतिज्ञातसीतान्वेषणरूपकार्याय सदाचारपरायणलक्ष्मणे समुपागच्छति सति मद्यपायिसुग्रीवसम्बन्धिप्रतापास्तंगमनविशिष्टं, निर्गततारा-रूपवनितं समुत्सन्नमोहप्रचारं चाजायतेति । निशान्तस्य रात्र्यवसानस्य निशान्तेन गृहेण तुलनात्र विवक्षिता सा च विशेषणश्लेषेण साधु निर्व्यूढा । 'राजा प्रभौ नृपे

चन्द्रे' 'सुरा प्रत्यक्च वारुणी' 'निशान्तं गृहशान्तयोः' 'मित्रं सुहृदि मित्रोऽर्कः' इति सर्वत्र नानार्थरत्नावलिः। श्लिष्टविशेषणेयमुपमा ॥ ३६ ॥

वारुणी–प्रतीची दिशाके सेवनेसे राजा चन्द्रमाका तेज अस्त हो गया, मद्यके सेवनसे राजा सुग्रीवका प्रताप घट गया, तारागण भाग गये, तारा लक्ष्मणको समझाने बाहर चली गई, तमोविकार समाप्त हुआ, तमोगुणकार्य–मोह समाप्त हुआ, सत्पथ–व्योमविहारी सूर्यके पूर्वमें आनेसे, सदाचारी लक्ष्मणरूप मित्रके पूर्व प्रतिज्ञात सीतान्वेषणरूप कार्यकी आशा लेकर आनेसे सुग्रीवका निशान्तभवन वस्तुतः निशान्त–रात्र्यवसानके समान हो गया ॥ ३६ ॥

सा तु रामा रामानुजमासाद्य [1]चैवमवोचत।

सा त्विति। सा तु रामा सुन्दरी तारा रामानुजम् लक्ष्मणम् आसाद्य उपसृत्य च एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण अवोचत उक्तवती, लक्ष्मणमिति शेषः। 'सुन्दरी रमणी रामा' इत्यमरः।

वह सुन्दरी तारा लक्ष्मणके पास पहुँची और उसने लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा।

प्राचीनं व्यसनं सुरेन्द्रतनयाज्जातं वने भ्राम्यतः
सुग्रीवस्य निराकृतं खररिपोर्बाणेन सालच्छिदा।
अद्यास्य व्यसनं तु पञ्चविशिखादासीदुपेन्द्रात्मजा-
त्सौमित्रे ! तदपि प्रशान्तमभवज्ज्याघोषमात्रेण ते॥ ३७॥

प्राचीनमिति। वने कानने भ्राम्यतः अनवस्थितभावेन सञ्चरतः सुग्रीवस्य प्राचीनं प्राक्तनं सुरेन्द्रतनयात् इन्द्रपुत्रात् वालिनः जातं व्यसनम् कष्टम् (दारहरणग्रामनिर्वासनादिकम्) सालच्छिदा सप्तसालतरुवेधिना खररिपोः खरहन्तुः रामस्य बाणेन एकेन शरेण निराकृतम् (वालिवधविधानद्वारेण) दूरीकृतम्। अद्य अस्य सुग्रीवस्य तु उपेन्द्रात्मजात् विष्णोः पुत्रात् पञ्चविशिखात् कामात् व्यसनम् (कामसक्तिकृतं क्लैब्यरूपं दुराभ्यासात्मकं निरयसाधनं कष्टम्) आसीत्, हे सौमित्रे लक्ष्मण, तदपि सुग्रीवस्याद्यतनं व्यसनम् ते तव ज्याघोषमात्रेण धनुष्टङ्कारमात्रेण प्रशान्तम् अपास्तम् अभवत्। सुग्रीवस्यैकं वालिकृतं कष्टं प्राग्रामेण हृतं द्वितीयं पुनः कामकृतं व्यसनमधुना स्वचापरवेण त्वं निरास्थस्तदुचितमेव, इन्द्रात्मजवालिकृतकष्टस्य ज्येष्ठभ्रात्रा शमितत्वे उपेन्द्ररूपेन्द्रलघुभ्रातुः पुत्रेण कामेनोपपादितस्य कष्टस्य त्वयाऽपासितुं युक्तत्वादिति भावः। त्वदीयचापध्वनिमाकर्णयत एव सुग्रीवस्य कामासक्तिः पलायिता, तदधुनाभवत्कार्यमेवासौ साध-

---

१. 'चैवमवोचत्' इति पाठान्तरम्।

यितुं प्रवर्त्तते, तदलं तस्मिन् कोपेनेति भावः। 'व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे' इत्यमरः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३७ ॥

प्राचीन व्यसन जब वनमें घूमनेवाले सुग्रीवको इन्द्रपुत्र वालीसे उपस्थित हुआ था तब सातसाल वृक्षोंको एक साथ वेधनेवाले खरसंहारी रामके बाणने उस व्यसनको दूर किया था, इस समय पुनः सुग्रीवको कामका व्यसन हो गया था, हे लक्ष्मणजी, आपके धनुष्टङ्कारने उस व्यसनको भी दूर कर दिया ॥ ३७ ॥

तदनन्तरं तारा[1]सान्त्ववचनप्रशान्तकोपेन सौमित्रिणा साकं तपनतनयः सविनयमाश्रित्य दाशरथिं प्राञ्जलिर्व्यजिज्ञपत्।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरम् तारया एतादृशवाक्यकथनानन्तरम् तारायाः सान्त्ववचनैः शमवाक्यैः प्रशान्तः निवृत्तः कोपो यस्य तादृशेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन साकम् सह तपनतनयः सूर्यपुत्रः सुग्रीवः सविनयं नम्रभावेन आश्रित्य सेवायामुपस्थाय दाशरथिं रामं प्राञ्जलिः कृतकरपुटः व्यजिज्ञपत् न्यवेदयत्।

इसके बाद ताराके शान्तिदायक वाक्योंसे शान्तकोप लक्ष्मणके साथ सूर्यपुत्र सुग्रीव रामजीके समीप आया और हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया।

देव! कपिबल[2]मखिलकुलाचलनिलयमनिलतनयेनाहूतं, पुरुहूत इव पुलोमजाप[3]हारिणमनुह्रादं रावणं रणे नि[4]हनिष्यसीति।

देवेति। हे देव स्वामिन् राम, अखिलकुलाचलनिलयम् सर्वेषु महेन्द्रादिकुलपर्वतेषु वसत् कपिबलम् वानरसैन्यम् अनिलतनयेन वायुपुत्रेण आहूतम् आकारितम् (भवत्कार्यकरणाय किष्किन्धायामुपस्थातुमादिष्टम् इत्यर्थः) (अतः सम्प्रति) पुरुहूतः इन्द्र इव पुलोमजापहारिणम् शचीहर्त्तारम् अनुह्रादं तन्नामकमसुरविशेषम् इव रावणं दशमुखं (त्वम्) रणे निहनिष्यसि। यथा शच्याहर्त्तारमनुह्रादं रावणो हतवाँस्तथैव त्वमपि रणे युद्धे रावणं हनिष्यसीति भावः। इन्द्रेणेप्सितां पौलोमीं तत्पितुः पुलोमनाम्नोऽनुमत्याऽनुह्रादो जहार, इन्द्रस्त्वनुमन्तारं पुलोमानं हर्त्तारमनुह्रादं च निहत्य पौलोमीं प्रत्यानीतवानिति पौराणिकी कथाऽत्रानुसन्धेया। 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः।

महाराज, महेन्द्रादि सकल कुलपर्वतोंपर रहनेवाले वानरसैन्यको वायुनन्दनने बुला भेजा है, अब आप शीघ्र ही रावणको युद्धमें मारेंगे, जैसे शचीका अपहरण करनेवाले अनुह्रादको इन्द्रने मारा था।

---

१. 'सान्त्वनप्रशान्त' इति पाठान्तरम्। २. 'अखिलमखिल' इति पाठान्तरम्।
३. 'हारिणं बालाभिधानम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'हनिष्यतीति' इति पाठान्तरम्।

ततः—

ककुभि कुलिशपाणेर्मैथिलीं तां विचेतुं
विनतमथ दिशायां मारुतिं प्रेतभर्तुः।
वरुणदिशि सुषेणं यक्षराजाञ्चितायां
हरिति शतबलिं च प्राहिणोद्वानरेन्द्रः ॥ ३८ ॥

ततः, ककुभीति। ततः तदनन्तरम् वानरेन्द्रः सुग्रीवः ताम् अपहृतां लोकप्रसिद्धचरित्रां च मैथिलीम् सीताम् विचेतुम् अन्वेषयितुम् कुलिशपाणेः वज्रहस्तस्य इन्द्रस्य ककुभि दिशायां विनतम् विनताभिधानं वानरराजम्, अथ प्रेतभर्तुः यमराजस्य दिशायां दक्षिणदिशि मारुतिम् हनूमन्तम्, वरुणदिशि पश्चिमदिशायाम् सुषेणं तदभिधानम् वानरविशेषम्, तथा यक्षराजाञ्चितायाम् कुबेराधिष्ठितायाम् हरिति उत्तरदिशायाम् शतबलिं तदाख्यं वानरं च प्राहिणोत् प्रहितवान। पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिशासु क्रमशो विनतमारुतिसुषेणशतबलिनामकान् वानरान् सुग्रीवः सीतान्वेषणार्थं प्रेषितवानित्यर्थः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३८ ॥

इसके बाद सुग्रीवने सीताके अन्वेषणार्थ इन्द्रकी दिशा-पूर्व दिशामें विनतको, यमराजकी दिशा-दक्षिणमें हनुमान्‌को, वरुणपालिता-पश्चिम दिशामें सुषेणको एवं कुबेर स्वामिक-उत्तर दिशामें शतबलि नामक वानरको भेजा ॥ ३८ ॥

तदनु दिनेषु केषुचिद्गतेषु मासातिपातनासहो नियतमुदग्रदण्डः सुग्रीव इति सत्वरमित[१]रदिगन्तरप्रेषितेषु [२]प्रतिनिवृत्तेषु प्लवङ्गबलेषु पितृपतिहरिति प्रेषिता मारुतिजाम्बवदङ्गदनलनीलप्रभृतयोऽप्यलब्धसीतोपलब्धयस्तनयनाशकुपित[३]कण्डुशापनिःशेषितचराचरम[४]परिचितचारप्रान्तरं कान्तारं [५]क्रान्त्वा कान्तारे कस्मिंश्चिदसुरमेकं निरीक्ष्य रक्षःपतिरिति [६]बुद्ध्वा युद्धसंनद्धा बभूवुः।

तदन्विति। तदनु तत्तद्दिक्षु सुग्रीवेण वानरेषु प्रेषितेषु केषुचित् कतिपयेषु दिनेषु वासरेषु गतेषु व्यतीतेषु मासातिपातनासहः मासातिक्रमणासहिष्णुः ('ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम' इति प्रेषयसमये दीयमानादादेशात् मासमतियाप्य समागच्छति वानरे तीव्रकोपकर्त्ता) नियतम् निश्चयेन उदग्रदण्डः तीव्रशासनधरः सुग्रीवः इति बुद्ध्या सत्वरम् शीघ्रतया इतरदिगन्तप्रेषितेषु दक्षिणाशाति-

---

१. 'इतरेषु' इति पाठान्तरम्।
२. 'निवृत्तेषु' इति पाठान्तरम्।
३. 'कण्व' इति पाठान्तरम्।
४. 'अपरचितचारप्रान्तारम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'तीर्त्वा' इति पाठान्तरम्।
६. 'बुद्ध्या युद्धाय संनद्धाः' इति पाठान्तरम्।

रिक्ताशासु प्रहितेषु प्लवङ्गबलेषु वानरसैन्येषु प्रतिनिवृत्तेषु परावृत्तेषु सत्सु, पितृपतिहरिति यमराजदिशि दक्षिणस्यां प्रेषिताः विसृष्टाः मारुतिः हनूमान् , जाम्बवान् , अङ्गदः, नलः, नीलः, स्वस्वनामख्यातस्तत्प्रभृतयः मारुत्यादयः अपि अलब्धसीतोपलब्धयः अनासादितसीतावृत्तान्ताः, तनयनाशेन पुत्रमृत्युना कुपितस्य क्रुद्धस्य कण्डोः तदाख्यस्य शापेन निःशेषितः समापितः चराचरः समग्रजीवगणो यत्र तादृशम् , अपरिचितः अनभ्यस्तः चारः लोकसञ्चारो यत्र तदपरिचितचारं प्रान्तरं जनशून्यो मार्गो यत्र तद् अपरिचितचारप्रान्तरम् लोकसञ्चाररहितमार्गयुतम् कान्तारम् वनं क्रान्त्वा उल्लङ्घ्य कस्मिंश्चित् क्वचन कान्तारे वने एकम् असुरं निरीक्ष्य विलोक्य असुरपतिः रावणः इति बुद्ध्वा भ्रमं प्रतिपद्य युद्धसन्नद्धास्तेनापरितराक्षसेन सह युद्धरता बभूवुः । मासातिक्रमेऽवधिलङ्घनरूपापराधात्कुपितः कठिनदण्डप्रदः स्यात्सुग्रीव इति ज्ञानेन भिन्नदिशासु प्रेषिता वानराः परावृत्ताः, दक्षिणदिशंगतास्तु मारुत्यादयः पुत्रनाशकुपितेन कण्डुनाम्ना मुनिना लोकप्रचारशून्यमिदं भवत्विति शापितं वनमतिक्रम्य कुत्रचन वने कमप्येकमसुरं रावणोऽयमिति ज्ञात्वा तेन सह युद्धं कर्त्तुं प्रवृत्ता जाता इत्याशयः । कण्डुशापवार्त्ता उक्ता रामायणे यथा 'कण्डुर्नाम महाभागः सत्यवादी तपोधनः। महर्षिः परमामर्षी नियमैर्दुष्प्रधर्षणः ॥ तस्य तस्मिन् वने पुत्रो बालको दशवार्षिकः। प्रणष्टो जीवितान्ताय क्रुद्धस्तत्र महामुनिः ॥ तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम्। अशरण्यं दुराधर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् ॥'

इसके बाद कुछ दिन बीतने पर—मास बीतानेमें अक्षम सुग्रीव हमलोगोंको (यदि हम मास बीताकर जायेंगे, तब) अतिकठोर दण्ड देंगे, ऐसा सोचकर अन्यान्य दिशाओं में भेजे गये वानरसैन्य तो लौट आये, परन्तु यमराजकी दिशा—दक्षिणमें भेजे गये, हनूमान् , जाम्बवान् , अङ्गद, नल, नील प्रभृति सीताकी सुधि नहीं प्राप्त करते हुए पुत्रमृत्युसे कुपित कण्डुमुनिके शापसे जनप्रचारशून्य एकान्त वनको पार करके आगेके किसी वनमें एक असुरको देखा और उसे रावण समझकर उसके साथ लड़नेमें व्यस्त हो गये ।

निशिचरपतिरित्य[1]वेत्य रोषादशनिनिपातनिभेन ताडनेन ।
असुरहितममुं प्रहृत्य दैत्यं सुरहितमेव चकार वालि[2]सूनुः ॥ ३६ ॥

निशिचरपतिरिति । वालिसूनुः अङ्गदः निशिचरपतिः राक्षसराजो रावणोऽयम् इति एवम् अवेत्य ज्ञात्वा (कुत्रचिदन्यराक्षसेऽयं रावण इति भ्रमं प्राप्य) रोषात् सीतापहरणरूपाकार्यकरणजन्यक्रोधात् अशनिनिपातनिभेन वज्रप्रहारसदृशेन ताडनेन मुष्टिघातेन असुरहितम् राक्षसप्रियम् अमुम् दैत्यं प्रहृत्य हत्वा सुरहितम्

---

१. 'अवेक्ष्य:' इति पाठान्तरम् । २. 'पुत्रः' इति पाठान्तरम् ।

देवाभीष्टम् एव चकार, असुरहितं प्रहृत्य सुरहितं चकारेत्यत्रापाततो विरोधप्रतिभासेऽपि न विरोधः, असुरहितं गतप्राणं चकार तच्च सुरहितमित्यर्थोऽपि प्रतीयते। श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासः। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ३९ ॥

वालिपुत्र अङ्गदने उस राक्षसको रावण समझकर वज्रप्रहारतुल्य मुष्टिघातसे मारकर प्राणहीन–असुरहित–बना करके देवप्रिय कार्य–सुरहित–ही किया ॥ ३९ ॥

ततस्तारेयवचनात्तत इतो विचित्य निकटगिरिसानुशयाः सानुशयाः सलिलाशया जलचरपतङ्गपतनोत्पतनानुमीयमानपल्वलो[1]पशयं किमपि [2]कुहरमवगाह्य कञ्चन काञ्चनमयं मयमायानिर्मितं विहित[3]तपोभङ्गायै सुराङ्गनायै हेमायै द्रुहिणेन वितीर्णं मेरुसावर्णिदुहित्रा स्वयंप्रभया कृतावनं वनोद्देशमविशन्।

तत इति। ततः तदनन्तरं तारेयः तारापुत्रोऽङ्गदस्तस्य वचनात् कथनात् प्रयोजकात् तत इतः इतस्ततः विचित्य सीताम् अन्विष्य निकटगिरिसानुशयाः समीपस्थपर्वतशिखरे शयानाः (परिश्रमवशात्समीपस्थपर्वतश्रृङ्गेषु विश्राम्यन्त इत्यर्थः) सानुशयाः पश्चात्तापसहिताः (सीताऽनुपलब्ध्या खिन्नमनस इत्यर्थः) सलिलाशया जललिप्सया जलचरपतङ्गानां हंसकारण्डवादिजलस्थायिपक्षिभेदानाम् पतनोत्पतनैः यातायातैः अनुमीयमानम् तर्कितम् पल्वलं जलाशयस्तस्य उपशयम् आश्रयभूतम् (कुतश्चित् कुहरात् हंसकारण्डवादिपक्षिणां गमनागमनदर्शनेन तत्र जलाशयसद्भावमनुमायेत्यर्थः) किमपि अज्ञातचरम् कुहरम् भूविवरम् अवगाह्य प्रविश्य कञ्चन पूर्वमदृष्टश्रुतम् काञ्चनमयम् सुवर्णनिर्मितम् मयमायानिर्मितम् मयस्य शिल्पिप्रवरस्य मायया विचित्ररचनापाटवेन रचितम्, विहिततपोभङ्गायै (तत्र स्थाने तपस्यतो मयस्य तपोभङ्गं कृतवत्यै) अनुष्ठिततपोविघ्नायै सुराङ्गनायै अप्सरसे हेमायै हेमानाम्ने द्रुहिणेन विधात्रा तन्नृत्यगीतादिकलातुष्टेन वितीर्णं हेमायै प्रदत्तम् मेरुसावर्णिदुहित्रा मेरुसावर्णेः कन्यकया स्वयं प्रभया नाम कृतावनम् रक्ष्यमाणम् वनोद्देशम् वनप्रान्तम् अविशन् प्रविष्टाः। अङ्गदानुरोधेन सीतामितस्ततोऽन्विष्यन्तस्तामनुपलभ्य खिन्ना वानराः समीपस्थितपर्वतशिखरेष्वशेरत, पश्चात्तापं चालभन्त, तस्यामेव स्थितौ विलविवराद्धंसादीनां जलपक्षिणां विनिर्गमं प्रवेशं च दृष्ट्वा तत्र पयः पल्वलसंभावनया जललिप्सया प्राविशन्, तत्र गताश्च ते मयमायया निर्मितं तुष्टेन विधात्रा हेमायै दत्तं स्वयंप्रभया रक्ष्यमाणं वनोद्देशं प्रविष्टा इत्याशयः। 'भवेदनुशयो द्वेषे पश्चात्तापानुबन्धयोः' इति विश्वः।

---

१. 'उपशल्यम्' इति पाठान्तरम्। २. 'विलकुहरम्' इति पाठान्तरम्।

३. 'पिहिताशानभोभागं विहित' इति पाठान्तरम्।

इसके बाद तारापुत्र अङ्गदके वचनसे वानरोंने सीताको इधर उधर ढूँढ़ा, थक जानेपर वह वानरगण समीपस्थ पर्वतकी चोटीपर लेट गये, सीताको नहीं पा सकनेके कारण उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उन वानरोंने पृथ्वीविवरसे जलचरपक्षियोंका आना जाना देखकर अनुमान किया कि इसमें कोई जलाशय होगा, ऐसा अनुमान करके पानीकी इच्छासे वह वानरगण उस भूविवरमें पैठ गये, वहाँ उन वानरोंने मयकी मायासे निर्मित, तपोभङ्ग करनेवाली हेमा नामक अप्सराको ब्रह्माद्वारा प्रदत्त, मेरुसावर्णिकी कन्या स्वयंप्रभाद्वारा सुरक्षित वनमें प्रवेश किया।

ततः कृतातिथ्यायाः स्वयंप्रभायाः प्रभावेण बिलादुत्तीर्णानां समयाति[1]पातादापतिष्यति सुग्रीवदण्ड इति विकृतिमुपेत्य सङ्गतमनोगदेनाङ्गदेन पवनतनयवचन[2]प्रत्ययप्रत्यानीतप्रकृतिना सह प्रायोपवेशमुपेयुषां प्लवङ्गपुङ्गवानां परिदेवनकथा[3]प्रसङ्गे जटायुषो निधनं निशम्य विन्ध्यरन्ध्राद्विहितसंपातः संपातिर्नाम [4]गृध्रस्तानेवमवादीत्।

तत इति। ततः बिले प्रवेशानन्तरम् कृतातिथ्यायाः कृतातिथिसत्कारायाः स्वयंप्रभायास्तदाख्यायाः मेरुसावर्णिपुत्र्याः प्रभावेण सामर्थ्येन तत्प्रदर्शितोपायेन बिलात् तस्माद् भूविवरात् उत्तीर्णानाम् बहिरायातानाम् (एतेन तद्बिलस्य दुरुत्तरं व्यञ्जितम्) समयातिपातात् नियतमासात्मकावध्यतिक्रमात् सुग्रीवदण्डः सुग्रीवकृतो वधताडनादिपराभवः आपतिष्यति आगमिष्यति इति हेतोः सङ्गतमनोगदेन उत्पन्नमानसव्यथेन पवनतनयो हनूमान् तस्य वचने वाक्ये यः प्रत्ययो विश्वासः तेन प्रत्यानीता पुनरासादिता प्रकृतिः स्वास्थ्यं येन तादृशेन हनूमद्वाक्यतः सीतान्वेषणस्य साध्यतामवसाय सञ्जातस्वास्थ्येन अङ्गदेन वालिपुत्रेण प्रायोपवेशम्—दक्षिणाग्रेषु कुशेषु भूमौ मरणार्थं सङ्कल्प्योपवेशनम् उपेयुषां प्राप्तानाम् प्लवङ्गपुङ्गवानां वानरश्रेष्ठानां परिदेवनकथाप्रसङ्गे विलापवार्त्तायाम् जटायुषः तन्नामकस्य स्वकनिष्ठभ्रातुः निधनं मरणं निशम्य श्रुत्वा विन्ध्यारन्ध्रात् विन्ध्यपर्वतकन्दरात् विहितसञ्जातः कृतनिर्गमः सम्पातिर्नामगृध्रः तान् प्रायोपवेशनमास्थितान् वानरान् एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत् अवोचत्। अतिथिसत्कारं कृत्वा स्वयंप्रभातान् वानरान् तस्माद्बिलात् बहिर्गन्तुं मार्गमाख्यातवती, तेन मार्गे गते बहिरायाताः, मासातिक्रमे सुग्रीवोऽस्मासु परुषं दण्डं प्रयोक्ष्यत इति मनोव्यथामनुभवता हनूमतो दृढसङ्कल्पश्रवणादीपदासादिस्वास्थ्येन वालिपुत्रेणाङ्गदेन सह सर्वेऽपि ते वानरा मर्त्तुं कृतनिश्चया भूमावशेरत, तथा स्थिताश्च ते विलापप्रसङ्गेन जटायुषो

---

१. 'पातेन पतिष्यति' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रत्ययानीत' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्रसङ्गेन' इति पाठान्तरम्। ४. 'गृध्रराजः' इति पाठान्तरम्।

मरणमाख्यातवन्तस्तच्छ्रवणाच्च ज्ञातभ्रातृमरणः सम्पातिर्नामगृध्रस्तान् वानरान् एवमुक्तवानिति भावार्थः।

अतिथिसत्कार करनेके बाद स्वयंप्रभाने अपने प्रभावसे उन वानरोंको बिलसे बाहर कर दिया, बाहर आनेपर अङ्गदको चिन्ता हुई कि यदि महीना बीत गया और हमने सीताकी खोज नहीं की तो सुग्रीव हमें कड़ा दण्ड देंगे. इस चिन्तासे मनोव्यथायुक्त तथा हनूमान्के वचनपर विश्वास होनेके कारण प्रकृतिस्थ अङ्गदके साथ सभी वानर मरनेके लिये जमीनपर बैठ गये, उनके विलापप्रसङ्गमें जटायुके मरनेकी बात सुनकर विन्ध्याचलकी कन्दरासे सम्पाति नामक गृध्र निकला और वानरोंसे इस प्रकार कहा।

के यूय[1]मक्षतबलेऽप्यभिधाय पापं
वत्से जटायुषि मम श्रवसी दहन्तः।
तस्मात्पुरा किरणदाहितपक्षयुग्मं
तिग्मांशुमुष्णवचसा शिशिरीकुरुध्वे॥ ४०॥

के यूयमिति। अक्षतबले अक्षुण्णपराक्रमे सपि वत्से मदनुजे जटायुषि तन्नामके पापम् अशुभम् अभिधाय (मृतो जटायुरित्युदीर्य) मम सम्पातेः श्रवसी कर्णौ दहन्तः सन्तापयन्तः (अशुभवार्त्तानिवेदनस्य कर्णदाहरूपत्वमत्यर्थोद्वेगजनकत्वात्) तस्मात् अशुभनिवेदनेन कर्णदाहजननात् हेतोः के यूयं किरणदाहितपक्षयुग्मं स्वकर दग्धमत्पक्षद्वयम् तिग्मांशुम् सूर्यम् (यूयम् स्वेनानेन जटायुर्मरणनिवेदनात्मना) उष्णवचसा कठोरवचनेन शिशिरीकुरुध्वे शीतलीकुरुथ। सूर्यकिरणात्पुरा मम पक्षौ दग्धवतोऽपि विशिष्यतेऽधुना जटायुर्निधननिवेदकभवद्वचनपारुष्यमिति भावः। पूरा मम पक्षौ दहन् सूर्यो मां यावत्सन्तापितवाँस्ततोऽधिकं सन्तापयति भवद्वचनं जटायुषो मरणमावेद्येति तात्पर्यम्। 'श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः। अत्र तिग्मांशोः शिशिरीकरणासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ४०॥

जटायुके अक्षुण्णपराक्रम रहने पर भी उसकी मृत्युकी बात सुनाकर हमारे कानोंको जलानेवाले आपलोग कौन हैं? आपकी बातें तो हमारे पांखोंको जलानेवाले सूर्यको भी अपनी सन्तापप्रदतासे शीतल बना रही हैं। आपकी बातोंकी सन्तापप्रदता-सूर्यकी सन्ताप-प्रदताका अतिक्रमण कर रही है, उसके सामने सूर्य शीतल प्रतीत हो रहे हैं॥ ४०॥

ततस्तैः [2]प्रस्तावितप्रवृत्तिः संपातिः प्रोषितायुषे जटायुषे निवापाञ्जलिं निर्वर्त्य पुरा कदाचिदामिषान्वेषणाय [3]प्रेषितेन सुपार्श्वनाम्ना समागत्य

१. 'अक्षयबले' इति पा०। २. 'प्रस्थापितवृत्तान्तः' 'प्रस्तावितवृत्तान्तः' इति च पा०।
३. 'प्रेषितेन निजसुतेन' इति पाठान्तरम्।

महेन्द्रमहीध्ररन्ध्रविनिर्गतदशवदननीयमानजानकीपरिदेवनं जानानः सूक्ष्मचक्षुः पुनरेवमवोचत् ।

तत इति । ततः तदनन्तरम् तैः वानरैः प्रस्तावितप्रवृत्तिः आदितोऽन्तं यावत् कथितस्वभ्रमणवृत्तान्तः सम्पातिः प्रोषितायुषे गतजीविताय जटायुषे तन्नामकाय स्वभ्रात्रे निवापाञ्जलिम् जलाञ्जलिं मरणोत्तरकालदेयं निर्वर्त्य सम्पाद्य दत्त्वेत्यर्थः, पुरा कदाचित् कदाचन पूर्वकाले आमिषान्वेषणाय गृध्रभक्ष्यमांसाद्याकलनाय प्रेषितेन प्रहितेन सुपार्श्वनाम्ना स्वसुतेन समाम्नातम् सत्यभावेन कथितम् महेन्द्रनामको यो महीध्रः पर्वतः कुलपर्वतान्यतमस्तस्य रन्ध्रात् छिद्रात् निर्गतं यत् दशवदननीयमानायाः रावणेनापह्रियमाणायाः जानक्याः सीतायाः परिदेवनं विलापम् जानानः अवगच्छन् सूक्ष्मचक्षुः सूक्ष्मदृष्टिः (पूर्वोत्तरानुसन्धानकुशलः) सम्पातिः पुनः भूयः एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेणावोचत् उक्तवान् । सम्पातिर्यदा वानरेभ्यः सन्तापकृतोपालम्भं दत्तवाँस्तदा वानरास्तस्मै सम्पूर्णं स्वभ्रमणवृत्तमामूलचूलमुदीरितवन्तस्ततः सम्पातिर्मृताय जटायुषे जलाञ्जलिं प्रदाय तानाह—अहं पुरा कदाचित् स्वभक्ष्याकलनाय स्वसुतं सुपार्श्वं प्रेषितवान्, स परावृत्य मां रावणेन नीयमानायाः सीतायाः क्रन्दनं महेन्द्रनामकपर्वतरन्ध्रान्निर्गच्छदाकर्णितवानस्मीति सत्यं व्याहृतवान्, तदहं जानामीत्युक्तप्रकारेण रावण एव सीतामपहृतवानिति ।

इसके बाद वानरोंने आदिसे सारा समाचार सुना दिया, तब सूक्ष्मदर्शी सम्पातिने जटायुको तिलाञ्जलि प्रदान करके कहा—मैंने पहले एक समय सुपार्श्व नामक अपने पुत्रको आमिषकी खोजमें भेजा था, उसने लौटकर कहा कि मैंने महेन्द्र पर्वतके छिद्रसे निकलते हुए रावणापह्रियमाण जानकीका विलाप सुना है, इस बातको मैं जानता हूँ ।

अलं कातर्येण । लङ्काभिधानां यातुधानराजधानीमधिवसति सीता दशवदननीता तत्र गच्छन्तु भवन्तः ।

अलमिति । कातर्येण भयेन अधीरतया चालम्, मा अधीरा भवन्त्वित्यर्थः, दशवदननीता रावणापहृता सीता लङ्काभिधानां लङ्कानामिकां यातुधानराजधानीम् राक्षसराजधानीम् अधिवसति अधितिष्ठति, (तत्र वर्तत इत्यर्थः) तत्र लङ्कायां भवन्तो वानराः गच्छन्तु इत्यन्वयः ।

आपलोग अधीर मत हों, रावण द्वारा हरी गई सीता राक्षसराजधानी लङ्कामें रहती हैं, अतः आपलोग वहाँ जाइये ।

किञ्च—

दिवाकरप्लोषभवां [1]मदार्तिं निशाकरो नाम मुनिर्निरस्यन् ।
जगाद वः कार्यमहार्यधैर्याः ! क्षणेन तां द्रक्ष्यथ [2]रामपत्नीम् ॥ ४१ ॥

१. 'ममार्तिं' इति पाठान्तरम् ।   २. 'राजपत्नीम्' इति पाठान्तरम् ।

किञ्च, दिवाकरेति। दिवाकरः सूर्यस्तेन तत्कृतो यो मम प्लोषः पक्षदाहस्तद्भवाम् तदुत्थितां मदार्त्तिं मम पीडाम् निरस्यन् अपहरन् (यदा रामपत्न्या अन्वेषणार्थं वानरास्तवान्तिकमुपैष्यन्ति तदा तव पक्षद्वयं प्ररूढं भविष्यतीति सत्यसान्त्वनावचनैरपनुदन्नित्यर्थः) निशाकरो नाम मुनिः अतीतनागतदर्शनसमर्थः वः कार्यम् सीतान्वेषणे साफल्यम् जगाद मह्यमुक्तवान्, हे अहार्यधैर्याः अपरिहरणीयभावसम्पन्नाः वानराः, यूयम् क्षणेन तां रामपत्नीं द्रक्ष्यथ अवलोकिताध्वे (तत्प्रायोपवेशनं त्यजत इत्यर्थः) पुरा यदाहं सूर्यकिरणैः पक्षयोर्दग्धस्तदा निशाकरो नाम मुनिर्मदन्तिकमुपेत्य रामपत्नीगवेषणापरेषु वानरेषु मिलितेषु तव पक्षद्वयं पुनः प्ररोक्ष्यतीति मामसान्त्वयत्, अतः परं ते वानराः सीतामुपलप्स्यन्ते इति चावोचदतस्तद्वचसोऽवश्यप्रत्येतव्यतया यूयं सीतामचिरेण द्रक्ष्यथ, अलमनया कातरतयेति भावः। दिवाकरकृतसन्तापस्य निशाकरेण हरणमित्यस्यार्थस्योपनिबन्धनमेवात्र चमत्कारकरम्। उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ४१ ॥

पक्षदाह द्वारा सूर्यकृत हमारे सन्तापको निरस्त करने वाले (रामकी पत्नीको खोजने वाले वानर जब मिलेंगे तब तुम्हारे पंख उग आयेंगे इस तरहकी सान्त्वना देकर हमारी तकलीफको कम करनेवाले) निशाकर नामक मुनिने आपलोगोंके कार्यके सम्बन्धमें बताया था, हे अडिग निश्चयवाले बहादुरो, आप शीघ्र ही रामपत्नीके दर्शन पायेंगे, (अतः इस प्रकार प्रायोपवेशनको छोड़ दें)॥ ४१ ॥

इति ब्रुवाणं कृतसौहृदं तं संपातिमापृच्छ्य [1]परापरज्ञम्।
प्रवृद्धहर्षाः प्रथितप्रभावाः प्रतस्थिरे वानरयूथनाथाः ॥ ४२ ॥

इति ब्रुवाणमिति। इति एवंप्रकारेण ब्रुवाणम् कथयन्तम् कृतसौहृदम् विरचितसख्यम् परापरज्ञम् उच्चावचज्ञानवन्तम् (पूर्वोत्तरपर्यालोचनचतुरम्) तं सम्पातिम् आपृच्छ्य अस्मान् गन्तुमनुमन्यस्वेत्यामन्त्र्य प्रवृद्धहर्षाः (मुनिवचनप्रत्ययेन सीतोपलब्धिसंभावनया प्राणत्राणाशया जयाशया च) आनन्दयुक्ताः प्रथितप्रभावाः प्रख्यातबलपराक्रमाः वानरयूथनाथाः अङ्गदादिवानरसेनापतयः प्रतस्थिरे चलिताः, दिशि दक्षिणस्यामिति शेषः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

इस तरह करते हुए, पूर्वोत्तर का ज्ञान रखनेवाले, कृतमैत्रीक संपातिसे विदा मांगकर आनन्दोल्लासपूर्ण प्रसिद्ध बलपराक्रम वानरसेनानायक अङ्गदादि (दक्षिणकी ओर) चल दिये।

[2]पर्याप्तप्रमदमुपेयुषां कपीनां
[3]पन्थानं दशमुखमार्गमार्गणाय।

---

१. 'परावरज्ञम्' इति पाठान्तरम्। २. 'पर्याप्तम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'पान्थानाम्' इति पाठान्तरम्।

पाथेयीकृतकपिराजशासनानां
पाथोधिर्नयनपथातिथिर्बभूव ॥ ४३ ॥

पर्याप्तेति। पर्याप्तप्रमदम् आनन्दपूर्णम् पन्थानम् सम्पातिनिर्दिष्टमार्गम् उपेयुषाम् प्राप्तानां (कपीनाम् वानराणाम्) दशमुखमार्गमार्गणाय केन मार्गेण रावणः सीतामहरदिति तदीयाध्वगवेषणाय पाथेयीकृतं मार्गभक्ष्यभावं गमितं सम्बलीकृतं कपिराजशासनं सुग्रीवादेशो यैस्तेषां (कपीनाम्) सुग्रीवाज्ञामवलम्ब्य भोजनादित्यागपूर्वकमग्रे सरतामित्यर्थः) पाथोधिः सागरः नयनपथातिथिः दृग्गोचरः बभूव अभवत्। सम्पातिवचनात्सानन्दं रावणान्वेषणमार्गमाश्रिताः सुग्रीवशासनमात्राहारा वानराः सागरं ददृशुरित्यर्थः। 'पाथेयं सम्बलं मतम्' इति यादवः। 'मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः' इत्यमरः। प्रहर्षिणीवृत्तम्, 'म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्' इति च तल्लक्षणम् ॥ ४३ ॥

सम्पातिके कथनानुसार रावणके रास्तेका अन्वेषण करने वाले वानरगण आनन्दपूर्ण मार्गमें सुग्रीवकी आज्ञाको ही मार्गभक्ष्य करके बढ़ने लगे, पीछे उन लोगोंकी दृष्टिमें समुद्र आया ॥ ४३ ॥

सुत्रामपुत्रारिशिलीमुखानां स्मृत्वा गणस्तत्र वलीमुखानाम्।
अपामपारस्य निधेश्च [1]पश्चादवाङ्मुखो वक्तुमवाङ्मुखोऽभूत् ॥४४॥

सुत्रामेति। वलीमुखानाम् वानराणां गणः समुदायः सुत्रामा इन्द्रस्तस्य पुत्रो वाली तस्यारिः श्रीरामचन्द्रस्तस्य शिलीमुखानाम् बाणानाम् स्मृत्वा अपारस्य दुस्तरस्य अपां निधेः समुद्रस्य च स्मृत्वा पश्चात् स्मरणानन्तरम् वक्तुम् किमत्र कर्त्तव्यमिति निवेदयितुम् अवाङ्मुखः वचनशून्यवदनः मूकः सन् अवाङ्मुखः नतशिरा अभूत्। वानराः पुरतः समुद्रमपारं दृष्ट्वा रामबाणांश्च ध्यात्वा किङ्कर्त्तव्यमित्यप्रतिपद्यमाना मूकाः सन्तो नतशिरसो बभूवुरित्यर्थः। स्मरणार्थकयोगे कर्मणि षष्ठी—'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' इति सूत्रेण। उपजातिरेव वृत्तम् ॥ ४४ ॥

वानरोंके दलको जब आगमें अपार सागर लहराता हुआ दीख पड़ा तब उसने रामके बाणोंका स्मरण किया, उनको यह निश्चय नहीं होता था कि क्या किया जाय इसलिये कुछ कहनेमें जीभ नहीं खुल रही थी, वे मूक बने शिर झुकाये बैठे रहे ॥ ४४ ॥

तदनु वानरसेनामेनामवार्यमाणकातर्यामित्थम[2]वददङ्गदः।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् अवार्यमाणकातर्याम् केनापि प्रकारेण कातरताममुञ्चन्तीम् (भयग्रस्ताम्, भयकारणं च यदि समुद्रं तरीतुं प्रवर्त्तामहे! तर्हि मज्जा-

---

१. 'पश्यन्' इति पाठान्तरम्। २. 'अकथयत्' इति पाठान्तरम्।

मोऽथ परावर्त्तामहे तदा सुग्रीवेण हन्यामहे इति ज्ञानम्) एनाम् वानरसेनाम् कपिबलम् अङ्गदः इत्थम् वक्ष्यमाणदिशा अवदत् (उत्साहवाक्यम्) उक्तवान् ।

किसी भी तरहसे जिसका कायरपन नहीं छूट रहा था उस वानर सेनाको अंगदने इस प्रकार कहा ।

किमिति भजथ मौनं वानरा ! मानहीनाः
सगररचित[1]कुल्योल्लङ्घने कुण्ठिताशाः ।
अकलशभवलेह्यं दुःशमं [2]वाडवाद्यै-
रनवधिमयशोऽब्धिं किं समर्थास्तरीतुम् ॥ ४५ ॥

किमितीति । हे मानहीनाः स्वाभिमानविरहिताः वानराः, सगरो नाम राजविशेषः तेन खाता खननकर्मीकृता या कुल्या पयःप्रणाली तस्याः उल्लङ्घने पारकरणे कुण्ठिताशाः भग्नोत्साहाः । भवन्तः किमिति कुतो मौनं मूकभावं भजथ प्राप्नुथ । सगरेण खातस्य सागरस्याल्पायामाताद्योतनाय कुल्याभावेन रूपणम् । कलशभवः कुम्भयोनिरगस्त्यस्तेन लेह्यः आस्वाद्यो न भवतीत्यकलशभवलेह्यस्तम् अगस्त्येन पातुमशक्यम्, वाडवाद्यैः वडवानलप्रभृतिभिः दुःशमं शमयितुमशक्यम्, अनवधिम् अपास्तमर्यादम् अयशोऽब्धिं कलङ्कसागरम् तरीतुम् लङ्घयितुं किम् (यूयम्) समर्थाः ? नेति काक्वा लभ्यते । एनमल्पायामं सागरं कुल्यातुल्यं यदि दुस्तरं मत्वा मूकीभूय स्थिताः तदा (अगस्त्यकर्त्तृकपानकर्म वडवानलकर्त्तृकशमनविषयमर्यादाशालिसमुद्राद्व्यतिरिच्यमानम्) अगस्त्येन पातुमशक्यं वडवानलेन च शमयितुमपार्यमाणमनन्तं चायशः सागरं कथं तरिष्यन्ति, अवश्यमयशोभावि यद्यस्य समुद्रस्योत्तरणे न यत्नवन्तो भवेयुर्भवन्त इत्याशयः । अत्र प्रसिद्धसागरादुपमानात् उपमेयस्यायशः सागरस्याधिक्यकथनाद् व्यतिरेकालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४५ ॥

अरे मानहीन वानरो, इस सागरको, जो सगर नृपति द्वारा खोदी गई नाली है, पार करनेमें हतोत्साह होकर चुप्पीसाधे क्यों बैठे हो, जिसको अगस्त्य पी नहीं सकते हैं, वड़वानल जिसे नियमित नहीं कर सकता है, जिसकी मर्यादा नहीं हैं, ऐसे कलङ्क सागरको क्या आप पार कर सकेंगे ? (जब कलङ्कसे छुटकारा नहीं ही होना है तब प्रयत्न कीजिये, कदाचित् यश ही मिल जाये) ॥ ४५ ॥

ततः [3]पारावारस्य पारीणतायामात्मशक्तेरियत्तां प्रत्येकं कथयत्सु

---

१. 'कूपोल्लङ्घने' इति पाठान्तरम् । २. 'वडवाग्नेः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'पारावारपारीणतायाम्' इति पाठान्तरम् ।

[1]वानरयूथपेषु निर्दिश्याञ्जनेयं प्रभञ्जन[2]संजातं जाम्बवान[3]भिहितवान् ।

तत इति । ततः तदनन्तरम् पारावारस्य पारीणतायाम् पारगमने लङ्घने आत्मशक्तेः स्वसामर्थ्यस्य इयत्ताम् 'प्लवेयं दशयोजनम्' इत्यादिरूपेण मर्यादाम् प्रत्येकम् एकैकशः कथयत्सु वानरयूथपेषु वानरसेनानायकेषु प्रभञ्जनसञ्जातम् वायोरुत्पन्नम् आञ्जनेयम् अञ्जनागर्भसम्भवम् हनूमन्तम् निर्दिश्य उद्दिश्य जाम्बवान् इत्थम् अनेन प्रकारेण अकथयत् उक्तवान् ।

इसके बाद जब सभी वानरसेनापति समुद्रपार करनेमें अपनी २ ताकतकी सीमाका वर्णन कर रहे थे ('मैं इतना योजन जा सकता हूँ मैं इतना योजन' इस प्रकार कह रहे थे) तब जाम्बवान्ने वायुसे उत्पन्न अञ्जनीके लाल हनूमानको इस प्रकार कहा ।

हे वीरा यूथनाथाः ! परिणतिपरुषः [4]कार्य आसीद्विषादः
कस्मादस्माकमेतज्जलनिधितरणे शक्तिरेतावतीति ।
स्मृत्वा राज्ञः प्रतिज्ञामयमनिलसुतो लङ्घनायोन्मुखश्चे-
द्भेदः प्रादुर्भवेत्किं कथयत पयसामास्पदे गोष्पदे वा ॥ ४६ ॥

हे वीरा इति । हे वीराः शूराः यूथनाथाः सेनापतयः, एतज्जलनिधितरणे अस्य सागरस्य लङ्घने कार्ये करणीये अस्माकम् सर्वेषाम् एतावती इयत्परिमिता शक्तिः सामर्थ्यम् इति परिणतिपरुषः फलकाले विरसः समुद्रतरणरूपे फलेऽसाध्यतयाऽध्यवसिते विमनस्कसम्पादकः विषादः चित्तौदासीन्यात्माखेदः कस्मात् कुतो हेतोः आसीत् अजायत, वयमत्र समुद्रे तरणीयेऽस्माकमियती शक्तिरेतावत्या शक्त्या कथं शक्यस्तरीतुमयमर्णव इति चेतो वैक्लजननो विषादः कुतः प्रादुर्भूत इति कारणं न पश्याम इत्याशयः । विषादस्याकारणकत्वे हेतुमुपन्यस्यति स्मृत्वेति राज्ञः सुग्रीवस्य प्रतिज्ञाम् अवश्यं सीतान्वेषणीयेत्येवंरूपाम् स्मृत्वा ध्यात्वा अयम् पुरोवर्त्तमानोऽनिलसुतो वायुपुत्रो हनूमान् लङ्घनाय सागरपारगमनाय उन्मुखः धृतोत्साहश्चेत् पयसामास्पदे निधानभूते पयोनिधौ गोष्पदे गवां पदा परिमिते वा खाते किं भेदः अन्तरं प्रादुर्भवेत् प्रकटेत् ? इति कथयत, हनूमति सागरतरणोद्यते सागरोऽयं गोष्पदवदवश्यं सुतरो जायेतातो विषादोऽकारणकः सर्वथा हृदयादपनेय इत्यर्थः । भेदोऽप्यभेदात्मातिशयोक्तिरलङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् , लक्षणं प्रागुक्तम् ॥ ४६ ॥

हे बहादुर सेनापतिगण, इस समुद्रको पार करनेकी हमारी इतनी शक्ति है हमारी इतनी शक्ति है, इस तरहकी परिणामचिन्तासे कठोर विषाद क्यों पैदा हुआ, इसका तो

---

१. 'वानर' इति नास्ति क्वचित् । २. 'संभवम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'इत्थमभिहितवान्' इति पाठान्तरम् । ४. 'कोऽयम्' इति पाठान्तरम् ।

कोई कारण है ही नहीं, जब सुग्रीव महाराजकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके मारुतितनय हनूमान् समुद्र लांघनेके लिये तैयार हैं तो फिर इस सागर और गोपदमें क्या भेद रह जायगा ? यह आप ही बतावें ॥ ४६ ॥

उदपतदुपभोक्तुं मण्डलं चण्डभानोः
परिणतफलबुद्ध्या बालभावेऽपि सोऽयम् ।
तदनु कुलिशपातक्षुण्णगण्डाय तस्मै
बलमदिशदमेयं वायुतृप्त्यै विधाता ॥ ४७ ॥

उदपतदिति । सः प्रसिद्धपराक्रमः अयं हनूमान् बालभावे शिशुत्वे अपि परिणतफलबुद्ध्या पक्वं फलमिदं रक्ताभं स्यादिति ज्ञानेन चण्डभानोः सूर्यस्य मण्डलं बिम्बम् उपभोक्तुम् कवलीकर्त्तुम् उदपतत् उत्पतितः आकाशे गत इत्यर्थः, तदनु सूर्यबिम्बसमीपमुत्पतितेऽस्मिन् हनूमति कुलिशपातेन इन्द्रकृतवज्रप्रहारेण क्षुण्णगण्डाय पीडितहनुदेशाय अस्मै वायुतृप्त्यै (पुत्रे हनौ ताड्यमाने कुपितस्य जगदाकुलयितुमुद्यतस्य) वायोः सन्तुष्टये विधाता ब्रह्मा तस्मै महावीराय हनूमते अमेयम् अपरिमितं बलं पराक्रमं दत्तवान् । उक्तं च रामायणे—'प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ । अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रमम्' । बाल्ये सूर्यमण्डलपर्यन्तोत्पतनसमर्थस्यास्येदानीं यौवने सागरतरणं किमसाध्यमिति भावार्थः । मालिनीवृत्तम् ॥ ४७ ॥

ये हनूमान् लकड़पनमें ही सूर्यमण्डलको पक्वफल समझकर उसे निगल जानेकी इच्छासे सूर्यमण्डल तक उड़ गये थे, पीछे इन्द्रके वज्रप्रहारसे इनकी दाढ़ीमें चोट आ गई, जिस पर वायु बिगड़ उठे, उनको सन्तुष्ट करनेके लिये ब्रह्माने हनूमान्को असीम बल प्रदान किया ॥ ४७ ॥

इत्थं जाम्बवता [1]परापरविदा संधुक्षितप्राभवः
कृत्वा वृद्धिमुपेयुषा स्ववपुषा त्रैविक्रमं प्रक्रमम् ।
आरुह्याद्रितटं यथोचितमसौ संमान्य [2]सैन्याधिपा-
नासन्नानथ संननाह तरितुं वारांनिधिं मारुतिः ॥ ४८ ॥

इति श्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः ।

इत्थमिति । इत्थं प्रोक्तप्रकारेण परापरविदा पूर्वोत्तरकार्यपर्यालोचनचातुरीशालिना जाम्बवता तन्नामकेन वृद्धेन मन्त्रिणा सन्धुक्षितप्राभवः उद्बोधितपराक्रमातिशयः

१. 'परावर' इति पाठान्तरम् । २. 'सेनाधिपान्' इति पाठान्तरम् ।

नयः असौ मारुतिः वायुनन्दनः त्रैविक्रमम् वैष्णवम् प्रक्रमम् (पूर्वं लघुत्वेऽपि कार्यवशादतिविस्तृतिरूपम्) उपेयुषा प्राप्तवता स्ववपुषा निजदेहेन वृद्धिं कृत्वा स्वदेहं वर्धयित्वा अद्रितटम् महेन्द्रशैलसानु आरुह्य आसन्नान् समीपस्थितान् सैन्याधिपान् वानरसेनानायकान् जाम्ववदादीन् यथोचितम् यथायोग्यम् प्रणामाशीर्वादादिना संमान्य आदृत्य अथ वारांनिधिं समुद्रं तरितुं लङ्घयितुम् सन्ननाह संनाहं कृतवान् । जाम्ववता पराक्रमस्तुत्योद्बोधितो हनूमान् निजां तनुं वर्धयित्वा पर्वतशिखरमारुह्य समीपस्थितवानरसेनापतीन्यथार्हं सम्मान्य च सागरं तरीतुमुद्युयुज इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४८ ॥

पूर्वापरका ज्ञान रखनेवाले जाम्ववान्से इस प्रकार पराक्रम स्मरण कराये जानेपर हनुमान्जीने भगवान् वामनकी तरह अपनी देह बढ़ाई और पर्वतकी चोटीपर चढ़ गये, वहाँ जितने वानरसेनापति थे सबको यथायोग्य प्रणामादिनिवेदन द्वारा सत्कृत किया, फिर समुद्रको लांघनेकी तैयारी की ॥ ४८ ॥

इति मैथिलपण्डित-श्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते चम्पूरामायण'प्रकाशे'

किष्किन्धाकाण्ड'प्रकाशः'

अथ सुन्दरकाण्डम्

ततो हनूमान्दशकण्ठनीतां सीतां विचेतुं पथि चारणानाम्।
महेन्द्रशैलस्य खगेन्द्रवेगः प्रस्थादुदस्थात्प्रथमानवेगः[1] ॥ १ ॥

ततो हनूमानिति। ततः समुद्रलङ्घनार्थं सन्नाहे कृते सति खगेन्द्रवेगः गरुडतुल्यजवः प्रथमानवेगः प्रसिद्धवेगवान् हनूमान् दशकण्ठनीताम् रावणापहृताम् सीताम् जानकीम् विचेतुम् अन्वेष्टुम् महेन्द्रशैलस्य समुद्रतीरवर्त्तिपर्वतविशेषस्य प्रस्थात् शिखरात् चारणानाम् पथि गन्धर्वाणां मार्गे व्योम्नि उदस्थात् उत्थितवान्। सागरतरणाय सन्नद्धो हनूमान् सीतामन्वेष्टुं महेन्द्रशैलशिखरादाकाशे उत्थितवानिति भावः। 'प्रथमानं पृथुप्रथम्' 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्' इत्युभयत्रामरः। 'ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः। इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि' इति वाल्मीकिरामायणसुन्दरकाण्डाद्यपद्यमत्रार्थतो बहुष्वंशेषु पदतश्चानुसृतो निजकविस्वबीजस्मारणाय चमत्कारप्रदर्शनाय चेत्यनुसन्धेयम् ॥ १ ॥

इसके बाद रावण द्वारा हरी गई सीताजीकी खोज करनेके लिये अपनी द्रुतगामिताके लिये प्रसिद्ध तथा गरुड़के समान वेगवाले हनूमान्‌जी महेन्द्रपर्वतके शिखरसे गन्धर्वोंके मार्गमें (आकाशमें) ऊपरकी ओर उड़े ॥ १ ॥

तदानीमुदन्वदुल्लङ्घनदृढतरनिहितचरणनिष्पीडनं सोढुमक्षमः क्ष्माभृदेष निःशेषनिःसरन्निर्झरौघतया निरन्तरनिष्पतद्बाष्प[2]वर्ष इव इतस्ततो विततजीमूत[3]वृन्दतया पारिप्लवशिथिलधम्मिल्ल इव, [4]संत्रस्यमानकुञ्जरयूथतया संजातश्वयथुरिव, [5]साध्वसधावमान[6]हरिणगणचरणखर[7]तरखुरकोटिपाटनोद्धूतधातुधूली[8]पालीपाटलितविकटकटकतया क्षरितशोणित इव, तत्क्षणप्रबुद्ध[9]कण्ठीरवमुखरितकन्दरतया कृताक्रन्द इव, परिसरगह्वरनिबिरीस[10]निःसृतसरीसृपतया निर्गलितान्त्रमाल इव, घूर्णमानतरुविटपकोटि[11]ताडितजलदवृन्दस्यन्दितसीकरनिकरकोरकिताकारतया

---

१. 'मानः' इति पाठान्तरम्। २. 'पूर' इति पाठान्तरम्।
३. 'वृन्दस्यन्दतया' इति पाठान्तरम्। ४. 'संत्रास्यमान' इति पाठान्तरम्।
५. 'ससाध्वसतया' इति पाठान्तरम्। ६. 'हरिणी' इति पाठान्तरम्।
७. 'खरतरखुर' इति नास्ति क्वचित्। ८. 'धूलिपटलित' इति पाठान्तरम्।
९. 'कण्ठीरवकण्ठरव' इति पाठान्तरम्। १० 'निःसरत्' इति पाठान्तरम्।
११. 'पाटित' इति पाठान्तरम्।

समुपजातस्वेद इव, स्फटिकतटोपलपतनदलितकीचकसुषिरसंमूर्च्छत्पवनफूत्कारपरिपूरितगगनतया प्रवर्धमानोर्ध्वश्वास इव वचसामविषयं दौःस्थ्यमभजत।

तदानीमिति। तदानीम् हनूमदुत्थानसमये उदन्वतः सागरस्य लङ्घनाय तरणाय (उपयुक्तम्) दृढतरम् अतिसबलम् यच्चरणाभ्याम् हनूमतः पादाभ्याम् निष्पीडनम् भाराधानम् तत् सोढुम् मर्षयितुम् अक्षमः असमर्थः एषः क्ष्माभृत् महेन्द्रपर्वतः निःशेषं निरवशेषं समग्रभावेन निःसरन्निर्झरौघतया प्रवहमानसमस्तजलप्रपाततया निरन्तरनिष्पतद्बाष्पवर्षः सततप्रवृत्ताश्रुधार इव, (दृढनिहितहनूमत्पादाभ्यामवभृष्टस्य महेन्द्रपर्वतस्य सर्वेऽपि निर्झरौघा अशेषरूपेण पतितुं प्रवृत्ताः; तदत्र भारसहनाक्षमस्य तस्य रुदितत्वेनोत्प्रेक्षितं बोध्यम्) इतस्ततः यत्र तत्र सर्वत्र विततजीमूतवृन्दतया प्रसृतमेघमण्डलतया पारिप्लवः चञ्चलः शिथिलः मुक्तबन्धश्च धम्मिल्लः केशपाश इव, (इतस्ततो यन्मेघाः प्रसृता मन्ये तस्य पर्वतस्य कचराशिरेव तरलतया शिथिलः सन् प्रसृतोऽभवत्) सन्त्रस्यमानकुञ्जरयूथतया भीतकरिगणतया सञ्जातश्वयथुः जातशोथ इव (भीता गजा यन्निर्गताः तन्मन्ये तस्य पर्वतस्याङ्गानीवोच्छूनानि, भयेनाङ्गश्वयथुवर्णनमात्यन्तिकभीतिद्योतनपर्यवसायि) साध्वसेन भयेन धावमानानाम् पलायमानानां हरिणगणानां मृगयूथानाम् चरणाः पादास्तेषां खरतरखुरकोटिभिः अतिनिशितशफाग्रैः यत् पाटनं पर्वताङ्गविदारणम् तेन उद्धूताः बहिर्भाविताः याः धातुधूलीपाल्यः गैरिकादिधातुरजःपुञ्जास्ताभिः पाटलितानि रञ्जितानि विकटकटकानि निम्नोन्नतनितम्बस्थलानि यस्य सः तथोक्तस्तस्य भावस्तया क्षरितशोणितः प्रवृत्तरक्तधारः इव, (भीतानां पलायमानानां च हरिणानां तीक्ष्णैः शफाग्रैर्गैरिकादिधातवः खन्यमानाः पर्वतं रञ्जयन्ति, स एव रागोऽत्र शोणितप्रवाहतयोत्प्रेक्षितो बोध्यः) तत्क्षणे हनूमत्कृतास्कन्दनवेलायाम् प्रबुद्धैः (तेनैव संमर्देन जागरितैः) कण्ठीरवैः सिंहैर्मुखरितकन्दरतया शब्दायमानगुहादेशतया कृताक्रन्दः कृतचीत्कार इव, (तत्सम्मर्दजाग्रत्सिंहनादानां चीत्काररूपत्वमुत्प्रेक्ष्यते) परिसरगह्वरेभ्यः पर्यन्तकन्दरेभ्यः निबिरीसम् निविडम् अजस्ररूपेण निःसृताः बहिरागताः सरीसृपाः व्यालाः यस्य स तथोक्तस्तस्य भावस्तत्तया तथोक्तया निर्गतान्त्रमालः निःसृतसमस्तोदरस्थनाडीसन्ततिरिव, (कुहराणामुदररूपता ततो निर्गतानां सर्पाणाञ्च अन्त्रमालारूपतयोत्प्रेक्षणं बोध्यम्) घूर्णमानाः व्यस्तभावेन चलन्तो ये तरुविटपाः वृक्षशाखास्तेषां कोटिभिः अग्रदेशैः ताडितेभ्यः आहतेभ्यः जलदवृन्देभ्यः मेघसमुदयेभ्यः स्यन्दितैः पतितैः सीकरनिकरैः जलबिन्दुभिः कोरकिताकारतया कालिकायुतशरीरतया समुपजातस्वेदः प्रकाशितघर्मबिन्दुः इव, (चलद्भिर्वृक्षशाखाग्रैराहतेभ्यो

मेघेभ्यः पतिताः पयोबिन्दवो महेन्द्रपर्वतस्य देहे कोरकवत्प्रतीयमानास्तस्य स्वेदबिन्दुभिर्व्याप्तकायत्वमिव द्योतयन्तीत्युत्प्रेक्षार्थः) स्फटिकतलोपलानाम् श्वेतशिलातलानां पतनेन दलिताः विदीर्णाः ये कीचकाः वेणुविशेषास्तेषां सुषिरेषु छिद्रेषु सम्मूर्च्छन्तः वर्धमानाः ये पवनाः वायवस्तत्कृतैः फूत्कारैः परिपूरितं व्याप्तं गगनम् व्योम येन तस्य भावस्तत्तया तथोक्तरूपतया प्रवर्धमानोर्ध्वश्वास इव समेधमानोर्ध्वगामिश्वास इव (अतिकठिनानि शिलातलानि पतन्ति, ततो वेणवो दलिता भवन्ति तेषां छिद्रेभ्यो निर्गतैर्वायुभिराकाशदेशो व्याप्यते, तद्व्यापनमस्य महेन्द्रगिरेः प्रवर्धमानोर्ध्वश्वासतारूपेणोत्प्रेक्ष्यते) एवं दशः समहेन्द्रपर्वतः वचसाम् अविषयम् वक्तुमशक्यम् क्लैःस्थ्यम् दुखस्थाम् अभजत प्राप्तवान्। 'उदन्वानुदधिः सिन्धुः' 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृत्' 'प्रवाहो निर्झरो झरः' 'पारिप्लवं तु तरलम्' 'धम्मिल्लः संयताः कचाः' 'शोफस्तु श्वयथुः शोथः' 'शफं क्लीबे खुरः पुमान्' 'कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः' 'कण्ठीरवो मृगरिपुः' 'दरि तु कन्दरो वा स्त्री' 'निबिडं निविरीसं च दृढं गाढं प्रचक्षते' 'चक्री व्यालः सरीसृपः' 'विटपः स्तम्बशाखयोः' 'उपलः प्रस्तरे मणौ' 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इति क्रमशः कोशा बोध्याः।

जब हनूमान्जी समुद्र लांघनेके लिये महेन्द्रपर्वतसे उड़ने लगे तब उनके कठोर तथा भारी दृढ़चरणकृत निपीड़नको सह सकनेमें असमर्थ यह महेन्द्रपर्वत निश्शेष भावसे निकलते हुए निर्झरोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके अश्रुप्रवाह निकल रहे हों, इधर उधर मेघ बिखरे हुए थे, ऐसा मालूम पड़ता था मानो उस पर्वतके केशपाश बिखरे हों, भयभीत हाथीगण इधर उधर घूम रहे हैं मानो उस पर्वतके अङ्ग सूज गये हों, भयसे भागते हुए मृगगणके तीक्ष्ण खुराग्रसे विपाटित धूलीपटलसे आवृत हो गये थे उस पर्वतके नितम्ब, ऐसे लगते थे मानो उस पर्वतका शोणित बह रहा हो, उस पर्वतके गह्वरसे बराबर सांप निकलते थे मानो उस पर्वतकी आँतें निकल रही हों, घूमते हुए वृक्षोंकी शाखाके अग्रभागसे आहत वृक्षोंसे च्युत जल उस पर्वतपर पुष्पकोरकसे प्रतीत हो रहे थे, ऐसा लगता था मानो उस पर्वतके पसीना निकल आया हो, श्वेत स्फटिककी शिलाके गिरनेसे बाँस कुचल गये हैं, उनके छिद्रोंसे निकली हवा आकाशको पूरित कर रही है मानो उस पर्वतका ऊर्ध्वश्वास निकल रहा हो, इस प्रकार उस पर्वतकी अवर्णनीय दुर्दशा हो गई।

कृत्वा मारुतिलङ्घनोत्थितरयात्तत्रानुयात्रां ततः
पर्याया[1]त्पतिता महेन्द्रगहनक्षोणीरुहाणां ततिः।
मध्येवारिनिधि प्रकाशितशिखा सेतोः कृते भाविनः
सूत्रन्यासनिखातशङ्कुनिवहभ्रान्तिं पयोधौ दधौ॥ २॥

१. 'पतताम्' इति पाठान्तरम्।

कृत्वेति। तत्र तस्मिन्समये मारुतेर्हनूमतो यो लङ्घनोत्थितरयः समुद्रप्लवनजनितो वेगस्तस्मात् हेतुभूतात् अनुयात्राम् हनूमदनुगमनं कृत्वा पर्यायात् एकैकशः पतिता समुद्रे च्युता मध्येवारिनिधि सागरमध्ये प्रकाशितशिखा दृश्यमानाग्रभागा महेन्द्रगहनक्षोणीरुहाणां महेन्द्रचलवर्त्तिकाननतरूणां ततिः समुदायः पयोधौ सागरे भाविनः रामेण निर्मास्यमानस्य सेतोः बन्धस्य कृते सूत्रन्यासरूपेण प्रथमास्थायिकृतिरूपेण निखाताः कीलिताः ये शङ्कुनिवहाः कीलसमुदयास्तेषां भ्रान्तिम् भ्रमं दधौ चक्रे। हनूमति वेगेन प्लवनमारब्धवति तद्वेगेनाकृष्टामहेन्द्रपर्वतवनतरवः किञ्चिद्दूरं हनूमन्तमनुगत्य निवृत्ता मध्येसागरं पतिताश्च सन्तो भाविनः सेतोर्निर्माणाय पूर्वं निखन्यमानाः शङ्कव इवावभासिरे इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

हनूमान्के प्लवनके वेगसे आकृष्ट महेन्द्र पर्वतस्थ वनवर्त्ती तरुगण कुछ दूर तक हनूमान्का अनुगमन करते रहे, पीछे एक एक करके समुद्रमें गिर गये, समुद्रमें गिरने पर उन वृक्षोंका अग्रभाग दीख पड़ता था, उस स्थितिमें वे वृक्ष ऐसे लगते थे मानो आगे चलकर राम द्वारा बनाये जाने वाले सेतुबन्धके लिये यह कच्चा बाँधका आकार तैयार किया जा रहा है जिसके कील गड़े हों ॥ २ ॥

पक्षाभिघातरयरेचितवीचि[1]माला-
    त्पाथोनिधेः पवननन्दनविश्रमाय।
उत्तुङ्गशृङ्गकुलकीलितनाकलोको
    मैनाकभूभृदुदजृम्भत संभ्रमेण ॥ ३ ॥

पक्षाभिघातेति। पक्षयोः मैनाकस्य सपक्षतया तदीयपक्षयोः अभिघातरयेण आघातात्मना वेगेन रेचिता दूरमपसारिता वीचिमाला तरङ्गसंहतिर्यस्य तादृशात् मैनाकेन स्वपक्षाभ्यां दूरीकृततरङ्गसमुदयात् पाथोनिधेः समुद्रात् उत्तुङ्गैः अत्युच्छ्रितैः शृङ्गकुलैः शिखरसमुदयैः कीलितः व्याप्तः नाकलोको येन स तथोक्तः उच्चशृङ्गगणेन दिवं व्याप्नुवन् मैनाकभूभृत् तदाख्यः पर्वतः पवननन्दनविश्रमाय हनूमन्तं विश्रमयितुम् संभ्रमेण वेगेन उदजृम्भत उदतिष्ठत्। समुद्रतरङ्गानपाकृत्य स्वर्गपर्यन्तगतशिखरो मैनाको हनूमते विश्रमं प्रदातुं तत्पुरः स्वं प्रकटीकृतवानित्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३ ॥

पक्षोंके अभिघातसे दूर भगा दिया है सागरकी तरङ्गोंको जिसने ऐसा एवं अपने ऊँचे ऊँचे शिखरोंसे आकाशको व्याप्त करने वाला मैनाक पर्वत हनूमान्को विश्राम प्रदान करनेकी इच्छासे सागरसे ऊपर उठा ॥ ३ ॥

---

१. 'मालः' इति पाठान्तरम्।

तत्र यात्राप्रत्यूहः प्रत्युद्भूत इति वक्षसा तमधः पातयित्वा प्रयान्तमेनं सान्त्वयन्हिरण्यनाभो बभाषे।

तत्रेति। तत्र तस्मिन्समये (मैनाकं पुरःस्थितं दृष्ट्वा) यात्राप्रत्यूहः प्रस्थानविघ्नः प्रत्युद्भूतः उत्पन्न इति धिया वक्षसा उरोदेशेन तम् मैनाकपर्वतम् अधः पातयित्वा प्रयान्तम् अग्रे गच्छन्तम् एनम् हनूमन्तम् सान्त्वयन् (यात्राप्रत्यूहज्ञानेन किञ्चिन्मनसि विषीदन्तं हनूमन्तं) सामवाक्यप्रयोगेणोपलालयन् हिरण्यनाभः हिरण्यगर्भो मैनाकः बभाषे उवाच।

उस समय हनूमान्को मालूम पड़ा कि हमारी यात्रामें यह विघ्न उपस्थित हो रहा है, ऐसा समझकर हनुमान्ने अपनी छातीसे उसे नीचे गिरा दिया और आगे बढ़े, तब मैनाकने उनको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा।

सागरेण कृतज्ञेन तवाध्व[1]श्रान्तिशान्तये।
मारुते! प्रेरितोऽ[2]स्म्यद्य सौम्य! विश्रम्य गम्यताम्॥ ४॥

सागरेणेति। कृतं जानातीति कृतज्ञः पूर्वोपकारस्मर्त्ता तेन तथोक्तेन सागरेण (अहमिक्ष्वाकुनाथेन सागरेण विवर्धितः। इक्ष्वाकुसचिवश्चायं नावसीदितुमर्हतीति भावयता) तव रामकार्यार्थं गच्छतः अध्वश्रान्तिशान्तये मार्गश्रमापनोदनाय अद्य प्रेरितः प्रेषितः अस्मि, हे सौम्य कोमलमनोभाव, मारुते हनूमन् विश्रम्य मम शृङ्गेषु मार्गश्रममपनीय गम्यताम् अग्रे प्रस्थानं क्रियताम्। सौम्यस्य तव पराग्रहावधीरणं न युक्तमित्याशयः॥ ४॥

कृतज्ञ सागरने मुझे आपको मार्गजनित श्रमदूर करनेका अवसर प्रदान करनेके लिये इस समय यहाँ भेजा है, हे कोमल स्वभाव हनूमान्जी, आप मेरे शृङ्गों पर विश्राम करके आगे प्रस्थान कीजिये॥ ४॥

[3]त्वत्पित्राहं परित्रातः पूर्वं पर्वतभेदिनः।
तस्मान्नास्मि[4] विपक्षोऽद्य[5] सपक्ष इति मां भज॥ ५॥

त्वत्पित्राहमिति। हे मारुते हनूमन्, पूर्वम् पूर्वकाले अहम् मैनाकः त्वत्पित्रा तव जनकेन वायुना पर्वतभेदिनः पर्वतपक्षच्छेदकात् शक्रात् त्रातः पक्षच्छेदरूपविपदो निवारितः, तस्मात् त्वत्पितृकृतसहायतावशात् अद्य विपक्षः छिन्नपक्षो नास्मि, तव विपक्षः विरुद्धपक्षवर्त्ती च नास्मि, किन्तु सपक्षः-मित्रवर्गीयः—पक्ष-

---

१. 'श्रम' इति पाठान्तरम्। २. 'अत्र' इति पाठान्तरम्।
३. 'तव पित्रा' इति पाठान्तरम्। ४. 'नास्ति' इति पाठान्तरम्।
५. 'अत्र' इति पाठान्तरम्।

सहितश्चास्मि, इति हेतोः माम् भज आश्रय-विश्रम्य गच्छ इति भावः। सपक्षविपक्षशब्दौ श्लिष्टौ क्रमशः सुहृच्छत्रुपरौ पक्षयुक्ततद्रहितपरौ च बोध्यौ ॥ ५ ॥

हे हनूमान्जी, आपके पिता वायुदेवने पक्षच्छेदनोद्यत शक्रसे मेरी रक्षा की थी, इसीलिये मैं पक्षयुक्त एवं आपका मित्र हूँ, विपक्ष-पक्षरहित एवं आपका दुश्मन नहीं हूँ, आप मेरे शृङ्गोंका आश्रयण करें ॥ ५ ॥

एवं प्रार्थयमानमेनं संमान्य कार्यगत्या गते सति हनूमति।

एवमिति। एवम् उक्तप्रकारेण प्रार्थयमानम् प्रार्थनापरायणम् एनम् मैनाकम् सम्मान्य—'त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्त्तते। प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरे' इत्यादिना स्वबाध्यतां बोधयित्वा साधुवादाभिरुपचर्य कार्यगत्या स्वामिकार्यपारवश्येन हनूमति गते सति प्रस्थिते सति।

इस तरह प्रार्थना करने वाले मैनाकको अपनी परवशता बताकर साधुवाद द्वारा सत्कृत करके कार्यगौरवसे हनूमान्के चले जाने पर।

अवलोक्य हिरण्यनाभमब्धौ वलमानं वलमानमाथिवज्रः।
शतमन्युरपेतमन्युरासीत्पवमानात्मजसेवनादमुष्मिन् ॥ ६ ॥

अवलोक्येति। वलमानमाथिवज्रः वलाख्यदानवगर्वहारिवज्रधरः शतमन्युः हिरण्यनाभं मैनाकम् अब्धौ समुद्रे वलमानम् चलन्तम् अवलोक्य दृष्ट्वा (अपि) अमुष्मिन् मैनाके पवमानात्मजसेवनात् रामकार्यार्थं गच्छतो हनूमतः सेवाकार्यप्रवृत्तत्वात् अपेतमन्युः विगतकोपः आसीत्। इन्द्रः समुद्रे सञ्चरन्तं मैनाकमालोक्यापि तस्य हनूमत्सेवोद्यतस्यापराधं विस्मृतवानत एव च तस्य दृष्टस्यापि पक्षौ नाच्छैत्सीदित्यर्थः ॥ ६ ॥

वलासुरके अभिमानको दूर करने वाले वज्रसे युक्त इन्द्रने समुद्रमें चलते हुए मैनाकपर्वतको देखा, फिर भी उसकी रामसेवा प्रवृत्तिसे सन्तुष्ट होकर इन्द्रने अपना कोप त्याग दिया। मैनाकको देखकर भी उस पर वज्र नहीं चलाया, क्योंकि उसने रामकार्यार्थ जाते हुए हनूमान्की सेवामें लगनेके कारण उसका प्राक्तन अपराध नगण्य हो गया ॥ ६ ॥

तदनु यथापुरं लङ्कापुरं प्रति प्रधावतो हनूमतः सरणिमरुणदरुणसारथेः पदवीं विन्ध्य इव वदनं व्यादाय द्विरसनजननी रंहसा सुरसा।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् यथापुरम् प्रागिव लङ्कापुरम् प्रति प्रधावतः वेगेन गच्छतो हनूमतः सरणिम् पन्थानम्—अरुणसारथेः सूर्यस्य पदवीम् मार्गम् विन्ध्यः तदाख्यः पर्वत इव सुरसा नाम द्विरसनजननी सर्पमाता वदनं व्यादाय मुखं विवृत्य रंहसा वेगेन अरुणत् अवरुध्य स्थिता। यथा पुराकाले विन्ध्यपर्वतः सूर्यस्य पन्थानं निरुध्य स्थितस्तथैव लङ्कां गच्छतो हनूमतो मार्गं सुरसा नाम सर्पजननी

स्वमुखं विवृत्य वेगेन रुध्वा स्थिताऽभवदिति भावः। 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः' इत्यमरः।

इसके बाद पूर्ववत् लङ्काकी ओर बढ़ते हुए हनूमान्के मार्गको सूर्यके मार्गको विन्ध्यकी तरह सुरसा नामकी सर्पमाता मुँह फैलाकर घेरकर खड़ी हो गई।

उज्जृम्भितस्य तरसा सुरसां विजेतुं
पादौ पयोधिकलितौ पवमानसूनोः।
तस्योत्तमाङ्गमभवद्गगनस्रवन्ती-
वीचीचयस्खलितसीकरमालभारि ॥ ७ ॥

उज्जृम्भितस्येति। तरसा वेगेन सुरसां नाम मार्गमवरुध्य स्थितां नागमातरं विजेतुम् उज्जृम्भितस्य प्रवृद्धस्यास्य पवमानसूनोः वायुपुत्रस्य मारुतेः पादौ चरणौ पयोधिकलितौ समुद्रस्थितौ अभूताम् अजनिषाताम्, एवम् तस्य हनूमतः उत्तमाङ्गं शिरः गगनस्रवन्त्याः आकाशगङ्गायाः वीचिचयेभ्यः तरङ्गपरम्पराभ्यः स्खलितानां गलितानां सीकराणां जलबिन्दूनां मालां बिभर्त्ति तथा आकाशगङ्गातरङ्गमालास्रवत्पयोबिन्दुरूपपुष्पस्रजा अलङ्कृतम् अभवत्। पद्भ्यां सागरं शिरसा चाम्बरम् अवलम्ब्यावर्धत हनूमानिति भावः। मालां बिभर्त्तीति मालभारि 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' इति मालाऽऽकारस्य ह्रस्वत्वम्। 'स्रवन्ती निम्नगाऽपगा' 'सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः' 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इति च सर्वत्रामरः। अत्र हनूमच्छिरसः स्वर्गङ्गातरङ्गजलकणमालाधारणसम्बन्धेऽपि तदसम्बन्धभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ७ ॥

सुरसाको जीतनेके लिये जब हनूमान्जी वेगसे बढ़े तब उनके चरण सागरको छूने लगे और उनका शिर आकाशगङ्गाकी तरङ्गपरम्परासे गिरते हुए पयःकणोंकी मालासे अलङ्कृत हो गया ॥ ७ ॥

तनुं तनूकृत्य तदा हनूमान्कृत्वा [1]प्रवेशं जठरे तदीये।
ततो विनिष्क्रम्य स चक्रपाणे[2]स्त्रिविक्रमस्य क्रममेव चक्रे ॥ ८ ॥

तनुमिति। तनुं स्वं शरीरं तनूकृत्य लघयित्वा तदा तस्मिन् काले तदीये सुरसासम्बन्धिनि जठरे उदरे प्रवेशं कृत्वा प्रविश्य ततः तदुदरात् विनिष्क्रम्य बहिरागत्य च चक्रपाणेः चक्रधरस्य त्रिविक्रमस्य बलिबन्धनावसरे त्रयो विक्रमाः पादन्यासा यस्य तस्य वामनस्य विष्णोः क्रमम् प्रकारम् एव चक्रे, वामनमेवानुचकार। यथा बलिबन्धनोद्युक्तो वामनावतारधरो विष्णुः प्रवृद्धकायो भूत्वा पुनः

१. 'अवगाहं' इति पाठान्तरम्। २. 'त्रिविक्रमप्रक्रमम्' इति पाठान्तरम्।

प्रकृतिं प्रपेदे तथैव सुरसावञ्चनकाले हनूमान् महाकायमास्थितोऽपि प्राग्रूपो जातः इत्याशयः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ८ ॥

उस समय हनूमान्‌ने अपने शरीरको छोटा करके सुरसाके उदरमें प्रवेश किया और उसमेंसे निकल आये, उनका यह आचरण वलिबन्धनोद्यत भगवान् वामनके आचरणके समान ही हुआ ॥ ८ ॥

भूयोऽपि सोऽयं रघुनाथदूतश्चिच्छेद गच्छन्नखरैः खराग्रैः।
नृसिंहरंहाः पथि सिंहिकाङ्गं छायानिरोधादुपपन्नमन्युः ॥ ९ ॥

भूयोऽपीति। सः सुरसापराजयप्रसिद्धपराक्रमः अयम् रघुनाथदूतः रामकिङ्करः हनूमान् भूयः पुनरपि पथि स्वमार्गे गच्छन् छायानिरोधात् सिंहिकया क्रियमाणेन स्वीयच्छायाग्रहणात्मना व्यापारेणोत्पन्नकोपः सन् नृसिंहरंहाः नरसिंहवेगसमानवेगो भूत्वा सिंहिकाङ्गम् छायाग्राहिसिंहिकानामकराक्षसीशरीरम् खराग्रैः तीक्ष्णमुखैः नखरैः स्वनखैः चिच्छेद विदारयामास। यथा नृसिंहो हिरण्यकशिपुशरीरं विपाटयामास तथाऽयमपि सिंहिकाशरीरं विपाटयामासेति तात्पर्यम्। 'नखः स्यान्नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः। उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः' इति ॥ ९ ॥

हनूमान्‌जीने देखा कि सिंहिका छायाग्रहण करके मुझे समुद्रमें गिराकर निगलना चाहती है, इसपर उन्हें क्रोध हो आया और उन्होंने अपने तीखे नखोंसे उसके अङ्गोंको विदारित कर डाला, जिस प्रकार नृसिंहने हिरण्यकशिपुको विदीर्ण किया था ॥ ९ ॥

तदनु पारावारस्य पारे [१]लम्बशिखरिणि लम्बमानः प्रतनुतरवपुर्लङ्कापुरोत्तरगोपुरद्वारमासाद्य नितान्तचिन्तातन्तुसन्तानितान्तःकरणोऽभूत्।

तदन्विति। तदनु सिंहिकाशरीरविदारणात् परतः पारावारस्य पारे समुद्रस्यापरतीरे लम्बशिखरिणि लम्बाख्यपर्वते (स लम्बशिखरे लम्बे लम्बमानपयोधरे) इति रामायणोक्ते लम्बमानः अवरोहन् (स हनूमान्) प्रतनुतरवपुः अतिसूक्ष्मकायः लङ्कापुरोत्तरगोपुरद्वारम् लङ्कानगर्या उत्तरदिगवस्थितं पुरद्वारमुखम् आसाद्य प्राप्य नितान्तचिन्तातन्तुसन्तानितान्तःकरणः अतिचिन्तासूत्रसन्दानितहृदयः समधिकचिन्ताचुम्बितचित्तः अभूत्, वक्ष्यमाणप्रकारया नानाविधया चिन्तया तस्य मनो विव्यथे इत्याशयः। 'पुरद्वारं तु गोपुरम्' इत्यमरः।

इसके बाद समुद्रके उस पार लम्बपर्वतपर उतरकर हनूमान्‌जी छोटारूप धारण करके लङ्कानगरीके उत्तरद्वार पर आकर अधिक चिन्तासे युक्त हृदय हो गये।

---

१. 'लम्बमानशिखरिणि लम्बमानतनुर्लङ्कापुरद्वारमासाद्य नितान्तचिन्तातन्तुसंतानितान्तःकरणः' इति पाठान्तरम्।

वानरसेना कथं तरेदिममन्तरायं वितन्वन्तमुदन्वन्तम्, तरतु नाम, कथमुपयातु यातुधानराजधानीमिमाम्, सर्वथा वितथमनोरथो दाशरथिः, मोघीकृतार्णवलङ्घनः केवलमहमभवम्, [1]जीविता वा न वेति न जानामि [2]जानकीति [3]तत्रभगवतीं सीतामवजिगमिषुराञ्जनेयः प्रच्छन्नसञ्चारहेतोरस्तमयं गभस्तिमालिनः केवलमभिललाष।

वानरसेनेति। अन्तरायं विघ्नं वितन्वन्तं कुर्वाणम् इमम् उदन्वन्तम् सागरम् वानरसेना कथं केन प्रकारेण तरेत् पारं कुर्यात्? तरतु नाम—यथाकथञ्चित् पारं गच्छतु नाम, इमाम् सर्वथा गुप्ताम् यातुधानराजधानीम् राक्षसराजधानीम् कथं केन प्रकारेण उपयातु प्रविशेत्? सर्वथा सर्वप्रकारेण दाशरथिः रामः वितथमनोरथः व्यर्थाभिलाषः सीताप्राप्तेरशक्यतया तन्मनोरथसाफल्यं न सम्भवतीति भावः। केवलम् अहम् मोघीकृतार्णवलङ्घनः, ममेदं समुद्रलङ्घनं सर्वथा व्यर्थमभूत्, सीतान्वेषणरूपोद्देश्यासिद्धौ समुद्रलङ्घनस्य वृथात्वादिति तात्पर्यम्। जानकी जनकतनया सीता जीविता सप्राणा न वा गतप्राणा वा इति न जानामि न वेद्मि, इति एवं चिन्तयन्—भगवतीम् सर्वविधसामर्थ्यशालिनीम् सीताम् अवजिगमिषुः अन्वेष्टुम् इच्छुः आञ्जनेयः हनूमान् प्रच्छन्नसञ्चारहेतोः गुप्तभ्रमणनिमित्ताय भ्रमन्तं मामन्यो मा ज्ञासीदिति हेतवे गभस्तिमालिनः सूर्यस्य अस्तमयम् पश्चिमाचलचूडाप्राप्तिम् केवलम् अभिललाष इयेष।

नानाविघ्नबाधाओंको उपस्थित करने वाले इस सागरको वानरसेना कैसे पार करेगी, किसी प्रकार पार भी कर गई, तो भी इस राक्षसराजधानीमें किस प्रकार प्रवेश कर सकेगी? सभी प्रकारसे रामजीका मनोरथ व्यर्थ होना चाहता है, मेरा समुद्रलङ्घन व्यर्थ ही हुआ, सीता जीती हैं या नहीं यह भी मैं नहीं जानता हूँ, इस तरह चिन्तामें पड़े हुए हनूमान् सीताका अन्वेषण करनेकी इच्छासे गुप्तरूपमें अपने भ्रमणके लिये केवल सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।

तदनु [4]शातमखस्यागस्त्यसंनिधौ निक्षिप्तस्य चापस्य प्रत्यासीदति प्रयोजनवेलेति प्रचेतसे कथयितुमिव प्रतीचीं दिशं प्रविशति भगवति भास्वति।

तदन्विति। तदनु हनूमतस्तथाचिन्तानन्तरम् शातमखस्य इन्द्रसम्बन्धिनः अगस्त्यसन्निधौ अगस्त्याख्यमुनिपार्श्वे निक्षिप्तस्य न्यासीकृतस्य (रामे समायातेऽर्पयितुं स्थापितस्य) चापस्य वैष्णवस्य धनुषः प्रयोजनवेला कार्यकालः प्रत्यासीदति

---

१. 'जीवति' इति पाठान्तरम्। २. 'जानकीम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'ततस्तत्रभवतीम्' इति पा०। ४. 'शातमखस्य निक्षेपचापस्य प्रत्यासीदति' इति पा०।

समीपमायाति (रामो राक्षसानां वधाय वैष्णवं चापं प्रयोक्ष्यत इति तत्कालसमीपागमनसुक्तम्) इति वृत्तम् प्रचेतसे वरुणाय कथयितुम् वक्तुमिव भगवति भास्वति प्रतीचीं पश्चिमां दिशं प्रविशति उपाच्छंति सति, सूर्यस्यास्तकाले सूर्यस्य प्रतीचीप्राप्तिं वरुणाय वैष्णवधनुष्प्रयोगवेलोपसरगणनिवेदनफलकत्वेनोत्प्रेक्षते।

इसके बाद इन्द्रके द्वारा अगस्त्यके पास न्यासके रूपमें रखे गये वैष्णव चापके कार्यका समय समीप आरहा है इस बातकी सूचना देनेके लिये सूर्य जब पश्चिम दिशामें आ गये तब।

गगनतलमिदमपरमहीधरकटककान्तारसमुद्भवदावपावकशिखाश्रेणिभिः किं[1] शोणितम्, अथवा समीपसमापतत्पतत्पतङ्गरश्मिदृढतरवेष्टननिष्ठ्यूतानलतटतपनोपलजालसमुल्लसज्ज्वालापटलैः किमा[2]पाटलितम्, आहोस्विदागताय मित्राय महार्घमर्घ्यं प्रदातुं प्रमुदितचेतसा प्रचेतसा तूर्णं[3]मर्णवोदरोद्गीर्यमाणमाणिक्यकिरणैः किमरुणितम्, आहोस्वित्तारापथतरङ्गिणीसलिलमपि [4]रसयितुमुज्जृम्भितस्य चरमसागरौर्वाग्नेरर्चिःपुञ्जेन [5]किमिति रञ्जितमिति सकलजनस्य संदेहसंदोहं संदधाने संध्यारागे समुदञ्चिते, सरसीरुहश्रेणिषु पत्रपुटकपाटपिधानासु प्रतिकुमुदभवनं मकरन्दभिक्षामटत्सु मधुव्रतद्विजेषु, विकचकुवलयकलिका[6]कर्षणकषायेषु [7]सायंतनवायुषु, तत इतः संचरत्सु तिमिरेषु, कालागरुधूमस्तोमश्यामलितेषु, दिक्पालपुरगोपुरव्यूहेषु, प्रतिकमलाकरं प्रेङ्खिते विश्लेषवेदनापूर्वरङ्गे रथाङ्ग[8]विहंगदीनक्रेंकारे, नक्षत्रमालालंकृते गगनमतङ्गजे।

गगनतलमिति। इदम् गगनतलम् आकाशमण्डलम् अपरमहीधरकटकेषु अस्ताचलनितम्बेषु यानि कान्ताराणि वनानि तत्समुद्भवस्य तत्र लग्नस्य दावपावकस्य वनाग्नेः शिखाश्रेणिभिः ज्वालाकलापैः शोणितम् किम्? अरुणतां नीतम् किम्? (पश्चिमाचलवनलग्नदवाग्निज्वाला प्रसरन्ती सती वियदिदं रञ्जितवती किमित्याद्योत्प्रेक्षार्थः) अथवा—समीपसमापततः सविधमागतस्य पतङ्गस्य सूर्यस्य रश्मिभिः किरणैः (रश्मिभिः–रज्जुभिरिव) दृढतरवेष्टनेन अतिगाढसंवलनेन निष्ठ्यूतानलानि निर्गतवह्नीनि यानि तटतपनोपलजालानि पर्वततटवर्त्तिसूर्यकान्तिमणि-

---

१. 'किमिह' इति पाठान्तरम्। २. 'आपटलम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अर्णवोद्गीर्यमाण' इति पाठान्तरम्। ४. 'ग्रसितुम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'किमनु' इति पाठान्तरम्। ६. 'कषण' इति पाठान्तरम्।
७. 'सायंवायुषु' इति पाठान्तरम्। ८. 'विहंगानाम्' इति पाठान्तरम्।

समुदयास्तेभ्यः समुल्लसद्भिः प्रकटीभवद्भिः ज्वालापटलैः ज्वालासमुदयैः किम् आपाटलितम् रक्तवर्णीकृतम् ? गगनतलमिति कर्म प्रागुक्तम् । (सूर्यास्तकाले समीपमागच्छतः सूर्यस्य रश्मिभिः रज्जुरूपतांगतैः दृढतरबन्धनं प्राप्य तटवर्त्तिनः सूर्यकान्तमणयो यान् ज्वालाकलापान्प्रकटयन्ति तैर्गगनतलमालोहितं कृतङ्किमिति द्वितीयोत्प्रेक्षार्थः) आगताय समुद्रमुपगताय मित्राय सूर्याय (सुहृदे च) महार्घम् बहुमूल्यम् अर्घ्यम् उपहारं प्रदातुम् समर्पयितुम् प्रमुदितचेतसा प्रसन्नमनसा प्रचेतसा वरुणेन तूर्णम् आशु अर्णवोदरेण समुद्रगर्भेण उद्गीर्यमाणानां प्रकटीक्रियमाणानां माणिक्यानां रत्नविशेषाणां किरणैः रश्मिभिः किम् अरुणितम् ? (सूर्यः प्रचेतसो मित्रं, स वरुणस्य गृहं पश्चिमसागरमागतस्स च वरुणः समागताय स्वसुहृदे सूर्याय महार्घमुपायनमुपहर्त्तुमिच्छति, तदादेशेन सागरो माणिक्यानि स्वगर्भतो निस्सारयति, सद्योनिर्गतानां तेषां माणिक्यानां प्रभाभिः किमिदं व्योमरञ्जितमिति तृतीयोत्प्रेक्षाहृदयम्) अहोस्वित् अथवा तारापथः आकाशम् तस्य तरङ्गिणी आकाशगङ्गा तस्याः सलिलं जलम् अपि रसयितुम् आस्वादयितुम् (पातुम्) उज्जृम्भितस्य प्रवृद्धस्य चरमसागरौर्वाग्नेः पश्चिमसमुद्रस्थितवड़वानलस्य अर्चिः पुञ्जेन ज्वालाजालेन किं रञ्जितम् रक्तीकृतम् ? (सागरजलं निपीयाकाशगङ्गाजलमपि पातुमुद्यतस्य पश्चिमसागरवर्त्तिवडवानलस्याभाभिरिव किमिदमरञ्जि व्योमेति चतुर्थः संशयः) आदिमोत्प्रेक्षात्रयमपि संशयपर्यवसायीति बोध्यम्। इति प्रागुक्तप्रकारचतुष्टयेन सकलजनस्य समग्रसंसारस्य संदेहं संदोहम् संशयनिकरं सन्दधाने समुत्पादयति सन्ध्यारागे समुदञ्चिते प्रवृद्धे, (सन्ध्यारागोदये जाते प्रागुक्तप्रकारैः सन्देहं कर्त्तुं प्रारेभिरे इत्याशयः) सरसीरुहश्रेणीषु कमलकुलेषु पत्रपुटकपाटपिधानासु पत्रपुटरूपकपाटतिरोहितासु सतीषु प्रतिकुमुदभवनम् कुमुदकुसुमानां प्रत्यास्पदम् मकरन्दभिक्षाम् पुष्परसयाचनाम् अटत्सु कुर्वत्सु मधुव्रतद्विजेषु भ्रमररूपपक्षिषु, (ब्राह्मणेष्विति ध्वनिः) विकचकुवलयकलिकाकर्षणकषायेषु स्फुटकमलकोरकसङ्घर्षसुरभिषु सायंतनवायुषु सान्ध्यसमीरेषु (सायंकाले कमलकलिकास्पर्शसुगन्धौ वायौ वाति सतीत्याशयः) तत इतः यत्र तत्र तिमिरेषु तमस्सु सञ्चरत्सु भ्रमत्सु, कालागुरुधूमस्तोमः कालागुरुधूमसमुदायस्तद्वत् (तमसा) श्यामलितेषु कृष्णतां नीतेषु दिक्पालपुरगोपुरव्यूहेषु दिक्पालानां नगराणां वहिर्द्वारेषु (सर्वासु दिशास्वन्धकारावृतास्वित्यर्थः) प्रतिकमलाकरम् सर्वेषु कमलाकरेषु विरहवेदनापूर्वरङ्गे विरहव्यथाप्रस्तावनास्वरूपे रथाङ्गविहङ्गदीनक्रेंकारे चक्रवाकपक्षिकरुणक्रन्दने, (सन्ध्याकाले वियुज्यमानानां चक्रवाकानां करुणध्वनौ प्रतिकमलाकरं प्रवृत्ते सतीति भावः) नक्षत्रमालालङ्कृते तारामाल्यभूषिते गगनमतङ्गजे आकाशकरिणि, (आकाशे तारागणेषु प्रकटत्सु सत्स्वित्यर्थः) 'पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च' 'आहो उताहो किमुतविकल्पे किं किमूत च' 'स्वित्प्रश्ने च वितर्के च' 'तारापथोऽन्तरिक्षं च'

'रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसः' 'चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः' इति सर्वत्रामरः।

क्या यह आकाश पश्चिमाचल परिस्थित वनमें उत्पन्न दावानलकी शिखाओंसे रक्तवर्ण हो गया? अथवा समीप आते हुए सूर्यकी किरणरूप रस्सीसे कसकर वेष्टित सूर्यकान्तमणिसे निकलती हुई ज्वालाओंसे रक्त हो गया है? अथवा आये हुए मित्र (सूर्य–दोस्त) को महामूल्य उपहार प्रदान करनेके लिये अभी अभी समुद्रके गर्भसे निकाले गये माणिक्योंकी किरणोंसे रञ्जित हो गया है? या आकाशगङ्गाके जलको भी पी लेनेकी इच्छासे बढ़ने वाले पश्चिम सागरस्थ वड़वानलकी आभासमुदायसे रञ्जित हो गया है? इस तरहके सन्देहोंको लोगोंके हृदयमें उपजाने वाले सन्ध्यारागके समुदित हो जानेपर, कमलकुलके पत्रपुटरूप कपाटमें छिप जाने पर, भ्रमरकुलरूप द्विज (ब्राह्मण–पक्षी) जब प्रतिकुमुदवनमें घूमघूमकर मकरन्दकी भीख माँगने लगे, सायङ्कालिक वायु जब कमलकोरकोंके स्पर्शसे सुगन्धित होने लगी, अन्धकार इधर उधर घूमने लगे, कालागुरुके धूमसमुदायके समान अन्धकारसे दिक्पालोंके नगरके बाहरी द्वार जब काले पड़ गये, हर कमलवनमें वियोगवेदनाके पूर्वरूप स्वरूप चक्रवाकोंका करुणक्रन्दन जब प्रकट होने लगा, आकाशरूप हाथी जब नक्षत्रमालासे भूषित हो गया तब।

आविर्बभूव पूर्वाद्रेः शृङ्गे शृङ्गारजीवितम्।
तमस्तमालकान्तारकुठारः शशलाञ्छनः॥ १०॥

आविर्बभूवेति। तमः अन्धकार एव तमालकान्तारम् तापिच्छतरुकाननम् तस्य कुठारः छेदनकर्त्ता ध्वान्तविध्वंसक इत्यर्थः, शृङ्गारजीवितम् शृङ्गारोद्दीपकः शशलाञ्छनः चन्द्रमाः पूर्वाद्रेः उदयाचलस्य शृङ्गे शिखरे आविर्बभूव प्रकटीभूतः। तमालकान्तारकुठार इति परम्परितरूपकम्। 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छः' 'उदयः पूर्वपर्वतः' इत्युभयत्रामरः।

तमालवनके लिये कुठारस्वरूप तथा शृङ्गारको उद्दीपित करनेवाला चन्द्रमा उदयाचलके शिखर पर उदित हुआ॥ १०॥

तत्करास्तमसा रुद्धा रेजिरे गगनाजिरे।
शैवालचयसंच्छन्नाः सरसीव बिसाङ्कुराः॥ ११॥

तत्करा इति। तस्य चन्द्रमसः कराः किरणाः गगनाजिरे आकाशरूपे प्राङ्गणे तमसा अन्धकारेण रुद्धाः छन्नाः सरसि सरोवरे शैवालचयसंछन्नाः शैवालजालावृताः बिसाङ्कुरा मृणालपल्लवा इव रेजिरे चकाशिरे। यथा सरसि शैवालजालावृताः श्वेता मृणालपल्लवाः शोभन्ते तथा तमसा व्याप्ताः शशाङ्ककरा नभसि शुशुभिरे इत्याशयः। 'कासारः सरसी सरः' 'जलनीली तु शैवालं शैवालः' 'मृणालं बिसम्' इति सर्वत्रामरः। उपमाऽलङ्कारः॥ ११॥

आकाररूप प्राङ्गणमें अन्धकारमें लिपटे हुए चन्द्रमाके कर सरोवरमें शैवालमें लिपटे हुए मृणालदण्डके समान शोभित होते थे.॥ ११ ॥

तस्मिन्प्रदोषसमये सहसा हनूमान्
कीर्तिच्छटाजव[1]निकामपनीय शत्रोः ।
आविर्बभूव सुमनःपरितोषणाय
लङ्काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः ॥ १२ ॥

तस्मिन्निति । तस्मिन् प्रदोषसमये रजनीमुखवेलायाम् लङ्काप्रवेशरूपे नवे अविरचितपूर्वे नाटके सूत्रधारः प्रवर्त्तकः (इतः पूर्वं केनाप्यन्येन लङ्काप्रवेशस्य नवनाटकत्वं तत्कर्त्तुश्च हनूमतः सूत्रधारत्वं बोध्यम्) शत्रोः राक्षसरूपारिकुलस्य कीर्त्तिच्छटाजवनिकाम् यशोरूपां जवनिकाम् अपनीय सुमनःपरितोषणाय देवानामानन्दाय विज्ञजनप्रतीये सहसा हठात् आविर्बभूव आत्मानं प्रकटयामास । तस्मिन् प्रदोषकाले हनूमान् रावणपालितायां लङ्कायां प्रवेशकर्त्तुमाविर्बभूव, स चेदं प्रथमतया लङ्कां प्रविशतीति तस्य लङ्काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारत्वमुच्यते, सूत्रधारो हि प्रविशञ्जवनिकामपसारयति तद्वदयमपि शत्रुकीर्त्तिच्छटामपसारितवान्, सूत्रधारो स्वनाटकप्रदर्शनेन सुधियस्तोषयत्यपि देवानतोषयंल्लङ्काप्रवेशेनेति भावः । अत्र समस्तवस्तुवर्त्तिसावयवरूपकमलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १२ ॥

उस प्रदोष समयमें हनूमान् एकाएक शत्रुओंकी कीर्त्तिसमुदायरूप पर्देको हटाकर देवों और विद्वानोंको सुखित करनेके लिये लङ्काप्रवेशरूप अदृष्टपूर्व नाटकके सूत्रधारके रूपमें प्रकटित हुए ॥ १२ ॥

तत्काले लङ्काधिदेवतामात्मना सह विग्रहं विधातुं गृहीतयुवतिविग्रहां [2]मार्गप्रसारस्यार्गलीभूय भूयसा तर्जयन्तीं निर्जित्य [3]तया वानररचितावज्ञोपज्ञं [4]निजनिलयविलयं सरसिजासनशासनादावेदयन्त्या विहीतानुमतिर्मारुतिर्लङ्कायामविकलमेव मैथिलीं विचिन्वन्नैर्ऋत[5]चक्रवर्तिनः प्रासादमाससाद ।

तत्काले इति । तत्काले हनूमत्कर्त्तृकपुरप्रवेशसमये आत्मना स्वेन हनूमता सह विग्रहं युद्धं विधातुं कर्त्तुम् गृहीतयुवतिविग्रहाम् धृतस्त्रीशरीराम् मार्गप्रसारस्य यथापथं सञ्चारस्य अर्गलीभूय विष्कम्भतां प्राप्य (प्रतिबन्धकतामुपेत्य) भूयसा

---

१. 'यवनिकाम्' इति पाठान्तरम् ।
२. 'मार्गस्य' इति पाठान्तरम् ।
३. 'ततस्तया' इति पाठान्तरम् ।
४. 'निजविलयम्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'नैर्ऋति' इति पाठान्तरम् ।

बाहुल्येन तर्जयन्तीं भीषयन्तीम् लङ्काधिदेवताम् लङ्कानगराधिष्ठात्रीम् निर्जित्य मुष्टिघातेन पराजित्य तया स्त्रीरूपं प्राप्य युध्यमानया लङ्काधिष्ठातृदेवतया वानररचितावज्ञोपज्ञम् वानरकृतपराजयप्रथमप्रकाश्यम् सरसिजासनशासनात् ब्रह्मनिदेशात् निजनिलयविलयम् लङ्कापुरवासिविनाशम् आवेदयन्त्या विहितानुमतिः कृतानुमतिः मारुतिः हनूमान् लङ्कायाम् अविकलम् सर्वतः मैथिलीम् विचिन्वन् गवेषयन् नक्तंचरचक्रवर्तिनः राक्षसचक्रवर्तिनो रावणस्य प्रासादम् भवनम् आससाद प्राप्तवान्। यदा हनूमान् लङ्कां प्रवेष्टुमुपक्रान्तवाँस्तदा स्त्रीवेषधारिणी लङ्काधिदेवता तन्मार्गमवरुध्य तेन सह युद्धमारब्धवती, हनूमाँस्तां मुष्टिघातेन विजिग्ये, विजिता सा हनूमते धातुः शासनमश्रावयत्—'यदा त्वां वानरः कश्चित् विक्रमाद्वशमानयेत्। तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम्' इति। तथोक्त्वा सा हनूमतो लङ्काप्रवेशमन्वमन्यत, सर्वतो लङ्कायां सीतामन्वेष्टुकामश्च हनूमान् राक्षससार्वभौमस्य भवनमाससादेत्यर्थः।

उस समय अपने साथ लड़नेके लिये स्त्रीरूपधारिणी तथा मार्ग रोककर खड़ी हुई लङ्काकी अधिष्ठात्री देवताको, जो बहुत प्रकारसे डरा रही थी, हनूमान्‌ने पराजित किया, पराजित होनेपर उसने ब्रह्माका आदेश सुनाया कि जब तुमको कोई वानर पराजित करे, तब समझना कि लङ्कावासियोंके विनाशका समय आ गया है, ऐसा कहकर उसने हनूमान्‌को लङ्कामें पैठनेकी अनुज्ञा दे दी, अब लङ्कामें सर्वत्र सीताका अन्वेषण करनेके लिए हनूमान् राक्षसराजके भवनमें आये।

तत्र—

एषा राक्षससार्वभौमनगरी रक्षश्चमूरक्षिता
तस्येदं सदनं [1]सुवर्णशिखरं बिभ्राणमभ्रावलिम्।
एतत्पुष्पकमाहृतं धनपतेरित्यादरान्मारुते-
स्तत्रादर्शयदिन्दुदीपकिरणप्रद्योतिताशा निशा ॥ १३ ॥

तत्र, एषेति। तत्र तत्प्रासादप्राप्तिकाले, एषा इयं पुरोदृश्यमाना रक्षश्चमूरक्षिता राक्षससैन्यपालिता राक्षससार्वभौमनगरी सर्वेषां रक्षसामीश्वरस्य रावणस्य नगरी पुरी लङ्केत्यर्थः, अभ्रावलिम् मेघमालाम् बिभ्राणम् धारयत् (अत्युच्छ्रितमित्यर्थः) तस्य रावणस्य सदनमिदम् एतद्भवनम्, धनपतेः कुबेरात् आहृतम् बलाद् गृहीतम् एतत् पुष्पकं नाम विमानम्, इति एवं प्रकारेण इन्दुकिरणप्रद्योतिताशा चन्द्रकरप्रकाशितदिगन्तराला निशा रात्रिः मारुतेः आदरात् हनूमति बहुमानात् अदर्शयत् तत्तद्वस्तूनि साक्षादकारयदित्यर्थः। यदा हनूमान् रावणप्रासादमुपगत-

१. 'विमानशिखरैः' इति पाठान्तरम्।

स्तदा चन्द्रप्रकाशविशदा रात्रिर्हनूमति बहुमानमिव दर्शयन्ती राक्षससैन्यसुरक्षिता एषा रावणपुरी लङ्का, स्वोच्छ्रायेण मेघमण्डलपर्यन्तगामि कनकशिखरमेतत् तदीयं भवनम्, कुबेराद्बलाद् गृहीतमेतत्पुष्पकविमानम्, एवं प्रकारेण तत्तद्वस्तूनि हनूमतो दर्शनगोचरतामानयदित्याशयः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १३ ॥

चन्द्रमाके प्रकाशसे दिशाओंको चमकानेवाली चांदनी रातने हनूमान्‌के प्रति आदर प्रकट करके यह है राक्षससैन्यपालिता लङ्कापुरी, यह है मेघोंको चूमनेवाला स्वर्णमय शिखरशाली राक्षसराजका भवन और यह है पुष्पक विमान जो कुबेरसे छीनकर लाया गया है, इत्यादि वस्तुएँ दिखलायीं ॥ १३ ॥

अपि च—

आदित्यः कृतकृत्य एष भविता सीतापतेरीदृशं
साहाय्यं विरचय्य कीर्तिमतुलामादित्सुना[1] सूनुना।
इत्यालोच्य तदा किल स्वयमपि ख्यातिं ग्रहीतुं परां
लङ्कायां रघुनाथदूतसरणौ चन्द्रेण दीपायितम् ॥ १४ ॥

अपि च, आदित्य इति। किञ्च एषः आदित्यः सूर्यः सीतापतेः रामस्य ईदृशम् साहाय्यम् सीतान्वेषणे वानरवाहिनीनियोजनरूपां सहायताम् विरचय्य कृत्वा अतुलाम् अनुपमेयाम् कीर्त्तिं ख्यातिम् आदित्सुना ग्रहीतुमिच्छता सूनुना पुत्रेण सुग्रीवेण कृतकृत्यः कृतार्थो भविता भविष्यति (सूर्यः स्वपुत्रसुग्रीवद्वारकं रामसाहायकं कृत्वाऽऽत्मानं कृतार्थयिष्यति) इत्यालोच्य एवं विचार्य तदा हनूमति लङ्कायां भ्रमति सति चन्द्रेण चन्द्रमसा स्वयम् अपि परां ख्यातिम् उत्कृष्टं यशो ग्रहीतुं लब्धुम् लङ्कायाम् रघुनाथदूतसरणौ रामकार्यार्थं गच्छतो हनूमतो मार्गे दीपायितम् दीपवदाचरितम्। चन्द्रश्चिन्तितवाँस्तदा यदयं सूर्यस्तु स्वपुत्रेण कृतया रामसहायतयैवात्मानं धन्यं मंस्यते, परं मया तु किमपि तत्साहायकं नाचरितं, कर्त्तव्यं तु मयाऽपि, तथा विभाव्य चन्द्रो हनूमतो वर्त्मनि प्रकाशाधानविधया साहायकं कृतवानिति भावः। पूर्वोक्ताविपरीतं वृत्तम् ॥ १४ ॥

सीतापति रामकी इस तरह सहायता करनेसे अनुपम कीर्त्तिशाली अपने पुत्र सुग्रीवके द्वारा सूर्य कृतकृत्य हो जायेंगे, (हमको भी तो कुछ करना चाहिये) ऐसा हृदयमें सोचकर उस समय जब हनूमान्‌जी लङ्का भ्रमण कर रहे थे चन्द्रमा रामदूत पवनसुतके मार्गमें दीप बन गया ॥ १४ ॥

एवमेव पर्यटन्नस्वप्नसुन्दरीसौन्दर्यमुद्रां निद्रयाप्यतिशय्य शय्यागृहे

१. 'अमिताम्' इति पाठान्तरम्।

कृतसंवेशं वेश[1]युवतिपरिवृतमवरोधवधूजनमप्यनिरोधेन निरीक्ष्य तत्र वितथमनोरथो मारुतिर्विरचितबहुविधचिन्ताप्रकारः [2]प्राकारादवप्लुतः सन्नशोकवनिकायामपि मैथिलीमन्वेष्टु[3]मिष्टदेवताप्रणतिमतनुत।

एवमेवेति। एवम् उक्तप्रकारेण चन्द्रप्रकाशितपथत्वेन एव पर्यटन् इतस्ततो भ्राम्यन् मारुतिः अस्वस्नसुन्दर्यः देवाङ्गनाः तासां सौन्दर्यमुद्रा रूपसाम्यं देवबालासमानं सौन्दर्यम् निद्रया स्वप्नदशयाऽपि अतिशय्य पराजित्य (जाग्रदवस्थायां देवाङ्गनासौन्दर्यविजयस्य का कथा, स्वप्नकालेऽपि तासां सौन्दर्यमतिशय्य शयानमित्यर्थः, अवरोधविशेषणमिदम्) शय्यागृहे कृतसंवेशम् शयनकक्षे शयानम्, वेशयुवतिजनपरिवृतम् वेश्याजनसहितम् अवरोधवधूजनम् मन्दोदर्यादिरावणस्त्रीसमुदयम् अनिरोधेन अवारितभावेन निरीक्ष्य तत्र अवरोधे वितथमनोरथः व्यर्थीभूतसीतादर्शनलालसः (सीतामपश्यन्) विरचितबहुविधचिन्ताप्रकारः किं सीता रावणेन विवशीकृत्य स्वस्मिन्ननुरञ्जिताऽथवा व्यापादितेत्यादिनानाप्रकारां चिन्तां कृत्वा प्राकारादवप्लुतः लङ्घितप्राकारः सन् अशोकवनिकायाम् अशोकतरुप्राधान्यात्तन्नाम्ना प्रसिद्धायां वाटिकायाम् अपि मैथिलीम् सीताम् अन्वेष्टुं गवेषयितुम् इष्टदेवताप्रणतिम् स्वेष्टनमस्कारम् अतनुत कृतवान्।

इस तरह घूमते हुए हनूमान् जीने देवाङ्गनाओंके सौन्दर्यको स्वप्नावस्थामें परास्त करके शयनकक्षमें सोती हुई वेश्याओंसे युक्त मन्दोदरी आदि रावणकी रानियोंको बेरोकटोकके देखकर वहाँ अपने मनोरथके विफल होनेसे (सीताको नहीं पानेसे) नाना प्रकारकी चिन्ता करके प्राकारको लांघकर अशोकवाटिकामें भी सीताका अन्वेषण करनेके निमित्त अपने इष्टदेवोंको नमस्कार किया।

असौ जनकनन्दिनीं तत इतो विचिन्वन्क्षणा-
दशोकवनिकामगादपगतान्यमार्गभ्रमः।
परामभिलषन्गतिं शमधनो यथा निर्मम-
स्त्रयीमखिलकिल्बिषप्रशमनैकदिव्यौषधिम्॥ १५॥

असाविति। असौ हनूमान् जनकनन्दिनीं सीताम् तत इतः यत्र तत्र विचिन्वन् अन्विष्यन् अपगतान्यमार्गभ्रमः अपास्तमार्गान्तरसञ्चारः (मार्गेष्वन्येषु सञ्चारं विहाय) क्षणात् आशु अशोकवनिकाम् अशोकवाटिकाम् अगात् गतवान्, यथा परांगतिम् मोक्षलक्षणामवस्थाम् अभिलषन् कामयमानः निर्ममः ममतावर्जितः शमधनः शम एव धनं यस्य स तादृशः शान्तियुक्तचित्तः अखिलानाम् सकलानाम्

---

१. 'युवतीजनपरिवृतम्' इति पाठान्तरम्।   २. 'प्रासादात्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अभीष्टदेवताप्रणामम्' इति पाठान्तरम्।

किल्विषाणाम् पापानां प्रशमने निरासे एकदिव्यौषधिम् अद्वितीयां महौषधिम् त्रयीम् वेदत्रयीम् ब्रह्मविद्याम् (गच्छति) अत्रापि अपगतान्यमार्गभ्रमः अपास्तसंसारसञ्चरणमार्गः त्यक्तजन्मग्राहकवैदिकक्रियाकलाप इत्यर्थकं विशेषणं शमधने योजनीयम् । यथा मुक्तिकामः कश्चन विरक्तः सांसारिकसिद्धिप्रदकर्मनिरपेक्षः सन् निर्ममो भूत्वा सकलपापक्षयैकसाधनीं ब्रह्मविद्यामुपैति, तथैव हनूमान् सीतान्वेषणपरायणः सर्वानन्यान् पथः परित्यज्याशोकवनिकामुपैषीदित्याशयः । 'इति वेदास्त्रयस्त्रयी' इत्यमरः । उपमाऽलङ्कारः । पृथ्वीवृत्तम्—'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति च तल्लक्षणम् ॥ १५ ॥

अन्य सांसारिक कर्ममार्गसे पृथक् होकर कोई शान्तिनिष्ठ, निर्मम, मोक्षकामी विरक्त जैसे समस्तपापक्षयमें दिव्यौषधिस्वरूप ब्रह्मविद्याको अपनाता है उसी प्रकार दूसरे रास्तोंमें भटकना छोड़कर सीताको ढूँढ़नेमें व्यग्र हनूमान्‌जी अशोकवाटिकामें आये ॥१५॥

ततस्तस्यां नाग[1]पुंनागतालहिन्तालतमालकृतमालसरलबकुल[2]वञ्जुलतिलकामलककुटजलिकुचकतककक्कोल[3]ाङ्कोललवङ्गविकङ्कत[4]केतकीकदम्बोदुम्बरकपित्थाश्वत्थकुरबकमरुबक[6]माकन्दकुन्दतिन्दुकचन्दनस्यन्दनचम्पकचाम्पेयपनसवेतसपलाशपाटला[7]रसाल[8]प्रियालुप्रायैरनेकैरनोकहनिवहैः [9]परिवृतायां परिभ्रमन्नभ्रंकष[10]विकटविटपनिबिडितगगनप्रपञ्चां काञ्चन काञ्चनमयीं शिंशपामारुरोह ।

ततस्तस्यामिति । ततः अशोकवनिकाप्राप्त्यनन्तरम् तस्याम् अशोकवनिकायाम् नागः नागकेसरः, पुंनागः देववल्लभः, तालः तृणराजः स्वनामख्यातः, हिन्तालः श्रीतालः, तमालः तापिच्छः श्यामकायोपमानभावेन प्रथितः, कृतमालः आरग्वधः, सरलः देवदारुः, बकुलः मौलिश्रीवृक्षः, वञ्जुलः अशोकः, तिलकः क्षुरकापरनामधेयः, आमलकः तिष्यफलः, कुटजः गिरिमल्लिकावृक्षः, लिकुचः लकुचवृक्षः, कतकः जलशोधकफलतया प्रसिद्धः, कक्कोलः कोशफलो ग्रन्थाविशेषः, अङ्कोलः निकोचकः, लवङ्गः स्वनामप्रसिद्धः, विकङ्कताः स्रुवावृक्षाः, केतक्यः प्रसिद्धाः, कदम्बः नीपः, उदुम्बरः यज्ञाङ्गवृक्षः, कपित्थः दधिफलः, अश्वत्थः पिप्पलः, कुरबकः रक्तकुरण्टकः, मरुबकः पिण्डीतकः, माकन्दः चूतवृक्षः, कुन्दः माध्यपुष्पतरुः, तिन्दुकः स्फूर्जकतरुः, चन्दनः

---

१. 'पुंनाग' इति नास्ति क्वचित् ।
२. 'वञ्जुल' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'अङ्कोल' इति नास्ति क्वचित् ।
४. 'केतकी' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'कदम्बक' इति पाठान्तरम् ।
६. 'माकन्द' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'रसाल' इति नास्ति क्वचित् ।
८. 'प्रियाल' इति पाठान्तरम् ।
९. 'परिवृताम्' इति पाठान्तरम् ।
१०. 'विकट' इति नास्ति क्वचित् ।

मलयजतरुः, स्यन्दनः तिनिशः, चम्पकः हेमपुष्पकः, चाम्पेयः केसरः, पनसः कण्टकिफलः, वेतसः वेत्रलता, पलाशः किंशुकः, पाटलः मुष्ककः, रसालः आम्रभेदः, प्रियालुः, राजादनः एतत्प्रायैः एतन्मुख्यैः अनेकैः नानाभेदैः अनोकहनिवहैः वृक्षसमुदायैः परिवृत्तायाम् युक्तायाम् अशोकवनिकायाम् परभ्रमन् इतस्ततः सञ्चरन् अभ्रङ्कषैः आकाशचुम्बिभिः विकटविटपैः दीर्घाभिः शाखाभिः निविडितः व्याप्तः गगनप्रपञ्चः आकाशाभोगो यथा सा तादृशीं दीर्घाभिराकाशचुम्बिनीभिश्च शाखाभिराकाशमावृत्य स्थिताम् काञ्चन कामपि काञ्चमयीम् सौवर्णीम् शिंशपाम् शिंशपावृत्तम् आरुरोह आरूढवान् ।

इसके बाद नागकेसर, देवबल्लभ, ताल, श्रीताल, तमाल, अमलतास, देवदारु, मौलसिरी, अशोक, तिलका, आंवला, कोरैया, वड़हर, निर्मली, कक्कोल, अङ्कोल, लवङ्ग, स्रुवावृक्ष, केवड़ा, कदम्ब, उदुम्बर, कैंत, पीपल, कुरवक, मरुवक, आम, कुन्द, तेन, चन्दन, तिनिश, चम्पक, केसर, कटहल, बेंत, ढाक, पांड़र, आम्रभेद, प्रियालु प्रभृति अनेक तरहके वृक्षोंसे परिवृत उस अशोकवाटिकामें घूमते हुए हनूमान्जी आकाशको चूमनेवाली विशाल शाखाओंसे गगनमण्डलको व्याप्त करनेवाला एक सौवर्णशिंशपा (शीशम) वृक्ष पर चढ़ गये ।

तत्र तत्पत्रसंछन्नगात्रः पुत्रो नभस्वतः ।
न्यग्रोधदलसंलीनजनार्दनदशां दधौ ॥ १६ ॥

तत्रेति । तत्र तस्मिन् समये तत्पत्रसंछन्नगात्रः शिंशपातरुपत्रावृतशरीरः नभस्वतो वायोः पुत्रः हनूमान् न्यग्रोधः वटवृक्षः तस्य दलेषु पत्रेषु संलीनस्य निलीयस्थितस्य जनार्दनस्य विष्णोः दशां स्थितिम् सादृश्यं दधौ धारितवान् । प्रलये वटपत्रपुटावृतदेहो यथा जनार्दनः प्रतिभाति, शिंशपातरुपत्रावृतदेहो हनूमानपि तथैव ददृशे इत्यर्थः । 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' 'न्यग्रधो बहुपाद् वटः' इत्युभयत्रामरः । उपमात्रालङ्कारः ॥ १६ ॥

उस शिंशपा वृक्षके पत्तोंमें छिपा हुआ है शरीर जिसका ऐसे हनुमान् वटपत्रमें लीन भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त कर रहे थे ॥ १६ ॥

मल्लीं चूतवनादिव स्नुहिवने म्लेच्छेन संस्थापितां
मालां देवकुलादिवामिषधिया क्षिप्तां श्मशाने शुना ।
देवीमाश्रमतस्तथा [1]स्वभवनं नक्तंचरेण च्छला-
दानीतामपनीतवेषरचनामालोकयन्मारुतिः ॥ १७ ॥

१. 'स्वभवने' इति पाठान्तरम् ।

मल्लीमिवेति । म्लेच्छेन यवनेन चूतवनात् सहकारोद्यानात् (उत्पाट्य) स्नुहिवने सीहुण्डिकानने संस्थापितां निहितां मल्लीम् विचकिलालताम् इव, शुना कुक्कुरेण देवकुलात् देवमन्दिरात् आमिषधिया मांसभ्रान्त्या श्मशाने पितृकानने क्षिप्तां मालाम् स्रजम् इव, तथा तेन प्रकारेण नक्तञ्चरेण राक्षसेन रावणेन छलात् (तपस्विवेषविन्यासरूपवञ्चनव्यापारमास्थायेत्यर्थः) आश्रमतः तपोवनात् स्वभवनम् लङ्कापुरम् आनीताम् देवीम् वन्दनार्हाम् सीताम् अपनीतवेषरचनाम् अपगतप्रसाधनाम् मलिनाम् मारुतिः हनूमान् आलोकयत् दृष्टवान् । यथा म्लेच्छो मल्लीं चूतवनादुत्पाट्य स्नुहिवने स्थापयेत् यथा वा श्वा मालामामिषभ्रमेण देवालयादपनीय श्मशानभूमौ स्थापयेत्, तथा छलमास्थाय रक्षसा रावणेन तपोवनादानीय लङ्कापुरे स्थापितां देवीं सीतामनलङ्कृतवपुषं मारुतिरपश्यदित्यर्थः । 'मल्ली विचकिला शीतभीरुः स्यादष्टपत्रिका' 'सजातीयगणे गोत्रे गृहेऽपि कथितं कुलम्' इत्युभयत्रामरः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १७ ॥

म्लेच्छ द्वारा आम्रवनके उखाड़ कर थूहरके वनमें रखी गई मल्लीके समान एवं कुत्तेके द्वारा देवमन्दिरसे लाकर श्मशान भूमिमें रखी गई मालाके समान, राक्षस द्वारा छल करके आश्रमसे लाकर अपने भवनमें रखी गई देवी सीताको अप्रसाधितरूपमें हनूमान्‌ने देखा ॥ १७ ॥

पुनरयमे[1]नामालोक्यैवं चिन्तां ततान ।

पुनरिति । एनाम् सीताम् आलोक्य दृष्ट्वा अयम् हनूमान् एवम् वक्ष्यमाणदिशा चिन्तां ततान चकार ।

सीताजीको देखकर फिर हनूमान्‌ने इस प्रकार चिन्ता की ।

ज्योत्स्नां विनापि निवसेन्निशि शीतभानु-
श्छायां विनापि [2]विलसेद्दिवसेश्वरोऽपि ।
एनां विना रघुपतिः परिगृह्य धैर्यं
सप्राण एव वसतीति विचित्रमेतत् ॥ १८ ॥

ज्योत्स्नामिति । निशि रात्रौ शीतभानुः चन्द्रः ज्योत्स्नां विना चन्द्रिकां विहाय अपि निवसेत् तिष्ठेत्, दिवसेश्वरः सूर्यः अपि छायां विना छायां नाम स्वस्त्रियं विहाय अपि विलसेत् प्रकाशेत । उभयभेदसंभाव्यत्वेन प्रसिद्धमपि कदाचित्संभवेदपि, न तयोस्तथावस्थानेऽपि तावदाश्चर्यं भावि इत्यर्थः । रघुपतिः रामः एनाम् सीतां विना धैर्यं परिगृह्य एतद्विरहेऽपि स्वस्थमनाः सप्राणः सजीव एव वसति इत्येतत् विचित्रम् अत्याश्चर्यकरम् । चन्द्रचन्द्रिकयोस्सूर्यच्छाययोश्चापि वियोगस्तथा नाश्चर्यं तनोति

१. 'एनामालोक्य' इति नास्ति क्वचित् । २. 'निवसेत्' इति पाठान्तरम् ।

यथाऽनयो रामसीतयोः, सीतावियोगे रामस्य जीवनं नितान्तमाश्चर्यजनकमित्याशयः। अत्र शीतभानुदिवसेश्वरयोर्ज्योत्स्नाच्छायाविनाभावेन विलसनासम्बन्धेऽपि तत्संबन्धाभिधानादसंबन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥

चन्द्रमा रातमें कदाचित् चन्द्रिकाके विना भी रह सकता है, सूर्य भी छायाके विना प्रकाशित रह सकता है, किन्तु सीताके विरहमें भी राम धीरज धरके जी रहे हैं यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ १८ ॥

एवं चिन्तयता हनूमता [1]कथमपि निशीथसमये गते निशीथिनीनाथेऽपि चरमगिरिशिखरोपकण्ठ[2]सेवार्थमुत्कण्ठमाने दशकण्ठस्तु निद्राशेषेण स्मर[3]शरप्रहारेण च कलुषीकृताक्षः सरसहरिचन्दनचर्चया जानकीदर्शनेच्छया च प्रकटितरागः [4]परिवर्तित[5]वैकक्षकमालया [6]मुकुटरत्नप्रभया च तिरस्कृतनक्षत्रमालः शनैः शनैरविशदशोकवनिकाम्।

एवमिति। एवं प्रोक्तप्रकारेण चिन्तयता विभावयता हनूमता कथमपि महता कष्टेन निशीथसमये अर्धरात्रे गते गमिते सति, निशीथिनीनाथे चन्द्रे अपि चरमगिरेः पश्चिमाचलस्य शिखरोपकण्ठस्य शृङ्गोपरितनभागस्य सेवार्थम् आश्रयणाय उत्कण्ठमाने अभिलाषिणि सति, चन्द्रेऽस्ताचलशिखरमारोढुमिच्छति सतीत्यर्थः, दशकण्ठः रावणः तु निद्राशेषेण स्वापावशिष्टांशेन स्मरशरप्रहारेण कामबाणाघातेन च कलुषीकृताक्षः रञ्जितनयनः (निद्रया शिष्यमाणया कामपीडया च रक्तलोचनः) सरसहरिचन्दनचर्चया आर्द्ररक्तचन्दनलेपेन जानकीदर्शनेच्छया सीतावलोकनवासनया च प्रकटितरागः दर्शितस्वकायलौहित्यः प्रकटीकृतस्वीयसीताविषयकानुरागश्च, परिवर्त्तिता उपरि सन्निवेशेन लम्बमाना या वैकक्षकमाला तिर्यक्प्रसारिता पुष्पमाला तया तिरस्कृतनक्षत्रमालः अधःकृततारागणः, मुकुटरत्नप्रभया किरीटस्थमाणिक्यभासा च तिरस्कृतनक्षत्रमालः न्यक्कृतसप्तविंशतिसंख्यकमौक्तिकमालश्च, शनैः शनैः मदेन मन्मथावेशेन च मन्दमन्दम् अशोकवनिकाम् अविशत् प्रविष्टः। 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' 'रागोऽनुरक्तौ लोहितादिषु' 'वैकक्षकं तु तत्, यत्तिर्यक्क्षिप्तमुरसि' 'सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः' इति सर्वत्रामरः।

इस तरह चिन्ता करते हुए हनूमान्‌ने किसी तरह आधी रात बिता दी, जब चन्द्रमा पश्चिमाचलशिखरकी ओर जानेके लिये उत्कण्ठित होने लगे (अर्थात् रात ढलने लगी)

---

१. 'नीते निशीथसमये निशीथिनीनाथे चरम' इति पाठान्तरम्।

२. 'सेवासमुत्कण्ठमाने' इति पाठान्तरम्। ३. 'शर' इति नास्ति क्वचित्।

४. 'परिवर्तित' इति नास्ति क्वचित्। ५. 'वैकक्षमालया' इति पाठान्तरम्।

६. 'मुकुटतट' इति पाठान्तरम्।

तब निद्राके अपूर्ण रहने तथा कन्दर्पकृत प्रहारसे रक्ताक्ष, गीले रक्तचन्दनके लेप तथा जानकी दर्शनेच्छासे प्रकटित राग (राग-लालिमा तथा अनुराग) ऊपर लटकती हुई माला तथा मुकुटके रत्नकी प्रभासे नक्षत्रमाला तारामण्डल और सत्ताईस दाने वाली मुक्ता-मालाको तिरस्कृत करता हुआ रावण धीरे-धीरे अशोकवाटिकामें पैठा।

रजनिचरमभागे वारसीमन्तिनीनां
करतलकलिताभिर्दीपिकामार्जनीभिः।
दिशि दिशि परिमृष्टं यत्तमस्तत्समस्तं
हृदयमवजगाहे केवलं रावणस्य ॥ १९ ॥

रजनिचरमेति। रजनिचरमभागे रात्रेरन्तिमेंऽशे वारसीमन्तिनीनां वारवधूनां रावणसहचरीणां वेश्यानामित्यर्थः, करतलकलिताभिः हस्तैर्धृताभिः दीपिकाभिः प्रदीपैरिव मार्जनीभिः शोधनीभिः दिशि दिशि यत्तमः परिमृष्टं शोधितम् क्षपितम्, तत्समस्तं तमः केवलं रावणस्य हृदयमवजगाहे। तमः पदं द्व्यर्थकम्-अन्धकारः, मोहश्चेति तदर्थद्वयम्, रात्रिशेषसमये रावणेन सह चलन्तीभिः दीपयुक्तकराभिः वेश्याभिः दिशि दिशि व्याप्तं यत्तमो निरस्तं तत्तमो मोहीभावमापद्य रावणस्य हृदयं प्राविशदित्याशयः। सीताविषयकरावणहृदयस्थमोहतमसः स्त्रीजनकरधृतदीपिकासमूहिततमोरूपतयोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ १९ ॥

रात्रिशेष समयमें रावणके साथ चलती हुई वेश्याओंके हाथमें वर्त्तमान दीपक झाडूसे जो अन्धकार बहाड़कर दूर हटाया गया वह सब तम (मोह) बनकर रावणके हृदयमें इकट्ठा हो गया ॥ १९ ॥

सोऽयं मदान्धहृदयो रघुवीरपत्नीं
सीमन्तिनीति हतनीतिरवाप पापः।
आमूलपल्लवितकोमलसल्लकीति
वैतानपावकशिखामिव वारणेन्द्रः ॥ २० ॥

सोऽयमिति। मदान्धहृदयः दर्पकृताविवेकयुक्तचित्तः, अत एव हतनीतिः नष्टनयः अविनीत इत्यर्थः, सोऽयम् रावणः रघुवीरपत्नीम् रामस्य अर्धाङ्गिनीम् सीमन्तिनी नारी साधारणवनिता इति बुद्ध्या प्राप प्राप्तवान्, वारणेन्द्रः गजराजः आमूलपल्लवितकोमलसल्लकी आदि प्रभृति सपल्लवा कोमला च गजप्रियलता इयमिति धिया वैतानपावकशिखाम् यज्ञवह्निज्वालाम् इव, यथा गजराजो यज्ञियवह्निज्वालाम् आमूलदेशात्सपल्लवा कोमला चेयं सल्लकीति भ्रमादुपसर्पेत्तथा रामपत्नीत्वेनास्पृश्यामपि सीतां साधारणवनितामिव ज्ञात्वा रावणः प्रतिपेदे इत्यर्थः। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २० ॥

मदान्ध हृदय होकर दुर्नीति रावण सीताको, जो रघुवीरकी पत्नी थी, साधारण स्त्री जानकर, उनके समीप पहुँचा, जैसे मतवाला हाथी यज्ञियवह्निज्वालाको मूलसे पल्लवान्वित सल्लकी लता समझकर उसके पास जाय ॥ २० ॥

[1]एतद्दर्शने वेपमानतनुलता मैथिली कापुरुष[2]विषयपरुषवचनपारम्पर्येण विदीर्यमाणहृदया हृदय[3]दयिताशयप्रत्ययादमुमेव [4]तृणमन्तरतः कृत्वा स्थिता पर्यभाषत ।

एतद्दर्शनेनेति । एतस्य रावणस्य दर्शनेन प्रत्यक्षीकरणेन वेपमानतनुलता सकम्पदेहा मैथिली सीता कापुरुषविषयाणाम् दुर्जनोचितानाम् परुषवचनानाम् कर्णकठोरभाषितानाम् पारम्पर्येण समुदायेन ('मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमानास्तनोदरम् । अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि । कामये त्वां विशालाक्षि बहुमन्यस्व मां प्रिये' इत्यादिना रामायणोक्तप्रकारेण) विदीर्यमाणहृदया भिन्नमर्मा हृदयदयितस्य हृदयेश्वरस्य रामस्य आशये आभिप्राये सीताविषयकाभेद्यप्रेम, तत्कष्टवारणसदोद्यतत्व–तदपमन्तृवधसदोद्यतत्व–तदनुसन्धानव्यग्रत्वादिलक्षणे प्रत्ययात् दृढविश्वासात् तृणम् अन्तरतः मध्येकृत्वा स्थिता (वक्तुश्रोत्रारन्तराले तृणं स्थापयित्वा, तथाकरणं च पापिष्टरावणसहसंभाषणजनितप्रत्यवायपरिहारेच्छया बोध्यम्) अमुम् एव रावणमुद्दिश्यैव पर्यभाषत उक्तवती । बुधेन्द्रस्त्वत्र 'तृणमन्तरतः कृत्वा' इत्यत्र यथा श्रीरामस्तृणेनैव शक्रसुतं काकरूपधरं निरस्तवांस्तथा तेनैव तृणेनैव त्वामपि निरसिष्यतीति बोधयितुम्, पशुसमस्य तवेदं तृणमेव भोज्यमिति सोपहासं स्मारयितुं वा, तृणदंशनपूर्वकं क्षमां प्रार्थयमानो रामचरणयोः पतेति ज्ञापयितुं वा, आत्मप्रशंसिनस्तवैतदैश्वर्यं पतिव्रताया मम कृते तृणतुल्यमिति प्रत्याययितुं वा, रामापराधाचरणेन तव विनाशोऽवश्यंभावीति तृणं छित्त्वा प्रतिज्ञातुं वा तृणमन्तरतः कृत्वोत्तरं दत्तवतीत्याह ।

रावणको देखकर कम्पितदेहा सीताने अभद्रजनोचित रावणोक्त कर्णकटु वचनोंसे भिन्नहृदया होकर अपने हृदयेश्वर रामके अनुरागमें विश्वास होनेके कारण तृण ओर करके रावणसे इस प्रकार कहा ।

[5]अयि, सकलसमाचारप्रतिष्ठानिष्ठः परमेष्ठी ननु कुलगुरुर्भवतः पर[6]कलत्ररतिरपत्रपां जनयति हि गोत्रजातानाम् ।

---

१. 'दर्शनवेपमान' इति पाठान्तरम् । २. 'विषयवचन' इति पाठान्तरम् ।
३. 'दयितशौर्य' इति पाठान्तरम् । ४. 'तृणाय मत्वा तृणम्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'अयि भोः' इति पा० । ६. 'कलत्रगात्रनेत्रप्रसक्तिरप्यनिरपत्रपा' इति पाठान्तरम् ।

अयीति। अयि रावण, सकलसमाचारप्रतिष्ठानिष्ठः समस्तवर्णाश्रमाचारस्थापने तात्पर्यशाली परमेष्ठी ब्रह्मा ननु भवतः कुलगुरुः मूलपुरुषः, ब्रह्मवंशधरस्त्वमसीत्यर्थः, गोत्रजातानाम् कुलीनानाम् परकलत्ररतिः परवनितागोचरोऽनुरागः अपत्रपां लज्जाम् जनयति उत्पादयति, भवान् ब्रह्मणो वंशेऽजनि, यः समस्तवर्णाश्रमधर्मरक्षायां निष्ठां धारयति तत्कुलोत्पन्नस्य तव परकलत्रानुरागोऽतीव निन्दनीयो यतः सर्वेऽपि कुलीना जनाः परस्त्रीविषये प्रवृत्तिं लज्जावहां मन्यन्त इत्यर्थः। सदाचारप्रतिष्ठा परमेष्ठिवंशजातेन त्वया सदाचारपालकेन भवितव्यम्, अन्यथाचारिणा त्वया स्वकुलजा अपि लज्जापात्रतां नीयेरन्नित्याशयः।

अजी, तुम सदाचार समुदायके पालनमें रुचिर रखनेवाले ब्रह्माके वंशमें उत्पन्न हुए हो, कुलीनोंका परवनितानुराग उनके तथा उनके पूर्वजोंके लिये लज्जाजनक होता है।

भूयोऽपि पञ्चवटीपरिसरममुं जन[1]मनुकूलप्रभञ्जन इवानुकूलः [2]कूलोपकण्ठं परिभ्रष्टां नावमिव यदि नयेथाः, तर्हि तवापि दयते नियतं मदीयो जीवितेशः साक्षाज्जीवितेशोऽपि त्वयि दयालुर्भवेत्।

भूयोऽपीति। यदि भूयः पुनः अपि अमुम् जनम् मल्लक्षणं जनम्, पञ्चवटीपरिसरम् पञ्चवटीनिकटदेशम् अनुकूलप्रभञ्जनः अनुकूलवायुः परिभ्रष्टाम् प्रतिकूलवात्यावशान्मार्गं विहाय प्रवाहपतितां नावम् तीरम् कूलोपकण्ठम् इव अनुकूलो मद्धितानुध्यायी भूत्वा नयेथाः मां प्रापयेः, तर्हि त्वया तथा क्रियमाणे सति नियतम् अवश्यम् मदीयो जीवितेशः मम प्राणेश्वरः साक्षात् जीवितेशः स्वापराधिषु यमराजतुल्योऽपि त्वयि त्वद्विषये दयालुः धृतदयो भवेत्। यथा प्रतिकूलवातेन पन्थानं परित्यज्य प्रवाहपतितत्वेन विपद्यमानां नावं तदैवानुकूलपवनः कूलदेशं प्रापयति, तथैव पञ्चवटीप्रदेशाद्वियुज्य विपद्यमानां मां त्वं मय्यनुकूलो भूत्वा पुनरपि मां पञ्चवटीपरिसरं नयेथास्तदा मद्धिताचरणतुष्टो मम जीवितेशस्त्वयि निश्चितरूपेण दयां दर्शयित्वा कृतपूर्वं तवापराधं क्षमेतेत्याशयः। 'जीवितेशो यमे कान्ते' इत्यमरः।

जैसे प्रतिकूल वायु द्वारा पथभ्रष्टा की गई नावको अनुकुल वायु किनारे पर लगा देती है उसी तरह यदि तुम मेरे ऊपर अनुकूल होकर मुझे फिर पञ्चवटीके निकट पहुँचा दोगे तो निश्चय ही हमारे जीवितेश अपराधियोंके लिये यमराज होकर भी तुम्हारे ऊपर दया करेंगे।

दाशरथे[3]रजर्य्याया मैत्र्याः पात्रमपि भवितासि।

---

१. 'अनुकूल' इति पाठान्तरम्। २. 'कूलोपकण्ठपरिभ्रष्टाम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अजेयस्य' इति पाठान्तरम्।

दाशरथेरिति। दाशरथेः श्रीरामस्य अजर्यायाः अनपायिन्याः मैत्र्याः सख्यस्य अपि पात्रं स्थानं भवितासि भविष्यसि। न केवलं रामस्तवापराधं क्षमते, प्रत्युत त्वया सहानपायिनीं मैत्रीमपि स्थापयेदित्यर्थः। 'योग्यभाजनयोः पात्रम्' इत्यमरः। 'अजर्यं सङ्गतम्' इति सूत्रेण अजर्यपदं निपातितं बोध्यम्।

भगवान् रामचन्द्रके साथ आपकी अनपायिनी मित्रता भी कायम हो जायगी।

किंतु खरप्रमुखनिशाचरबलमथनसमय[1]रुचिरलग्नसान्द्र[2]वसापङ्किलमुखमार्यपुत्रस्य शिलीमुखं भवन्तमन्तरेण कः श्रद्दधीत निजहृदयगलितरुधिरधारया प्रक्षालयितुम्।

किन्त्विति। खरप्रमुखनिशाचरबलस्य खरप्रधानराक्षससैन्यस्य मथनसमये विध्वंसकाले रुचिरं साधु यथा स्यात्तथा लग्नया ससक्तया सान्द्रवसया आर्द्रमेदसा पङ्किलम् पिच्छिलं मुखमग्रं यस्य तथाविधं खरादिराक्षसवसालिप्तमुखमित्यर्थः, आर्यपुत्रस्य मम पत्युः श्रीरामस्य शिलीमुखं बाणम् भवन्तम् रावणम् अन्तरेण विना कः निजहृदयगलितरुधिरधारया स्वोरःक्षरदस्रप्रवाहेण क्षालयितुं परिमार्जयितुं श्रद्दधीत श्रद्धावान् स्यात्। न कोऽपि तथा स्यादिति प्रश्नलभ्यम्। भवानेवैको निखिलराक्षससैन्यसंहारिणं रामबाणं स्वहृदयरक्तेन क्षालयितुं कृतमतिः स्यान्नान्य इत्याशयः। यदुक्तार्थाकरणे खरविदारणेन बाणेन रामो भवदुरो विदारयिष्यतीति कथनरहस्यम्। 'भवन्तमन्तरेण' 'अन्तरान्तरेण युक्ते' इति द्वितीया।

किन्तु खरप्रभृति राक्षसोंके संहारकालमें भलीभांति ससक्त उनके मेदासे लिप्त अग्रभाग वाले आर्यपुत्रके बाणको अपने हृदयकी रुधिरधारसे आपके अतिरिक्त कौन प्रक्षालित करनेकी श्रद्धा रखता है।

अथवा जनस्थानसमरादारभ्य समराभावावग्रहतृषितानां सौमित्रिपत्त्रिचातकानां [3]शोणिताम्बुपारणां [4]तवापनयश्चेत्कः समर्थो निवारयितुम्।

अथवेति। अथवा (आस्तां रामस्य कथा, तदनुजो लक्ष्मण एव तव संहारायालम् इति हृदयाभिप्रायेण) पक्षान्तरे। जनस्थानसमरात् जनस्थाने कानने जातात् खरादिभिः सह युद्धात् आरभ्य प्रभृति समराभावः युद्धविरतिः एव अवग्रहो वृष्टिप्रतिबन्धस्तेन तृषितानां पिपासितानां सौमित्रिपत्त्रिचातकानाम् लक्ष्मणबाणरूपचातकाख्यपक्षिविशेषाणाम्, तव रावणस्य अपनयः दुर्विनयः रामाय ममासर्पण-

१. 'सुचिर' इति पाठान्तरम्। २. 'वसापङ्कपङ्किलित' इति पाठान्तरम्।
३. 'त्वदङ्गगलितशोणित' इति पाठान्तरम्। ४. 'तवापनयधनतश्चेत्' इति पाठान्तरम्।

रूपः चेत् यदि भवति, तदा शोणिताम्बुपारणाम् त्वद्रक्तरूपपयःपानं कः समर्थो निवारयितुम् प्रतिहन्तुम् । जाड्यवशाद्यदि त्वमात्मनो दुर्विनयमिमं मद्रोधनरूपं न जहासि तदा चिराय युद्धाभावात्तृषिता लक्ष्मणबाणास्तव शोणितमवश्यं पिबेयुरित्यर्थः । समराभावोऽवग्रहः, पत्रिणः चातकाः, शोणितम्बु चेति परम्परितरूपकम् । 'वृष्टिर्वर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ' इत्यमरः ।

यदि तुम्हारा यह दुर्विनय बना ही रहा तो खरदूषणके साथ वनमें हुए युद्धके बादसे लेकर आज तक युद्धाभावरूप अवग्रहके कारण तृषित लक्ष्मणके बाणरूप चातकोंकी तुम्हारे शोणितसे होने वाली पारणाको कौन रोक सकेगा ?

अथ निशिचरनाथं [1]पञ्चबाणीविभिन्नं
न हि जनकसुतायाः प्रापदेकापि वाणी ।
जनमुपनतमृत्युं पञ्चवक्त्राहिदष्टं
विशति हृतविषाधेरोषधेः किं नु शक्तिः ॥ २१ ॥

अथेति । अथ सीताकथनेऽवसितेऽपि जनकसुतायाः सीतायाः एकापि वाणी कथा पञ्चबाणीविभिन्नम् कामदेवस्य पञ्चभिरपि शरैः आहतम् निशिचरनाथम् रावणम् न हि आपत् न बुद्धौ समायाता । तत्र दृष्टान्तमाह—जनमिति । पञ्चवक्त्राहिदष्टम् पञ्चमुखसर्पेण कृतदंशम् अतश्च उपनतमृत्युम् आसन्नमरणं जनम् लोकम् हृतविषाधेः विषवेगहरायाः विषघ्नाया अपि ओषधेः शक्तिः विषापहरणसामर्थ्यं किं नु विशति किं प्रविश्य कार्याय कल्पते । यथा मृत्युकल्पपञ्चमुखसर्पदष्टस्य जनस्य विषं विषघ्नतया प्रथिताऽप्योषधिर्न हर्तुं प्रभूभवति तद्वत्कामस्य शरैराहतं रावणं सीतोपदेशास्तद्दौर्मत्याद्भ्रंशयितुं न प्राभूदिति भावः । दृष्टान्तालङ्कारः—'यत्र वाक्यद्वये बिम्बप्रतिबिम्बतयोच्यते । सामान्यधर्मो वाक्यज्ञैः स दृष्टान्तो निगद्यते' इति लक्षणात् । मालिनीवृत्तम् ॥ २१ ॥

कामदेवके बाणोंसे आहत रावणके हृदयमें सीताकी एक भी हितवाणी प्रवेश नहीं कर सकी । क्या पञ्चमुख सर्पसे दष्ट तथा आसन्नमृत्यु व्यक्तिको विषहरणमें प्रसिद्ध औषधिकी शक्ति लाभदायक होती है ? ॥ २१ ॥

एवं जनकदुहितुरवधीरणाफणितिमाकर्ण्य कोपपराङ्मुखो दशमुखस्तामभितो निवसन्ती[2]रारक्षिकराक्षसी[3]रुद्दिश्य 'भवत्यः, चतुर्भिरप्युपायै[4]रेनामवश्यं वश्यां कुरुध्वम् । इयमननुकूला चेदिमां हताशां [5]प्रातरशनाय

---

१. 'पञ्चबाणावभिन्नम्' इति पाठान्तरम् । २. 'आरक्षक' इति पाठान्तरम् ।
३. 'आहूय' इति पाठान्तरम् । ४. 'एनां ममावश्यम्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'प्रातराशाय' इति पाठान्तरम् ।

महानसं नयत' इत्यादिश्य निशान्ते प्रत्यासन्ने निशान्तमेव [1]प्रविवेश।

एवमिति। एवं प्रागुक्तप्रकाराम् जनकदुहितुः सीतायाः अवधीरणाफणितिम् तिरस्कारोक्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा कोपपराङ्मुखः क्रोधेन सीतायाः प्रतिकूलः सन् दशमुखः रावणः ताम् अभितः सीतायाः समन्ततः निवसन्तीः तिष्ठन्तीः आरक्षिकराक्षसीः संरक्षणाधिकृताः राक्षसस्त्रियः उद्दिश्य सम्बोध्य—भवत्यः रक्षाधिकृताः राक्षस्यः चतुर्भिः सामदानदण्डभेदरूपैः उपायैः प्रयोगैः एनाम् सीताम् अवश्यं निश्चयेन वश्याम् वशगाम् आहृतमदुक्तिम् अङ्गीकृतमत्सहवासामित्यर्थः, कुरुध्वम् विधत्त, (कृतेष्वपि चतुर्षूपायेष्वियम्) सीता अननुकूला अवशगा रामं मुक्त्वा मदङ्गनाभावमङ्गीकर्त्तुमनीहमाना चेत् इमाम् प्रतिकूलाचारिणीं सीताम् हताशाम् अभाग्यशालिनीम् प्रातरशनाय प्रातःकालिकभोजनाय (एतदीयमांसेन प्रातःकालिकं भोजनं सम्पादयितुम्) महानसं पाकालयं नयत प्रापयत, इमां हत्वा पाकालये प्रातराशनिर्माणाय दत्तेत्यर्थः, इति एवम् आदिश्य आज्ञां प्रदाय निशान्ते रात्रेरवसाने प्रत्यासन्ने समीपागते (रात्रौ प्रभातकल्पायां सत्याम्) निशान्तम् स्वभवनम् एव प्रविवेश प्रविष्टवान्। 'निशान्तं गृहशान्तयोः' इत्यमरः। 'समानौ रसवत्यां तु पाकस्थानमहानसे' इति च।

इस प्रकारकी सीताकी तिरस्कारोक्ति सुनकर क्रोधान्ध होकर रावणने सीताकी चारो ओर उनकी रखवालीमें नियुक्त राक्षसियोंको उद्देश्य करके—'तुम लोग चारो प्रकारके उपायोंसे इसे अवश्य हमारे वशमें करो, यदि यह नहीं ही माने तो इसे प्रातःकालिक आहारके लिये पाकालयमें पहुँचा देना' इस प्रकारकी आज्ञा देकर रात्रिके अन्तके आसन्न होने पर अपने भवनमें प्रवेश किया।

तदनु [2]क्षणदाचरीणां भीषणवीक्षणवाग्दोषोन्मेषेण मुकुलितहृदयपुण्डरीका पुण्डरीकयूथपरिवृतसारङ्गाङ्गनाभङ्गीमङ्गीकुर्वाणा गीर्वाणतरुणीव शापवशा [3]द्वसुधां प्रपन्ना जनकनन्दिनी चिन्तामेवमकरोत्।

तदन्विति। तदनु रावणे स्वगृहं प्रविष्टे सति क्षणदाचरीणाम् राक्षसीनाम् भीषणवीक्षणवाग्दोषोन्मेषेण भयङ्करविलोकनानाम् वाग्दोषाणाम् च उन्मेषेण प्रकाशेन—राक्षसीभिः क्रूरदृष्टिभिर्वीक्ष्यमाणतया दुष्टवचनैः 'तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसी'त्यादिभिः कदर्थ्यमानतया चेत्यर्थः, मुकुलितहृदयपुण्डरीका सङ्कुचितचित्ता पुण्डरीकयूथेन व्याघ्रदलेन परिवृतायाः वेष्टिताया सारङ्गाङ्गनायाः

१. 'विवेश' इति पाठान्तरम्।
२. 'भीषणवीक्षणक्षणदाचरीणां वाक्यदोषोन्मेषान्मुकुलित' इति पाठान्तरम्।
३. 'वसुंधराम्' इति पाठान्तरम्।

हरिण्याः भङ्गीम् साहश्यम् अङ्गीकुर्वाणा प्राप्नुवती, शापवशात् कस्यापि सत्यवचस आक्रोशप्रभावात् वसुधाम् धरातलं प्रपन्ना आयाता गीर्वाणतरुणी देवबाला इयं जनकनन्दिनी सीता एवं वक्ष्यमाणप्रकारां चिन्ताम् अकरोत्। राक्षसे यथोक्तमादिश्य स्वभवनं प्रयाते तदुक्तमनुष्ठातुं राक्षसः सीतां भीषयन्त्यः कठोरया दृशा तामपश्यन्नवाच्यानि चावोचन्, तासां तादृशीभिश्चेष्टाभिर्भिन्नमर्मा सा व्याघ्रगणपरिवृता हरिणीव, शापवशाद्भुवमागता देवबालेव चेत्थमचिन्तयदित्यर्थः। 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' 'व्याघ्रोऽपि पुण्डरीको ना' इत्युभयत्रामरः।

रावणके चले जानेके बाद राक्षसियोंके भीषण अवलोकन तथा अवाच्यवचनके कारण सङ्कुचित चित्ता सीता व्याघ्रगणसे घिरी हरिणीकी दशा प्राप्त करके शापवश पृथ्वीपर उतरी हुई देवबालाके समान इस प्रकार सोचने लगी।

नूनं विदितवृत्तान्ते जटायुषि गतायुषि।
[1]मामिहस्थामार्यपुत्रः किं नाधिगतवान्प्रभुः ॥ २२ ॥

नूनमिति। विदितवृत्तान्ते ज्ञातरावणकर्तृकमदपहरणवृत्ते जटायुषि तन्नामके गृध्रे गतायुषि रावणद्वारा ? हते सति प्रभुः सर्वलोकस्वामी आर्यपुत्रः मम नाथः किम् नूनम् निश्चयेन इहस्थाम् लङ्कायां वर्त्तमानां मां न अधिगतवान् ज्ञातवान्? मदपहरणवृत्तं यो जानाति तस्मिन् जटायुषि मृते सति मामत्र वर्त्तमानां नूनं रामो न जानाति, कथमन्यथा मां नोद्धरेदित्याशयः ॥ २२ ॥

मेरे इस अपहरणवृत्तान्तके ज्ञाता जटायुके मर जानेके कारण मेरे प्रभु प्राणनाथको मेरे यहाँ रहनेकी खबर निश्चय नहीं मिल सकी है (नहीं तो वह मेरा उद्धार अवश्य करते) ॥२२॥

आहोस्वित्क्रव्यादमायया विपर्यस्तप्रकृतेः काकुत्स्थस्य किम्वनास्था संजायते।

आहोस्विदिति। आहोस्वित् अथवा कुतश्चित्सूत्रात् ज्ञातेऽपि ममात्रावस्थाने क्रव्यादमायया राक्षसानां मायया हेतुभूतया विपर्यस्तप्रकृतेः परिवर्त्तितस्वभावस्य काकुत्स्थस्य रामस्य अनास्था अनादरः सञ्जायते भवति किमु? राक्षसकृतया मायया रामस्य स्वभाव एव वा तथा परिवर्त्तितो यथा ज्ञातवृत्तोऽप्यसौ मयि शिथिलादरः संवृत्तः किमिति द्वितीया कोटिश्चिन्ताया इति भावः।

अथवा राक्षसीमायासे रामजीका स्वभाव ही परिवर्त्तित हो गया है क्या जिससे हमारे विषयमें उन्हें अनादर उत्पन्न हो गया है।

न केवलं मामहरद्दुरात्मा कृपां च रामस्य निसर्गसिद्धाम्।

---

१. 'मामिहावस्थितामार्यपुत्रः किं नावबुध्यते' इति पाठान्तरम्।

इदं न चेत्संश्रितवत्सलः किं भवेत्स तूष्णीं जगदेकवीरः ॥ २३ ॥

न केवलमिति। दुरात्मा दुष्टहृदयो रावणः केवलं माम् सीताम् न अहरत् हृतवान् (किन्तु) रामस्य निसर्गसिद्धाम् स्वभावप्रभवाम् कृपाम् दयाम् च अहरत्। दुष्टेन रावणेन मायामुत्पाद्य नैव केवलमहं हृता, अपि तु रामस्य स्वाभाविकी दयालुताप्यपहृता, तत्र युक्तिमाह—इदमिति। चेत् यदि इदं यथोक्तं रावणकर्तृकरामनिष्ठदयालुभावापहारणं न सत्यम्, तदा संश्रितवत्सलः आश्रितजनदयावशंवदः जगदेकवीरः प्रसिद्धपराक्रमो रामः किं कथं तूष्णीं भवेत् मौनमालम्बेत ? अवश्यमेव रावणः श्रीरामस्य दयालुतामप्यलुम्पदन्यथाऽश्रितजनकष्टहरणे सततोद्युक्तस्यानिरुद्धशक्तिकस्य च रामस्य तूष्णीं भावावलम्बनं न सम्भवेदित्यर्थः। 'श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सलः' इत्यमरः। अत्र दयालुताहरणासम्बन्धेऽपि तत्संबन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ २३ ॥

दुष्ट रावणने केवल हमारा ही हरण नहीं किया, उसने रामकी स्वाभाविक कृपालुताका भी हरण कर लिया, अन्यथा आश्रितजन पर दया करनेवाले तथा प्रसिद्ध पराक्रम राम क्यों इस तरह चुप्पी साधकर बैठ जाते ? ॥ २३ ॥

इत्थं विलप्य रघुपुङ्गवमेव[1] सन्ततं चिन्तयन्ती कृच्छ्रान्मूर्च्छामगमत्।

इत्थमिति। इत्थम् अनेन प्रदर्शितेन प्रकारेण विलप्य विलापं कृत्वा सततं सर्वदा रघुपुङ्गवं रामम् एव चिन्तयन्ती ध्यायन्ती सीता कृच्छ्रात् कष्टातिशयात् मूर्च्छाम् मोहम् अगमत् प्रापत्। श्रीमतो रामस्य स्मरणेन रावणकृतप्रातराशविधानादेशस्मरणेन च विसंज्ञाऽभूदित्यर्थः।

इस प्रकार विलाप करके सदा रामका ही ध्यान करनेवाली सीता कष्टकी अधिकता के कारण मूर्च्छित हो गई।

निशाचरीस्तां निरवद्यशीलां निर्भर्त्सयन्तीर्निभृतं निवार्य।
अस्वप्नलोकोत्सवमात्मदृष्टं दुःस्वप्नमेकं त्रिजटा जगाद ॥२४॥

निशाचरीति। निरवद्यशीलाम् अनिन्दनीयचारित्राम् तां सीताम् निर्भर्त्सयन्तीः परितर्जयन्तीः निशाचरीः राक्षसीः निभृतम् शान्तभावेन निवार्य प्रतिषिध्य तथा मा कृपतेति निरुध्य त्रिजटा नाम कापि सुबुद्धिर्वृद्धा राक्षसी अस्वप्नलोकोत्सवम् देवलोकहर्षकरम् आत्मदृष्टम् स्वेन साक्षात्कृतम् एकम् दुःस्वप्नम् अशुभदं स्वप्नम् जगाद। सीतां तर्जयन्ती राक्षसीस्तथाकरणाद्वारयित्वा त्रिजटा रामाभ्युदयसूचकतया देवानन्दवर्धनमेकं स्वसाक्षात्कृतं दुःस्वप्नं प्रकटितवतीत्यर्थः, उक्तञ्च रामायणे यथा— 'स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः। राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या जयाय

---

१. 'एव संततम्' इति नास्ति क्वचित्।

च' इति। 'आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः' इत्यमरः। 'उत्सृते हर्षमित्येष उत्सवः परिकीर्त्तितः' इति रसाकरे ॥ २४ ॥

अनिन्दित चरित्रशालिनी सीताको तर्जित करती हुई राक्षसियोंको शान्तभावसे रोक कर त्रिजटा नामक एक राक्षसीने रामके अभ्युदयकी सूचकतासे देवलोगोंको हर्षित करने वाला अपना एक दुःस्वप्न कह सुनाया ॥ २४ ॥

किञ्च—

उपघ्नवृक्षस्य परोक्षभावा-
दुपेत्य पृथ्वीं सुचिरं लुठन्त्याः ।
नक्तंचरस्त्रीमुखकर्शितायाः
सीतालतायास्त्रिजटा जटाभूत् ॥ २५ ॥

किञ्च, उपघ्नेति। किञ्च न केवलं दुःस्वप्नमेवाश्रावयत् किन्तु सीताया धैर्यमपि व्यवस्थापयदिति भावः। उपघ्नवृक्षस्य समीपस्थिताश्रयवृक्षस्य (स्वाश्रयस्य रामस्य) परोक्षभावात् असन्निधानात् पृथ्वीम् उपेत्य भुवि पतित्वा सुचिरं चिरं यावत् लुठन्त्याः विवर्त्तमानायाः, नक्तंचरस्त्रीणां रावणेन सीतां तर्जयितुं नियुक्तानां राक्षसीनां मुखैः विरुद्धवाक्कुत्सिताकारस्वभीषणचेष्टाशालिभिः वदनैः कर्शितायाः पीडितायाः सीतालतायाः त्रिजटा नाम राक्षसी जटा शिफा पुनरुत्थानमूलम् अभूत्। करुणं विलपन्तीं भुवि लुठन्तीं च तां त्रिजटा स्वीयस्वप्ननिवेदनद्वारा आश्वासयामासेत्यर्थः। अपगते समीपवर्त्तिन्याश्रयद्रुमे भुवि पतिताया लताया रात्रिञ्चरकीटमुखैर्दंश्यमानायाश्च यथा जायमाना जटा तां पुनरुत्थानसमर्थां करोति तथैव रामवियोगाद्भुवि लुठन्त्या राक्षसीगणतर्जितायाश्च सीताया त्रिजटा स्वीयस्वप्ननिवेदनविधयाऽऽश्वासं चक्रे इत्यर्थः। 'स्यादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये' 'स्कन्धशाखाशाले शिफाजटे' इत्युभयत्रामरः। उपजातिर्वृत्तं, रूपकमलङ्कारः ॥ २५ ॥

रामसे वियुक्त होनेके कारण जमीन पर गिरकर देर तक लोटती हुई तथा राक्षसियों के विकृतमुखविकारोंसे पीड़ित सीताके लिये अपना स्वप्न सुनाकर त्रिजटा अवलम्बन बन गई, जैसे आश्रयवृक्षके नहीं रह जाने पर पृथ्वीपर गिर कर लोटती हुई तथा कीड़ोंके मुखसे खण्डित होनेवाली लताको 'सारे' जटा फिरसे उठनेके योग्य बनाती है। (किसी लताके जमीनपर गिर जाने पर वह हवासे इधर उधर डोलती रहती है, उसे कीड़े खाते हैं, जब उसकी सोर जमीनमें जम जाती है तब वह फिरसे खड़ी हो जाती है, इसी पर यह रूपक बंधा है) ॥ २५ ॥

तदनन्तरमात्मत्यागाय स्पृहयन्त्यां मैथिल्यां मारुतिरियमनुपेक्षणीया तपस्विनी नीतिममुञ्चतीति चिन्तां परिगृह्य नेदीयानस्या बभूव।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरं त्रिजटाकर्त्तृकस्वस्वप्ननिवेदनानन्तरम् आत्मत्यागाय स्वप्राणविसर्जनाय स्पृहयन्त्यां कामयमानायां मैथिल्याम् सीतायाम् नीतिम् उचितं वर्त्म पातिव्रत्यलक्षणम् अमुञ्चती अत्यजन्ती इयम् तपस्विनी पवित्राचारा दुःखिनी सीता अनुपेक्षणीया उपेक्षितुमनर्हा इति चिन्तां परिगृह्य इत्थं विचार्य मारुतिः हनूमान् अस्याः सीतायाः नेदीयान् बभूव समीपं गत इत्यर्थः, 'आत्मा जीवे धृतौ देहे' 'शोच्येऽपि च तपस्विनी' इत्युभयत्रामरः। अतिशयेनान्तिकम्। नेदीयः, 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ' इति नेदादेशः।

इसके बाद जब सीता प्राणत्यागनेको उद्यत होने लगी तब हनूमान् ऐसा सोचकर कि नीतिमार्ग से नहीं डिगनेवाली यह दुःखिनी सीता अब उपेक्षाका पात्र नहीं है—उसके समीप चले गये।

ततः—

देव्या दशाननवचोमयवज्रदीर्ण-
कर्णान्तरव्रणविरोपणभेषजानि।
विस्रम्भणार्थमयमन्वयसंगतानि
रामाभिकीर्त्तनमधूनि शनैर्न्यषिञ्चत् ॥ २६ ॥

ततः, देव्या इति। ततः हनूमति सीतासमीपमुपेते देव्याः सीतायाः दशाननस्य रावणस्य वचोमयेन वचनरूपेण वज्रेण कुलिशेन (अत्यर्थपीडाजनकतया वचनस्य वज्रत्वमारोप्यते) दीर्णं विदारितं यत् कर्णान्तरं श्रवणाभ्यन्तरभागस्तत्र यद्व्रणं (तस्य वचनानि श्रुत्वाऽनुभूयमानं दुःखं व्रणत्वेनोपचरितं बोध्यम्) तस्य विरोपणभेषजानि निरामयकरौषधरूपाणि, (रावणोक्तदुर्वचनश्रवणव्यथितसीताश्रुतिदेशवर्त्तिव्यथाहरणक्षमतया तदानन्दजनकानीत्यर्थः) विस्रम्भणार्थम् सीताया हृदये विश्वासोत्पादनार्थम् अन्वयसङ्गतानि रामवंशकीर्त्तनोपेतानि रामाभिकीर्त्तनमधूनि रामप्रशंसापरकतयाऽतिमधुराणि (वचनान्येव क्षौद्राणि) अयं हनूमान् शनैः मन्दं मन्दं न्यषिञ्चत् पातितवान्। रावणदुर्वचनजातव्रणयोः सीताकर्णयो रामप्रशंसामधूनि पातितवान् हनूमान् यथा कस्यचित् कर्णव्रणे जाते तद्विरोपणाय तत्र मधु पात्यते तद्वदिति भावः। 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः। रूपकमलङ्कारः॥ २६ ॥

इसके बाद रावणोक्त वचनरूप वज्रसे आहत सीताके कानमें उत्पन्न दुःखव्रणको भरनेमें औषधस्वरूप तथा रामकी वंशपरम्पराके कीर्त्तनसे युक्त एवं उनकी प्रशंसासे पूर्ण वचनरूप मधु हनूमान्ने विश्वास उत्पन्न करनेके लिये सीताके कानोंमें डाल दिया अर्थात् सीताके हृदयमें विश्वास हो इसलिये हनूमान्ने रामके वंशकी प्रशंसाके साथ रामकी

प्रशंसामें कुछ मधुर वचन कहे, जिन्हें सुनकर रावणके दुर्वचनोंको सुननेसे उत्पन्न सीताकी कर्णव्यथा शान्त हो गई ॥ २६ ॥

तदनन्तरं समन्तात्प्रसारितनयना जनकतनया तस्यां शाखायां शाखामृगमुद्वीक्ष्य दुःस्वप्नबुद्ध्या चकितहृदया सलक्ष्मणाय [1]रामाय भर्त्रे भद्रमाशंसमाना जनमिमं दुरापस्वापं स्वप्नः कथमाप्नुयादिति विचिन्त्य[2] मायया समायातनैर्ऋत[3] प्रतिबुद्ध्या तस्मान्मारुतपुत्रात्तत्रास।

तदनन्तरमिति। तदनन्तरं श्रीहनूमता रामनामकीर्त्तनात्परतः समन्तात् प्रसारितनयना सर्वतः क्षिप्तचक्षुः जनकतनया सीता तस्यां शाखायां शिंशपातरोस्तत्र विटपे शाखामृगम् वानरम् उद्वीक्ष्य उपरितनेनाक्ष्णा निरीक्ष्य दुःस्वप्नबुद्ध्या दुःस्वप्नोऽयं मया दृष्ट इति भ्रमात्मकज्ञानेन चकितहृदया भ्रान्तचित्ता सलक्ष्मणाय लक्ष्मणयुक्ताय भर्त्रे स्वामिने रामाय भद्रं कुशलम् आशंसमाना कामयमाना सावरजस्य राज्ञः शिवं भूयादिति हृदा परमात्मानं प्रार्थयमाना, दुरापस्वापम् दुर्लभनिद्रम् इमम् मल्लक्षणं जनं स्वप्नः कथमाप्नुयात् आगच्छेत्, (न मया चिन्तासिभूतया कदाचित् निद्रा प्राप्यते, अनिद्रया च मया स्वप्नः कथमालोक्येत, स्वप्नस्य निद्रोत्तरभावित्वादिति चिन्ताविषयो बोध्यः) इति विचिन्त्य विभाव्य मायया वानरभूमिकया समायातनैर्ऋतप्रतिबुद्ध्या समागतरावणभ्रमेण (हनूमति रावणोऽयं वानररूपधर इति मिथ्याज्ञानेन) तस्मात् समीपमुपसरतो मारुतपुत्रात् हनूमतः रावणोऽयमिति भ्रमात् तत्रास भीताऽभवत्। वानरस्य स्वप्ने दर्शनममङ्गलं चोक्तम्—'स्वप्नो मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः। शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः'।

इसके बाद चारों ओर आँखें फैलाने पर सीताने उस शिंशपाकी शाखा पर वानरको देखकर दुःस्वप्न मानकर चकितहृदया हो गई, राम और लक्ष्मणकी शुभाशंसा प्रकट करने लगी और उसने फिर सोचा कि मुझे जब कभी भी नींद नहीं आती है तब मैं स्वप्न किस प्रकार देखूगीं ? ऐसा सोचकर सीताने तय कर लिया कि मायावानररूपधारी यह रावण ही है, इस भ्रमसे वह डर गई।

सोऽपि समवतीर्य वचनवैचित्र्याज्जनकपुत्रीं [4]प्रत्याययितुमाञ्जनेयः कृताञ्जलिर्व्यजिज्ञपत्।

सोऽपीति। सः आञ्जनेयः अपि अवतीर्य शिंशपातरुशाखाया अवरुह्य वचनवैचित्र्यात् निजवचनरचनाचातुर्यविशेषात् जनकपुत्रीम् प्रत्याययितुं विश्वासयितुं (सीताया हृदये नायं रावणो वानरवेषः, किन्तु रामदूतोऽयमिति विश्वासं ज

---

१. 'रामाय' इति नास्ति क्वचित्। २. 'विचिन्तयमाना मायासमायाता' इति पा०। ३. 'नैर्ऋत इति बुद्ध्या' इति पा०। ४. 'प्रत्यापयन्, प्रत्याययन्' इति च पाठान्तरे।

यितुम्) कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः व्यजिज्ञपत् आत्मनः करौ योजयित्वा दास्यं व्यञ्जयन् वक्ष्यमाणदिशोक्तवानित्यर्थः ।

शिंशपा वृक्षकी शाखासे नीचे आकर हनूमान्ने सीताको विश्वास दिलानेके लिये (मैं छद्मवेशी रावण नहीं हूँ किन्तु राम का दूत ही हूँ यह विश्वास करानेके लिये) हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया ।

कल्याणि ! त्वद्वियोगेन तीव्रवेगेन ताम्यतः ।
राघवेन्द्रस्य दूतं मामन्यथा मा स्म मन्यथाः ॥ २७ ॥

कल्याणीति हे कल्याणि, सौभाग्यशालिनि, जानकि, माम् त्वदग्रे वानररूपेण वर्त्तमानम् मां तीव्रवेगेन प्रखररयेण (महता) त्वद्वियोगेन त्वद्विरहेण ताम्यतः क्लेशमनुभवतः राघवेन्द्रस्य रामस्य दूतम् सन्देशहरम् अन्यथा दूतरूपममत्वा मायावानरवेषधररावणरूपेण मा स्म मन्यथाः मा प्रतिपद्यस्व । अहं रावण इति कथमपि मा सन्धित्स इत्यर्थः । 'मास्म मन्यथाः' इत्यत्र 'स्मोत्तरे लङ् चे'ति लङ्लकारः । 'न माङ्योगे' इत्यडागमप्रतिषेधः । 'कल्याणि' इति सम्बोधनं सौभाग्यशालितां सीताया अभिदधत् रामस्याविपन्नतां बोधयति, रामस्याहं दूत इत्युक्त्या च स्ववचनस्यावश्यश्रव्यतां व्यञ्जयति ॥ २७ ॥

हे सौभाग्यशालिनि सीते, अतितीव्रवेगवाले आपके वियोगसे क्लेशका अनुभव करने वाले रामजीका मैं दूत हूँ, आप मुझे कुछ अन्य मत समझें ॥ २७ ॥

त्वया सह प्रस्थितचित्तवृत्ति-
विभावरीकोकसमानधर्मा ।
वचोऽब्रवीन्मैथिलि ! मन्मुखेन
त्वां कौशलं कोसलराजपुत्रः ॥ २८ ॥

त्वयेति । हे मैथिलि, सीते, त्वया सह प्रस्थितचित्तवृत्तिः त्वत्सहचरमनोभावः, त्वदेकतानहृदय इत्यर्थः, विभावरीकोकसमानधर्मा रात्रिकालिकचक्रवाकतुल्यव्यवहारः (रात्रौ स्वप्रियया वियुज्यमानः कोको यथा विषादमनुभवति तथाविधं विषादमनुभवन्नित्यर्थः) कोसलराजपुत्रः कोसलाधीशदशरथसुतः श्रीरामः त्वाम् मन्मुखेन मया द्वारभूतेन कौशलम् कुशलसम्बन्धि वचः अब्रवीत् । 'सुलभविपदां प्रियवियुक्तानां स्त्रीणानामाद्यं प्रियकुशलमेव सन्देशवचो युक्तमि'ति मत्वा रामो मन्मुखेन त्वां स्वं कुशलमाह स्मेति तात्पर्यम् । 'कोकश्चक्रश्चक्रवाकः' इत्यमरः ॥ २८ ॥

तुम्हारे ही साथ जिनका हृदय लगा हुआ है और जो रात्रिके समयमें चक्रवाककी जैसी दशा होनी है उस दशामें वर्त्तमान हैं, ऐसे रामजीने, हे सीते, तुमको अपना कुशल समाचार हमारे द्वारा कहला भेजा है ॥ २८ ॥

अपि च—

शिरसा तव सौमित्रिरकरोदभिवादनम् ।
अपृच्छत्सोऽपि भद्रं त्वामधिपश्च वनौकसाम् ॥ २९ ॥

अपि च, शिरसेति । हे कल्याणि, सौमित्रिः लक्ष्मणः शिरसा स्वमस्तकेन तव अभिवादनम् त्वामुद्दिश्य नमस्कारम् अकरोत्, देवरस्य मातृतुल्यायां प्रजावत्यां तथैव नमस्कर्त्तुमौचित्यादित्थमुक्तम् । सः प्रसिद्धः वनौकसाम् अधिपः वानरराजः अपि त्वाम् भद्रं कुशलम् अपृच्छत् च । सर्वेऽपि त्वयि बद्धभावाः सन्ति, अतो मा खेदं कृथा इत्याशयः ॥ २९ ॥

और सुमित्रात्मजने शिर झुकाकर आपसे अपना प्रणाम निवेदन किया है। इसके अतिरिक्त वानरोंके राजा सुग्रीवने आपका कुशल समाचार पूछा है ॥ २९ ॥

एवमभिहितया तया संभूतविस्रम्भतया भयादपेतया तावदनुयुक्तः पवनतनयो वालिमरणकारणं सुग्रीवस्य सख्यमाख्याय प्राचेतसचेत इव संततसंनिहित[1]रामनाममङ्गलमङ्गुलीयकमस्यै प्रायच्छत् ।

एवमिति । एवम् उक्तप्रकारेण अभिहितया उक्तया अतश्च संभूतविस्रम्भतया संजातविश्वासतया भयात् रावणोऽयं वानरवेष इति मिथ्याज्ञानजन्यायाः भीतेः अपेतया मुक्तया तया सीतया तावत् तस्मिन्नवसरेऽनुयुक्तः पृष्टः पवनतनयो हनूमान् वालिमरणकारणम् रामकृतबाणप्रहारेण वालिनो मरणस्य हेतुभूतम् सुग्रीवस्य (रामेण सह) सख्यम् मैत्रीम् आख्याय अभिधाय प्राचेतसचेतः वाल्मीकिमुनि-हृदयम् इव सन्ततं सदा सन्निहितेन तत्र वर्त्तमानेन ध्यानविषयतया तत्र स्थितेन रामनाम्ना रामस्याभिधानेन मङ्गलं कल्याणं यस्य तादृशम् (आङ्गुलीयकपक्षे सतत-वर्त्तमानोत्कीर्णरामनामरूपशुभप्रदं यन्त्रेत्यर्थः करणीयः) अङ्गुलीयकम् मुद्रिकाम् अस्यै सीतायै प्रायच्छत् दत्तवान् । हनूमता प्रागुक्तप्रकारके निवेदने कृते सति जात-विश्वासयाः सीतायाः कपटवानरवेषोऽयं रावणः स्यादिति भयान्मुक्तायाः प्रश्नस्योत्तरे हनूमानुक्तवान् यद्रामसुग्रीवयोः सख्यमजायत, तन्महिम्ना च वाली मृतः, एवम् उक्त्वा चासौ हनूमान् रामाय दत्तां स्वनामचिह्नितां मुद्रिकां सीतायै दत्तवान् । प्राचेतसचेत इवेत्युपमा ।

इस तरह कहने पर सीताको विश्वास हो गया, उनका भय मिट गया, उनके पूछने पर पवनसुत हनूमान्‌ने कहा कि रामके साथ सुग्रीवकी मैत्री हो गई है, जिससे वालीका मरण हो गया है, ऐसा कहकर उन्होंने सतत वर्त्तमान है रामनामरूप मङ्गल जिस पर

---

१. 'रामनामकमङ्गुलीयकम्' इति पाठान्तरम् ।

ऐसी वाल्मीकि मुनिके हृदयके सदृश (वाल्मीकिने हृदयमें सतत रामनामके रहनेसे मङ्गल रहता है) अंगूठी सीताके हाथमें दी।

सौख्यावहस्य पवनात्मज[1]नीयमान-
रामाङ्गुलीयकविलोकनवासरस्य।
सत्यं [2]कलां शततमीं भुवि नैव भेजे
पाणिग्रहोत्सवदिनं जनकात्मजायाः॥ ३०॥

सौख्यावहस्येति। जनकात्मजायाः सीतायाः पाणिग्रहोत्सवदिनम् विवाहमहोत्सवदिवसः सौख्यावहस्य आनन्दप्रदस्य पवनात्मजेन हनूमता नीयमानं समानीय दीयमानं यद् रामाङ्गुलीयकं रघुनाथकरवर्त्तिनी मुद्रिका, तस्य विलोकनं दर्शनं तद्वासरस्य तद्दिनस्य, सत्यं भुवि शततमीम् अपि कलाम् अंशम् नैव भेजे। हनूमदानीतराममुद्रिकादर्शनवासरस्य सुखदस्य शततमीमपि कलाम् सीताया विवाहमङ्गलवासरो न प्राप्तवानिति भावः। रामप्रापकविवाहदिवसापेक्षया शतगुणितं महत्त्वं रामाङ्गुलीयप्रापकस्य तद्दिनस्याजनीत्याशयः। 'कला स्यादंशमात्रके' इति विश्वः। अतिशयोक्तिरलङ्कारः॥ ३०॥

जानकीके विवाहोत्सवका दिन आनन्द देने वाले हनुमान् द्वारा लाये गये रामाङ्गुलीयकके दर्शन दिवसकी सौवीं कलाका भी अधिकारी नहीं हो सका॥ ३०॥

ततस्तं जानकी निःसीमहर्षा बभाषे।

तत इति। ततः रामाङ्गुलिविलोकनात् परतः निस्सीमहर्षा निरतिशयानन्दा जानकी सीता तं रामाङ्गुलिमुद्राप्रदानसुहृदं हनूमन्तं बभाषे उक्तवती।

इसके बाद निरतिशय आनन्दका अनुभव करने वाली सीताने हनूमान्से इस प्रकार कहा।

महाभाग! सर्वथास्य दुरात्मनः प्रत्यासीदति [2]मृत्युरेवमनलाभिधानया विभीषणदुहित्रा [3]स्वमात्रा प्रेषितया भाषितं च। अयमप्यनार्यशीलस्तुरीयमुपायमन्तरेण [4]न मामार्यपुत्रस्य समर्पयिष्यति। नियतमहमपि मासादूर्ध्वं न शक्नुयां प्राणान्कृपणान्धारयितुमिति।

महाभागेति। हे महाभाग, महता भाग्येन परहिताचरणावसरलम्भकेनोपपन्न, सर्वथा अस्य दुरात्मनः दुष्टहृदयस्य रावणस्य मृत्युः मरणकालः एव प्रत्यासीदति

---

१. 'दीयमान' इति पाठान्तरम्। २. 'कलाशततमीमपि' इति पाठान्तरम्।
३. 'मृत्युस्तथैव' इति पाठान्तरम्। ४. 'मह्यं च स्वमात्रा' इति पाठान्तरम्।
५. 'ममार्यपुत्रस्य न' इति पाठान्तरम्। ६. 'कृपणान्' इति नास्ति क्वचित्।

समीपमुपैति, (अचिरेणैवायं यमपुरं गमिष्यति) एवम् अनेन प्रकारेण स्वमात्रा निजजनन्या (विभीषणभार्यया) प्रेषितया मदन्तिकं प्रहितया अनलाभिधानया अनलानामिकया विभीषणदुहित्रा विभीषणस्य कन्यया भाषितम् मह्यं कथितम् च। अनार्यशीलः दुराचारी अयम् रावणः अपि तुरीयम् चतुर्थमुपायम् दण्डम् अन्तरेण विना (अदण्ड्यमानः) माम् सीताम् आर्यपुत्रस्य रामस्य न समर्पयिष्यति न दास्यति। नियतम् निश्चयेन अहम् अपि मासादूर्ध्वम् एकस्मान्मासात् परतः कृपणान् क्लेशकदर्थितान् प्राणान् स्वानसून् धारयितुम् (जीवितुम्) न शक्नुयाम् क्षमा भवेयम्। उक्तं यथा-'मासादूर्ध्वं न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज'।

महाभाग, सब तरहसे रावणकी मौत समीप आती जा रही है, यह बात विभीषणकी कन्या अनलाने मुझे कही थी, उसे उसकी माताने मेरे पास भेजा था। यह दुष्ट रावण विना दण्डके मुझे आर्यपुत्र रामके हाथोंमें नहीं सौंपेगा। निश्चय ही मैं एक मासके बाद इन क्लेशकदर्थित अपने प्राणोंको नहीं धारण कर सकूंगी।

एतदाकर्ण्य मारुतिर्महानुभावे! मा भैषीः। भवतीं वहन्नेव तूर्णमुल्लङ्घितसागरो [1]रघुवरचरणसरसिज[2]समीपमुपयास्यामि। [3]मामसमर्थं न समर्थयेथा इत्यभिहितवान्।

एतदिति। एतत् सीतोक्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा मारुतिः हनूमान् अभिहितवान् उक्तवान्, सीतामिति शेषः, किमित्युक्तवानित्यपेक्षायामह—महानुभावे इत्यादि। हे महानुभावे समधिकसामर्थ्ययुते मा भैषीः रावणोक्तिमाकर्ण्य भयं मा कुरुष्व, त्वदुद्धारस्याशुभावितया भयकारणाभावात्। तत्र कारणमाह—भवतीमित्यादिना। भवतीम् पूज्यां त्वाम् वहन् स्कन्धदेशेऽवस्थाप्य नयन् एव तूर्णम् आशु उल्लङ्घितसागरः तीर्णमहार्णवः सन् रघुपतेः रामस्य ये चरणसरसिजे पादकमले तयोः समीपम् आसन्नदेशम् उपयास्यामि गमिष्यामि। माम् हनूमन्तम् असमर्थम् त्वदुद्वहनसमुद्रसन्तरणपूर्वकरामचरणसमीपप्राप्तिकर्मणि अक्षमम् न मा समर्थयेथाः मन्येथाः। इतिरुक्त्यनुकृतौ। न केवलमेतदुक्तवानपि तु स्वोक्तमर्थं प्रमापयितुं स्वदेहविस्तारमपि विस्तार्य दर्शितवांस्तद्वक्ष्यति—किञ्चेत्यादिना।

सीताका वचन सुनकर हनूमान्ने कहा—महानुभावे, आप डरें नहीं, आपको उठाये हुए समुद्र पार करके मैं शीघ्र रामचरणकमलके समीप पहुँच सकता हूँ, मुझे असमर्थ मत समझियेगा।

---

१. 'राघव' इति पाठान्तरम्। २. 'समीपम्' इति नास्ति क्वचित्।

३. 'इत्येवं मां समर्थं समर्थयेथा इत्यभिधाय' इति पाठान्तरम्।

किञ्च—

महामहीध्रसध्रीचीं सोऽयं वृद्धिमुपेयिवान् ।
यया नूनमपां राशिः कुल्यातुल्यां [1]दशां दधौ ॥ ३१ ॥

किञ्च, महामहीध्रेति । किञ्च तथोक्त्यतिरिक्तम् , सोऽयम् हनूमान् महता महीध्रेण पर्वतेन सध्रीचीम् समानाम् वृद्धिम् कायमहत्ताम् उपेयिवान् प्राप्तवान् यया हनूमत्कायवृद्धया अपां राशिः सागरः कुल्यातुल्यां, कृत्रिमाल्पसरित्समाम् दशां स्तिथिम् दधौ धृतवान् । हनूमतो देहे प्रवृद्धे तत्परिमाणमहत्त्वस्य पुरतः सागरोऽल्पसरिदिव प्रतीयते स्म, महतः सागरस्य तुच्छताभासनेन हनूमतः कार्यंस्याति महत्त्वमुक्तम् । 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृत्' 'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्' इत्युभयत्रामरः ॥ ३१ ॥

इसके बाद हनूमान्ने महापर्वतके समान अपने शरीरको बढ़ा लिया, उस शरीर विस्तार हो जानेपर उनके आगे समुद्र नहरकी तरह प्रतीत होने लगा ॥ ३१ ॥

अथ तमुवाच सा जनकराजसुता मुदिता
किमु तव दुष्करं चरणलङ्घितवारिनिधेः ।
अपि तु मया सह प्लवगपुंगव ! यास्यसि चे-
[2]न्नियतमपायिनी परिणमेद्भवतः पदवी ॥ ३२ ॥

अथ तमिति । अथ अतिप्रवृद्धहनूमद्देहदर्शनानन्तरम् मुदिता अतिसन्तुष्टा सा जनकराजसुता विदेहराजपुत्री सीता तम् हनूमन्तम् उवाच उक्तवती, तदुक्तिमनुवदति—किम्विति । चरणलङ्घितवारिनिधेः पादतीर्णसमुद्रस्य (नावादितरणीयस्य पादतरणं महत्त्वातिशयख्यापकम्) तव किमु किम् दुष्करम् दुःसाध्यञ्च किमपीत्यर्थः, यो भवान्नानायोजनविस्तीर्णमनेकबाधायुतं सागरं पादाभ्यामेव (नावादिसाहायकमनपेक्ष्यैव) तीर्णवाँस्तस्य भवतोऽहं दुःसाध्यं किमपि न पश्यामीत्याशयः । अपितु किन्तु हे प्लवङ्गपुङ्गव वानरश्रेष्ठ, चेत् यदि मया सह मामादाय यास्यसि प्रस्थास्यसे तदा नियतम् निश्चयेन भवतः पदवी त्वदीयो मार्गः अपायिनी (अपायबहुला सबाधा) भयपूर्णा परिणमेत् जायेत । मामादाय गच्छन्तं त्वामिमे राक्षसहतका अनुधावेयुर्येन त्वदीयो मार्गः कष्टबहुलो जायेतातो मां न सह नयेथा इत्याशयः । तर्कुटकं वृत्तम्—'हयदशभिर्नजौ भजजला' गुरु तर्कुटकम् इति च तल्लक्षणम् ॥ ३२ ॥

इसके बाद प्रसन्न होकर सीताने हनूमान्से कहा कि जब तुमने चरणोंके द्वारा सागर लांघ लिया है तब तुम्हारे लिये दुष्कर क्या है (अर्थात् कुछ भी दुष्कर नहीं है), किन्तु

---

१. 'विशेदशाम्' इति पाठान्तरम् । २. 'इयमनपायिनी' इति पाठान्तरम् ।

हे वानरमुख्य, यदि तुम मुझे साथ लेकर चलोगे तो तुम्हारा मार्ग निश्चय ही विघ्नबाधापूर्ण हो जायगा ॥ ३२ ॥

अन्यच्च—

पातिव्रत्यहुताशनेन यदि तं कुर्यामहं भस्मसा-
त्सत्यं दाशरथेः शरस्य न भवेदात्मोचिता पारणा।
किं चैतस्य यशोनिशापतिरपि प्रम्लानकान्तिर्भवे-
[1]द्भ्रातः! शासितरावणे रघुपतौ यात्रा मम [2]श्रेयसी ॥ ३३ ॥

अन्यच्च, पातिव्रत्येति। अन्यच्च किञ्च अहम् सीता यदि तम् रावणम् पातिव्रत्यहुताशनेन स्वपातिव्रत्यरूपेण तेजसः भस्मसात् कुर्याम् दहेयं तदा सत्यम् वस्तुतः दाशरथेः शरस्य रामबाणस्य आत्मोचिता स्वयोग्या (स्वरूपानुरूपा) पारणा तृप्तिः न भवेत् न जायेत। मया रावणे पातिव्रत्याग्निना दाहिते सति कुपितो रामबाणः कं विद्ध्वा कृत्यकृत्यस्तृप्तः स्यादित्यर्थः। किञ्च न केवलं रामबाणपारणाभावः किन्तु एतस्य रामस्य यशोनिशापतिः कीर्त्तिसुधाकरः अपि प्रम्लानकान्तिः क्षीणप्रकाशः स्यात्, (अपकारिदण्डनावसरलाभाभावान्म्लानो जायेतेत्यर्थः) अतः हे भ्रातः, रघुपतौ शासितरावणे विध्वस्तदशानने जाते मम सीतायाः यात्रा इतः प्रस्थानं श्रेयसी हिता, सम्प्रति त्वया सह गमनं न युज्यते इत्यर्थः। अतः श्रीरामो रावणं हन्तुं क्षिप्रमत्र यथाऽऽगच्छेत्तथा त्वया करणीयमित्युक्तिसारांशः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

और यदि मैं अपने पतिव्रत्य तेजसे उस राक्षसाधमको भस्म कर देती हूँ तो सचमुचमें रामके बाणकी यथोचित तृप्ति नहीं हो पायेगी। इतना ही नहीं, रामके यशरूपी चन्द्रमा भी क्षीणकान्ति हो जायेंगे, अतः हे भाई, जब राम रावणका संहार कर लेंगे, तभी हमारा जाना भला होगा ॥ ३३ ॥

एवं व्याहृतः पवनसुतो [3]विनीतां सीतां [4]पुनराबभाषे।

एवमिति। एवम् उक्तप्रकारेण व्याहृतः उक्तः पवनसुतः हनूमान् विनीताम् विनययुक्ताम् (नम्राम्) सीताम् पुनः आबभाषे उक्तवान्। तदुक्तौ सन्तोषमभिव्यञ्जयितुमिदमुक्त्यन्तरं बोध्यम्।

इसतरह सीता द्वारा कहे गये हनूमान्ने विनययुक्ता सीताको इस प्रकार कहा।

---

१. 'तस्माच्छासित' इति पाठान्तरम्। २. 'श्रेयसे' इति पाठान्तरम्।
३. 'विनीताम्' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'अभाषत' इति पाठान्तरम्।

मायामृगेण तव मैथिलि ! वञ्चितायाः
शाखामृगेण पुनरागतिरित्ययुक्तम् ।
एषा कथापि भुवने [1]वितता यदि स्या-
त्का नाम रामधनुषः प्रथिता प्रशस्तिः ॥ ३४ ॥

मायामृगेणेति । हे मैथिलि, मायामृगेण छलेन मृगरूपधरेण कनकमृगभावं गतेन मारीचेन वञ्चितायाः प्रतारितायाः (विप्रलभ्य लोभं गतायास्तथा च सति रावणेन हृतायाः) तव सीतायाः शाखामृगेण वानरेण (वानरं यानमारुह्य) पुनः आगतिः स्वाध्युषितदेशप्राप्तिः इति अयुक्तम् न योग्यम् । सम्भावितायास्तव मृगेण वञ्चनं वानरेणानयनं चेति द्वथमप्ययुक्तं स्यादित्यर्थः । अमुमेवार्थमुपपादयिष्यन्नाह—यदि एषा कथा इयं वार्त्ता रामस्य पत्नी मायामृगेण वञ्चिता परतः शाखामृगसाहायकेन स्वस्थानं प्राप्तेत्येवंरूपा प्रवृत्तिः यदि भुवने संसारे वितता प्रथिता स्यात् (तदा) रामधनुषः रामचापस्य प्रथिता सर्वत्र प्रख्याता प्रशस्तिः श्लाघा का नाम ? रामस्य स्त्रियं वानर उद्धृतवान् अस्यां कथायां सर्वतः प्रसृतायां महासामर्थ्यशालितया ख्यातस्य रामचापस्य का प्रशंसा स्यान्न कापि प्रशंसा स्यात्, स्वस्त्रियमुद्धर्तुमशक्तस्य धानुष्कताप्रशंसा कथामात्र स्यादित्याशयः। अतस्त्वया कष्टं सहमानया कियन्त्यहानि गमनीयानि, श्रीरामेणात्रागत्य रावणो हन्तव्यश्च, ततः परमेव त्वया गन्तव्यमिति त्वदुक्तानुसारीसिद्धान्त एवादरणीय इति ॥ ३४ ॥

हे मैथिलि, मायामृगद्वारा आप छली गई हैं, फिर आपको शाखामृग—वानर—ले जाय यह बात अनुचित होगी । इतना ही नहीं, यदि यह बात संसारमें फैल जाय कि रामकी स्त्रीका उद्धार वानरके द्वारा हुआ तो रामके शरासनकी प्रसिद्ध प्रशंसा क्या रह जायेगी ?॥

किं बहुना, इत्येतदेव[2] चिन्तितम् । यदहं राघवगृहिण्यास्तदेव निश्चितम् । यत्सदृशमीदृशस्य समाचारस्य तदेव प्रकाशितम् । यदनुगुणं रावणापराधप्रतिक्रियायास्तदेवानुमोदितम् । यदनुकूलं कुलवधूशीलस्य तदेव कथितम् । यदुचितं क्षत्रियाणीवाणी[3]प्रक्रमस्य तदेवोपक्रान्तमिति बहुशः प्रशस्य सर्वथा रामलक्ष्मणौ लङ्कामिमां प्राप्ताविति [4]जानकि ! जानीहि । अनुजानीहीमं जनं प्रस्थातुम् ।

१. 'विदिता' इति पाठान्तरम् । २. 'एवम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'क्रमस्येति' इति पाठान्तरम् ।
४. 'जानकि, जानीहि जनमिमनुजानीहि प्रस्थातुम्' इति पाठान्तरम् ।

किं बहुनेति। किं बहुना किमधिकेन, इत्येतत् एत्र एतावत् एव चिन्तितम् शोचितम् भवत्येति शेषः, 'उचितमेव चिन्तितम्' इति पाठः शुद्धः प्रतिभाति। राघवगृहीण्याः रामपत्न्याः यत् अर्हं योग्यम् तदेव निश्चितम् निर्णीतम् (रामेण रावणे हते एवाहं गमिष्यामीति तव निश्चयो रामपत्न्यनुरूप एवेत्याशयः) ईदृशस्य समाचारस्य एतादृशस्य तव पातिव्रत्यस्य यत्सदृशं यदुचितं तदेव प्रकाशितम् उक्त्या प्रकटीकृतम्। रावणापराधप्रतिक्रियायाः रावणकृतापकारप्रतिविधानस्य यत् अनुगुणम् उपयुक्तम् तत् एव कथितम् उक्तम्, कुलवधूशीलस्य कुलस्त्रीचरित्रस्य क्षत्रियाण्याः क्षत्राङ्गनायाः वाण्याः उक्तिरूपाया वाचः प्रक्रमस्य प्रकारस्य यत् उचितं योग्यं तदेव उपक्रान्तम् कर्तुं चिन्तितम्, इति एवं प्रकारेण बहुशः नानाविधभङ्गीभिः प्रशस्य सीतोक्तिप्रशंसां कृत्वा, सर्वथा असंशयं रामलक्ष्मणौ इमां रावणपालितां लङ्कां प्राप्तावागतौ इति हे जानकि, सीते, जानीहि अवधारय, इयं मल्लक्षणं जनं प्रस्थातुम् गन्तुम् अनुजानीहि गन्तुमन्यस्वेत्यर्थः।

और क्या, यही तो सोचा है। राघवकी गृहिणीके लिये जो उचित है वही तो निश्चय किया है, जो पातिव्रत्यके अनुरूप है वही तो प्रकाशित किया है, रावणकृत अपराधकी प्रतिक्रियामें जो चाहिये वही तो कहा है, कुलस्त्रीके चरित्रके लिये जैसा चाहिए वही तो कहा है, क्षत्राणीकी वाणी जैसी चाहिये वैसी ही वाणी तो कहा है, इत्यादि नानाप्रकारसे सीताके कहनेकी प्रशंसा कर कहा कि निश्चय ही राम और लक्ष्मण लङ्का आयेंगे, उन्हें यहाँ आया ही समझें और अब मुझे जाने की अनुमति प्रदान करें।

किञ्च—

काकुत्स्थेन विदितपूर्वम[1]भिज्ञानं किमपि दीयतामिति।

किञ्च, काकुत्स्थेनेति। किञ्च अनुमतिदानेन सह काकुत्स्थेन रामेण विदितपूर्वम् किमपि अभिज्ञानम् परिचयप्रदं कथात्मकं वस्त्वन्तरं वा प्रदीयताम् मह्यं दीयताम्, यस्मिन्मया नीत्वा दीयमाने सति रामो भवतीं दृष्टां कुशलसंवादहृष्टां च जानीयादित्यर्थः।

और रामजी जिसको जानते हों इस तरहका कुछ अभिज्ञान परिचायक वस्तु दीजिये।

सा तु दीर्घं निश्वस्य निश्चित्य पुरा खलु चित्रकूट[2]तटवने तरुणतरतरुरमणीयतया [3]मन्दीभवन्नन्दनवैभवे रघुनन्दनेनोपधानीकृताङ्काया मम

---

१. 'किमप्यभिज्ञानं दीयताम्' इति पाठान्तरम्। २. 'नटवने' इति पाठान्तरम्।
३. 'मन्दीकृत' इति पाठान्तरम्।

पयोधरपरिसरे खरतरनखराग्रै[1]र्विरचितविदारणं धाराधरनामानं काकं रघुपति[2]र्व्यलोकयत् ।

सा तु दीर्घमिति । सा सीता तु दीर्घं निश्वस्य उच्चैःश्वासमादाय (तथाकरणञ्चाभिज्ञानया सपदि वक्ष्यमाणायाः कथाया रामसहवासस्मारकतया वियोगावस्थायां समधिकक्लेशप्रदत्वेन जायमानं खेदं व्यञ्जयति) निश्चित्य कथेयमभिज्ञानकार्यं चारु कुर्यादिति निर्णीय पुरा खलु पूर्वकाले तरुणतरतरुरमणीयतया नवीनवृक्षसौन्दर्येण मन्दीभवन्नन्दनवने परास्तदेवोद्यानशोभे चित्रकूटतटवने चित्रकूटाभिधपर्वतसमीपकानने रघुनन्दनेन रामेण उपधानीकृताङ्कायाः उपबर्हीकृतक्रोडायाः (रामे मदङ्के शिरो निधाय शयाने सतीत्यर्थः) मम पयोधरपरिसरे कुचप्रान्ते खरतरनखराग्रैः अतितीक्ष्णनखमुखैः विरचितविदारणं कृतक्षतं धाराधरनामानं तत्संज्ञकं काकं रघुपतिः रामो व्यलोकयत् अपश्यत् । पुराऽतिरम्ये चित्रकूटपर्वततटवर्त्तिवने समुपविष्टाया ममाङ्के रामो निजं शिरो निधाय शयान आसीत्तदैवैको धाराधरनामा काको मम स्तनप्रान्ते स्वैस्तीक्ष्णैर्नखाग्रैः क्षतमकृतेति कथाऽत्राभिज्ञानत्वेन विवक्षिता बोध्या । 'उपधानं तूपबर्हः' इत्यमरः ।

सीताने लम्बी साँस लेकर कहा—पुराने समयमें चित्रकूट पर्वतके तटवर्त्ती वनमें जिसके आगे नये नये वृक्षोंसे रमणीय होनेके कारण नन्दनवन मन्द पड़ रहा था, जिस समय हमारी गोदको तकिया बनाकर श्रीरामजी सोये हुए थे, इसी समय धाराधर नामक एक काकने अपने तीखे मुखवाले नखसे हमारे स्तनप्रान्तको विदारित कर दिया, इस घटनाको रामजीने देखा था ।

कुशरूपकुशेशयासनास्त्रं
विजहौ वासविवायसे स वीरः ।
अथ तत्कृपया हृताक्षिमात्र-
श्चिरजीवी स दधौ यथार्थसंज्ञाम् ॥ ३५ ॥

कुशरूपेति । सः वीरः कुशरूपकुशेशयास्त्रम् संस्तरवर्त्तिकुशमेव कुशेशयासनः ब्रह्मा तदस्त्रम् ब्रह्मास्त्रम् वासविवायसे इन्द्रपुत्रभूते काके विजहौ त्यक्तवान् । यदा रामस्तस्य काकस्यात्यारूढं कार्यमपश्यत्तदा क्रुद्धस्सन् तस्मै इन्द्रपुत्राय काकाय बाणममुञ्चत् इत्याद्यपादद्वयार्थः । अथ रामकृतबाणत्यागानन्तरम् तत्कृपया रामकृतया दयया हृताक्षमात्रः नष्टैकनयनः चिरजीवी अनपेतजीवितश्च चिरजीवी स काकः चिरजीवितया चिरजीवीति यथार्थसंज्ञाम् अन्वर्थमभिधानम् दधौ । सोऽयं ब्रह्मास्त्राद्विद्रुतः काकः शरण्यान्तराभावात्तं राममेव शरणं ययौ, दयालुश्चासौ रामः स्वास्त्रामोघतापालनाय तस्यैकमक्षिकेवलमहरच्च जीवितं, तेन चिरजीवी भूत्वा

१. 'रघुनन्दनोपधानीकृतोत्सङ्गायाः' इति पा० । २. 'अवालोकयत्' इति पाठान्तरम् ।

'चिरजीवी'ति काकसंज्ञामसौ सार्थकीकृतवानित्यर्थः। 'चिरजीवी चैकदृष्टिर्मौकुलिः पिकवर्द्धनः' इत्यमरः। उक्तेयं घटना रामायणे यथा—'सदर्भं संस्तराद्गृह्य ब्राह्मेणास्त्रेण योजयन्। सदीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्। स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति। ततस्तं वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह॥' इत्यादिना। औपच्छन्दसिकं वृत्तम्॥ ३५॥

वीरवर रामने उस अपराधी इन्द्रपुत्र काकके ऊपर कुशनिर्मित ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, (वह काक शरणान्तरके नहीं मिलने पर रामकी शरणमें ही आया) और दयालु रामने उसकी एक आंखमात्र नष्टकर चिरजीवी कर दिया, इसीसे काक यथार्थरूप चिरजीवी कहे जाते हैं॥ ३५॥

सैषा परिचतकथास्मरणा[१]द्विगुणितदुर्दशा केशपिनद्धमपरमिदमभिज्ञानमुन्मुच्य।

सैषेति। परिचितकथास्मरणात् पूर्वानुभूतवृत्तान्तस्मरणतः द्विगुणितदुर्दशा द्विगुणितांगतकष्टा सती सा एषा सीता केशपिनद्धम् चिकुरावस्थितम् अपरम् द्वितीयम् इदम् चूडामणिरूपम् अभिज्ञानम् परिचयचिह्नम् उन्मुच्य केशादवकृष्य (ददाविति वक्ष्यमाणेनान्वयः) काककृतापकारकथास्मरणादुद्भिन्नदुःखाधिक्या (संभोगस्मरणस्य वियोगोत्तेजनकतया) द्विगुणं कष्टमनुभवन्ती सीता केशावस्थितमिदं चूडामणिरूपमभिज्ञानं मह्यं ददाविति भावः।

पुरानी बातके स्मरण हो आनेसे द्विगुणकष्टका अनुभव करती हुई सीताने केशमें लगे चूड़ामणि नामक द्वितीय अभिज्ञानको उतारकर (हनुमान्‌जीको दिया)।

चूडामणिं कपिवरस्य ददौ दशास्य-
[२]संत्रासपुञ्जितरुषाग्निदशं कृशाङ्गी।
आदाय [३]तम्प्रणतिपूर्वमसौ प्रतस्थे
माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः॥ ३६॥

चूडामणिमिति। कृशाङ्गी विरहवेदनावशात् दुर्बलदेहा तन्वी सीता दशास्याद् रावणात् यः त्रासो भयं तेन पुञ्जिता सञ्चिता या रुषा कोपः (रावणविषयः सीतानिष्ठस्तत्कृतकदर्थनजन्माऽप्रीतिरूपो मानसोभावः) सैव अग्निः सन्तापकत्वाद् वह्निस्तस्य दशा साम्यं यस्मिंस्तथोक्तम् रावणोपरि सीतायाः सञ्चितेन कोपेन समानम् इत्यर्थः, चूडामणिं शिरोऽलङ्कारविशेषम् कपिवरस्य हनूमतः ददौ दत्त-

१. 'द्विगुण' इति पाठान्तरम्। २. 'संत्रासपूजितमहाग्निशिखं' इति पाठान्तरम्।
३. 'तत्' इति पाठान्तरम्।

वती। अत्र कपिवरस्य ददाविति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । ददातेरर्थे स्वस्वत्वनिवृत्तिं परस्वत्वोत्पत्तिं चेत्युभयं निवेशयतां मते त्वत्र चतुर्थी प्राप्तिरेव न, उभयांशाभावात्। असौ हनूमान् प्रणतिपूर्वम् नमस्कारपूर्वकं तं चूडामणिम् आदाय हस्तेन गृहीत्वा माणिक्यं मणिः गर्भे अभ्यन्तरे यस्य तादृशं च वदनं यस्य तथोक्तेन उरगेण सर्पेण तुल्यो बाहुर्दक्षिणहस्तो यस्यासौ माणिक्यगर्भवदनोरगतुल्यबाहुः मणियुक्तमुखसर्पसमभुजः सन् प्रतस्थे सीतासमीपात् चलितः। चूडामणिरूपो मणिः सर्परूपोऽत्र बाहुर्बोध्यः, बाहौ सर्पोपमा वर्त्तुलत्वविशालत्वाभ्यां दीयते। रुष्धातोः क्विबन्ताद्धलन्तत्वाट्टाप्, 'आपं चैव हलन्तानाम्' इति भागुरिवचनात्, तेन रुषापदसिद्धिः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

रावणद्वारा किये गये उत्पीडनसे सञ्चित कोपकी समता धारण करनेवाले चूड़ामणिको कृशाङ्गी सीताने हनुमान्को दिया और (उस चूड़ामणिको हाथमें रखनेके कारण) मणिपूर्णमुख सर्पसदृश बाहुसे युक्त हनूमान्जी सीताको प्रणाम करके वहाँसे विदा हुए ॥ ३६ ॥

ततः कृतकृत्य [1]एव निर्गत्य निजागमनं निशाचरपतेः प्रकाशयितुमशोकवनिकां [2]प्रबभञ्ज प्रभञ्जनात्मजः।

तत इति। ततः सीतादत्तचूडामणिपूर्वकं सीताधिष्ठितदेशात्प्रस्थानानन्तरम् कृतकृत्यः साधितस्वागमनप्रयोजनः निर्गत्याशोकवाटितो बहिरागत्य निजागमनं स्वीयां लङ्काप्राप्तिं निशाचरपतेः राक्षसराजस्य रावणस्य प्रकाशयितुं बोधयितुम् एव (फलान्तराभावेऽपि राक्षसराजो मदागमनं जानीयादित्युद्दिश्य) प्रभञ्जनात्मजः वायुपुत्रः अशोकवनिकां तन्नामकं रावणोद्यानविशेषम् प्रबभञ्ज उत्पाटयामास।

इसके बाद अपने लक्ष्यको सिद्ध करके निकले हुए हनूमान्ने रावणको अपने आनेकी सूचना दे देनेके लिये अशोकवाटिका तोड़ फोड़ डाली।

स्वकृत्यैः शाखानामवनतिमतीव प्रकटय-
न्नमार्गेण भ्राम्यन्परिकलितभङ्गः सुमनसाम्।
द्विजानां सन्त्रासं श्रुतिमधुरवाचां विरचय-
न्नयं [3]लङ्कोद्याने दशवदनलीलामतनुत ॥ ३७ ॥

स्वकृत्यैरिति। स्वकृत्यैः स्वकृतैर्द्रुमाद्द्रुमान्तरे पतनादिभिरुद्धतव्यापारैः शाखानाम् वृक्षावयवानाम् अतीव समधिकाम् अवनतिम् नम्रीभावं प्रकटयन् आविर्भावयन्, अमार्गेण अपथेन भ्राम्यन् सञ्चरमाणः, सुमनसाम् वृक्षाणां परिकलितभङ्गः

---

१. 'एष निशाचरपतेः प्रकटयितुम्' इति पा०। २. 'बभञ्ज' इति पाठान्तरम्।
३. 'लोकोद्याने' इति पाठान्तरम्।

भङ्गं विदधत्, पुष्पाणि निर्दयं मर्दयन्नित्यर्थः, श्रुतिमधुरवाचाम् कर्णमनोहरशब्दकारिणां द्विजानां पिकादिपक्षिणां सन्त्रासं भयं विरचयन् जनयन्, अयम् हनूमान् लङ्कोद्याने लङ्कावर्त्तिन्यामशोकवाटिकाभिधानपुष्पवाटिकायां दशवदनलीलां रावणसादृश्यम् अतनुत कृतवान्, रावणोऽपि स्वकृत्यैः स्वैर्दुराचारैः शाखानाम् कठकौथुमादिवेदभागानां समधिकाम् अवनतिम् दुर्गतिम् प्रकटयति, (वेदशाखा विरुद्धाचार एवात्र तदवनतिर्बोध्या) अमार्गेण लोकविद्विष्टवर्त्मना भ्राम्यति व्यवहरति, सुमनसां देवानां भङ्गम् अपमानं रचयति, श्रुतिमधुरवाचाम् वेदसुन्दरगिरां द्विजानाम् ब्राह्मणादीनाम् सन्त्रासं भयं विधत्ते, तदियं रावणलीला समानशब्दाभिधेयतया हनूमताऽनुकृतेति भावः। 'शाखा वेदप्रभेदेषु' 'बाहावङ्घ्रिद्रुमाङ्गयोः' 'सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्री देवबुधयोः पुमान्' 'श्रुतिः श्रोत्रे तथाऽऽम्नाये' 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इति सर्वत्र यादववैजयन्त्यमरकोशाः। 'अन्यलीलाया अन्यत्रासंभवात्तत्सदृशीं लीलामिति सादृश्याक्षेपादसंभवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शना, सा चोक्तश्लेषानुप्राणिता। तयोः सङ्करः'। इति बुधेन्द्रः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ ३७ ॥

अपने उछलने-कूदने रूप कृत्योंसे वृक्षकी शाखाओंको अतिशय अवनत कर दिया, बेरास्ते चले, फूलों को तोड़कर मसल दिया, कर्णप्रिय शब्द करनेवाले पक्षियोंको भयभीत किया, इसतरह हनूमान्‌ने उस लङ्कोद्यानमें रावणकी लीला प्रकट की, रावणने भी तो अपने कर्त्तव्योंसे वेदकी शाखाओंको अवनत बनाया था, अमार्ग—कुमार्ग—से चलता था, देवतागणको क्षति पहुँचाता था, वेदमधुरभाषी ब्राह्मणोंको डरवाता था। श्लेष द्वारा रावणके कार्योंका हनूमान्‌में समन्वय होता है ॥ ३७ ॥

तदनु सरभसमारक्षिक[1]रक्षोगणनिवेदितप्रमदवनकदन[2]कुपित[3]दशवदनप्रेषितान्पितृपतिकिङ्करभयङ्करान्किङ्करा[4]न्प्रहस्तपुत्रेण जम्बुमालिना सह निहत्य चैत्यतोरणमुपगतवति[5] हनूमति।

तदन्विति। तदनु अशोकवनिताभञ्जनानन्तरम् सरभसम् वेगेन आरक्षिकरक्षोगणैः अशोकवनिकारक्षायामधिकृतैः राक्षससमूहैः निवेदितं गत्वाऽभिहितं यत् प्रमदवनकदनम् अन्तःपुरोचितपुष्पोद्यानस्य हनूमता कृतं भञ्जनम्, तेन कुपितेन क्रुद्धेन दशवदनेन रावणेन प्रेषितान् प्रहितान् पितृपतिकिङ्करभयङ्करान् यमराजानुचरवद्भीषणान् किङ्करान् रावणभृत्यान् प्रहस्तपुत्रेण प्रहस्तनामकरावणमन्त्रितनयेन जम्बुमालिना तदाख्येन सह निहत्य मारयित्वा चैत्यतोरणम् प्रासादद्वारो

१. 'आरक्षक' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रमदावन' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्रकुपित' इति पाठान्तरम्। ४. 'किंकरान्' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'मुपागतवति' इति पाठान्तरम्।

परितनभागम्, उपगतवति प्राप्ते हनूमति, भावे सप्तमीयम्, यदा हनूमानशोकवाटिकामभनक्तदा तद्रक्षाऽधिकृता राक्षसा गत्वा यथावृत्तं रावणाय निवेदयामासुः स च यमराजानुचरभीषणान्स्वान् भृत्यान्प्रैपयत्तान् तदधिष्ठातारं जम्बुमालिनं च हनूमान् हतवान्, तथा कृत्वा प्रासादद्वारोपरितनभागमारूढे सति हनूमतीत्यर्थः। 'रभसो वेगहर्षयोः' 'यमराजः पितृपतिः' इत्युभयत्र विश्वः।

इसके बाद वेगपूर्वक अशोकवाटिकाकी रखवालामें नियुक्त राक्षसोंने रावणके पास जाकर निवेदन किया कि अशोकवाटिकामें बड़ा भारी उत्पात हुआ है, इस पर दशाननने यमराजकी तरह भयङ्कर अपने भृत्योंको तथा प्रहस्तके पुत्र जम्बुमालीको भेजा, उन सभीको मारकर जब हनुमान्‌जी प्रासादद्वारके उपरी भाग पर चढ़े तब।

पुनरपि निशमितामितनिशिचरगणमारणो रावणः सचिवान्पञ्च पञ्चाननपराक्रमान्[1]प्रहसनप्रमुखान्वलीमुखं जीवग्राहं गृह्णीध्वमिति प्राहिणोत्।

पुनरपीति। पुनः अपि निशमितम् आकर्णितम् अमितस्य बहोः निशिचरगणस्य राक्षससमूहस्य मारणं वधो येन तादृशः यथोक्तः श्रुतानेकराक्षससंहार इत्यर्थः, रावणः पञ्चाननपराक्रमान् सिंहसमानशौर्यान् प्रहसनमुखान् प्रहसनप्रभृतीन् पञ्च सचिवान् पञ्चसङ्ख्याकान् स्वमन्त्रिणः वलीमुखं वानरम् जीवग्राहं गृह्णीध्वम् जीवन्तमेव गृहीत्वा वशीकृत्याऽऽनयत इति हेतोः प्राहिणोत् प्रेषितवान्। आरक्षिकराक्षसेषु हतेषु कुपितो दशाननः प्रहसनप्रभृतीन्मन्त्रिणः पराक्रमिणश्च पञ्चजनान् वानरं हनूमन्तं जीवन्तमेव गृहीत्वा मदन्तिकमानयतेत्याज्ञाप्य प्रेषितवानित्यर्थः, 'जीवग्राह'मित्यत्र—'समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः' इति णमुल्।

पुनः असंख्य राक्षसोंका संहार सुनकर रावणने अपने सिंहसमान पराक्रम वाले प्रहसन आदि पांच मन्त्रियोंको यह आदेश देकर भेजा कि दुष्ट वानरको जीवित ही पकड़ लावें।

तत्र तानपि [2]तोरणपरिघेण पञ्च पञ्चतां नीत्वा मुहुर्मुहुर्दाशरथिदूतो[3]ऽहमित्यात्मानमुद्घोषयन्तं हनूमन्तं नियन्तुं [4]नियन्ता निखिलरक्षसा म[5]ध्यक्षमक्षमकुमारमध्यक्षिपत्।

तत्रेति। तत्र प्रासादद्वारे तोरणपरिघेण तोरणस्थितार्गलदण्डेन पञ्च पञ्च संख्याकान् अपि तान् प्रहसनादीन् रावणमन्त्रिणः पञ्चतां नीत्वा पञ्चत्वं लम्भयित्वा मुहुर्मुहुः वारं वारं दाशरथिदूतः रामदूतः अहम् इति एवं प्रकारेण आत्मानम् उद्घोष-

---

१. 'प्रहस्त' इति पाठान्तरम्। २. 'पञ्चतां नीत्वा तोरणपरिघेण' इति पाठान्तरम्।
३. 'दासः' इति पाठान्तरम्। ४. 'नियन्ता' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'अभ्यक्षमक्षकुमारमाक्षिपत्' इति पाठान्तरम्।

यन्तं स्वपरिचयं प्रकाशयन्तं हनूमन्तं नियन्तुं निग्रहीतुं निखिलरक्षसां सर्वेषां राक्षसानामधिपो रावणः अध्यक्षम् अक्ष्णोः पुरोऽवस्थितम् (अथवा अध्यक्षं रावण-सैन्यस्येति विवक्षणीयम्) अक्षकुमारम् नाम स्वपुत्रम् अध्यक्षिपत् अधिक्षिप्तवान्, धिक् त्वां शूरं मन्यं यस्य तव तिष्ठत एव सकलमपि दूतजनमयं वानरो दलितवाँस्तद्गत्वा निगृहाणेमं कृतोपद्रवमिति कटूत्तेजकवाक्यैर्निन्दितवान् इत्यर्थः। अधि-क्षिपतेः प्रेषणार्थतामभिदधानो बुधेन्द्रस्तु किमभिप्रैतीति स एव प्रष्टव्यः।

वहाँ पर तोरणकी अर्गलासे उन पांच मन्त्रियोंको भी मौतकी घाट उतार कर मैं रामचन्द्रका दूत हूँ इस तरहकी घोषणा करने वाले हनूमान्को निगृहीत करनेके लिये राक्षसोंका राजा रावणने सामने बैठे हुए अक्षकुमारको ललकारा।

वक्षःसंघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिचैत्योत्थधूल्या
नक्षत्राणामकाले सरणिमरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः।
रक्षःशूराख्यशारां क्षितितलफलके क्षेपणीयां हनूमा-
नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेऽसौ ॥ ३८॥

वक्षस्सङ्घट्टेति। वक्षःसङ्घट्टेन उरःस्थलसङ्घर्षणेन चूर्णीकृताः चूर्णतां नीताः कनक-महाभित्तयः काञ्चनमयोन्नतकुड्यानि यस्य तथोक्तात् चैत्यात् उत्थया उत्पन्नया उपरिप्रसृतया धूल्या स्वर्णमयभित्तियुक्तस्य प्रासादस्य वक्षःसङ्घर्षेण पात्यमानस्य स्वर्णाभा धूलिर्दिवि प्रसरेत्तयेत्यर्थः, अकाले असमये नक्षत्राणाम् ताराणां सरणिं व्योमदेशम् अरुणयन् रक्ततां गमयन्, वीरलक्ष्म्या समेतः वीरश्रिया युक्तः असौ हनूमान्, रक्षःशूरा राक्षसयोधाः तदाख्याः शाराः अक्षगुटिकाः यस्यां तादृशीम् क्षितितलफलके भूतलरूपेऽक्षपट्टे क्षेपणीयां निपात्य प्रनर्त्तनीयां प्रवर्त्तनीयां च अक्ष-क्रीडाम् पाशद्यूतकेलिम् विधातुं (रावणप्रेषिताक्षकुमारं हन्तुञ्चेति ध्वनिः) दशमुख-नगरीचत्वरे लङ्कापुरप्राङ्गणे तत्वरे वेगेन प्रतस्थे इत्यर्थः। रावणस्य प्रासादं वक्षः-सङ्घर्षेण पातयित्वा तदुत्थितया स्वर्णधूल्याऽऽकाशमकालेऽरुणीकुर्वन् वीरश्रियायु-तोऽसौ हनूमान् रक्षःशूरान् अक्षगुटिकारूपान् पृथ्वीतलेऽक्षपट्टरूपे निपात्य प्रवर्त्त-नीयामक्षकुमारमृत्युरूपां द्यूतपाशरूपामक्षक्रीडां कर्त्तुं रावणपुरप्राङ्गणे त्वरयाऽय-यावित्यर्थः। यथा कश्चन द्यूतपाशक्रीडनपटुशारान् (गुटिकाः) भुवि क्षिप्त्वा क्रीडति, तद्वदयं राक्षसान् भुवि निपात्य क्रीडन्नक्षक्षयं क्रीडामकुरुतेति हृदयम्। स्रग्धरावृत्तम् ॥ ३८ ॥

छातीकी रगड़से चूर्ण किये गये सोनेकी दीवार वाले प्रासादके गिरनेसे उठी हुई धूलसे असमयमें नक्षत्रमार्गको लाल बनाने वाले, वीर लक्ष्मीसे युक्त श्रीहनूमान् शूर-राक्षसगणरूप गुटिकाओंको जमीनरूप बिसात पर फेंकर खेली जानेवाली अक्षक्रीड़ा (द्यूतक्रीड़ा-अक्षवध) करनेके लिये लङ्कानगरके मैदानकी ओर तेजीसे बढ़े ॥ ३८ ॥

तत्क्षणं क्षणदाचराणां[1] मिषतामेव निष्पादि[2]तरङ्गनिष्पेषकृत्यश्चैत्य-[3]प्रासादमुत्पाटितस्तम्भजातजातवेदसा दग्ध्वा भूयोऽप्युपाश्रिततोरणः समीरणसुतो बभूव। एनमपि वृत्तान्तं श्रुत्वा कुपितस्य [4]निशाचरपतेर्युगपदेव निपेतुः पुत्रे सुत्रामजिति [5]समितिहेतोर्विंशतिदृष्टयः।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्समये हनूमति लङ्काजिरं प्राप्ते सतीत्यर्थः, मिषताम् पश्यताम् एव क्षणदाचराणाम् राक्षसानाम् पश्यतो राक्षसाननादृत्येत्यर्थः, 'षष्ठी चानादरे' इति षष्ठी। निष्पादितं सम्पादितं रङ्गनिष्पेषकृत्यम् रणभूमावक्षसंहारकार्यं येन तथोक्तः, उत्पाटितम् दलितम् यत् स्तम्भजातम् स्थूणासमुदायस्तज्जातवेदसा तदुत्थितेन वह्निना चैत्यप्रासादम् चैत्यगोपुरम् दग्ध्वा ज्वलयित्वा समीरणसुतः वायुपुत्रः हनूमान् भूयोऽपि समुपाश्रिततोरणः पूर्वमाश्रितस्य तोरणस्य नष्टतया तोरणान्तरमाश्रितः बभूवेत्यर्थः। एनम् अक्षवधतोरणदाहात्मकम् अपि वृत्तान्तम् श्रुत्वा कुपितस्य जातमन्योः निशाचरपतेः राक्षसराजस्य विंशतिदृष्टयः विंशतिसङ्ख्यकानि नयनानि पुत्रे स्वतनये सुत्रामजिति इन्द्रजिति समितिहेतोः युद्धाय युगपत् सहैव निपेतुः अपतन्। तोरणभङ्गाक्षवधरूपं हनूमत्कृत्यमाकर्ण्य रावणो युगपदेव स्वानि सर्वाणि नयनानि स्वपुत्रे मेघनादे युद्धार्थं सज्जीभवितुमाज्ञपयन्निव निचिक्षेपेति भावः। 'जातवेदास्तनूनपात्' इत्यग्निपर्यायेऽमरः, 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' 'सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री' 'समित्याजिसमिद्युधः' इति च सर्वत्रामरः।

उस समय देखते हुए निशाचरोंका अनादर करके युद्धस्थलमें अक्षादि योद्धाओंका संहार कर प्रासादके स्तम्भोंको उत्पाटित करनेसे प्रकटित वह्नि द्वारा उस प्रासादको जलाकर हनूमान्‌जी दूसरे प्रासाद पर आरूढ़ हो गये। इस समाचारको भी सुनकर रावण अति कुपित हुआ, उसकी बीसो नयन इन्द्रको जीतने वाले अपने पुत्र मेघनादपर युद्धके लिये उद्यत होनेको प्रेरित करनेके लिये एक साथ जा गिरे।

अनिमिषभुवने वा व्योम्नि वा भूतले वा
समरमुपगतं त्वां वीक्षितुं कः समर्थः।
इति नुतिवचनेन श्लाघयन्मेघनादं
प्लवगमिह नयेति प्राहिणोद्राक्षसेन्द्रः॥ ३६॥

अनिमिषभुवने इति। न निमिषन्तीत्यनिमिषा देवास्तेषां भुवने लोके स्वर्गे इत्यर्थः, वा अथवा व्योम्नि आकाशे, भूतले पृथिव्यां वा, भूर्भुवः स्वरात्मके लोक-

१. 'अनिमिषतम्' इति पाठान्तरम्। २. 'तदङ्ग' इति पाठान्तरम्।
३. 'प्रसाद' इति पाठान्तरम्। ४. 'पिशिताशनपतेः' इति पाठान्तरम्।
५. 'समति' इति पाठान्तरम्।

न्यये इत्यर्थः, समरम् युद्धक्षेत्रम् उपगतं प्राप्तम् युध्यमानं त्वां वीक्षितुं द्रष्टुं कः समर्थः क्षमः ? न कोऽपि युद्ध्यमानं त्वां द्रष्टुमपि क्षमस्तदा का वार्त्ता त्वया सह युद्धस्येति तात्पर्यम् , स्वर्गेऽन्तरिक्षे भुवि च तव प्रतिद्वन्द्वी न विद्यत इत्यभिप्रायः। इति नुतिवचनेन एवंप्रकारया स्तुतिगिरा मेघनादं नाम स्वपुत्रम् श्लाघयन् प्रशंसन् राक्षसेन्द्रः रावणः प्लवगं वानरम् इह मम समीपे नय प्रापय इति (मेघनादं प्रति विज्ञाप्य तम्) प्राहिणोत् प्रेषितवान् । मालिनीवृत्तम् ॥ ३९ ॥

देवलोकमें या आकाशमें अथवा भूलोकमें कोई भी ऐसा नहीं है जो समरक्षेत्रमें तुमसे आँखें मिला सके, इस प्रकारके स्तुति वचनोंसे मेघनादकी प्रशंसा करता हुआ रावन 'वानरको पकड़ कर यहाँ ले आओ' यह कहकर मेघनादको भेजा ॥ ३९ ॥

नेतुं शोकरसं निशाचरपतेर्हन्तुं [1]चमूं रक्षसां
तस्यान्तःपुरयोषितां रचयितुं मानं विना रोदनम् ।
सूर्याचन्द्रमसोः प्रवेशविकलां लङ्कापुरीमग्निना
[2]शुद्धां कर्तुममुष्य वासवजिता जातो रणस्तोरणे ॥ ४० ॥

नेतुमिति । निशाचरपतेः रावणस्य शोकरसं विषादं नेतुं तदन्तिकं प्रापयितुम्, रक्षसां चमूं राक्षससेनां हन्तुम् नाशयितुम् , तस्य रावणस्य अन्तःपुरयोषिताम् अवरोधवधूनाम् मानं सीमानं विना निस्सीमम् रोदनं क्रन्दनं रचयितुम् उपस्थापयितुम्, सूर्याचन्द्रमसोः दिवाकरनिशाकरयोः प्रवेशविकलाम् प्रवेशेन रहिताम् लङ्कापुरीम् अग्निना स्वीयपुच्छाग्निना शुद्धां कर्त्तुं अमुष्य हनूमतः वासवजिता इन्द्रजिता सह तोरणे प्रासादोपरितनदेशे रणो युद्धं जातः समजनि । मेघनादेन सह हनूमतो युद्धस्य रावणहृदये शोको राक्षससैन्यसंहारो रावणान्तःपुरवर्त्तिवनिताजनानन्तरोदनम् , सूर्याचन्द्रमसोः प्रवेशाभावेनाशुद्धाया लङ्कानगर्या वालाग्निना ज्वलयित्वा शोधनञ्चेत्येतानि फलान्यभूवन्निति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४० ॥

इन्द्रजितके साथ प्रासादद्वारके ऊपर हनूमान्‌का जो युद्ध हुआ उससे रावणको शोक प्राप्त हुआ, राक्षससैन्यका संहार हुआ, रावणके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ निःसीम भावसे रोईं, सूर्य और चन्द्रमाके प्रवेश नहीं होनेसे गन्दी लङ्का पुच्छाग्निमें जल कर पवित्र हुई, ये ही सब उस युद्धके परिणाम हुए ॥ ४० ॥

संग्रामदुर्दिने तस्मिञ्जहर्ष शरवर्षिणि ।
बर्हीव मेघनादेन मेघनादेन मारुतिः ॥ ४१ ॥

---

१. 'चमू' इति पाठान्तरम् । २. 'शुद्धिम्' इति पाठान्तरम् ।

संग्रामेति। शरान् बाणान् शराणि जलानि च वर्षतीति तथोक्ते तस्मिन् प्रसिद्धे संग्रामदुर्दिने युद्धरूपे मेघाच्छन्नदिवसे मेघनादेन घनगर्जितेन बर्हीं इव मेघनादेन रावणपुत्रेण मारुतिः वायुसुतो हनूमान् जहर्ष प्रसन्नतां प्राप। यथा जलवर्षिणि मेघाच्छन्ने दिवसे घनगर्जितेन मयूरो मुदमुपयाति, तथैव बाणवर्षायुते तत्र युद्धे सदृशयोद्धृलाभात् मेघनादेन मारुतिः प्रसन्नतां प्राप्तवानिति भावः। 'शरोवद्याद्य-प्रसारे बाणे काण्डतृणान्तरे। शरं नीरे च' इति नानार्थरत्नमाला। 'मेघाच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' 'मयूरो बर्हिणो बर्हीं' इत्युभयत्रामरश्च। श्लेषसङ्कीर्णोपमाऽलङ्कारः॥४१॥

बाणवर्षायुक्त तथा जलवर्षायुक्त संग्रामरूप दुर्दिनमें मेघशब्दसे मयूरकी तरह मेघनादसे हनूमान्को प्रसन्नता हुई ॥ ४१ ॥

तदनु यातुधानबल[1]प्रधाननिधनक्रुद्धो विविधायुधवैतथ्यं विमृश्य विजयश्री[2]संगतगन्धं [3]गन्धवहनन्दनं [4]सदानन्दास्त्रेण बबन्ध दशकन्धरात्मजः।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् यातुधानबलप्रधाननिधनक्रुद्धः राक्षससेनानायक-विनाशकुपितः दशकन्धरात्मजः रावणसुतो मेघनादः विविधायुधवैतथ्यं हनूमदुपरि प्रयुज्यमानानां नानाविधानामस्त्राणां वृथात्वं विमृश्य विभाव्य विजयश्रिया जयलक्ष्म्या सङ्गतो मिलितो गन्धः सम्बन्धो यस्य तादृशं विजयश्रीसनाथमित्यर्थः, गन्धवहनन्दनं वायुपुत्रं सदानन्दास्त्रेण ब्रह्मास्त्रेण बबन्ध निगृहीतवान्। 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः' इति 'पृषदश्वो गन्धवाहो गन्धवाहानिला-शुगाः' इति चामरः।

इसके बाद राक्षससेनानायकोंके मारे जानेसे चिढ़ा हुआ रावणपुत्र मेघनादने नाना प्रकारके अस्त्रोंकी व्यर्थता विचारकर विजयश्रीके साथ सतत सम्बन्ध रखनेवाले वायुपुत्रको ब्राह्म अस्त्रसे बाँध दिया।

तेन दिव्यास्त्रेण विवशशरीरमेनं पिशिताशनाः [5]शणवल्कलैर्बबन्धुः।

तेनेति। तेन दिव्यास्त्रेण ब्राह्मेणास्त्रेण विवशशरीरम् परवशगात्रम् एनम् हनूमन्तम् पिशिताशनाः मांसभुजो राक्षसाः शणैः वल्कलैश्च बबन्धुः बद्धवन्तः, अशक्त-शरीरस्य तस्य बन्धदार्ढ्याय शणं वल्कलं चोपयुयुजिरे इत्याशयः।

उस ब्राह्म अस्त्रके प्रभावसे जब हनूमान्जी विवशकाय हो गये तो राक्षसोंने शन तथा छालसे उन्हें बाँध दिया।

---

१. 'प्रबल' इति पाठान्तरम्।
२. 'सगन्धम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'गन्धवाह' इति पाठान्तरम्।
४. 'चतुराननास्त्रेण' इति पाठान्तरम्।
५. 'शोण' इति पाठान्तरम्।

स मारुतेर्नैर्ऋतपाशजन्मा बन्धोऽभवद्बन्धविमोक्षहेतुः[1] ।
पुरा पुलस्त्यान्वयपांसनेन[2] बन्दीकृतानां सुरसुन्दरीणाम् ॥ ४२ ॥

स मारुतेरिति । स नैर्ऋतपाशजन्मा राक्षसरज्जुकृतः मारुतेः हनूमतः बन्धः पुरा पूर्वम् पुलस्त्यान्वयपांसनेन पुलस्त्यकुलकलङ्कभूतेन रावणेन बन्दीकृतानाम् बद्धानाम् सुरसुन्दरीणाम् देवाङ्गनानाम् बन्धविमोक्षहेतुः बन्धनान्मुक्तेः कारणम् अभवत् अजायत । राक्षसैर्हनूमान् पाशेन बद्धस्तन्मन्ये सुरसुन्दरीणां रावणेन बन्दीकृतानां मुक्तेः कारणतामभजत, बद्धतया कुपितेन हनूमता लङ्कादाहादिना तथा करणात् इति बोध्यम् । बन्धस्य बन्धमोक्षणकारणत्वोक्त्याऽसङ्गतिरलङ्कारः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४२ ॥

राक्षसोंकी रस्सियोंसे किया गया हनूमानूजीका बन्ध पहलेसे पुलस्त्यकुलकलङ्क रावन द्वारा बन्दीकृत सुराङ्गनाओंकी बन्धनसे मुक्तिका कारण हो गया ॥ ४२ ॥

तदनन्तरमितरहननासहतया निह्नुतस्य[3] दिव्यास्त्रस्य प्रभावं विभावयन्विभावरीचरपतितनूजः[4] पवनतनयं निजपितृसमीपमुपनिनाय ।

तदनन्तरमिति । तदनन्तरं हनूमद्बन्धनानन्तरम् इतरहननस्य अन्यकृतबन्धनस्य असहतया असहिष्णुतया निह्नुतस्य तिरोहितसामर्थ्यस्य दिव्यास्त्रस्य स्वप्रयुक्तस्य ब्राह्मास्त्रस्य प्रभावं सामर्थ्यम् विभावयन् पर्यालोचयन् (अन्येनास्त्रेण निग्रहीतुमशक्योऽप्ययमनेन दिव्यास्त्रेण बद्ध इति धन्यमिदमस्त्रमिति शोचन्) विभावरीचराणाम् नक्तञ्चराणां (निशाचरणाम्) पत्युः रावणस्य तनूजः पुत्रो मेघनादः पवनतनयं हनूमन्तं निजस्य पितुः रावणस्य समीपम् अन्तिकम् उपनिनाय आनीतवान् । अयं ग्रन्थो किञ्चिदस्पष्ट इव प्रतिभाति, बुधेन्द्रानुसारिणी चेयं व्याख्या, न मे दोषोऽत्र ।

इसके बाद अन्य अस्त्र को हनूमान् कुछ नहीं मानते थे, इस ब्रह्मास्त्रने थोड़ा प्रभाव दिखलाया, इस तरह सोचता हुआ निशाचरपतिका पुत्र मेघनाद पवनतनयको अपने पिताके पास ले आया ।

सोऽयं ददर्श दशकन्धरमन्धकारि-
लीलाद्रितोलनपरीक्षितबाहुवीर्यम्[5] ।
बन्दीकृतेन्द्रपुरवारवधूकराग्र-
व्याधूतचामरमरुच्चलितोत्तरीयम् ॥ ४३ ॥

---

१. 'बन्धनमोक्ष' इति पाठान्तरम् । २. 'पांसुलेन' इति पाठान्तरम् ।
३. 'निजाद्भुतस्य' इति पाठान्तरम् । ४. 'तनयः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'शौर्यम्' इति पाठान्तरम् ।

सोऽयमिति । सोऽयम् इन्द्रजिता रावणसमीपं नीतो हनूमान् अन्धकारेः शिवस्य यो लीलाद्रिः क्रीडापर्वतः कैलासस्तस्य तोलनेन उत्थापनेन परीचितं मितं बाहुवीर्यम् बाहुपराक्रमो यस्य तादृशं तथोक्तम् शिवक्रीडाशैलरूपकैलासोत्थापनपरीचितभुजबलमित्यर्थः, वन्दीकृताः कारागारे स्थापिताः या इन्द्रपुरवारवध्वः स्वर्वेश्याः तासां कराग्रैः हस्तपुरोभागैः व्याधूतानाम् चालितानां चामराणां मरुद्भिः वायुभिः चलितम् लोलम् उत्तरीयम् ऊर्ध्ववस्त्रं यस्य तं तथोक्तम्, देवाङ्गनावन्दीकृत्य ताभिश्चाल्यमानैश्चामरैर्वीज्यमानतया चलदुत्तरीयमित्यर्थः, दशकन्धरं दशवदनं रावणं ददर्श दृष्टवान्। अत्र समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तं नामालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४३ ॥

शिवजीके क्रीडापर्वत कैलासके उठानेसे परीक्षित हो चुका है बाहुबल जिसका, ऐसे तथा वन्दीकृत स्वर्गवेश्याके हाथों द्वारा चालित चामरकी वायुसे हिल रहा है उत्तरीय वस्त्र जिसका, ऐसे रावणको हनूमान्‌जीने देखा ॥ ४३ ॥

आपाटलाधरपुटान्तविराजमान-
दंष्ट्रामहःप्रसरशारशरीरकान्तिम् ।
संध्याम्बुदान्तरितमध्यसुधामयूख-
रेखाभिराममिव वासवनीलशैलम् ॥ ४४ ॥

आपाटलेति । आपाटलस्य समन्ततो रक्तवर्णस्य अधरपुटस्य ओष्ठरूपस्य पत्रस्य अन्ते समीपे विराजमानानां चमत्कुर्वताम् दंष्ट्रामहसाम् दन्तकिरणानां प्रसरेण समन्ततो व्याप्त्या शारा कृष्णरक्तसिता शरीरकान्तिः देहप्रभा यस्य तं तथोक्तम्, रक्तकान्तेरधरस्य समीपे प्रकाशमानस्य दन्तज्योतिषः सम्पर्केण यस्य श्यामो देहः कृष्णरक्तसितवर्णः प्रतीयते, तम्, अत्राधरकान्ती रक्ता, दन्तकान्तिः सिता, देहकान्तिश्च श्यामेति बोध्यम् । तत्रोपमामुपन्यस्यति—संध्येति । सन्ध्याम्बुदेन सायङ्कालिकमेघेन अन्तरितम् आवृतं मध्यं यस्य तथाभूतस्य सुधामयूखस्य चन्द्रमसो लेखयाऽभिरामं सुन्दरताङ्गतं वासवनीलशैलम् इन्द्रनीलमणिपर्वतम् इव स्थितम् । यथा—सन्ध्याकालस्य रक्ताभेन मेघेनावृता श्वेता चान्द्री कलेन्द्रनीलपर्वतगता शोभेत तथा शोभमानमिव रावणं ददर्शेति पूर्वोक्तक्रिययान्वयः । 'कृष्णरक्तसितः शारः' इत्यमरः । वृत्तं पूर्वमुक्तम् ॥ ४४ ॥

रक्तवर्ण अधरपुटके समीपमें चमकते हुए दाँतोंके तेजके फैलते रहनेसे रक्तकृष्णोज्ज्वल हो रही है शरीरकान्ति जिसकी (ऐसे रावणको देखा) जो रावण सन्ध्याकालिक रक्ताभ मेघसे छिप गया है मध्यभाग जिसका, ऐसे चन्द्रमासे सुन्दरता प्राप्त इन्द्रनीलमणि पर्वतकी तरह दीख रहा था ॥ ४४ ॥

संग्रामकेलिपरिघट्टनभग्नमग्न-
[1]दिग्दन्तिदन्तकृतमुद्रभुजान्तरालम् ।
छायात्मना प्रतितरङ्गविराजमान-
शीतांशुमण्डलसनाथमिवाम्बुराशिम् ॥ ४५ ॥

सङ्ग्रामेति । सङ्ग्रामकेलिषु युद्धरूपक्रीडासु परिघट्टनेन सङ्घर्षेण प्रहारेण भग्नाः त्रुटिताः अत एव च मग्नाः संलीनाश्च ये दिग्दन्तिदन्ताः दिग्गजदन्ताः तैः कृतमुद्रं चिह्नितं भुजान्तरालं बाहुमध्यं यस्य तं तथोक्तम्, (देवैः सह रावणस्य युद्धे जायमाने देवपक्षे युद्ध्यमाना दिग्गजाः स्वैर्दन्तै रावणं घ्नन्ति, अतिकठोरतत्काय-स्पर्शवशात्ते दन्ता भग्नाः सन्तो मांसले तद्बाहुदण्डे मज्जन्ति तैर्भग्नैर्गजदन्तैश्चिह्नित-भुजभारमित्यर्थः) अत एव छायात्मना प्रतिबिम्बरूपेण प्रतितरङ्गं सर्वेषु तरङ्गेषु विराजमानेन वर्त्तमानेन शीतांशुमण्डलेन सनाथम् युक्तम् अम्बुराशिम् समुद्रम् इव स्थितमिति । अत्रापि पूर्वोक्त'ददर्श'पदेनान्वयात् कर्मता समर्थनीया । यथा श्यामलजलराशिरपां निधिः सर्वेषु तरङ्गेषु प्रतिबिम्बरूपेण प्रकाशमानेन चन्द्रेण शोभां वहति तथा दिग्गजदन्तप्रहारकृतचिह्नैः शोभमानं रावणं मारुतिर्ददर्शेत्यर्थः पर्यवस्यति । 'छाया त्वनातपे कान्तौ प्रतिबिम्बार्कजाययोः' इत्यमरः । वृत्तं प्रागुक्तमेव ॥ ४५ ॥

युद्धक्रीड़ाकालमें सङ्घर्षकृत प्रहारमें टूट कर चुभे हुए दिग्गजदन्तोंसे चिह्नित है भुजमध्य जिसका, ऐसे (रावणको हनूमान्‌ने देखा) वह ऐसा लगता था मानो छायारूपमें प्रत्येक तरङ्ग पर वर्त्तमान चन्द्रमण्डलसे शोभित समुद्र हो ॥ ४५ ॥

[2]निश्रेयसप्रणयिनीं पदवीं निरोद्धुं
त्रैलोक्यपापपरिपाकमिवात्तरूपम् ।
सूर्येन्दुपावकमहांसि तपोबलेन
जित्वा [3]यथेच्छमभिषिक्तमिवान्धकारम् ॥ ४६ ॥

निःश्रेयसेति । निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसं मुक्तिः, तत्प्रणयिनीम् तत्प्रापिकाम् मुक्तिदायिनीमित्यर्थः, पदवीम् पन्थानं निरोद्धुम् आवरीतुम् आत्तरूपम् गृहीतमूर्त्तिम् त्रैलोक्यपरिपाकम् भुवनत्रयस्य दुश्चरितपरिणामम् इव, रावणं दृष्ट्वा लोकास्तं मोक्षमार्गविघ्नभूतं मूर्त्तिमन्तम्भुवनत्रयस्यानाचारमेव सम्भावयन्तीति भावः । सूर्येन्दुपावकमहांसि सूर्यचन्द्राग्निरूपाणि तेजांसि तपोबलेन स्वाचरिततपस्यासामर्थ्येन

---

१. 'दिग्दन्त' इति पाठान्तरम् । २. 'निश्रेयसः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'यथेष्टम्' इति पाठान्तरम् ।

जित्वा अभिभूय यथेच्छम् स्वेच्छया अभिषिक्तं कृताभिषेकम् अन्धकारम् इव रावणं ददर्शेति पूर्वोक्तक्रिययान्वयः। रावणदर्शनेन लोकाः प्रतिपद्यन्ते यत्सूर्यं चन्द्रं वह्निं च तपस्याबलेन पराजित्यान्धकारोऽयमास्मानं राज्याभिषिक्तं कृत्वा विद्योतत इति। स्वरूपोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः॥ ४६॥

रावण ऐसा दीख पड़ता था मानो मुक्तिमार्गको (कल्याण मार्गको) रोकनेके लिये शरीर धारण कर त्रैलोक्यका पाप आया हो अथवा ऐसा मालूम पड़ता था मानो सूर्य चन्द्रमा तथा अग्नि रूप तेजस्त्रयको अभिभूत करके अन्धकार अपनी इच्छासे राज्याभिषिक्त होकर बैठा हो॥ ४६॥

सोऽपि प्लवङ्ग[1]मभिवीक्ष्य समीरपुत्रं
चित्रीयमाणहृदयः पिशिताशनेन्द्रः।
कैलासशैलचलनागसि शापदायी
नन्दीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त॥ ४७॥

सोऽपीति। सः पिशिताशनेन्द्रः राक्षसराजो रावणः अपि प्लवङ्गं वानरं समीरपुत्रं वायुनन्दनं (वानररूपधरं हनूमन्तं नाम रामदूतम्) अभिवीक्ष्य विलोक्य चित्रीयमाणहृदयः आश्चर्यचकितहृदयः सन् कैलासशैलचलनागसि कैलासपर्वतोत्थापनरूपेऽपराधे रावणेन कृते सति शापदायी रावणाय शापं दत्तवान् स्वयम् उपागतः आयातः इति अमंस्त मन्यते स्म। हनूमन्तं दृष्ट्वा रावणो मन्यते स्म यदयं नन्दीश्वर एवायातो यो मह्यं यदा मया कैलाश उत्थापितस्तदा शापमदितेत्यर्थः। 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः। पुरा किल रावणेन कैलास उत्थापिते कुपितो नन्दी, तं च रावणो वानरमुख, किं त्वं कुप्यसि? इति तमधिचिक्षेप, तदधिक्षेपाच्चोपजाताधिकक्रोधो नन्दीश्वरो यस्मात् त्वं वानरमुखतया मामधिक्षिप्तवानसि, तस्माद्वानरेणैव त्वं विपत्तिं गमिष्यसीति पौराणिकी कथात्र बोध्या। पूर्वोक्तमेव वृत्तम्॥ ४७॥

राक्षसराज रावणने भी वानररूप वायुपुत्र हनूमान्को देखकर आश्चर्यचकित होकर समझा कि कैलाशपर्वतके उठानेसे हुए अपराध से क्रुद्ध होकर शाप देने वाले नन्दीश्वर ही स्वयं उपस्थित हुए हैं॥ ४७॥

ततः प्रहस्तेन विहितविविधानुयोगः प्रत्यभाषत रावणं मारुतिः।

तत इति। ततः एवमन्योन्यदर्शनानन्तरम् प्रहस्तेन तन्नामकेन रावणमन्त्रिणा विहितविविधानुयोगः नानाविधान् प्रश्नान् पृष्टः कुत आयातः? केन प्रेषितः? किमर्थमायातः? इत्यादि प्रश्नान् समाधातुमाज्ञप्तः मारुतिः रावणं प्रत्यभाषत।

---

१. 'प्लवंगममवेक्ष्य' इति पाठान्तरम्।

प्रहस्तप्रश्नोत्तरे रावणाभिमुखीभूय दीयमाने प्रष्टुः प्रहस्तस्यावज्ञा व्यज्यते। अनुयुक्तः पृष्टः, 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा चे'त्यमरः।

इसके बाद प्रहस्तके द्वारा नानाप्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर हनूमान्ने रावणसे कहा।

[1]अयमहमहर्पतिकुलतिलकस्य सत्यसन्धस्य पितृनियोगसमुपगतवनवासनिरतस्य शूर्पकारातिबाधितशूर्पणखाप्राप्त[2]वैरूप्यकुप्यत्खरप्रमुखनिशिचरबलपलालजाल[3]कल्पान्तानलकल्पशिलीमुखस्य कपटहरिणहननसमय[4]परिमुषितदारान्वेषणसञ्जातसुग्रीव[5]सख्यस्य समुत्खातवालिकण्टकस्य दुर्वृत्तक्षत्रवंशवनपवनसारथेस्तपोनिधेर्जामदग्न्यस्य भुजबलावलेपलोपहेतोः श्रीमतो दाशरथेर्दूतोऽहं सीतामार्गमार्गणाय दिशि दिशि तपनतनयप्रेषितानां वानराणामेकतमः समुद्रलङ्घनजङ्घालस्तव नगर[6]प्रमदवनसीमनि रघुवरधर्मदारान्प्रणम्य प्रतिष्ठासुर्मदीयमागमनं प्रकाशयितुं प्रमथिताशोकवनिकानोकहनिवहस्त्वद्दर्शनकुतूहलेन केवलमनुभूतनैर्ऋततल्लतातन्तुसंनहनस्तव परिसरमुपासरम्।

अयमहमिति। अयम् अहम् हनूमान् (यो भवतो वनभञ्जकसैन्यं चाहन्) अहर्पतिकुलकस्य सूर्यवंशावतंसस्य सत्यसन्धस्य सत्यप्रतिज्ञस्य पितृनियोगेन पितुरादेशेन समुपगतः स्वीकृतः यः वनवासः काननचारित्वं तत्र निरतस्य संलग्नस्य शूर्पकारातिबाधितया कामेनातिपीडितया शूर्पणखया नाम तव भगिन्या प्राप्तं लक्ष्मणद्वारा कृतत्वेन आसादितं यत् वैरूप्यम् विकृतरूपत्वम् (नासाच्छेदनजन्यम्) तेन कुप्यत् कोपं भजमानं यत् खरप्रमुखं खरनायकत्वे वर्त्तमानं निशिचरबलं राक्षससैन्यं तस्मिन् तदात्मके पलालजाले शुष्कतृणराशौ कल्पान्तानलकल्पः प्रलयकालिकवह्निसमानः शिलीमुखो बाणो यस्य तथोक्तस्य, (खरप्रमुखराक्षससैन्यमनायासं संहृतवतः) कपटहरिणो मायामृगो मारीचनीचस्तस्य हननसमये मारणकाले परिमुषितायाः (चौरेण त्वया चोरितायाः) अपहृतायाः दाराणाम् सीतायाः अन्वेषणाय परिमार्गणाय सञ्जातं भूतं सुग्रीवेण वानरराजेन सख्यं वह्निसाक्षिकं सौहृदं यस्य तथोक्तस्य, समुत्खातः समुन्मूलितः वाली एव कण्टकः (परोत्पीडकतया कण्टकसाम्यम्) येन तस्य तथोक्तस्य, दुर्वृत्तम् दुराचारं यत्क्षत्रवंशवनम् क्षत्रियकुलकाननम् तस्य पवनसारथिः वह्निः दाहकः (सर्वंशोच्छेदकरे दाहकत्वमुपचर्यते) यः तपोनिधिः

---

१. 'अयमहमधिपति' इति पाठान्तरम्। २. 'वैरूप्यस्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'कल्पानल' इति पाठान्तरम्। ४. 'समुषित' इति पाठान्तरम्।
५. 'सख्यसमुत्खात' इति पाठान्तरम्। ६. 'प्रमदावनसीम्नि' इति पाठान्तरम्।

तपस्यानिरतः जामदग्न्यः परशुरामस्तस्य (दुर्वृत्तक्षत्ररूपे वेणुवने वह्निकार्यं कृतवतः परशुरामस्येत्यर्थः) भुजाबलावलेपो बाहुवीर्यदर्पस्तल्लोपहेतोः शमकस्य (परशुरामस्य भुजवीर्यदर्पं शमितवतः) श्रीमतः सर्वविधलक्ष्मीसम्पन्नस्य दाशरथेः श्रीरामस्य दूतः प्रेष्यः अहम्, सीतामार्गमार्गणाय केनाप्यपह्रियमाणा सीता केन मार्गेण गतेत्यस्यार्थस्यानुसन्धानाय दिशि दिशि सर्वासु दिशासु तपनतनयेन सूर्यसुतेन सुग्रीवेण प्रेषितानां प्रहितानाम् वानराणाम् एकतमः अन्यतमः, समुद्रलङ्घने नभोमार्गेण समुद्रस्योत्तरणे जङ्घालः सातिशयजवशाली, तव रावणस्य नगरप्रमदवनसीमनि नगरस्थितस्त्रीजनोपभोग्यपुष्पोद्यानपरिसरे (अशोकवनिकामध्ये) रघुवरधर्मदारान् रामप्राणप्रियां सीताम् प्रणम्य नमस्कृत्य प्रतिष्ठासुः गन्तुमीहमानः, मदीयम् स्वीयम् आगमनम् लङ्काप्राप्तिम् प्रकाशयितुम् सर्वान् बोधयितुम् प्रमथिताशोकवनिकावननिवहः उत्पाटितध्वंसिताशोकवनिकावर्त्तिवृक्षसमुदयः, केवलम् त्वद्दर्शनकुतूहलेन त्वद्विलोकनोत्कण्ठया अनुभूतं नैर्ऋतानां राक्षसानां लूतातन्तुभिः ऊर्णनाभकीटविशेषो लूता तस्य तन्तुभिरिव (अनायासखण्डनीयैः पाशैः) संहननं बन्धनं येन तथोक्तः (केवलया त्वद्दर्शनेच्छयैव लूतातन्तुतुल्यैरपि राक्षसानां पाशैर्बद्ध इति भावः) तव परिसरं समीपम् उपासरम् उपगतोऽस्मि। 'सन्धाऽवधौ प्रतिज्ञायाम्' 'वंशो वेणौ कुले वर्गे' 'जङ्घालोऽतिजवस्तुल्यौ' 'लूता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः' 'पर्यन्तभूः परिसरः' इति सर्वत्रामरः।

यह मैं सूर्यवंशावतंस, सत्यप्रतिज्ञ, पिताकी आज्ञामात्रसे स्वीकृत वनवासमें तत्पर, कामपीड़िता शूर्पणखाके नाककान कटने पर कुपित खरप्रधान राक्षससैन्यरूप फूसके लिये प्रलयकालिक अग्नितुल्य बाण वाले, कपटमृगके मारनेके समय चुराई गई स्त्रीके (सीताके) अन्वेषणार्थं सुग्रीवके साथ मित्रता करनेवाले, वालीरूप कण्टको निकाल फेकनेमें दक्ष, दुराचारी क्षत्रियरूप वंशवनके लिये वह्निस्वरूप तथा तपस्वी परशुरामके भुजबलदर्पके लोपमें हेतुभूत श्रीमान् रामजीका दूत हूँ, सीताके मार्गका अनुसन्धान करनेके लिये सुग्रीवद्वारा प्रत्येक दिशाओंमें भेजे गये वानरोंमें एक हूँ, मैंने नभोमार्गसे समुद्र पार किया है, आपके नगरमें वर्त्तमान अन्तःपुरसमीपवर्त्ती पुष्पवाटिकामें रघुनाथकी धर्मपत्नी सीताको प्रणाम करके जब मैं जानेकी इच्छा करता था तब यह इच्छा हुई कि अपना आगमन आपलोगोंको जता दूँ, इसलिये मैंने अशोकवाटिकाके वृक्षोंको तहस-नहसकर डाला है और केवल आपके दर्शनार्थ ही राक्षसोंद्वारा उनके मकड़ीजालतुल्य पाशमें बाँधा गया हूँ, इस तरह आपके समीप पहुँचा हूँ।

आनाकलोकपरिकीर्तितसच्चरित्र-
मत्रोपरुद्ध्य रघुवंशपतेः कलत्रम्।
वैतानवेदिजनितं पवमानबन्

वस्त्रेण [1]बद्धुमविनीत ! कथं यतेथाः ॥ ४८ ॥

आनाकलोकेति । अनाकलोकं स्वर्गपर्यन्तं परिकीर्त्तितं प्रशंसितं सच्चरित्रं पावनं आचारो यस्य तथोक्तम् रघुवंशपतेः रघुकुलनायकस्य रामस्य कलत्रं प्रियां सीताम् अत्र लङ्कायाम् उपरुध्य वन्दिनीं कृत्वा, हे अविनीत दुर्विनयशालिन्, वैतानवेदिजनितम् यज्ञभूमौ प्रकटितं पवमानबन्धुं वायुसखमग्निम् वस्त्रेण बन्धुम् बन्धनं प्रापयितुम् (बद्ध्वा स्थापयितुम्) कथं यतेथाः चेष्टसे। यथा यज्ञियो वह्निर्वस्त्रेण बद्ध्वा स्थाप्यमानो न संभवति तथा सीताऽपि तव पुरे स्थापयितुं न शक्यते, अतः पवित्रतमां सीतां श्रीरामाय प्रत्यर्प्य स्वस्थो भव, अन्यथा महाननर्थः स्यादिति तात्पर्यम् । निदर्शनालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४८ ॥

स्वर्गलोकपर्यन्त प्रशंसित सच्चरित्रयुता रघुवंशनामककी धर्मपत्नीको इस लङ्कापुरीमें रोककर हे अविनीत, यज्ञवेदीमें उत्पन्न पवित्र वह्निको कपड़ेमें बाँधनेका प्रयत्न क्यों कर रहा है । जैसे आगको कपड़ेमें बाँधकर नहीं रखा जा सकता है, उसी तरह सीताको रोक रखना असंगत कार्य होगा ॥ ४८ ॥

[2]किञ्च—

प्रेङ्खन्ती पिशिताशया रणमुखे सौमित्रिपत्रिक्षतं
त्वद्गात्रं परितः पतत्रिपरिषच्छत्रच्छविं मा गमत् ।
द्राक्पौलस्त्य ! पुलस्त्यवंशविलये संभाविते त्वत्कृते
कान्तानां नयनान्तवान्तसलिलं मा भून्निवापोदकम् ॥ ४९ ॥

किञ्च, प्रेङ्खन्तीति । किञ्च अपि च हे पौलस्त्य, रावण, रणमुखे युद्धभूमौ सौमित्रिपत्रिक्षतं लक्ष्मणबाणखण्डितं त्वद्गात्रं तव शरीरं परितः समन्तः पिशिताशया मांसलिप्सया प्रेङ्खन्ती उड्डीयमाना पतत्रिपरिषत् गृध्रादिपक्षिसमुदायः छत्रच्छविं तवोपरि विततस्यातपत्रस्य शोभां मा गमत् न प्राप्नोतु, तथा त्वत्कृते त्वयोपस्थापिते द्राक् शीघ्रम् पुलस्त्यवंशविलये पुलस्त्यकुलस्य संहारे संभाविते प्राप्ते सति कान्तानां रमणीनां नयनान्तवान्तसलिलं नेत्रच्युतं वारि निवापोदकं जलाञ्जलिरूपं मा भूत् न जायताम् । हे रावण, सीताया लङ्कायामवरुध्य स्थापनं नोचितं तथा सति लक्ष्मणबाणास्तव शरीरं क्षतं करिष्यन्ति, क्षते च त्वत्काये मांसाशया गृध्रादिपक्षिणस्त्वदुपर्युड्डीयमानाश्छत्रच्छायां धारयिष्यन्ति, किञ्च त्वया कृतेनानर्थेन कुपितो रामो यदाऽचिरमेव पुलस्त्यवंशस्य संहारं करिष्यति, तदा जलदातुरन्यस्याभावाद्रुदतीनां वनितानां नयनेभ्यश्च्युतं जलं मृतानां निवापोदकं भविष्यति,

१. 'बद्धम्' इति पाठान्तरम् । २. 'किञ्च' इति नास्ति क्वचित् ।

तदिदमुभयं मा भूदिति भवता पूर्वमेव सावधानेन भाव्यमित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४९ ॥

और, लड़ाईके मैदानमें लक्ष्मणके बाणोंसे खण्डित किये गये तुम्हारे शरीरके चारो ओर मंडराता हुआ गृध्रादिपक्षिसमुदाय छातेको समता न धारण करे और हे रावण, तुम्हारे चलते पुलस्त्यवंशका समूल नाश हो जाने पर दूसरे जलदाताके नहीं रह जानेसे वनिताओंकी आँखोंसे गिरने वाला अश्रुजल ही निवापोदक न हो जाय। इसलिये तुमको पहले ही सीता लौटा देनो चाहिये, अन्यथा ऐसा होकर रहेगा ॥ ४९ ॥

बद्धादरोऽपि परदारपरिग्रहे त्व-
मिक्ष्वाकुनायककलत्रमनार्य ! मा गाः।
वाताशनोऽहमिति किं विनतासुतस्य
श्वासानिलाय भुजगः स्पृहयालुतालुः ॥ ५० ॥

बद्धेति। हे अनार्य, अविवेकिन्, परदारपरिग्रहे परस्त्रीसंगमे बद्धादरः विहितमतिः अपि इक्ष्वाकुनायककलत्रं रामस्य धर्मपत्नीं सीतां मा गाः न सेवस्व, त्वं परेषां दारानुपभुङ्क्ष्व इति स्त्रीसाधारण्येन सीताविषयमभिलाषं स्वान्ते मा पुषस्तस्याः साधारणस्त्रीत्वाभावात्तद्विषयाभिलाषस्य विनाशकारित्वादित्यर्थः। तत्र दृष्टान्तमाह—वातेति। अहं सर्पः वाताशनः पवनभुक् इति हेतोः किं भुजंगः विनतासुतस्य गरुडस्य श्वासानिलाय नासावायवे स्पृहयालुतालुः स्पृहाशालितालुदेशो भवति ? यथा पवनाशनः सन्नपि सर्पो गरुडश्वासानलं न पिपासति, तथानुष्ठाने नाशस्य सन्निहितत्वात्तथा परस्त्रीगामितयाऽऽत्मान पातयन्नपि रामधर्मस्त्रियं सीतां मा गमस्तथासति चिप्रं विनाशसंभवादिति भावः ॥ ५० ॥

परस्त्रीसंसर्गमें आसक्त रहने पर भी हे अनार्य रावण, तुम इक्ष्वाकुवंशप्रदीप रामकी धर्मपत्नी सीताको मत पानेकी चेष्टा करो, क्या सर्प वाताशन होता है, इसी कारणसे वह गरुड़की श्वासवायुको पीनेके लिये स्पृहायुक्त तालु धारण करेगा ॥ ५० ॥

बाहुचन्दननिषङ्गकोटरा[1]दुद्धृतो रघुपतेः शरोरगः।
प्राणवायुमविनीत ! तावकं कालयापनमपास्य पास्यति ५१ ॥

बाहुचन्दनेति। बाहुः भुज एव चन्दनः पाटीरद्रुमस्तस्या बाहुचन्दनवृक्षस्य निषङ्गः इषुधिः एव कोटरं तस्मात् उद्धृतः आकृष्टो रघुपतेः शर एव उरगः सर्पः, हे अविनीत, दुर्विनय, तावकं त्वदीयं प्राणवायुं कालयापनम् समयव्यत्ययम् अपास्य त्यक्त्वा पास्यति। सर्पो वायुं पिबतीति शराणामुरगत्वारोपे प्राणानां वायुत्वारोपः

१. 'निर्गतः' इति पाठान्तरम्।

कारणम्। यथा कश्चन चन्दनद्रुमकोटरनिर्गतः सर्पो सामान्यवायुं पिबति, तथा रामबाहुरूपचन्दनवृक्षवर्त्तिनिषङ्गरूपकोटराद् बहिर्भवन् रामबाणरूपः सर्पस्त्वविनीततया सीतामुपरुन्धतः प्राणवायुमविगमितसमयं पास्यतीत्यर्थः। समस्तवस्तुवर्त्तिसावयवरूपकमलङ्कारः। रथोद्धतावृत्तम्, 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' इति च तल्लक्षणम् ॥ ५१ ॥

रामके बाहुरूप चन्दनवृक्ष पर वर्त्तमान कोटररूप तरकससे निकलता हुआ बाणरूप सर्प तुम्हारे अविनीतके प्राणरूप वायुको विना समय विताये शीघ्र पीजायेगा (रामका बाण तुम्हारा प्राण हरण करेगा) अतः तुम अपना अविनय छोड़कर रामकी स्त्रीको लौटा कर अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ५१ ॥

किं बहुना—

मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे
शाखामृगे च भवतः प्रतिकूलवाले।
दृष्टोद्यमस्य रघुनायकसायकस्य
मुक्त्वा प्रणामकवचं कवचं किमन्यत् ॥ ५२ ॥

किं बहुनेति, मायामृगे इति। किं बहुना किमधिकेनोक्तेन, सङ्क्षिप्योच्यमानमवधारयेत्यर्थः। समरम् युद्धम् एव नाटकम् अभिनयः तस्य सूत्रधारे प्रवर्त्तके मायामृगे कपटहरिणरूपधारिणि मारीचे, तथा भवतः रावणस्य प्रतिकूलः विरोधी (संयमनकारितया शत्रुभूतः) वालः पुच्छकेशो यस्य (स्वत्परिभवकर्त्तरि पुच्छेन त्वां संयमितवतीत्यर्थः) तस्मिन् शाखामृगे वालिनामके वानरे च दृष्टोद्यमस्य परीक्षितपराक्रमस्य रघुनायकसायकस्य रामबाणस्य प्रणामकवचं नमस्काररूपं वर्म मुक्त्वा त्यक्त्वा अन्यत् कवचं वर्म किम्? रामबाणानां मारीचं वालिनं च हत्वा प्रकटितपराक्रमाणां शरणं गच्छ त एव त्वां त्रातारो नान्यः कोऽपि रामात्त्वां त्रास्यत इत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५२ ॥

राम और रावणके युद्धरूप नाटकके सूत्रधार मारीच पर तथा अपनी पूंछके बालमें तुमको लपेटने वाले वाली नामक वानर पर जिसके पराक्रमकी परीक्षा की जा चुकी है ऐसे राम बाणोंके प्रणाम (आत्मसमर्पण) रूप कवचको छोड़ कर दूसरा कोई कवच (त्राता) नहीं है, अतः तुमको आत्मरक्षार्थं रामके प्रति नम्र होना चाहिये ॥ ५२ ॥

[1]एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्रः
प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत्।

---

१. 'एतत्' इति पाठान्तरम्।

आजन्मशुद्धमतिरत्र विभीषणस्तं
दूतो न वध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ॥५३॥

एवं निशम्येति। एवं पूर्वोक्तप्रकारकं हनूमद्वचनं निशम्य श्रुत्वा कुपितः स्वापमानवचनश्रवणादुत्पन्नकोपः सन् अमुष्य अस्य हनूमतः प्राणान् हरत निष्कासयत 'एनं मारयत' इति भटान् स्वयोधान् अवादीत् उक्तवान्। हनूमद्वधाज्ञां दत्तवानित्यर्थः, अत्र अस्मिन्समये आजन्मशुद्धमतिः स्वभावतो निर्मलबुद्धिः विभीषणः तन्नामा रावणानुजः तं हनूमद्वधमादिशन्तं तं रावणं दूतः सन्देशहरो न वध्यः हन्तव्यः इति शास्त्रगिरा एतादृश्या शास्त्रवाचा रुरोध हनूमद्वधप्रवृत्तेर्निवारयामासेत्याशयः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५३ ॥

हनूमान् द्वारा कही गई इस तरहकी बातें सुनकर क्रुद्ध हो राक्षसराजने अपने योद्धाओंसे कहा कि इस वानरका वध कर दो। उस समयमें स्वभावतः निर्मल बुद्धि विभीषणने शास्त्रके वचनोंसे दूतका वध अयोग्य है इस प्रकार समझा कर रावणको हनूमान्के वधसे रोका ॥ ५३ ॥

रावणोऽपि विभीषणभाषणमङ्गीकृत्य 'प्लवङ्गानामङ्गेषु लाङ्गूलमेव वरम्। तदेव कार्पासवाससा संवीतं [1]वह्निसात्कृत्यचत्वरे चत्वरे [2]दोषानुद्घोष्य सप्रहारं नगरं परितः संचारयत' इति राक्षसानादिदेश।

रावणोऽपीति। रावणः अपि विभीषणभाषणम् विभीषणस्य दूतावध्यत्वलक्षणामुक्तिम् अङ्गीकृत्य अनुमत्य—प्लवङ्गानाम् वानराणाम् अङ्गेषु शरीरावयवेषु लाङ्गूलम् पुच्छम् एव वरम् बहुमतम्, तदेव पुच्छमेव कार्पासवाससा कार्पासनिर्मितवस्त्रेण संवीतम् वेष्टितम् (कृत्वा) वह्निसात्कृत्य वह्निना ज्वलयित्वा चत्वरे चत्वरे प्रतिचत्वरम् दोषान् वानरकृतानपकारान् (अनेन वानरेणोद्यानं भग्नं, सैन्यं नाशितम्, अक्षो हतः' इत्यादिकथनेन) उद्घोष्य सडिण्डिमघोषं प्रचार्य सप्रहारम् सवाद्यभाण्डध्वनि नगरं परितः सर्वतो नगरे सञ्चारयत भ्रमयत इति राक्षसान् आदिदेश आज्ञापयामास।

रावणने भी विभीषण की बात मान कर वानरोंके अङ्गोंमें पूँछ श्रेष्ठ होती है, उसको रूईके कपड़ेसे वेष्टित करके उसमें आग लगाकर चौराहों पर 'इसके दोषोंका उद्घोष करके डंकेकी चोटके साथ गाँव के प्रत्येक भागमें घुमाओ' ऐसी आज्ञा अपने अनुचर राक्षसोंको दी।

तेषु तथा कुर्वाणेषु।

तेष्विति। तेषु रावणेनाज्ञप्तेषु राक्षसेषु तथा कुर्वत्सु यथा रावणादेशमाचरत्सु

१. 'वीतिहोत्रसात्कृत्य' इति पाठान्तरम्। २. 'घोषान्' इति पाठान्तरम्।

(हनूमतः पुच्छं कार्पासवासोभिरावेष्ट्य तत्र वह्निं निधाय च भ्रमयत्सु)। (अग्निः प्रजज्वालेत्यग्रे वक्ष्यमाणेनान्वयः)।

रावणद्वारा आदिष्ट राक्षस जब उसकी आज्ञाका पालन करने लगे तब (आग प्रकट हुई)।

निर्णयाविषयमस्य वालतः कर्णिकारनिकुरुम्बकर्बुरः।
निर्निमेषगणभाग्यसंचयादुन्मिमेष भगवानुषर्बुधः॥ ५४॥

निर्णयाविषयमिति। कर्णिकारस्य 'कनैल' नाम्ना ख्यातस्य कनकपुष्पस्य निकुरुम्बः स्तोमो गुच्छः तद्वत्कर्बुरः नीलरक्तपीतशबलवर्णः भगवान् पूज्यः उषर्बुधः वह्निः अस्य हनूमतः वालतः पुच्छकेशात् निर्निमेषगणो देवसमुदायस्तस्य भाग्यसञ्चयात् भागधेयसमृद्धेः निर्णयाविषयम् निर्मर्यादम् यथा स्यात्तथा उन्मिमेष प्रकटीभूतः। लङ्कादाहे देवानामानन्दस्य जायमानतया वह्निप्रकटीभावे देवानां भागधेयस्य कारणतोक्ता। उषसि बुध्यत इत्युषर्बुधः, 'अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः' इति रः। 'कर्णिकारः काञ्चनारः कोकः कनकपुष्पकः' इति प्रतापमार्त्तण्डः। अनुप्रासः शब्दालङ्कारः। रथोद्धतावृत्तम्॥ ५४॥

कनैलपुष्पकी गुच्छकी तरह चितकबरा (लाल-पीला-काला) पूजनीय भगवान् अग्निदेव उस समय देवगणके भाग्योदय होनेसे हनुमान्‌जीके पूँछसे असीमरूपमें प्रकट हुए॥ ५४॥

एतद्वृत्तान्तमारक्षिकराक्षसीगणैर्[1]गर्वोदीर्णं वर्णितमाकर्ण्य दूयमानमानसा जानकी हुताशनमुपस्थाय 'शीतो[2] भव हनूमतः' इति प्राञ्जलिः [3]प्रार्थयत।

एतदिति। आरक्षिकराक्षसीगणैः सीतारक्षाधिकृतानाम् राक्षसीनां समुदयैः गर्वोदीर्णं गर्वोदुक्तं सगर्वम् (यो वानरोऽशोकवनिकां भञ्जितवान्पश्यत तदीयां दुर्दशामयमसौ वस्त्रवेष्टितपुच्छज्वलितजातवेदोदंदह्यमानवपुः प्रतिचत्वरं भ्रम्यते इत्येवमहङ्कारपूर्वाभिर्वाग्भिः) वर्णितम् एतद्वृत्तान्तम् हनूमतः स्थितेः समाचारम् आकर्ण्य श्रुत्वा दूयमानमानसा परितप्यमानचित्ता जानकी हुताशनं वह्निम् उपस्थाय पूजयित्वा प्राञ्जलिः बद्धकरयुगला 'शीतो भव हनूमतः' 'हनूमतोऽङ्गानि मा धाक्षीः' इति एवंप्रकारेण वह्निं प्रार्थयत प्रार्थितवती। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा 'उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम्। यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः। यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः'। इति।

---

१. 'गणेन गर्वोदीर्णं' इति पाठान्तरम्। २. 'हनूमतः शीतो भव' इति पाठान्तरम्। ३. 'प्रार्थत' इति पाठान्तरम्।

अपनी रक्षामें नियुक्त राक्षसीगणद्वारा गर्वपूर्वक वर्णित इस वृत्तान्तको सुनकर परितप्तचित्ता जानकीने अग्निदेवकी आराधना करके उनसे प्रार्थना की कि अग्निदेव हनूमान्के लिये शीतल हो जायँ।

घोरस्य राघवकलत्रतपोमयाग्ने-
र्मा भूवमिन्धनमहं क्षणमित्यवेत्य।
शैत्यं वितत्य दहनः पवमानसूनो-
र्वालाग्रसीम्नि मणिदीप इवावतस्थे ॥ ५५ ॥

घोरस्येति। घोरस्य राघवकलत्रतपोमयाग्नेः सीतापातिव्रत्यरूपस्य वह्नेः क्षणम् क्षणमात्रेण अहम् इन्धनं दाह्यकाष्ठं मा भूवम् न जायेय इत्यवेत्य एवं ज्ञात्वा दहनः सीतया प्रार्थितोऽग्निः शैत्यं वितत्य अदाहकभावमभ्युपेत्य पवमानसूनोः वायुपुत्रस्य वालाग्रसीम्नि पुच्छाग्रभागे मणिदीप इव मणिप्रदीप इव अवतस्थे स्थितः। यथा मणिमयदीपः सर्वतः प्रसृमरप्रकाशोऽप्याश्रयमपेततापमेव करोति तथायं वालाग्रज्वलितोऽग्निरपि समन्ततःप्रसरत्प्रभोऽपि हनूमन्तं नोपतापितवानिति भावः। यद्यहमिमं रामदूतं तापयिष्यामि तदा रामपत्नी सीता मां स्वपातिव्रत्यदहनेन धक्ष्यतीति विचिन्त्य वह्निः पवनसूनोः कृते शीतो जात इत्याशयः। उपमालङ्कारः, वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

राघवकी धर्मपत्नी सीताके भयङ्कर पातिव्रत्यरूप अग्निका मैं इन्धन न कहीं बन जाऊं ऐसा सोचकर और शैत्य धारण कर अग्नि हनूमान्की पूछमें मणिमय प्रदीपकी तरह लगता था ॥ ५५ ॥

तदनु पवनतनयोऽपि 'पुरमिदं न खलु सुव्यक्तं नक्तमालोकयम्। तस्मादनलसाक्षिकमेव पुरमखिलमालोकयामि' इति यामिनीचरगणं परिचिततोरणपरिघेण जघान।

तदन्विति। तदनु पुच्छवालप्रज्वलानन्तरम् पवनतनयो हनूमान् अपि नक्तम् रात्रौ इदम् लङ्काभिधानम् पुरम् नगरं सुव्यक्तं स्फुटभावेन नालोकयम्, न दृष्टवान्, तस्मात् सुव्यक्तदर्शनस्यावशिष्टत्वात् अनलसाक्षिकम् वह्निं साक्षिणं कृत्वा (लङ्कायां वह्निं प्रज्वाल्य) एव अखिलं पुरम् (वह्निप्रकाशेन स्फुटदृश्यम्) आलोकयामि पश्यामि इति हेतुमिमं कृत्वा यामिनीचरगणं राक्षससमुदायं (स्वं परिवृत्य भ्रमन्तं) परिचिततोरणपरिघेण पूर्वं येन तोरणपरिघेण राक्षसान् हतवांस्तेन तोरणार्गलेन जघान हतवान्। राक्षसानां विद्रावणे कृते यथारुचिगृहाद् गृहान्तरे धावितुं शक्यते इति बुद्ध्या तान् विद्रावयामासेति भावः।

इसके बाद हनूमान्ने भी सोचा कि रातमें अंधेरा होनेके कारण इस लङ्कापुरीको

ठीकसे नहीं देखा, इसलिये अब अग्निको साक्षी करके भलीभाँति देख लेता हूँ, ऐसा सोच कर साथ चलनेवाले राक्षसोंको पुराने तोरणकी अर्गलासे मार भगाया।

सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं
लङ्कार्णवं क्षुभितसैन्यतरंगभीमम्।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजंगराज-
भोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ॥ ५६ ॥

सीतेति। वेधाः ब्रह्मा सीताभिधानकमलाम् सीतानामकलक्ष्मीम् प्रभवे श्रीरामरूपाय विष्णवे प्रदातुं पत्नीभावेनार्पयितुम् क्षुभितानि सञ्चलितानि यानि सैन्यानि राक्षससेनास्तैरेव तरङ्गैः वीचिभिः भीमम् भयानकम् लङ्कार्णवं लङ्कापुररूपं सागरम् रज्जुः बन्धनपाश एव भुजङ्गराजो वासुकिनागस्तेन आवृतेन वेष्टितेन पवनात्मजमन्दरेण हनूमद्रूपेण मन्दराचलेन मन्थानभूतेन ममन्थ आलोडयामास किल। पुरा देवगणः तरङ्गभीषणं सागरं मन्दरं मन्थानं वासुकिनागं च रज्जुं कृत्वा मथितवान्, समुद्रमथनात्ततो निर्गतां लक्ष्मीं च विष्णवे प्रादात्, अधुना ब्रह्मा सीतारूपां कमलां विष्णवे रामचन्द्राय समर्पयितुं प्रचलद्राक्षससैन्यभीषणं लङ्कापुररूपं सागरं रज्जुपाशरूपेण वासुकिनाऽऽवृत्तं हनूमन्तं मन्दरं नाम मन्थनसाधनं कृत्वा मथितवानिति गम्योत्प्रेक्षा समस्तवस्तुविषयसावयवरूपकेण सङ्कीर्यते ॥ ५६ ॥

ब्रह्माजीने सीतारूप लक्ष्मीको रामरूप विष्णुके हाथोंमें सौंपनेके लिये चलते हुए राक्षससैन्यरूप तरङ्गोंसे भीषण लङ्कासागरको पाशरूप वासुकिनागसे वेष्टित हनूमान्को मन्दर नामक मन्थन साधन बनाकर मथ डाला ॥ ५६ ॥

अथ [1]दह्यमानायां लङ्कायाम्।

अथेति। अनन्तरम् लङ्कायां दह्यमानायाम् भस्मीभवन्त्यां सत्याम्। (हनूमान् धूमं दिवि न्यस्तारयदिति परतो वक्ष्यमाणेन वाक्यपूर्तिः)।

इसके बाद जब लङ्का जलने लगी तब···।

रक्षःस्त्रीवदनारविन्दरजनीं विश्वंभरावर्हिणी-
वर्षारम्भदशां दशाननयशःकादम्बकादम्बिनीम्।
वैधव्योचितवेषनिश्चितमनोलङ्कावधूटीजटां
वैदेह्यास्त्रिजटासमां समकिरद्धूम्यां हनूमान्दिवि ॥ ५७ ॥

रक्षःस्त्रीति। रक्षःस्त्रीणां राक्षसाङ्गनानां वदनान्येवारविन्दानि कमलानि तेषां रजनीम् रात्रितुल्याम् सङ्कोचकरीम् राक्षसीजनमुखकमलकान्तिहरीमित्यर्थः, विश्व-

---

१. 'लङ्कायां दह्यमानायाम्' इति पाठान्तरम्।

म्भरा पृथिवी एव बर्हिणी मयूरी तस्या वर्षारम्भदशाम् वृष्टिप्रारम्भस्थितिम् (उल्लासकरीम्) समस्तवसुधाहर्षप्रकर्षप्रादुर्भावयित्रीमित्यर्थः, दशाननस्य रावणस्य ये यशःकादम्बाः कीर्त्तिकलहंसास्तेषां कादम्बिनीं मेघमालातुल्याम्, [यथा हंसा मेघमालां दृष्ट्वा पलायन्ते तथैव धूम्रं दृष्ट्वा रावणस्य यशांसि क्वापि गतानीवेति रूपकरहस्यम्] वैधव्यस्य मृतपतिकताया उचितो योऽयो यो वेषः नेपथ्यं तत्र निश्चितमनसः कृतचित्तायाः लङ्कावधूट्याः लङ्कारूपयुवत्याः जटारूपाम्, (विधवा अङ्गनाः प्रसाधनवैयर्थ्यमन्तराधाय केशान् जटाभावं प्रापयन्ति, इयं लङ्कारूपा युवतिरपि स्वस्य पत्युर्दशाननस्यावश्यंभाविनं मृत्युं मत्वा वैधव्योचितवेषाङ्गभूतां जटां विधत्ते, सैवेयं धूम्येति) वैदेह्याः सीतायाः त्रिजटासमाम् त्रिजटानामकराक्षसीवदाश्वासनप्रदायिनीम् धूम्याम् धूमसंहतिं हनूमान् दिवि आकाशे अकिरत् प्रासारयत्। हनूमता वियति वितायमाना धूममाला—राक्षसस्त्री मुखकमलानां रजनीव (सङ्कोचिका) पृथ्वीरूपहरिणीकृते वर्षाकालप्रारम्भ इव (हर्षदायिनी) दशाननयशोहंसानाम् मेघमालेव (तिरोधायिका) मनसि रावणमृत्युभाविवैधव्यं दृढीकृत्य गृहीतविधवावेषाया लङ्कायुवत्या जटेव (रावणनाशसूचिका) सीतायाः त्रिजटा इव (आश्वासनप्रदा) प्रतीयते स्मेति बोध्यम्। 'विश्वम्भरा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा' 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' 'कादम्बिनी मेघमाला' 'वधूटी स्याद्वधूरथ सुवासिनी' इति सर्वत्राभिधानचिन्तामणिः। 'वधूटचिरण्टशब्दौ यौवनवाचिनौ' इति कौमुद्यां भट्टोजिदीक्षितः। धूमानां समूहो धूम्या 'पाशादिभ्यो यः' इति यप्रत्ययः। परम्परितरूपकमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५७ ॥

राक्षसी जनके मुखकमलोंके लिये निशासमान, समस्तपृथिवीरूप मयूरीके लिये वर्षाकालकी तरह, रावणके यशरूप कलहंसोंके लिये मेघमाला सदृश, विधवोचित वेष धारण करनेके लिये दृढ़सङ्कल्प लङ्कारूप युवतीके लिये जटारूप तथा सीताके लिये त्रिजटा समान धूममालाको हनूमान्‌ने आकाशमें विस्तारित कर दिया ॥ ५७ ॥

[1]अपि च—

एतद्विक्रमवीक्षणेन जनितामानन्दबाष्पोद्गतिं
रक्षोनाथभयात्पिधातुमनसां विद्याधराणां [2]तदा।
व्याजव्याहृतये यथा परिणमेद्धूम्या तथो[3]ज्जृम्भते
स्वर्लोकेऽपि कलिन्दशैलतनयाकल्लोलशङ्कावहा ॥ ५८ ॥

---

१. 'अपि च' इति नास्ति क्वचित्। २. 'मुदा' इति पाठान्तरम्।
३. 'जृम्भते' इति पाठान्तरम्।

अपि च, एतद्विक्रमेति। अपि च किञ्च एतस्य हनूमतः विक्रमस्य पराक्रमस्य वीक्षणेन दर्शनेन जनिताम् उत्पन्नाम् आनन्दबाष्पोद्गतिं हर्षाश्रुप्रकरम् रक्षोनाथभयात् रावणभयात् पिधातुमनसां गोपयितुकामानां विद्याधराणां व्याजव्याहृतये कपटोक्तये (अस्माकं नेत्रेषु धूम्याप्रसारादश्रूदयो न त्वानन्देनेति कपटेन वक्तुम्) यथा परिणमेत् उपयोगं यायात्तथा कलिन्दशैलतनयायाः यमुनायाः कल्लोलस्य तरङ्गस्य शङ्कां भ्रमम् आवहति जनयति या सा तथोक्ता यमुनातरङ्गभ्रमजननी धूम्या धूमपरम्परा स्वर्लोके आकाशे अपि उज्जृम्भते प्रसरति। यमुनातरङ्गभ्रममादधाना धूमसंहतिराकाशदेशे प्रसरन्ती तथोज्जृम्भते स्म यथा हनूमद्विक्रमदर्शनजन्यमानन्दाश्रुप्रवाहं रावणभयाद् गोपयितुकामानां विद्याधराणां धूम्याप्रभवोऽयमानन्दप्रभव इति विद्याधराणां वञ्चनकृद्भाषणायावसरं दत्तवतीति तात्पर्यम्। अत्र स्वतः सिद्धस्य धूम्याविजृम्भणस्य विद्याधरकर्तृकव्याजव्याहृतिपरिणामपरत्वेनोत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा कल्लोलशङ्कावहेति भ्रान्तिमता संसृज्यते ॥ ५८ ॥

हनूमान्‌के पराक्रमको देखकर प्रकट होनेवाली आनन्दाश्रुधाराको राक्षसराज रावणके भयसे छिपानेकी इच्छा रखनेवाले विद्याधरोंको व्याजभाषण (यह अश्रुधारा आनन्दसे नहीं पैदा हुई है किन्तु यह धूमसम्पर्कसे पैदा हुई है, इस प्रकारकी छलोक्ति) का अवसर प्रदान करनेके लिये यमुनाकी तरङ्गका भ्रम उत्पन्न करनेवाली धूमराशि आकाशमें भी फैल गई ॥ ५८ ॥

आदौ नीलांशुकश्रीस्तदनु मरकताबद्धनीवीविभूतिः
कस्तूरीपङ्कभङ्गी क्षणमपि विकचेन्दीवरस्रक्सपत्नी।
पश्चात्स्निग्धाञ्जनाभा जघनकुचकटीकण्ठनेत्रेषु जाता
दिक्कान्तानां तदानीं दशमुखनगरीदाहसंभूतधूम्या ॥ ५९ ॥

आदाविति। दशमुखनगरीदाहसंभूतधूम्या लङ्कापुरीदहनजातधूमसंहतिः तदानीम् (तत्कृताकाशव्यासिकाले) तस्मिन्नवसरे दिक्कान्तानां दिगङ्गनानाम् जघनकुचकटीकण्ठनेत्रेषु जङ्घास्तनकटिकण्ठनयनेषु (तत्तदवयवस्थानेषु) क्रमशः आदौ प्रथमम् (जघनस्थाने) नीलांशुकश्रीः श्यामवस्त्रसमा, तदनु तत्पश्चात् (जघनत उपरितने भागे) मरकताबद्धनीवीविभूतिः गारुत्मतमणिखचितरशनाशोभाधारिणी, (ततश्च कुचप्रान्ते) कस्तूरीपत्रभङ्गी मृगमदलेपपरिपाटी, क्षणमपि कियत्कालार्थम् (ततोऽग्रे कण्ठदेशे) विकचेन्दीवरस्रक्सपत्नी विकसितनीलकमलमालासदृशी, पश्चात्ततः परतः (नयनयोः) स्निग्धाञ्जनाभा मृदितकज्जलसमानरूपा जाता अभूत्। एकापि रावणनगरदाहसंभवा धूमपरम्परा दिगङ्गनानां नानाभूषणतां बिभर्ति स्म, तथाहि सा धूममाला जघनस्थले नीलवस्त्रभावं, ततोऽग्रे कट्यां गारुत्मतमणिकृतरशनास्वरूपत्वम्, कुचयोर्मृगमदलेपोपमां, ग्रीवायां प्रफुल्लनीलकमल-

मालातुल्यताम्, नयनयोः श्लक्ष्णाञ्जनसमत्वं गतवती। एतेन भूमिष्ठस्यापि हनूमतः स्वर्गस्थोपकारिता रूपकालङ्कारेण व्यज्यते। तच्च रूपकमत्र कविप्रौढोक्तिसिद्धम्। 'गारुत्मतं मरकतम्' इत्यमरः। 'विकचेन्दीवरस्रक्सपत्नी'त्यत्रत्यसपत्नीपदं सादृश्यपर्यवसायि, तदुक्तम्—'ज्ञातिसोदरवन्ध्वादिशब्दाः सादृश्यवाचकाः' इति। स्रग्धरावृत्तम् ॥ ५९ ॥

रावणकी नगरी लङ्काके दाहसे उत्पन्न धूममालाने दिक्कान्ताओंके जघन, कुच, कटिप्रदेश, कण्ठ तथा नेत्रोंमें पहले (जघनमें) काले वस्त्रकी तुलना, अनन्तर कटिप्रदेशमें मरकतमणिखचित रशनासादृश्य, उसके बाद कुचतटमें कस्तूरीविरचित लेपसाम्य, तत्पश्चात् कण्ठदेशमें विकसित नीलकमलमालाका रूप और नेत्रोंमें चिकने अञ्जनका समानत्व प्राप्त किया। ५९।

हा तात हा जननि हा सुत हा सहाय
हा पौत्र[1] हा प्रियसखि ! क नु हा हतोऽस्मि।
इत्यादि पौरपरिदेवनभारवाग्भि-
रापूरि रावणपुरी शिखिना परीता ॥ ६० ॥

हा तातेति। शिखिना हनूमल्लाङ्गूलप्रभवेण वह्निना व्याप्ता रावणपुरी लङ्का हा तात हा जनक, हा जननि मातः, हा सुत, हा सहाय सखे, हा पौत्र, हा प्रियसखि प्रिये, क नु कुत्र गतासीति क्रियाध्याहर्त्तव्या। हा हतोऽस्मि, म्रिये, इत्यादिपौरपरिदेवनवाग्भिः इत्यादिभिः पुरवासिलोककृतविलापशब्दैः आपूरि आपूरिता जातेति शेषः, हापदेन विषादप्रत्ययः, तदुक्तममरे—'हा विषादशुगर्त्तिषु' इति ॥६०॥

हनूमान्की पूँछसे उत्पन्न अग्निसे व्याप्त रावणकी नगरी लङ्का हाय बाप, हाय माँ, हा पुत्र, हा मित्र, हा पौत्र, हाय प्रियतमे, कहाँ हो, हाय, मैं मरा, इत्यादि विलापमय नागरिकोच्चारित शब्दोंसे भर गई। (सर्वत्र यही आवाज सुनी जाने लगी) ॥ ६० ॥

यैर्वृन्दारकसुन्दरीजनमुखे नीराजनं निर्मितं
निर्मेघे गगनेऽपि यैर्विरचिता सौदामिनीसंहतिः।
ते द्वित्राण्यपि वासराणि न गता निर्वाणमौर्वानल-
ज्वालाडम्बरमम्बुधौ विदधिरे वालानलोद्यत्कणाः ॥ ६१ ॥

यैर्वृन्दारकेति। यैः वालानलोद्यत्कणैः लाङ्गूलप्रभववह्निस्फुरत्स्फुलिङ्गैः वृन्दारकसुन्दर्यः देवललनास्तासां मुखे मुखाग्रभागे नीराजनं कल्याणकालागमनसूचकमारात्तिकं निर्मितं कृतम्, यैः निर्मेघे विगतजलदे अपि गगने सौदामिनीसंहतिः

1. 'पुत्रि' इति पाठान्तरम्।

विद्युल्लतासमुदयः विरचिता कृता (शताधिकविद्युत्प्रकाशतुल्यः प्रकाशः कृत इत्यर्थः) द्वित्राणि वासराणि द्वे त्रीणि वा दिनानि यावत् अपि निर्वाणं न गताः सन्तापप्रकाशादिसमाप्त्योत्सुकभावागतिरेव निर्वाणं तन्न प्राप्ताः ते वालानलोल्कणाः हनूमत्पुच्छप्रभववह्निस्फुलिङ्गाः अम्बुधौ समुद्रे और्वानलस्य वाडववह्नेः ज्वालाडम्बरम् प्रकाशसादृश्यं विदधिरे कृतवन्तः। ये वालाग्न्युत्थिता वह्निकणाः स्वर्गाङ्गनानां कल्याणाशंसिनो नीराजनस्य रूपमबिभ्रत्, ये च निरभ्रेऽपि व्योम्नि विद्युत्समुदायप्रभां चक्रिरे, त एते वालाग्निकणाः समुद्रे प्रसृताः सन्तोऽपि द्वित्राण्यहानि यावदनिर्वाणरूपेण स्थिताः सन्तो वडवानलवद्बभासिरे इत्याशयः। अत्राग्निकणानां नीराजननिर्माणादिसम्बन्धाभावेऽपि तत्संबन्धाभिधानादसंबन्धे संबन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६१ ॥

जिन हनूमान्‌की पूँछसे उत्पन्न अग्निकणोंने देवाङ्गनाओंके मुखकी आरती उतारी और जिन्होंने मेघरहित आकाशमें भी विजलीके समुदायको प्रकाशित किया, वे ही अग्निकण दो तीन दिनों तक नहीं बुझनेके कारण समुद्रमें वड़वानलकी समता धारण करते रहे ॥६१॥

आदीप्यमानपवनात्मजवालसङ्गा-
दङ्गारशेषविभवामवलोक्य लङ्काम् ।
व्योम्नि स्थिता निशिचराः स्वगृहाणि नूनं
निर्वापयन्त इव नेत्रभवैः पयोभिः ॥ ६२ ॥

आदीप्यमानेति। आदीप्यमानः जाज्वल्यमानो यः पवनात्मजस्य हनूमतो वालः पुच्छस्तस्य सङ्गात् सम्बन्धवशात् अङ्गारः दग्धावशिष्टोऽसारभागः शेषः शेषांशो यस्यासौ अङ्गारशेषस्तादृशो विभवः समस्ता सम्पत्तिर्यस्यास्तां तथोक्ताम् प्रज्वलद्धनूमत्पुच्छसंसर्गवशाद्दग्धाखिलसम्पदमित्यर्थः, लङ्कां नाम स्वपुरीम् अवलोक्य दृष्ट्वा निशिचराः राक्षसाः स्वगृहाणि दह्यमानान् स्वस्वप्रासादान् नेत्रभवैः नयननिर्गतैः पयोभिः अश्रुजलैः निर्वापयन्तः शान्ताग्नीन् कुर्वन्त इव व्योम्नि स्थिताः आकाशदेशेऽतिष्ठन्। यथा कश्चिद्दह्यमाने स्वभवने क्वचनोच्चदेशे स्थित्वा ततः पानीयमुत्क्षिपन् स्वगृहलग्नं हुताशनं शमयति, तथैव दह्यमानसकलसम्पदो लङ्काया राक्षसा वह्निसन्तापभीत्योपरि व्योम्नि स्थिता रुदन्तश्च स्वाश्रुपयोभिः स्वानि भवनानि निर्वापयन्त इव स्थिता इतीहोत्प्रेक्षितम्। नूनं पदमुत्प्रेक्षां गमयितुम्—'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः। उत्प्रेक्षावाचकाः शब्दा इवशब्दोऽपि तादृशः' इति दण्डी। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६२ ॥

जाज्वल्यमान हनूमान्‌के पुच्छके संपर्कसे भस्मावशेष हो गई है सारी सम्पत्ति जिसकी ऐसी लङ्कानगरीको देखकर राक्षसगण अपनी आँखोंसे बहती हुई अश्रुधारासे उस अग्निको बुझाते हुएके समान आकाशमें स्थित रहे ॥ ६२ ॥

चक्रे शक्रजिदाज्ञया रणमुखे यत्कर्म रक्षोगण-
स्तत्कर्तुं [1]क्षणदाचरक्षितिभुजा युक्तोऽ[2]प्यशक्तो भवेत्।
सप्तार्चिश्च हनूमता परिचितो लङ्कामधाक्षीद्यथा
तत्पित्रा [3]मरुता युतोऽपि न तथा दाहक्रियायां पटुः ॥ ६३ ॥

चक्रे शक्रेति। रक्षसां गणो राक्षससमूहः रणमुखे युद्धे शक्रजितः रावणसूनो-रिन्द्रजिदभिधानस्य आज्ञया निदेशेन यत् कर्म यादृशं भीषणं कार्यं युद्धात्मकं चक्रे कृतवान्, क्षणदाचरक्षितिभुजा राक्षसराजेन रावणेन युक्तः सहचरितः अपि तत् तादृशम् (इन्द्रजिदाज्ञामवाप्य कृतेन कर्मणा तुलितम्) कर्तुम् अनुष्ठातुम् अशक्तः अक्षमः भवेत् जायेत, इन्द्रजिदाज्ञया राक्षसा रणे तादृशं भीषणं कार्यम-कुर्वत यादृशं कार्यं ते रावणसाहचर्यमवाप्यापि न कर्तुं पारयेयुरित्याशयः। हनूमता परिचितः सङ्गतः सप्तार्चिः अग्निश्च लङ्काम् यथा येन रूपेण अधाक्षीत् दग्धवान्, तथा तेन प्रकारेण मरुता वायुना हनूमत्पित्रा युतः सहितः अपि दाहक्रियायां दहनकर्मणि पटुर्न जायेतेति शेषः। उभयोर्वाक्ययोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावे विश्रान्ति-र्बोध्या। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ६३ ॥

इन्द्रजितकी आज्ञासे युद्धभूमिमें राक्षसोंने जो कार्य किया उसे रावणके साथ रहने पर भी वह नहीं कर पाते। हनूमान्‌से प्रवर्त्तित अग्निने जिस तरहसे लङ्काको जलाया, हनूमान्‌के पिता वायुदेवके साथ रहनेपर भी अग्नि उस तरह लङ्काको नहीं जला सकता था ॥ ६३ ॥

तस्मिन् हनूमदरणिप्रभवे हुताशे
शुद्धिं विधाय पतिमेव समेतुमैच्छत्।
लङ्केश्वरेण रणकेलिकुतूहलेन
बाह्वोर्बलादपहृता सुरराजलक्ष्मीः ॥ ६४ ॥

तस्मिन्निति। रणकेलिकुतूहलेन युद्धक्रीडासमुत्सुकेन लङ्केश्वरेण रावणेन बाह्वोः निजभुजयोः बलात् पराक्रमात् अपहृता स्ववशं नीता सुरराजलक्ष्मीः इन्द्रस्य समृद्धिः हनूमान् एव अरणिः मन्थनकाष्ठं ततः प्रभवः उत्पत्तिः यस्य तादृशे हनू-मता प्रवर्त्तित इत्यर्थः, हुताशे वह्नौ शुद्धिं स्वसंस्कारं विधाय पतिम् इन्द्रम् एव समेतुम् गन्तुम् ऐच्छत् अभिलषितवती। यथा कुतश्चित् कारणात् काचन साध्वी स्त्री कुत्रचिदयोग्ये स्थाने स्थित्वा भाग्योदये सति संस्कारशुद्धा स्वपतिमुपैति तथा

१. 'रजनीचरक्षितिभृता' इति पाठान्तरम्। २. 'अयुक्तोऽभवत्' इति पाठान्तरम्।
३. 'मरुतः' इति पाठान्तरम्।

समृद्धिरपि देवराजप्रिया रावणापहृता सती तद्भवने स्थिता सम्प्रति तन्नगरदाहे लब्धावसरा हनूमत्प्रवर्त्तितेऽग्नौ स्वसंस्कारमिव कृत्वा स्वपतिम् इन्द्रमुपैतुमिच्छति स्मेति भावः। एतेन रावणविनाशस्यासन्नता सूच्यते ॥ ६४ ॥

युद्धप्रिय रावणके द्वारा अपने बाहुबलसे हरण कर लाई गई इन्द्रकी लक्ष्मी उस हनूमान्‌रूप मन्थनकाष्ठसे उत्पन्न अग्निमें शुद्ध होकर अपने स्वामी इन्द्रके पास जानेकी इच्छा करने लगी ॥ ६४ ॥

वाचामिदानीं किमु विस्तरेण लङ्कापुरीं रावणबाहुगुप्ताम्।
काकुत्स्थदूतोऽयमुपेत्य चक्रे कृतान्तदूतस्य सुखप्रवेशाम् ॥ ६५ ॥

वाचामिति। इदानीम् अस्मिन्नवसरे वाचां विस्तरेण वचनप्रपञ्चेन किमु वाक्प्रपञ्चेन किमपि फलं नास्तीत्यर्थः, अयं काकुत्स्थदूतः रामस्य संदेशहरः रावणबाहुगुप्ताम् दशाननभुजपालिताम् लङ्कापुरीम् उपेत्य प्राप्य (तां पुरीम्) कृतान्तदूतस्य यमराजभृत्यगणस्य सुखप्रवेशाम् सुखसञ्चारक्षमाम् चक्रे कृतवान्। यस्मिन् पुरे यमराजदूताः कदापि न प्राविशँस्तत्रैव हनूमता कृतेऽसङ्ख्यराक्षसवधे यमदूतानां प्रवेशमतिसुकरं विदध इत्यर्थः। उपजातिवृत्तम् ॥ ६५ ॥

इस प्रसङ्गमें अधिक कहना व्यर्थ है कि रावणबाहुपालिता इस लङ्कापुरीमें रामदूत पवनपुत्रने प्रवेश कर यमदूतोंके लिये उस नगरीमें प्रवेशको सुकर बना दिया ॥ ६५ ॥

पौलस्त्यपातकिसमागमजायमान-
मेनः पुनान इव वानरयायजूकः।
निर्वर्तिताक्षविजयो निजवालवह्नौ
हुत्वा पलाशसमिधः सुगतिर्बभूव ॥ ६६ ॥

पौलस्त्येति। वानरो हनूमान् एव यायजूकः यज्ञकर्त्ता पौलस्त्यस्य रावणस्य एव पातकिनः कृतनानाविधपापस्य समागमेन दर्शनसंभाषणादिना जायमानम् उत्पद्यमानम् (पातकिसंसर्गस्यापि पातकोत्पादकतया संभवत्) एनः पातकम् पुनानः क्षालयन् इव निर्वर्त्तिताक्षविजयः कृताक्षकुमारपराभवः विहितेन्द्रियविजयश्च सन् निजवालवह्नौ स्वपुच्छोत्थितहुताशने पलाशसमिधः पलाशाख्यतरुकाष्ठानि राक्षसरूपकाष्ठानि च हुत्वा हव्यद्रव्यरूपेण क्षिप्त्वा दग्ध्वा च सुगतिः निर्विघ्नसञ्चारः प्राप्तस्वर्गादिशोभनलोकश्च बभूव अजायत। अयमाशयः—यथा कश्चिद्यज्ञपरायणः पुरुषः पापिसंसर्गे सति तदुदितं पापं प्रक्षालयितुं नियतेन्द्रियः सन्नग्नौ पलाशसमिधो जुहोति, तथा कृत्वा च ततः पापान्मुक्तो भूत्वोत्तमां गतिं प्रतिपद्यते, तद्वदयं हनूमान् रावणसंसर्गसंभवं पापमपनुनुत्सुर्जिताक्षकुमारो रक्षःपलाशसमिधो स्वपुच्छो-

त्ये वह्नावजुहोत् सुखेनाग्रे चलितुं च प्रावर्त्ततेति । 'इज्याशीलो यायजूकः' 'कलुषं वृजिनैनोऽघम्' 'पाशके चाक्षमिन्द्रियम्' 'पलोऽस्त्री पलत्वं मांसम्' इति सर्वत्रामरः । अक्षपलाशगतिशब्दाः श्लिष्टाः । अत्र श्लेषोत्प्रेक्षानुप्राणितः सावयवरूपकालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६६ ॥

वानरयाज्ञिक हनूमान्‌जीने रावणरूप पातकीके साथ दर्शन संभाषण आदि सम्पर्कके होनेसे उत्पन्न पापको प्रक्षालित करनेके लिये अक्षविजय (इन्द्रियनिग्रह एवं अक्षकुमारका वध) करके अपनी पूँछसे उत्थित अग्निमें पलाशसमिधका हवन करके (पलाश-राक्षसों-का नाश करके) उत्तम गति (स्वच्छन्द सञ्चार-स्वर्गादि उत्तमलोक) प्राप्त कर लिया ॥ ६६ ॥

लङ्कादाहेऽप्यनार्तां रघुपतिदयितां चारणोक्त्या विदित्वा
सानन्दस्तां प्रणम्य प्रतिगमनविधौ प्राप्य तस्या नियोगम् ।
आरुह्यारिष्टशैलं निधिमपि पयसां स्वैरमुत्तीर्य वेगा-
च्चक्रे गत्वा महेन्द्रं प्लवग[1]कुलपतीन्पूर्णकामान्हनूमान् ॥ ६७ ॥

लङ्कादाहेऽपीति । लङ्कादाहेऽपि समस्तलङ्कापुरीभस्मसाद्भावे अपि रघुपतिदयिताम् सीतान्नाम रामप्रियाम् चरणोक्त्या गन्धर्वादीनामुक्त्या अनार्त्ताम् अक्षताम् (अदग्धाम्) विदित्वा ज्ञात्वा सानन्दः लङ्कायां दह्यमानायां तदेकदेशे तिष्ठन्ती सीता यदि विपद्यते तदा 'यदर्थमयमारम्भस्तत्कार्यमवसादितम्' इति चिन्ताऽपगमेन हृष्टः सन् तां रघुपतिदयितां सीतां प्रणम्य नमस्कृत्य प्रतिगमनविधौ परावर्त्तने तस्याः सीतायाः नियोगम् आदेशं प्राप्य लब्ध्वा अरिष्टशैलं तन्नाम समुद्रदक्षिणपारावस्थितपर्वतम् आरुह्य पयसां निधिम् समुद्रम् अपि वेगात् जवेन स्वैरम् अप्रतिघातम् उत्तीर्य लङ्घयित्वा हनूमान् महेन्द्रं नाम समुद्रोत्तरतटवर्तिनं पर्वतं (यत्राङ्गदादयो हनूमदागमनं प्रतीक्षमाणाः स्थिताः) गत्वा उपेत्य प्लवगकुलपतीन् वानरमुख्यानङ्गदजाम्बवन्नलनीलप्रभृतीन् पूर्णकामान् सफलमनोरथान् सीतावृत्तोपलब्ध्या कृतस्वामिकार्यतया सार्थकागमनानित्यर्थः, चक्रे कृतवान् । अत्र महता प्रकरणेन कथनीयस्यार्थस्य संक्षेपेणोक्तेः संक्षेपो नाम गुण इति विश्वनाथः, तदुक्तं— 'संक्षेपार्थाभिधानं यत्संक्षेपः परिकीर्त्तितः' इति । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ६७ ॥

आकाशचारी गन्धर्वोंके द्वारा लङ्काके जलने पर भी सीताको कोई आँच नहीं आई है इस समाचारको जानकर हृष्ट हनूमान्‌जीने आकर सीताको प्रणाम किया, उनसे लौटनेके लिये अनुमति ली, अरिष्टशैलपर चढ़कर वेगसे निर्विघ्न समुद्र पार किया, महेन्द्रपर्वतपर आये जहाँ अङ्गद आदि उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वहाँ आकर उन्होंने वानरमुख्योंको सीताकी उपलब्धि की सूचना देकर पूर्ण मनोरथ कर दिया ॥ ६७ ॥

---

१. 'बल' इति पाठान्तरम् ।

अथ यथार्हं सैन्याधिपान्संमान्य मारुतिस्तै[1]रनुयुक्तः [2]स्ववृत्तान्तमखिलमाख्यातवान् ।

अथेति । अथ महेन्द्रपर्वतप्राप्त्यनन्तरम् यथार्हम् यथायोग्यम् सैन्याधिपान् सेनापतीन् जाम्बवदादीन् संमान्य प्रणामादिना संभाव्य तैः सेनापतिभिः अनुयुक्तः पृष्टः, 'कथं समुद्रो लङ्घितः, लङ्का प्रविष्टा, सीता दृष्टा' इति साग्रहं पृष्टो मारुतिः हनूमान् अखिलम् समस्तं स्ववृत्तान्तम् समुद्रतरणादारभ्य परावर्त्तनकालं यावज्जातं वृत्तजातम् आख्यातवान् ऊचे ।

इसके बाद वानरसेनापतियोंका यथोचित प्रणामादि सम्मान करके उनके पूछनेपर हनूमान्ने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ।

तदनु पवनतनय[3]वचनमुदिता वानरवरूथिनी यूथनाथानुयाता तद्दर्शनजनितमानन्दमानन्दशरधौ दाशरथौ सुग्रीवे च संविभज्येव विवक्षितुमहमहमिकया धावन्ती मध्येसरणि दधिमुखकृतावनं मधुवनं हनूमदनुमत्याभिभूय मधुपानसुखमनुबभूव ।

तदन्विति । तदनु हनूमद्वृत्तान्तश्रवणात् परतो हृष्टा पवनतनयस्य हनूमतो वचनेन लङ्कावार्त्तया मुदिता प्रसन्ना वानरवरूथिनी वानरसेना यूथनाथानुयाता जाम्बवदङ्गदादिसेनानायकसहिता तद्दर्शनजनितम् हनूमदवलोकनप्रभवम् आनन्दं हर्षातिरेकम् आनन्दशरधौ आनन्दसागरे दाशरथौ रामे सुग्रीवे च संविभज्य इव तुल्यकालं निवेदयितुं कृतविभागम् इव विवक्षितुम् वक्तुम् अहमहमिकया अहं पूर्वमहं पूर्वमिति प्रतिस्पर्धया धावन्ती अतिवेगेन प्रतिष्ठमाना मध्येसरणि मध्येमार्गम् दधिमुखकृतावनम् दधिमुखनामकेन सुग्रीवमातुलेन रक्ष्यमाणं मधुवनम् क्षौद्रकाननं हनूमदनुमत्या हनूमदाज्ञया अभिभूय आक्रम्य मधुपानसुखम् यथेच्छं क्षौद्रपानप्रमोदम् अनुबभूव प्राप्तवती । 'मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रेऽपि' इत्यमरः ।

इसके बाद हनूमान्के वचनसे प्रसन्न सेनापतियोंसे युक्त वानरसेना हनूमान्के दर्शनसे उत्पन्न आनन्दको आनन्दसागर भगवान् रामचन्द्र तथा सुग्रीवको बाँटकर एक साथ ही कहनेकी इच्छासे अहमहमिकापूर्वक दौड़ती हुई वानरराज सुग्रीवके मामा दधिमुख द्वारा रक्षित तथा मार्गमें अवस्थित मधुवन पहुँचकर और हनुमान्की आज्ञासे मधुवनपर आक्रमण कर यथेच्छ मधुपानसुखका अनुभव किया ।

अथाब्रवीद्गिरिवरतुङ्गमङ्गदं
कृताञ्जलिर्दधिमुख एष रोषवान् ।

---

१. 'एतैः' इति पाठान्तरम् । २. 'स्वकीयवृत्तान्तम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'वचन' इति नास्ति क्वचित् ।

वलीमुखान्मधुभजने शिलीमुखान्
भवानिमान्झटिति निवारयेदिति ॥ ६८ ॥

अथेति। अथ वानरसैन्यकृतमधुवनाक्रमणानन्तरं रोषवान् स्वरक्षणीयवनाक्रमणजन्यकोपपरीतः एषः दधिमुखो गिरिवरतुङ्गम् पर्वतोच्छ्रितगात्रम् अङ्गदम् वालिपुत्रं वानरसेनानायकञ्च भवान् अङ्गदः मधुभजने मधुपानकर्मणि शिलीमुखान् भ्रमरभावं गतान् आसक्तानित्यर्थः, इमान् वलीमुखान् वानरान् झटिति शीघ्रतया निवारयेत् निषेधेत् इति कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः सन् अब्रवीत् उक्तवान्। इयं वानरसेना मधुवनमुन्मथ्नाति, भवाँश्चास्या नियमनाधिकृतोऽतो भवानेनां मधुभजनाद् वारयेदिति बद्धकरयुगलो दधिमुखोऽङ्गदमुवाचेत्यर्थः। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' 'कपिप्लवङ्गप्लवगशाखामृगवलीमुखाः' इत्युभयत्रामरः । रुचिरावृत्तम्—'चतुर्ग्रहैर्यति रुचिरा जभस्जगाः' इति तल्लक्षणात् ॥ ६८ ॥

मधुवनके मर्दित होनेसे कुपित दधिमुख नामक मधुवनपालने हाथ जोड़कर पर्वतकी तरह उन्नतकाय अङ्गदसे कहा कि मधुपानमें भ्रमरकी तरह आचरण करने वाले इन वानरोंको शीघ्र आप निवारित करें (क्योंकि आप इनके नायक हैं) ॥ ६८ ॥

अयमप्येनमवोचत् ।

अयमिति। अयम् अङ्गदः अपि एनम् दधमुखम् अवोचत् वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवान्।

अङ्गदने भी दधिमुखसे कहा ।

दशमुखपुरमध्ये वीक्षिता मैथिलीति
श्रवणमधु वितीर्णं येन वीरेण मह्यम्।
दधिमुख ! यदि सोऽयं भाषते को निरुन्ध्या-
न्मधु पिबतु [1]यथेच्छं वाहिनी वानराणाम् ॥ ६९ ॥

दशमुखेति। दशमुखपुरमध्ये दशाननगरे लङ्कायां मैथिली सीता वीक्षिता दृष्टा इति एवंरूपं श्रवणमधु कर्णरसायनं येन वीरेण हनूमता मह्यं मेऽङ्गदाय वितीर्णम् दत्तम् लङ्कायां मैथिली दृष्टेति श्रवणानन्दजननं वाक्यं येन वीरेण मह्यमुक्तमित्यर्थः, यदि सः अयम् वीरो हनूमान् भाषते मधु पातुं वानरसैन्यमादिशति, तदा को निरुन्ध्यात् को वारयेत् , (वारयितुमहमसमर्थस्तादृशहर्षप्रदवीरवाक्यस्योल्लङ्घयितुमशक्यतया) तदस्यां स्थितौ वानराणां वाहिनी सेना यथेच्छं यथारुचि मधु पिबतु आस्वादयतु, नास्ति निरोध्यता तेषामिति भावः। मालिनीवृत्तम् ॥ ६९ ॥

१. 'यथेष्टम्' इति पाठान्तरम् ।

रावणकी नगरी लङ्कामें मैंने सीताके दर्शन पाये हैं इस तरहका श्रवणप्रिय वाक्य जिस वीर हनूमान्‌ने मुझे कहा है, जब वही इस वानरसैन्यको मधु पीनेकी आज्ञा दे रहे हैं तब उन्हें कौन रोके ? जाने दो, वानरसेना यथेच्छ मधुपान करे ॥ ६९ ॥

तदनु भय[1]वशसमुपगतदधिमुखवचनविदितमधुवनकदन[2]परिगणितजनकदुहितृदर्शनजनितप्रमदभरभरितस्तपनतनयस्तत्र[3] तनुविकृतिमतनुत[4]दधिमुखागमननिमित्तसंपत्तिम् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चात् भयवशेन मधुवने नाशिते सुग्रीवो मां दण्डयिष्यतीति भीत्या समुपगतस्य सुग्रीवसमीपमुपेतस्य दधिमुखस्य तन्नामकस्य मधुवनपालस्य वचनेन कथनेन विदितं ज्ञातं यन्मधुवनकदनं मधुवनविध्वंसनं तेन परिगणितं ज्ञातमनुमितं जनकदुहितृदर्शनं सीतासाक्षात्कारस्तज्जनितः वानरसैन्यकृतमधुवनभञ्जनहेतुकतत्कृतसीतादर्शनानुमानेन जनितः यः प्रमदभरः आनन्दसमुदयस्तेन भरितः पूर्णः तपनतनयः सूर्यपुत्रः सुग्रीवः तत्र तस्मिन्समये दधिमुखागमनम् एव निमित्तसम्पत्तिः कारणसामग्री यस्यास्तादृशीं तनुविकृतिं मुखविकासनेत्रविस्फारादिचेष्टाम् अकरोत् । भयेन दधिमुखे समीपमायाते तेनोक्तेन वचनेन यदि वानराः सीतां न दृष्टवन्तो भवेयुस्तदा मधुवनं भञ्जयितुं न पारयेयुस्तदवश्यं सीताऽमीभिर्दृष्टेति प्रतीत्या जायमानेनानन्देन भरितः सुग्रीवो दधिमुखागमननिमित्तां मुखनेत्रादिविकासकरीं चेष्टामतनुतेत्यर्थः ।

इसके बाद भयसे आये हुए दधिमुखके वचनसे मधुवनके विध्वंसकी बात सुनकर सुग्रीवने समझ लिया कि वानरोंने सीताके दर्शन किये हैं, इसतरहके ज्ञानसे उनका हृदय आनन्दसे पूर्ण हो गया और दधिमुखके आगमनरूप कारणसे सुग्रीवके मुख नेत्र आदिमें विकृति हर्षव्यञ्जक विकास रोमाञ्च आदि चेष्टा होने लगी ।

आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिना[5]न्यासाद्य नानाफला-
[6]न्यास्वाद्य प्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिङ्ग्य द्रुममक्रमं मदवशादाधूय पुच्छच्छटा-
मारादाविरभूदहंप्रथमिकापीना कपीनां चमूः ॥ ७० ॥

आरुह्येति । अद्रिम् मार्गवर्त्तिनं पर्वतमारुह्य अथ अवरुह्य (पर्वतारोहणावरोहक्रीडां कृत्वा) विपिनानि मध्येमार्गं स्थितानि वनानि आसाद्य प्राप्य, नानाफलानि भिन्नभिन्नजातीयानि फलानि आस्वाद्य उपभुज्य प्लुतम् वानरस्वभावसिद्धम्

---

१. 'विवशसमुपनत' इति पाठान्तरम् । २. 'परिभणित' इति पाठान्तरम् ।
३. 'तत्र' इति नास्ति क्वचित् । ४. 'तदभिमुखा' इति पाठान्तरम् ।
५. 'आस्वाद्य' इति पाठान्तरम् । ६. 'आस्फोटय' इति पाठान्तरम् ।

उत्प्लवनम् आरचय्य विधाय वदनैः मुखैः वाद्यक्रमान् डिण्डिमादिवाद्यध्वनीन् आपाद्य (मुखैस्तद्वाद्यध्वनिं कृत्वा) अक्रमम् क्रमपूर्वं मूलमारोहति ततो मध्यं ततः शिखाम् इति पौर्वापर्यं विहाय, मदवशात् मधुपानजन्यमदोपक्रमसामर्थ्यात् पुच्छच्छटाम् आत्मलाङ्गूलावलिम् आधूय चालयित्वा अहं प्रथमोऽहं प्रथम इति यस्यां क्रियायां सा अहंप्रथमिका तया पीना पूर्णा कपीनाम् चमूः वानरसेना आरात् सुग्रीवादिसमीपे आविरभूत् प्रकटीबभूव। अत्र कपिस्वाभाव्येन यथावद्वस्तुवर्णनात्स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७० ॥

पहाड़पर चढ़कर तथा उतरकर, वनोंको प्राप्त कर, नानाप्रकारके फलोंको चखकर, कूद-फाँद कर, मुँहसे नानाप्रकारके बाजे बजाकर, पेड़ोंपर उलटा-सीधा चढ़कर और मस्तीमें पूँछ चलाकर, मैं पहले मैं पहले पहुँचूँगा इस तरहकी प्रतिस्पर्धासे भरी वानरसेना किष्किन्धाके समीपमें पहुँच गयी ॥ ७० ॥

निद्राक्षयादरुणितेन समीरपुत्रः
सौमित्रिनेत्रयुगलेन निपीयमानः।
चूडामणिं करतले कलयन्ववन्दे
पादारविन्दयुगलं भरताग्रजस्य ॥ ७१ ॥

निद्राक्षयादिति। निद्राक्षयात् वनवासे सततजागरात् अरुणितेन रक्तीकृतेन सौमित्रिनेत्रयुगलेन लक्ष्मणनयनद्वयेन निपीयमानः सादरस्नेहमालोक्यमानः समीरपुत्रो हनूमान् करतले हस्ते चूडामणिं सीतादत्तमभिज्ञानभूतं शिरोभूषणविशेषम् कलयन् धारयन् भरताग्रजस्य रामस्य पादारविन्दयुगलं चरणकमलद्वितयं ववन्दे प्रणतवान्। हस्ते चूडामणिधारणपूर्वकमभिवादनेन वचनात्पूर्वमेव यथासीतादर्शनमनुमिनुयात्तथा प्रयत्नः कृतो वेद्यः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७१ ॥

वनवासमें सतत जागते रहनेसे लाल रंगवाली लक्ष्मणकी आँखोंसे स्नेह और आदरपूर्वक देखे जाते हुए हनूमान्ने सीताद्वारा दिये गये शिरोभूषणको हाथमें लेकर श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ७१ ॥

अक्लेशसंभूतगतागताभ्यां [1]वितीर्णविस्तीर्णमहार्णवोऽपि।
आनन्दसिन्धौ पृतनासमक्षमक्षस्य हन्ता नितरां ममज्ज ॥ ७२ ॥

अक्लेशेति। अक्षस्य अक्षकुमारस्य हन्ता हनूमान् अक्लेशेन विना खेदं संभूते जाते ये गतागते यातायाते ताभ्याम् वितीर्णः उल्लङ्घितो विस्तीर्णः शतयोजनविस्तृतो महार्णवः—समुद्रो येन तथाभूतोऽपि पृतनासमक्षं वानरवाहिन्याः पुरतः

---

१. 'निस्तीर्ण' इति पाठान्तरम्।

आनन्दसिन्धौ हर्षसागरे नितराम् अत्यर्थम् ममज्ज निमग्नो जातः, लङ्कागमनागमनजन्यक्लेशं विस्मृत्य स्वीयजनावलोकनतत्साधुवादश्रवणादिजन्मन्यानन्दसागरे निमग्नो जात इत्यर्थः। समुद्रलङ्घने समर्थस्यापि हर्षसागरनिमज्जनोक्तेर्विरोधोऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ७२ ॥

अक्लेशगमनागमनसे विस्तीर्णसागरको पार करनेवाले हनूमान्‌जी भी वानरवाहिनीके सामने पहुँचने पर आनन्दसागरमें अत्यन्त डूब गये ॥ ७२ ॥

आनीतचूडामणिसंनिधानादाविःप्रमोदेन रघूद्वहेन।
तत्रानुयुक्तः [1]पवनात्मजन्मा विज्ञापयामास कृतप्रणामः ॥ ७३ ॥

आनीतेति। आनीतस्य हनूमता सीतासकाशादाहृतस्य चूडामणेः शिरोभूषणविशेषस्य सन्निधानात् समीपे समागमात् आविःप्रमोदेन जातहर्षेण रघूद्वहेन रघुवंशप्रदीपेन रामेण तत्र चूडामण्युपलब्धिविषये कुतः कथञ्चास्याधिगमः? इति अनुयुक्तः पृष्टः पवनात्मजन्मा वायुपुत्रो हनूमान् कृतप्रणामः विहितनमस्कारः सन् विज्ञापयामास वक्ष्यमाणप्रकारेण चूडामणिप्राप्तिं रामाय निवेदयामास। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ७३ ॥

हनूमान् द्वारा लाये गये चूड़ामणिके आगमनसे हर्षान्वित राम द्वारा चूड़ामणिके मिलनेके सम्बन्धमें पूछे जाने पर प्रणाम करके हनूमानने वक्ष्यमाण प्रकारसे निवेदन किया ॥ ७३ ॥

लङ्कापुरोपवन[2]सीम्न्यथ राजपुत्री-
मालोकयं निशिचरीगणबाध्यमानाम्।
केनापि पातकवशेन सुपर्णलोके
वन्दीकृतामिव भुजंगमराजकन्याम् ॥ ७४ ॥

लङ्केति। अथ भवच्चरणसकाशात् प्रस्थानानन्तरं लङ्कापुरस्य रावणराजधान्याः उपवनसीम्नि उद्यानप्रान्ते अशोकवनिकामध्ये इति तात्पर्यम्, निशिचरीगणबाध्यमानाम् रक्षाधिकृतराक्षसीनिवहसन्ताप्यमानाम् केनापि अज्ञाते पातकवशेन पूर्वाचरितदुष्कृतमहिम्ना सुपर्णलोके गरुडलोके वन्दीकृतां कारागारवस्थापिताम् भुजङ्गमराजकन्याम् नागकन्याम् इव स्थितम् राजपुत्रीं सीताम् आलोकयम् अपश्यम्। यथा काचन नागकन्या पूर्वदुष्कृतोद्रेकमहिम्ना गरुड़लोके कारागारेऽवस्थिता विषीदेत्तथा लङ्कावर्त्तिन्यशोकवनिकोद्याने राक्षसीगणैः परिवृततया विषीदन्तीं सीतां दृष्टवानहमिति भावार्थः। उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥७४॥

---

१. 'पवमानजन्मा' इति पाठान्तरम्। २. 'सीमनि' इति पाठान्तरम्।

मैंने लङ्कापुरीके उपवन अशोकवनिकामें रक्षाधिकृत राक्षसियों द्वारा परिवृत राजपुत्री सीताको–किसी पुराने पापसे गरुडलोकमें कारावासित नागकन्याकी स्थितिमें–देखा ॥ ७४ ॥

देव्यास्त्वदीयान्वयकीर्तनेन त्वन्मुद्रया च व्यपनीय शोकम् ।
वार्तामभिज्ञानमयीं[1]मयाचं प्रस्थातुकामः परिपूर्णकामः ॥ ७५ ॥

देव्या इति । त्वदीयान्वयकीर्त्तनेन त्वद्वंशप्रशंसनया त्वन्मुद्रया त्वया दत्तयाऽभिज्ञानभूतया करमुद्रिकया च देव्याः सीतायाः शोकम् असहायतया जायमानां मनोव्यथाम् व्यपनीय दूरीकृत्य, परिपूर्णकामः सम्पादितप्रयोजनः सन् प्रस्थातुकामः लङ्कातः परावर्त्तितुमभिलष्यन्नहं (देवीं सीताम्) अभिज्ञानमयीं परिचयचिह्नभूताम् हनूमान् सीतां दृष्ट्वा नित्यस्यार्थस्य प्रमापिकाम् वार्त्तां काञ्चन रहस्यकथाम् अयाचम् याचितवान् । देवि, कामपि तादृशीमनितरजनवेद्यां वार्त्तां ममाचक्ष्व येन राघवो मम त्वया जातं सङ्गं प्रतीयादिति प्रार्थितवानहमित्यर्थः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥

आपके वंशकी बड़ाई कर तथा आपके द्वारा दी गई अंगूठी देकर मैंने सीताके शोकको दूर कर दिया और अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर चलनेके लिये उद्यत हो सीतासे कुछ ऐसी वार्त्ता देनेको कहा जो अभिज्ञानरूप हो अर्थात् जिससे हमारा मिलना प्रमाणित किया जा सके ॥ ७५ ॥

ब्रह्मास्त्रवित्रस्तजयन्तकृत्यां [2]कथामभिज्ञाप्य वने प्रवृत्ताम् ।
चिरं रुदन्त्या जनकेन्द्रपुत्र्या चूडामणिः प्रेषित [3]एष तुभ्यम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मास्त्रेति । ब्रह्मास्त्रात् दर्भमयाद्रामसुक्ताद् वित्रस्तस्य भीतस्य जयन्तस्य काकरूपधरस्य शक्रपुत्रस्य कृत्यं व्यवहारः सीतास्तनपरिसरविदारणात्मा यस्यां तादृशीं वने चित्रकूटतटकानने प्रवृत्तां जाताम् कथाम् आख्यानम् अभिज्ञाप्य अभिज्ञानत्वेनाभिधाय चिरं रुदत्या—संयोगस्मरणस्य वियोगे समधिकोद्वेगजनकतया बहुकालपर्यन्तमश्रूणि विमुञ्चन्त्या जनकेन्द्रपुत्र्या सीतया एष चूडामणिः तुभ्यं रामाय प्रेषितः अभिज्ञानरूपेण प्रहितः । एतेन जयन्तकाककथा चूडामणिश्चेत्यभिज्ञानद्वयं दत्तमित्युक्तम् ॥ ७६ ॥

दर्भमय ब्रह्मास्त्रसे भयभीत जयन्त काक वाली वनमें हुई घटना कहकर चिरकालतक रोती हुई जनकनन्दिनीने यह चूड़ामणि आप लिये भेजा है ॥ ७६ ॥

---

१. 'ययाचे' इति पा० । २. 'कथामपि ज्ञाप्य' 'कथां च विज्ञाप्य' इति च पाठान्तरम् ।
३. 'एव' इति पाठान्तरम् ।

किं बहुना—

देव ! तस्याः प्रतिष्ठासून् सूना[1]शैकपालितान् ।
मुद्रयित्वा प्रपन्नोऽहं [2]तवाभिज्ञानमुद्रया ॥ ७७ ॥

इति श्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे सुन्दरकाण्डः समाप्तः ।

किं बहुना, देवेति । किं बहुना किमधिकेनोक्तेन, अधिककथनस्य किमपि प्रयोजनं न पश्यामीत्यर्थः, हे देव, स्वामिन् रामचन्द्र, तस्याः सीतायाः प्रतिष्ठासून् बहिर्गन्तुमिच्छतः अपि आशैकपालितान् भवदागमनप्रतीक्षामात्रकृतरक्षान्, असून् प्राणान् अहं हनूमान् तव अभिज्ञानमुद्रया परिचयाय दत्तेनाङ्गुरीयकेण मुद्रयित्वा निरुध्य अवस्थाप्य प्रपन्नः भवत्सविधमायातोऽस्मीति । सीता भवदाशामात्ररक्षितजीवना प्रतिक्षणसम्भाव्यमानविपत्तिश्च मया भवदीयाङ्गुरीयकप्रदानेन किञ्चिदाश्वासिता, ततोऽहमिहायत इत्याशयः ॥ ७७ ॥

स्वामिन्, सीताके प्राणोंको, जो जानेके लिये तैयार थे, केवल आपके आगमनकी प्रतीक्षामात्रसे किसी तरह रक्षित थे, मैं आपके द्वारा दी गई अंगूठी रूप मुहरसे सुरक्षित करके आपके पास आया हूँ ॥ ७७ ॥

इति मैथिलपण्डित-श्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते चम्पूरामायण'प्रकाशे'
सुन्दरकाण्ड'प्रकाशः'



१. 'अशोक' इति पाठान्तरम् । २. 'त्वदभिज्ञान' इति पाठान्तरम् ।

अथ युद्धकाण्डम्

[1]दृष्टे यत्र यदृच्छयापि वचसां देवी पुरो वर्तते
सारस्यं महदभ्युदेति सदसि प्रागल्भ्यमुज्जृम्भते ।
जायन्ते सकलाः कला अपि नृणां जागर्ति कीर्तिर्नवा
चेतः [2]स्निह्यति तत्र देशिकपदाम्भोजे च भोजे मम ॥ १ ॥

दृष्टे यत्रेति । यत्र यस्मिन् देशिकपदाम्भोजे भोजे च यदृच्छया लीलया अपि दृष्टे सकृत् साक्षात्कृतमात्रे नृणां मनुष्याणाम् सर्वेषां वचसां देवी सरस्वती पुरोवर्त्तते प्रत्यक्षा भवति, महद् अनल्पं सारस्यम् सरसत्वम् अभ्युदेति उत्पद्यते, सदसि सभायां प्रागल्भ्यम् सकलविद्याविचारप्रौढत्वम् उज्जृम्भते प्रकटति, सकलाः कलाः चतुष्षष्टिसंख्याकाः इतिहासागमादिविद्याः जायन्ते प्रकाशीभवन्ति, नवा नूतनाऽम्लाना कीर्त्तिः जागर्त्ति विलसति, तत्र देशिकपदाम्भोजे गुरुचरणसरोजे भोजे तन्नामके राजनि च मम चेतः स्निह्यति बहुविधोपकारकरत्वात्स्नेहयुक्तं जायत इत्यर्थः। दिशति हितमिति देशी स एव देशिकः गुरुः। यस्मिन्गुरुचरणसरोजे भोजे च विनापि कमप्यभिसन्धिं विलोकिते सति ते ते उपकारा जायन्ते तत्र मम मनः स्निह्यति, स्नेहेन प्रह्वीभावो लक्ष्यमाणो बोध्यः। चतुष्षष्टिकला उक्ता यथा—

'इतिहासागमाद्याश्च काव्यालङ्कारनाटकम् ।
गायकत्वं कवित्वं च कामशास्त्रं दुरोदरम् ॥
देशभाषालिपिज्ञानं लिपिकर्म च वाचकम् ।
सर्वाणि चापदानानि स्वरशास्त्रं तु शाकुनम् ॥
सामुद्रिकं रत्नशास्त्रं रथाश्वगतिकौशलम् ।
मल्लशास्त्रं सूदकर्म भूरुहाणां च दोहदम् ॥
गन्धवादो धातुवादः खन्यावादो रसस्य च ।
जालवादोऽग्निसंस्तम्भः खड्गस्तम्भो जलस्य च ॥
वाचःस्तम्भो वयःस्तम्भो वश्याकर्षणमेव च ।
विद्वेषणोच्चाटनं च मारणं कालवञ्चनम् ॥

---

१. एतत्पूर्वम्
'आनीतं पवनात्मजेन जनकक्ष्मापालपुत्रीशिरोरत्नं मूर्तमिवानुरागमसकृद्वीक्ष्य प्रमोदान्वितः ।
यो लोकत्रयकण्टकं दशमुखं प्रोद्धर्तुमैच्छद्बलात्सोऽयं वीरवराग्रणीर्जनकजाजानिः सदा पातु नः ॥'
इति श्लोको दृश्यते क्वचित् । २. 'स्निह्यतु' इति पाठान्तरम् ।

त्तमे स्वकार्मुके तीव्रां दृष्टिमाधितेत्यर्थः । महावीरस्वाभाव्यात्सुग्रीवादिभ्यो विजय-यात्रासन्नाहार्थमादिशन्निव स्वं धनुरपश्यदिति भावः ॥ ४ ॥

आनन्दविभोर होकर हनूमान्जीके मुँहसे सीताका कुशल समाचार सुन लेनेके बाद रावणके कोपके कारण उग्रता धारण करनेवाली अपनी दृष्टि रघुनाथने अपने शरासन पर डाली ॥ ४ ॥

अथ सुग्रीवोऽपि दशग्रीवकुपितराघवावलोकन[1]द्विगुणितरणोत्साहः [2]साहाय्यसमयमनुपालयन्नन्धुमिव सिन्धुमवधार्य धार्यमाण[3]धैर्यादगाध-मतिरधिरूढत्रिकूट[4]शृङ्गां लङ्कामधिगन्तुमङ्गदकुमुदनलनीलप्रमुखमप्य[5]खि-लानीकं [6]समनीनहत् ।

अथेति । अथ अनन्तरं सुग्रीवः अपि दशग्रीवे रावणे कुपितस्य कृतक्रोधस्य राघवस्य रामस्य अवलोकनेन दर्शनेन द्विगुणितः वृद्धिंगतः रणोत्साहः युद्धाभिलाषो यस्य तथाभूतः सन् प्रवृद्धयुद्धविषयकाग्रहस्सन् साहाय्यसमयम् सीताप्रवृत्त्युप-लब्धिं कृत्वा तामुद्धर्तुं यत्नं करिष्यामीति रामाय कृतां स्वीयां सहायताप्रतिज्ञाम् अनुपालयन् अनुवर्त्तमानः सिन्धुम् सागरम् अन्धुम् कूपम् इव सुतरम् अवधार्य निर्णीय धार्यमाणधैर्यात् अवलम्ब्यमानधीरभावात् (चिराश्रीयमाणधीरत्वात्) अगाधमतिः गभीरबुद्धिः अधिरूढत्रिकूटशृङ्गां त्रिकूटाचलशिखरे स्थिताम् लङ्काम् अधिगन्तुम् प्राप्तुम् अङ्गदकुमुदनलनीलप्रमुखम् अङ्गदादिप्रधानम् अखिलानीकं समस्तं सैन्यम् समनीनहत् समुदयोऽजयत् । 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्त-संविदः' 'पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूपः' 'अनीकं तु रणे सैन्ये' इति सर्वत्रामरः ।

इसके बाद रावणके ऊपर कुपित रामको देखकर जिसका रणोत्साह दुगुना हो गया है, ऐसे सुग्रीवने अपनी सहायता करनेकी प्रतिज्ञाका पालन करता हुआ समुद्रको एक साधारण कूपकी तरह सुतर मानकर आश्रितधैर्यके कारण गभीर बुद्धि होकर त्रिकूट-शिखर पर बसी हुई लङ्का जानेके लिये अङ्गद कुमुद नल नील प्रभृति समस्त वानरसैन्यको आदेश दिया ।

वारिदादपि च रामनामतः पूरिता पुनरपाङ्गधारया ।
तत्क्षणं प्रति चचाल दक्षिणं वाहिनीशमखिलापि वाहिनी ॥ ५ ॥

वारिदादपीति । रामनामतः रामनामकात् वारिदात् मेघात् अपाङ्गधारया कटाक्ष-निक्षेपरूपप्रवाहेण पुनः भूयः पूरिता संभृता अखिला समस्ता वाहिनी वानरसेना

---

१. 'द्विगुणीकृत' इति पाठान्तरम् । २. 'साहायकमनुपालयन्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'धैर्यावगाढमतिः' इति पाठान्तरम् । ४. 'शिखराम्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'वलीमुखानीकम्' इति पाठान्तरम् । ६. 'समनीनयत्' इति पाठान्तरम् ।

नदी तत्क्षणं सद्यः दक्षिणं वाहिनीशं प्रति दक्षिणमम्बुधिं लक्ष्मीकृत्य चचाल चलिता। यथा मेघान्निर्गतया जलधारया भृता नदी समुद्राभिमुखं धावति, तथा रामरूपात् मेघात् कटाक्षरूपधारया पूरिता वानरवाहिनीरूपा वाहिनी (नदी) दक्षिणं सागरं प्रति प्रतस्थे। रामेण कटाक्षक्षेपेण चलितुमादिष्टा वानरसेना दक्षिण-सागरं प्रति प्रस्थितेति भावः। 'सेनानद्योश्च वाहिनी' इति वैजयन्ती। श्लेषसङ्कीर्णं समस्तवस्तुवर्त्तिरूपकम् ॥ ५ ॥

रामनामक मेघसे कटाक्षनिक्षेपधाराद्वारा पूर्ण की गई वानरवाहिनीरूप वाहिनी नदी तत्काल दक्षिणसागरकी ओर चल पड़ी। जैसे नदी मेघसे प्राप्त जलधारा द्वारा पूर्ण किये जानेपर सागरकी ओर चलती है उसी तरह रामके कटाक्षसे आदेश प्राप्त कर वानर-सेना दक्षिणार्णवकी ओर चली ॥ ५ ॥

[1]तत्क्षणे [2]समचलितऋक्ष[3]समुदये कुमुदामोदकारिणी शरभाधिकप्र-सादशीले नीलेन्दीवरानन्दिनि दशाननदिशाक्रमणव्यग्रतेजसि समारूढ-तारानन्दनलक्ष्मणानुगते [4]सरयमुदयसानुमन्तमिव हनूमन्तमधिरोहति निशाचरतिमिर[5]वारणनिस्तन्द्रे रामचन्द्रे समन्ततः कन्दलितबहुलहरि-जालकोलाहलभरितहरिदन्तरो निरन्तरास्कन्दितनिकटकान्तारावलिर्वली-मुखबलमहाम्बुधिः ससंभ्रममुदजम्भत।

तत्क्षण इति। तत्क्षणे तस्मिन्वानरसैन्यप्रस्थानकाले समचलितः युगपत्प्रस्थितः ऋक्षसमुदयः जाम्बवदादिभल्लूकगणो यस्य तादृशे इति रामपक्षे, युगपदुदितो ऋक्षसमुदयो नक्षत्रमण्डलं यत्र तादृशे इति चन्द्रपक्षे, कुमुदस्य सैन्यान्यतमस्य तन्नामख्यातस्य आमोदकारिणि प्रसन्नताऽऽधायके इति रामपक्षे, कुमुदस्य रात्रि-विकासिपुष्पभेदस्य आमोदकरे सुगन्धप्रदे, विकासोऽत्र सुगन्धमूलम् इति चन्द्र-पक्षे, नील इन्दीवरश्चेति वानरसेनापतिद्वयनामनी, तयोरानन्दिनि मोदजनके, पक्षान्तरे नीलेन्दीवराणां नीलोत्पलानाम् अनन्दिनि अप्रीतिकरे, शरभस्य तदाख्य-सैन्यभेदस्य हर्षकरे शरनामकपुष्पस्य भायाः कान्तेरधिकप्रसादकरे स्वच्छतासम्पा-दके तद्विकासके च, दशाननदिशाया दक्षिणदिशः आक्रमणाय अवस्कन्दनाय व्यग्रं तेजो यस्य तथाभूते, अपरत्र दश आननानि मुखानि यासां तासां दिशाम् आक्रमणे स्वप्रभया व्याप्तौ व्यग्रं तेजः प्रकाशो यस्य तादृशे, दशानामपि दिशां व्याप्त्यै यत-मानप्रकाशे इत्यर्थः, समारूढः अधिष्ठितस्तारानन्दनोऽङ्गदो येन तादृशेन लक्ष्मणेन

---

१. 'ततः क्षणेन' इति पाठान्तरम्।   २. 'समक्षचलित' इति पाठान्तरम्।
३. 'समुदाये' इति पाठान्तरम्।   ४. 'सरभसम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'हरण' इति पाठान्तरम्।

अनुगते अनुसृते, अन्यत्र समारूढं कृतं ताराणाम् स्वप्रियाणामश्विन्यादीनाम् आनन्दनं प्रीतिजननं येन तादृशश्चासौ लक्ष्मणा लाञ्छनेनानुगतः व्याप्तस्तादृशे, सरयं वेगेन उदयसानुमन्तम् उदयाचलम् इव हनूमन्तम् अधिरोहति अधितिष्ठति निशाचरा एव तिमिराणि तमांसि तेषां वारणे प्रसरनिरोधे निस्तन्द्रे जागरूके रामरूपे चन्द्रे (यथा चन्द्रे उदयति समुद्र उज्जृम्भते तथा रामे हनूमन्तमधितिष्ठति वानरसैन्यसागर उदजृम्भत, इममेवार्थं पूरयितुमितः पूर्वेषां विशेषणानां रामे चन्द्रमसि चान्वयः कर्त्तव्यः) समन्ततः सर्वतः कन्दलितस्य एकत्रितस्य बहोर्महतः हरिजालस्य वानरसमुदयस्य कोलाहलेन किलकिलाशब्देन भरितं पूरितं हरिदन्तरं दिगन्तरालं येन तादृशः, अपरत्र कन्दलितेन जायमानेन हरिजालकोलाहलेन (घुमघुमशब्देनेति बुधेन्द्रः) शब्दविशेषेण पूर्णदिगन्तरः, निरन्तरं सततम् आस्कन्दिना पयोराशिना आक्रान्ता निकटकान्तारवलिः समीपस्था वनावलिर्येन तथोक्तः, अपरत्र प्रतिक्षणभज्यमानसमीपस्थवनमालः, वलीमुखबलम् वानरसैन्यम् एव महाम्बुधिः महासागरः ससंभ्रमम् वेगेन समुदजृम्भत प्रचलितः। अत्र रामः चन्द्रः, सैन्यं सागरः, रामस्य हनूमदारोहणं चन्द्रस्योदयाचलावाप्तिः, चन्द्रोदये सागरवृद्धिः, रामस्य प्रयाणे च वानरसैन्योज्जृम्भणमिति विविच्य बोध्यम्। 'लक्ष्मणानुगत' 'शरभाधिक' शब्दयोः शब्दश्लेषोऽन्यत्रार्थश्लेषः।

उस समय्में एक साथ चल रहे हैं सकल ऋक्ष (भालू) जिसके ऐसे, (एक साथ उग रहे हैं सकल ऋक्ष नक्षत्र जिसके) कुमुदको आनन्दित करने वाले, (कुमुद पुष्पके विकासक) शरभ नामक वानरसेनापतिका प्रसन्न करने वाले, (शरनामक पुष्पभेदको अपनी कान्तिसे अधिक प्रसन्नता देने वाले) नील इन्दीवर आदि वानरोंको खुश करने वाले, (नीलकमलको अनन्दिनि मुकुलित करने वाले) अङ्गदके कन्धों पर बैठे हुए लक्ष्मणसे अनुगत, (तारागणको आनन्दित करने वाले तथा कलङ्क पूर्ण) निशाचररूप अन्धकारके वेगको रोकने वाले रामरूप चन्द्रमा जब वेगसे हनूमान् समान उदयाचल पर जब आरूढ़ होने लगे (जब रामजी हनूमान्के कन्धों पर बैठकर चले) तब चारो ओर एकत्रित वानरसैन्यके कोलाहलसे पूर्ण हो गया है दिगन्तर जिससे (राशीभूत नाना प्रकारके शब्दोंसे दिगवकाशको पूर्ण करने वाला) ऐसा एवं सदा अपनी तरङ्ग मालासे समीपस्थ वनमालाको आप्लावित करने वाला (समीपस्थ वनपरम्पराको उखाड़ फेंकने वाला) वानरसैन्यसागर वेगसे चल पड़ा। जिस प्रकार चन्द्रोदय होनेसे समुद्र उछल पड़ता है उसी तरह रामके विजययात्रार्थं प्रस्तुत होते ही सारी वानरसेना उछल पड़ी।

उत्त्रासकासरमुदञ्चितपञ्चवक्त्रं
वित्रस्तहस्ति विशरारुचमूरुयूथम्।

आलोललोचनतरङ्गकुरङ्गशाव-
मासीदसीम विपिनं कपिनर्मघोषैः ॥ ६ ॥

उत्त्रासेति। असीम निर्मर्यादम् तद्विपिनम् अरण्यम् कपिनर्मघोषैः वानराणां जैत्रयात्राक्रीडाशब्दैः उत्त्रासाः भयविभ्रान्ताः कासराः वनमहिषा यस्मिंस्तादृशम्, उदश्विताः पञ्चवक्त्राः सिंहा यस्मिंस्तथाभूतम्, वित्रस्ता भयभीता यस्मिंस्तथोक्तम्, विशरारु भयद्रुतम् चमूरूणां मृगविशेषाणां यूथं समुदयो यस्मिंस्तथाविधम्, आलोलाः भयत्रस्ताः लोचनतरङ्गा येषां तथाभूताः कुरङ्गशावाः बालहरिणा यत्र तथाभूतम् आसीत् अजायत, सर्वाणि भूतानि तद्वनस्थानि वानराणां किलकिला-शब्दैर्विजययात्रोल्लाससूचकैस्तत्रसुरित्याशयः। 'क्रीडा लीला च नर्म च' 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' 'विशरारुर्भयद्रुतः' इति सर्वत्राभिधानरत्नमाला। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

बहुत दूर तक फैला हुआ वह वन वानरोंके हर्षद्योतक शब्दसे ऐसा भयङ्कर हो गया कि वनमहिष डर गये, शेर भयभ्रान्त हो उठे, हाथियोंके हृदयमें डर बैठ गया, मृगयूथ भयसे भाग खड़े हुए और बालहरिणोंके नयन भयकातर हो उठे ॥ ६ ॥

सैन्यैस्ततो रघुपतिः सरितां निवेशं
वेशन्तयन्विरलयन्विपिनान्तराणि।
आरुह्य [1]शैलमपि सह्यमसह्यवातं
मन्दानिलैकनिलयं मलयं जगाम ॥ ७ ॥

सैन्यैस्तत इति। ततः नर्मघोषानन्तरम् सैन्यैः वानरसेनाभिः सरितां निवेशम् नदीनां स्थानं, वेशन्तयन् अल्पसरोभावं नयन् (सेनासंमर्दैन नदीनां सन्नि-वेशं विपर्यासयन्नित्यर्थः) विपिनान्तराणि काननमध्यभागान् विरलयन्, विर-लानि कुर्वन् असह्यवातं शैत्याधिक्यवशात् स्पर्शाक्षमवायुयुतं सह्यं नाम शैलं कुल-पर्वतेष्वन्यतमम् आरुह्य सेनाभिराक्रम्य रघुपती रामः मन्दानिलैकनिलयं मन्दवायु-प्रभवस्थानं मलयं नाम पर्वतं जगाम प्राप्तवान्। कृतविजयपात्रं राममनुगच्छन्त्या वानरवाहिन्या नद्यो निवेशभेदं गमिता वनान्यभज्यन्त, सह्यगिरिरुल्लङ्घितः परतश्च मन्दानिलभवनतया प्रसिद्धो मलयाचलोऽलभ्यतेति भावः। पूर्ववदेव वृत्तम् ॥ ७ ॥

इसके बाद रामजी वानरसेनाके साथ नदियोंके सन्निवेशोंको अल्पजलाशयके रूपमें परिणत करते और वनमध्यभागको रिक्त बनाते हुए असह्य वायुसे युक्त सह्य पर्वतको पार करके मन्दानिलके लिये प्रसिद्ध मलयाचल पर पहुँचे ॥ ७ ॥

---

१. 'सह्यमपि शैलम्' इति पाठान्तरम्।

गत्वा [1]रामस्तमद्रिं सौमित्रिमिदमवादीत् ।

गत्वेति । रामस्तमद्रिं मलयनामकं पर्वतं गत्वा सौमित्रिं लक्ष्मणमिदं वक्ष्यमाणम् वचनम् अवादीत्। मलयाचले रामो लक्ष्मणं प्रतीत्थमुक्तवानिति यावत्।

मलयाचलपर पहुँचकर रामजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा ।

अमी तटसमीपनिर्झरतरङ्गरिङ्गत्पयो-
जडीकृतपटीरभूरुहकुटीरसंसारिणः ।
मनो विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरा
दुरासदवनप्रियप्रियतमारुता मारुताः ॥ ८ ॥

अमी इति । तटसमीपेषु पर्वतोपत्यकाभूमिषु ये निर्झराः जलप्रपातास्तेषां तरङ्गेभ्यः वीचिभ्यः रिङ्गद्भिः प्रोच्छलद्भिः पयोभिः जलबिन्दुभिः जडीकृतानां शैत्यं गमितानां पटीरभूरुहाणां चन्दनतरूणां (तद्रूपाणां) कुटीराणां संसारिणः तत्र कृतवसतयः पर्वतस्योपत्यकायां निर्झराः पतन्ति तत्पयोभिः समीपस्थाश्चन्दनतरवः सिच्यमानाः सन्तोऽधिकशीतला भवन्ति, तानेव वृक्षानाश्रित्य तिष्ठन्तो वायवोऽपि शीतला भवन्तीति प्रथमपादद्वयेन प्रथमान्तेन वायवो विशेषिता बोध्याः । मलयमेखलामेदुराः मलयाचलनितम्बदेशेषु सान्द्राः, दुरासदानि उद्दीपकत्वाद्दुःसहानि वनप्रियः कोकिलस्तस्य प्रियतमाः स्त्रीकोकिलास्तासां रुतानि कूजितानि येषु ते तथोक्ताः, असह्यकोकिलाङ्गनामधुररवोपबृंहिताः अमी सद्योऽनुभूयमानाः मारुताः वायवः मे मम मनः हृदयं विधुरयन्ति विकलयन्ति । शीतलानिमान्वातानहमत्यर्थं व्यथकाननुभवामीति तात्पर्यम् । 'प्रवाहो निर्झरो झरः' 'सुषीमः शिशिरो जडः' 'मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः' 'वनप्रियः परभृतः' इति सर्वत्रामरः । यमकानुप्रासयोः संसृष्टिः । पृथ्वीवृत्तम् ॥ ८ ॥

पर्वतकी उपत्यकामें गिरने वाले झरनोंकी तरङ्गोंस उड़ने वाले जलकणोंसे शीतल बनाये गये चन्दनद्रुमरूप कुटोंमें संसार बसाने वाली तथा मलयाचलकी तलहटीमें घनताको प्राप्त एवं असह्य कोकिल कूजितसे उपबृंहित यह वायु मेरे मनको विकल बना रही है ॥ ८ ॥

इत्यालपन्करुणमेष निरुद्धवेलं
शैलं महेन्द्र[2]मधिगत्य महीमहेन्द्रः ।
आवर्तमुद्रितमिवान्वयभूपतीना-
मक्षय्यकीर्तिनिधिमम्बुनिधिं ददर्श ॥ ९ ॥

---

१. 'च तमद्रिं' इति पाठान्तरम् । २. 'अधिगम्य' इति पाठान्तरम् ।

इत्यालपन्निति। इति उक्तप्रकारेण करुणम् दीनभावेन आलपन् व्याहरन् एषः महीमहेन्द्रः धरामण्डलाखण्डलः निरुद्धवेलम् आवृतसमुद्रतटम् महेन्द्रम् नाम शैलम् अधिगत्य उपेत्य आवर्त्तैः अम्भसां भ्रमैः मुद्रितम् चिह्नितम् इव अन्वयभूपतीनां स्वकुलजसगरपुत्रभगीरथादीनां समुद्रखननपूरणादिकार्यलब्धयशसाम् अक्षय्यायाः कदाप्यविनाश्यायाः कीर्त्तेर्निधिं यशसः स्थानभूतम् अम्बुनिधिं समुद्रं ददर्श। महेन्द्रमासाद्य रामः स्वपूर्वजानां सगरादीनामनपायि यशोराशिरूपं सागरं साक्षात्कृतवानिति भावः॥ ९॥

इस प्रकारसे दीनभावसे विलाप करते हुए धरामण्डलके राजा भगवान् रामने समुद्रके तटको घेर कर खड़े हुए महेन्द्राचलको प्राप्त कर जलभ्रमसे मुद्रित अपने पूर्वज सगरपुत्र भगीरथादिकी अक्षय्य कीर्त्तिके समान सागरको देखा॥ ९॥

दृष्ट्वा च तमद्भुताक्रुष्टमना रामस्तदिदमाचष्ट।

दृष्ट्वेति। तम् अम्बुनिधिं दृष्ट्वा आलोक्य च अद्भुतेन आश्चर्येण आविष्टं व्याप्तं मनो यस्य तथोक्तः रामः तदिदं वचनमाचष्ट आख्यातवान्।

समुद्रको देखकर आश्चर्ययुक्त हृदय होकर रामने इस प्रकारसे कहा।

द्रष्टुं नालमगाधतां फणिपतिः सीमान्तरेखा दिशो
द्वीपाः सैकतमण्डलानि तदयं दूरे गिरां वारिधिः।
येषामेष सुखादखानि नखरैर्येनाथवा पूरित-
स्तेषां नः कुलभूभुजामविहतस्थेम्ने महिम्ने नमः॥ १०॥

दष्टुमिति। फणिपतिः पातालकुहरवासी शेषः (यस्य) अगाधताम् अतलस्पर्शित्वम् द्रष्टुं साक्षात्कर्त्तुं न अलम् समर्थः, (पातालवासिनाशेषेणाप्यविदितगाम्भीर्यतया योऽतितरां गभीर इत्यर्थः फलति) दिशः प्राच्यादयः समस्ता अपि दिशः सीमान्तरेखाः मर्यादासूचकचिह्नानि इयत्तास्वरूपपरिचयप्रदानि, (द्रष्टुं न अलम्) द्वीपाः सिंहलादयो द्वीपविशेषाः यस्य सैकतमण्डलानि वालुकारूपाः (यस्य सागरस्य वालुका एव तत्तद्द्वीपरूपेण प्रथन्ते) तत् तस्मात् अयं वारिधिः सागरः गिरां दूरे वाचामविषयः। शेषाज्ञेयगाम्भीर्यतया दिगविज्ञातसीमतया वालुकास्ववस्थितद्वीपतया चातिविचित्रोऽयं वारिधिः कथमपि वर्णयितुं न शक्यत इति भावः। एषः पूर्वोक्तरूपेणातिगभीरातिविस्तृतातिविशालतयाऽवर्णनीयविभवः सागरः येषां नः पूर्वजनां नखरैः नखाग्रैः सुखात् अनायासेनाखानि खातः, अथवा येन पूरितः पयसा संभृतः, (सगरपुत्रैर्बहुभिर्मिलित्वा खानिततया भागीरथेन चानीय गङ्गां पयसा पूरिततयेत्थमुक्तम्) तेषां नः अस्माकं सूर्यवंश्यानां राज्ञाम् कुलभूभुजाम् वंशजातानां राज्ञाम् अविहतस्थेम्ने अक्षतस्थायिभावाय (कल्पान्त-

स्थायिने) महिम्ने माहात्म्याय नमः नमस्कारः अस्त्विति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

जिस समुद्रकी गभीरताको पातालतलवासी समुद्र भी नहीं जान सके, जिसकी सीमा-रेखाओंको दिशायें भी नहीं जानसकीं और सिंहलादि द्वीपगण जिसके बालूके कणके समान हैं, ऐसा सागर वास्तवमें वचनसे पर है। इस वर्णनातीत सागरको जिनके नखोंने अनायास खोद दिया और जिन्होंने गङ्गाप्रवाह लाकर जिसे पूर्ण कर दिया, उन हमारे पूर्वज सगरपुत्रगण तथा भगीरथकी कल्पान्तस्थायिनी महिमाको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

अथ हरीन्द्रोऽपि महेन्द्रोपान्तकान्तारशोभिनि लोभनीयमलय[1]जातानिले [2]वेलोपवनदेशे रघुपतेर्निदेशेन निवेशयामास बलमखिलम्।

अथेति। अथ अनन्तरम् हरीन्द्रः वानरराजः सुग्रीव अपि महेन्द्रोपान्तकान्तारशोभिनि महेन्द्राचलसमीपस्थवनमनोरमे लोभनीयमलयजातानिले रमणीयमलयजवातयुक्ते वेलोपवनदेशे समुद्रतटस्थोद्यानप्रदेशे रघुपते रामस्य निदेशेन आज्ञया अखिलं बलम् समग्रं वानरसैन्यम् निवेशयामास प्रतिष्ठापयामास।

इसके बाद सुग्रीवने भी महेन्द्र पर्वत समीपस्थ वनसे शोभित तथा रमणीय मलयाचलसे शोभित समुद्र तटस्थ उद्यानमें रामकी आज्ञासे समस्त वानरसेनाका पड़ाव डलवा दिया।

सरसपटीरकुञ्जवनसंजवनाभिपत-
न्मृगमदगन्धगन्धवहमेदुरितेऽ[3]म्बुनिधेः।
तटनिकटे [4]लुठत्पनसतालरसालफलै-
रुदितमदा विचेरुरुदरंभरयो हरयः ॥ ११ ॥

सरसेति। सरसानां सामुद्रतरङ्गशीतलानां पटीरकुञ्जानां चन्दननिकुञ्जानां वने समुदये संजवनेन वेगेन अभिपतता वहता मृगमदगन्धेन कस्तूरीसुगन्धशालिना गन्धवहेन वायुना मेदुरिते पूरिते (सामुद्रतरङ्गशीतलचन्दनकुञ्जनिवहप्रवहन्मृगमदगन्धयुक्तसमीरे सुखसञ्चार इत्यर्थः) एतादृशेऽम्बुनिधेः सागरस्य तटनिकटे कूलप्रान्ते लुठद्भिः पक्वतया शिथिलवृन्तत्वमासाद्य भुवि पतद्भिः पनसतालरसालफलैः उदरंभरयः स्वोदरपूरणपरायणाः उदितमदाः सञ्जातहर्षा हरयो वानराः विचेरुः इतस्ततस्तत्र सञ्चरन्ति स्मेत्यर्थः। 'सञ्जवन' शब्दे 'जुचङ्क्रम्य दंद्रम्य' इत्यादिना संपूर्वकाद् 'जु'धातोर्युच्। 'उदरम्भरयः' इत्यस्य 'फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च' इति निपातनात् साधुत्वम् 'मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी' इत्यमरः ॥ ११ ॥

---

१. 'बालानिले' इति पाठान्तरम्। २. 'वेलावनप्रदेशे दाशरथेर्निदेशेन' इति पा०। ३. 'जलधेः' इति पाठान्तरम्। ४. 'दरस्फुरित' इति पाठान्तरम्।

सरस चन्दनके कुञ्जमें वेगसे चलने वाली तथा कस्तूरीकी सुगन्धिसे युक्त हवासे पूर्ण समुद्रतटमें गिरते हुए कटहल, ताल, आम आदि फलोंसे अपने पेट भरने वाले मस्त वानर इधर उधर घूमने लगे ॥ ११ ॥

अनन्तर[1]मपरमहाम्भोधिमिव चलितमम्भोधिरोधस्य[2]म्भोधिविलङ्घन-विशृङ्खललाघवं राघवानीकमनीकोन्मुखं चारमुखादवधार्य धार्यमाणहृदयातङ्कः पङ्कलीनचरण इवैरावणो रावणो विधेय[3]मपरमजानञ्जानकीमप्यविमोक्तुकामः काम[4]परतन्त्रो मन्त्रिभिः समं समाजमाजगाम ।

अनन्तर/मिति । अनन्तरं सेनासन्निवेशनात् परतः अम्भोधिरोधसि समुद्रतटे चलितम् अपरमहाम्भोधिम् अन्यं सागरमिव, अम्भोधिविलङ्घने सागरतरणे विशृङ्खलम् अनियन्त्रितं लाघवं चातुर्यं यस्य तथोक्तम् सागरतरणे चातुर्यशालि, अनीकोन्मुखम् युद्धोद्यतम् राघवानीकं रामसैन्यं चारमुखान् गुप्तचरकथनात् अवधार्य निश्चितं ज्ञात्वा धार्यमाणहृदयातङ्कः उत्पन्नहृदयकम्पः पङ्कलीनचरणः कर्दमनिमग्नपादः ऐरावणः सुरगज इव रावणः अपरं किमप्यन्यत् विधेयम् कर्त्तव्यम् (युद्धातिरिक्तं पन्थानमनालोकयन्) जानकीम् अपि अविमोक्तुकामः त्यक्तुमनीहमानः कामपरतन्त्रः कामसक्तः मन्त्रिभिः स्वसचिवैः समं सह समाजम् सभाम् आजगाम अध्युवास । समुद्रतीरे समायातं युद्धायोद्यतं सागरतरणक्षमं च रामसैन्यं विश्वस्तचरमुखादाकर्ण्य हृदये भीतः पङ्कमग्नः सुरगज इव कर्त्तव्यमनवधारयन् सीतां समर्प्यापदोऽस्या उत्तर्तुमपारयन् रावणः स्वैः सचिवैः सह सभामध्युवासेत्यर्थः । 'अनीकं तु रणे सैन्ये' इत्यमरः ।

इसके बाद गुप्तचरोंके मुँहसे यह खबर पाकर कि समुद्रके तटपर उमड़ते हुए दूसरे सागरके समान, समुद्र लङ्घनमें कुशल, युद्धके लिये सन्नद्ध रामसैन्य खड़ा है, रावण हृदयमें आतङ्कित हो गया, उसकी दशा पङ्कनिमग्न ऐरावत हाथी की सी हो गई, उसको दूसरा कोई उपाय नहीं दीखने लगा, वह कामपराधीन होनेके कारण सीताको छोड़ भी नहीं सकता था, ऐसी हालत देखकर उसने अपने मन्त्रियोंके साथ सभाभवनमें प्रवेश किया ।

रहस्तदानीं रजनीचरेन्द्रः प्रहस्त[5]मुख्यानिदमाबभाषे ।
इदं तु मे वाञ्छितमीक्षितं वो वदन्तु यद्वैरिजनोचितं नः ॥ १२ ॥

---

१. 'अपरमिव चलितं महाम्भोधिम्' इति पाठान्तरम् ।
२. 'कृतसंवेशं रोदसीलङ्घन' इति पाठान्तरम् ।
३. 'परम्' इति पाठान्तरम् । ४. 'परतन्त्रितः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'पूर्वान्' इति पाठान्तरम् ।

रहस्तदानीमिति । तदानीं सभाप्रवेशे वृत्ते रजनीचरेन्द्रः राक्षसराजः रहः एकान्ते प्रहस्तमुख्यान् प्रहस्तप्रभृतीन् स्वमन्त्रिणः इदं वक्ष्यमाणप्रकारकं वचनम् आबभाषे उवाच इदं सीताऽपरित्यागरूपं मे मम वाञ्छितमिष्टं वः युष्माकम् ईप्सितम् प्रत्यक्षम्, नः अस्माकम् (सम्प्रति प्रत्यासन्ने शत्रुसैन्ये) यद्वैरिजनोचितम् शत्रुविषये यद्योग्यं करणीयं तत् भवन्तो वदन्तु कथयन्तु । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १२ ॥

उस समय राक्षसराज रावणने प्रहस्तप्रभृति अपने मन्त्रियोंसे एकान्तमें कहा कि हमारा विचार तो आप लोगोंसे अविदित है ही नहीं, आप लोग यह कहें कि अब इन सन्निहित शत्रुओंके विषयमें क्या करना चाहिये ॥ १२ ॥

अमी च पुनराशयज्ञा [1]व्यज्ञापयन् ।

अमी चेति । आशयम् रावणहृदयाभिप्रायं सीताया अपरित्यागरूपं जानन्ति ये ते आशयज्ञाः रावणाभिप्रायवेदिनः अमी प्रहस्तादयः पुनः व्यज्ञापयन् रावणाय निवेदयामासुः, आशयज्ञा इत्यनेन प्रहस्तादीनां रावणेच्छानुवर्त्तितया नीत्युपदेशपराङ्मुखत्वं प्रकटीकृतम् ।

रावणके अभिप्रायको समझनेवाले प्रहस्तादि मन्त्रियोंने निवेदन किया ।

देव ! जीवत्सु भवदाज्ञापरेष्वनुचरेषु [2]परमस्मासु कस्मादयम[3]पवादो दुरवापोरुभुजपञ्जरानीतां सीतां जातु न जहातु नाथ इत्यभिदधानेषु[4] ।

देवेति । हे देव, महाराज, परम् परन्तु अस्मासु मादृशेषु वीरेषु भवदाज्ञापरेषु भवदीयादेशपालनतत्परेषु अनुचरेषु भृत्येषु जीवत्सु प्राणान् धारयत्सु कस्मात् कुतः अयम् सीताहरणात्मा अपवादः अधिक्षेपः ? अस्मासु जीवत्सु सीतामपहृतवानसीत्येवं भवन्तमधिक्षेप्तुं कः शक्तः ? न कोपीत्यर्थः, (अतः केनापि तथाधिक्षेप्तुमशक्यतया) दुरपायोरुभुजपञ्जरानीतां परदुर्धर्षमहाभुजमण्डलेनानीय स्वगृहे स्थापिताम् सीताम् नाथः अस्माकं देवः भवान् जातु कदाचित् न जहातु न प्रत्यर्पयतु इति उक्तप्रकारेण अभिदधानेषु कथयत्सु (तेषु प्रहस्तादिषु) ।

महाराज, जब तक हमारे ऐसे बहादुर और आपकी आज्ञाके पालनमें तत्पर अनुचरगण जीवित हैं, किसकी शक्ति है आप पर सीताहरणका आक्षेप कर सके, अतः आप अपने दुष्प्रधर्ष बाहुपञ्जरमें लाई गई सीताको कभी भी न छोड़ें, प्रहस्तादिने जब इस तरह कहा तब ।

---

१. 'विज्ञापयामासुः' इति पाठान्तरम् । २. 'परं चास्मासु' इति पाठान्तरम् ।
३. 'अवापो' इति पाठान्तरम् । ४. एतदनन्तरम् 'प्रधानेषु' इति क्वचित् ।

[1]ततो रम्भोपहितं [2]हराङ्कसंभवं शापमम्भोजभवं चैतदुपालम्भान्तरायमावेदयन्तमग्रजन्मानमसमानविनयविज्ञानभूषणो विभीषणः सरोषमिदमवादीत्।

तत इति। ततः तदनन्तरम् रम्भोपहितम् रम्भानिवन्धनम् (रंभया सह बलात्कारं कर्तुं यतमानाय रावणाय रम्भायाः पत्या नलकूबरेण प्रदत्तम्) हराङ्कसम्भवम् कैलासाख्यपर्वते चाल्यमाने कुपितेन नन्दीश्वरेण दत्तम्, अम्भोजभवशापम् पुञ्जिकास्थलाख्याप्सरोनिवन्धनब्रह्मशापं च एतदुपालम्भान्तरायम् सीतायाः आलिङ्गने विघ्नम् आवदेवन्तम् आचक्षाणं (रम्भाबलात्कारकाले बलादन्यनारीग्रहणे ते मूर्धा शतधा भविष्यतीति नलकूबरस्य शापः, हराङ्कलोलने वानरैस्त्वद्वंशविलयो भविष्यतीति नन्दीश्वरस्य शापः, ब्रह्मशाप उक्तः, तदेतत् शापत्रयं मम सीताया बलात्संभोगे विघ्नमाचरतीति ब्रुवाणम्) अग्रजन्मानम् ज्येष्ठब्राह्मणम्, असमानविनयविज्ञानभूषणः अनुपमनम्रताशास्त्रीयज्ञानयुक्तः विभीषणः सरोषम् कोपेन सहावादीत् उक्तवान्। ब्रह्मणः शापो रामायणे वर्णितो यथा-'अथ संकुपितो देवो मामिदं वाक्यमब्रवीत्। अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारी गमिष्यसि। इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम्। नारोपये बलात्सीतां वैदेहीं शयनं मम'।

रम्भोपहित बलात्कारसे कुपित नलकूबरका शाप, कैलासोत्थापनके समय नन्दीश्वरका शाप तथा ब्रह्माका शाप मुझे सीताको अङ्कशायिनी बनानेसे रोक रहा है, इसतरह कहते हुए अपने बड़े भाई रावणको अनुपम नम्रता तथा शास्त्रीय ज्ञानसे अलङ्कृत विभीषणने कुपित होकर कहा।

अहह विधिनियोगादद्य नक्तंचरेन्द्र
त्वमसि परकलत्रे दुर्निवारानुरागः।
अरुणदवशिखायामामिषग्राससमोहा-
दविरलकृतजिह्वाचापलः केसरीव ॥ १३ ॥

अहहेति। अहहेति खेदव्यञ्जकमव्ययम्, हे नक्तञ्चरेन्द्र, राक्षसराज, अद्य इदानीम् त्वं विधिनियोगात् भाग्यवशात् परकलत्रे अन्यदीयस्त्रियाम् सीतायाम् दुर्निवारानुरागः अवार्यासक्तिः असि जायसे। तत्रोपमाह—अरुणेति। आमिषग्रासलोभात् मांसपिण्डलोभात् अरुणदवशिखायां रक्तवर्णवनाग्निज्वालायाम् अविरलकृतजिह्वाचापलः वारंवारं रसनां चपलीकुर्वन् केसरी सिंह इव। यथा कश्चन

---

१. 'ततः' इति नास्ति क्वचित्।

२. 'हठात्कारसंभवमम्भोजसंभवशापमन्तरायमावेदयन्तं दुर्जयं तमग्रजन्मानं समानयन्विनय' इति पाठान्तरम्।

केसरी मांसग्रासलोभात् रक्तां वनवह्निज्वालामसकृल्लिह्यात, तथा त्वं भाग्यवशात् परस्त्रियां दुर्निरोधप्रेमा सञ्जातोऽसि, यथा चासौ सिंहस्तथाकुर्वन् विपद्यते तथा त्वमप्याशु विपत्स्यसे इत्युपमाऽलङ्कारेण वस्तु ध्वन्यते। 'अहहेत्युद्भुते खेदे' 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते' इत्युभयत्र शाश्वतः। मालिनीवृत्तम् ॥ १३ ॥

खेदकी बात है, हे राक्षसराज, आजकल भाग्यके दोषसे आप पराई स्त्रीमें अनिवार्य अनुरागसे युक्त हो रहे हैं, जैसे मांसपिण्डके लोभसे दावाग्निकी लाल ज्वालापर सिंह बारबार अपनी जीभ चलाता है ॥ १३ ॥

आकर्ण्य किंनरमुखादनघे स्ववंशे
काकुत्स्थदारहरणो[1]पगतं कलङ्कम्।
हाहेति मीलितदृशः करयोर्युगं त-
दष्टौ श्रुतीरपि [2]कथं पिदधातु धातुः ॥ १४ ॥

आकर्ण्येति। अनघे शुद्धे निर्दूषणे स्ववंशे आत्मनः सन्ततिपरम्परारूपे कुले काकुत्स्थदारहरणोपगतम् सूर्यवंशावतंसश्रीरामपत्नीबलाद्धरणरूपम् कलङ्कम् अपवादम् किन्नरमुखात् किंपुरुषगणवदनात् आकर्ण्य श्रुत्वा हाहा किमर्थमिमनर्थं कुलवैतरकारि, हाहा इति खेदव्यञ्जनाय मीलितदृशः पिहितनेत्रस्य धातुः ब्राह्मणः तत् प्रसिद्धम् करयुगं हस्तयुगलम् अष्टौ श्रुतीः श्रवणानि अपि कथं विदधातु आवृणोतु। अप्रियं श्रोतुमनिच्छन् कश्चित् कर्णौ पिदधाति, विधाताऽपि कुलापवादं श्रोतुमपारयन् कर्णान् पिधातुमिच्छति, तस्य चतुर्मुखतयाऽष्टौ श्रुतयः, द्वौ च करौ, तावपि खेदव्यञ्जनायाक्षिद्वयमीलने व्यापृतौ, तदस्यां दशायां विधातेच्छन्नपि श्रुतीः पिदधातु कथमिति भावः। त्वादृशेन सन्तानेन मूलपुरुषो ब्रह्मापि सन्तापित इति धिक्तव जीवितमिति तात्पर्यम्। अत्र ब्रह्मणि तादृशव्यवहारासम्बन्धेऽपि तत्संबन्धोक्तेरतिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १४ ॥

अपने निष्कलङ्क कुलमें काकुत्स्थ रामकी स्त्रीके हरणसे उत्पन्न कलङ्कको किन्नरोंके मुखसे सुनकर हाय हाय करके विधाताने अपनी दोनों आँखें अपने दोनों हाथोंसे मूँद लीं, परन्तु विधाता कलङ्क सुननेके दुःखसे छुटकारा पानेके लिये अपनी श्रुतियोंको-जिनकी संख्या आठ थी—किस प्रकार बन्द करते, दो ही तो हाथ थे, वे भी तो आँख मूँदनेमें लगे थे ॥ १४ ॥

पश्येदानीमुदधिपरिखापालिता कुत्र लङ्का
वाचातीतः क नु वनचरादागतो दुर्विपाकः।

---

१. 'उपनतं' इति पाठान्तरम्। २. 'दधातु कथं विधातुः' इति पाठान्तरम्।

कर्तुं नक्तंचरपरिभवं कापि [1]मायेति शङ्के
जाता सीता धरणितनया जानकी मैथिलीति ॥ १५ ॥

पश्येदानीमिति। उदधिः समुद्र एव परिखा परितः खाता (खेयम्) तया पालिता रक्षिता लङ्का कुत्र क्व? वनचरात् वनवासिनो वानरात् आगत उत्पन्नः वाचातीतः वर्णयितुमशक्यः दुर्विपाकः दुरन्तः परिणामः वनभङ्गसैन्यमर्दनाक्षवधादिनगरदाहरूपः कुत्र क्व? इति पश्य इदानीम्। समुद्रवेष्टितामस्मत्पुरीं प्रविश्य वनचर एकस्तास्ता दुरवस्थाश्चक्रे तदधुना विचार्यतामित्यर्थः। ननु भवतैव तत्कारणमपि प्रकाश्यतां तत्राह—कर्त्तुमिति। शङ्के अहं संभावयामि—नक्तञ्चरपरिभवं कर्त्तुं राक्षसानां विध्वंसनाय कापि माया किमपि देवानां कपटम् कापि विचित्रा छलप्रयुक्तिः सीता धरणितनया पृथिवीसुता जानकी मैथिली इति नामभिः प्रसिद्धा जाता देवैरस्माकं नाशाय सीतानाम्ना कापि माया प्रकटिता, तदर्हति भवाँस्तां मोक्तुमित्यर्थः। यदि सीता साधारणस्त्री अभविष्यत्तदा नेदृशी विपत्तिरज्ञास्यतातो नेयं साधारणरमणी किन्तु कापि मायाऽतस्तत्संपर्काद्विरमणीयमित्याशयः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'खेयं तु परिखा' इत्यमरः। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ १५ ॥

इस समय यह तो देखिये कि समुद्ररूप परिखासे घिरी होनेके कारण सुरक्षिता यह लङ्कापुरी कहाँ? और वानरद्वारा उपस्थापित यह वर्णनातीत दुरन्त वनभङ्ग, सैन्यदलन, अक्षवध, नगरदाह आदिरूप आपत्ति कहाँ? यह अघटित घटना कैसे घटो? मैं संभावना करता हूँ कि राक्षसोंका ध्वंस करनेके लिये देवोंका कोई नवीन छलप्रयोग ही सीता, धरणितनया, जानकी, मैथिली आदि नामोंसे प्रकट हुआ है ॥ १५ ॥

किं बहुना—

न गणयसि यदि त्वं वानरं वा नरं वा
ननु परिचितवीर्यौ जिष्णुभूकार्तवीर्यौ।
न कलयसि यदि त्वं नन्दिशापं च धातु-
र्वरमपि नरवर्जं दुर्जयो दैवयोगः ॥ १६ ॥

किं बहुना, न गणयसीति। किं बहुना अधिकं किमुच्यताम्? यदि त्वं वानरं कपिं वा नरं मनुष्यं वा न बहुगणयसि नाधिकमाद्रियसे, नरवानराभ्यां किमपि तादृशमनिष्टं नोद्भावयसि, ननु जिष्णोरिन्द्राद्भूरुत्पत्तिर्यस्यासौ जिष्णुभूः शक्रपुत्रो वाली, कार्त्तवीर्यश्च सहस्रबाहुः परिचितवीर्यौ त्वया ज्ञातसारौ, (वालिना त्वं स्ववालनिलये पुच्छे बद्धः, कार्त्तवीर्येण च यावत्प्रसादं वन्दीकृतस्तदेवं वानरमनुष्ययोः शक्तिर्न त्वया नज्ञायत इति न तयोरनास्था युज्यत इति भावः) किञ्च

[1] 'मायैव' इति पाठान्तरम्।

यदि त्वं नन्दिशापम् कैलासोत्थापनसमये नन्दीश्वरेण दत्तं वानरात्तव विनाशो भविष्यतीत्येवंरूपं शापं, नरवर्जं नराद्विनाऽन्यस्मान्न ते नाशो भविष्यतीत्येवंरूपं धातुः ब्रह्मणः वरम् वरप्रदानम् अपि न कलयसि न ध्यायसि तदा दैवयोगः भाग्यलिपिः दुर्जयः न केनापि जेतुं शक्यते। नन्दिशापब्रह्मवरयोरवन्ध्यतया परिणंस्यमानत्वादेव तवेदृग्बुद्धिविपर्ययो जातस्तत्सिद्धं दैवप्राबल्यमतोऽवश्यंभावी त्वद्विनाश इत्याशयः। 'जिष्णुः शक्रे धनञ्जये' इति निघण्टुः। मालिनीवृत्तम् ॥ १६ ॥

अधिक क्या कहा जाय, यदि आप वानर और मनुष्यकी परवाह नहीं करते हैं तो आपको तो शक्रपुत्र वाली तथा कार्त्तवीर्यके पराक्रमका परिचय मिल चुका है। (एकने आपको अपनी पूँछके बालोंसे बाँध रखा था और दूसरेने बन्दी बना लिया था) और यदि आप नन्दीश्वरके शाप तथा मनुष्यातिरिक्तसे अवध्यतारूप ब्रह्माके वरदानका भी नहीं ध्यान करते हैं तो मानना पड़ेगा कि भाग्यलेख अमिट होता है ॥ १६ ॥

इत्यादि[1]नीत्या सहितं हितम[2]पिवदन्तं निजमनुजमवज्ञाय ज्ञातिरयमरातिपक्षः शिक्षणीय इति शंसन्तं नृशंसं [3]तमरुंतुदाचरणरोषभीषणो विभीषणो विहाय विहायसि समुत्पतन्स्वमनूत्पतद्भिश्चतुर्भिरमात्यैः सममतीत्य वारिधिं दूरत एव सवितर्कमुद्ग्रीवान्सुग्रीवादीनन्तरिक्षगत एवमा[4]चचक्षे।

इत्यादीति। इत्यादिनीत्या एवंप्रकारकेण सहितं युक्तम् हितम् पथ्यम् अपि वदन्तम् कथयन्तम् निजमनुजम् स्वकनिष्ठभ्रातरम् विभीषणम् अवज्ञाय तिरस्कृत्य (दुष्टोऽयमशुभमाख्यातीत्यादिकटुभाषणैरपमत्य) अयम् विभीषणः ज्ञातिः दायादः अरातिपक्षः शत्रुपक्षपाती चेति हेतोः शिक्षणीयः स्वकर्त्तव्यानुरूपेण दण्डनीयः इति शंसन्तम् ब्रुवाणम् नृशंसम् क्रूरं तम् रावणम्, अरुन्तुदाचरणेन रावणसंबन्धिना मर्मपीडाकरेण व्यवहारेण यो रोषो विभीषणस्य रावणोपरि कोपस्तेन भीषणः भयङ्करो विभीषणः तं रावणं विहाय परित्यज्य विहायसि आकाशे समुत्पतन् उत्पतन् स्वम् विभीषणम् अनूत्पतद्भिः अनुगच्छद्भिः चतुर्भिः अमात्यैः स्वमन्त्रिभिः समम् सह वारिधिम् सागरम् अतीत्य उल्लङ्घ्य दूरत एव विप्रकृष्टदेशादेव सवितर्कम्-'कोऽयमागच्छति? किमस्यागमनप्रयोजनम्?' इति चिन्तया उद्ग्रीवान् उन्नमितकन्धरान् उपरिदत्तदृष्टीनित्यर्थः, सुग्रीवादीन् अन्तरिक्षगतः आकाशस्थित एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण आचचक्षे उक्तवान् विभीषण इति शेषः। उक्तोऽयमर्थो रामायणे यथा—'अन्य एवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर। अस्मिन्मुहूर्त्ते न भवे-

१. 'नीतिसहितम्' इति पाठान्तरम्। २. 'अभिहितवन्तम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अरुंतुदरोषणभाषणो' इति पाठान्तरम्। ४. 'आचष्टे' इति पाठान्तरम्।

त्वां तु धिक्कुलपांसनम्। इत्येवं कुत्सितो भ्रात्रा न्यायवादी विभीषणः। उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह मन्त्रिभिः'।

इस प्रकारकी नीतिसे युक्त तथा हित बात कहते हुए अपने अनुज विभीषणका तिरस्कार कर रावणने कहा कि यह दायाद है, शत्रुओंसे मिला हुआ है, इसको सबक सिखाना चाहिये। इस तरह कहने वाले नृशंस रावणको–उसके मर्मपीड़क आचारणोंसे रुष्ट विभीषणने छोड़ दिया और साथ ही आकाशमें उड़ते हुए अपने चार मन्त्रियोंके साथ समुद्र लांघकर–दूरसे ही यह कौन तथा क्यों आरहा है इसी उधेड़बुनमें ऊपरकी ओर देखते हुए सुग्रीवादिकोंसे विभीषणने आकाशसे ही इस प्रकार कहा।

पौलस्त्यमग्रजनुषं परुषं [1]वदन्तं
संत्यज्य बान्धवजनं च विभीषणोऽहम्।
रामं विराममिह विद्विषतामवाप-
मापन्नदैन्यहरणं शरणं ममेति ॥ १७ ॥

पौलस्त्यमिति। अग्रजनुषम् ज्येष्ठं भ्रातरम् पौलस्त्यं रावणम् परुषं वदन्तम् कठोरवादिनम्, बान्धवजनम् अन्याँश्च बन्धून् सन्त्यज्य विहाय अहम् विभीषणः इह अधुना द्विषतां शत्रूणाम् विरामम् अन्तरूपम् (संहारकम्) रामम् अवापम् प्राप्तोऽस्मि, मम शरणम् मया शरणीक्रियमाणो रामः आपन्नदैन्यहरणम् शरणागतदुःखापहर्त्तेति मत्वाऽहं रामं शरणमायातोऽस्मीत्यर्थः। यद्यपि रावणो मम ज्येष्ठभ्राता सत्कुलजश्च तथाप्यसावतिकठोरवादितया मयोपेक्षितो बन्धवश्चान्ये मम तदनुगततया तेषां मया त्यक्ताः सम्प्रत्यहं शत्रुसंहारकं रामं शरणमायातोऽस्मि यो निजशरणागतदुःखापहतया प्रसिद्ध इति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १७ ॥

मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता पौलस्त्य वंशोत्पन्न रावणको कठोरभाषी होनेके कारण सदाके लिये त्यागकर शत्रुओंके संहारक तथा शरणागतोंके दुःखोंके हरने वाले रामकी शरणमें आ रहा हूँ ॥ १७ ॥

अनन्तरमतिकरुणं समीरयन्तं समीरभुवा च [2]सप्रत्यभिज्ञं विज्ञापितं निशाचरपतेरनुजं [3]निशाम्य तदागमनाय किं कारणमिति शङ्कापरवशे निवेदयति हरीशे दाशरथि[4]रतिदयमानमानसः स्मयमानो मधुरमिद[5]मवादीत्।

---

१. 'चरन्तम्' इति पाठान्तरम्। २. 'सप्रत्यभिज्ञापितम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'निशाम्य तदा तदागमनाय' इति पा०। ४. 'अतिदयमानस्मयमानो' इति पा०।
५. 'अभाषत' इति पाठान्तरम्।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् एतत्पश्चात् अतिकरुणं समीरयन्तम् अतिदीनभावेनात्मानं निवेदयन्तम्, समीरभुवा वायुपुत्रेण सप्रत्यभिज्ञं सस्मरणं विज्ञापितम् परिचयपूर्वकं कथितम् (हनूमता लङ्काप्रवेशसमये मयाऽयं दृष्टोऽयमस्मत्पक्षपाती विभीषण एवेत्युक्तम्) निशाचरपतेः राक्षसराजस्य अनुजं कनीयांसं भ्रातरं विभीषणम् निशाम्य दृष्ट्वा तदागमनाय विभीषणस्यात्रागतौ किं कारणं को हेतुः ? किमर्थंयमत्रागतः ? इति शङ्कापरवशे सन्देहयुक्ते हरीशे निवेदयति ब्रुवाणे सति अतिदयमानमनाः अतितरां कृपालुहृदयः दाशरथिः रामः स्मयमानः ईषद्धसन् सर्वश्रवणानन्दनम् इदं वक्ष्यमाणलक्षणं वाक्यम् अवादीत् अब्रवीत्। अतिदीनतया स्वं परिचयं ददानो हनूमता परिचितश्चापि सुग्रीवः किमर्थमयमायातीति सन्दिह्योच्यमानो दयालू राघवः सस्मितं मधुरमेवं प्रोचे इति तात्पर्यम्।

इसके बाद अतिदीनभावसे आत्मनिवेदन करनेवाले एवं वायुपुत्र हनूमान् द्वारा पहचाने गये रावणके अनुज विभीषणको देखकर इसके आनेका क्या कारण है ? इस तरह शङ्कासे सुग्रीवने रामसे पूछा, तब दयालुहृदय रामने मुसकराकर इस प्रकार कहा।

अभयागतो [1]मदपयाति चेन्मुधा
रघवो भवन्ति लघवो न किं सखे।
अनुजोऽयमस्तु तनुजोऽथवा रिपोः
करुणापदं हि शरणागतो जनः॥ १८॥

अभयागत इति। हे सखे सुग्रीव, अभयागतः शरणमासाद्याभयमधिगन्तुमायातः चेत् यदि मुधा मोघाभिलाषः सन् मत् मत्सकाशात् अपयाति परावर्त्तेत तदा किं रघवः रघुवंश्याः लघवः लाघवयुक्ता न भवन्ति किम् ? अवश्यं भवन्तीति प्रश्नलभ्यम्। अभयलाभार्थं मदन्तिकमागतश्चेदलब्धमनोरथपूर्त्तिः परावर्त्तेत तदा रघुवंशस्य लाघवमवश्यमुदितं स्यात्तच्च न मया सोढव्यं ममापि रघुवंशप्ररोहरूपत्वात्सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिमिति स्मरणादित्यर्थः। अयम् आगच्छन् जनः रिपोः रावणस्य अनुजः कनिष्ठभ्राता अथवा तनुजः पुत्रः अस्तु भवतु शरणागतो शरणमनुप्रपन्नो हि जनः करुणापदं दयापात्रं भवति। शरणागते दयैव कार्या, तस्य शत्रुभ्रातृभावस्तत्पुत्रभावो वा न तस्य दयापात्रत्वमपहन्तुमीष्ट इत्यर्थः। अतः किमर्थमयमायातीति चिन्तामपास्यावश्यमसौ सत्कृत्यानेतव्य इत्यभिप्रायः। मञ्जुभाषिणीवृत्तम्,—'सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी' इति च तल्लक्षणम्॥ १८॥

---

१. 'अयमपयाति' इति पाठान्तरम्।

शरणमें आया हुआ जन यदि विफलमनोरथ होकर लौट जाये तो क्या रघुवंशियोंको लाघव नहीं प्राप्त होगा ? उनकी अकीर्त्ति नहीं होगी ? इसलिये शरणागत चाहे शत्रुका भाई हो अथवा शत्रुका पुत्र हो, वह दयाका ही पात्र है ॥ १८ ॥

तदनु हृदयविदा हनूमता सरयमानीतो विनीतोऽयमाशरपतिरवन्दत दाशरथिम् ।

तदन्विति । तदनु ततः पश्चात् हृदयविदा रामहृदयाभिप्रायवेदिना हनूमता सरयम् वेगेन शीघ्रम् आनीतः प्रवेशितः अयम् आशरपतिः, राक्षसेन्द्रो विभीषणः विनीतो नम्रः सन् दाशरथिम् रामम् अवन्दत प्रणतवान् । 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः' इत्यमरः ।

रामके हृदयके अभिप्रायको जाननेवाले हनूमान्‌जी द्वारा रामके समीप लाये गये राक्षसेन्द्र विभीषणने रामको नमस्कार किया ।

रामस्तमाह विनतं रजनीचरेन्द्रं
दत्तं [1]मयाद्य भवते दशकण्ठराज्यम् ।
अस्मिन्नुदाहरणमग्रजराज्यभोक्ता
सानुप्लवः प्लवगमण्डलसार्वभौमः ॥ १९ ॥

रामस्तमिति । रामः विनतं पदप्रणतं तं रजनीचरेन्द्रं विभीषणं नाम राक्षसराजमाह कथयति, भवते विभीषणाय मया दशकण्ठराज्यम् रावणाधिकृतराजपदम् दत्तम् समर्पितम् । ननु राज्यासनाधिरूढे रावणेऽनपायं वर्त्तमाने किमिदमुच्यते दत्तं भवते राज्यमिति चेदत्राह अस्मिन् इति । अस्मिन् अत्र मत्कर्तृकभवत्सम्प्रदानकराज्यदानकर्मणि सानुप्लवः सामात्यभृत्यवर्गः अग्रजराज्यभोक्ता स्वज्येष्ठभ्रातृवालिसाम्राज्यप्राप्तिकृतार्थः प्लवगमण्डलसार्वभौमः वानरगणचक्रवर्त्ती सुग्रीव एव उदाहरणम् दृष्टान्तः । यथाऽहं प्रपन्नाय सुग्रीवाय प्रागेव तद्भ्रातृराज्यं व्यतरं परतश्च वालिनमवधिषं तथा त्वामपि राजपदेऽवस्थापयितुं प्रतिजाने तदवश्यं रावणो मया हनिष्यत इत्याशयो रामभाषितस्य ॥ १९ ॥

चरणप्रणत विभीषणको रामचन्द्रने कहा कि आज मैंने तुमको रावणका राज्य सौंप दिया, बड़े भाईके राज्यका उपभोग करने वाले वानरराज सुग्रीव ही इस विषयमें उदाहरण हैं ॥ १९ ॥

---

१. 'तदद्य' इति पाठान्तरम् ।

[1]तथा हि—

श्रेयः पदात्पद[2]मुपैति विधेः प्रसादा-
त्प्रायस्तदद्य फलितं हि विभीषणे [3]तु ।
रेखातपत्रसहितं पदमस्य गृह्ण-
न्नेकातपत्रसहितं पदमेष भेजे ॥ २० ॥

तथा हि, श्रेय इति । तथा हीति पदमप्रासङ्गिकमिव प्रतिभाति, तथापि बुधेन्द्रानुसारिणा मयाऽऽदृतम् । विधेः भाग्यस्य प्रसादात् अनुग्रहात् पदात् पदम् अनुपदम् शीघ्रम् एव श्रेयः राज्यादिलाभादिरूपं कल्याणम् उपैति जनः प्राप्नोति, तदद्य विभीषणे फलितं चरितार्थं जातम् भाग्योदये जातेऽचिरेण कल्याणं भवतीति कथनमद्य विभीषणे यथार्थतां गतमित्यर्थः । तदेव समर्थयति—अस्य रामस्य रेखातपत्रसहितं महापुरुषतया छत्ररेखोपेतं पदं गृह्णन् एषः विभीषणः एकातपत्रसहितम् एकच्छत्रयुतम् पदम् निःसपत्नराज्यरूपम् भेजे प्राप्तवान् । यदयं विभीषणो रामपादौ वन्दमानोऽसपत्नं राज्यमलब्ध, तेन प्रतीयते यद्भाग्योदयेऽनुपदमेव कल्याणमुदेतीत्यर्थः । विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ।

यदि भाग्य अनुकूल होय तो राज्यप्राप्ति आदि रूप कल्याण पग-पगपर प्राप्त होता है, यह बात आज विभीषणके विषयमें चरितार्थ हो रही है, क्योंकि अभी अभी रामके छत्र रेखा युक्त चरण पर गिरनेसे विभीषणको एकातपत्र राज्य प्राप्त हो गया है ॥ २० ॥

असौ पुनरग्रत एव भरताग्रजापाङ्गसुधातरङ्गाभिषिक्तोऽपि पुनरुक्तराज्याभिषेकः सकलविस्रम्भभाजनतया सुग्रीव इवापरो दशग्रीवबलमखिलमावेद्य सद्य एव लङ्कापुरसमास्कन्दनाय सेनासमुत्तरणहेतुं सेतुं विधातुमा[4]राधय वारांनिधिमिति सविनयमेनं विज्ञापितवान् ।

असाविति । असौ विभीषणः पुनः अग्रतः राज्याभिषेककर्मणः पूर्वत एव भरताग्रजस्य रामस्य अपाङ्गसुधातरङ्गैः कटाक्षदृष्टिरूपामृतवीचिभिः (सस्नेहदृष्टिभिः) अभिषिक्तः स्नपितः शीतलीकृतः अपि पुनरुक्तराज्याभिषेकः (अभिषिक्तस्य पुनरभिषेको द्विरुक्तिः) पुनरभिषिक्तः (राज्योपपादनद्वारा पुनः शीतलीकृतः) सकलविस्रम्भभाजनतया सर्वप्रकारकविश्वासपात्रत्वेन सुग्रीव इव सुग्रीववद्विश्वसनीयः (विभीषणः) अखिलं समस्तं दशग्रीवबलं रावणसैन्यम् (कियती रावणसेनेति रहस्यम्) आवेद्य रामाय निवेद्य सद्यः तत्काल एव लङ्कापुरसमास्कन्दनाय लङ्का-

१. 'तथा हि' इति नास्ति क्वचित् । २. 'उदेति' इति पाठान्तरम् ।
३. 'यत्' इति पाठान्तरम् । ४. 'आराधयतु' इति पाठान्तरम् ।

परि आक्रमणं कर्त्तुम् सेनासमुत्तरणहेतुम् सेनाकर्त्तृकसमुद्रलङ्घनोपयोगिनम् सेतुम् विधातुम् कर्त्तुम् वारांनिधिम् सागरम् आराधय प्रसादय, (येन स सेतुं बन्धुं जलस्तम्भं कुर्यात) इति एवं प्रकारेण एनम् रामम् सविनयं नम्रभावेन विज्ञापितवान् सूचयामास।

विभीषण पहले ही रामजीके कटाक्षरूप अमृतप्रवाहसे अभिषिक्त होकर भी पुनः राज्याभिषिक्त होकर सभी प्रकारके विश्वासोंका पात्र बनकर सुग्रीवके समान हो गया और उसने रावणके सैन्यका पूरा विवरण रामको बता दिया और रामसे निवेदन किया कि अभी लङ्कापर आक्रमण करना है, सेना समुद्रको पार कर सके इसके लिये बाँध बनानेके लिये आप समुद्रका आराधन करें (जिससे पानी पर पुल बांधा जा सके)।

अथ वारांनिधिं ध्यायन्नम्भोधिहृदयेशयः।
व्यानशे दर्भशयनं वेदीमिव हुताशनः॥ २१॥

अथेति। अथ विभीषणभाषणश्रवणानन्तरम् वारांनिधिम् सागरं ध्यायन् तदीयप्रसादोपलब्धये तं चिन्तयन् अम्भोधिहृदये सागरतटे शेते इति अम्भोधिहृदयेशयः समुद्रतटमाश्रितः श्रीरामः हुताशनः वह्निः वेदीम् परिष्कृतां भूमिम् इव दर्भशयनम्, कुशास्तरणम् व्यानशे अधिशिश्ये। यथा वेद्यामधिशेते वह्निस्तथा रामः समुद्रतटे दर्भमये शयनीये समुद्रप्रसादनाय सत्याग्रहमिव कुर्वन्नवस्थित इत्यर्थः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः। संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः'॥ २१॥

इसके बाद समुद्रतटपर जाकर समुद्रको प्रसन्न करनेके लिये उसका ध्यान करते हुए रामजी कुशके बिछावनपर ऐसे सो रहे जैसे वेदी में अग्निदेव हों॥ २१॥

तत्र च[1] कुशास्तरणमध्यमध्यासीने देवे[2] रामभद्रे नियन्त्रित इव नि-[3]यमवशान्निशात्रयमपि [4]निध्यानवति प्रसादं नाससाद यादसांपतिः।

तत्रेति। तत्र तस्मिन्समये कुशास्तरणमध्यम् दर्भमयशयनीयमध्यप्रदेशम् अध्यासीने अधिष्ठाय शयाने नियमवशात् व्रतपारतन्त्र्यात् नियन्त्रिते नियमिते इव सति रामभद्रे रामे देवे तदाख्ये विश्वभर्त्तरि निशात्रयम् तिस्रो रात्रीः (अत्यन्तसंयोगे द्वितीया) निध्यानवति ध्यानावस्थिते सति यादसांपतिः समुद्रः प्रसादं नाससाद प्रार्थितार्थप्रदानानुकूलो न बभूव। 'रत्नाकरो जलनिधिर्यादःपतिरपांपतिः' इत्यमरः। उक्तश्चायमर्थो रामायणे यथा—'तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले। नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽतिचक्रमुः॥' इति।

---

१. 'च' इति नास्ति क्वचित्। २. 'निध्यानवति देवे रामचन्द्रे' इति पाठान्तरम्। ३. 'नियतिवशात्' इति पाठान्तरम्। ४. 'निध्यानवति' इति नास्ति क्वचित्।

जब नियमपराधीन रामजी तीन दिन तीन रात तक समुद्रके किनारे ध्यान मग्न होकर कुशशय्यापर पड़े रहे, फिर भी समुद्रने प्रसाद (अनुग्रह) नहीं किया तब—

व्यापारयन्नथ विलोचनकोणमब्धौ
कोपारुणं कुटिलितभ्रुकुटीविटङ्कः ।
आदातुमैहत धनुः प्रथमो रघूणां
पैतामहप्रथमसर्गसमापनाय ॥ २२ ॥

व्यापारयन्निति । अथ निशात्रयव्यतियापनानन्तरम् रघूणां रघुवंश्यानां प्रथमो मुख्यो रघुनायको रामः कुटिलितभ्रुकुटीविटङ्कः वक्रीकृतभ्रूस्वरूपविटङ्कः (भ्रूभङ्गं कृत्वा) कोपारुणम् कथमयं मयि प्रार्थनया निशात्रयं गमितवत्यपि न प्रसीदति सागर इति क्रोधेन रक्तवर्णम् विलोचनकोणम् नयनैकदेशम् अब्धौ सागरे व्यापारयन् निक्षिपन् रक्तेन चक्षुषा सागरं पश्यन् पैतामहप्रथमसर्गसमापनाय धातुः जलमय्याः प्रथमायाः सृष्टेः सागरस्य ('अप एव ससर्जादौ' इति मनूक्तेर्ब्रह्मणः प्रथमा सृष्टिर्जलमयी, सा चात्र सागरस्तस्य) समापनाय शोषणाय धनुः चापम् आदातुम् ग्रहीतुम् ऐहत इयेष । प्रार्थनयाऽप्रसन्नस्य सागरस्य शोषणं कर्तुं धनुरादातुमैच्छदित्यर्थः ॥ २२ ॥

इसके बाद रघुवंशतिलक रामजीने भ्रुकुटी तानकर कोपसे रक्तवर्ण नयनोंको समुद्रके ऊपर डालते हुए विधाताकी आदि सृष्टि—जलमय सृष्टि—सागरको सुखानेके लिये धनुष ग्रहण करनेकी इच्छा की ॥ २२ ॥

आदाय च दुरापं चापमारोपयत विशिखमनलशिखम् ।

आदाय चेति । दुरापम् परेषां दुर्लभं परैर्नमयितुमशक्यं चापं धनुः आदाय आलंब्य च अनलशिखं विशिखम् आग्नेयबाणम् आरोपितवान् अनुसंहितवान् ।

दूसरोंके द्वारा अनमनीय धनुष लेकर उसपर आग्नेय बाण चढ़ाया ।

नाथो विमोक्तुमुदयुङ्क्त न यावदेष[1]
पाथोनिधेरुपरि पावकरूपमस्त्रम् ।
संतापिनी नयनवारिमिषेण ताव[2]-
न्मन्दाकिनी किमुत वारुणमाललम्बे ॥ २३ ॥

नाथ इति । एषः अयं नाथः स्वामी रामः पाथोनिधेः समुद्रस्य उपरि यावत् यदवधि पावकरूपमस्त्रम् आग्नेयं बाणम् विमोक्तुम् चालयितुम् न उदयुङ्क्त

१. 'एव' इति पाठान्तरम् । २. 'ताम्यन्' इति पाठान्तरम् ।

व्यापारं कृतवान् यावद्रामः सागरमुद्दिश्याग्नेयमस्त्रं न प्रायुङ्क्त, तावत् सन्तापिनी पत्यौ भाविनाऽऽग्नेयास्त्रप्रयोगेण धृतसन्तापा मन्दाकिनी वियद्गङ्गा नयनवारिमिषेण नेत्राम्बुव्याजेन वारुणम् वरुणदेवताकम् अस्त्रमालम्बे आश्रितवती किमुत? समुद्रे आग्नेयास्त्रप्रयोगं कर्त्तुमिच्छत्येव रामचन्द्रे भाविस्वपतिसन्तापमुत्प्रेक्ष्य धृतसन्तापाऽऽकाशगङ्गा रोदनव्याजेनाग्नेयास्त्रप्रतीकारभूतं वारुणमस्त्रमालम्ब इवेत्युत्प्रेक्षा। समुद्रे आग्नेयास्त्रप्रयोगस्ततस्तापश्च मन्दाकिन्या इति कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतयाऽसङ्गतिरपि तदनयोः सङ्करः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २३ ॥

संसारके स्वामी रामने जब तक समुद्रपर आग्नेय अस्त्रका प्रयोग नहीं किया था तब तक ही भावि पतिविपत्तिसे सन्तापयुक्त होकर मन्दाकिनीने नयनवारिके बहाने वारुण अस्त्र ग्रहण कर लिया क्या? ॥ २३ ॥

रुषा विशिखमुच्छिखं जहति राघवे लाघवा-
दजायत रुजायतश्वसितनक्रचक्राकुलम्।
रसातलवलत्तिमि स्तिमितकुम्भिकुम्भीनस-
प्रविष्टगिरिकन्दरं तरलमन्तरं वारिधेः ॥ २४ ॥

रुषेति। राघवे रामचन्द्रे रुषा समुद्रोपरि जातेन कोपेन हेतुना उच्छिखम् ज्वालाजालकरालम् विशिखम् बाणम् आग्नेयमस्त्रम् लाघवात् हस्तलाघवं प्रदर्श्य जहति त्यजति सति वारिधेः समुद्रस्य अन्तरम् मध्यदेशः रुजा बाणकृततापेन आयतश्वसितैः दीर्घश्वासधारिभिः नक्रचक्रैः जलग्राहसमुदयैः आकुलम् संकुलम्, रसातले पाताले वलन्तः वेगेन भ्रमन्तः तिमयः दीर्घकायमत्स्यभेदाः यत्र तथाभूतम्, स्तिमितकुम्भि निश्चलजलगजम्, कुम्भीनसैः लोहितवर्णैर्जलसर्पैः प्रविष्टानि गिरिकन्दराणि समुद्रस्थमैनाकादिपर्वतगुहारूपबिलानि यत्र तथोक्तम्, तथा तरलम् सर्वतः क्षुभितम् अजायत जातम्। समुद्रे कुपितो रामो यदाऽऽग्नेयमस्त्रं व्यसृजत्तदा सागरस्यान्तर्देशे ज्वाला प्रकटति स्म तया ज्वालया ताप्यमानं नक्रकुलं दीर्घश्वासमारब्ध, रसातले तिमयश्चला बभूवुः, जलहस्तिनो निश्चला अजायन्त, कुम्भीनसाः समुद्रमध्यगतमैनाकादिगिरिकन्दरास्वलीयन्त, समुद्रश्च सर्वतः क्षुभितो जात इत्यर्थः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ २४ ॥

समुद्रके ऊपर कुपित होकर रामजीने हाथकी सफाई दिखलाते हुए जब आग्नेय अस्त्रका प्रयोग किया तब सागरके अभ्यन्तर भागमें सन्तापके बढ़नेसे जलग्राहगण लम्बी सांस छोड़ने लगे, तिमि नामक मछली रसातलमें छटपटाने लगीं, हाथी निश्चेष्ट हो गये, जलके सांप समुद्रमध्यस्थ मैनाकादि पर्वतकी कन्दराओंमें पैठ गये और इस प्रकार सागरका मध्यभाग क्षुभित हो उठा ॥ २४ ॥

तत्क्षणं[1] च जलनिधिः क्षन्ता च युगान्तानलस्य सहनोऽपि गरल-दहनोष्मणां[2] सोढापि वाडवगाढावलेह्यस्य[3] तितिक्षुरपि भार्गवतीक्ष्णपरशोः परिशोषयन्तमन्तरङ्गमङ्गारमयं[4] शरवरं निमिषमपि न विषेहे।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणं तस्मिन्समये युगान्तानलस्य प्रलयकालिकवह्नेः क्षन्ता सहनक्षमः, प्रलयवह्निनाऽप्यतितरामतापित इत्यर्थः, एतादृशः अपि, गरलदहनोष्मणाम् विषाग्निज्वालानां सहनः सोढा अपि, वाडवगाढावलेह्यस्य वडवानलकर्तृकनिरन्तरास्वादनस्य सोढा अपि, भार्गवतीक्ष्णपरशोः (ब्राह्मणेभ्यः समस्तां पृथिवीं दत्त्वा स्वनिवासाय समुद्रं भूमिं याचमानेन परशुरामेण प्रयुक्तस्य) कुठारस्य तितिक्षुः क्षान्तिशीलः अपि जलधिः सागरः अन्तरङ्गं मध्यभागं हृदयदेशं परिशोषयन्तं ज्वलन्तम् अङ्गारमयम् अत्यन्तसन्तापकतया ज्वलदङ्गारसमानं शरवरं रामस्याग्नेयमस्त्रं निमिषमपि क्षणमात्रमपि न विषेहे न चक्षमे। आग्नेयास्त्रस्य स्वतो दुःसहस्य कुपितरामप्रयुक्तत्वेनातितरां दुःसहस्य सहने तत्तत्तापसहोऽपि सागरो नाक्षमतेत्यर्थः।

उस समय युगान्तकालिक अग्निसन्तापको सहनेवाला, विषाग्निकी ज्वालाको भी वर्दाश्त करनेवाला, वाडववह्निद्वारा किये गये सतत आस्वादनको सहनेवाला, परशुरामके तीक्ष्ण कुठारको भी सह जानेवाला समुद्र अभ्यन्तर भागको जलानेवाले अङ्गारमय रामके आग्नेय अस्त्रको क्षणभर भी नहीं सह सका।

शरणमथ शरव्यथानिदानं जलनिधिरेष जगाम राममेव।
परुषकुलिशपातमेव किं वा जलधरमर्थयते न जीवलोकः॥ २५॥

शरणमिति। अथ शरकृतसन्तापस्यासह्यतायाः प्रकाशे सति एषः जलनिधिः सागरः शरव्यथानिदानं शरकृतसन्तापस्यादिकारणभूतं राममेव शरणं जगाम विपत्प्रतीकारायाश्रयमकृत, तत्र दृष्टान्तमाह—परुषेति। जीवलोकः प्राणिवर्गो वा परुषकुलिशपातम् कठोरवज्रप्रहारकरम् जलधरम् एव किन्न अर्थयते जलं प्रार्थयते? अर्थात् प्रार्थयत एव यथा वज्रपातेन कृतभयमपि मेघं लोकः पानीयं याचते तथा समुद्रोऽपि आग्नेयास्त्रप्रयोगेण जनिततापं राममेव शरण्यान्तरानुपलब्धेः शरणं ययावित्यर्थः। वैधर्म्येण दृष्टान्तालङ्कारः। पुष्पिताग्रावृत्तम्॥ २५॥

आग्नेय अस्त्रसे सन्तप्त सागर उस सन्तापके निदान भगवान् रामकी शरणमें ही आकर उपस्थित हुआ, जिस प्रकार वज्रप्रहारसे पीड़ा देनेवाले मेघसे ही संसारके सभी प्राणी जलकी प्रार्थना किया करते हैं॥ २५॥

---

१. 'च' इति नास्ति क्वचित्। २. 'दाहनोष्मणाम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'वलेपस्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'शरमयम्' इति पाठान्तरम्।

आगत्य चानुपदमुपदीकृत[1]चित्ररत्नराशि[2]र्जलराशिर्विनीत[3]वेषोपजातनुतिभिर्नतिभिरभ्यनन्दयद्रघुनन्दनम् ।

आगत्येति । आगत्य समीपमवाप्य च अनुपदम् सद्यः उपदीकृतविचित्ररत्नराशिः रामोपहारीकृतनानाविधरत्नगणः जलराशिः सागरः विनीतवेषेण नम्ररूपेण उपजाताभिः कृताभिः नुतिभिः स्तुतिभिः पादनमनः च रघुनन्दनम् रामम् अभ्यनन्दयत् प्रसादितवान् । 'प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम्' इति नीतिस्मरणेन उपायनस्तुतिनमस्कारैस्तमतोषयदिति भावः । 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः ।

समुद्रने समीप आकर रामकी सेवामें नानाप्रकारके रत्न उपहार दिये, विनीत वेषसे रामकी स्तुति की, उनके चरणोंमें प्रणत हुआ, इस प्रकार उन्हें प्रसन्न किया ।

तदनु संहितममोघं [4]वैधात्रमस्त्रं [5]कुत्रचन वनचरधामनि मरुसीमनि विनिपात्यताम्, सह्यते मया सलिलावष्टम्भः, संप्रत्येव नलो विदधातु सेतुमित्यभिदधानो मन्दमन्दमन्तरधात् ।

तदन्विति । तदनु तत्पश्चाद्रघुनन्दनप्रसादानन्तरम् संहितम् अमोघं व्यर्थं यन्न भवति तत्, धनुष्यारोपितम् वैधात्रम् ब्राह्मम् अस्त्रम् कुत्रचन अप्रसिद्धे वनचरधामिनि किरातादीनां पापिनां निवासभूते मरुसीमनि मरुदेशावसानभूते स्थाने विनिपात्यताम् त्यज्यताम्, अमोघतया तस्य क्वचन पातनस्यावश्यकत्वात् तत्तादृशे पापिजनाध्युषिते मरौ निपात्यतां येन सज्जनावरोधो माभूत, मया समुद्रेण सलिलावष्टम्भः जलप्रतिबन्धः सह्यते भवदाज्ञया मृष्यते, सम्प्रति कालातिक्षेपं विनैव नलो नाम वानरः सेतुं विदधातु निर्मिमीताम्, इति उक्तप्रकारेण अभिदधानः कथयन् सागरः मन्दमन्दं शनैः शनैः अन्तरधात् तिरोऽभूत् । यथोक्तमभिधाय मनुष्यवेषधरः सागरः पानीयराशिरूपेण परिणतोऽभूदित्यर्थः ।

इसके बाद धनुष पर चढ़ाया गया यह अमोघ ब्रह्मास्त्र किसी वनचरवासभूमि मरुदेशमें छोड़ दिया जाय, मैं जलपर बांधके बनाये जानेसे उत्पन्न उत्पात सहनेको प्रस्तुत हूँ, अभी नल बांध बनानेमें लग जाय, इस तरह कहता हुआ समुद्र धीरे धीरे अन्तर्हित हो गया ।

---

१. 'नूतनरत्न' इति पाठान्तरम् ।   २. 'वारिराशिः' इति पाठान्तरम् ।
३. 'वेषविशेषोपजाततिमिनु'तिभिः' इति पाठान्तरम् ।
४. 'अस्त्रं वैधात्रम्' ति पाठान्तरम् ।
५. 'कुत्र चन वनसीमनि विनिपात्य साध्यो मया सलिलविष्टम्भः' इति पाठान्तरम् ।

आदिष्टा रघु[1]नन्दनेन हरयोऽप्यष्टासु दिक्षु क्षणा-
त्त्रैलोक्याञ्चितमूलमध्यशिखरान्धात्रीधरानाहरन् ।
यैः क्षिप्रैः सलिले नलेन जलधिर्यातोऽपि जम्बालतां
निर्गच्छन्नचिराय निर्झरपयःपूरैः पुपूरे पुनः ॥ २६ ॥

आदिष्ट इति । रघुनन्दनेन रामेण आदिष्टाः सेतुनिर्माणार्थं पर्वतानाहरतेति आज्ञप्ताः हरयः वानराः अष्टासु दिक्षु दिशासु स्थितान् त्रैलोक्ये लोकत्रये अञ्चितानि गतानि मूलमध्यशिखराणि येषां तान् स्वर्गे शिखरं भूलोके मध्यम् पाताले मूलं च निवेशितवतः धात्रीधरान् भूधरान् आहरन् आनीतवन्तः । यैः पर्वतैः नलेन सलिले समुद्रपयसि क्षिप्तैः सद्भिः जम्बालतां पङ्किलतां यातः अपि निर्झरपयःपूरैः सेतूपयुक्तपर्वतपतन्निर्झरपयःप्रवाहैः निर्गच्छन् उपचयं प्राप्नुवन् पुनः भूयः पुपूरे पूरितः । अयमाशयः—रामेणादिष्टा वानरा महतः पर्वतानाहृतवन्तस्तांश्च नलः समुद्राम्भसि निचिक्षेप, क्षिप्तैस्तैः सागरः पङ्किलतां गतोऽपि सेतुभूतपर्वतप्रवहमान-निर्झरपयोभिरुपचयं व्रजन्पूर्यते स्मेति । 'निषद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमरः । अत्राम्बुधेः पङ्किलत्वनिर्झरपयःपूरितत्वासम्बन्धेऽपि तत्संबन्धाभिधानाद् संबन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २६ ॥

रामके द्वारा आदिष्ट वानरगण दिशाओंमें स्थित, पातालमें मूल, मर्त्यलोकमें मध्य एवं स्वर्गमें शिखरको फैलाकर अवस्थित पर्वतोंको ले आये । उन पर्वतोंको नलने समुद्रके जलमें डाला, उससे समुद्रका पानी तत्काल तो पङ्किल हो गया किन्तु सेतु में उपयुक्त पर्वतोंसे झरनेवाले निर्झरोंके प्रवाहसे पूर्ण होकर फिर पूर्ववत् हो गया ॥ २६ ॥

अथ जलधौ निपेतुरतिदूरनिपातदल-
ज्जलचर[2]जीवजीवनदगन्धमहौषधयः ।
स्फुटितधराविराजदहिपुंगवफूत्करण-
क्षुभितगुहा[3]गृहोत्थितमहाहरयो गिरयः ॥ २७ ॥

अथेति । अथ दूरनिपातेन दूरात्पतनेन दलतां चूर्णीभवतां जीवानां नक्रादि-प्राणिसङ्घानां जीवनदः प्राणप्रदो गन्धो यासां तादृश्यः महौषधयो यत्र ते तथोक्ताः (दूरात्पर्वतपातेन म्रियमाणाः प्राणिनो येषां पर्वतानां शिरोभागे विद्यमानानामोषधीनां गन्धेन पुनर्जीवनं लभन्ते तादृशाः) स्फुटिताः पर्वतनिपातवेगेन दलिता याः धराः समुद्रतलभूमयस्तासु विराजताम् वर्त्तमानानाम् अहिपुंगवानाम् महा-

---

१. 'पुंगवेन' इति पाठान्तरम् । २. 'दत्तजीवनवगन्ध' इति पाठान्तरम् ।
३. 'गृहासिक' इति पाठान्तरम् ।

सर्पाणां फूत्करणैः निःश्वासविसर्जनैः क्षुभिताः चञ्चलीभूताः गुहागृहोत्थिताः पर्वत-कन्दरासु शयितप्रतिबुद्धाः महाहरयः महासिंहाः येषु ते तथोक्ताः गिरयः पर्वताः निपेतुः समेत्य समुद्रेऽपतन्। पततां येषां पर्वतानां वेगेन समुद्रतलभूमिर्व्यदीर्यत, तत्रस्थाः सर्पाः फूत्कृतवन्तस्तेषां फूत्कारैस्तत्पर्वतगुहासु स्थिताः सिंहाः क्षुभिता उत्थिताश्च जायन्ते तादृशा गिरयो हरिभिरानीय नलाय दत्तास्तेन च समुद्रे क्षिप्ताः निपेतुरित्याशयः) अतिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ २७ ॥

दूरसे गिराये जानेके कारण चूर्ण चूर्ण हो जानेवाले प्राणियोंको अपनी गन्धमात्रके द्वारा जीवन प्रदान करनेवाली जड़ी-बूटियोंसे युक्त एवम् फटी हुई समुद्राधार भूमिमें विराजमान सर्पराजोंके फुँफकारनेसे चलित महासिंह वाली कन्दराओंसे युक्त पर्वतगण (वानरोंद्वारा आहृत हो होकर) समुद्रमें गिरने लगे ॥ २७ ॥

अलक्षितमहीधरग्रहणमस्फुटक्षेपणं
विचित्रघटनं ततो विरचितो नलेनामुना।
अबोधि हरियूथपैरधिपयोधि सेतुर्महान्
भुवो भुज इवा[1]भयं निजतनूभुवो लम्भयन् ॥ २८ ॥

अलक्षितेति। ततः अलक्षितम् अज्ञातम् महीधरग्रहणम् सेतुनिर्माणाय पर्वतोपादानं यस्मिन् कर्मणि तत्तथा, अस्फुटम् अप्रकटोपलचयम् क्षेपणम् पर्वतानां जले निपातनं यत्र तत्तथा, विचित्रासाधारणसेतुनिर्माणविलक्षणा रचना निर्माणं यत्र तत्तथा एतत्त्रयमपि क्रियाविशेषणम्, अमुना नलेन तदाख्येन वानरविशेषेण विरचितः निर्मितः सेतुः अधिपयोधि सागरमध्ये निजतनूभुवः स्वतनयायाः सीताया अभयं भयाभावं लम्भयन् प्रापयन् भुवः पृथिव्याः भुजो बाहुरिव हरियूथपैः वानरसेनापतिभिरबोधि ज्ञायते स्म। यस्य सेतोर्निर्माणकर्मणि कदा पर्वता गृहीताः कदा च क्षिप्ताः पयसीति न ज्ञायते, विचित्रा च रचनाप्रणाली, सोऽयं सागरमध्यगतः सेतुरित्थं सेनापतिभिः प्रतीयते यथा लङ्कास्थायै स्वसुतायै सीतायै अभयं प्रदातुं पृथिवी स्वं बाहुमाततीकृत्य स्थितेति। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ २८ ॥

पहाड़ कब लिये गये, कब पानीमें रखे गये यह मालूम नहीं हो रहा था, रचना भिन्न प्रकार की थी, इस प्रकार नलद्वारा बनाया गया वह सेतु वानरसेनापतियोंको ऐसा प्रतीत हुआ मानो पृथिवीने अपनी कन्या सीताको अभयप्रदान करनेके लिये अपना हाथ बढ़ा रखा है ॥ २८ ॥

अनन्तरमन्तर्मुखा इव वलीमुखाः प्रबोधेनेव सेतुपथेन संसारमिव

---

१. 'अभवत्' इति पाठान्तरम्।

दुस्तरं तरंगिणीपतिमतीत्य सद्य एव प्रकाशं गिरीशं सुवेलमवलोकयन्तो मुहु[1]रविन्दन्परमानन्दम् ।

अनन्तरमिति । अनन्तरम् समुद्रे सेतुनिर्माणात् परतः वलीमुखाः वानराः सेतुपथेन सेतुरूपमार्गेण दुस्तरं तर्त्तुं कठिनं तरङ्गिणीपतिम् नदीनाथं सागरम् अतीत्य उल्लङ्घ्य सद्यस्तत्क्षणम् प्रकाशं स्फुटमवलोक्यमानम् सुवेलं नाम गिरीशं पर्वतश्रेष्ठम् अवलोकयन्तः परमानन्दम् अतिमहान्तं हर्षम् अविन्दन् प्राप्तवन्तः यथा अन्तर्मुखाः ध्यानमग्नाः आत्मभावनापरायणाः प्रबोधेन आत्मज्ञानेन दुस्तरम् अनादिवासनावशात्तर्त्तुमशक्यं संसारम् जन्मपरम्पराम् अतीत्य समाप्य (ज्ञानमहिम्ना पुण्यपापयोः भृष्टबीजतारूपप्रापणात् पुनर्जन्माभावे सतीत्यर्थः) प्रकाशम् सर्वावभासकत्वात्प्रकाशरूपं गिरीशम् आत्मानम् अवलोक्य परमानन्दं विन्दन्ति तद्वदित्युपमा । 'गिर ईशः' इत्यर्थे गिरीशपदमात्मार्थकमिति खण्डनटीकायां शङ्करमिश्रकृतायां मङ्गलाचरणश्लोकस्य 'मानापनोदनविनोदनते गिरीशे' इत्यादेर्व्याख्याने प्रोक्तम् ।

जैसे कोई अध्यात्मनिष्ठ व्यक्ति ज्ञानरूपमार्गसे दुस्तर इस संसारको पार करके सद्यः प्रकाशरूप गिरीश परमात्माको आत्माभेदसे प्राप्त करके परमानन्द पा लेता है, उसी प्रकार वानरगण सेतुमार्गसे नदीनाथ समुद्रको पार करके पर्वतराज सुवेल पर्वतको देखकर परम आनन्दको प्राप्त हुए ।

वलयिततटदेशैर्वाहिनीनां निवेशै-
रविरलवनरेखामध्यमध्यास्त रामः ।
कपिकलकलशीर्यत्कन्दरामन्दिरान्त-
श्चलितकुपितसिंहत्रस्तवेलं सुवेलम् ॥ २६ ॥

वलयितेति । वलयिततटदेशैः आवेष्टितसानुभागैः वाहिनीनां सेनानां निवेशैः शिविरैः अविरलानि व्याप्तानि वनरेखामध्यानि वनश्रेण्यन्तरालानि यस्य तम्, सानुप्रदेशे स्थितैः सेनाशिविरैर्व्याप्तवनमध्यमित्यर्थः, अपि च, कपिकलकलैः वानरसेनाकृतकोलाहलैः शीर्यताम् विदीर्यमाणानाम् कन्दरामन्दिराणां दरीगृहाणामन्तः अभ्यन्तरभागः ततश्चलिताः कोलाहलासहिष्णुतया निर्गताः कुपिताश्च ये सिंहास्तेभ्य त्रस्ताः भीता वेलाः तटाः (लक्षणया) तटस्थिताः जीवाः यस्य तादृशं सुवेलम् अध्यास्त आश्रितवान् । 'सेतुमार्गाद्वानरसेनायां सुवेलं नाम पर्वतमुपेतवत्यां रामस्तस्य सुवेलस्य वनमध्यमाश्रित्य स्थितः, यस्य सुवेलस्य सानुभागाः सेनासन्निवेशैर्व्याप्ताः, कपिकोलाहलासहिष्णवो हरयश्च गुहागृहेभ्यो निर्गत्य चलन्ति

१. 'अविन्दत महान्तमानन्दम्' इति पाठान्तरम् ।

तेषां सिंहानां दर्शनेन तटवर्त्तिनो जीवाश्च यत्र भयमनुभवन्ति। रामस्तस्य पर्वतस्य वनमध्ये स्वं वासमकल्पदित्यर्थः'। मालिनीवृत्तम्॥ २९॥

रामने सुवेल पर्वतके शिखरपर वासस्थान कायम किया, उस पर्वतके शिखर सेनासन्निवेशसे व्याप्त थे, वानरोंके कोलाहलसे टूटती हुई कन्दराओंसे कुपित सिंह निकलते थे और उन सिंहोंके भयसे पर्वततटवर्त्ती जीव भयभीत हो उठे थे॥ २९॥

तदनु दशमुखोऽपि[1] शुकमुखादतिलङ्घितजलधिमधिगतसुवेलारामं रामं निशम्य सम्यगवगमनाय रघुनायकबलमनु[2] प्रयातयोर्विदितवि[3] भीषणप्रेरणाकुपितकपिलोकनियन्त्रणनितान्तखिन्नयोर्विपन्नाधारदाशरथिविमोचितप्राणयोः शुकसारणयोर्वचसा [4]प्रासादमुदग्रमासाद्य प्रत्येकशस्तदावेद्यमानान्प्र[5] वर्धमानान्समरसंनाहमतीन्प्ल[6] वगसेनाधिपतीनतिधीरतया सावधीरणमवेक्षमाणः प्रतिपक्षबलप्रशंसिना[7] वुभावप्युपेक्षमाणः शार्दूलप्रभृतिभिः [8]प्रणिधिभिरप्यवगताशेष[9] वृत्तान्ततान्तः सुचिरमनुचिन्तयन्नन्तिकासीनमतिविनयप्रह्वं विद्युज्जिह्वमुपह्वरे किमप्यभिधाय सौधादवततार।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात् दशमुखः रावणः अपि शुकमुखात् शुकाख्यदूतवचनात् अतिलङ्घितजलधिम् तीर्णसागरम् अधिगतसुवेलारामम् सुवेलाख्यपर्वतस्थवनमध्यासीनम् रामं निशम्य श्रुत्वा—सम्यगवगमनाय यथार्थतो ज्ञातुम् रघुनायकबलम् रामसैन्यम् अनुप्रयातयोः आगतयोः विदितः शुकसारणनामकरावणदूतागमनज्ञानवान् यो विभीषणस्तस्य प्रेरणया निर्देशेन—रावणस्य दूताविमौ भवद्बलं ज्ञातुमायातौ इति बोधनया हेतुना कुपितैः कपिलोकैः कर्तृभिः नियन्त्रणेन नियमनेन बन्धनेन नितान्तखिन्नयोः व्यथामनुभवतोः विपन्नाधारेण दुर्गतजनदयालुना दाशरथिना रामेण विमोचितप्राणयोः दयोदयेन त्यक्तजीवितयोः शुकसारणयोः तदाख्ययोर्दूतयोः वचसा वचनेन उग्रम् महोच्चं प्रासादं भवनम् आसाद्य आरुह्य, प्रत्येकशः एकैकशः तदावेद्यमानान् ताभ्यां शुकसारणाभ्याम् परिचयप्रदानेन ज्ञाप्यमानान् प्रवर्धमानान् उच्छ्रितदेहान् समरसन्नाहमतीन् युद्धोद्यतान् प्लवगसेनाधिपतीन् वानरसेनाधीपतीन् अतिधीरतया स्वधैर्येण सावधीरणम् तिरस्कारपूर्वकम् अवेक्षमाणः पश्यन्, प्रतिपक्षबलप्रशंसिनौ शत्रुसैन्यप्रशंसाकारिणौ उभौ शुकसारणौ

---

१. 'अपि' इति नास्ति क्वचित्। २. 'प्रहितयोः' इति पाठान्तरम्।
३. 'वेषविभीषणावेदितकुपित' इति पा०। ४. 'प्रासादाग्रम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'प्रवर्धमान' इति पाठान्तरम्। ६. 'प्लवंगम' इति पाठान्तरम्।
७. 'तावुभौ' इति पाठान्तरम्। ८. 'प्रणयिभिः' इति पाठान्तरम्।
९. 'वृत्तान्तः सान्तस्तापः' इति पाठान्तरम्।

द्वावपि उपेक्षमाणः तिरस्कुर्वन् किमिति शत्रून् स्तौषीति तावधिक्षिपन्, शार्दूलप्रभृतिभिः प्रणिधिभिः गुप्तचरैः अपि अवगताशेषवृत्तान्तः शुकसारणयोरविश्वासात्तावुपेक्ष्य प्रहितेन शार्दूलादिदूतगणेन निवेद्यमानसकलसमाचारः अतश्च तान्तःव्यथामनुभवन् सुचिरं चिरकालपर्यन्तम् अनुचिन्तयन् किमिति विपदियमागता! कोऽत्र प्रतीकारः? इति भूयो भूयः परामृशन् रावणः, अन्तिकासीनम् समीपोपविष्टम् अतिविनयप्रह्वम् अतिनम्रम् विद्युज्जिह्वं नाम उपह्वरे रहःस्थाने किमपि अभिधाय कथयित्वा सौधादवततार अवारुरोह।

इसके बाद रावणने शुक नामक अपने दूतके मुखसे सुना कि 'रामजीने समुद्र लांघकर सुवेल पर्वतस्थ वनमें आवास कायम किया है' इसी बातको ठीक ठीक समझनेके लिये शुकसारण नामक दो दूत रामकी सेनामें आये, उन्हें विभीषणने पहचाना, विभीषणके इशारे पर वानरोंने उन दोनोंको बाँध लिया, परन्तु दयानिधान रामने उनके प्राण मुक्त कर दिये, उन दोनों दूतोंके कहने पर प्रासादपर चढ़कर शुकसारणके द्वारा एक एक करके बताये गये, उच्छ्रितकाय, युद्धकी तैयारीमें लगे हुए अङ्गदादि वानरसेनापतियोंको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखता हुआ, शत्रुकी प्रशंसा करनेवाले शुक और सारणकी बातको न मानकर, शार्दूल आदि गुप्तचरोंके द्वारा सारी स्थितिका पता लगाकर अत्यन्त खिन्न रावणने बड़ी देरतक सोचकर एकान्तमें विनयसे नम्र विद्युज्जिह्वको कुछ कहा और वह स्वयं प्रासादसे उतर गया।

तत्क्षणं [1]क्षणदाचरो निदेशान्निशाचरपतेर्दाशरथिशिरः सशरं धनुरपि निर्माय मायानुभावादाहवानीतमित्यभिधाय निधाय च पुरो निदाघातिशयसंतापिनीं वासन्तीमिव वैद्युतानल[2]श्चिरकालविरहविह्वलीकृतामाकुलीचकार मैथीलीम्।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणं तस्मिन्काले क्षणदाचरः राक्षसः असौ विद्युज्जिह्वः निशाचरपतेः राक्षसराजस्य निदेशात् आदेशात् दाशरथिशिरः रामस्य मस्तकम् सशरम् धनुः बाणेन युतं चापमपि मायानुभावात् निर्माय मायाद्वारा कल्पयित्वा आहवात् युद्धात् आनीतम् रामं युद्धे निहत्य तदीयं शिरः सशरं धनुश्चाहृतमिति अभिधाय सीतामुक्त्वा पुरः सीताया अग्रे निधाय रामस्य शिरः शरयुक्तं चापं च स्थापयित्वा निदाघातिशयसन्तापिनीम् घर्माधिक्यपीडितां वासन्तीम् एकां पुष्पप्रसिद्धां लताम् वैद्युतानलः विद्युद्वह्निः इव चिरकालविरहविह्वलीकृताम् दीर्घवियोगवशेन विकलाम् मैथिलीम् विद्युज्जिह्वः विकलीचकार। यथा ग्रीष्मसन्तप्ता वासन्तीलता वर्षागमे सति विद्युदग्निना विपद्येत, तथा चिरवियोगसन्तप्ता सीता रामे लङ्कां प्राप्ते मायानिर्मितरामशिरःसचापधनुरुपस्थापनेन विद्युज्जिह्वेन राक्षसा विकलीकृतेति भावः। 'वासन्ती माधवी लता' इत्यमरः।

१. 'क्षणदाचरोऽपि' इति पाठान्तरम्। २. 'चिरकालविह्वलाम्' इति पाठान्तरम्।

उस समय विद्युजिह्व राक्षसने रावणकी आज्ञासे मायाद्वारा रामका शिर तथा बाण और धनुष प्रस्तुत करके सीताके सामने रख दिया और कहा कि युद्धसे लेकर आ रहा हूँ, उन वस्तुओंको देखकर, जिस प्रकार ग्रीष्मके सन्तापसे माधवीलता विद्युत्की आगसे झुलस जाती है, उसी तरह चिरवियोगिनी सीता विह्वल हो उठी।

ततः प्रबुद्धा च [1]सा मुग्धा पुनस्तथ्यमिति विचार्य तदनार्यं पर्यदेवयत पतिदेवता।

तत इति। ततः तदनन्तरम् पतिदेवता पतिं देवताभावेन मन्यमाना पतिव्रता सा सीता मुग्धा मूर्च्छिता, पुनः प्रबुद्धा प्राप्तबोधा च, अनार्यम् मायानिर्मितम् ततः शिरोधनुरादिकम् तथ्यम् यथार्थम् इति विचार्य मत्वा पर्यदेवयत विलापं चक्रे।

इसके बाद पतिपरायणा सीता उन वस्तुओंको देखकर ही मूर्च्छित हो गई, जब होश हुआ, तो उसने अनार्य मायानिर्मित पदार्थोंको सत्य मानकर इस प्रकारसे विलाप करना प्रारम्भ किया।

रक्षोवरोधवसतिं रजनीचरीणां
रक्षोपरोधमपि रावणभर्त्सनं च।
सर्वं सहे यदुपलम्भधिया स एवं
सर्वंसहे भवति! जीवति हन्त सीता॥ ३०॥

रक्षोवरोधेति। रक्षसाम् अवरोधः अन्तःपुरं तत्र वसतिम् वासम्, रजनीचराणां रक्षाधिकृतानां राक्षसानाम् रक्षाव्याजेनोपरोधम् निर्बन्धम्, रावणभर्त्सनम् रावणस्यावाच्यवादश्रवणम् यदुपलम्भधिया यस्य रामस्य प्राप्तिसम्भावनया सर्वम् पूर्वोक्तरूपं कष्टजातं सहे मर्षयामि, स रामः एवम् इमां दशां युद्धे शिरश्छेदरूपामुपेतः, हे सर्वंसहे भवति, अये देवि धरणि, तथापि एतस्यां स्थितावपि सीता जीवति प्राणान् धारयति हन्त! खेदप्रदोऽयं विषयः, यं पुनरासादयितुं कामयमाना तानि तानि कष्टानि सोढुं प्रयते स्म, स राम ईदृशीं दशां प्रपन्नस्तन्मां धिगिति भावः॥ ३०॥

राक्षोंके अन्तःपुरमें वास करना, रक्षामें नियुक्त राक्षसोंसे घिरी रहना, रावणके मानहर शब्द, इन सभी कष्टोंको मैं जिन्हें पानेकी आशामें सह रही हूँ, हे मातः पृथ्वि, उनकी ऐसी दशा (युद्धमें मृत्यु) होने पर भी सीता जीती ही है, यह खेदकी बात है॥ ३०॥

[2]इत्येवमत्याहितमत्या [3]समेतामेतां सद्य असाद्य 'सखि वैदेहि!

१. 'सा' इति नास्ति क्वचित्। २. 'इति' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'समेतामेतामासाद्य' इति पाठान्तरम्।

देहि[1] मे वचः। मम[2] वचो विधेहि। कथमि[3]यं दशा। दशाननकृता माया हि सेयम्[4]। मा याहि मनसि वैधुर्यम्। [5]अखिलजगतीधुर्यभुजबलाभिरामे [6]रामे किमिदमनार्यमविचार्यम्' इति भाषमाणा[7] नवीनासारनिष्यन्दिनी कादम्बिनीव घर्मोद्वेगिनीं केकिनीं सरमा चिरमाश्वासयामास।

इत्येवमिति। इत्येवम् एवंप्रकारेण प्रागुक्तरीत्या अत्याहिता महाभीता मतिर्यस्यास्तया भीतबुद्ध्या समेताम् युक्ताम् एताम् सीताम् सद्यस्तत्क्षण आसाद्य समीपमुपेत्य सरमा नाम विभीषणपत्नी चिरं बहुकालमाश्वासयामासेत्यन्तिमेन क्रियापदेन वाक्यपूर्त्तिः। आश्वासनप्रकारमाह—सखीति। हे सखि वैदेहि, सीते, देहि मे वचः, मया संभाषणं कुरु, मम वचो विधेहि यथा मदुक्तं कार्यं कुरु। सा इयं (यया वञ्चितायास्तव राममरणबुद्धिरस्मिंस्तुच्छे मायिके च वस्तुनि रामशिरस्त्वभ्रमश्च) दशाननकृता रावणनिर्मिता काचन माया वञ्चनाव्यापारः। मनसि स्वहृदये वैधुर्यं वैक्लव्यम् मा याहि प्राप्नुहि। अखिलजगतीधुर्यभुजबलाभिरामे संसारभारवहनक्षमबाहुपराक्रमशोभिते रामे रामचन्द्रे अनार्यम् तुच्छम् इदम् एतच्छिरश्छेदादिकम् विचार्यम् किम् न विचारणीयमित्यर्थः, इति एवं भाषमाणा कथयन्ती सरमा नवीनासारनिष्यन्दिनी नवजलकणेन सिञ्चन्ती कादम्बिनी मेघमाला घर्मोद्वेगिनीम् ग्रीष्मसन्तापिनीम् केकिनीम् मयूरीम् इव सीताम् चिरमाश्वासयामास बोधनादिना प्रकृतौ स्थापयितुमचेष्टतेत्यर्थः। 'कादम्बिनी मेघमाला' इत्यमरः।

इस प्रकार महाभीतबुद्धि सीताके समीप आकर सरमाने आश्वासन प्रदान किया—सखि, वैदेहि, मेरी बातोंका उत्तर दो, मेरा कहना मानो, ऐसी दशा क्यों हो रही है? यह तो रावणकी माया है (रामका शिर नहीं है) इसके लिये अपने मनमें तकलीफ मत करो, संसारके भारको उठा सकनेमें समर्थ बाहुवाले रामके विषयमें इस तरहकी अमङ्गल बात क्या विचार करनेके योग्य है? इस तरह कहती हुई सरमाने सीताको उसी तरह आश्वासन प्रदान किया जैसे ग्रीष्मके सन्तापसे पीड़ित मयूरीको नवीन जलकणसे सींचती हुई मेघमाला आश्वासन देती है।

अथ निगदितनीतिं मुञ्च मुञ्चेति सीता-
मविरतरणकण्डूभीषणो रावणोऽयम्।
मनसि न बहु मेने मन्त्रिणं माल्यवन्तं
दिवि परममरीणां मण्डलं माल्यवन्तम्॥ ३१॥

---

१. 'वै देहि वचः' इति पाठान्तरम्। २. 'मम वचो विधेहि' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'तव दीना दशा' इति पाठान्तरम्। ४. 'सेयम्' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'निखिल' इति पाठान्तरम्। ६. 'रामेऽपि' इति पाठान्तरम्।
७. 'अभिदधाना' इति पाठान्तरम्।

अथेति। अथ मायाप्रयोगानन्तरम् अवितरणकण्डूवा सततयुद्धाभिलाषेण भीषणः भयङ्करः अयं रावणः—सीतां रामभार्यां मुञ्च मुञ्च त्यज इति निगदित-नीतिम् कथितशास्त्रसारम् माल्यवन्तं नाम मन्त्रिणं स्वसचिवं मनसि स्वहृदये न बहु मेने न प्राशंसत् परं किन्तु दिवि स्वर्गे अमरीणां देवाङ्गनानां मण्डलं समूहं माल्यवन्तम् रणे हतान् वीरान् वरीतुं धृतस्रजं बहु मेने आदृतवान्। माल्यवता कथितं सीतापरित्यागं न कर्त्तुमिच्छति स्म रावणस्तस्य युद्धबद्धाभिलाषत्वात्, किन्तु श्रीरामेण रणे निहतः सन् मालामादाय वीरान् वीरगतिं प्राप्य स्वर्गागतान् वरीतुं स्वर्गे स्थितं देवाङ्गनासमूहमेव हृदि बहु मन्यते स्म, भाविनोऽर्थस्य दुर्वार-त्वादिति भावः। यमकानुप्रासयोः संसृष्टिः। मालिनीवृत्तम् ॥ ३१ ॥

रणलिप्सासे उद्धत रावणने सीताको वापस कर दीजिये इस तरह नीतिसम्मत बात कहने वाले सचिव माल्यवान्का आदर नहीं किया, किन्तु रणहत वीरोंको वरण करनेके लिये माला लेकर खड़ी हुई देवाङ्गनाओंका ही आदर किया, (रणमें मारे जानेके बाद स्वर्ग जाना ही उसे अच्छा मालूम पड़ा, रामके साथ सन्धि नहीं अच्छी लगी) ॥३१॥

अथ रामोऽपि कामोचितवेषविभीषणामात्यविदितरक्षोनगररक्षोदन्तो हृदन्तोपजातसमरसंरम्भधीरम्बुधिमेखलालङ्कारमणेर्लङ्कायाः प्राग्द्वारस्थाय प्रहस्ताय पर्यस्ताहितप्राणानिलं नीलं दक्षिणद्वाररक्षिणोर्महोदरमहापार्श्वयो-र्विश्वत्रयविजयधौरेयं तारेयं प्रत्यग्द्वारपालनाधिकृते पाकशासनजिते परा-क्रममिव तनूमन्तं हनूमन्तमन्तर्व्यूहविहितरक्षाय विरूपाक्षाय रक्षः[1]प्लवग-र्क्षाधिपतीन्प्रतिनिधी[2]न्विधाय विधाय च सज्यं धनुरनुजेन समं समी-काभिमुखेन दशमुखेन गुप्तमुत्तरं गोपुरमुत्तरङ्गो बलैरुपरुरोध।

अथेति। कामोचितवेषेण कामरूपधरेण यथाऽवसररूपभेदकरणपटुना विभी-षणामात्येन अनलनामकविभीषणसचिवेन विदितः ज्ञातः रक्षोनगरस्य लङ्कापुरस्य रक्षोदन्तः रक्षावृत्तान्तः कस्यां दिशि कीदृशो रक्षाप्रबन्ध इत्येवंरूपो येन तथोक्तो राम अपि हृदन्ते स्वचित्ते जाता उत्पन्ना समरसंरम्भधीः युद्धाय कोपबुद्धिर्यस्य तथाभूतः सन् अम्बुधिमेखलायाः समुद्ररशनायाः पृथिव्याः अलङ्कारमणेः भूषण-भावंगतायाः लङ्कायाः प्राग्द्वारस्थाय पूर्वद्वारवर्त्तिने प्रहस्ताय तन्नामकाय पर्यस्ता-हितप्राणानिलं हतशत्रुप्राणवायुं नीलं नाम, दक्षिणद्वाररक्षिणोः लङ्काया दक्षिणद्वारं रक्षतोः महोदरमहापार्श्वयोः तन्नामकयोः विश्वत्रयविजयधौरेयं लोकत्रयविजयदक्षं तारेयं तारापुत्रमङ्गदम्, प्रत्यग्द्वारपालनाधिकृते पश्चिमद्वाररक्षायां नियुक्ताय पाक-शासनजिते इन्द्रजिते तनूमन्तं शरीरधारिणं पराक्रमं बलमिव हनूमन्तम्, अन्तर्व्यूहं

१. 'प्लवंगम' इति पाठान्तरम्। २. 'विनिधाय' इति पाठान्तरम्।

व्यूहमध्ये विहितरक्षाय रक्षां कुर्वते विरूपाक्षाय तन्नामकाय रक्षोधिपतिम् विभीषणम्, प्लवगाधिपतिम् सुग्रीवम्, ऋक्षाधिपतिम् जाम्बवन्तम्, एतान् प्रतिनिधीन् प्रतिभटान् विधाय, धनुः स्वीयं चापं च सज्यं समारूढप्रत्यञ्चं विधाय कृत्वा च समीकाभिमुखेन युद्धोद्यतेन अनुजेन कनीयसा भ्रात्रा लक्ष्मणेन समं सह दशमुखेन रावणेन गुप्तं स्वयं कृतरक्षम् उत्तरं गोपुरम् लङ्कापुरद्वारम् बलैः वानरसैन्यैः उत्तरङ्गः उद्भटः सन् उपरुरोध अरौत्सीत्। पूर्वादिद्वारेष्ववस्थितैस्तैस्तैः द्वारपालैः सह योद्धुं तान् तान् स्ववीरान्योद्धुमादिश्य रामः स्वयं रावणेन कृतरक्षं लङ्कापुरोत्तरद्वारमरौत्सीदित्यर्थः।

इसके बाद रामने कामरूपधारी विभीषणके मन्त्री अनलके द्वारा लङ्कापुरीकी रक्षाकी सारी बातें जानकर कोपयुक्त हृदय हो विश्वम्भराके भूषणस्वरूप लङ्कापुरके पूर्वी द्वारपर वर्त्तमान प्रहस्तके लिये शत्रुप्राणहर नीलको, दक्षिणद्वारकी रक्षा करने वाले महोदर तथा महापार्श्वके लिये त्रिलोकविजयमें भाग लेने वाले अङ्गदको पश्चिमद्वारके पालनमें अधिकृत इन्द्रजितके लिये शरीरधारी पराक्रमरूप हनूमान्‌को, भीतरी व्यूहकी रक्षा करने वाले विरूपाक्षके लिये विभीषण, सुग्रीव तथा जाम्बवान्‌को प्रतियोद्धाके रूपमें नियुक्त करके अपने धनुष प्रत्यञ्चा पर चढ़ाकर युद्धोद्यत लक्ष्मणको साथ लेकर रावणद्वारा रक्षित उत्तरी दरवाजेको वानरसेनासे परिवृत्त होकर घेर लिया।

अत्याकुलां हरिबलैरवलोक्य लङ्कां
दत्तार्गलेषु दशकन्धरकिंकरेषु।
आरक्षकैस्त्वरितमन्तकराजधान्या-
मुद्धाटिताभिरुदभावि कवाटिकाभिः॥ ३२॥

अत्याकुलामिति। कपिबलैः वानरसेनाभिः अत्याकुलाम् अतिशयसङ्कुलितां व्याप्यमानां लङ्काम् नाम पुरीम् अवलोक्य दृष्ट्वा दशकन्धरकिङ्करेषु रावणभृत्येषु दत्तार्गलेषु दृढपिहितकपाटेषु सत्सु त्वरितम् शीघ्रम् अन्तकराजधान्याम् यमपुर्याम् आरक्षकैः द्वारपालैः कवाटिकाभिः कपाटैः उद्धाटिताभिः मुक्तार्गलाभिः अभावि जातम्। वानरवाहिनीं लङ्कायां सर्वतो भ्राम्यन्तीमवलोक्य प्राणत्राणाभिप्रायेण दशाननभृत्या यथाद्वारं व्यधुस्तथैव यमभृत्या स्वनगर्याः कपाटान्युद्धाटयामासुः, अर्थात् राक्षसानां भाविमरणमालोक्य तेषां प्रवेशाय द्वाराण्युन्मुक्तानि चक्रुरित्यर्थः। एतेन राक्षसानामाशुभाविमरणं, पापकृतां तेषां यातनाभोगाय यमपुरोपसर्पणं च व्यञ्जितम्। यमपुरीकपाटानामुद्धाटनासम्बन्धेऽपि तत्संबन्धाभिधानादसंबन्धे संबन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ३२॥

लङ्कापुरीको वानरसेनासे व्याप्त देखकर रावणके नौकरोंने जैसे ही कपाटमें गेला (कुण्डी) लगा लिये, वैसे ही यमराजके पुरीमें द्वारपालोंने सभी दरवाजोंके कपाट खोल दिये।

(जिससे युद्धमें मरकर राक्षसगण उस यमपुरीमें अबाधगतिसे प्रवेश कर सकें) ॥ ३२ ॥

[1]तत्क्षणं लक्ष्मणाग्रजः सुग्रीवेण सह सुवेलाचलकूटमधिरूढस्त्रिकूटावनीधरचूडामणिं सिंहलद्वीपकमलकर्णिकां निर्माण[2]कौशलं विश्वकर्मणो निवेशदरीं निशाचरहरीणा[3]मनवरतबन्दीकृतामरपुरन्ध्रीबाष्पनदीमातृकोप[4]वनसीमान्तरां निरन्तरसेवासमागत[5]दिक्पालकुलमातङ्गमदाम्बुपङ्किलबाह्याङ्गणोत्सङ्गां लङ्कामवलोकमानस्तत्र [6]चैकत्र समुन्नतं सौधमधिवसन्तं संतमसमिव सदेहबन्धमन्तिकचरोदस्तविमलमुक्तातपत्रनि[7]भात्सतारकेण विभावरीपतिनेव सेव्यमानं वैमानिकवधूविधूयमान[8]धवलचामरद्वंद्वशोभितमभितश्चलितमन्दाकिनीपरीवाहमिवाञ्जनाचलमखिलजगद्विजयवर्णावलीमतिनिर्णायकैरनेकविधसमीकाभिघातमग्नभग्नैरावणविषाणकुलिशाग्रै[9]रुत्कीर्णविशालवक्षःस्थलफलकमानीलतया लसच्छायमाच्छादिताभिनव[10]लोहितवत्पाटलपटं संध्यारागबन्धुरं कंधरमिव ददर्श दशकन्धरम् ।

तत्क्षणमिति । तत्क्षणं तस्मिन् काले (वानरसैन्ये लङ्कामवरुध्य स्थिते) लक्ष्मणाग्रजः रामः सुग्रीवेण वानरराजेन सह सुवेलाचलकूटम् सुवेलाख्यपर्वतशिखरम् अधिरूढः सन् , त्रिकूटावनीधरचूडामणिम् त्रिकूटाख्यपर्वतशिखरोऽलङ्कारभूताम् , (लङ्कायास्त्रिकूटशिखरस्थितया रम्यतया तच्चूडामणिभावेन रूपणं बोध्यम्) सिंहलद्वीपः सिंहलनामा यो द्वीपविशेषस्स एव कमलम् तस्य कर्णिकाम् बीजकोशरूपाम्, (लङ्कायाः सिंहलमध्यस्थतया तत्सारभूततया च बीजकोशरूपता बोध्या) विश्वकर्मणः शिल्पिश्रेष्ठस्य तदाख्यया प्रसिद्धस्य निर्माणकौशलम् निर्माणचातुर्यसीमाभूताम् , (विश्वकर्मणा विरचितेषु पुरेषु सर्वाधिकसौन्दर्यशालितया लङ्कायास्तत्कौशलरूपतोक्ता, यथाऽन्यत्र 'निर्माणकौशलं धातुश्चन्द्रिकालोकचक्षुषाम् । क्रीडागृहमनङ्गस्य सेयमिन्दीवरेक्षणा' इति) निशाचराः राक्षसा एव हरयो वानरास्तेषां निवेशदरीम् नियतनिवेशगुहास्वरूपाम् , अनवरतं सततं बन्दीकृतानाम् कारागारे स्थापितानाम् अमरपुरन्ध्रीणाम् देववनितानाम् बाष्पैः अश्रुप्रवाहैः

---

१. 'तत्क्षणं च' इति पाठान्तरम् ।   २. 'कौशलीम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'अनारत' इति पाठान्तरम् ।   ४. 'उपवनसीमान्तां सीमान्तरात्' इति पा० ।
५. 'दिक्पालमातंग' इति पाठान्तरम् ।   ६. 'च' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'मिषात्' इति पाठान्तरम् ।   ८. 'धवल' इति नास्ति क्वचित् ।
९. 'उद्गीर्ण' इति पाठान्तरम् ।   १०. 'लोहितपद्मापाटलसंध्या' इति पाठान्तरम् ।

नदीमातृकानि सर्वदा सिच्यमानानि उपवनसीमान्तराणि यस्याः सा तां तथोक्ताम्, बन्दीभूतानाममरीणामविच्छिन्नाश्रुप्रवाहैः सिच्यमानोद्यानपरिसरामित्यर्थः। निरन्तरम् सर्वदा सेवायाम् रावणवशंवदतासिद्धायामुपस्थानक्रियायाम् समागताः आयाताः ये दिक्पालाः इन्द्रादयो दश दिशाधीशास्तेषां कुलं समूहस्तस्य ये मातङ्गाः करिणः तेषां करिणां मदाम्बुभिः दानवारिभिः पङ्किलः पिच्छिलः बाह्याङ्गणोत्सङ्गो यस्यास्तां तथोक्ताम् सदोपस्थानाय समागतानामिन्द्रादिदिक्पतीनां करिभिर्विसृष्टानां दानाम्बूनां प्रवाहेण पङ्किलीकृतबाह्याजिरमध्यामित्यर्थः (एतादृशीं) लङ्काम् नाम रावणपुरीम् अवलोकमानः पश्यन् तत्र पुर्याम् च एकत्र एकस्मिन् भागे समुन्नतं महोच्चं सौधम् सुधाधवलं प्रासादम् अधिवसन्तम् आश्रित्य तिष्ठन्तम्, सदेहबन्धम् शरीरमाश्रितं सन्तमसम् गाढान्धकारम् इव, अन्तिकचरैः अनुजीविभिः उदस्तम् अवष्टभ्य धृतं यद्विमलमुक्तातपत्रं स्वच्छप्रभमौक्तिकपरिवृतं श्वेतच्छत्रं तन्निभात् तन्मिषात् सतारकेण तारागणोपेतेन विभावरीपतिना निशानाथेन चन्द्रेण इव सेव्यमानम्, (भृत्यैरालम्बितं मौक्तिकजालयुक्तं श्वेतातपत्रमत्र रावणसेवागतसनक्षत्रचन्द्ररूपेणोत्प्रेक्षितं बोध्यम्) विमानेन आकाशयानेन चरन्तीति वैमानिकाः देवास्तेषां वधूभिः स्त्रीभिः विधूयमानं चाल्यमानं यत् धवलं चामरद्वन्द्वम् स्वच्छं यच्चामरयुगलं तेन शोभितम्, अभितः परितः चलिताः प्रवाहभाजः मन्दाकिनीपरीवाहाः आकाशगङ्गास्रोतांसि यस्य तादृशम् अञ्जनाचलम् अञ्जनस्य पर्वतमिव (रावणस्य श्यामतया तत्पार्श्वचलितचामरयोश्च श्वेततया रावणः पार्श्वप्रवहमानमन्दाकिनीधाराञ्जनपर्वतसमतया वर्ण्यते) अखिलजगतां समस्तलोकानां या विजयवर्णावल्यो विजयज्ञापकाक्षरविन्यासास्तन्मतिनिर्णायकैः तद्बुद्धिजनकैः, अनेकविधसमीकेषु असंख्यातरणेषु अभिघातैः सम्प्रहारैः मग्नानि सुदूरं प्रविष्टानि अवश्च भग्नानि यानि ऐरावणस्य इन्द्रगजस्य विषाणकुलिशाग्राणि दन्तरूपवज्राग्रभागाः तैः उत्कीर्णं खचितं विशालं फलकमिव वक्षःस्थलं यस्य तादृशम्, (रावणोऽसकृदिन्द्रेण सह युद्धं कृतवाँस्तेषु युध्यमानस्य तस्योरसि ऐरावणः स्वेन वज्रकठोरेण दन्ताग्रेण प्रहृतवाँस्तत्प्रहारेण च रावणोरसि निमग्नैस्तत्रैव त्रुटितैश्चैरावतदन्ताग्रभागै रावणस्योरो व्याप्यते, किञ्चिन्मीलितोन्मीलितैः ऐरावणदन्ताग्रै रावणस्योरसि बहुविधयुद्धलब्धविजयप्रशस्तिरिव लिख्यमाना प्रतीयते स्मेति भावार्थः) आनीलतया अतिश्यामतया लसच्छायं समन्ततः प्रसृतश्यामप्रभम्, अभिनवलोहितवत् सद्यःक्षरितशोणितवत् पाटलः रक्तवर्णः पटः परिधानवस्त्रं यस्य तं तथोक्तम्, सन्ध्यारागबन्धुरं सायंकालिकप्रभारञ्जितं कन्धरं मेघमिव दशकन्धरम् रावणं ददर्श। रूपकोत्प्रेक्षोपमाभ्रान्तिमदतिशयोक्त्योऽलङ्काराः पृथक्पृथक् स्थिता यथायोगमूहनीयाः। 'देहबद्धम्' इत्यत्र 'वाहिताग्न्यादिषु' इति निष्ठान्तस्य पूर्वनिपातव्यतिक्रमः। दृश्यते चेदृशः प्रयोगः कालिदासीये

कुमारसंभवे यथा—'विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा' इति। 'मुक्तातपत्रनिभात्' इत्यत्र 'निभशब्दो मिषार्थतायां पर्यवसितः, तथा चोक्तमपि नानार्थरत्नमालायाम्—व्याजे निभे ना सदृशे त्रिष्वथो वाक्यलिङ्गकौ' इति। 'जलोच्छ्वासाः परीवाहाः' इत्यमरः। 'वन्धुरं सुन्दरे नम्रे' इति चामरः। 'कन्धरतीति कन्धरो मेघः, 'पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः' इत्यमरः।

उस समय सुग्रीवके साथ सुवेलाचलके शिखरपर चढ़कर रामने–त्रिकूटाचलके मस्तकालङ्कारके समान प्रतीत होती हुई, सिंहलद्वीपकमलके मध्यभागकर्णिकाके समान लगने वाली, विश्वकर्माकी कारीगरीके नमूना सी प्रतीत होने वाली, राक्षसरूप सिंहोंके निवासार्थ गुहाकी तरह दीखने वाली, सतत कारावासमें रहने वाली देवललनाओंके अश्रुप्रवाहसे नदीमातृक बन गये हैं उद्यानपरिसर जिसके ऐसी, वारवार रावणकी उपस्थापनामें आते रहने वाले दिक्पालोंके हाथियोंकी मदधारासे पङ्किल बन गई है बाहरी आंगन जिसकी ऐसी, लङ्काको देखते हुए, उस लङ्काके एक भागमें शरीरधारी अन्धकारके समान, भृत्य जनद्वारा अवलम्बित मुक्ताजाल विराजित श्वेतच्छत्रके व्याजसे नक्षत्रयुक्त निशाकर द्वारा सेव्यमानसे प्रतीत होने वाले, देवाङ्गनाओं द्वारा चालित चमरद्वयसे शोभित अत एव दोनों भागोंमें आकाशगङ्गाके प्रवाहसे युक्त अञ्जनशैलकी तरह लगने वाले तथा अनेक वारके युद्धोंमें अतिशय प्रहारसे दन्त टूट गये हैं जिसके ऐसे ऐरावतके वज्रोपमदन्ताग्रभागसे विशाल छातीमें खचित, चारो ओर फैलती हुई श्यामल प्रभासे युक्त सद्यः शोणितसमान लाल वस्त्रकी कान्तिसे सन्ध्या रागरञ्जित जलधरकी तरह दीखने वाले रावणको देखा।

कोपादुत्पतितस्तदा हरिपतिः कोटीरमुत्पाटितं
चक्रे नैर्ऋतनायकस्य सुदृढीचक्रे च वैभीषणम्।
युद्ध्वा [1]तत्प्रथमावमानकुपितेनैतेन बुद्ध्वा ततो
मायामस्य जगाम कोमलगुणग्रामं स रामं पुनः॥ ३३॥

कोपादिति। तदा तस्मिन् रावणदर्शनसमये हरिपतिः वानरेन्द्रः सुग्रीवः कोपात् रावणकृतरामापकारस्मरणसंभवाद्रोषात् हेतोः उत्पतितः रावणाधिष्ठितं सौधमुद्दिश्योत्प्लुतः, नैर्ऋतनायकस्य राक्षसराजस्य कोटीरम् मुकुटम् उत्पाटितं चक्रे आकृष्य रावणशिरस्तो भूमौ न्यपातयत्, वैभीषणं विभीषणसम्बन्धिकोटीरं च सुदृढीचक्रे स्थिरीचकार, रामेणाभिषिक्तस्य विभीषणस्य राज्ये स्थायिनि जाते तन्मुकुटस्य स्थिरत्वं संभवति मनसि विभावयन् रावणशिरोऽलङ्कारापहाररूपामङ्गलकर्मानुष्ठानद्वारा रावणवधभावित्वव्यञ्जनविधया भाविविभीषणराज्यस्थैर्यमुपपाद्य तन्मुकुटस्थैर्यमुपकल्पितवानिति तात्पर्यम्। तत्प्रथमावमानकुपितेन

१. 'च' इति पाठान्तरम्।

सुग्रीवकृतप्रथमतत्तिरस्कारक्षुभितेन एतेन रावणेन सह युद्ध्वा नानाविधं युद्धं कृत्वा ततः युद्धे कियति काले व्यतिक्रामति अस्य रावणस्य मायां मायिक-युद्धोन्मुखतां बुद्ध्वा प्रतीत्य सः सुग्रीवः पुनः भूयः कोमलगुणग्रामं सकलरमणीय-गुणगणनिलयं रामं जगाम प्राप, रावणे मायायुद्धोन्मुखे सति सुग्रीवो रामस्य समीपं पुनरायात इत्यर्थः। सुग्रीवकृतकोटीरहरणात् प्राक्केनापि रावणापमानं न कृतमासीदतस्तत्प्रथमापमानकुपितत्वं रावणस्योक्तम्। अत्रातिविस्तरेण वक्तव्य-स्यार्थस्य संक्षेपेण कथनात् संक्षेपो नाम गुण इति बुधेन्द्रः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

रावणको देखते ही वानरराज सुग्रीव उसके मकानकी ओर उछल पड़े, राक्षसराज रावणका मुकुट उतारकर पृथ्वीपर फेंक दिया और (रावणके मारे जानेकी संभावना उत्पन्न करके) विभीषणके मुकुटको स्थिरता प्रदान किया। अपने इस अभूतपूर्व अपमानसे कुपित रावणको सुग्रीवने युद्धके लिये भी ललकारा, उसके साथ युद्ध किया, पीछे देखा कि रावण अब माया युद्ध करना चाहता है, तब सुग्रीव सकलसद्गुणाराम श्रीरामके पास चले आये ॥ ३३ ॥

ततो [1]विरचिततत्साहसो[2]पालम्भविधिना दाशरथिना [3]संमन्त्र्य मन्त्रिभिः [4]समादिष्टः साधिष्ठभुजशौर्यशाली वालिनन्दनः सलीलं साल[5]मुल्लङ्घ्य लङ्कां प्रविश्य निःशङ्को[6] नृशंसमिति शशंस निशिचरपतिम्।

तत इति। ततः रावणेन सह युद्धं कृत्वा सुग्रीवे रामसमीपं प्राप्ते सति विरचित-तत्साहसोपालम्भविधिना निन्दितसुग्रीवकृतरावणोपरिपतनरूपकर्मणा 'असंमन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम्। एवं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनेश्वराः' इत्यादिना रामायणोक्तप्रकारेण विभीषणस्य रावणोपरिपतनरूपं हठकर्म निन्दता दाशरथिना रामेण मन्त्रिभिः सह सुग्रीवविभीषणादिस्वसचिवैः सह संमन्त्र्य सम्यग्विचार्य समादिष्टः रावणाय सन्देशं कथयितुङ्गच्छेत्याज्ञप्तः साधिष्ठभुजशौर्यशाली प्रचुरतर-बाहुवीर्योपपन्नः वालिनन्दनः अङ्गदः सलीलम् अनायासम् सालम् लङ्कानगर-प्राकारम् उल्लङ्घ्य अतिक्रम्य लङ्कां प्रविश्य निश्शङ्कः निर्भयो भूत्वा नृशंसं क्रूर-कर्माणं निशि चरपतिम् रक्षोराजम् ।रावणम् इति एवंवक्ष्यमाणदिशा शशंस अवोचत। 'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः।

इसके बाद सुग्रीवकी साहसिकताकी निन्दा करके रामने मन्त्रियोंके साथ राय करके प्रचुर पराक्रमशाली अङ्गदको रावणके पास सन्देश लेकर जानेकी आज्ञा दी, आज्ञा

१. 'विरचित' इति नास्ति क्वचित्। २. 'सोपलम्भ' इति पाठान्तरम्। ३. 'समामन्त्र्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'सममादिष्ट' इति पाठान्तरम्। ५. 'उल्लङ्घयन्' इति पाठान्तरम्। ६. 'निःशङ्क' इति नास्ति क्वचित्।

पाकर अङ्गदने खेलमें ही चाहारदीवारी तड़पकर लङ्कामें प्रवेश किया और निर्भय होकर क्रूरकर्मा रावणसे इस प्रकार कहा।

सोऽहं प्लवङ्गमपतेस्तनयस्त्वदीय-
निःश्वासगन्धिनिजवालधिमण्डलस्य।
कालस्य दूषणखरत्रिशिरोमुखानां
पौलस्त्य ! मां रघुपतेरवधेहि दूतम् ॥ ३४ ॥

सोऽहमिति। हे पौलस्त्य, रावण, सः प्रसिद्धः अहम्, त्वदीयानां त्वत्सम्बन्धिनां निःश्वासानाम् दुःखव्यञ्जकोच्छ्वासानाम् गन्धो यत्र तादृशम् निजवालधिमण्डलम्, पुच्छरोमसमुदयो यस्य तस्य तथोक्तस्य (वाली पुरा रावणं स्वपुच्छवालैर्बबन्ध, तद्बन्धनबद्धेन रावणेन तत्र दुःखश्वासा व्यसृज्यन्त, तेन तच्छ्वासगन्धसम्पर्को वालिवालधिमण्डले जात इत्यर्थकमिदं विशेषणम्) प्लवङ्गमपतेः वानरराजस्य वालिनः तनयः पुत्रः अस्मीति शेषः। दूषणः खरः त्रिशिराः, सर्वेऽपि राक्षसाः तन्मुखानानाम् तत्प्रभृतीनां कालस्य मारयितुः रघुपतेः मां दूतम् अवेहि जानीहि। अहं वालिनः पुत्रो यस्त्वां पुच्छमण्डले बद्ध्वा त्वन्निःश्वासैः स्ववालधिमण्डलमवासयत्तस्य रामस्य चाहं दूतोऽस्मि यस्तवात्मीयान् दूषणखरप्रभृतीनहन्, हे रावण, ममेमं परिचयं प्रतीहि, इति भावः। निजस्वरूपप्रकाशनव्याजेनात्र रावणस्य मर्म व्यथितमिति बोध्यम्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

अजी पौलस्त्य, मैं तुम्हारे निश्वासकी गन्धसे वासित हैं पूँछके बाल जिसके ऐसे वानरराज वालीका पुत्र तथा दूषण, खर, त्रिशिरा आदि राक्षसोंके लिये यमराजतुल्य रघुपतिका दूत हूँ ॥ ३४ ॥

रक्षःपते ! रघुपतेर्नयनं तृतीय-
मास्कन्दनीयमिति हा मनुषे कलत्रम्।
अम्भोजमित्यलिकसंभवमक्षि शंभो-
र्मन्दाकिनीमधुकरस्तु यथा मदान्धः ॥ ३५ ॥

रक्षःपत इति। हे रक्षःपते राक्षसराज, रघुपतेः रामस्य तृतीयं नयनम् तृतीयनेत्रतुल्यम् (अतिशयस्नेहभाजनत्वं परानभिभवनीयत्वं च द्योतयितुमिदं विशेषणं प्रयुक्तं बोध्यम्) कलत्रम् भार्याम् सीताम् आस्कन्दनीयम् आक्रमणीयम् इति मनुषे जानासि, हा खेदास्पदोऽयं विषयो यद् रामस्य प्रियामपि साधारणस्त्रीभावेन त्वमवगच्छसीत्यर्थः; यथा मदान्धः विवेकशून्यः मन्दाकिनीमधुकरः आकाशगङ्गा-

---

७. 'रोधि' इति पाठान्तरम्।

सञ्चारीभ्रमरः शम्भोः शिवस्य अलिकसम्भवम् ललाटजम् अक्षि तृतीयं नेत्रम् अम्भोजम् कमलम् इति (मन्वीत)। यथाऽऽकाशगङ्गासञ्चरणाभ्यासवशात् तत्रस्थहेमाम्भोजसततपरिचयात् कश्चन मदमत्तो भ्रमरो वर्णसाम्यवशात् स्मरहरस्य तृतीयं नेत्रं कमलत्वेन प्रमाय तत्रास्कन्दनं कुर्यात्तथा कृत्वा चाग्नौ शलभतां लभेत, तथैव रामस्य प्रियां सीतां साधारणस्त्रीभावेनोपगच्छतस्तव निश्चितं मरणमित्युपमाद्योत्यम्। 'ललाटमलिकं गोधिः' इत्यमरः॥ ३५॥

अजी राक्षसराज, रघुपतिकी तीसरी आँखकी तरह प्यारी स्त्री सीताको आप साधारण स्त्री की तरह आक्रमणीय मान लिया है, जैसे मदमत्त आकाशगङ्गाविहारी भ्रमर महादेवके ललाटनेत्रको कमल मानकर उसपर लिपट जाय, यह बहुत दुःखद विषय है। (जिस प्रकार वह भ्रमर जल जाता है उसी तरह आपका भी नाश निश्चित है)॥ ३५॥

किञ्च—

एकं हैहयसंभवात्परिभ[1]वान्म्लानं द्वितीयं पुन-
र्दैत्येन्द्राविनयात्तृतीयमपि मे ताताहिताद्वैकृतात्।
इत्थं त्वच्चरितैः पितामह[2]मुखान्येकं विनैवाभवं-
स्तच्चैकं न विधेहि दाशरथये देया त्वया मैथिली॥ ३६॥

एकमिति। हे दैत्येन्द्र, हैहयसंभवात् कार्त्तवीर्यकृतात् परिभवात् कारागारनिक्षेपरूपतिरस्कारात् हेतोः एकं पितामहमुखं म्लानं खिन्नम्, (मत्कुलावतंसस्य रावणस्य हैहयात् परिभवः प्राप्त इति चिन्तयतो धातुरेकं मुखं म्लानमजनीत्यर्थः) तथा तव अविनयात् लोकविद्वेषाचरणपरायणत्वात् द्वितीयं मुखं ब्रह्मणो म्लानम्, तृतीयमपि च ब्रह्मणो मुखं मे ममाङ्गदस्य ताताहितात् पित्रा वालिना कृतात् वैकृतात् वालेन निबध्य चिरं कक्षे निक्षेपणरूपात् विकारात् म्लानम्, इत्थम् अनेन प्रकारेण त्वच्चरितैः अयशस्करैस्तव चरितैः एकं विना एकं हित्वा त्रीण्यपि पितामहमुखानि म्लानानि अभवन् अजायन्त, तच्चैकमवशिष्टं मुखं सीताहरणेन म्लानं न विधेहि मा कार्षीः, अतः त्वया दाशरथेन रामाय मैथिली सीता देया प्रत्यर्पणीया। विधातुश्चत्वारि मुखानि तेष्वेकं मुखं तदाम्लानं जातं यदा ब्रह्मणो वंशे जातं त्वां कार्त्तवीर्यो निजकारागरे स्थापयित्वाऽभिभूतवान्द्वितीयं च तन्मुखं तवाविनयान्म्लानिं गतं, तृतीयं पुनस्तद्वदनं मम तातेन त्वयि स्ववालबद्धे सति म्लानं तदित्थं त्रीणि तन्मुखानि क्रमशो म्लानिमभजन्त, एकं पुनरवशिष्यते, रामदारानपहृत्य भवता तदपि मा म्लानं कारि, तदाशु रामाय सीतां समर्प्य स्ववंशपितामहस्य ब्रह्मण एकमपि मुखमम्लानं यथा तिष्ठेत्तथा यातेथा इत्याशयः। अत्र पितामह-

१. 'वाद्म्लानम्' इति पाठान्तरम्। २. 'मुखानि' इति पाठान्तरम्।

मुखानां म्लान्यसंबन्धेऽपि तत्संबन्धोक्तेरतिशयोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

विधाताके चारमुखोंमेंसे एक मुख तभी म्लान हो गया जब कार्त्तवीर्यने आपको जेलमें रखकर अभिभूत किया, दूसरा मुख आपके अविनीत आचरणोंसे म्लान हुआ, तृतीय मुख हमारे पिताद्वारा आपके बाँधे जाने पर म्लान हुआ, इस तरह एकको छोड़कर तीनों शेष मुख म्लान हो चुके हैं, अब यदि आप सीताको नहीं लौटाते हैं तो वह चतुर्थ मुख भी म्लान हुए विना नहीं रहेगा, अतः हे दैत्येन्द्र रावण, आप सीताको रामके हाथोंमें दे दीजिये ॥ ३६ ॥

कौबेरस्य तु पुष्पकस्य हरणं कैलासविक्षेपणं
दिक्पालाक्रमणं च जल्पसि मुहुः किम्वा यशस्तावता।
वेषं [1]संयमिनां विधाय विजने देवीं वने जानकीं
वेगादाहरता त्वयाद्य [2]रचितं वीरव्रत[3]स्योचितम् ॥ ३७ ॥

कौबेरस्येति। कौबेरस्य कुबेरस्वामिकस्य पुष्पकस्य पुष्पकनामकविमानस्य हरणं स्वाधीनीकरणम्, कैलासविक्षेपणम् हराचलचालनम्, दिक्पालानाम् दिगधिपानां शक्रादीनाम् आक्रमणम् बलादभिभवं च मुहुः वारं वारं जल्पसि भाषसे तावता तेन किम्वा यशः कियती कीर्त्तिस्त्वयाऽर्जिता? नार्जिता भवता तैः कर्मभिः कीर्त्तिः, कुबेरस्य ज्येष्ठभ्रातुः पराजयेऽयश एव तस्य पूज्यस्याभिभवायोग्यत्वात्, कैलासचालनेऽपि बाहुबलं न प्रमितं, तत्रापि चरमांशेऽयशःसमुदयात्, दिक्पालानां मर्यादापालनाज्जगदुपकारकाणां पीडनमपि न स्तुतिपदं तदित्थं यैः कर्मभिरात्मानं श्लाघसे तानि कर्माणि तव निन्दामेव व्यञ्जयन्तीत्यर्थः। संयमिनां साधूनां वेषं रक्ताम्बरत्वादिकं विधाय कृत्वा विजने एकान्ते वने कानने देवीं जानकीं सीतां वेगात् त्वरया हरता अपकर्षता त्वया अद्य अधुना वीरव्रतस्य उचितम् वीरयोग्यं कार्यं रचितम् कृतम्। वीरजनयोग्यं कार्यं कृतमिति विपरीतलक्षणया तद्विपरीतार्थपर्यवसायि बोध्यम्। शार्दूलविक्रीडितमेव वृत्तम् ॥ ३७ ॥

कुबेरसम्बन्धी पुष्पकका हरण, कैलासाचलका उत्थापन एवं दिक्पालों पर किये गये आक्रमणकी क्या बात कर रहे हो? उससे कितना यश आपको मिलेगा? हाँ, संन्यासियोंका वेष बनाकर एकान्त वनमें देवी जनकात्मजाका वेगपूर्वक आपने अपहरण किया वही आपके सदृश वीरोंके लिये उचित कार्य हुआ, उससे आपकी कीर्त्ति फैल गई ॥ ३७ ॥

---

१. 'संयमिनः' इति पाठान्तरम्। २. 'रचिताम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'औचितम्' इति पाठान्तरम्।

किं बहुना—

पूजोपहाररचनाय पुरा पुरारे-
शिछन्नेषु मूर्धसु नवस्ववशेषितं यत्।
देवस्तदद्य कुतुकी दशमं शिरस्ते
रामो बलिं रचयितुं रणदेवतायै ॥ ३८ ॥

किं बहुना, पूजेति। बहुना किम् किमधिकेनोक्तेन, वाक्प्रपञ्चस्य नास्त्यवसर इत्यर्थः, पुरा पूर्वकाले पुरारेः शिवस्य पूजोपहाररचनाय पूजायां बलिरूपेणापहर्तुं त्वया नवसु शिरस्सु स्वमस्तकेषु छिन्नेषु कृत्तेषु यत् दशमं शिरो मस्तकम् अवशेषितम् उर्वरितम्, तत् ते दशमं शिरः अद्य अधुना कुतुकी रणप्रियो देवो रामः रणदेवतायै युद्धाधिष्ठात्र्यै देवतायै बलिम् उपहारं रचयिता कर्त्ता। पुरा शिवपूजायां नवसु शिरस्सु छित्त्वा त्वयोपहृतेष्वेकं ते शिरो यदवशिष्टं दशमं तदद्य रणकौतुकधरो रामो रणदेवताया उपहारतां प्रापयिष्यतीत्यर्थः। यदि जानकीं न प्रत्यर्पयिष्यसि तदा रामस्त्वामाशु हनिष्यतीति भावः ॥ ३८ ॥

पूर्व समयमें महादेवकी अर्चनामें आपने अपने नव शिर काटकर चढ़ा दिये थे और एक शिर बचा था। उस बचे हुए आपके दशवें शिरको रणकुतुकी राम अब रणदेवताकी बलि बनायेंगे, अतः आप शीघ्र सीताको लौटाकर अपनी जान बचावें ॥ ३८ ॥

[1]अनन्तरमरुन्तुदभाषणरोषणेन रावणेन [2]'गृह्यतां गृह्यतामयम्' इति सरयमादिष्टानवलम्बितभुजप्रकोष्ठानाशरांश्चतुरश्चतुरोऽयं भुजंगानिव विहंगाधिपो गृहीत्वा [3]दिवि समुत्पत्य चैतान्निपात्य [4]पादेन [5]तत्[6]प्रासादशृङ्गं रिपोः शिरोभङ्गमिव विभिन्दन्नविन्दन्[7]कमप्यात्मनः प्रतिरथं [8]पङ्क्तिकण्ठोपकण्ठभुवः पङ्क्तिरथभुवो विवेश निवेशम्।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् अङ्गदभाषणश्रवणात् परतः अरुन्तुदभाषणरोषणेन अङ्गदकृतमर्मव्यथककथाकुपितेन रावणेन—'अयं वानरः गृह्यताम् गृह्यताम्' इति एवंप्रकारेण सरयम् वेगेन आदिष्टान् आज्ञापितान् अवलम्बितभुजप्रकोष्ठान् धृताङ्गदकराग्रभागान् चतुरः चतुःसंख्याकान् आशरान् राक्षसान् अयं चतुरः, बुद्धिमान् अङ्गदः विहंगाधिपः पक्षिराजो गरुडः भुजङ्गान् सर्पान् इव गृहीत्वा आदाय दिवि

१. 'एवमरुंतुदभाषण' इति पा०। २. 'गृह्यतामयं निगृह्यतामिति' इति पा०।
३. 'भुवि निपात्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'पादाहतेन' इति पाठान्तरम्।
५. 'तत्' इति नास्ति क्वचित्। ६. 'प्रासादशृङ्गमपि भिन्दन्' इति पाठान्तरम्।
७. 'कमपि' इति नास्ति क्वचित्। ८. 'पङ्क्तिकण्ठोपकण्ठभुवः' इति नास्ति क्वचित्।

आकाशे समुत्पत्य उड्डीय च एतान् हस्तग्राहिणश्चतुरोऽपि राक्षसान् निपात्य भुवि पातयित्वा तत्प्रासादशृङ्गं रावणसम्बन्धिप्रासादशिखरं रिपोः शत्रोः शिरोभङ्गम् शिरोदेशमिव विभिन्दन् विपाटयन्, कमपि आत्मनः स्वस्य प्रतिरथं प्रतिभटम् अविन्दन् अलभमानः पङ्क्तिकण्ठो दशग्रीवस्तदुपकण्ठभुवस्तत्समीपदेशात् पङ्क्तिरथो दशरथस्तद्भुवस्तदात्मजस्य रामस्य निवेशम् शिविरं विवेश प्रविष्टः, अङ्गदेनैवं कटूक्तः कुपितो रावणस्तद्ग्रहणाय राक्षसानादिदेश, तदादिष्टाश्चत्वारो राक्षसा अङ्गदहस्तमग्रहीषुः, ताँश्चायमादाय भुजगान् गरुड इव वियदुत्पपात, ताँश्च वियतोऽपातयत्, अनन्तरं च रावणस्य प्रासादशिखरं शत्रोर्मस्तकमिवाभिनत्, ततः कस्यापि प्रतिभटस्यालाभेन रावणनिवासदेशं विहाय रामस्य सेनासन्निवेशमाससादेति भावः।

इसके बाद मर्मको चोट पहुँचाने वाले अङ्गदवचनोंसे कुपित होकर रावणने 'इसको पकड़ो पकड़ो' इस प्रकारकी आज्ञा वेगसे दे दी। आज्ञा पाते ही चार राक्षसोंने अङ्गदको पकड़ लिया। चतुर अङ्गद उन चारो राक्षसोंको लेकर आकाशमें उड़ गया जैसे गरुड़ सर्पोंको लेकर आकाशमें उड़ते हैं, आकाशमें उड़कर अङ्गदने उन राक्षसोंको वहींसे जमीन पर पटक दिया और शत्रुके शिरके समान रावणके प्रासादको पादप्रहारसे तोड़ते हुए किसी प्रतिभटको लड़नेके लिये आते नहीं देखकर रावणके समीप देशसे रामके शिविरमें चला आया।

रघुतनयस्ततो विदितरावणदुर्विनयः
कुपितमना मनागिव दधे कुटिलां भ्रुकुटिम्।
अथ परिवव्रुराशरपुरं हरयः सरयं
युगविगमे यथा युगपदम्बुधिमौर्वशिखाः ॥ ३९ ॥

रघुतनय इति। ततः अङ्गदागमनानन्तरम् विदितरावणदुर्विनयः अङ्गदवचनादवगतरावणविवेकशून्यभावः रघुतनयः रामः मनाक् किञ्चित् कुटिलाम् वक्राम् इव भ्रुकुटिम् भ्रूभङ्गम् दधे भ्रुवौ किञ्चित् कुटिलीचकारेत्यर्थः, भ्रुवोः कौटिल्यस्य कोपव्यञ्जकतया कोपं प्राकाशयदित्याशयः। अथ हरयो वानराः सरयं वेगेन यथा युगविगमे युगान्तकाले और्वशिखाः वडवानलज्वालाः अम्बुधिं सागरम् (परिवृण्वन्ति तथा) तथा आशरपुरं राक्षसनगरीं लङ्कां परिवव्रुः वेष्टितवन्तः। रामे कोपेन पश्यति वानरा वेगेन राक्षसपुरीं लङ्कां परिवृण्वन्ति स्म यथा प्रलयकाले वाडववह्निशिखाः सागरं परिवृण्वन्ति तथेत्यर्थः, 'क्रव्यादोऽस्रप आशरः' इत्यमरः। उपमालङ्कारः ॥ ३९ ॥

इसके बाद अङ्गदके कहनेसे रावणके दुर्विनयको जानकर रामने अपनी भ्रुकुटि तनिक

टेढ़ी की, बस, वानरोंने वेगसे राक्षसपुरी लङ्काको घेर लिया, जैसे प्रलयकालमें वड़वानलकी ज्वालायें समुद्रको घेरती हैं ॥ ३९ ॥

ततो मद[1]परिप्लवप्लवगवीर[2]सांराविण-
क्षणक्षुभितकोणपप्रकरपाणिकोणाहतः ।
रवैरधिकभैरवैरुपरुरोध रोदोन्तरं
तरङ्गितघनाघनस्तनितबन्धुभिर्दुन्दुभिः ॥ ४० ॥

तत इति । ततः वानरैर्लङ्कायामुपरुद्धायां सत्याम् मदपरिप्लवानाम् दर्पोद्रिक्ततया चञ्चलानां प्लवगवीराणां वानरशूराणाम् सांराविणक्षणे कोलाहलकाले क्षुभितानां युद्धार्थसन्नाहाय चलतां कोणपप्रकराणाम् राक्षससमुदयानाम् पाणिकोणैः हस्तैकदेशैः आहतः ताडितः दुन्दुभिः भेरीनाम्ना प्रसिद्धो वाद्यभेदः, तरङ्गितानामविच्छिन्नानां घनाघनानां वर्षुकमेघानां स्तनितस्य गर्जितस्य बन्धुभिः सदृशैः अधिकभैरवैः अत्यर्थभीषणैः रवैः शब्दैः रोदोऽन्तरम् द्यावापृथिव्योरन्तरम् उपरुरोध व्याप्तवान् । दर्पोद्धताः कपयः किलकिलाशब्देन राक्षसान् युद्धाय क्षोभयामासुर्युद्धोद्यता राक्षसाः पाणिभिर्दुन्दुभिमताडयन्, तच्छब्दश्च सजलजलदरवानुकारी भयङ्करश्च भूत्वा दिवं पृथिवीं च व्याप्नोत् इत्यर्थः । 'आरवारावसंराव' इत्यमरः, संरावशब्दप्रकृतिभूतसमुपसर्गकरुधातोः 'अभिविधौ भाव इनुण्' इतीन्, ततः 'सांराविन्'शब्दात् 'अणिनुणः' इत्यण्, एवं सांराविणपदसिद्धिः । 'राक्षसः कोणपः क्रव्यात्' 'भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्' 'वर्षुकाब्दा घनाघनाः' 'द्यावापृथिव्यौ रोदस्यौ द्यावाभूमी च रोदसी' इति सर्वत्रामरः । 'ज्ञातिसोदरबन्ध्वादिशब्दाः सादृश्यवाचकाः' इति चाहुः । अत्र दुन्दुभिशब्दानां रोदोऽन्तरव्याप्तसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः, पृथ्वीवृत्तम् ॥ ४० ॥

इसके बाद दर्पोद्धत वानरवीरों द्वारा किये गये कोलाहलकालसे घबड़ाये हुए राक्षसोंके समुदायके हाथोंके एक भागसे आहत दुन्दुभिने अपने अतिभीषण अविच्छिन्न वरसाती मेघके शब्दके समान शब्दसे आसमान तथा जमीनके अन्तरको भर दिया ॥ ४० ॥

तेन[3] समन्ततः कन्दलयता दलयतेव जगन्ति दुन्दुभिनिर्घोषेण रोषेण च प्रेर्यमाणा [4]बुद्धाः केसरिण इव गिरिकन्दरान्मन्दिरान्निर्गत्य गत्यन्तरायसंधायकान्यपत्यानीवानिमित्तान्य[5]विलोकमाना विमानाधिगतविबुधसीमन्तिनीभिः सह विजिहीर्षयेव प्रस्थानसमयपरिम्लानमुखीः

१. 'परिप्लवत्' इति पाठान्तरम् । २. 'संरम्भण' इति पाठान्तरम् ।
३. 'तेन च' इति पाठान्तरम् । ४. 'बुद्धाः' इति नास्ति क्वचित् ।
५. 'अनवलोकमाना' इति पाठान्तरम् ।

सुमुखीरप्यगणयन्तो निरन्तरज्वलितकोपानलनयनकोणारुणालातशतनिपातवित्रासचलितनिजवारण[1]निवारणावेशपरवशा दिशामुख[2]मुखरशिवारवाम्रेडितद्वेलिता[3]कुलकुलमहीध्रा गृध्रायतपक्ष[4]विक्षेपाकुलपताकानीकसमुत्तुङ्गशताङ्गसंघातपरिगता नितान्त[5]निशितकृतान्तदंष्ट्रापटलखरतरनखर[6]पट्टिसप्रासपरशुगदा[7]मुसलपरिघद्रुघणधारिणो दारुणाजगरसंतानसंवीता इव विन्ध्यकूटा, व्यूढातिकरालकालयसकङ्कटा विकल्पा इव कल्पाम्बुदानां, व्यक्तय इव कालरात्रेर्विवर्ता इव [8]कलिकालस्य कालस्यापि भयंकराः, संगराङ्गणमवतरन्तः, समीरयन्तो वीरवादाना[9]दाय शरासनमासारैरिव गिरिमम्भोधरा दूरापातिभिः शिलीमुखैर्वलीमुखबलमखिलमक्षोभयन्त रक्षोभटाः।

तेनेति। तेन समन्ततः सर्वतः कन्दलयता व्याप्नुवता जगन्ति त्रीनपि लोकान् दलयता विपाटयता इव दुन्दुभिनिर्घोषेण भेरीशब्देन रोषेण वानरकृताक्रमणजनितकोपेन च प्रेरिताः सतर्कीकृताः बुद्धाः सावधानाः लब्धजागराश्च केसरिणः सिंहा इव रक्षोभटाः राक्षसयोद्धारः गिरिकन्दरात् पर्वतगुहाप्रदेशात् इव मन्दिरात् स्वावासभवनात् निर्गत्य बहिरागत्य, गत्यन्तरायसन्धायकानि गमनविघ्नकराणि अनिमित्तानि दुःशकुनानि अपश्यानि सन्ततीः इव अविलोकमानाः, (यथा क्वचिद्गन्तुकामाः पितरः स्नेहेनाङ्कमारोढुकामान् गतिप्रतिबन्धकांश्च शिशूनवश्यगन्तव्ये सति अवीक्षमाणा इव गच्छन्ति तद्वदमी राक्षसा अपि दुर्निमित्तानि पश्यन्तोऽप्यपश्यन्त इव चलिता इत्याशयः) विमानाधिगताभिः समराङ्गणे त्यक्ष्यमाणप्राणान् शूरान्वरीतुं विमानमारुह्यागताभिः विबुधसीमन्तिनीभिः देवबालाभिः सह विजिहीर्षया विहारकामनया इव प्रस्थानसमयपरिम्लानमुखीः सुमुखीः सुन्दरीः स्वभार्या अपि अगणयन्तः अनाद्रियमाणाः, (यथा कश्चिदन्यां स्त्रियं रमयितुं प्रतिष्ठमानः प्रवत्स्यत्पतिकतया म्लानवदनामपि स्वस्त्रियमुपेक्ष्य प्रतिष्ठते तथामी राक्षसभटाः विमानागतदेवबालाभिः सह विहर्तुमिव-युद्धे प्राणान् हित्वा ता वरीतुमिव

---

१. 'णानिवारणावेशपरवशनिजाशयाः' इति पाठान्तरम्।
२. 'मुखरित' इति पाठान्तरम्। ३. 'व्याकुलीकृत' इति पाठान्तरम्।
४. 'विशेषकृतपताकानिकायपुनरुक्तसमुत्तुङ्ग' इति पाठान्तरम्।
५. 'निशिताकृतान्तदंष्ट्राखरतर' इति पाठान्तरम्।
६. 'पट्टीस' इति पाठान्तरम्। ७. 'मुसलशक्तितोमरमुद्गरपरिघद्रुघण' इति पा०।
८. 'कलिकालस्य च भयंकराः समराङ्गणमवतारयन्तः' इति पाठान्तरम्।
९. 'आदाय च' इति पाठान्तरम्।

ब्रजन्तो निजाङ्गना अवधीर्य चलिता इत्यर्थः) निरन्तरम् सततम् प्रज्वलन् कोपः एव अनलः लौहित्याधायकतया वह्निर्येषां ते तथोक्ताः नयनकोणाः नयनप्रान्ता एव अरुणालातशतानि रक्तवर्णोल्मुकशतानि तेषां निपातात् प्रसारात् वित्रासो भयम् ततः चलितानां भयवशादुत्पथप्रस्थितानां निजवारणानाम् स्वसंबन्धियुद्धगजानाम् निवारणे यथापथानयने यः आवेश आग्रहातिशयस्तत्परवशा तत्पराः (इव) रक्तानि योद्धृनयनानि वीक्ष्य तान्युल्मुकानि संभाव्य भयेनेतस्ततः प्रचलतां करिणां नियन्त्रणे तत्परा इत्यर्थः, दिशामुखेषु दिशासु मुखराणां शिवानां क्रोष्ट्रीणां रवाम्रेडितानि शब्दावृत्तयः, क्ष्वेडितानि सिंहनादाश्च तैराकुलाः सङ्कुलाः कुलमहीध्राः महेन्द्रो मलयः सह्यः इत्यादिपरिगणिताः पर्वताः यैस्तादृशाः, गृध्राणां कङ्कानां ये आयताः विस्तृताः पक्षाः तेषां विक्षेपः चलनैः आकुलानि युक्तानि पताकानीकानि पताकायुक्तसैन्यानि येषां ते तथोक्ताः कङ्काधिष्ठितध्वजदण्डा इत्यर्थः, तथा समुत्तुङ्गाः अत्युन्नताः ये शताङ्गसङ्घाताः रथसमुदयाः तत्परिगताः तदारूढाः, नितान्तनिशितानि अतितीक्ष्णानि कृतान्तस्य यमस्य दंष्ट्रापटलवत् दन्तसमुदायवत् खरतराणि तीक्ष्णानि दुर्निवाराणि च यानि—नखराः नखाः, पट्टिसः तीक्ष्णधारो महाँश्च खड्गः, प्रासः कुन्तापरपर्यायः क्षेपणीय आयुधविशेषः, परशुः कुठारः, गदा, मुसलानि अयोग्राः काष्ठदण्डाः, परिघाः अयोमयदण्डाः, द्रुघणाः वृक्षपातोपयोगा महामुद्गराः, खड्गः स्वनामख्यातः, एतानि आयुधानि धारयन्ति ये ते तथोक्ताः दारुणाजगरसन्तानसंवीताः भयङ्कराजगरसर्पसमुदायवेष्टिताः विन्ध्यकूटाः विन्ध्याचलशिखराणि इव, व्यूढाः धृताः अतिकरालाः समधिकभयजनकाः कालायसकङ्कटाः श्यामलौहनिर्मितोरश्छदा यैस्ते तथोक्ताः (श्यामलवर्मधराः) कल्पाम्बुदानां प्रलयकालवारिदानां विकल्पाः प्रभेदा इव, कालरात्रेः प्रलयनिशायाः व्यक्तयः मूर्त्तयः इव, कालिकालस्य कलियुगस्य विवर्त्ताः परिणामा इव, कालस्य यमस्यापि भयङ्कराः त्रासजनकाः, समराङ्गणम् युद्धक्षेत्रम् अवतरन्तः आगच्छन्तः, वीरवादान् छिन्धि भिन्धि इत्यादि वीरजनोचितशब्दान् समीरयन्तः उच्चारयन्तः, रक्षोभटाः राक्षसयोधाः शरासनम् चापम् आदाय गृहीत्वा अम्भोधराः मेघाः आसारैः जलधाराभिः गिरिं पर्वतम् इव दूरपातिभिः दूरपर्यन्तगामिभिः शिलीमुखैः बाणैः अखिलम् समस्तं बलीमुखबलम् वानरसैन्यम् अक्षोभयन्त विचलितं कृतवन्तः। अत्र सन्दर्भे क्रमशः 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' 'अलातमुल्मुकं ज्ञेयम्' 'शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री' 'आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तम्' 'क्ष्वेला तु सिंहनादः स्यात्' 'शताङ्गः स्यन्दनो रथः' 'उरश्छदः कङ्कटकः' 'धारासम्पात आसारः' इति सर्वत्रामरः। उपमारूपकभ्रान्तिमतां सर्वत्र प्रयोगो बोध्यः।

वह दुन्दुभिघोष चारो ओर फैल गया, ऐसा मालूम पड़ता कि वह तीनो लोकको फाड़ डालेगा, उस दुन्दुभिघोष तथा क्रोधसे प्रेरित हो—जगे हुए सिंह जैसे पर्वतकन्दरासे

निकलते हैं उसी तरह अपने मकानसे बाहर आये हुए राक्षसभटोंने गमनविघ्न उत्पन्न करनेवाले बच्चोंकी तरह अपशकुनोंको अनदेखा कर दिया, विमान पर चढ़कर आई हुई देवाङ्गनाके साथ विहार करनेकी इच्छासे प्रस्थानकालमें मुरझाया हुआ चेहरा लेकर खड़ी हुई अपनी प्यारी स्त्रियोंको उपेक्षा कर दी, निरन्तर जलते हुए कोपसे रक्तवर्ण नयनकोण-रूप सैकड़ों उल्मुकोंको देखकर डरे हुए अपने हाथियोंको ठीक रास्तेपर लानेके वास्ते आग्रहपरायण, सभी दिशाओंमें शब्द करनेवाले शृगालोंके शब्द तथा सिंहनादसे कुल-पर्वत जिनके आकुल हो रहे हैं एतादृश, गीधोंके बड़े बड़े पंखोंके चलते रहनेके कारण जिनके पताकादण्ड हिल रहे हैं ऐसे, तथा ऊँचे २ रथों पर आरूढ़, अतितीक्ष्ण यमराजकी दन्तपरम्पराके समान कभी नहीं चूकनेवाले नख, पट्टस, भाले, फरसा, गदा, मुसल, परिघ, घन, आदि शस्त्रधारण करनेवाले, यह राक्षसभट ऐसे लग रहे थे मानो अजगर राशिसे परिवृत विन्ध्यपर्वतके शिखर हो. काले वर्णके अतिभीषण कवच धारण करनेके कारण वह रक्षोभट प्रलयकालके मेघोंके समान दीखते थे, ऐसा मालूम पड़ता था मानो कालरात्रि व्यक्ति बनकर आई हो, इन रक्षोभटोंको देखकर यमराजको भी भय लग सकता था। ऐसे इन रक्षोभटोंने धनुष लिये समरक्षेत्रमें आकर मारो-काटोकी आवाज मचा दी, और जैसे मेघ अपनी जलधारासे पर्वतको गलथला देता है, उसी तरह दूरसे गिरनेवाले अपने बाणोंसे समस्त वानरसैन्यको चलायमान कर दिया।

ततो धुतनखायुधस्तरुपरित्रुटत्तोमरः
शिलानिहतमुद्गरः शिखरिभिन्नमत्तद्विपः।
स्वपक्षविजयैषिभिर्दिवि सुरासुरै रातुरै[१]-
रलक्षि हरिरक्षसामतिभयंकरः संगरः॥ ४१॥

तत इति। ततः राक्षसभटैर्वानरसैन्ये क्षोभिते सति धुतनखायुधः चालितनख-रूपास्त्रैः तरुभिः प्रहृतैर्वृक्षैः परित्रुटन्तः तोमराः दण्डविशेषा यस्मिंस्तथोक्तः शिलाभिः पर्वतखण्डैः निहतः मुद्गरो यत्र तादृशः, शिखरिभिः प्रहरणसाधनीकृतैश्च पर्वतैः भिन्नाः विपाटिताः मत्तद्विपाः मदमत्तदन्तिनो यत्र तथाभूतः अतिभयङ्करः साति-शयभयजनकः हरिरक्षसां वानरराक्षसानां संगरो युद्धम् स्वपक्षविजयैषिभिः स्वस्व-दलजयकामुकैः आतुरैः व्यग्रैः दिवि आकाशे स्थितैः सुरासुरैः देवदानवैः अलक्षि अवलोकितः। अयमर्थः—हरयो राक्षसाश्च परस्परं युध्यमाना नखैरस्त्रैरिव व्यवजह्रुः, तरुप्रहारेण तोमराणि बभञ्जुः, शिलाभिर्मुद्गरं निजघ्नुः, पर्वतप्रहारेण हस्तिनोम-र्दयामासुस्तदिदं भीषणं युद्धं स्वस्वपक्षजयार्थिनो देवा दानवाश्च दिवि स्थिताः सन्तो व्यग्रभावेन ददृशुरिति॥ ४१॥

---

१. 'आकुलैः' इति पाठान्तरम्।

इसके बाद चल रहे हैं नखरूप आयुध जिसमें, वृक्षोंके द्वारा प्रकृत होनेसे टूट रहे हैं तोमर जिसमें, शिला प्रहारसे मुद्गर आहत हो रहे हैं, पहाड़के द्वारा प्रहृत होकर हाथी पिस रहे हैं ऐसे अतिभयङ्कर वानरराक्षस युद्धको अपने अपने पक्षकी विजय कामना करने वाले देव और दानवोंने आतुरभावसे आकाशमें अवस्थित होकर देखा ॥ ४१ ॥

क्रमेण च कुपितकपिवीर[1]दूरीकृतनैर्ऋत[2]वीरभुजप्रतापानल इवास्तं भजति [3]भानुमति, मथितायुधिकगलनाल[4]प्रणालीपरीवाहलोहितनदीपूर इव [5]दूरमन्तरितहरिदाभोगे संध्यारागे [6]समुदञ्चिते, विक्रान्तहरिनखाक्रान्तदन्तावलविपुलकुम्भस्थलमुक्तमुक्ताकलाप इव [7]विजृम्भमाणे वियति [8]तारागणे, रणरभसचलित[9]रथतुरगपदातिगजपदाहतविश्वंभरान्तरालजनुषि रजसीव भुवनमास्कन्दति तमसि, तामसीचरेष्विव सशोकेषु [10]यामिनीविरहविहगेषु, आशरकरेष्विव सकोशेषु तामरसेषु, दाशरथिबल इव प्रमदाकरे कुमुदाकरे ।

क्रमेण चेति । क्रमेण कालक्रमेण कुपितैः राक्षसानां संहाराय धृतक्रोधैः कपिवीरैः वानरभटैः दूरीकृतः क्षिप्तः (विजितः) यः नैर्ऋतवीराणां राक्षसयोधानां भुजप्रतापानलः बाहुबलवह्निस्तस्मिन्निव भानुमति सूर्ये अस्तं भजति अस्ताचलं गच्छति, (दिवसं युध्यमाना राक्षसाः कपिवीरैः पराजितास्ततस्तद्बाहुबलमस्तंगतं यथा सायं रविरस्तंगत इत्यर्थः) मथितानि छिन्नानि यानि आयुधिकानां गलनालानि तान्येव प्रणाल्यः जलनिर्गममार्गास्तत्परिवाहा तैः प्रवाहशाली यो लोहितनदीपूरः शोणितनदीप्रवाहस्तस्मिन्निव दूरम् सर्वत्र अन्तरितहरिदाभोगे अन्तर्हितदिशावकाशे सन्ध्यारागे सायङ्कालिकारुणिमनि समुदञ्चिते प्रकटिते सति, (योद्धारो हताः, कण्ठेभ्यस्तेषां प्रणालीभ्य इव रक्तप्रवाहो यथा निर्गत्य सर्वत्र प्रसृतः, तथा सन्ध्यारागोऽपि प्रसृत इत्यर्थः) विक्रान्तानां विक्रमशालिनां हरीणां वानराणां नखैः आक्रान्ताः आक्रम्य विपाटितकुम्भाः ये दन्तावलाः हस्तिनः तेषां विपुलेभ्यो विशालेभ्यः कुम्भस्थलेभ्यः मुक्तो निर्गतो यो मुक्ताकलापः मौक्तिकनिकरस्तस्मि-

---

१. 'विदूषित' इति पाठान्तरम् । २. 'वीर' इति नास्ति क्वचित् ।
३. 'भगवति भानुमति मथितायुधयातुधानगल' इति पाठान्तरम् ।
४. 'प्रणालपरिवाहि' इति पाठान्तरम् ।
५. 'विदूरम्' इति पाठान्तरम् । ६. 'समुदञ्चिते' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'वियति विजृम्भमाणे' इति पाठान्तरम् । ८. 'ताराङ्गणे' इति पाठान्तरम् ।
९. 'गजतुरगपदातिपादाहतविश्वविश्वंभरा' इति पाठान्तरम् ।
१०. 'यामिनीविरहविहगेषु आशरवरेष्विव सकोशेषु तामरसेषु' इति नास्ति क्वचित् ।

ष्विव तारागणे नक्षत्रनिकरे वियति विजृम्भमाणे स्फुटीभवति, (युद्धस्थले हरिविदारितकुम्भानां गजानां मस्तकेभ्यो निर्गताः मुक्ताः प्रकीर्णाः तथा आकाशे ताराः प्रकटीभूता इति सादृश्यम्) रणरभसेन युद्धोत्साहेन चलितानां सवेगं प्रस्थितानां रथतुरगपदातिगजानां यानाश्वपादचारिकरिणां पदैः चरणैः आहतायाः क्षुण्णायाः विश्वम्भरायाः धरायाः अन्तरालात् तलात् जनुः उत्पत्तिः यस्य तस्मिन् रजसि धूलौ इव तमसि अन्धकारे भुवनम् लोकत्रयम् आस्कन्दति व्याप्नुवति सति, (सायङ्काले तमो भुवनं व्याप्तवत्, यथा चतुरङ्गिण्याः पादैराहताया भुव उत्थितं रजो भुवनं व्याप्तवदित्यर्थः) तामसीचरेषु राक्षसेष्विव यामिनीविरहविहगेषु रात्रिवियोगिपक्षिषु चक्रवाकेषु सशोकेषु शुचाक्रान्तेषु, तामरसेषु पङ्कजेषु आशरकरेषु राक्षसहस्तेषु इव सकोशेषु मुद्रितेषु (मृतानां रक्षसां करा मुद्रिता भवन्ति यथा पद्मानि निशि सङ्कुचन्ति) दाशरथिबले इव रामसैन्ये इव कुमुदाकरे कुमुदवने प्रमदाकरे हर्षभाजि सति, (यथा सायं कुमुदकुलमानन्दति तथाऽऽनन्दति सति रामसैन्ये इति) अत्र सायंवर्णनेन प्रक्रान्तेन सह युद्धमपि वर्णनविषयतां नीतं तत्र सायं धर्मा उपमेया युद्धधर्माश्चोपमानानीति विवेचनीयम्। श्लेषसङ्कीर्णा पूर्णोपमाऽलङ्कारः।

क्रमसे कुपित वानरवीरों द्वारा रणसे भगाये गये राक्षसवीरोंके प्रतापानलके साथ सूर्य भगवान्के अस्त हो जाने पर, युद्धमें कटे वीरोंकी गर्दनरूप नालीसे बहने वाले रक्तप्रवाहकी तरह दिगन्तरालको व्याप्त करने वाले सन्ध्यारागके फैल जाने पर, वीर वानरोंके नखसे विदारित हाथियोंके विशाल कुम्भस्थलसे निकले हुए मुक्ताजालके सदृश तारागणके आकाशमें फैल जाने पर, रणोत्साहसे प्रस्थित रथ, घोड़े, पैदल सैन्य, हाथीके पैरोंसे आहत पृथ्वीसे उत्पन्न रजोराशिके अन्धकारकी तरह भुवनमें व्याप्त हो जाने पर, चक्रवाक आदि रात्रिविरही पक्षियोंकी तरह राक्षसोंके शोकाकुल होने पर, राक्षसोंके हाथोंके समान कमलोंके मुकुलित हो जाने पर और रामसैन्यकी तरह कुमुदवनके सानन्द होने पर।

आसारधारां [1]विकिरञ्शराणामाश्वासयन्मानसमाशराणाम्।
वीरो हरीन्संयति मेघनादो विव्याध हंसानिव मेघनादः॥ ४२॥

आसारेति। शराणाम् बाणानाम् उदकानाञ्च आसारधाराम् धारापरम्पराम् विकिरन् त्यजन् वर्षंश्च आशराणाम् रक्षसाम् मानसम् हृदयम् आश्वासयन् युद्धे भाविनं विजयं प्रति विश्वस्तं कुर्वन्, अन्यत्र आशराणां तृष्णया शीर्यतां चातकादिपक्षिणां मानसं भाविवृष्टिविषये विश्वासयन्, वीरो मेघनादस्तन्नामा रावणसुतो घनशब्दश्च संयति हरीन् वानरान् हंसान् पक्षिभेदान् इव संयति युद्धे विव्याध ताड-

१. 'प्रकिरन्' इति पाठान्तरम्।

यामास खेदयामास च। यथा जलधारापातेन तृष्णया पीडितानां चातकादिपक्षिणां मानसमाश्वासयन् मेघशब्दो हंसान् व्यथयति, तथैव बाणवर्षया राक्षसानां हृदयं प्रमोदयन्मेघनादो वानरान् विव्याधेति श्लिष्टविशेषणलभ्योपमाऽलङ्कारः। 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः' इत्यमरः। शरशब्दो जले निहतार्थः। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ४२ ॥

जैसे जलकी धारा बहाकर तृष्णापीड़ित चातकादि पक्षियोंको आश्वासित करने वाला मेघगर्जन हंसोंको व्यथा प्रदान करता है उसी तरह बाणकी वर्षा करके राक्षसोंको आश्वासित करने वाला मेघनादने युद्धमें वानरोंको आहत किया ॥ ४२ ॥

रणे तदनु दारुणे रभसमङ्गदो रावणे-
द्रुमेण महता [1]हताखिलधुरीणयानव्रजः।
शितेन शतकोटिना शिखरिकूटमिन्द्रो यथा
[2]ममन्थ च रथं मनोरथमपि क्षणाद्रक्षसाम् ॥ ४३ ॥

रणे तदन्विति। तदनु मेघनादकृतवानरसैन्यविद्रावणात् परतः दारुणे भीषणे रणे युद्धे अङ्गदो नाम वालिपुत्रः रभसं वेगेन महता द्रुमेण वृक्षेण हतधुरीणयानव्रजः आहतयुग्याश्वराजिः (रथवाहिघोटकान् विनिपात्य) यथा इन्द्रः शितेन तीक्ष्णधारेण शतकोटिनावज्रेण शिखरिकूटं पर्वतशृङ्गं (भिन्नवान्, तथा) रावणेः रावणापत्यस्य मेघनादस्य रथं यानम् क्षणात् तुल्यकालं राक्षसानां मनोरथं विजयाभिलाषं च ममन्थ बभञ्ज। ततो घोरे युद्धे प्रवृत्तेऽङ्गदो महता वृक्षेण रथवहानश्वान् विनिपात्येन्द्रजितो रथमपि बभञ्ज, तेन रथाश्वभङ्गेन राक्षसा हताशा जाताः, यथा इन्द्रो वज्रेण पर्वतशिखरं भिनत्तीति तावत्यंशे उपमा। रथमनोरथयोरेकत्र मथ्नाति क्रियायामन्वयात्तुल्ययोगिता च, तयोः संकरः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ ४३ ॥

इसके बाद भयङ्कर युद्धके होने पर अङ्गदने वेगसे महान् वृक्ष प्रहार करके मेघनादके रथमें जुटे हुए अश्वोंका संहार करके जैसे इन्द्र अपने तीक्ष्णधार वज्रसे पर्वतशृङ्गका भञ्जन करते हैं उसी तरह उसके रथको भग्न कर दिया साथ ही राक्षसोंका विजयाभिलाष भी भग्न हो गया ॥ ४३ ॥

वियत्तले तदनु [3]निलीय मायया
स लक्षयन् रघुतनयं सलक्ष्मणम्।
अजिह्मगानधिगतजिह्मगाकृती-
नमर्षतः समिति ववर्ष रावणिः ॥ ४४ ॥

---

१. 'हतश्लथधुरीणयानव्रजम्' इति पाठान्तरम्। २. 'ममाथ' इति पाठान्तरम्।
२. 'विलीय' इति पाठान्तरम्।

वियत्तल इति। तदनु रथमथनान्तरं सः रावणिः रावणपुत्रो मेघनादः वियत्तले आकाशे मायया निलीय आत्मानं गोपयित्वा सलक्ष्मणं रघुतनयं रामचन्द्रं लक्ष्यन् लक्ष्यीकुर्वन् सन् अधिगतजिह्मगाकृतीन् प्राप्तसर्परूपान् अजिह्मगान् बाणान् समिति युद्धे अमर्षतः कोपात् ववर्ष पातयामास। 'जिह्मगः पवनाशनः' इति सर्पपर्यायेऽमरः। रामलक्ष्मणावुद्दिश्याकाशान्नागपाशास्त्राणि प्रयुक्तवानिति भावः। रुचिरावृत्तम्—'चतुर्ग्रहैर्यति रुचिरा जभौ स्जगा' इति तल्लक्षणम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद मेघनाद आसुरीमायाके बलसे आकाशमें जा छिपा और उसने क्रोधसे लक्ष्मण और रामको लक्ष्य कर युद्धमें सर्परूपधारी बाणों (नागपाशास्त्रों) की वर्षा करना प्रारम्भ किया ॥ ४४ ॥

लक्ष्मणानुगतं रामचन्द्रं राहुभयंकराः।
बबन्धुर्दारुणतमा बन्धच्छिदममी शराः ॥ ४५ ॥

लक्ष्मणेति। राहुभयङ्कराः राहुवद् भयजनकाः दारुणतमाः भीषणविपाकाः अमी शराः मेघनादप्रयुक्ताः नागपाशबाणाः लक्ष्मणानुगतं लक्ष्मणसहितम् (लक्ष्मणा चिह्नेन कलङ्केन युतं च) बन्धच्छिदं मोक्षप्रदातारम् रामचन्द्रं रामरूपं चन्द्रम् बबन्धुः यामासुः। यथा चन्द्रं राहुर्वेष्टयति तथा रामरूपं चन्द्रं पन्नगास्त्राणि वेष्टयामासुरित्यर्थः। रामश्चन्द्र इवेत्युपमितसमासः। श्लेषसङ्कीर्णोपमाऽलङ्कारः। 'बन्धच्छिदं बबन्धुः' इति विरोधाभासोऽपि भासते ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको वेष्टित कर लेता है उसी तरह लक्ष्मणयुक्त (कलङ्कयुक्त) रामरूप चन्द्रमाको–जो दूसरोंके बन्धको (भवबन्धनको) छुड़ाते हैं–राहुके समान भयङ्कर अतिकठोर उन नागपाशोंने घेर लिया ॥ ४५ ॥

यावद्याति पुरं पुरंदरजयी यावद्दशास्याज्ञया
सीतापुष्पकवासिनी रघुसुतौ दृष्ट्वा पुरः शोचति।
तावत्ते [1]दलिताः सुपर्णगरुतां वातेन वाताशना
दीप्तौ चन्द्रदिवाकराविव तमोमुक्तौ ततो राघवौ ॥ ४६ ॥

यावदिति। यावत् यावता समयेन पुरन्दरजयी इन्द्रजित् पुरं लङ्कापुरं याति गच्छति, (रामलक्ष्मणौ नागपाशेन बद्ध्वा यावदिन्द्रजित्स्वपुरं प्रति निवर्त्तते तावदित्यर्थः) दशास्याज्ञया रावणनिदेशेन पुष्पकवासिनी पुष्पकाख्यविमानारूढा सीता यावत् रघुसुतौ रघुवंशिनौ रामलक्ष्मणौ पुरो दृष्ट्वा शोचति चिन्तयति, सम्प्रति मदुद्धारस्य काऽऽशेति विभावयति, (रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबद्धयोर्जातयोः रावणः

---

१. 'गलिताः' इति पाठान्तरम्।

सीतां पुष्पकमारोप्य तथाभूतौ रामलक्ष्मणौ दर्शयितुं तद्रक्षकानादिष्टवाँस्तैश्च तथाऽऽचरिते सति सीता चिन्तामग्ना जाता, एतादृशादेशप्रदाने रावणस्यायमाशयो यदेवंभूतौ पतिदेवरौ दृष्ट्वा सीता स्वोद्धारसंभावनां निरस्य मां स्वीकुर्यादिति) तावत् तावता कालेन सुपर्णगरुतां गरुडपक्षाणां वातेन पवनेन ते वाताशनाः नागपाशतया प्रयुक्ताः सर्पाः दलिताः हताः, गरुडस्तान्स्वपक्षवातेनानाशयदित्यर्थः, ततः तमोमुक्तौ अन्धकारविनिर्मुक्तौ राहुमुक्तौ वा चन्द्रदिवाकरौ इन्दुसूर्यौ इव तौ दीप्तौ प्रकाशितौ जातावित्यर्थः। उपमालङ्कारः। तावद्दलिताविति दलनस्याशुजन्यतां व्यञ्जयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४६ ॥

जबतक इन्द्रजित् अपने पुरको लौटा और जब तक पुष्पकारूढ़ सीताने रामलक्ष्मणको बँधे देखकर चिन्ता करना प्रारम्भ किया, तबतक (इतनेमें ही) गरुड़के पंखोंकी हवासे नागपाशमें प्रयुक्त सर्प मार दिये गये और अन्धकार या राहुसे मुक्त चन्द्रसूर्यकी तरह राम और लक्ष्मण चमक उठे ॥ ४६ ॥

दुर्वारे तदनु द्वयोश्च बलयोरुज्जृम्भमाणे रणे
धूम्राक्षं भुजतः प्रकम्पनमथ द्वेधा व्यधान्मारुतिः।
तारेयोऽपि च वज्रदंष्ट्रमचलान्नीलः प्रहस्तं बला-
त्तत्सर्वं दशकंधराय चकितैरुक्तं च नक्तंचरैः ॥ ४७ ॥

दुर्वार इति। तदनु नागपाशमोक्षानन्तरम् द्वयोर्बलयो रामरावणसेनयोः दुर्वारे दुर्निरोधे रणे युद्धे उज्जृम्भमाणे प्रवर्त्तमाने सति मारुतिः वायुपुत्रो हनूमान् धूम्राक्षं तन्नामकं सेनापतिं रावणस्य, अथ प्रकम्पनं नाम प्रधानयोधम् भुजतः बाहुना बाहुक्षिप्तपर्वताद्याघातात् द्वेधा व्यधात् विदारितं चक्रे। तारेयः अङ्गदः अपि च अचलात् पर्वतप्रहारात् वज्रदंष्ट्रं तदाख्यं, नीलो नाम वानरयूथपः बलात् स्वपराक्रमात् प्रहस्तं नाम रावणसचिवं द्वेधा व्यधादिति क्रियापदं सर्वत्र समानम्। तत्सर्वं धूम्राक्षादिनिधनवृत्तं चकितैः कथमेतेऽपि महाबला अमीभिर्वानरैर्हता इति जाताश्चर्यैः नक्तञ्चरः दशकन्धराय रावणाय उक्तं कथितञ्च ॥ ४७ ॥

इसके बाद जब राम तथा रावणकी सेनाओंमें दुर्वार युद्ध छिड़ गया तब हनूमान्ने अपने बाहुबलसे धूम्राक्ष तथा प्रकम्पनको विदारित कर दिया और अङ्गदने पर्वत प्रहारसे वज्रदंष्ट्रको चूर्ण कर दिया। इसी तरह नीलने प्रहस्तको समाप्त किया, यह सारा समाचार आश्चर्यचकित राक्षसोंने जाकर रावणसे कह भी दिया ॥ ४७ ॥

अथ तदानीमनीकिनीनाथवध[1]जनितकोपोदयादायोधनोत्कण्ठो दशकण्ठः सकलजगदण्डभरित[2]भयानकजयानकनिनदबधिरिताशेषशेषहेलो-

१. 'जनित' इति नास्ति क्वचित्। २. 'जयानकभयानक' इति पाठान्तरम्।

चनो रोचिष्णुजिष्णुकोदण्डधरः सलिलधर इव सुमेरुशृङ्गसमुत्तुङ्गं रथमलंकुर्वन्सर्वतश्चलित[1]सकलचतुरङ्गसंघातया लङ्कयेव स्वयमनुगम्यमानः क्रमादतिक्रम्य पुरतोरणं पुरतो रण[2]प्रचलितमालोकयन्निखिलमपि [3]कपिकुलम्।

अथेति। अथ धूम्राक्षादिवधानन्तरम् तदानीं तस्मिन् काले अनीकिनीनाथानां धूम्राक्षादिसेनापतीनां वधेन मृत्युना जनितः उत्पन्नः कोपः क्रोधस्तदुदयात् तत्प्रकर्षात् आयोधनोत्कण्ठो युद्धोद्यतो दशकण्ठो रावणः सकलेषु सर्वेषु जगदण्डेषु ब्रह्माण्डेषु लोकेषु भरितः व्याप्तः भयानकः सर्वभयङ्करः यः जयानकनिनदः जयदुन्दुभिघोषस्तेन वधिरितानि वधिरीकृतानि अशेषाणि सकलानि शेषाहेः शेषनागस्य लोचनानि येन तादृशः, (शेषस्य चक्षुःश्रवस्तया नेत्रवधिरीभावो वर्णितः) रोचिष्णुजिष्णुकोदण्डधरः भ्राजमानशक्रसम्बन्धिचापधारी उत्तुङ्गं महोच्चं रथम् अलङ्कुर्वन् आश्रितः, रोचिष्णुशक्रचापधरः सुमेरुशृङ्गमलङ्कुर्वन् सलिलधरो मेघ इव, (मेघे शक्रचापः प्रसिद्धो रावणोऽपि शक्रस्य चापं बलादाहृत्य प्रयुङ्क्ते इति तुल्यमुभयत्र विशेषणम्) सर्वतः सर्वाभ्यो दिशाभ्यः चलितसकलचतुरङ्गसङ्घातया प्रस्थितसमस्तसैन्यसमुदायया स्वयं लङ्कया पुर्या इव अनुगम्यमानः अनुसृतः क्रमात् पुरतोरणम् लङ्कापुरद्वारम् अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य पुरतः अग्रे रणप्रचलितं युद्धाय धावत् अखिलम् समस्तम् अपि कपिबलम् वानरसैन्यम् आलोकयत् अपश्यत्। लङ्कयेवानुस्त्रियमाण इत्यत्रोत्प्रेक्षा।

इसके बाद उस समय सेनापतिकी मृत्युसे उत्पन्न कोपसे युद्ध करनेके लिए उत्सुक रावणने, जिसने समस्त जगत्को भर देनेवाले अतिभयानक जयदुन्दुभिके शब्दसे शेषनागकी आँखोंको वधिर बना दिया है, जिसने उन्नत सुमेरु शृङ्गपर आरुढ़ इन्द्रचापयुत मेघकी समता धारण करनेके लिये ऊँचे रथपर चढ़कर इन्द्रके चापको धारण कर लिया है, जिसके चारों ओर प्रचलित सैन्यसमुदायके रूपमें सारी लङ्का ही अनुगमन कर रही है, क्रमशः पुरद्वार पार करके युद्धके लिये आती हुई समस्त वानरसेना देखी।

जेतारमाहवमुखे दशदिक्पतीनां
दृष्ट्वा पुरो दशमुखं रघुनन्दनस्य।
श्लाघावशेन न चचाल शिरः [4]परं त-
त्सव्येतरं भुजशिरोऽपि समीदय लक्ष्यम्॥ ४८॥

---

१. 'संगतया' इति पाठान्तरम्। २. 'चलित' इति पाठान्तरम्।
३. 'बलीमुखबलम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'परन्तु' इति पाठान्तरम्।

जेतारमिति। आहवमुखे समराग्रे दशदिक्पतीनाम् इन्द्रादिदशदिक्पालानां जेतारं विजयिनं दशमुखं रावणं पुरः सम्मुखे दृष्ट्वा विलोक्य रघुनन्दनस्य रामस्य शिरः मस्तकं श्लाघावशेन आदरेण न चचाल न नतम्, तत् विश्वप्रसिद्धपराक्रमं सव्येतरम् दक्षिणम् भुजशिरः भुजाग्रभागोऽपि परम् लक्ष्यम् वेध्यम् समीक्ष्य दृष्ट्वा चचाल शरचापव्यापारपरोऽभूत्। सकलेन्द्रादिदिक्पालजयिनं रावणं पश्यतो रामस्य केवलं शिर एव रावणस्य श्लाघायां प्रशंसने न चलितमपितु तद्बाहुरपि सम्मुखे लक्ष्यमालोक्य सपदि शरप्रयोगपरायणो जात इत्यर्थः। एतेन रामस्य गुणज्ञता प्रत्युत्पन्नमतित्वं चोक्तम्। तुल्ययोगिताऽलङ्कारः॥ ४८॥

युद्धक्षेत्रमें समस्त इन्द्रादि दिक्पालोंको जीतने वाले रावणको देखकर रामचन्द्रका केवल शिर ही रावणकी प्रशंसामें नहीं हिल उठा (चला), अपितु लक्ष्यको सामने देखकर उनका दाहिना हाथ भी चल पड़ा (वाणव्यापारके लिये तत्पर हो गया)॥ ४८॥

अथ मदगर्जितैरधिकतर्जितदिक्करिभि-
र्दशवदनस्तदा दशदिगन्तरमन्तरयन्।
समरमुखे सखेलपदचङ्क्रमतो विदधे
हरिकुलमाकुलं जलधिमादिवराह इव॥ ४९॥

अथेति। अथ अनन्तरम् तदा अधिकतर्जितदिक्करिभिः दिग्गजानधिकं भीषयद्भिः मदगर्जितैः गर्वद्योतकसिंहनादैः दशदिगन्तरम् दशदिगवकाशान् अन्तरयन् अपूरयन् दशवदनो रावणः समरमुखे युद्धक्षेत्रे सखेलपदचंक्रमतः सलीलचरणन्यासतः हरिकुलम् वानरसमुदयम्, आदिवराहः वराहावतारो भगवान् जलधिम् इव आकुलम् क्षुब्धम् विदधे। आदिवराहो यथा घुर्घुरशब्दैः सवेगसञ्चरणैश्च सागरं क्षोभयामास तथैव तस्मिन्काले रावणोऽपि दिग्गजानपि भीतान्कुर्वता स्वसिंहनादेन सलीलचरणन्यासेन च वानरवाहिनीमक्षोभयदित्युपमा। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये' इत्यमरः। स्पष्टमन्यत्॥ ४९॥

इसके बाद दिग्गजोंको भयग्रस्त बना देने वाले अपने सिंहनादसे दशदिशावकाशोंको भर देने वाला रावण अपने सलील पादक्षेपसे वानरोंको आकुलित करने लगा, जिस प्रकार आदिवराहने अपने सवेग चलनेसे समुद्रको क्षुभित कर दिया था॥ ४९॥

अनन्तरमनीकास्कन्दकन्दलितामर्षं वर्षन्तं गिरीन्हरीणामधिपतिमतिनिष्ठुरेण मुष्टिना गाढम[1]भिघ्नन्तं हनूमन्त[2]ममन्दतरलाघवाक्रान्तध्वजकिरीटाञ्चलं नीलमपि [3]वानरसेनापतिं, निखिलमपि वानरबलं,

---

१. 'अभिनिघ्नन्तम्' इति पाठान्तरम्। २. 'अमन्दलाघव' इति पाठान्तरम्।
३. 'वानरसेनापतिं निखिलमपि वानरबलम्' इति नास्ति क्वचित्।

निखिलजगज्जिता महता बलेन वातूल इव [1]तूलराशिमपसरयन्नाविरतशरासारवर्षिण[2]मभ्यमित्रीणं सौमित्रिमपि शक्त्या [3]महत्या गाढमुरसि विव्याध क्रव्यादाधिपतिः ।

अनन्तरमिति । अनन्तरं तत्परतः अनीकास्कन्दनेन वानरसेनाऽऽकुलीकरणेन कन्दलितामर्षम् उत्पन्नकोपम् अतएव च गिरीन् पर्वतान् वर्षन्तम् रावणोपरि पातयन्तम् हरीणां वानराणां पतिं स्वामिनं सुग्रीवमित्यर्थः, अतिनिष्ठुरेण अतिक्रूरेण मुष्टिना संवृताङ्गुलिना करेण गाढम् अतिबलवत्, अभिघ्नन्तम् हनूमन्तम् मारुतिम्, अमन्दतरलाघवेन द्रुतचंक्रमणपाटवेन आक्रान्तम् अवमृष्टं ध्वजकिरीटाञ्चलम् ध्वजाग्रमुकुटप्रान्तो येन तं तथोक्तमतित्वरया ध्वजदण्डमुपद्रवन्तमित्यर्थः, तादृशं वानरसेनापतिं नीलम् तदाख्यम्, अपि च निखिलं वानरबलं कपिसैन्यम् निखिलजगजिता विश्वजिता महता बलेन पराक्रमेण वातूलः वात्या तूलराशिम् इव अपसारयन् समुत्क्षिपन् क्रव्यादाधिपतिः राक्षसराजः अविरतशरासारवर्षिणः अविच्छिन्नबाणधारां प्रक्षिपन्तम् अभ्यमित्रीणम् शत्रुभूतम् सौमित्रिम् अपि महत्या असाधारणया शक्त्या तदाख्यास्त्रभेदेन उरसि वक्षसि गाढं विव्याध जघान । पर्वतवर्षिणं सुग्रीवं, मुष्टिप्रहारिणं हनूमन्तं, प्लुतिपाटवेन ध्वजाग्रमारोहन्तं नीलं नाम वानरयूथपम्, किञ्च निखिलमपि वानरसैन्यं वात्येव तूलराशिमपसारयन् रावणो लक्ष्मणस्योरसि शक्तिं प्रहृतवानिति भावः । 'वातूल' पदे 'वाताच्च' इत्यूलप्रत्ययः । 'सोऽभ्यमित्रोऽभ्यमित्रीयोऽप्यभ्यमित्रीण इत्यपि' इत्यमरः ।

इसके बाद वानरसैन्यपर आक्रमणके होनेसे कुपित होकर पर्वतोंकी वर्षा करनेवाले सुग्रीवको, अतिनिष्ठुर मुष्टिप्रहार करनेवाले हनूमान्को, अपनी द्रुतगामिताकी पटुतासे ध्वजाग्रपर आक्रमण करनेवाले वानरसेनापति नील तथा समस्त सेनाको जगद्विजयी पराक्रमके द्वारा, आंधी जैसे रुईकी ढेरको दूर भगाती है, उसी तरह दूर भगाता हुआ रावणने अनवरत बाणवर्षा करनेवाले शत्रुभूत लक्ष्मणकी छातीमें अपनी असाधारण शक्तिसे आघात किया ।

अवकीर्य दाशरथिरश्रुझरैरनुजं पुलस्त्यतनुजं च शरैः ।
युगपद्व्यधात्करुणवीररसौ युधि शोकहर्षशबलं च बलम् ॥ ५० ॥

अवकीर्येति । दाशरथिः श्रीरामः अश्रुझरैः नयनाम्बुप्रवाहैः अनुजं कनीयांसं भ्रातरं लक्ष्मणम्, तथा शरैः बाणैः पुलस्त्यतनुजं रावणं च व्यवकीर्य विक्षिप्य (आच्छाद्य) युधि समरे युगपत् तुल्यकालम् करुणवीररसौ करुणरसं वीररसं च व्यधात् अका-

---

१. 'तूलजालं कपिकुलमपसारयन्' इति पाठान्तरम् ।
२. 'अभ्यमित्रीणसौमित्रिम्' इति पाठान्तरम् । ३. 'महत्या' इति नास्ति क्वचित् ।

र्षीत्, बलं सैन्यं च शोकहर्षशबलं वानरसैन्यं हर्षयुतं राक्षससैन्यं शोकशबलं च व्यधात् । रामोऽश्रुप्रवाहैर्लक्ष्मणमाच्छाद्य रावणं च बाणैरावृत्य राक्षससैन्यं शोकपूर्णं वानरसैन्यं च हर्षपूर्णं व्यधात्, युद्धे शोकस्थायिकः करुणरसः उत्साहस्थायिकः करुणरसश्च प्रसृत इत्यर्थः । प्रमिताक्षरावृत्तम् ॥ ५० ॥

रामने अश्रुप्रवाहसे लक्ष्मणको तथा बाणवर्षासे रावणको आच्छादित करके एक ही समयमें करुण और वीररसको उद्दीपित कर वानरसेनामें शोक तथा राक्षससेनामें हर्षका संचार किया ॥ ५० ॥

आधूय मोहमहितोन्मथनाय याव-
त्सौमित्रि[1]रुन्मिषति संयति तावदेव ।
पौलस्त्यमेष परिभूय परं तदीयान्
प्राणान्मुमोच दयया न मुमोच बाणान् ॥ ५१ ॥

आधूयेति । सौमित्रिः लक्ष्मणः मोहम् मूर्च्छाम् आधूय अपास्य युद्धौ रणे अहितोन्मथनाय शत्रुसंहाराय यावत् उन्मिषति अवबुध्यते तावत् एषः श्रीरामः पौलस्त्यं रावणं परिभूय तिरस्कृत्य दयया रावणोपरि कृपया तदीयान् रावणसम्बन्धिनः प्राणान् मुमोच तत्याज, परम् बाणान् शरान् न मुमोच न चालितवान् । यावल्लक्ष्मणश्चैतन्यमवाप्य युद्धे प्रवर्त्तते तावद्रामः शरप्रहारेण रावणमभिभूय तदीयान् प्राणान्केवलं दयापरवशो नाग्रहीदित्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

जबतक लक्ष्मणजी मूर्च्छा छोड़कर युद्धके लिये शत्रुसंहारमें लगे तबतक रामने रावणको बाणोंसे अभिभूत कर दिया, दयावश केवल उसके प्राण नहीं हरे, बाणोंसे उसे नाकों दम कर दिया ॥ ५१ ॥

प्राप्य तत्प्रथमं युद्धे पराजयमुदेजयन् ।
दशाननः पुरीं प्राप दिनदीपदशाननः ॥ ५२ ॥

प्राप्येति । दशाननः रावणः युद्धे संग्रामे तत्प्रथमं प्राथम्येन जातमादिमम् पराजयम् अभिभवं प्राप्य लब्ध्वा उदेजयन् कम्पमानः दिनदीपदशाननः दिवाकालिकप्रदीपवत्तेजोहीनमुखच्छविः सन् पुरीं च नगरं लङ्कां प्राप ॥ ५२ ॥

रावणने पहली बार युद्धमें पराजय पाकर काँपता हुआ दिनमें जलते हुए दीपके समान निस्तेज मुँह लेकर अपनी राजधानी लङ्कामें प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

प्राबोधयत्तदनु पङ्क्तिमुखः शयालुं
कालं विनापि च कथञ्चन कुम्भकर्णम् ।

---

१. 'एष समुदञ्चति तावदेव' इति पाठान्तरम् ।

आदेशतः स च विभोरपुनःप्रबोध-
संवेशधाम समराङ्गणमाजगाम ॥ ५३ ॥

प्रावोधयदिति। तदनु पुरप्रवेशानन्तरम् पङ्क्तिमुखो दशाननः शयालुं निद्रितं कुम्भकर्णम् नाम स्वावरजम् कालं विना असमये तदीयनिद्रात्यागावसरेऽप्राप्तेऽपि कथञ्चन केनापि प्रयासविशेषेण प्रावोधयत् अजागरयत्, स च कुम्भकर्णः प्रभोः स्वामिनो रावणस्य आदेशतः निदेशात् अपुनःप्रवोधसंवेशधाम महानिद्रास्थानम् (मृत्युरत्रापुनःप्रवोधसंवेशपदार्थः, तस्मिन्सति पुनरुत्थानाभावात्) समराङ्गणम् युद्धक्षेत्रम् आजगाम आगतः। रावणेनोत्थापितो युद्धक्षेत्रं गन्तुं समाज्ञप्तश्च कुम्भकर्णो रणभुवमायात इत्यर्थः। 'स्यान्निद्राशयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५३ ॥

गाँवमें पहुँचकर रावणने सोये हुए कुम्भकर्णको असमयमें ही किसी तरह जगाया और कुम्भकर्ण स्वामी रावणके आदेशसे अपुनःप्रबोधनिद्रास्थान (ऐसी नींदकी जगह जिससे आदमी कभी जागता ही नहीं है—मृत्युनिद्रा) समराङ्गणमें आया ॥ ५३ ॥

आगतं च तमञ्जनाचलनिकाश[1]माकाशतलभ्रमितत्रिशूलं शूलधरमिव जगत्क्षयोद्युक्तं नक्तचरं निशाम्य[2] शाम्यत्सहजभुजतेजोविशेषमशेषासु दिक्षु धावमानं पवमानचलितजलद[3]पारिप्लवं प्लवंगबलमङ्गदो धीरमवादीत्।

आगतमिति। आगतं समरभुवमुपेतं अञ्जनाचलनिकाशम् कज्जलशैलसन्निभम्, आकाशभ्रमितत्रिशूलम् गगनतलनर्त्तितत्रिशूलनामकास्त्रम्, जगत्क्षयोद्युक्तम् संसारसंहारतत्परं शूलधरम् हरमिव (प्रतीयमानम्) नक्तञ्चरं राक्षसं तं कुम्भकर्णं निशाम्य दृष्ट्वा शाम्यत्सहजभुजतेजोविशेषम् अस्तङ्गच्छत् स्वाभाविकबाहुबलातिशयं पवमानचलितजलदपारिप्लवं वायुप्रेरितमेघवच्चञ्चलं (ततश्च) अशेषासु दिक्षु सर्वासु दिशासु धावमानं पलायमानं प्लवङ्गमबलम् वानरसैन्यम् अङ्गदः धीरम् धीरस्वरेण अवादीत् वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवान्। 'पारिप्लवं तु तरलम्' इत्यमरः।

अञ्जनशैलके समान, आकाशमें त्रिशूलको नचाते हुए लोकत्रयके संहारके लिये उद्यत महादेवके तुल्य उस राक्षस कुम्भकर्णको आते देखकर—अस्त हो रहा है स्वाभाविक भुजबल जिनका ऐसे, वायुद्वारा चालित मेघके समान सभी दिशाओंमें भागते हुए वानरसैन्यको अङ्गदने धीरभावसे इस प्रकार कहा।

कपयः कैकसेयानां कापि सेयं बिभीषिका।
मा[4] भूदभूतपूर्वं वः प्राकृतं भयवैकृतम् ॥ ५४ ॥

---

१. 'आकाशभ्रमित' इति पाठान्तरम्। २. 'अवलोक्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'पारिप्लवत्प्लवग' इति पाठान्तरम्। ४. 'अभूतपूर्वं' इति पाठान्तरम्।

कपय इति। हे कपयः वानराः, सेयं दृश्यमाना कुम्भकर्णरूपा विपत् कैकसेयानां केकसीगर्भसंभवानां रावणादीनां रक्षसां मध्ये कापि काचन विभीषिका त्रासजननी भूमिका। येयं सन्मुखस्था विपत्तिर्भवद्भिः संभाव्यते वस्तुतः सा विभीषिकामात्रमित्यर्थः, वः युष्माकं वानराणाम् अभूतपूर्वम् इतःपूर्वं कदाप्यनुत्पन्नं प्राकृतं लोकसाधारणं भयवैकृतम् भीतिकृतं कातर्यं माभूत् नास्तु, विभीषिकामात्रेण भवतां भयं मा जनि न हि भवन्तः प्राकृतजनवद्भयस्थानानि, महावीरत्वाद्भवतामिति भावः॥ ५४॥

वानरो, यह जो आप सामने देख रहे हैं वह केकसीके गर्भसे पैदा हुए राक्षसोंकी विभीषिका है, इससे साधारण जनकी तरह आप लोगोंमें भयके विकार पलायन आदि न हों, आप महावीर हैं, इस विभीषिकासे आपको नहीं डरना चाहिये॥ ५४॥

अथ हरयोऽपि सरयमनुनयसंगतमङ्गदवचनमवधारयन्तो धारयन्तः [1]समरसंनाहं दिङ्नागा इव प्रतिनिवृत्ताः [2]प्रमत्तमिवैरावणं रावणानुजं विन्ध्याचलमिव युगान्तानिलाः समन्तादाहृतैर्गिरिभिस्तरुभि[3]रप्यवाकिरन्।

अथेति। अथ अङ्गदवचनश्रवणानन्तरम् हरयः वानरा अपि अनुनयसङ्गतम् तत्कालोचितप्रर्थनायुक्तम् अङ्गदवचनम् पूर्वोक्तरूपम् अङ्गदभाषितम् अवधारयन्तः प्रामाणिकं मन्यमानाः, सरयम् वेगपूर्णम् समरसन्नाहम् युद्धोद्योगं धारयन्तः बिभ्राणाः दिङ्नागा इव दिग्गजा इव प्रतिनिवृत्ताः पलायनं विहाय परावृत्ताः सन्तः, प्रमत्तम् मदयुक्तम् ऐरावणम् शक्रगजम् इव रावणानुजम् कुम्भकर्णम् युगान्तानिलाः प्रलयवायवः विन्ध्याचलम् इव समन्तात् सर्वतः आहृतैः आनीय क्षिप्तैः गिरिभिः पर्वतैः तरुभिः वृक्षैरपि च अवाकिरन् आवृण्वन् ववृषुरित्यर्थः। यथा प्रलये वायवो गिरीनन्यान्वृक्षाँश्चोत्पाट्य विन्ध्यशिरसि पातयेयुस्तथा वानराः कुम्भकर्णोपरि गिरीन् वृक्षाँश्चानीय पातयामासुरित्याशयः।

इसके बाद अङ्गदकी बात मानकर वानर लौटे, वेगसे युद्धके लिये तैयारी की, दिग्गजों की तरह सभी वानर आ आकर मत्त ऐरावतके सदृश उस कुम्भकर्णको लाये गये पहाड़ और वृक्षोंसे ढकने लगे, जैसे प्रलयकालमें वायु पर्वतों तथा वृक्षोंसे विन्ध्यपर्वतको ढक देती है।

क्षिप्ताः संयति पुष्पिताः क्षिति[4]रुहस्ते रक्षसो वक्षसि
प्रस्विन्ने पटवासपांसव इवालीयन्त चूर्णीकृताः।

---

१. 'संनाहान्दिग्भागाः' इति पाठान्तरम्। २. 'प्रमत्ताशयम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'अपि' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'रुहास्तैः' इति पाठान्तरम्।

मुक्ता ये धरणीधरा मुहुरमी तद्बाहुसंघट्टना-
त्प्रत्यावृत्य [1]पुनः प्रहर्तुरभवन् खेदाय भेदाय च ॥ ५५ ॥

क्षिप्ता इति। पुष्पिताः सञ्जातपुष्पाः क्षितिरुहः वृक्षाः संयति युद्धे क्षिप्ताः कुम्भकर्णमुद्दिश्य प्रहृताः सन्तो रक्षसः कुम्भकर्णस्य प्रस्विन्ने क्रोधजनितस्वेदार्द्रे वक्षसि चूर्णीकृताः मर्दिताः सन्तः पटवासपांसवः पिष्टातकधूलय इव अलीयन्त लीना जाताः। यथा कस्मचित् स्वेदयुक्तवक्षसः पुंसो वक्षसि पटवासधूलयो लीयन्ते तथा वानरेण प्रहृता वृक्षाः कठोरे कुम्भकर्णस्य वक्षसि चूर्णभावं प्रपद्यालीयन्तेत्यर्थः, ये धरणीधराः पर्वताः मुक्ताः प्रहृतास्तेऽमी मुहुः पुनः तद्बाहुसङ्घट्टनात् कुम्भकर्णभुजोपमर्दात् प्रत्यावृत्य प्रतिनिवृत्य पुनः प्रहर्त्तुः क्षेप्तुः एव खेदायप्रहारवैयर्थ्यजनितदुःखाय भेदाय प्रमाथाय च अभवन्। याँश्च पर्वतान्वानराः कुम्भकर्णमुद्दिश्य प्राक्षिपँस्ते तद्बाहुसंघट्टतः परावृत्य पुनस्तान् वानरानेवान्यथयदभिनच्चेति भावः। अत्र वृक्षाणां पुष्पितत्वोक्त्या तच्चूर्णस्य पटवासरूपतानिरूपणाय, पर्वतानां परावृत्त्या वृक्षाणां च चूर्णताऽऽपत्त्या च कुम्भकर्णवक्षसोऽतिकठिनत्वं व्यज्यते। 'पिष्टातः पटावासकः' इत्यमरः। 'पटवासो गन्धचूर्णं सुमाद्यैरधिवासितम्' इति च। अतिशयोक्तिरलङ्कारः। सादृश्यार्थं दृश्यतां माघे—रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुंकारपराङ्मुखीकृताः। प्रहर्त्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे'। इति ॥ ५५ ॥

वानरों द्वारा जो पुष्पित वृक्ष कुम्भकर्णके ऊपर फेके गये वे उसकी छातीसे टकराकर चूर्ण चूर्ण बन गये और स्वेदार्द्र उसके वक्षःस्थल पर अबीरकी तरह लीन हो गये और जो पर्वत उस पर प्रहृत हुए वे उसके हाथोंसे टकराकर लौटकर प्रहार करने वालोंके खेद तथा विनाशके कारण हुए ॥ ५५ ॥

ज्वलदनलं त्रिशूलमुपरिभ्रमयन्नमय-
न्नयमवनीमनीकमदखेलनदुर्ललितः।
सपदि बभञ्ज नीलमृषभं शरभं च बला-
दहरत गन्धमादनमरुन्ध गवाक्षमपि ॥ ५६ ॥

ज्वलदनलमिति। अयं कुम्भकर्णो ज्वलदनलं वह्निज्वालाजटालं त्रिशूलम् नामास्त्रभेदम् उपरि ऊर्ध्वम् भ्रमयन् नर्त्तयन्, अवनीं पृथिवीं नमयन् स्वभारेणाधोगामिनीं कुर्वन्, अनीकमदेन युद्धदर्पेण यत् खेलनं लीलया भ्रमणादि तत्र दुर्ललितः दुर्विलसितः सन् सपदि सद्यः एव बलात् निजबाहुपराक्रमं प्रदर्श्य नीलम् ऋषभम् शरभञ्चेति सेनापतित्रयम् बभञ्ज मर्दितवान्, गन्धमादनं नामान्यं वानरभटम् अहरत प्रहृतवान्, गवाक्षं तदाख्यमपि वानरपरिवृढं तन्नामानम् अरुन्ध रुरोध ॥ ५६ ॥

---

1. 'परम्' इति पाठान्तरम्।

जलती हुई आगसे युक्त त्रिशूलको ऊपर घुमाता तथा अपने भारसे पृथिवीको झुकाता हुआ एवं युद्धदर्पसे मत्त होकर लीलायें दिखलाता हुआ यह कुम्भकर्ण सद्यः अपने भुजबलसे नील, ऋषभ तथा शरभका संहार कर बैठा तथा उसने गन्धमादन नामक वानर पर प्रहार किया और गवाक्षको बाँध रखा ॥ ५६ ॥

ततश्च सहज[1]भयचापलाधिगतलाघवं राघवं शरणमश्नुवानं [2]वानरानीकमाश्वासयन्विश्वाधिकविपुलभुजवीर्यो विकीर्य द्विषति सर्वतः पर्वतान्विधाय च[3] विचित्रमतिचिरं युद्धं नक्तंचरविमुक्त[4]धात्रीधरावलिः कुलिशदारित इव कुलभूधरो धरायाम[5]चेतनः पपात हरिकुलपतिः ।

ततश्चेति । ततश्च कुम्भकर्णकृततत्तद्वानरकदनदर्शनानन्तरं च सहजाभ्यां वानरस्वभावसिद्धाभ्यां भयचापलाभ्याम् अधिगतलाघवम् प्राप्तलघुत्वम् (भयवशात्) राघवम् रामम् शरणम् रक्षकम् अश्नुवानम् आश्रयन्, रामं शरणीकुर्वदित्यर्थः, वानरानीकम् कपिसैन्यम् आश्वासयन् धैर्यं प्रापयन्, विश्वाधिकविपुलभुजवीर्यः सर्वाधिकप्रचुरबाहुपराक्रमशाली, हरिकुलपतिः वानरराजः द्विषति शत्रौ कुम्भकर्णे सर्वतः सर्वाभ्यो दिग्भ्यः पर्वतान् विकीर्य प्रक्षिप्य अतिचिरं बहुकालपर्यन्तम् विचित्रम् अद्भुतं युद्धं च विधाय कृत्वा नक्तञ्चरविमुक्तधात्रीधरावलिः राक्षसप्रहृतपर्वतसमुदयः (कुम्भकर्णेन रक्षसा पर्वतेनाहतः) कुलिशदारितः वज्रभिन्नः कुलभूधरः गोत्राचल इव अचेतनः नष्टसंज्ञः सन् धरायां पपात पतितः । 'अनीकं तु रणे सैन्ये' 'ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात् कुलिशं भिदुरं पविः' इत्युभयत्रामरः । उक्तश्चात्रत्योऽर्थो रामायणे यथा—'स तत्तदा भग्नमवेक्ष्य शूलं चुकोप रक्षोऽधिपतिर्महात्मा । उत्पाट्य लङ्कामलयात्स शृङ्गं जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन । स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञो नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः' ।

इसके बाद स्वाभाविक भय तथा चञ्चलतासे युक्त होकर रामकी शरणमें आये हुए वानरसैन्यको आश्वासन प्रदान करता हुआ, सर्वाधिक प्रचुरबलशाली वानरराज सुग्रीव शत्रुपर चारो ओरसे पर्वतका प्रहार कर और बहुत देर तक अद्भुत युद्ध कर राक्षस कुम्भकर्णद्वारा पर्वतसे आहत हो अचेतनता प्राप्त कर वज्रविदारित पर्वतकी तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

परिगृह्य तं झटिति बाहुपञ्जरे
चलिते पुरं तदनु रावणानुजे ।

---

१. 'बल' इति पाठान्तरम् । २. 'राघवानीकम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'च' इति पाठान्तरम् । ४. 'रात्रीधरवशः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'अचेतन इव' इति पाठान्तरम् ।

अविनीतवालिकृतमद्य नः प्रभो-
रयशः प्रमृष्टमिति हृष्टमाशरैः ॥ ५७ ॥

परिगृह्येति। तदनु सुग्रीवपतनानन्तरं रावणानुजे कुम्भकर्णे झटिति शीघ्रम् तं सुग्रीवम् बाहुपञ्जरे भुजमण्डले परिगृह्य आदाय पुरं स्वनगरं लङ्कां चलिते प्रस्थिते सति अद्य अधुना अविनीतवालिकृतम् दुर्विनीतेन वालिना विहितं (रावणस्य पुच्छेन बन्धनं कृत्वा कक्षे स्थापनरूपम्) नः प्रभोः अस्माकं स्वामिनो रावणस्य अयशः दुष्कीर्त्तिः (वालिनिगृहीतताजन्माकलङ्कः) प्रमृष्टं क्षालितम् इति एवम् आशरैः राक्षसैः हृष्टम् आनन्दितम्। यदि वालिना मम स्वामी धृतस्तदा मत्स्वाम्यनुजेनानेन कुम्भकर्णेनापि वाल्यनुजो निगृहीत इति राक्षसैरयशः प्रमृष्टमवगत्य प्रसादोऽनुभूयते स्मेत्याशयः ॥ ५७ ॥

इसके बाद जब कुम्भकर्ण सुग्रीवको अपने भुजमण्डलमें लेकर लङ्काकी ओर चला तब आज अविनयी वाली द्वारा किया गया हमारे स्वामीका कलङ्क धुल गया ऐसा समझ कर राक्षसगण प्रसन्न होने लगे ॥ ५७ ॥

तत्र[1] विचित्रकुसुमपरिमल[2]शिशिररथ्योपचारसचेतनोद्ग्रीवसुग्रीवनखमुखाकलितशूर्पणखामुखानुकारो [3]दारुणाकारः सचमत्कारं [4]प्राकार[5]मुत्प्लुत्याक्षिगतमेनमनालक्ष्य वैलक्ष्यतः [6]प्रतिनिवृत्तो वृत्तोरुविषमतारकेक्षणः क्षणदाचरः प्रतिक्षणमतिक्षीबतया प्रतिपक्षबलमिव [7]स्वबलमपि भक्षयन्नलक्षयन्सौमित्रिमद्रिशिखरं विमुञ्चन्नेवायमञ्जसा राममाजगाम।

तत्रेति। तत्र लङ्कायाम् विचित्राणां नानाविधानां कुसुमानां पुष्पाणाम् परिमलैः सुगन्धैः शिशिरैः शीतलैः रथ्योपचारैः सेचनादिभिः पुरवीथीसंस्कारैः सचेतनस्य प्रत्यापन्नबोधस्य उद्ग्रीवस्य ऊर्ध्वमुखस्य च सुग्रीवस्य वानरराजस्य नखमुखैः नखाग्रैः आकलितः संपादितः शूर्पणखामुखाकारः शूर्पणखामुखसादृश्यम् (ससंज्ञेन सुग्रीवेणोद्ग्रीवतामाप्य नखनिर्भिन्नकर्णनास इत्यर्थः) यस्य तथोक्तः, अत एव दारुणाकारः भयानकाकृतिः, सचमत्कारं निर्विकारभावेन सवैलक्षण्यं प्राकारं नगरस्य सालम् उत्प्लुत्य उल्लङ्घ्य अक्षिगतम् नयनगोचरम् एनम् सुग्रीवम् अनालक्ष्य अविलोक्य (स्ववैरूप्यकारिणं सुग्रीवमपश्यन्) वैलक्ष्यतः लज्जावशात् प्रतिनिवृत्तः तदनुधावनान्निवृत्तः, (अपकर्त्तुर्दण्डनेऽक्षमताऽत्र लज्जाजननी) वृत्तो-

---

१. 'तत्र च' इति पाठान्तरम्। २. 'शिशिरोपचार' इति पाठान्तरम्।
३. 'दारुणाकारः' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'प्राकारम्' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'समुत्प्लुत्य' इति पाठान्तरम्। ६. 'प्रतिनिवृत्तो विवृत्तोरुत्तारकेक्षणः' इति पा०।
७. 'स्वपक्षबलम्' इति पाठान्तरम्।

रुविषमतारकेक्षणः वृत्ते वर्तुले उरुणी विशाले विषमतारके न्यूनातिरिक्तकनीनिके ईक्षणे नयने यस्य तथोक्तः, क्षणदाचरः राक्षसः (विरूपोग्राक्षः सन्) प्रतिक्षणम् सततम् अतिक्षीबतया अतिप्रमत्ततया प्रतिपक्षिबलम् शत्रुसैन्यमिव स्वबलम् स्वसैन्यम् अपि भक्षयन् भुञ्जानः सौमित्रिम् (मार्गागतमपि) लक्ष्मणम् अलक्षयन् स्वप्रतिभटतयाऽमत्वोपेक्षमाणः अद्रिशिखरं पर्वतशृङ्गं विमुञ्चन् प्रहरन् एव अयम् कुम्भकर्णः अञ्जसा शीघ्रतया रामम् आजगाम प्राप्तः। 'मत्ते शौण्डोत्कटक्षीबाः' इत्यमरः।

लङ्कामें नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्ध तथा गलियोंके सींचे जानेके कारण ठंढक लगनेसे सुग्रीवकी चेतना लौट आई, सुग्रीवने गर्दन उठाकर अपने नखाग्रसे कुम्भकर्णके मुखको शूर्पणखाके मुखके समान छिन्ननासाकर्ण बना दिया, इससे उसका आकार और भयङ्कर हो गया, वह निर्विकार भावसे चाहारदीवारी लांघकर जब सुग्रीवको आँखोंके सामने नहीं देखा तब लज्जित होकर लौटा, उसकी गोल तथा विशाल आँखोंकी कनीनिकायें नीचे ऊपर हो रहीं थीं, ऐसा वह राक्षस कुम्भकर्ण मत्त होनेके कारण प्रतिक्षण शत्रुसैन्यकी ही तरह अपने सैन्यको भी चबाने लगा, रास्तेमें लक्ष्मणजीको भी देखकर उनकी ओर नहीं मुड़ा, (क्योंकि वह उन्हें अपने प्रतिभटरूपमें नहीं मानता था) इस प्रकार पर्वतशृङ्गका प्रहार करता हुआ वह झटपट रामके पास आया।

[1]विच्छिद्याद्रिमथार्धचन्द्रमुखतो वीरो रघुणां पति-
र्बाणानत्र मुमोच [2]वालिदलनान्मारीचमर्मच्छिदः।
आलोक्याथ स तान्विदारित[3]खरानस्मिन्नकिंचित्करा-
न्वायव्यं पुनरैन्द्रमप्यरिवधूवैधव्यधुर्यं दधे॥ ५८॥

विच्छिद्येति। अथ कुम्भकर्णे समीपमायाते सति वीरः अकृत्रिमशौर्योपेतः रघूणां पतिः श्रीरामः अर्धचन्द्रमुखतः अर्धचन्द्राख्यबाणाग्रभागेन अद्रिं पर्वतं कुम्भकर्णप्रहृतं विच्छिद्य विदार्य अत्र कुम्भकर्णे वालिदलनान् वालिनाशकरान् मारीचमर्मच्छिदः मारीचहृदयभेदिनः विदारितखरान् खराख्यदानवघातिनश्च बाणान् शरान् मुमोच प्रयुक्तवान्। अथ च तान् (प्रसिद्धशक्तीनपि) बाणान् अस्मिन् कुम्भकर्णे अकिञ्चित्करान् किमप्यसाधयतो मोघान् आलोक्य वायव्यं वायुदेवताकम्, पुनः (तस्य वायव्यास्त्रस्याप्यकिञ्चित्करत्वे) अरिवधूवैधव्यधुर्यम् शत्रुस्त्रीवैधव्यसम्पादकम् ऐन्द्रम् अपि अस्त्रं दधे गृहीतवान्। सर्वास्त्रवैयर्थ्यकुपितो रामो निश्चितसाफल्यमैन्द्रमस्त्रं प्रयुक्तवानित्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ५८॥

---

१. 'भिन्दन्शूलम्' इति पाठान्तरम्। २. 'वालिविपदः' इति पाठान्तरम्।
३. 'शिखान्' इति पाठान्तरम्।

अकृत्रिम शौर्यसम्पन्न रामने अर्धचन्द्र बाणके अग्रभागसे पहले उसके द्वारा प्रहृत पर्वतको विदीर्ण कर दिया, बादमें कुम्भकर्णके ऊपर वालिनाशक, मारीचवेधी एवं खर-संहारकारी बाणोंका प्रयोग किया। जब देखा कि ये सभी बाण व्यर्थ हो रहे हैं, तब वायव्य अस्त्रका, फिर शत्रुस्त्रीके वैधव्यसम्पादनमें अग्रगण्य ऐन्द्र अस्त्रका प्रयोग किया ॥५८॥

रामास्त्रो[1]द्दलितेषु राक्षसपतेरङ्गेषु तुङ्गो भुजः
प्रागेको निपपात मन्दर इव प्रत्यर्थिसेनाम्बुधौ।
सिन्धौ निष्पतितः परोऽपि ददृशे सेतुर्द्वितीयो यथा
छिन्नं व्योम्नि शिरस्तुरीयमभवत्कूटं त्रिकूटस्य च॥ ५९॥

रामास्त्रोद्दलितेष्विति। रामास्त्रेण रामप्रयुक्तेनैन्द्रास्त्रेण उद्दलितेषु छिन्नेषु राक्षसपतेः कुम्भकर्णस्य अङ्गेषु शरीरावयवेषु प्राक् प्रथमम् तुङ्गः विशालः एको भुजो बाहुः प्रत्यर्थिसेनाम्बुधौ शत्रुसैन्यसमुद्रे मन्दरः मन्दराचल इव निपपात पतितः। रामास्त्रेण छिद्यमानानां कुम्भकर्णस्यावयवानां मध्ये पूर्वमेकस्तदीयो भुजस्तत्सैन्यसागरं क्षोभयन्मन्दर इव निपतित इत्यर्थः। परः अपरोऽपि भुजः सिन्धौ सागरे निष्पतितः सन् द्वितीयः सेतुर्यथा तथा ददृशे, द्वितीयश्च हस्तश्छिन्नः सन् सागरे निपत्य द्वितीयसेतुसादृश्यमतनुतेति भावः। छिन्नं कृत्तं शिरः कुम्भकर्णस्य मस्तकं व्योम्नि (गतं सत्) त्रिकूटस्य शिखरत्रयवत्तया त्रिकूटसंज्ञया प्रथितस्य तुरीयं चतुर्थं कूटं शिखरमभवत् अजायत। छिन्नं सदाकाशे गतं कुम्भकर्णशिरस्त्रिकूटाचलस्य तुरीयकूटभ्रममकृतेति तात्पर्यम् ॥ ५९ ॥

रामके अस्त्रसे कटे हुए कुम्भकर्णके अङ्गोंमेंसे पहले उसका एक विशाल बाहु उसकी सेनारूप समुद्रमें मन्दराचलकी तरह गिरा, दूसरा हाथ समुद्रमें गिरा जो दूसरे सेतुके समान प्रतीत हुआ और शिर कटकर आकाशमें उड़ गया जहाँ वह त्रिकूटपर्वतके चौथे कूटकी तरह मालूम पड़ने लगा ॥ ५९ ॥

तदनु मोदभरितहरिबलकोलाहलाकर्णनविदितकुम्भकर्णवधपरिम्लानमुखेन दशमुखेन सहोदरमहोदरमहापार्श्वौ सहायौ विधाय समादिष्टाः कुमाराः नरान्तकदेवान्तकातिकाय[2]त्रिशिरसः शिरसादाय पितुर्निदेशं निवेशमिव पितृपतेः प्राविशन्नमी समीकभुवम्।

तदन्विति। तदनु कुम्भकर्णवधानन्तरम् मोदभरितानाम् आनन्दपूर्णानाम् हरिबलानाम् वानरसैन्यानाम् कोलाहलस्य कलकलस्य आकर्णनेन श्रवणेन विदितः ज्ञातः अनुमितः कुम्भकर्णवधः अतश्च परिम्लानम् विवर्णं मुखं यस्य तादृशेन दश-

१. 'उद्दलितेषु' इति पाठान्तरम्। २. 'त्रिशिरसः पितुर्निदेशात्' इति पाठान्तरम्।

मुखेन सहोदरौ आत्मनः सोदरौ महोदरमहापार्श्वौ तन्नामानौ राक्षसौ सहायौ रक्षकौ विधाय कुमाराः स्वपुत्राः नरान्तकदेवान्तकातिकायत्रिशिरसः तन्नामानश्चत्वारः समादिष्टाः युद्धं कर्त्तुमाज्ञापिताः सन्तः पितुः रावणस्य निदेशम् युद्धक्षेत्रगमनाज्ञाम् शिरसा आदाय आदरेण स्वीकृत्य अमी नरान्तकादयश्चत्वारो रावणपुत्राः पितृपतेः यमराजस्य निवेशम् स्थानम् इव समीकभुवं युद्धभूमिम् प्राविशन् प्रविष्टाः। युद्धमह्या यमस्थानोपमितत्वेन तत्रागतानां तेषामपुनःपरावर्त्तनं ध्वनितम्। 'धर्मराजः पितृपतिः' इत्यमरः।

इसके बाद आनन्दित वानरसैन्यके कलकलको सुनकर कुम्भकर्णके वधका अनुमान कर उदासमुख हो रावणने अपने सहोदर महोदर तथा महापार्श्वको सहायकतामें रखकर अपने पुत्र कुमार नरान्तक, देवान्तक, अतिकाय तथा त्रिशिरको युद्धमें जानेका आदेश दिया, उन लोगोंने पिताकी आज्ञा सादर स्वीकार करके यमराजके स्थानके सदृश युद्धक्षेत्रमें प्रवेश किया।

अजनि पुनः समीकमनयोरुभयोर्बलयो-
रवदलिते मुखेऽपि[1] यदनुज्झितरोषभरम्।
अमरमृगीदृशामपि यदाशयपूर्तिकरं
समरसमुत्सुकेन मुनिना यददृष्टचरम्॥ ६०॥

अजनीति। पुनः भूयः उभयोर्द्वयोः अनयोर्बलयोः रामरावणसैन्ययोः समीकम् युद्धम् अजनि जातम्, मुखे अवदलितेऽपि अन्योन्यमुखभङ्गे जातेऽपि यत् समीकम् अनुज्झितरोषभरम् अपरित्यक्तकोपम् आसीदिति शेषः। यत् युद्धम् अमरमृगीदृशाम् देवाङ्गनानाम् अपि आशयपूर्तिकरम् मनोरथपूरकम्, (तस्य युद्धस्य महावीरसंहारकरत्वेन प्रत्येकमेकैकवरलाभाद्देवाङ्गनाऽऽशयपूरकत्वमुक्तम्) समरसमुत्सुकेन कलहप्रियतया युद्धविलोकनार्थं बद्धोत्कण्ठेन मुनिना नारदेन यत् युद्धम् अदृष्टचरम् अदृष्टपूर्वम्, एतादृशस्य युद्धस्य पूर्वं कदाप्यजातत्वेन नारदेनादृष्टचरत्वं बोध्यम्॥ ६०॥

फिर दोनों सैन्य–रामरावण सैन्य–में युद्ध हुआ, जिस युद्धमें दोनों सैन्योंके मुखभङ्ग हो जाने पर भी रोषकी शान्ति नहीं होती थी, वह युद्ध ऐसा हुआ कि पति चुननेके लिये आई हुई सभी देवबालाओंके मनोरथ पूर्ण हो गये और कलहप्रिय होनेके कारण युद्धदर्शनके प्रेमी नारदने भी ऐसा युद्ध पहले कभी नहीं देखा था॥ ६०॥

ममाथ शैलादथ वालिनन्दनो नरान्तकं संयति वानरान्तकम्।
हनूमता सोऽपि हतः सुरान्तकः पुरान्तकेनेव[2] रुषा पुरान्तकः॥ ६१॥

---

१. 'च' इति पाठान्तरम्। २. 'तथा' इति पाठान्तरम्।

ममाथेति। अथ चिरं युद्धे जाते सति वालिनन्दनः अङ्गदः शैलात् पर्वतश्रृङ्गप्रहारात् वानरान्तकम् वानरसैन्यसंहारप्रवृत्तम् नरान्तकं नाम रावणसुतं संयति युद्धे ममाथ संहृतवान्, पुरान्तकेन त्रिपुरारिणा शिवेन पुरा पूर्वम् अन्तको यम इव रुषा कोपेन हनूमता मारुतिना सः प्रसिद्धपराक्रमः सुरान्तकः देवान्तकनामाऽपि रावणपुत्रो हतः मारितः। उपमायमकयोः संसृष्टिः। वंशस्थं वृत्तम् ॥ ६१ ॥

इसके बाद वालिपुत्र अङ्गदने पर्वत प्रहार कर वानरान्तकर नारान्तक नामक रावणपुत्रको युद्धमें समाप्त कर दिया और पुराने समयमें जैसे महादेवने यमराजका वध किया था उसी तरह हनूमान्ने क्रोधसे उस देवान्तकका भी वध कर दिया ॥ ६१ ॥

अनन्तरमसमसमरशीलेन नीलेन निहते महोदरे मारुतिमथितशिरसि त्रिशिरसि विशसितेषु महापार्श्वादिषु वाहिनीपतिषु निर्भरविषादरोषपरवशो [1]निशाचराकार इव तमोनिकायः [2]समरमतिकायः समागत्य वृत्रासुर इव सुत्राम्णा सुमित्रासुतेन सह वितेने विचित्रमायोधनम्।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् नरान्तकदेवान्तकवधानन्तरम् असमसमरशीलेन अद्वितीययुद्धकौशलशालिना नीलेन तदाख्यवानरसेनापतिना महोदरे तदभिधाने रावणसोदरे निहते मारिते सति, त्रिशिरसि त्रिशिरोनामके च रावणपुत्रे मारुतिना हनुमता मथितशिरसि विपाटितमस्तके सति, महापार्श्वादिषु महापार्श्वप्रभृतिषु वाहिनीपतिषु सेनानायकेषु विशसितेषु विनाशितेषु सत्सु, निर्भरविषादरोषपरवशः समुत्कटशोककोपपरितः निशाचराकारः राक्षसरूपधारी तमोनिकायः अन्धकारराशिरिव अतिकायः रावणप्रेरितकुमारचतुष्टयेऽन्यतमः समरं युद्धस्थलं समागत्य उपेत्य सुत्राम्णा इन्द्रेण सह वृत्रासुरः तन्नामको दैत्यभेद इव सौमित्रिणा लक्ष्मणेन सह विचित्रम् अद्भुतम् आयोधनं युद्धम् वितेने कृतवान्। 'सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः। निशाचराकार इव तमोनिकाय इत्युपमा।

इसके बाद अद्वितीययुद्धकौशलसम्पन्न नीलके द्वारा महोदरके मारे जाने पर हनूमान्के द्वारा त्रिशिराके निहत होने पर और महापार्श्वप्रभृति सेनापतियोंके भी मारे जाने पर अत्युत्कट शोक तथा कोपसे युक्त, निशाचरमूर्त्तिधारी अन्धकारराशिके समान अतिकाय युद्धमें आकर वृत्रासुरने इन्द्रके साथ जैसा विचित्र युद्ध किया था, वैसा ही युद्ध लक्ष्मणके साथ करने लगा।

स च सुचिरं नियुध्य तमवध्य [3]इतीशवरा-
दनिलगिरा विबुध्य पुनरस्त्रमधत्त विधेः।

---

१. 'निशाचरः साकारः' इति पाठान्तरम्। २. 'सरयम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'इतीव वरात्' इति पाठान्तरम्।

दलितमनेन तद्दिवि समुत्पतितं जगता-
मतनुत राहुभीतिमधिकामतिकायशिरः ॥ ६२ ॥

स चेति। स च सौमित्रिः लक्ष्मणः सुचिरं चिरकालपर्यन्तं नियुध्य युद्धं कृत्वा तम् अतिकायम् ईशवराद् ब्रह्मणो वरदानात् अवध्यः हन्तुमशक्यः इति एवंप्रकारेण अनिलगिरा वायुवचनेन विबुध्य ज्ञात्वा पुनः विधेः ब्रह्मणः अस्त्रम् ब्राह्मास्त्रम् अधत्त धारितवान्। अनेन ब्राह्मेणास्त्रेण दलितं छिन्नं तत् अतिकायस्य शिरो दिवि आकाशे समुत्पतितं गतं सत् जगतां द्रष्टृलोकानाम् अधिकाम् बहुलाम् राहुभीतिम् राहुरयमुदित इति भ्रान्तिजनितं भयम् अतनुत चक्रे। चिरं युद्धयमानो लक्ष्मणो यदा वायुवचनादतिकायमाप्तब्रह्मवरतयाऽवश्यमवगतवाँस्तदा ब्राह्मास्त्रमयुङ्क्त, तेन ब्राह्मास्त्रेण च्छिन्नं सत्तदीयं शिरो विपदुत्पतितं लोकैराहुरयमुदित इति भ्रमभवं भयं समधिकमकृतेति भावः। 'सम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः' इति लक्षितो भ्रान्तिमानलङ्कारः ॥ ६२ ॥

लक्ष्मण अतिकायके साथ बड़ी देर तक लड़ते रहे, जब वायुके कथनसे उनको मालूम हुआ कि ब्रह्मवर प्राप्त होनेके कारण यह मारा नहीं जा सकता है, तब लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। उस ब्रह्मास्त्रसे काटा गया अतिकायका शिर आकाशमें उड़ा और वह ऐसा लगता था मानो राहु हो, उसे देखकर लोग अधिक भय प्राप्त करते थे ॥ ६२ ॥

अनुनीय रावणिरथो विधुरं पितरं दधत्पृथुसमीकधुरम्।
स रथी समेत्य सधनुः [1]शरधी चलितश्चमूभि[2]रभिदाशरथी ॥६३॥

अनुनीयेति। अथो तातसहोदरद्वयकुमारचयवधश्रवणानन्तरम् प्रसिद्धो रावणिः इन्द्रजित् विधुरं तन्निधनदुःखितं पितरं रावणमनुनीय समाश्वास्य पृथुसमीकधुरम् महारणभारं दधत् धारयन्, रथी रथारूढः सधनुःशरधी बाणपूर्णौ निषङ्गौ समेत्य प्राप्य चमूभिः सैन्यैः सह दाशरथी रामलक्ष्मणौ अभि उद्दिश्य चलितः प्रस्थितः। इन्द्रजिद्युद्धसज्जो भूत्वा बन्धुस्वजनवधक्षुभितस्य पितुराश्वासनं कृत्वा रामलक्ष्मणावाक्रमितुं ससैन्यः प्रस्थित इत्यर्थः। प्रमिताक्षरावृत्तम् ॥ ६३ ॥

इसके बाद इन्द्रजित्ने दुःखाभिभूत पिताको आश्वासन प्रदान कर महारणका भार अपने ऊपर लेकर, रथारूढ़ हो और बाणपूर्ण निषङ्गद्वय लेकर सेनाके साथ रामलक्ष्मण की ओर चल पड़ा ॥ ६३ ॥

[3]आगत्य समरमरातिजयमनोरथाय [4]रथाभिरक्षायै रक्षांसि परितः

---

१. 'शरधिः' इति पाठान्तरम्। २. 'अधिदाशरथी' इति पाठान्तरम्।
३. 'अधिसमरम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'रथाभिरक्षां' इति पाठान्तरम्।

प्रकल्प्य प्रतर्प्य च हविषा [1]प्रदक्षिणशिखं शिखावन्तं [2]मन्त्राधिगतविविधशस्त्राणि दधानस्तिरोधानं[3] गत एव निशितमुखैः शिलीमुखैर्निर्माय निखिलमर्माहतिं निस्त्रिंशक्रमः क्रव्यादो व्याघ्र इव हरीन्विधुरीचकार ।

आगत्येति । समरम् युद्धभूमिम् आगत्य प्राप्य अरातिजयमनोरथाय शत्रुविजयकामनासिद्धये रथाभिरक्षायै स्वरथरक्षणाय रक्षांसि राक्षसान् रक्षकरूपान् परितः प्रकल्प्य सर्वतः स्थापयित्वा हविषा हवनीयद्रव्येण घृताद्याहुत्या प्रदक्षिणशिखं दक्षिणावर्तज्वालामालिनम् शिखावन्तम् अग्निम् प्रतर्प्य तृप्तं कृत्वा, मन्त्राधिगतविविधशस्त्राणि मन्त्रसामर्थ्यावाप्तानि बहूनि शस्त्राणि दधानः बिभ्राणः तिरोधानगतः स्वयमदृश्य एव निशितमुखैः तीक्ष्णाग्रभागैः शिलीमुखैः बाणैः निखिलमर्माहतिं समस्तसैन्यव्यथाम् निर्माय सम्पाद्य निस्त्रिंशस्य खड्गस्य क्रमः इव क्रमो यस्य स तथोक्तः खड्गवद्भेदकः (स इन्द्रजित्) क्रव्यादः राक्षसः व्याघ्र इव हरीन् वानरान् विधुरीचकार क्लेशयामास । प्रदक्षिणा दक्षिणावर्त्ता शिखा ज्वाला यस्य स प्रदक्षिणशिखः, 'घृणि ज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः, शिखायाः प्रदक्षिणत्वोक्त्या जयप्रदत्वं सूच्यते, यथोक्तम्—'इत्थं प्रदक्षिणगतो हुतभुङ्नृपस्य धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति' । निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः, तस्य क्रम इव क्रमो यस्य स निस्त्रिंशक्रमः ।

युद्धक्षेत्रमें आकर शत्रुजयके विषयमें कामनापूर्तिके लिये अपने रथकी रक्षार्थ चारो ओर राक्षसोंको नियुक्त करके, हवनीय द्रव्योंसे प्रदक्षिणज्वालवह्निको तृप्तकर, मन्त्रबलसे प्राप्त नानाप्रकारके शस्त्रास्त्रोंको धारणकर छिपे छिपे ही तीक्ष्ण अग्रभागवाले बाणोंसे सभी सैन्योंका मर्मभेदन करके तलवारकी धारके समान तीक्ष्णप्रहारी उस इन्द्रजित्ने सभी वानरोंको बाघकी तरह बेचैन कर डाला ।

सहलक्ष्मणं तमपि दाशरथिं परुषो निदाघ इव पद्मसरः ।
विकलाशयं विधुरसत्त्वमयं विरचय्य धाम च जगाम [4]शनैः ॥ ६४ ॥

सहलक्ष्मणमिति । अयं रावणिः इन्द्रजित् सहलक्ष्मणं लक्ष्मणयुक्तं तं दाशरथिम् रामम् अपि परुषः कठोरः निदाघः ग्रीष्मकालः पद्मसरः कमलाशयम् इव विकलाशयम् व्यथितमानसं पक्षे शुष्कजलतया कलुषिताधारप्रदेशञ्च, विधुरसत्त्वम् नष्टशक्तिकम् पक्षे खिन्नप्राणिवर्गं च विरचय्य कृत्वा शनैः मन्दं मन्दं धाम स्वगृहं जगाम । यथा कठोरो ग्रीष्मकालः पयः शोषयित्वा प्राणिनश्च पिपासाक्षामकण्ठतया विधुरान् विधत्ते, तथैवायमपि रावणी रामलक्ष्मणौ खिन्नमानसौ नष्टशक्तिकौ च

---

१. 'प्रदक्षिणशिखावन्तम्' इति पा० । २. 'मन्त्राधिगतानि विचित्राण्यस्त्राणि' इति पा० ।
३. 'तिरोधानं समागतः' इति पाठान्तरम् । ४. 'शरैः' इति पाठान्तरम् ।

कृत्वा लब्धसाफल्यः स्वं भवनमयासीत् इत्यर्थः। श्लेषसङ्कीर्णोपमाऽलङ्कारः। 'आशयः स्यादभिप्रायो मानसाधारयोरपि' 'विधुरं प्रीत्यपेते स्यात्कष्टविश्लिष्टयोरपि' इत्युभयत्र वैजयन्ती। प्रमिताक्षरावृत्तम् ॥ ६४ ॥

युद्धभूमिमें आकर उस मेघनादने लक्ष्मणसहित रामको उसी प्रकार विकलहृदय तथा क्षीणशक्ति बना दिया जैसे कठोर ग्रीष्मकाल कमलसरोवरको शुष्काधार तथा दुःखयुक्त प्राणिवर्ग परिवृत बना देता है और इस तरह सफल मनोरथ होकर वह धीरे धीरे अपने घर चला गया ॥ ६४ ॥

क्षतार्कभवतेजसि क्षपितरामचन्द्रद्युतौ
विमुच्य सति निर्गते विशिखवृष्टिमस्मिन्घने।
अदीप्तनलमस्फुरत्कुमुदमस्तनीलोत्पलं
समुत्तरलजीवनं समभवत्तदा वाहिनी ॥ ६५ ॥

क्षतार्केति। क्षतम् विनष्टम् अर्कभवस्य सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य तेजो यस्मात्तादृशे मेघनादे क्षतसूर्यप्रकाशे च घने, क्षपितरामचन्द्रद्युतौ मेघनादेन रामस्य द्युतिरपसारिता, मेघेन च चन्द्रस्य, विशिखवृष्टिं बाणवर्षां विमुच्य विसृज्य गते सति, मेघे वृष्टिर्मेघनादे च शरवृष्टिः, तादृशे अस्मिन्घने मेघनादरूपे मेघे गते सति, तदा वाहिनी वानरसेनैव नदी अदीप्तनलम् अदीप्तः हतप्रभः नलो नाम वानरो यत्र कर्मणि तथेति सेनापक्षे, नदीपक्षे नलस्तृणविशेषः, अस्फुरत्कुमुदम्—कुमुदो वानरभेदः सेनायां नद्यां तु कुमुदं पुष्पम्, अस्तनीलोत्पलम् नीलकमलं नद्यां सेनायां च नीलोत्पलनामानौ वानरौ समुत्तरलजीवनमिति जीवनशब्दो जलार्थो नद्यां, सेनायां तु जीवितार्थः, तथाभूतमभवत्। सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य प्रभावमभिभूय रामचन्द्रद्युतिं चापसार्य बाणान् विसृज्य मेघनादे गते सति नलस्य दीप्तिः, कुमुदस्य स्फुरणम्, नीलोत्पलनामकयोश्च वानरयोर्विकस्वरत्वं समाप्तमभूत्, सर्वस्याश्च सेनाया जीवनमस्थिरमभवदिति, यथा सूर्यप्रभवां प्रभां पराभूय चन्द्रद्युतिं च निरस्य वृष्टिं कृत्वा मेघे गते सति नद्यां नलतृणविकासोऽवसीदति कुमुदस्फुरणं प्रतिबध्यते, नीलोत्पलं पयःपूरप्लावितं सदस्तं गच्छति, जीवनं जलं च तरलतामापद्यते इति स्पष्टार्थः। 'सेनानद्योश्च वाहिनी' 'नलः पोटगले राज्ञि पितृगर्त्ते कपीश्वरे' 'कुमुदं कैरवे रक्तपङ्कजे कुमुदः कपौ' 'नीलः कपीशभेदेऽद्रौ कृष्णे ना तद्वति त्रिषु' इति सर्वत्र नानार्थरत्नमाला। श्लेषसङ्कीर्णं सावयवरूपकम् अलङ्कारः। पृथिवीवृत्तम् ॥ ६५ ॥

सूर्यपुत्र सुग्रीवके तेजको तथा सूर्यकी कान्तिको परास्त करके रामरूप चन्द्रकी ज्योति हर कर बाणरूप जलकी वर्षा करके मेघनादरूप मेघके चले जाने पर, नल तृण तथा वानरकी दीप्तिसे रहित कुमुदपुष्प तथा वानरके स्फुरणसे शून्य नीलकमलशून्य तथा नील

उत्पल नामक वानर द्वयकी चमक-दमकसे वर्जित, जलकी चञ्चलतासे युक्त तथा जीवनकी अस्थिरतासे युक्त वाहिनी वानरसेना नदी हो गई ॥ ६५ ॥

अचलमथ सलीलमोषधीनां हरति हनूमति जाम्बवन्नियोगात् ।
विचलितमभवद्बलं विशल्यं विबुधमनोऽपि विधूतशोकशल्यम् ॥६६॥

अचलमिति । अथ वानरसेनासु मूर्च्छितासु सतीषु जाम्बवतः नियोगात् आदेशात् हनूमति पवनतनये सलीलम् अनायासम् ओषधीनाम् अचलम् सञ्जीवन्यादिविविधौषधपूर्णं पर्वतविशेषम् हरति आनयति सति बलम् वानरसैन्यम् विशल्यम् अपगतव्रणम् सत् विचलितं पुनर्युद्धाय कृतोद्योगम् अभवत् तथा विबुधानां देवानां मनः चित्तम् अपि विधूतशोकशल्यम् अपगतविषादकण्टकम् अभवत्, वानरसैन्यप्रबोधेन देवा अपि सन्तुष्टमनसो बभूवुरित्यर्थः । अत्र सैन्यविबुधमनसोरेकत्र भवतिक्रियायामन्वयात्तुल्ययोगिताऽलङ्कारः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ६६ ॥

इसके बाद जाम्बवान्के आदेशसे हनूमान्के द्वारा सञ्जीवनी आदि दवाओंसे भरे पर्वतके अनायास लाये जाने पर वानरसेनाका घाव भर गया वे पुनः युद्धके लिये चल पड़े और साथ ही देवोंका हृदय भी विषादशल्यसे रहित हो गया ॥ ६६ ॥

[1]पुनस्तेन सहजतेजोभरितेन दावानलेनेव वानरबलेन दह्यमानां दरीमिव पुरी[2]मपहाय [3]पञ्चाननमिव पङ्क्त्याननिदेशतश्चलित[4]मखिलभुवनप्रकम्पनमकम्पनमाहतप्लवङ्गसङ्घं प्रजङ्घ[5]मङ्गदभुजप्रतापानलशलभावुभावपि निशम्य निशाम्य च द्विविदमैन्दावदारितौ महारथौ शोणिताक्षवि[6]रूपाक्षावपि कोपा[7]क्षान्तिभ्यां पुरुषसंरम्भौ कुम्भनिकुम्भौ महावीरौ समुत्तम्भ्य [8]बाहू सुबाहुमारीचाविव राघवभुजाभ्यां सुग्रीवहनूमद्भ्यामद्भुतं युद्धमतनिषाताम् ।

पुनस्तेनेति । पुनः भूयः तेन युद्धक्रियाप्रसिद्धपराक्रमेण सहजतेजोभरितेन नैसर्गिकप्रभावसंयुक्तेन (स्वाभाविकज्वालायुक्तेन) दावानलेन वनवह्निना इव वानरबलेन वानरसैन्येन दह्यमानां भस्मीक्रियमाणां दरीं गुहाम् इव पुरीं लङ्काम् पंक्त्याननिदेशेतः रावणादेशात् अपहाय त्यक्त्वा पञ्चाननम् सिंहम् इव चलितम् (यथा स्वभावदाहकेन वनानलेन दह्यमानां दरीं हित्वा सिंहश्चलति तथा स्वभाव-

---

१. 'तेन पुनः' इति पाठान्तरम् ।
२. 'विहाय' इति पाठान्तरम् ।
३. 'पञ्चानाविव' इति पाठान्तरम् ।
४. 'अखिलरिपुप्रकम्पनः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'प्रजङ्घं च' इति पाठान्तरम् ।
६. 'यूपाक्षौ' इति पाठान्तरम् ।
७. 'कोपाक्षान्तपरुष' इति पाठान्तरम् ।
८. 'बाहुम्' इति पाठान्तरम् ।

तेजस्विना वानरसैन्येन दह्यमानां लङ्कापुरीं विहाय चलितम् इत्यर्थः) अखिल-भुवनप्रकम्पनम् सकललोकभयजननम् अकम्पनम् तन्नामानम्, आहतप्लवङ्ग-सङ्घम् मारितवानरसमुदयम् प्रजङ्घम् तन्नामकम् इत्युभौ द्वावपि अङ्गदभुजानल-शलभौ अङ्गदबाहुवीर्यरूपे वह्नौ शलभभावंगतौ अङ्गदेन हतौ निशम्य श्रुत्वा महारथौ विकटयोद्धारौ शोणिताक्षविरूपाक्षौ तन्नामकौ राक्षसमुख्यौ अपि द्विविद-मैन्दाभ्यां तन्नामकवानरयूथपाभ्याम् अवदारितौ हतौ निशाम्य दृष्ट्वा च कोपाक्रा-न्तिभ्याम् क्रोधक्षमाराहित्याभ्याम् परुषसंरम्भौ गृहीतकठोरयुद्धप्रयासौ महावीरौ विकटयोधौ कुम्भनिकुम्भौ नाम कुम्भकर्णपुत्रौ सुबाहुमारीचौ विश्वामित्रयज्ञरक्षा-वसरे रामेण हतौ राक्षसाविव राघवभुजाभ्यां रामस्य भुजतुल्याभ्यां प्रधानसहाय-काभ्यां सुग्रीवहनूमद्भ्यां कुम्भः सुग्रीवेण निकुम्भो हनूमतेति यथाक्रममन्वयः। अद्भुतं विलक्षणं युद्धम् अतनिषाताम् कृतवन्तौ। 'आत्मानं सारथिं चाश्वान् रक्ष-न्युध्येत यो नरः। स महारथसंज्ञः स्यात्'।

जैसे स्वाभाविक ज्वालायुक्त दावानलसे जलती हुई गुहाको छोड़कर सिंह भाग निकलता है उसी तरह स्वभावतः पराक्रमशाली वानरसैन्यके द्वारा जलाई गई लङ्कापुरीको रावणादेशसे छोड़कर चले, समस्त संसारको कंपाने वाले अकम्पनको और वानर-समुदायको मारने वाले प्रजङ्घको इन दोनोंको अङ्गदके पराक्रमरूप आगमें पतङ्ग बने सुनकर और महारथी शोणिताक्ष और विरूपाक्षको द्विविद तथा मैन्दद्वारा मरते हुए देखकर क्रोध तथा ईर्ष्यासे अतिकठोर युद्धोद्यत महावीर कुम्भनिकुम्भ नामक कुम्भकर्णके दोनों पुत्र अपने हाथ उठाकर सुबाहु मारीच की तरह रामके हाथ सदृश मुख्य सहायक सुग्रीव तथा हनुमान्के साथ अद्भुत युद्ध करने लगे।

भूमौ ततः प्लवगराजभुजेन विद्ध-
मालोक्य कुम्भम[1]सहन् विरहं तदीयम्।
शोकादगादनिलसूनुहतो निकुम्भ-
स्तन्नामयुक्तममरी[2]स्तनकुम्भमेव ॥ ६७ ॥

भूमाविति। ततः तदनन्तरम् प्लवगराजभुजेन वानरनायकसुग्रीवहस्तेन विद्धम् ताडितम् अतएव भूमौ (पतितम्) कुम्भम् आलोक्य दृष्ट्वा तदीयं कुम्भसम्ब-न्धिनम् विरहम् वियोगम् असहन् सोढुमपारयन् निकुम्भस्तद्भ्राता अनिल-सूनुहतः वायुपुत्रेण मारितः सन् शोकात् स्वभ्रातृविपत्तिश्रवणविषादात् इव तन्नाम-युक्तम् तन्नामाक्षरसंपृक्तम् अमरीस्तनकुम्भम् देवाङ्गनाकुचकलशम् एव अगात्। भ्रातृसाहचर्यमीप्सोस्तदनाप्तौ तन्नाम सगन्धामरीकुचकुम्भप्राप्तिरेव तत्तोषाय, यथा-

१. 'असहन्' इति पाठान्तरम्। २. 'कुचकुम्भमेव' इति पाठान्तरम्।

सम्भवोपायैस्ततोऽधिकस्यालभ्यत्वादित्यर्थः, युद्धे निहतेन निकुम्भेन वीरवरणार्थमागतयाऽमर्या सम्बन्धो जात इति हृदयम्। सादृश्यार्थं दृश्यताम्—'अस्मत् किल श्रोत्रसुधां विधाय रम्भा चिरं भामतुलां नलस्य। तत्रानुरक्ता तमनाप्य भेजे तन्नामगन्धान्नलकूवरं सा' इति नैषधम् ॥ ६७ ॥

वानरराज सुग्रीवके बाहुसे ताडित होकर जमीनपर पड़े हुए कुम्भको देखकर उसके वियोगको नहीं सह सकनेवाला निकुम्भ हनूमानके हाथसे निहत होकर कुम्भके नामाक्षरसे युक्त देवाङ्गनाकुचकुम्भको पाकर रह गया ॥ ६७ ॥

ततः [1]कुपितरावणाकारणं रणवाहनियुक्तं युक्तमखिलवाहिनीभिराहवाटोपमुखरं खरात्मजं मकराक्षमैक्ष्वाकशरोऽपि विपक्षमपि सपक्ष [2]एव समक्षमनयज्जनयितुः।

तत इति। ततः तदनन्तरम् कुपितेन कुम्भनिकुम्भवधजातमन्युना रावणेन आकारणम् आह्वानं यस्य तादृशम्, रणवाहनियुक्तम् रणनिर्वाहाय युद्धसञ्चालनाय नियुक्तम् अधिकृतम् अखिलवाहिनीभिः समस्तराक्षससेनाभिर्युक्तम् आहवाटोपमुखरम् युद्धोपयुक्तसिंहनादविसर्जिनम्, खरात्मजं खरनामकराक्षसतनयं मकराक्षम् अपि तन्नामकमपि विपक्षं शत्रुं सपक्षः पक्षयुक्तः एव ऐक्ष्वाकशरः रामबाणः जनयितुः पितुः पूर्वं रामेणैव हतस्य खरस्य समीपं पार्श्वदेशम् अनयत् प्रापितवान्, रामेण सोऽपि हत इत्यर्थः। 'हूतिराकारणाह्वानम्' इत्यमरः।

इसके बाद कुपित रावण द्वारा बुलाये गये, युद्ध सञ्चालनमें नियुक्त, समस्त राक्षससेना समेत युद्धके लिये गरजते हुए, खरके पुत्र मकराक्ष नामक विपक्षको पक्षयुक्त रामके बाणने उसके पिताके पास पहुँचा दिया।

कृत्वा मूर्धनि शासनं पितुरथो गत्वा रणं रावणि-
हुत्वा तत्र महाभुजो हुतभुजं धृत्वा महास्त्राणि च।
स्थित्वा व्योमनि मायया शरचयं त्यक्त्वा च भित्त्वा चमूं
बुद्ध्वा राघवकोपमाप सहसा लङ्कामलं कातरः ॥ ६८ ॥

कृत्वेति। अथो मकराक्षवधात्परतः महाभुजः विशालबाहुः रावणिः मेघनादः पितुः रावणस्य शासनम् आज्ञां शिरसि कृत्वा निधाय तदादेशमनुसृत्य रणं युद्धक्षेत्रं गत्वा प्राप्य तत्र रणाङ्गणे हुतभुजमग्निं हुत्वा अग्नौ होमं कृत्वा महास्त्राणि दिव्यायुधानि च धृत्वा मायया अन्तर्धानशक्त्या व्योमनि अन्तरिक्षे स्थित्वा शरचयं बाणसमुदयं त्यक्त्वा विसृज्य चमूं वानरवाहिनीं च भित्त्वा विदार्य (ततः) राघ-

१. 'कौणपपतिनियुक्तं' इति पाठान्तरम्।   २. 'इव' इति पाठान्तरम्।

वस्य रामस्य कोपम् क्रोधोदयं बुद्ध्वा ज्ञात्वा अलम् अत्यर्थं कातरः भीतः सन् सहसा हठात् झटिति लङ्कां नाम स्वां पुरीम् आप ॥ ६८ ॥

मकराक्षके मारे जानेके बाद पिताकी आज्ञा मानकर रावणका बेटा मेघनाद युद्धक्षेत्रमें आया, उस महाबाहुने युद्धस्थलमें होम किया, उसके द्वारा महास्त्र प्राप्त किये, अपनी मायासे आकाशमें अवस्थित होकर उसने बाणकी वर्षा कर वानर सैन्यको छिन्नभिन्न कर दिया, अनन्तर रामको कुपित देखकर भयभीत हो झटसे लङ्कापुरमें प्रवेश किया ॥ ६८ ॥

ततः प्रतीचः प्रतिहारादयं [1]प्रातिहारिको निर्गत्य निकृत्यासिना कांचिदाञ्जनेयस्य पुरतो मायामयीं मैथिलीमाकुलीकृत[2]मानसे तस्मिन्नाकस्मिकमिदमतथ्यमपि तथ्यमेव [3]विबुध्य [4]चिराय नियुध्य निराशे [5]निवृत्ते [6]विद्वेषि[7]पशुविशसनारम्भीनिकुम्भिलां [8]समासाद्य सद्य एष [9]प्रावर्तयत सत्रमतिविचित्रम् ।

तत इति । ततः पुरप्रवेशानन्तरं प्रातिहारिकः मायावी (प्रतिह्रियते मोह्यते परमानसमनेनेति प्रतिहारो माया, सः प्रयोजनमस्येति प्रातिहारिकः) इन्द्रजित् प्रतीचः प्रतिहारात् प्रत्यग्द्वारात् निर्गत्य नगराद्बहिर्भूय आञ्जनेयस्य हनूमतः पुरतः अग्रे काञ्चन कामपि मायामयीं मायया निर्मितां कृत्रिमां मैथिलीं सीताम् असिना खड्गेन निकृत्य द्विधा खण्डयित्वा आकुलीकृतमानसे सीतावधदर्शनजन्मना शुचा व्याकुलीभूतमानसे तस्मिन् हनूमति आकस्मिकम् इदम् हठोपनतमेतत् सीताखण्डनम् अतथ्यम् मायिककार्यत्वेन मिथ्याभूतमपि तथ्यं यथार्थम् एव विबुध्य ज्ञात्वा चिराय बहुकालपर्यन्तं नियुध्य युद्धं कृत्वा निराशे असफलमनोरथे निवृत्ते परावृत्ते सति विद्वेषिणः शत्रवः एव पशवः हिंस्यतया पशुतुल्यास्तेषां विशसनं निर्ममहत्याम् आरभते यस्तादृशः शत्रुरूपपशुमारणरसिकः एषः मेघनादः निकुम्भिलां नाम गुप्तं मन्त्रसिद्धिस्थानम् समासाद्य प्राप्य सद्यः तत्कालम् अतिविचित्रम् अतिगहनमद्भुतञ्च सत्रम् आभिचारिकं यागम् प्रावर्त्तयत प्रारभत।

इसके बाद मायावी इन्द्रजित् पच्छिम दरवाजेसे निकला और हनूमान्के सामने ही किसी मायानिर्मित सीताका शिर तलवारसे काट दिया, उसके इस निर्मम आचरणसे हनूमान्जीका मन व्याकुल हो उठा, हनूमान्ने इस आकस्मिक सीतावधको असत्य होने

१. 'स प्रातिहारिकः' इति पाठान्तरम् । २. 'मनसि' इति पाठान्तरम् ।
३. 'बुद्ध्वा' इति पाठान्तरम् । ४. 'नियुध्य चिराय' इति पाठान्तरम् ।
५. 'प्रतिनिवृत्ते' इति पाठान्तम् । ६. 'विद्विषि' इति पाठान्तरम् ।
७. 'विपक्षपशु' इति पाठान्तरम् । ८. 'आसाद्य' इति पाठान्तरम् ।
९. 'प्राव्रतत' इति पाठान्तरम् ।

पर भी सत्य ही समझ लिया, बड़ी देर तक उस इन्द्रजित्के साथ लड़ते रहे, अन्तमें हताश होकर लौट आये और वह इन्द्रजित् शत्रुरूप पशुओंको वध करनेके लिये निकुम्भिला नाम गुप्तस्थानमें आकर तत्काल अद्भुत प्रकारका अभिचार याग प्रारम्भ किया।

तदनु हनूमतः प्रतिनिवृत्ता[1]द्दुर्वृत्तान्तमिममाकर्ण्य [2]विदीर्णमानसो मानसचर इव वज्रनिर्घोषाद्विषादाकुलो राजहंसः संसदि निपत्य सौमित्रिणा समाश्वास्यमानः सकरुणं निःश्वस्य विश्वस्य पतिरपि [4]विधुरो व्यलापीत्।

तदन्विति। तदनु मेघनादस्य निकुम्भिलाप्रवेशात् परतः प्रतिनिवृत्तात् परागतात् हनूमतः वायुपुत्रात् इयं दुर्वृत्तान्तम् अशुभसमाचारम् आकर्ण्य श्रुत्वा वज्रनिर्घोषात् वज्रशब्दतः मानसचरः मानसरोवरवासी राजहंसः पक्षिविशेष इव विदीर्णमानसः खिन्नमनाः विषादाकुलः शुचाऽऽक्रान्तः राजहंसः राजसुश्रेष्ठः रामः संसदि वानरगोष्ठ्यां निपत्य भुवि पतित्वा सौमित्रिणा लक्ष्मणेन समाश्वास्यमानः धैर्यं प्राप्यमाणः सकरुणं दीनभावेन निःश्वस्य दीर्घश्वासं गृहीत्वा विश्वस्य पतिः संसारस्य स्वामी परमेश्वरः सन्नपि विधुरः दुःखग्लपितः व्यलापीत् विलापं कृतवान्। यथा वज्रघोषान्मानसवासी हंसो विषीदति तथा सीतामरणज्ञापकात्पवनतनयवचनाद्विषद्य रामो वानरसभायां भूमौ पतितः सन् सौमित्रिणा धार्यमाणधैर्यः सकरुणं विलापं कृतवानित्याशयः। 'मानसं सरसि स्वान्ते' 'सभा समिति संसदः' 'राजहंसो नृपश्रेष्ठे कादम्बकलहंसयोः' इति सर्वत्रामरः।

इसके बाद लौटे हुए हनूमान्से सीतामरणरूप दुर्वृत्तान्त सुनकर व्यथित हृदय-वज्रनिर्घोष सुनकर व्यथित हृदय हंसकी तरह विषादयुक्त राजश्रेष्ठ रामचन्द्र वानरकी जमघटमें जमीन पर गिर पड़े, लक्ष्मणने उन्हें धीरज बँधाया, तदनन्तर दीनभावसे निःश्वास छोड़कर दुःखी रामने विलाप करना प्रारम्भ किया।

जज्ञे तदत्रभवती जनकस्य यज्ञे
देव्याश्चिराय धरणेररणेः [5]शिखेव।
वंशे मनोरपि वधूरभवत्किमन्य-
द्राम[6]स्तथापि विधिना रचितो विरामः॥ ६६॥

---

१. 'वृत्तमेतदाकर्ण्य' इति पाठान्तरम्। २. 'विशीर्ण' इति पाठान्तरम्।
३. 'राजहंसः' इति नास्ति क्वचित्। ४. 'विधुरम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'शिखीव' इति पाठान्तरम्। ६. 'तवापि' इति पाठान्तरम्।

जञ इति। तत् तथा अत्रभवती पूज्या सीता जनकस्य राज्ञः यज्ञे अरणेर्मन्थनकाष्ठात् शिखा अग्निज्वाला इव धरणेः हलमुखकृष्टायाः भूमेः चिराय चिरप्रतीक्षायाः पश्चात् जज्ञे जाता। मनोः वंशे वधूः स्नुषा अपि अभवत्, अन्यत् किम् सर्वमेव सीतायाः पवित्रम् आसीत् इत्यर्थः, तथापि (जनकयज्ञे पृथिव्या जन्म गृहीत्वा रघुकुले स्नुषाभावं प्रतिपद्यते स्म, तेन परमपूतकुलोत्पन्नप्रियाप्राप्तिकृतार्थतामाप्यापि) रामः अहम् विधिना विधात्रा विरामः रामया स्त्रिया वियुक्तो रचितः कृतः। तादृशीं स्त्रियमवाप्यापि रामस्तया वियुक्त इति धिङ्मामभाग्यं धिक्च तादृशकष्टदायिनं धातारमिति भावः। 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः। 'सुन्दरी रमणी रामा' इति चामरः॥ ६९॥

जैसे मन्थनकाष्ठसे वह्निज्वाला प्रकट होती है उसी तरह जनकके यज्ञमें पृथ्वीसे सीता उत्पन्न हुई, वही सीता आगे चलकर भाग्यवश मनुवंश की वहू बनी, इससे उत्तम बात क्या हो सकती थी, परन्तु सब कुछ होनेके बाद भी मैं रामचन्द्र आज सीताके अभावमें विना स्त्रीका हो रहा हूँ॥ ६९॥

यत्नो सुधा भवति यत्र समीरसूनो-
र्नालं नलोऽपि नवसेतुनिबन्धनाय।
दूरे च पावकशरो[1] दुरतिक्रमोऽयं
तर्केन शोकजलधिस्तव लङ्घनीयः॥ ७०॥

यत्न इति। यत्र तस्मिन् शोकजलधौ समीरसूनोः वायुतनयस्य यत्नः लङ्घनोत्साहः सुधा विफलो भवति यं हनूमानपि लङ्घितुं न क्षमते, यत्र नलः तन्नामख्यातो वानरः अपि नवसेतुनिबन्धनाय नवीनसेतुनिर्माणाय न अलम् समर्थः, यत्र शोकजलधौ नलः सेतुबन्धम् अपि न कर्त्तुं पारयति, तथा पावकशरः आग्नेयमस्त्रम् अपि दूरे समीपं गन्तुमशक्तः, आग्नेयास्त्रमपि यस्य शोषणे न प्रभवति, तदेवं सर्वोपायसम्भावनाऽगोचरतया दुरतिक्रमः दुस्तरः अयं तव शोकजलधिः त्वद्विपत्ति जनितविषादसागरः केन लङ्घनीयः, न केनापि तर्त्तुं शक्य इत्यर्थः। सागरस्य हनूमल्लङ्घनीयता, नलबन्धनीयसेतुमत्तया सुतरता, रामप्रयुक्तपावकास्त्रशोष्यता चेति सन्त्युपायास्तरणे परमस्य सीतामृत्युजन्यशोकसागरस्य तूक्तोपायत्रितया गोचरतया नितान्तदुस्तरतया लङ्घनमशक्यमिति भावः। उपमानभूतप्रसिद्धार्णवापेक्षयोपमेयस्य शोकजलधेराधिक्यस्य कथनाद्व्यतिरेकोऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ७०॥

जिसमें हनूमान्का प्रयत्न व्यर्थ है, जहाँ नल भी सेतु नहीं बना सकते हैं और जहाँ

---

१. 'शरान्' इति पाठान्तरम्।

आग्नेय अस्त्रकी भी गति नहीं होगी, ऐसा दुस्तर यह तुम्हारे वियोगमें शोकसमुद्र है, इसे कौन पार कर सकेगा ? ॥ ७० ॥

इत्यादि परिदेवमानमेनं विदिता[1]सुरमायाविशेषो विभीषणः समागत्य 'देव, भवतोऽपि किमिदमस्थाने [2]करुणमवस्थान्तरम्। निरन्तरायं मखनिवर्तनाय पुरंदरारिणा कृतं [3]कृतकमेवैतदवधारय। धारय मनसि धैर्यम्' इत्यभिधाय तद्वधाय [4]पुरोधाय लक्ष्मणं [5]तत्क्षणादेव निकुम्भिलां बलैः सहोपरुरोध।

इत्यादीति। इत्यादि एवमादिप्रकारेण परिदेवमानम् विलपन्तम् एनम् रामम् विदितासुरमायाविशेषः ज्ञातराक्षसकैतवः समागत्य उपेत्य—देव स्वमिन् भवतः अपि अस्थाने अनुपयुक्ते स्थले करुणम् दीनम् अवस्थान्तरम् किमिदम् ? कुतोऽयं दशाभेदः ? पुरन्दरारिणा इन्द्रजिता निरन्तरायं निर्विघ्नं मखनिवर्त्तनाय यज्ञपूर्त्तये कृतम् विहितम् एतत् इदम् सीतावधरूपम् कृतकं मिथ्यावञ्चनरूपम् एव अवधारय निश्चितं जानीहि। मनसि स्वहृदये धैर्यं गभीरत्वं धारय बधान, इति अभिधाय राममुक्त्वा तद्वधाय इन्द्रजिन्मारणाय लक्ष्मणं पुरोधाय पुरस्कृत्य बलैः स्वसैन्यैः सह तत्क्षणादेव तदैव निकुम्भिलाम् गुप्तमन्त्रासिद्धिस्थानम् उपरोध अरौत्सीत्।

इस प्रकार विलाप करते हुए रामके पास असुरोंकी माया जानने वाला विभीषण आया और कहा—'देव, आपको भी यह कैसा अस्थानमें दशान्तर हो रहा है ? अपने यज्ञको निर्विघ्न समाप्त करनेके लिये इन्द्रजित्ने यह मिथ्या प्रदर्शन किया है यह निश्चय जानिये और हृदयमें धीरज रखिये' ऐसा कहकर लक्ष्मणको अग्रगण्य बनाकर अपनी सारी सेनाके साथ निकुम्भिलाको घेर लिया।

हरिकुलारवतश्चलितस्ततो गिरिदरीकुहरादिव केसरी।
अपरिपूर्य रुषाहवमाहवं स विदधे बलशासनशासनः ॥ ७१ ॥

हरिकुलेति। ततः निकुम्भिलोपरोधानन्तरं सः प्रसिद्धः बलशासनशासनः इन्द्रजित् हरिकुलारवतः कपिसैन्यकोलाहलात् गिरिदरीकुहरात् पर्वतकन्दरागोलकात् केसरी सिंह इव ततः निकुम्भिलातः चलितः आहवम् आहूयते यत्र स आहवो यागस्तम् अपरिपूर्यं असमाप्य रुषा वानरकृतकोलाहलजातेन कोपेन आहवं युद्धं विदधे चक्रे। स इन्द्रजित् कपिकुलकृतं कोलाहलं निशम्य ततो निकुम्भिलातो निर्गतः,

---

१. 'आशरमाया' इति पाठान्तरम्। २. 'दीनमवस्थानम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'कृतिममेतदित्यवधार्य' इति पाठान्तरम्। ४. 'पुरोधाय' इति नास्ति क्वचित्।
५. 'तत्क्षणमेव पुरस्कृत्य निकुम्भिलामुपरुरोध' इति पाठान्तरम्।

यथा दरीगृहात्सिंहो निर्गच्छति, निर्गतश्चासौ यज्ञं प्रारभ्यमाणमप्यसमाप्तमेव हित्वा कोलाहलं कुर्वतो वानरान्दण्डयितुं युद्धं कर्तुं प्रारब्धवानित्यर्थः। 'आहवः संगरे यागे' इत्यमरः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्, 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति लक्षणात्॥ ७१॥

वानरोंका कोलाहल सुनकर इन्द्रजित् निकुम्भिलासे बाहर निकला जैसे पर्वत की कन्दरासे सिंह निकला हो और आरब्ध यागको असमाप्त ही छोड़ कर उसने वानरकृत कोलाहलसे कुपित होकर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया॥ ७१॥

वातूल इव तूलानां वानराणां रणाजिरे।
विद्रावणस्ततो मायाविद्रावणसुतोऽभवत्॥ ७२॥

वातूल इति। ततः तदनन्तरम् मायावित् परवञ्चनविद्यापण्डितः रावणसुतः रणाजिरे रणाङ्गणे वातूलः वात्या तूलानां कार्पासानामिव वानराणां कपिसैन्यानां विद्रावणः निरासकः अभवत्, वात्या यथा तूलराशिं क्षिपति तथेन्द्रजित् समरे वानरानक्षिपदित्याशयः। 'वाताच्च' इत्यूलप्रत्यये वातूलपदम्॥ ७२॥

इसके बाद जैसे आंधी रुईको तितर बितर कर देती है उसी तरह मायावी इन्द्रजित्ने वानरोंको तितर बितर करना प्रारम्भ कर दिया॥ ७२॥

अनुपद[1]मनीकोन्मथनसंरम्भं संवर्तसमयदुर्दान्तं कृतान्तमिव समराङ्गणं[2]समापतन्तं स्यन्दनगतं[3]संक्रन्दनजितं[4]गन्धवहनन्दनस्कन्धवर्ती सौमित्रिः प्रवर्तितनिशि[5]तशरधारः शतधारपाणिरिव जम्भमस्तम्भयत्।

अनुपदमिति। अनुपदम् सद्यः अनीकोन्मथने सैन्यसंहारे संरम्भः सकोपप्रवृत्तिर्यस्य तं तथोक्तं वानरवाहिनीसम्मर्दनपरायणम् संवर्तसमयदुर्दान्तं प्रलयकालभयङ्करं कृतान्तं यमराजमिव समराङ्गणं समापतन्तं युद्धक्षेत्रमवतरन्तं स्यन्दनगतं रथारूढं संक्रन्दनजितम् मेघनादं गन्धवहनन्दनस्कन्धवर्ती वायुपुत्रांसदेशेऽवस्थितः सौमित्रिः लक्ष्मणः प्रवर्तितनिशितशरधारः क्षिप्ततीक्ष्णबाणवृष्टिः शतधारपाणिः वज्रहस्त इन्द्रः जम्भम् तन्नामकमसुरविशेषमिव अस्तम्भयत् उपरोधं कृतवान्। यथा वज्रहस्त इन्द्रो जम्भस्य गतिमरुणत्तथा तीक्ष्णबाणवर्षी लक्ष्मणो मेघनादस्य गतिमरुणदित्यर्थः। 'संरम्भः संभ्रमे कोपे' 'संवर्तः प्रलयः कल्पः' 'कृतान्तो यमसिद्धान्तः' 'शतकोटिः स्वरुः शम्बो दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' इति सर्वत्रामरः।

---

१. 'अनीकिनीनाथनिधनसंरब्धतरं संवर्तप्रवृत्तमिव कृतान्तम्' इति पठान्तरम्।
२. 'आपतन्तम्' इति पाठान्तरम्। ३. 'तं संक्रन्दजितम्' इति पाठान्तरम्।
४. 'गन्धवाह' इति पाठान्तरम्। ५. 'शिततरशरधाराभिः' इति पाठान्तरम्।

तत्काल सैन्यसंहारमे लगे हुए, प्रलयकालभीषण यमराजके समान, युद्धक्षेत्रमें आते हुए, रथारूढ इन्द्रजितको वायुपुत्रके स्कन्धदेश पर आरूढ, तीक्ष्णधार बाणकी वृष्टि करने वाले लक्ष्मणने जम्भासुरको इन्द्रकी तरह स्तम्भित कर दिया।

[1]विकस्वरमदोत्कटं प्रचुरवीरवादोद्भटं
पतत्त्रुटितकङ्कटं प्रतिहतास्त्रमस्त्रेण च।
जगत्त्रयभयावहं जयपराजयागोचरं
वितेनतुरुभाविभाविव [2]तदा रणं दारुणम्॥ ७३॥

विकस्वरेति। विकस्वरेण अनुक्षणवर्धमानेन मदेन युद्धदर्पेण उत्कटं घोरम्, प्रचुरैः अधिकैः वीरवादैः भिन्धि छिन्धीत्यादिरूपैः उद्भटम् उज्जृम्भितम्, पतन्तः भूमौ स्खलन्तः त्रुटिताः छिन्नाः कङ्कटाः उरश्छदाः यत्र तादृशम्, अस्त्रेण निरोधकास्त्रेण प्रतिहतम् निवारितम् अस्त्रं यत्र तत्तथोक्तम्, जगत्त्रयभयावहम् लोकत्रयभयजनकम्, जयपराजययोः अगोचरम् अविषयं कस्य जयः कस्य वा पराजयो भवितेति विषये व्यवस्थारहितम् दारुणं भीषणं रणं युद्धं तदा तत्र काले उभौ लक्ष्मणेन्द्रजितौ इभौ हस्तिनौ इव वितेनतुः चक्रतुः। तदा शक्रजिता सह लक्ष्मणस्य तादृशं दारुणं युद्धमजायत, यत्र द्वयोरपि युध्यमानयो रणमदोऽनुक्षणमवर्धत, वीरवादा उदजृम्भन्त, कवचास्त्रुटितास्सन्तोऽस्खलन्, अस्त्राणि विरोधिभिरस्त्रैः प्रत्यहन्यन्त, जगत्त्रयं भयमनुभवति स्म, जयपराजयोर्निश्चयो न भवति स्म, इत्थमुभौ तौ हस्तिनाविव युद्धं चक्रतुरिति भावः। 'उरश्छदः कङ्कटकः' 'अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ' इत्युभयत्रामरः॥ ७३॥

रणदर्पकी वृद्धिसे युद्धमें भयङ्करता बढ़ रही थी, मारो-काटोकी आवाज हो रही थी, कवच टूट कर गिर रहे थे, अस्त्र दूसरे अस्त्रसे प्रतिहत हो रहे थे, लोकत्रय भयाकुल हो रहा था, जय-पराजयकी व्यवस्था नहीं हो पा रही थी, इस तरह हाथीके समान वे दोनों लक्ष्मण और इन्द्रजित् उस समय भयङ्कर युद्ध कर रहे थे॥ ७३॥

शतधारकठोरशिखैर्विशिखैः शतधा विरचय्य शरासगुणम्।
विदधे विबुधेशजितं समरे हतसारथिमप्यथ दाशरथिः॥ ७४॥

शतधारेति। अथ चिरतरयुद्धानन्तरम् दाशरथिः दशरथपुत्रो लक्ष्मणः समरे युद्धे शतधारकठोरशिखैः वज्रवत्कठिनाग्रभागैः विशिखैः बाणैः शरासगुणम् धनुर्मौर्वीम् शतधाशतखण्डितं विरचय्य कृत्वा विबुधेशजितम् इन्द्रजितं नाम रावणपुत्रं हतसारथिम् निहतसूतम् अपि चक्रे कृतवान्। लक्ष्मणः पूर्वं तीक्ष्णमुखैर्बाणैः शक्रजितो धनुर्गुणमच्छिनत्ततस्तत्सारथिमप्यवधीदित्यर्थः। 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनीगुणः'

---

१. 'परस्पर' इति पाठान्तरम्। २. 'तदारुणम्' इति पाठान्तरम्।

इत्यमरः । तोटकं वृत्तम् , तल्लक्षणं यथा—'वद तोटकमब्धिसकारयुतम्' इति ॥७४॥

इसके बाद वज्र की तरह कठोर अग्रभागवाले अपने बाणोंसे लक्ष्मणने इन्द्रजित्के धनुषकी डोरी काट दी, बादमें उसके सारथिका भी वध करके उसे सारथिहीन कर डाला ॥ ७४ ॥

यदुचितमहो मायाशीलस्य यद्भुजशालिनः
सदृशमथ वा युक्तं नक्तंचरेन्द्रसुतस्य यत् ।
शतमखजितः शौर्यं यद्वानुरूपमथात्मन-
स्तदकृत रुषामन्दो मन्दोदरीतनयो रणे ।। ७५ ।।

यदुचितमिति । अहो आश्चर्यम् , रुषा धनुर्मौर्वीभङ्गसारथिवधाभ्यां जातेन कोपेन अमन्दः प्रेरितः मन्दोदरीतनयः मेघनादः रणे युद्धे मायाशीलस्य मायापटोर्यदुचितम् योग्यम् , यत् भुजशालिनः बाहुपराक्रमयुक्तस्य सदृशम् अनुरूपम् , अथवा नक्तञ्चरेन्द्रसुतस्य राक्षसराजपुत्रस्य यत् युक्तम् उपयुक्तम् , यत् शतमखजितः इन्द्रविद्रावणस्य शौर्यम् वीरत्वम् , यद्वा आत्मनः स्वस्य मेघनादस्य यत् अनुरूपम् स्वरूपोपयोगि तत् तथा अकृत कृतवान्, इन्द्रजित्तदा लक्ष्मणेन सह जायमाने रणे मायाविस्वं पराक्रमप्रकर्षम् , रावणपुत्रत्वलभ्यं कमपि गुणविशेषम् , इन्द्रविजये प्रकटितपूर्वं स्वीयं शौर्यं, स्वानुरूपमन्यदपि यत्संभवति तत्तत्सर्वमुपयुक्तवानिति तात्पर्यम् । हरिणीवृत्तम् , तल्लक्षणं यथा—'रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' ॥ ७५ ॥

मायाशीलके लिये जो उचित था, जो बाहुबलके सदृश था, जो राक्षसराजके पुत्रके लिये युक्त था, जो इन्द्रविजयीकी बहादुरी थी अथवा जो अपने लायक कुछ भी संभव था, क्रोधसे प्रेरित होकर मन्दोदरीपुत्र मेघनादने युद्धमें वह सब कुछ कर दिखाया ॥ ७५ ॥

[1]एवं मन्दोदरीतनयस्य लक्ष्मणेन साकं युध्यमानस्य त्रिदिनानि व्यतीयुः । अनुपदम[2]भिषेणनवति विभीषणे तेना[3]विनीतेन मुक्तां शक्तिमर्धचन्द्रेण दारयन्नपारयन्सोढुमदसीयमविनयममर्षाकुलः सौमित्रिरमोघं [4]माघवनममुञ्चदस्त्रम् ।

एवमिति । एवम् उक्तप्रकारेण मन्दोदरीतनयस्य रावणस्त्री मन्दोदरी तस्याः सुतस्येन्द्रजितः लक्ष्मणेन साकं सह युध्यमानस्य युद्धं कुर्वतः त्रिदिनानि त्रीण्य-

१. 'एवं···व्यतीयुः' इति वाक्यं क्वचिन्नास्ति ।

२. 'अभिषिषेण अभिषेणनवति' इति पाठान्तरम् ।

३. 'अविनीतेन' इति नास्ति क्वचित् ।　　४. 'माघवतास्त्रममुञ्चत्' इति पाठान्तरम् ।

हानि व्यतीयुः व्यतीतानि। अनुपदम् तत्काले अभिषेणनवति सेनयाऽभियानम् अभिषेणनं तद्वति सेनया सहाक्रमणकारिणि विभीषणे तेनाविनीतेन दुर्विनीतेन दुष्टेन इन्द्रजिता मुक्ताम् प्रहृतां शक्तिं तन्नामकास्त्रं मध्ये एव अर्धचन्द्रेण तदाख्यास्त्रभेदेन दारयन् विभिन्दन् अदसीयम् अमुष्य मेघनादस्य अविनयं दर्पान्धतया गुरुजनेऽपि प्रहारकत्वरूपमौद्धत्यम् सोढुम् मर्षयितुम् अपारयन् अक्षममाणः अमर्षाकुलः कोपपूर्णः सौमित्रिः लक्ष्मणः अमोघम् अव्यर्थम् माघवनम् ऐन्द्रम् अस्त्रम् अमुञ्चत् त्यक्तवान्, इन्द्रजिदुपरि प्राहरदित्यर्थः।

इसी तरह लक्ष्मणके साथ लड़ते हुए इन्द्रजितके तीन दिन बीत गये, उसी समय सेना लेकर आक्रमण करने वाले विभीषणके ऊपर उस दुष्टने शक्ति चला दी, उस शक्तिको अपने अर्धचन्द्र बाणसे काटकर उसकी इस धृष्टताको सहन करनेमें असमर्थ लक्ष्मणने क्रोधसे आकुल होकर अपने अमोघ ऐन्द्र बाणका प्रयोग कर दिया।

पतति स्म तत्प्रथममस्त्रमुज्ज्वलं
सशिरस्त्रमिन्द्रजयिनः शिरस्ततः।
अनु पुष्पवृष्टि[1]रनघा दिवौकसा-
मथ बाष्पवृष्टिरमरारियोषिताम् ॥ ७६ ॥

पततीति। प्रथमम् आदौ उज्ज्वलम् दीप्तं तत् प्रसिद्धम् अस्त्रम् ऐन्द्रास्त्रं पतति स्म भूमौ अपतत्, ततः तत्पश्चात् इन्द्रजयिनः इन्द्रजितः सशिरस्त्रम् शिरस्त्राणसहितम् शिरः पतति स्मेति शेषः, अनु तत्पश्चात् (पतितं मेघनादशिरो दृष्ट्वा हृष्टानां) दिवौकसाम् देवानाम् पुष्पवृष्टिः (देवार्पितप्रसूनाञ्जलिः) अथ अमरारियोषिताम् राक्षसवनितानाम् बाष्पवृष्टिः अश्रुधारा, पतति स्मेति सर्वत्रान्वयः। अत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रतिहेतुतया कारणमालाऽलङ्कारः। मञ्जुभाषिणीवृत्तं, तल्लक्षणं यथा—'सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी' इति ॥ ७६ ॥

पहले चमकता हुआ वह ऐन्द्रास्त्र जमीन पर गिरा, उसके बाद इन्द्रजितका शिरोत्राणयुक्त शिर गिरा। पीछे देवों द्वारा वरसायी गई फूलोंकी वर्षा हुई, उसके पीछे राक्षसोंकी स्त्रियोंकी अश्रुवर्षा प्रवृत्त हुई ॥ ७६ ॥

श्रुत्वा शक्रजितः सुतस्य निधनं शोकेन रक्षःपतेः
क्लान्तं निःश्वसदश्रुपूरभरितं क्रन्दच्च फूत्कारि च।
कोपेनाथ विपाटलं कुटिलितभ्रूवल्लि वृत्तेक्षणं
जज्ञे दष्टघनौष्ठमट्ट[2]हसितोद्रिक्तं समस्तं मुखम् ॥ ७७ ॥

---

१. 'अवनौ' इति पाठान्तरम्। २. 'हसितोद्वृत्तम्' इति पाठान्तरम्।

श्रुत्वेति। सुतस्य पुत्रस्य शक्रजितो मेघनादस्य निधनं मरणं श्रुत्वा आकर्ण्य रक्षःपतेः रावणस्य समस्तं मुखं दशापि मुखानि क्रमशः—क्लान्तम् परिम्लानम्, निश्वसत् दीर्घश्वासयुतम्, अश्रुपूरभरितम् वाष्पप्रवाहपरिपूर्णम्, क्रन्दत् आक्रोशयुक्तम्, फूत्कारि कोपखेदोभयव्यञ्जकफूत्कारयुतम्, अथ कोपेन विपाटलम् रक्तवर्णम्, कुटिलितभ्रूवल्लि वक्रीकृतभ्रूलतम्, वृत्तेक्षणम् विघूर्णनवर्तुलनयनम्, दष्टघनौष्ठम् दन्तक्षतदीर्घाधरम्, अट्टहसितोद्रिक्तम् अट्टहासयुक्तं च जज्ञे जातम्। अशेषाणि रावणमुखानि करुणरौद्ररसानुभावयुतान्यभूवन्नित्यर्थः, रावणस्य दशापि मुखानि क्लान्ति–निश्वास–वाष्पाम्बु–क्रन्दन–फूत्कार–रक्तत्व–भ्रूभङ्ग–वृत्तेक्षणत्व–दष्टौष्ठत्वाट्टहासरूपैर्दशभिर्विकारैरुपेतान्यभूवन्नित्याशयः ॥ ७७ ॥

पुत्र इन्द्रजित्की मृत्यु सुनकर रावणके सभी मुख क्रमशः—म्लान, निश्वासयुक्त, अश्रुपूर्ण, रोता हुआ, फूत्कारयुक्त, क्रोधसे रक्त, भ्रूभङ्गशाली, घूमते हुए नयनों वाला, दाँतोंसे कटे ओठसे सहित तथा अट्टहास युक्त हो उठे ॥ ७७ ॥

अनन्तरमपक्रान्तासुषु [1]विक्रान्तेषु पुरंदरारिमुखेषु नन्दनेषु [2]निहतेषु कुम्भकर्णादिषु भ्रातृषु, विध्वस्तेषु प्रहस्तपूर्वेषु सचिवेषु, [3]व्यापादितेषु विरूपाक्षप्रभृतिषु सेनापतिषु, [4]विकीर्णे भवति निखिले बले समन्ततः [5]करुणपरिपूरितपौरवधूजनपरिदेवनोत्तरङ्गायां लङ्कायामातङ्कातिशयरोषणो रावणस्त[6]त्क्षणमिक्ष्वाकुकुलनायकदयितां धरणीसुतां जिघांसुर[7]न्तिकगतमन्त्रिणा निवार्यमाणः [8]सारथिना विधिना च [9]चोदितरथो दाशरथिविजयविहितसंगरः [10]संगराङ्गणमवततार।

अनन्तरमिति। अनन्तरं ततः पुरन्दरारिमुखेषु मेघनादप्रधानेषु विक्रान्तेषु बलिषु नन्दनेषु पुत्रेषु अपक्रान्तासुषु गतप्राणेषु, कुम्भकर्णादिषु कुम्भकर्णप्रभृतिषु भ्रातृषु सोदरेषु निहतेषु मारितेषु, प्रहस्तपूर्वेषु प्रहस्तादिषु सचिवेषु विध्वस्तेषु नष्टेषु, विरूपाक्षप्रभृतिषु सेनापतिषु सेनानायकेषु व्यापादितेषु निहतेषु सत्सु, निखिले बले समस्तराक्षससैन्ये विकीर्णे यत्र तत्र प्रयाते सति, लङ्कायां स्वराजधान्यां समन्ततः सर्वतः करुणपरिपूरितानां वैधव्यपुत्रशोकादिप्रयुक्तदैन्ययुक्तानां पौर-

---

१. 'विक्रान्तेषु' इति नास्ति क्वचित्। २. 'विनिहतेषु' इति पाठान्तरम्।
३. 'व्यतीतेषु' इति पाठान्तरम्। ४. 'कपिविमर्दनेन विशीर्णे' इति पाठान्तरम्।
५. 'करुणपरिहरित' इति पाठान्तरम्।
६. 'तत्क्षणमेव हर्यक्ष इव हरिणीं धरणीसुताम्' इति पाठान्तरम्।
७. 'अन्तिकगतेन' इति पाठान्तरम्। ८. 'सारथिना च' इति पाठान्तरम्।
९. 'चोदितः', संचोदितरथः' इति च पा०। १०. 'संगरभुवम्' इति पाठान्तरम्।

वधूजनानां परिदेवनेन विलापक्रियया उत्तरङ्गायां पूर्णायाम् सत्याम्, आतङ्कातिशयरोषणः समधिकविपदुपनिपातकुपितः रावणः तत्क्षणम् तदा इक्ष्वाकुलनायकस्य इक्ष्वाकुवंशप्रधानस्य रामस्य दयितां प्रेयसीम् धरणीसुतां पृथिवीपुत्रीं सीतां जिघांसुः हन्तुमिच्छुः, अन्तिकगतमन्त्रिणा समीपस्थसचिवान्यतमेन निवार्यमाणः सीतामारणकर्मणोऽनुचितत्वमावेद्य प्रतिषिध्यमानः, सारथिना सूतेन विधिना भाग्येन च चोदितरथः प्रेरितस्यन्दनः सन् दाशरथिविजयविहितसङ्गरः राममहं पराजेष्ये इति कृतप्रतिज्ञः सन् समराङ्गणम् युद्धस्थलम् अवततार अवतीर्णः आगतः। 'प्रतिज्ञाऽऽजिसंविदापत्सु सङ्गरः' इत्यमरः।

इसके बाद इन्द्रजित् आदि बहादुर पुत्रोंके गतप्राण हो जाने, कुम्भकर्ण आदि सोदरोंके मारे जाने, प्रहस्त आदि मन्त्रियोंके नष्ट होने, विरूपाक्ष प्रभृति सेनापतियोंके मारे जाने, समस्त राक्षस सैन्यके तितर बितर हो जाने पर और लङ्काके भीतर चारो ओर दीनतासे भरी पुरनारियोंके करुण क्रन्दनके फैल जाने पर महती विपत्तिसे कुपित होकर रावणने तत्काल इक्ष्वाकुवंशके नायक रामकी प्रियतमा पृथिवीपुत्री सीताको काटकर खतम करना चाहा, परन्तु समीपस्थ मन्त्रीने उसे वैसा करनेसे रोका, अनन्तर सारथि तथा भाग्यसे रथके प्रेरित हो जानेसे रावणने रामको विजयकी प्रतिज्ञाकर युद्धक्षेत्रमें प्रवेश किया।

कोपादसौ [1]परिघतोमरकुन्तयष्टि-
चापाशुग[2]द्रुघणशक्तिकृपाणपाणिः।
एकोऽप्यनेकमुखबाहुतया सबन्धु-
र्लोको यथा समिति लोचनगोचरोऽभूत्॥ ७८॥

कोपादिति। कोपात् क्रोधात् सकलकुलसंहारदर्शनजनितात् परिघाः अयोमयगदाः, तोमराः दण्डविशेषाः, कुन्ताः शितमुखाः प्रासाः, यष्टयः लगुडाः, चापाः धनूंषि, आशुगाः बाणाः, द्रुघणाः मुद्गराः, शक्तयः आयुधविशेषाः, कृपाणाः खड्गाश्च पाणिषु यस्य स तथोक्तो रावणः एकः सकलसहायकाभावात् अद्वितीयः सन् अपि अनेकमुखबाहुतया नानासंख्यकवदनभुजयुक्ततया सबन्धुः लोको यथा बान्धवयुक्तव्यक्तिवत् समिति युद्धे लोचनगोचरः प्रत्यक्षोऽभूत्। एकमपि रावणमनेकमुखबाहुवत्तया युद्धे भिन्नभिन्नप्रहरणचालनपरायणतया च लोका बान्धवयुक्तमिव पश्यन्ति स्मेति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ७८॥

कोप करके लोहेकी गदा, लाठी, भाले, डण्डे, धनुष, बाण, मुद्गर, शक्ति, तलवार, आदि अस्त्र हाथोंमें लिये रणमें आया हुआ रावण यद्यपि अकेला ही था, क्योंकि उसके सभी सहायक मारे जा चुके थे, तथापि अनेक मुख तथा बाहुओंसे युक्त होनेके कारण लोगोंको वह बान्धवयुक्त व्यक्ति की तरह दीखता था॥ ७८॥

---

१. 'परिघयष्टिकुठारकुन्त' इति पाठान्तरम्। २. 'द्रुहिण' इति पाठान्तरम्।

अलक्ष्यत स रक्षसामधिपतिः कृपाणं मुहुः
[1]प्रसह्य विनिपातयन्प्लवगमण्डलीमौलिषु।
अयं तव तवाय[2]मित्यभिसमीकमेकैकशो
वरानिव विनिर्दिशन्नमरवारवामभ्रुवाम् ॥ ७९ ॥

अलक्ष्यतेति। सः प्रसिद्धपराक्रमः रक्षसामधिपतिः राक्षसराजो रावणः प्लवगमण्डलीनां वानरसमूहानां मौलिषु शिरस्सु प्रसह्य बलात् कृपाणं स्वं खड्गं चन्द्रहासं मुहुः भूयोभूयः विनिपातयन् चालयन्, अयम् तव, अयं तव, इति अनेन प्रकारेण अभिसमीकम् युद्धे अमरवारवामभ्रुवाम् सुन्दरीणाम् अप्सरसाम् एकैकशः प्रतिव्यक्ति वरान् प्रियान् विनिर्दिशन् संज्ञपयन्निव अलक्ष्यत दृष्टः। रावणो वानराणां शिरस्सु पृथक् पृथक् पुनश्च पुनः कृपाणं प्रहरन्नेवं प्रतीयते स्म यथासौ युद्धे मृतान्दिव्यभावमुपगतान् वीरान् वरीतुमागताभ्योऽप्सरोभ्यः प्रत्येकम् अयं तव वरो जातः, अयं तव जायताम् इत्येवंरूपेण वरानिव प्रत्यपादयदिति। समीके युद्धे इत्यभिसमीकम्, विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। पृथ्वीवृत्तम् ॥७९॥

राक्षसराज वह रावण वानरगणके शिरपर वारवार तलवारका प्रहार करता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह युद्धमें (वरवरणार्थं आई हुई) देवबालाओंको एक-एक करके यह तुम्हारा वर हुआ इस प्रकारसे वरोंका निर्देश कर रहा हो॥ ७९ ॥

[3]तत्क्षणम[4]क्षौहिणीविक्षोभकन्दलितरुषम[5]तिपरुषैर्विशिखैर्विदलितकेतनमर्धचन्द्रनि[6]कृत्तधन्वानमस्त्रधाराविदारितसारथिमतिविस्मयनीयकरलाघवं राघवानुजममर्षवेगमुक्तया शक्त्या मुहूर्तमिव मूर्च्छा[7]संमीलितमुपराग इव [8]कलाधरमाततान यातुधानपतिः।

तत्क्षणमिति। तत्क्षणम् तस्मिन्काले अक्षौहिणी सैन्यसंख्याविशेषस्तस्याः विक्षोभेण रावणकृतेन विध्वंसेन कन्दलितरुषम् उपजातमन्युम्, अतिपरुषैः अत्यन्तकठोरैः विशिखैः बाणैः विदलितकेतनम् छिन्नध्वजदण्डम्, अर्धचन्द्रेण तदाख्यशरभेदविशेषेण निकृत्तं धनुर्येन तथाभूतं (रावणस्य धनुरर्धचन्द्रशरेण खण्डितवन्तं), (लक्ष्मणमिति विशेष्यम्) अस्त्रधारया प्रहरणपरम्परया विदारितः द्विधा भिन्नः सारथिः रावणसूतो येन तं तथोक्तम्, अतिविस्मयनीयकरलाघवम् आश्चर्यजनकहस्तकौशलोपपन्नम् राघवानुजम् रामस्य कनिष्ठं भ्रातरं लक्ष्मणम् यातुधानपतिः

१. 'प्रहृत्य' इति पाठान्तरम्। २. 'अधिसमीकम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'तदनन्तरम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'अक्षौहिणीक्षोभ' इति पाठान्तरम्।
५. 'अतिपरुषविशिखदलितध्वजम्' इति पा०। ६. 'अमर्षावेग' इति पाठान्तरम्।
७. 'निमीलित' इति पाठान्तरम्। ८. 'कमलाकरम्' इति पाठान्तरम्।

राक्षसराजो रावणः अमर्षवेगेन कोपवेगेन मुक्तया प्रहृतया शक्त्या अस्त्रविशेषेण मुहूर्त्तम् कियत्कालपर्यन्तम् मूर्च्छासम्मीलितम् मोहेनाच्छन्नं विसंज्ञम् उपरागो राहुग्रहः कलाधरम् चन्द्रम् इव आततान कृतवान्। यथोपरागो विधुं कियतः कालस्य कृते सम्मीलितं करोति तथा रावणो मूर्च्छया लक्ष्मणं मीलितमकरोदित्यर्थः। अक्षौहिणीपरिमाणमुक्तं महाभारते यथा—'एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः। त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते। पत्तिं तु त्रिगुणामेतां विदुः सेनामुखं बुधाः। त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते। त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः। स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः। चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी। अनीकिनीं दशगुणामाहुरक्षौहिणीं बुधाः'।

उस समयमें अक्षौहिणीसंख्यक वानरसैन्यके संहारसे रंज होकर लक्ष्मणजीने अतिकठोर बाणोंसे ध्वजदण्ड काट दिया, अर्धचन्द्र बाणसे धनुष दो टुकड़ा कर दिया और अस्त्रकी धारा वरसा कर सारथिको मार दिया, इस तरह जब लक्ष्मणने अपना आश्चर्यजनक हस्तकौशल दिखलाया तब कोपसे युक्त हो राक्षसराज रावणने वेगसे शक्ति प्रहार किया, उस शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणजी क्षणभरमें मूर्च्छित हो गये, जैसे राहुग्रह क्षणभरमें चन्द्रमाको अभिभूत कर देता है।

आलोक्य [1]दूनमनुजं हृदि शक्तिघाता-
च्छोकेन विद्धहृदयः सुतरां स रामः।
कोपेन चापमथ कुण्डलयांचकार
लङ्कापतेरपि ललाटलिपिं विधाता॥ ८०॥

आलोक्येति। हृदि उरोदेशे शक्तिघातात् रावणप्रयुक्तशक्तिनायकमहास्त्रात् दूनम् उपतप्तं मूर्च्छितमित्यर्थः, अनुजं कनीयांसं भ्रातरं लक्ष्मणमालोक्य सुतराम् अत्यर्थं शोकेन विद्धहृदयः सशोकान्तःकरणः सन् अथ कोपेन रावणोपरि क्रोधेन चापं धनुः कुण्डलयां चकार नमयामास विधाता ब्रह्मा अपि लङ्कापतेः रावणस्य ललाटलिपिं भाग्यलेखम् कुण्डलयाञ्चकार समाप्तिकृतवैयर्थ्यसूचकचिह्नेनावृतवान्। रामे धनुर्नमयति सति ब्रह्मा रावणायुःसमाप्तिसूचकचिह्नेन तद्भाग्यलिपिमङ्कयामासेत्यर्थः। कुण्डलयाञ्चकारेतिपदं श्लिष्टं, रामपक्षे धनुर्नमनं, ब्रह्मपक्षे वैयर्थ्यसूचकचिह्नाङ्कनं तदर्थः, 'तनोति भानोः परिवेषकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपी'ति नैषधेऽप्येवमेव वैयर्थ्यसूचकचिह्नार्थतया कुण्डलनापदप्रयोगः। तुल्ययोगितालङ्कारः॥ ८०॥

---

१. 'दीनमनुजम्' इति पाठान्तरम्।

रामजीने जब अपने अनुज लक्ष्मणको रावणप्रयुक्त शक्तिसे आहत होकर मूर्च्छित अवस्थामें पड़ा देखा तब हृदयशोकसे व्यथित होकर कोपसे अपने धनुषको कुण्डलाकार बनाया (झुकाया) और ब्रह्माने भी रावणकी भाग्यलिपिको कुण्डलित किया—समाप्तिकृत वैयर्थ्यसूचक चिह्नसे घेर दिया ॥ ८० ॥

अवकीर्य दाशरथिरश्रुजलैरनुजं पुलस्त्यतनुजं च शरैः ।
युगपद्व्यधात्करुणवीररसौ युधि शोकहर्षशबलं च बलम् ॥ ८१ ॥

अवकीर्येति । श्लोकोऽयं पूर्वं व्याख्यातस्तदस्य व्याख्या ५० संख्यकश्लोकस्याधोभागे द्रष्टव्या ॥ ८१ ॥

इसकी व्याख्या पृ० ४३८ में देखें ॥ ८१ ॥

वलयितचित्र[1]चापवति वारितपङ्क्तिमुखे
विसृजति राघवे विशिखवर्षममर्षवति ।
अरिषु न कश्चिदप्यथ निवृत्य गतः समरा-
दमरविलासिनीषु न च काचिदलब्धवरा ॥ ८२ ॥

वलयितेति । अमर्षवति लक्ष्मणमूर्च्छादर्शनादतिकुपिते वलयितं कुण्डलाकृतीकृतं यच्चित्रचापं विचित्रं धनुस्तद्वति आकृष्टधनुषि वारितपङ्क्तिमुखे अवष्टम्भितरावणे राघवे रामे विशिखवर्षं बाणधारां विसृजति किरति सति, अथ अनन्तरम् अरिषु शत्रुषु कश्चित् अपि कोऽपि समरात् युद्धस्थलात् निवृत्य परावृत्य न गतः, अमरविलासिनीषु देवाङ्गनासु युद्धपतितेषु वीरेषु दिवमारोहत्सु तान् पतित्वेन वरीतुमागतासु काचित् अपि देवाङ्गना अलब्धवरा अप्राप्तप्रिया न गतेति लिङ्गभेदेनान्वयः । श्रीरामबाणनिहतानां सर्वेषामपि स्वर्गगामितया सर्वा अपि स्वर्गवनिताः पतिमासाद्यैव निवव्रुतिरे इत्यर्थः । 'वलयितचित्रचापवति' इत्यत्र 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर' इति न्यायादप्राप्तस्य मतुप उपपत्तिस्तु 'स्वगुत्तरासङ्गवतीम्' इत्यादि महाकविप्रयोगानुरोधात् 'नीलरूपवत् परः' इत्यादिवैयाकरणशिरोमणिप्रयोगानुरोधाच्च लाघवमूलकस्य तन्न्यायस्थानाश्रयणेनैव कर्त्तव्या ॥ ८२ ॥

लक्ष्मणको शक्तिप्रहारसे मूर्च्छित देखकर कुपित, धनुषको आकर्ण आकृष्ट करके कुण्डलाकार किये हुए, रावणको यथास्थान रोक कर, रामने जब बाण बरसाना प्रारम्भ किया तब शत्रुओंमें ऐसा कोई नहीं युद्धक्षेत्रसे लौट कर गया और देवाङ्गनाओंमें कोई भी बिना पतिके वापस नहीं लौटी ॥ ८२ ॥

---

१. 'चापविनिवारित' इति पाठान्तरम् ।

अयं च पुनर[1]ञ्जनासुतसमानीतमहीधर[2]महौषधिविधिलब्धजीविता-नुजसमाश्लेषसुखलब्धमनोरथः [3]समेधमानसमरकौतुकोपलम्भसंरम्भोद्-ञ्चितपुलककञ्चुकिताकृतिर्दाशरथिरधिसङ्गरममराधिपसारथिनानीत[4]मति-विशङ्कटं रथमपि कङ्कटकं शतक्रतोरनुग्रहान्मातलिना समग्रहीत् ।

अयञ्चेति । अयं श्रीरामः पुनः भूयः च (पूर्वं सैन्योज्जीवनायानीतस्य पुनरानयनं बोध्यम्) अञ्जनासुतेन हनूमता समानीतस्य महीधरस्य पर्वतस्य महौषधीनां सञ्जी-वन्यादीनां विधिना सुषेणकृतेन यथोचितोपयोगेन लब्धजीवितस्य पुनरासादितचेत-नस्य अनुजस्य लक्ष्मणस्य आश्लेषसुखेन आलिङ्गनजन्यानन्देन लब्धमनोरथः पूर्णा-भिलाषः, अतश्च समेधमानः प्रवर्धमानः यः समरकौतुकोपलम्भसंरम्भो रणकुतूहल-प्राप्तिसंरम्भः तेनोदञ्चिता उत्पन्ना ये पुलकाः रोमाञ्चाः तैः कञ्चुकिता कवचिता युक्ता आकृतिर्यस्य स तथोक्तः (लक्ष्मणोज्जीवनेन पुनरुद्बोधितयुद्धोत्साहतयो-त्पन्नेन रोमाञ्चेनावृतदेहः) दाशरथिः रामः अधिसङ्गरम् युद्धे अमराधिपसारथिना इन्द्रसूतेन मातलिना तन्नामकेन आनीतम् उपहृतम् अतिविशङ्कटं भीषणम् रथम् कङ्कटकम् कवचम् अपि शतक्रतोः इन्द्रस्य अनुग्रहात् कृपावशात् अग्रहीत् अधात् । हनूमानोषधिपर्वतमानयत्तदोषध्युपयोगेन प्रत्यापन्नचैतन्यं लक्ष्मणमालोक्य सफ-लाभिलाषो रामो युद्धायोत्कण्ठमानो रोमाञ्चावृतवपुः शक्रेण मातलिद्वारा प्रेषितमति-भीषणं रथं कवचं च स्वीचकारेत्यर्थः ।

हनूमान्के द्वारा लाये गये ओषधि पर्वत पर वर्तमान जड़ियोंके उपयुक्त प्रयोगसे प्राप्त जीवन लक्ष्मणके आलिङ्गनसे पूर्णाभिलाष, बढ़ते हुए युद्धकौतुक की प्राप्तिसे उत्पन्न रोमाञ्चसे आच्छादित शरीर रामने उस युद्धक्षेत्रमें इन्द्रद्वारा प्रेषित तथा मातलिद्वारा लाये गये विशाल रथ तथा कवच स्वीकार किया ।

अन्योन्यस्य सहक्षलक्ष्यमिलनादालक्ष्यशौण्डीर्ययोः
शस्त्राशस्त्रि समुन्मिषत्पुलकयोः सश्लाघयोः साहसे ।
जाते जीवितसङ्कटे [5]विहरतोर्मूर्च्छासु विश्राम्यतो-
रश्रान्तं रघुवीरपङ्क्तिमुखयोरासीदसीमा रणः ॥ ८३ ॥

अन्योन्यस्येति । अन्योन्यस्य परस्परस्य सदृशलक्ष्यमिलनात् तुल्यबलप्रतिस्पर्धि-मिलनात् आलक्ष्यशौण्डीर्ययोः अल्पप्रकटितपराक्रमयोः (अल्पवीर्यसमधिकवीर्य-

---

१. 'अञ्जनीसुत' इति पाठान्तरम् । २. 'महौषधिजीवितानुजाश्लेष' इति पा० ।
३. 'समेधमानमानसः' इति पाठान्तरम् ।
४. 'अतिविशङ्कटं कमपि रथं कङ्कटमप्यनुग्रहाय शतक्रतोरग्रहीत्' इति पाठान्तरम् ।
५. 'विहसतोः', 'विरहतोः' इति च पाठान्तरम् ।

योर्युद्धेऽल्पवीर्यस्य स्वप्रतिपक्षापेक्षया दौर्बल्येन समधिकवीर्योऽधिकं पराक्रमं प्रकाशयति तुल्यवीर्ययोर्युद्धे तु कोपि स्वप्रकर्षं प्रमापयितुं न प्रभवतीत्यभिप्रायेणेत्थमुक्तम्) शस्त्रैश्च शस्त्रैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशास्त्रि तत्र युद्धे समुन्मिषत्पुलकयोः जायमानपुलकयोः साहसे साहसिककार्ये सश्लाघयोः प्रशंसापरयोः, (केनापि कस्मिंश्चिदद्भुते कार्ये कृते परः प्राशंसदिति भावः) जीवितसङ्कटे प्राणसंशये जाते सति विहरतोः विहारं युद्धक्षेत्रप्रचारं कुर्वतोः, मूर्च्छासु प्रहारकृतमोहदशासु विश्राम्यतोः विश्रामं लभमानयोः (अन्यथा युद्धरतयोः) रघुवीरपङ्क्तिरथयोः रामरावणयोः अश्रान्तम् सततम् असीमा निरवधिः रणः युद्धमासीत्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८३ ॥

एक दूसरेको समान प्रतिस्पर्द्धीके मिल जानेसे थोड़ा कम वीरत्व प्रकट हो रहा था, युद्धमें दोनोंके रोमाञ्च प्रकट हो रहे थे, साहसका कार्य करने पर एक दूसरेकी तारीफ करते थे, जीवित संशय रहने पर भी युद्ध भूमिमें विहार करते थे और केवल मूर्च्छादशामें ही विश्राम करते थे, इस प्रकार राम और रावणका अविच्छिन्न चलनेवाला युद्ध निरवधि हो रहा था ॥ ८३ ॥

अथ तयो[1]रविश्रान्तविमुक्तदिव्यास्त्रयोराखण्डलवृत्रनिभयोरालूनेषु मार्गणेष्वभङ्गुरपरस्पर[2]विवरमार्गणेषु [3]विच्छिन्नेषु धनुर्गुणेष्वव्याहतसहजसाहस[4]गुणाधीनेषु, धुरीणेषु यानेषु निरपाय[5]समराभियानेषु, निर्भिन्ने सांयुगीने च रथे [6]निर्वैकल्यविजयमनोरथमजायत [7]यशोधनमायोधनम्।

अथ तयोरिति। आखण्डलवृत्रनिभयोः इन्द्रवृत्रासुरसमानयोः अविश्रान्तविमुक्तदिव्यास्त्रयोः सततप्रयुक्तदिव्यबाणयोः तयोः रामरावणयोः अभङ्गुरपरस्परविवरमार्गणेषु सर्वकालमन्योन्यमर्मस्थानान्वेषणपरायणेषु मार्गणेषु बाणेषु आलूनेषु खण्डितेषु, अव्याहतः अप्रतिहतः यः सहजसाहसगुणः स्वाभाविकसाहसाख्यगुणस्तदधीनेषु तदायत्तेषु धनुर्गुणेषु चापरज्जुषु विच्छिन्नेषु द्विधाकृतेषु, धुरीणेषु अग्रयायिषु यानेषु रथेषु तदश्वेषु वा निरपायसमराभियानेषु अविनश्वरभावेन युद्धार्थं प्रस्थितेषु, सांयुगीने युद्धसमर्थे च रथे निर्भिन्ने खण्डिते सति निर्वैकल्पविजयमनोरथम् सततजाग्रद्विजयाभिलाषम् यशोधनम् यशोजनकतया मतम् आयोधनम् युद्धम् अजायत अजनि। 'मार्गणौ सायकार्थिनौ' 'अधीनो निघ्न आयत्तः' 'युद्धमायोधनं जन्यम्' इति सर्वत्रामरः।

---

१. 'अश्रान्तमुक्त' इति पाठान्तरम्। २. 'विजय' इति पाठान्तरम्।
३. 'वाग्गणेषु विच्छिन्नेषु' इति पाठान्तरम्। ४. 'गुणनिकृत्तेषु' इति पाठान्तरम्।
५. 'समराभिहतिनिर्भिन्ने' इति पाठान्तरम्। ६. 'परस्परगर्वकल्प' इति पाठान्तरम्।
७. 'मुजायतयशोधन' इति पाठान्तरम्।

इसके बाद इन्द्रवृत्रासुरके समान राम और रावणमें जो अविच्छिन्नरूपसे दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते थे, अन्योन्य मर्मान्वेषणपरायण बाणोंके कट जाने पर, अव्याहत स्वाभाविक साहसके वशवर्ती धनुषगुणके छिन्न हो जाने पर, आगे चलने वाले छोड़े जब निर्बाधरूपसे युद्धार्थ आगे बढ़ने लगे तब युद्धोपयुक्त रथके टूट जाने पर अविकल विजय-मनोरथसे युक्त यशस्कर युद्ध होता रहा।

तूणीमुखात्त्वरितमुद्धरणे गुणेन
संयोजनेऽप्यथ शरस्य विमोचने वा।
[1]यत्र व्यलोकि तदधीन इवातिवेगा-
ल्लोकेन राघवकरश्चिरमालुलोके ॥ ८४ ॥

तूणीमुखादिति। तूणीमुखात् निषङ्गकुहरात् त्वरितम् आशु शरस्य उद्धरणे निष्कासने, गुणेन चापमौर्व्यासंयोजने सन्धाने, विमोचने बाणविसर्जने च यत्र यस्मिन् युद्धे अतिवेगात् वेगातिशयात् तदधीन इव बाणपराधीन इव राघवकरः रामबाहुः चिरम् बहुकालम् आलुलोके दृश्यते स्म। अत्र श्लोके व्यलोकीतिपदम-सङ्गतमधिकं च प्रतीयते, टीकाकृतापि प्राचा तदंशे ध्यानं न दत्तम्, मया तु—यत्रा-विलोकितदशास्यमिवातिवेगादिति तृतीयचरणं कल्प्यते, ततश्च—तूणीमुखात्त्वरि-तमुद्धरणे, गुणेन संयोजनेऽप्यथ शरस्य विमोचने वा। यत्र लोकेन अतिवेगात् राघवकरः चिरम् चिरेण बहुप्रयासानन्तरम् आलुलोके, दशास्यस्तु बाणाच्छन्नतया नैवालुलोके, अविलोकितदशास्यमतिवेगाद्धेतो राघवकरश्चिरमालुलोके इत्थमर्थः करणीयः। अतिवेगेन भ्रमतो राघवकरस्य दर्शनं कष्टसाध्यमजायतेत्यर्थः॥ ८४॥

तूणीरसे बाण निकालने, उसको धनुषकी प्रत्यञ्चासे जोड़ने तथा बाण छोड़नेमें अति-वेगसे संलग्न रामका हाथ तो बड़ी देर देखने पर लोग देख पाते थे और रावण तो उस युद्धमें बाणाच्छादित होनेके कारण दीखता ही नहीं था॥ ८४॥

अर्धोदीरितवीरवादमहरद्रामो यदस्त्रैः क्षणा-
त्तेनैवाङ्कुरता मुखेन जगदे शेषं च लङ्कापतेः।
साम्ये सत्यपि [2]चारुशारमुभयोर्धानुष्कमायाविनो-
[3]र्विच्छिन्नाननदर्शनात्समभवद्व्रीडा रणे रावणे॥ ८५॥

अर्धोदीरितेति। रामः अर्धोदीरितवीरवादम् अर्धोच्चारितवीरतालापम् यत् रावण-मुखम् अस्त्रैः स्वप्रयुक्तैर्बाणैः अहरत् अच्छिनत्, क्षणात् त्वरितम् अङ्कुरता पुनः

---

१. 'यत्रावलोकितशास्य' इति पाठान्तरम्। २. 'चातुरीभिरुभयोः इति पा०।
३. 'विच्छिन्नाननदर्शनेन समभूत्' इति पा०।

प्ररोहता लङ्कापतेः रावणस्य च तेनैव छिन्नपुनःप्ररूढेन मुखेन शेषं प्रोक्तशेषम् (यद्वीरवादोच्चारणकाले शिरश्छिन्नं तस्य वीरवादस्योक्ताच्छेषांशः) जगदे उच्यते स्म । चारुशारम् चतुरयुद्धगतिविशेषं यथा स्यात्तथा उभयोः द्वयोः धनुष्कमायाविनोः धनुर्धरमायापरायणयोः रामरावणयोः साम्ये तुल्यत्वे सत्यपि रणे विच्छिन्नाननदर्शनात्कृत्तपतितशिरोऽवलोकनात् रावणे दशानने व्रीडा लज्जा समभवत् अजायत । रावणो वीरवादानुच्चारयति, तस्य वीरवादानुच्चारयन्मुखं मध्य एव रामेण च्छिद्यते, परं मायाशक्तियुतस्य तस्य छिन्नं शिरः सहसैव प्रारोहत्तेन च प्ररूढेन शिरसोक्तशेषं प्रोचे, युद्धे गतिविशेषचातुर्येण मायावी रावणो धनुर्धरस्य रामस्य सादृश्यमासादयत्परन्तु भुवि पतितं निजं शिरो विलोक्य लज्जते स्मेत्याशयः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८५ ॥

रावणके एक मुँहने वीरवादका उच्चारण आधा किया था कि उसको रामने अपने बाणसे काट गिराया, परन्तु उसी समय उसका कटा हुआ वह मुँह अङ्कुरित हो गया और उसने अवशेष वीरवादका उच्चारण कर दिया। युद्धमें गतिविशेषके चातुर्यसे यद्यपि मायावी रावण तथा धनुर्धर राममें सादृश्य होनेपर भी रावण जब जमीनपर अपने कटे शिर देखता था तो वह लज्जित हो जाता था ॥ ८५ ॥

दशाननशरक्षतिक्षरदसृग्झरीबुद्बुदै-
स्तरङ्गितमहेन्द्रकङ्कटसहस्रचक्षुःपथः ।
रणे [1]रघुकुलोद्भवः क्षणममानि वैमानिकै-
र्यथा दशशतेक्षणो बलरुषा कषायेक्षणः ॥ ८६ ॥

दशाननेति । दशाननस्य रावणस्य शरैः [बाणैः याः क्षतयः आघाताः ताभ्यः क्षरन्त्याः वहन्त्याः असृग्झर्याः रक्तप्रवाहस्य बुद्बुदैः तरङ्गितः व्याप्तः यो महेन्द्रकङ्कटः इन्द्रप्रेषितकवचं तत्र (बुद्बुदरूपाः) सहस्रं चक्षुःपथाः नेत्रगोलका यस्य तादृशः, रघुकुलोद्भवः रघुकुलोत्पन्नः रामः क्षणं रणे युद्धक्षेत्रे वैमानिकैः विमानारूढैर्देवादिभिः बलरुषा बलासुरोपरि कोपेन दशशतेक्षणः सहस्राक्षो यथाऽमानि मन्यते स्म । रामो रावणेन सह युध्यमानो रावणप्रहृतैरस्त्रैः क्षताङ्गः क्षरताऽस्रप्रवाहेण व्याप्तकवचो बुद्बुदाकारैः शोणितैः सर्वतः प्रसृतैः सहस्राक्षो बलोपरि क्रुध्यन् रक्ताक्ष इव ददृश इत्याशयः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ ८६ ॥

रावणके द्वारा प्रहृत बाणोंके घावसे बहती हुई शोणितधारके बुलबुलोंसे व्याप्त अत एव हजार गोलकयुक्त इन्द्रकवच धारण करनेवाले राम युद्धमें आकाशमें विमान पर

---

१. 'रघुकुलोद्वहः' इति पाठान्तरम् ।

आरूढ़ होकर रणकौतुक देखनेवाले देवोंको ऐसा मालूम पड़ते थे मानो बलपर कुपित होनेके कारण रक्ताक्ष इन्द्र हों ॥ ८६ ॥

तदनु वारुणेन वैश्वानरं वैनतेयेन वातन्धयं वायव्येन वारिदं [1]प्राभाकरेण तामिस्रं माहेन्द्रेण दानवं [2]माहेश्वरेण वैष्णवं च परस्परमेवमस्त्रमस्त्रेण भिन्दानयोरनयोरनिशमाहवाग्रहादविदितान्यहानि सप्त व्यतीयुः ।

तदन्विति । तदनु ततः वारुणेन वरुणदेवताकेन जलवर्षिणा वैश्वानरम् आग्नेयास्त्रम्, वैनतेयेन गारुडेन वातन्धयम् नागास्त्रम्, वायव्येन वायुदेवताकेन अस्त्रेण वारिदम् मेघदेवताकम्, प्राभाकरेण सूर्यदेवताकेन तामिस्रम् अन्धकारसम्बन्धि, माहेन्द्रेण महेन्द्रदेवताकेन दानवमस्त्रमेदम्, माहेश्वरेण पाशुपतास्त्रेण च वैष्णवमस्त्रं परस्परम् अन्योन्यम् एवम् उक्तप्रकारेण अस्त्रेण अस्त्रम् परप्रयुक्तं प्रहरणम् भिन्दानयोः छिन्दतोः अनयोः रामरावणयोः अनिशम् सततम् आहवावग्रहात् रणासक्तत्वात् अविदितानि अज्ञातयातायातानि अनाकलितारम्भसमाप्तीनि सप्ताहानि दिनानि व्यतीयुः व्यतिगतानि ।

इसके बाद वारुण अस्त्रसे आग्नेय अस्त्रको, गरुडास्त्रसे नागास्त्रको, वायव्यास्त्रसे मेघास्त्रको, प्रभाकरास्त्रसे तामिस्र अस्त्रको, माहेन्द्र अस्त्रसे दानव अस्त्रको, माहेश्वर अस्त्रसे वैष्णव अस्त्रको, इस प्रकार परस्पर एक दूसरेके अस्त्रको अपने अस्त्रोंसे काटनेवाले राम और रावणके रणमें युद्धाभिनिवेशके कारण दिन अज्ञातरूपसे व्यतीत हो गये ।

शस्त्राशस्त्रिसमुत्सुकोऽपि दयितां संचिन्त्य [3]पर्याकुला-
मस्त्रेण ज्वलता विधेरपुन[4]रुन्मेषेण तन्मस्तकान् ।
[5]रामः कन्दलितान्मुहुर्मुहुरवच्छेदेऽपि लङ्कापते-
रातङ्केन समं समस्तजगतां चिच्छेद सीतापतिः ॥ ८७ ॥

शास्त्राशस्त्रीति । शस्त्रैश्च शस्त्रैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशस्त्रि प्रहरणं तत्र समुत्सुको बद्धोत्कण्ठः (युद्धं प्रियं मन्यमानोऽपि) अपि दयितां सीतां पर्याकुलाम् रावणगृहचिरवासेन रामरावणयुद्धे रामानिष्टसंभावनया च पर्याकुलां व्यथितां सञ्चिन्त्य विभाव्य सीतापती रामः विधेः ब्रह्मणः अपुनरुन्मेषेण सकृत्प्रयुज्यमानेन (एकदैव प्रयोगे फलदायितया पुनःप्रयोगायोग्येन) ज्वलता दीप्यमानेन अस्त्रेण मुहुर्मुहुः पूर्वमन्यैरस्त्रैरसकृत्कृते अपि अवच्छेदे छेदने कन्दलितान् पुनः प्ररूढान् तन्मस्तकान् रावणस्य शिरांसि समस्तजगताम् सर्वेषां लोकानाम् आतङ्केन

---

१. 'नैशाकरेण' इति पाठान्तरम् ।
२. 'वैष्णवीयेन माहेश्वरं च' इति पाठान्तरम् ।
३. 'चिन्ताकुलम्' इति पाठान्तरम् ।
४. 'उन्मेषं निमेषेण सः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'मूर्ध्नः' इति पाठान्तरम् ।

रावणतो जायमानेन भयेन समं चिच्छेद। रामेण रावणो हन्यमाने सर्वेषामपि भयं निवर्त्तते स्मेत्यर्थः। रामो यद्यपि रावणेन समं युध्यमानः शस्त्राशस्त्रिप्रियतया चिरयितुमैच्छत् परं सीताकष्टमनुभवतीति विभाव्य यानि रावणस्य शिरांसि खण्डितान्यपि पुनः प्रारोहँस्तानि दीप्यमानेन ब्राह्मास्त्रेण समस्तजगतां भयमपनुदाँश्चिच्छेदेत्यर्थः। कार्यकारणपौर्वापर्यविपर्ययमूलातिशयोक्तिसमुत्थितसहोक्तिरलङ्कारः॥

यद्यपि युद्धमें रामको आनन्द आरहा था, तथापि सीताकी व्याकुलताको ध्यानमें रख कर सीतापति रामने एकवारके प्रयोगसे ही सफलता प्राप्त करने वाले चमकते हुए ब्राह्म अस्त्रसे रावणके, जो शिर पहले कट जाने पर फिरसे पनप जाते थे, उन शिरोंको समस्त संसारके भयके साथ ही काट दिया॥ ८७॥

रक्षःपतौ पतति लब्धमनोरथाना-
मातन्वतां दिविषदामथ पुष्पवर्षम्।
श्लाघापदं समजनिष्ट परं न रामः
[1]कामोऽपिचाकलितशूर्पणखाविकारः॥ ८८॥

रक्षःपताविति। रक्षःपतौ रावणे पतति भुवि निपतिते सति लब्धमनोरथानां पूर्णाभिलाषाणाम् पुष्पवर्षम् कुसुमवृष्टिम् आतन्वतां कुर्वतां दिविषदाम् देवानाम् परं केवलं रामः श्लाघापदं प्रशंसाभाजनं न समजनिष्ट, अपिचाकलितशूर्पणखाविकारः उत्पादितशूर्पणखामुखविकृतिकामः अपि श्लाघापदम् प्रशंसापात्रम् अजनिष्टेति। रावणे मृते सति पुष्पवृष्टिं कुर्वन्तो देवाः केवलं राममेव न शश्लाघिरे अपितु शूर्पणखायाः कामवासनां जागरयित्वा तां रामसमीपे रतिं प्रार्थयितुं बाधितां कृत्वा तदीयां नासां लक्ष्मणद्वारा च्छेदयन् कामोऽपि प्रशशंसे देवैः, यद्ययं कामो न स्यात्तदा शूर्पणखामुखवैरूप्याभावे रावणः सीतां न हरेत्तदा चाद्य तन्मरणं न स्यादतोऽत्र रावणवधे कामोऽप्युपकारकतया देवैरस्तूयतेति भावः॥ ८८॥

रावणके धराशायी हो जाने पर मनोरथ पूर्ण हो जानेसे पुष्पवर्षा करने वाले देवोंने केवल रामकी ही तारीफ नहीं की, किन्तु (वासना उत्पन्न करके शूर्पणखाको रामके पास पहुँचानेके द्वारा) शूर्पणखाके नासाभङ्गरूप विकारको उत्पन्न करने वाले कामदेवकी भी बड़ी तारीफ की॥ ८८॥

अनन्तरमालिङ्गित[2]रणवसुन्धरं शरतल्पमधिशयानमधिगतनिषङ्गोपधानं यातुधानपतिमधिगत्य [3]निपत्य च भुवि सोदर्यस्नेहसुलभवैधुर्यः कदर्योऽहमिति विहितनिजदूषणो विभीषणश्चिरतरं विललाप।

---

१. 'कामोऽपि चाकलित' इति पाठान्तरम्। २. 'रण' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'निपत्य च सोदर्याद्दार्यसौहार्दसुलभ' इति पाठान्तरम्।

अनन्तरमिति। अनन्तरं तत्पश्चात् आलिङ्गितरणवसुन्धरं युद्धभूमौ पतितं शरतल्पम् बाणशय्याम् अधिशयानम् अधिगतनिषङ्गोपधानम् तूणीरमेवोपवर्हरूपेणोपयुञ्जानं यातुधानपतिम् राक्षसराजम् रावणम् अधिगत्य उपेत्य भुवि च निपत्य पृथिव्यां लुठित्वा सोदर्यस्नेहसुलभवैधुर्यः सोदरप्रीतिवशावाप्तमानसिकक्लेशः विभीषणः कदर्योऽहम् आत्मस्वार्थवशेन भ्रातृवधप्रयोजकतया क्षुद्रोऽहमिति विहितनिजदूषणः आत्मानं निन्दन् सन् चिरतरं बहुकालपर्यन्तं विललाप विलापं कृतवान्। 'कदर्ये कृपणक्षुद्र' इत्यमरः। 'आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्। लोभाद्यः पितरं भ्रातॄन्स कदर्य इति स्मृतः'।

इसके बाद जमीन पर लेटकर वाणकी सेज पर सोये हुए और अपनी तरकसको तकियाके रूपमें व्यवहृत करते हुए राक्षसराजके पास आकर और जमीनमें लोटकर भ्रातृप्रेमसे दुःखी हो 'मैं अभागा हूँ और क्षुद्र हूँ, इस तरह अपनी निन्दा करता हुआ विभीषण बड़ी देर तक विलाप करता रहा।

अयि समसुखदुःखैरन्वितं [1]बन्धुवर्गं
सहजमपि भवन्तं मुञ्चतः साहसेन।
कुलविशसनहेतोः कूटधर्मानुवृत्ते-
र्दशमुख ! मम यावज्जीवमासीत्कलङ्कः ॥ ८९ ॥

अयीति। अयि दशमुख, रावण, समानि तुल्यभावेन भोक्तव्यानि सुखदुःखानि यैः सुखे दुःखे च समानैः बन्धुवर्गैः मम स्त्रीपुत्रादिभिः अन्वितं युक्तम् सहजं सोदरमपि भवन्तं साहसेन हठधर्मितया मुञ्चतः विजहतः, कुलविशसनहेतोः कुलक्षयनिदानस्य कूटधर्मानुवृत्तेः सोदरं विहाय परमाश्रयतीति मिथ्याचारमुपेतस्य मम विभीषणस्य यावज्जीवम् जीवनपर्यन्तम् कलङ्कः अपवादः स्त्रीपुत्रादिकं सोदरं च विहाय परमन्ववर्त्ततेति रूपः आसीत् अजायत ॥ ८९ ॥

हे दशमुख, सुखदुःखमें समान भावसे साथ देने वाले स्त्री पुत्रादि तथा तुम्हारे समान सोदरका त्याग करने वाले, कुलक्षयकारक तथा आत्मीयजनत्यागपूर्वक परानुवृतिरूप मिथ्याचारपरायण विभीषणका यह कलङ्क जीवनपर्यन्त स्थायी हो गया ॥ ८९ ॥

आर्यस्य रक्षितुमसूननुजः स एकः
प्राणानमुञ्चत परं युधि कुम्भकर्णः।
त्वज्जीवहृत्स्वयमहं [2]निजजीवहेतो-
रद्यापि हन्त सहते हतको विधिर्माम् ॥ ९० ॥

---

१. 'बन्धुवर्गैः' इति पाठान्तरम्।   २. 'मम' इति पाठान्तरम्।

आर्यस्येति । आर्यस्य पूज्यस्य भवतः असून् प्राणान् रक्षितुम् त्रातुम् सः प्रसिद्धः एकः परं केवलं कुम्भकर्ण एव प्राणान् स्वीयं जीवितम् अमुञ्चत त्यक्तवान्, अतोऽसौ स्वपूज्यप्राणत्राणत्यक्तस्वीयजीवनतया धन्य इत्यर्थः, अहं निजजीवहेतोः स्वजीवनरक्षार्थम् त्वजीवहृत् त्वत्प्राणहरः, अतो नितरामधन्योऽहं स्वार्थान्धतयेत्यर्थः, अद्यापि एतादृशानुचितकार्यस्य मयानुष्ठितत्वेऽपि हतको नीचो विधिर्मां सहते मृष्यति हन्त ! खेदास्पदमिदमित्यर्थः ॥ ९० ॥

पूज्य आपके प्राणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण देनेवाला केवल कुम्भकर्ण नामक आपका छोटा भाई ही हुआ, वह धन्य है, मैं अभागेने तो अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये आपके प्राण ले लिये, न जाने, क्यों विधि मुझे क्षमा कर रहा है? हाय, यह बड़े खेदकी बात है ॥ ९० ॥

इत्येवमस्मिन्विलपति विदितवृत्तान्ता [1]शुद्धान्तात्करुणमारटन्तीभिरन्तरितयूथपाभिः करिणीभिरिव तरुणीभिः सह[2] [3]समागत्य मध्येसमरमापतितमशनिहतमिव मन्दरं [4]दशकन्धरं नाथं निरीक्ष्य निहतोपघ्नेव लता निपतन्ती विलपन्ती नाथ नाथेत्यपरिमेयविषादा [5]निषादाहतदयितविधुरीकृतकुररीवामन्दं चक्रन्द मन्दोदरी ।

इत्येवमिति । इत्येवम् अनेन प्रोक्तेन प्रकारेण अस्मिन् विभीषणे विलपति विलापं कुर्वति सति, विदितवृत्तान्ता ज्ञातरावणवधसमाचारा करुणं दीनभावेन आरटन्तीभिः विलपन्तीभिः अन्तरितयूथपाभिः तिरोहितयूथनाथाभिः नष्टपतिकाभिरित्यर्थः, करिणीभिः कुञ्जरवधूभिरिव तरुणीभिः रावणावरोधस्थाभिरन्याभिः रावणस्य स्त्रीभिः सह शुद्धान्तात् अन्तःपुरात् समागत्य युद्धभूमिमुपेत्य, मध्येसमरं रणभूमिमध्ये आपतितं शयानम्, अशनिहतं वज्रदारितं मन्दरं मन्दराचलम् इव (पतितं) नाथं प्रियतमं दशकन्धरं दशग्रीवं रावणं निरीक्ष्य दृष्ट्वा, निहतोपघ्ना नष्टाश्रयवृक्षा लता व्रततिः इव निपतन्ती स्खलन्ती नाथ नाथ इति विलपन्ती आक्रोशन्ती अपरिमेयविषादा असीमखेदयुता निषादाहतदयिता शबरविद्धप्रिया अतएव विधुरीकृता विह्वलतां गमिता कुररी उत्क्रोशखगाङ्गना इव मन्दोदरी रावणमुख्यस्त्री अमन्दं बहु चक्रन्द विललाप । 'शुद्धान्तश्चावरोधश्च' 'स्यादुपघ्नोऽन्तिकाश्रये' 'उत्क्रोशकुररौ समौ' इति सर्वत्रामरः । 'विधुरं प्रत्यपेते स्यात्कष्टविश्लिष्टयोरपि' इति वैजयन्ती ।

---

१. 'शुद्धान्तात्सकरुणं' इति पाठान्तरम् । २. 'समम्' इति पाठान्तरम् ।
३. 'समापत्य' इति पाठान्तरम् । ४. 'दशकंधरं समीक्ष्य' इति पाठान्तरम् ।
५. 'विषादाहता' इति पाठान्तरम् ।

विभीषणके द्वारा उक्त प्रकारसे विलाप किये जाने पर रावणवध वृत्तान्त जानकर करुण रोदन करती हुई मृत यूथनाथा करिणियोंके समान रावणकी दूसरी दूसरी स्त्रियोंके साथ युद्धभूमिमें आकर, लड़ाईके मैदानमें गिरे हुए, वज्राहत मन्दराचलके समान, अपने प्रियतम रावणको देखकर आश्रयवृक्षके नष्ट हो जाने पर गिरती हुई लताकी तरह पछाड़ खाकर गिरती हुई, नाथ नाथ चिल्लाती हुई मन्दोदरी निषाद द्वारा पतिके मारे जानेपर विह्वल कुररीकी तरह जोर जोरसे विलाप करने लगी।

या वीक्षिताजनि पुरा यमराजधानी
वीर ! त्वया [1]सकलदिग्विजयोत्सवेषु ।
तामद्य दुर्विधिवलेन समस्तलोक-
साधारणः पुनरुपैष्यसि हा [2]किमेतत् ॥ ९१ ॥

या वीक्षितेति । हे वीर, पुरा पूर्वं त्वया सकलदिग्विजयोत्सवेषु समस्तदिग्विजययात्रारूपमहोत्सवेषु या यमराजधानी यमपुरी दृष्टा अजनि अवलोकिताऽभूत्, तां यमराजधानीम् अद्येदानीं दुर्विधिवलेन भाग्यविपर्ययवशेन समस्तलोकसाधारणः सकलजनवत् पुनः भूयः अपि एकः सहायान्तररहितः उपैष्यसि प्राप्स्यसि एतत् अवस्थान्तरं किम् ? कुतोऽयं दशाविपर्ययो जातो यद्यस्यां यमपुर्यां दिग्विजयप्रसङ्गेन सेनासमेतोऽयासीस्त्वं तामेव यमपुरीमद्य साधारणजनवन्मृत्वा यास्यसीत्यर्थः, हा विषादद्योतनाय । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९१ ॥

हे वीर, जिस यमपुरीको आप पहले केवल दिग्विजय यात्राके प्रसङ्गमें कभी कभी देखा करते थे, भाग्य विपर्ययवश उसी यमपुरीमें आज आप साधारणजन की तरह जा रहे हैं ! हाय यह क्या हुआ ? ॥ ९१ ॥

जनकः स्वयं दनुजवंशनायको
दयितो जगत्त्रितयजैत्रशासनः ।
तनयः पुरंदरजयीति गर्विता
विधिनाहमेवमधुना विडम्बिता ॥ ९२ ॥

जनक इति । जनको मम पिता मयः स्वयम् साक्षात् दनुजवंशनायकः दानवकुलश्रेष्ठः तथा दयितः प्रियः जगत्त्रितयस्य लोकत्रयस्य जैत्रं विजयिशासनमाज्ञा यस्य तादृशः लोकत्रयविजयीति भावार्थः, तनयः पुत्रः पुरन्दरजयी कर्मणा इन्द्रजित्, इति एभिः कारणैर्गर्विता गौरविणी अहं मन्दोदरी अधुना सम्प्रति विधिना भाग्येन एवं विडम्बिता उपहसिता, यदपुत्रा मृतभर्तृका च जातास्मीति शेषः । मञ्जुभाषिणीवृत्तम् ॥ ९२ ॥

१. 'निखिल' इति पाठान्तरम् ।   २. 'किमेकः' इति पाठान्तरम् ।

दानववंशश्रेष्ठ मय हमारे पिता, तीनों लोक पर अपनी आज्ञासे विजयप्राप्त करनेवाले हमारे पति रावण, इन्द्रविजयी हमारा पुत्र मेघनाद, इनसे मैं गौरवती थी किन्तु दैव प्रतिकूल होनेके कारण इन सबके संहार हो जानेसे इस समय केवल विडम्बना प्राप्त कर रही हूँ ॥ ९२ ॥

राजन्यधर्मविदुषोऽपि रघूद्वहस्य
हत्वा यथाग्रजमथानुजपट्टबन्धः ।
आरभ्य [1]वालिनमसंशयमाविरासी-
दिक्ष्वाकुवंशसहजः कथमेष धर्मः ॥ ९३ ॥

राजन्येति । राजन्याः क्षत्रियास्तेषां धर्मं विदुषः जानतः अपि रघूद्वहस्य रघुवंशश्रेष्ठस्य श्रीरामस्य अग्रजम् ज्येष्ठं भ्रातरं हत्वा अथ अनुजपट्टबन्धः कनीयसो भ्रातुः साम्राज्येऽभिषेकः, एषः ईदृक् इक्ष्वाकुवंशसहजः इक्ष्वाकुवंशस्य स्वभावसिद्धः धर्मः वालिनम् आरभ्य कथम् केन प्रकारेण आविरासीत् प्रादुर्भूतः ? रामो राजधर्मविशारदः सन्नपि वालिनं हत्वा तदनुजं सुग्रीवं राज्येऽभ्यषिञ्चत् , तदन्तरं रावणं हत्वा तदनुजं विभीषणं राज्येऽभिषेक्तुमुद्यतः, तदत्र कारणं न विभाव्यते यदयं कुतस्तरामिमं धर्मं स्वाभाविकमिव स्ववंशस्य विधत्त इति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ९३ ॥

राम क्षात्रधर्मके ज्ञाता है, उन्होंने बड़े भाईको मारकर छोटे भाईको गद्दीपर बैठाना अपने कुलका स्वाभाविक धर्मसा माना है जो वालीको मारकर सुग्रीवको गद्दी देनेके बाद कायम होता है, ऐसा किस प्रकार हुआ यह बात समझमें नहीं आरही है ॥ ९३ ॥

अहह निहता लङ्का वालानलेन हनूमतः
परमवनिजापातिव्रत्यानलेन भवानपि ।
सुखमहमिहासीना [2]शोकानलेऽपि यदीदृशे
प्रभवति न मां हन्तुं प्रायः स एष [3]चितानलः ॥ ९४ ॥

अहहेति । अहहेति खेदव्यञ्जकमव्ययम् , हनूमतः वालानलेन पुच्छकेशोत्थवह्निना लङ्का नाम पुरी निहता नष्टा दग्धा, परं ततः परतः जनकजापातिव्रत्यानलेन सीताचारित्रवह्निना भवान् अपि निहतः हतः, अहं मन्दोदरी तु इह अस्मिन् नितान्ततीव्रे शोकानले पतिपुत्रमरणजन्यखेदपावके सुखम् आसीना अपि, (न दह्ये इति योजनीयम्) प्रायः संभावयामि एषः पुरोदृश्यः चितानलः चिताग्निः अपि मां

---

१. 'वालिमनयं कथम्' इति पाठान्तरम् । २. 'शोकानलेन' इति पाठान्तरम् ।
३. 'चिन्तानलः' इति पाठान्तरम् ।

हन्तुं दग्ध्वा मारयितुं न प्रभवति न क्षमते। शोकानले सुखमासीनाया मम चितानलेनापि न दाहः कर्त्तुं शक्य इति भावः। हरिणीवृत्तम् ॥ ९४ ॥

अहा! सोनेकी लङ्का हनूमान्‌की पूछमें लगी आगसे खाक हो गई और आप भी सीताके पातिव्रत्यरूप आगमें जल उठे, परन्तु इस शोकानलमें भी मैं आनन्दपूर्वक बैठी हुई हूँ, प्रायः यह चितानल भी मुझे नहीं जलाता है॥ ९४ ॥

तदहमिदानीं [1]सायंदिने भगवतः सवितुः प्रभेव प्रविश्य जात[2]वेदसं चन्द्रिकेव चन्द्रमसं तडिदिव तडित्वन्तं भवन्तमनुसरन्ती निर्वापयामि निरन्तरविरहदहनदह्यमानमात्मानम्।

तदहमिति। तत् तस्मात्कारणात् इदानीम् भवदपाये अहम् मन्दोदरी सायंदिने सायंसमये भगवतः सर्वसमर्थस्य सवितुः सूर्यस्य प्रभा इव जातवेदसम् अग्निम् प्रविश्य चन्द्रिका कौमुदी चन्द्रमसम् चन्द्रम् इव तडित् विद्युत् तडित्वन्तं जलदमिव भवन्तम् त्वां रावणम् अनुसरन्ती अनुव्रजन्ती निरन्तरविरहदह्यमानम् सततवियोगाग्निज्वलितम् आत्मानम् निर्वापयामि शीतलीकरोमि। यथा सायंकाले सूर्यप्रभा पावके प्रविशति तथाहमधुना भवदभावे पावकं प्रवेक्ष्यामि, तेन च मार्गेण भवन्तमनुगमिष्यामि यथा कौमुदी चन्द्रं तडिच्च जलदमनुयाति, एवंकरणेन वियोगज्वलितमात्मानमहं शमयितुं प्रभविष्यामीति भावः।

इसलिये मैं इस समय जैसे सूर्यकी प्रभा सायङ्कालमें आगमें प्रवेश कर जाती है उसी तरह आगमें प्रवेश करके जैसे चन्द्रिका चांदका तथा बिजली मेघका अनुसरण करती है उसी तरह आपका अनुसरण करके निरन्तर विरहसन्तप्त अपनी आत्माको शीतल करूंगी।

इत्यादिकरुणपरिदेवनवतीं प्रजावतीं निवृत्य निर्वर्त्य च [3]निजाज्ञया निशाचरपतेर्यथाविधि समेधं पितृमेधं सविधमेधमानविषादं विभीषणमशेषराज्याधिपतिं विधातुमखिलतीर्था[4]हृतैरम्भोभिरम्भोधर इव [5]दावदहनाकुलं वनस्पतिं रघुपतिरभ्यषिञ्चत्।

इत्यादीति। इत्यादिकरुणपरिदेवनवतीम् एवमादिशब्दैः करुणमाक्रोशन्तीं प्रजावतीं स्वभ्रातृजायां मन्दोदरीम् निवृत्य चितानलाधिरोहणान्निवार्य, निजाज्ञया स्वादेशेन यथाविधि यथाशास्त्रम् समेधं ज्ञानपूर्वकम् पितृमेधम् मरणोत्तरकरणीयं पितृयागं च निवर्त्य सम्पाद्य सविधम् समीप एव एधमानविषादम् वर्धमानभ्रातृ-

१. 'सायंतनसमय इव सवितुः प्रभा भगवति प्रविश्य' इति पाठान्तरम्।
२. 'जातवेदसि' इति पाठान्तरम्।
३. 'निशिचरपतेर्यथाविधि निजाज्ञया पितृमेधसमेतं सविधम्' इति पाठान्तरम्।
४. 'तीर्थोपहृतैरम्भोभिः' इति पा०। ५. 'दावानलाकुलम्' इति पा०।

-मरणखेदम् विभीषणम् अशेषराज्याधिपतिम् समस्तलङ्कासाम्राज्यभाजम् विधातुम् कर्त्तुम् (लङ्काधीशपदेऽभिषेक्तुम्) अखिलतीर्थाहृतैः अशेषपुण्यतीर्थानीतैः अम्भोभिः पवित्रजलैः अम्भोधरः मेघः दावदहनाकुलम् दावानलदह्यमानम् वनस्पतिम् वृक्षम् इव रघुपतिः रामः अभ्यषिञ्चत् लङ्काराज्यपदेऽभिषेकं कृतवान्। शब्दो यागपरः—'प्रजापतिरश्वमेधमसृजत' इत्यादौ तथा प्रयोगात्।

इस प्रकारसे करुण विलाप करती हुई अपनी भौजाई मन्दोदरीको आगमें प्रवेश करने से विभीषणने रोका और उसने राक्षसराज रावणका यथाविधि बुद्धिपूर्वक पितृकार्य किया, तदनन्तर विषादमग्न समीपमें बैठे हुए विभीषणको समस्तलङ्काराज्यपदपर अभिषिक्त करने के लिये लाये गये सकलपुण्यतीर्थोंके जलसे रामने अभिषिक्त कर दिया जैसे मेघ दावानलमें जलते हुए वनस्पतिको अभिषिक्त करता है।

अथ दशरथनन्दनाभिषेका-
दधिगतराज्यपदो विभीषणोऽयम्।
अनुदिनमभिवृद्धमण्डलोऽभू-
दरुणकरामृत[1]पूरणो यथेन्दुः॥ ९५॥

अथेति। अथ एतदनन्तरम् दशरथनन्दनाभिषेकात् रामकृतात् साम्राज्ये प्रतिष्ठापनात् अधिगतराज्यपदः प्राप्तराज्यरूपप्रतिष्ठः अयं विभीषणः अनुदिनम् दिने दिने अरुणकराः सूर्यकिरणाः एव अमृतानि तैः पूरणम् अभिवृद्धिर्यस्य तादृशः इन्दुर्यथा चन्द्रो यथा तथा अभिवृद्धमण्डलः सम्पन्नराष्ट्रः अभूत्। चन्द्रो यथा सूर्यमण्डलसुधयाऽऽपूर्यमाणः सन् पूर्णमण्डलो भवति तथा रामेणाभिषिच्यमानो विभीषणः सम्पूर्णराष्ट्रोऽजायतेत्यर्थः। चन्द्रो जलपिण्डात्मा सूर्यकरेणैवानुदिनं प्रकाशमुपैति, अतएव यावत्यंशे सूर्यकरपातः, तावत एवांशस्य प्रकाशमानतेति ज्यौतिषे उक्तम्, यथाह भास्कराचार्यः शिरोमणौ—'तरणिकिरणसङ्गादेष पानीयपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति। तदितरदिशि बाला कुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्त्तिच्छाययेवातपस्थः'॥ ९५॥

इसके बाद रामद्वारा अभिषेक कर राज्यपदपर प्रतिष्ठित किये गये विभीषण दिनों दिन सम्पन्न राष्ट्र होने लगा जैसे चन्द्रमा सूर्यकिरणरूप अमृतसे पूर्णमण्डल होता है॥ ९५॥

[2]ततः—

[3]सीतामुदीक्ष्य निभृतेन विभीषणेन
नीत[4]मुदारगुण[5]रूपवतीं सतीनाम्।

१. 'पूरणादिवेन्दुः' इति पाठान्तरम्। २. 'ततः' इति नास्ति क्वचित्।
३. 'नीताम्' इति पाठान्तरम्। ४. 'सीताम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'शीलवतीम्' इति पाठान्तरम्।

देवस्य तत्क्षणमभू[1]द्दशकण्ठकृष्टा-
मानन्दशोकरसबन्धुरमन्तरङ्गम् ॥ ९६ ॥

ततः सीतामिति। ततः विभीषणाभिषेकानन्तरम् निभृतेन शान्तेन विभीषणेन आनीताम् अशोकवनिकातः रामसमीपं प्रापिताम् उदारगुणरूपवतीम् सौशिल्य-सच्चरित्रताभिः गुणै रूपेण अक्लिष्टसौन्दर्येण च युताम् सतीनाम् सतीषु पति-व्रतासु इनाम् श्रेष्ठाम् दशकण्ठकृष्टाम् रावणेन पूर्वं हृताम् सीताम् उदीक्ष्य दृष्ट्वा तत्क्षणम् तस्मिन् समये देवस्य सकललोकस्वामिनः रामस्य अन्तरङ्गम् हृदयम् आनन्दशोकरसबन्धुरम् हर्षविषादपूर्णम् अभूत् जातम्। प्रियादर्शनेनानन्दः, प्रिया-नुभूतक्लेशविशेषस्मरणेन च विषादो जात इति भावः ॥ ९६ ॥

इसके बाद शान्तहृदय विभीषणके द्वारा लाई गई, रमणीय गुणरूपशालिनी, सती-शिरोमणि एवं रावणद्वारा अपहृता सीताको देखकर संसारके स्वामी रामका हृदय आनन्द तथा शोकसे भर आया ॥ ९६ ॥

[2]अनन्तरमरुन्धतीव पवित्रचारित्र[3]निधेरधिदेवता पतिदेवतेयमना-दि[4]पुंसोऽपि परस्य मर्त्यधर्मेण प्रत्यायनाय नायकस्य [5]पुरः पुरंदरमुखान् बर्हिर्मुखान्पुरस्कृत्य भगवन्तमरविन्दासनमिन्दुकलेव पुनरुदेष्यन्ती तपन-[6]मिव दहनमनु जगाहे।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् सीतायाः रामसमीपप्राप्त्यनन्तरम् अरुन्धती वसि-ष्ठस्त्री इव पवित्रचारित्रनिधेः सच्चरित्रतारूपसम्पदः अधिदेवता अधिष्ठात्री, पति-देवता पतिव्रता इयम् सीता अनादिपुंसः परस्य अजस्य पुराणपुरुषस्य परमात्मनः नायकस्य भर्त्तुः मर्त्यधर्मेण मानुषभावेन प्रत्यायनाय स्वपातिव्रत्यज्ञापनाय पुरः प्रथमं पुरन्दरमुखान् इन्द्रादीन् बर्हिर्मुखान् देवान् भगवन्तम् अरविन्दासनम् कमलासनं ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य पुरोधाय पुनरुदेष्यन्ती पुनरुदयं लिप्समाना इन्दु-कला तपनम् सूर्यम् इव (यथाऽमायां चन्द्रकला सूर्यं प्रविश्य पुनः समृद्धया-कान्त्योदयं लभते तथा सीतापि वह्नौ प्रविश्य सातिशयां पवित्रतां प्राप्तुम्) दहनम् वह्निम् अनुजगाहे प्रविष्टा। 'बर्हिर्मुखाः क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः' इत्यमरः।

इसके बाद अरुन्धतीकी तरह पवित्र चरित्रताकी अधिष्ठात्री देवता पतिव्रता सीताने अनादिपुरुष स्वामी भगवान् रामको मनुष्यभावसे अपनी पवित्रताका परिचय प्रदान

---

१. 'दशकंधरारेः' इति पाठान्तरम्।
२. 'तदनन्तरम्' इति पाठान्तरम्।
३. 'निधिः' इति पाठान्तरम्।
४. 'पुंसोऽपि मर्त्यधर्मणः' इति पाठान्तरम्।
५. 'पुरः' इति नास्ति क्वचित्।
६. 'अवजगाहे' इति पाठान्तरम्।

करनेके लिये इन्द्रादि देवगण तथा ब्रह्माको साक्षी करके आगमें प्रवेश किया जैसे पुनः उदय-प्राप्त करनेके लिये चन्द्रकला अमावास्याको सूर्यमें प्रवेश करती है।

प्राविक्षदर्चिषि परं निजशुद्धिहेतो-
र्देवी [1]विशुद्धचरिता [2]जनकस्य पुत्री।
अंहश्चिरं हि यदपावनवस्तुसङ्गा-
त्त्यक्तः स्वयं तदमुना दमुना बभूव ॥ ९७॥

प्राविक्षदिति। विशुद्धचरिता परमपवित्रचरित्रा देवी पूज्या जनकस्य पुत्री सीता निजशुद्धिहेतोः आत्मशुद्धये अर्चिषि ज्वलने प्राविक्षत् प्रविष्टा, परम् किन्तु चिरं बहुकालं यावत् अपावनवस्तुसङ्गात् अपवित्रवस्तुचयसम्पर्कात् यद् अंहः पापम् (जातं) तद् अमुना अंहसा दमुनाः वह्निः स्वयं त्यक्तः बभूव त्यज्यते स्म। सीता स्वशुद्धये वह्निं प्रविष्टवती, परं सीतासदृशपतिव्रतास्पर्शवशेन चिरं सर्वदाहकतयाऽपावनवस्तुनिकरसम्पर्केण वह्नौ जातं यत् पापं, वह्निः स्वयं तेन पापेन त्यक्तोऽजायत, शोधकस्य शोध्येन शुद्धिरक्रियतेति भावः। अत्र वह्नौ दुरितसम्बन्धतन्मुक्त्योरसंबन्धेऽपि तत्संबन्धाभिधानादतिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ ९७॥

पवित्रचरित्रशालिनी सीताने अपनी पवित्रताके लिये अग्निमें प्रवेश किया था, परन्तु उनके स्पर्शसे चिरकालतक अपवित्र वस्तुके संसर्गसे उत्पन्न पापोंसे आग खुद शुद्ध हो गई। जो शुद्ध करने वाली थी वह खुद शोध्य सीताके स्पर्शसे शुद्ध हुई ॥ ९७॥

विशुद्धशीला[3]मनलेन सङ्गाद्विदेहजां तत्र विलोक्य सीताम्।
प्रभां पुनः प्रत्युषसीव पूषा [4]प्रत्यग्रहीत्सोऽग्रसरो रघूणाम् ॥ ९८॥

विशुद्धशीलामिति। तत्र सीताकर्तृकवह्निप्रवेशकाले सः रघूणाम् अग्रसरः रघुनायकः अनलेन वह्निना सङ्गात् संपर्कात् हेतोः विशुद्धशीलाम् पावनचरित्राम् विदेहजाम् जनकतनयाम् सीतां विलोक्य दृष्ट्वा पूषा सूर्यः प्रत्युषसि प्रातःकाले प्रभाम् निजद्युतिमिव (सीताम्) पुनः प्रत्यग्रहीत् स्वसहचारिणीभावेनाङ्गीकृतवान्। उपमयाऽत्र प्रभासूर्ययोरिव सीतारामयोः सततसहचारो व्यज्यमानस्तयो रत्यनुरागः सूच्यते। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ९८॥

अग्निप्रवेशके समय जिस प्रकार सूर्य प्रातःकालीन द्युतिसे युक्त सुषमाको विशुद्ध जानकर ग्रह करता है उसी प्रकार रघुनायक श्रीरामचन्द्रजीने अग्निके संपर्कसे पवित्र जनकजी सीताजीको विशुद्ध जानकर स्वीकार किया ॥ ९८॥

---

१. 'पवित्र' इति पाठान्तरम्। २. 'जनकेन्द्रपुत्री' इति पाठान्तरम्।
३. 'अनलानुषङ्गात्' इति पाठान्तरम्। ४. 'पर्यग्रहीत्प्राग्रसरः' इति पाठान्तरम्।

अथ [1]दाशरथिरधिगतनिजप्रशंसाविधिना विधिना पुरः [2]प्रदर्श्यमानं [3]विमानगतं महारथं दशरथं प्रणिपत्य [4]प्रपद्य शिरसि तदनुशासनं पाकशासनवरप्रत्युज्जीवितैः [5]प्रमुदितैर्हरिभिरनुगम्यमानः प्रमोदमानमनाः सुग्रीवेण सह [6]भाषमाणं विभीषणं सकरुण[7]मालोकयन्ननुजेन [8]सीतया च सममयोध्यामभिगन्तुकामः [9]कामचरं विमानवरमारुरोह [10]कमपि कौबेरम्।

अथेति। अथ सीतापरिग्रहात् परतः दाशरथिः श्रीरामः अधिगतनिजप्रशंसाविधिना स्वीकृतरामप्रशंसाव्यापारेण रामं स्तुवतेत्यर्थः, विधिना ब्रह्मणा पुरः अग्रे प्रदर्श्यमानम् 'एष ते पिता दशरथः' इति हस्तनिर्देशेन संज्ञप्यमानम्, विमानगतम् विमानमारुह्याकाशेऽवस्थितम् महारथं वीरम् दशरथं नाम स्वतातं प्रणिपत्य नमस्कृत्य तदनुशासनम् दशरथस्यादेशम् शिरसि प्रपद्य अभ्युपगम्य (दशरथेनायोध्यां गत्वा राज्यभारग्रहणायाज्ञप्तस्तदङ्गीकृतवाँश्च) पाकशासनवरप्रत्युज्जीवितैः इन्द्रदत्तवरेण पुनरासादितजीवनैः अत एव प्रमुदितैः हृष्टैः हरिभिः कपिभिरनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः प्रमोदमानमनाः हृष्यदन्तःकरणः सुग्रीवेण सह भाषमाणं सौहार्दवशात्प्रेमालापपरायणं विभीषणं सकरुणम् सदयम् आलोकयन् वीक्षमाणः, अनुजेन लक्ष्मणेन सीतया च समम् सह अयोध्याम् अभिगन्तुकामः प्रतिष्ठासुः सन् कामचरं यथेच्छगतिम् कौबेरम् कुबेरसम्बन्धिनं कमपि प्रसिद्धं पुष्पकाख्यं विमानवरम् व्योमयानश्रेष्ठम् आरुरोह आरूढः।

इसके बाद रामने अपनी प्रशंसामें लगे हुए ब्रह्मा द्वारा आगे दिखलाये गये महारथी दशरथको प्रणामकर, उनकी आज्ञा स्वीकारकर और इन्द्रके वरदानसे पुनरुज्जीवित अत एव प्रसन्न वानरोंसे अनुगत होकर, सुग्रीवके साथ प्रेमालाप करते हुए विभीषणको सदय दृष्टिसे देखते हुए, सीता और लक्ष्मणके साथ अयोध्या जानेकी इच्छासे यथेच्छगतिशाली कुबेरसंबन्धी पुष्पक नामक श्रेष्ठ विमान पर आरोहण किया।

आरुह्य पुष्पकमयं विदितानि तानि
लङ्कोपकण्ठदशकण्ठरणाङ्गणानि।
सिन्धुं गभीरमपि सेतुनिबन्धनं च
संदर्शय[11]न्मृगदृशः स जगाम रामः॥ ६६॥

---

१. 'उदारधीरधिगत' इति पा०। २. 'प्रदृश्यमानम्' इति पा०।
३. 'विमानाधिगतमहारथम्' इति पा०। ४. 'प्रतिपाल्य च', 'प्रतिपद्य' इति च पा०।
५. 'प्रमुदितैः' इति नास्ति क्वचित्। ६. 'संभाषमाणो' इति पाठान्तरम्।
७. 'अवलोकयन्' इति पाठान्तरम्। ८. 'च सीतया' इति पाठान्तरम्।
९. 'रामः खेचरम्' इति पाठान्तरम्। १०. 'किमपि' इति पाठान्तरम्।
११. 'मृगदृशम्' इति पाठान्तरम्।

आरुह्येति । सः अयं रामः पुष्पकम् नाम विमानम् आरुह्य अधिष्ठाय तानि तत्तद्वीरवधस्थानतया प्रसिद्धानि विदितानि रामेण परिचितानि लङ्कोपकण्ठे लङ्कापुरपरिसरे दशकण्ठरणाङ्गणानि रावणेन सह युद्धस्य स्थानानि, गभीरम् अतलस्पर्शं सिन्धुम् समुद्रम् अपि च सेतुनिबन्धनम् समुद्रोपरि नलेन रचितं सेतुम् मृगदृशः हरिणनयनायाः सीतायाः सन्दर्शयन् बोधनसाधनपरिचयदानद्वारा प्रदर्शयन् जगाम अयोध्यां चलित इत्यर्थः ॥ ९९ ॥

पुष्पक विमानपर चढ़कर तत्तत्प्रसिद्ध लङ्काके समीपवर्त्ती रावणयुद्धस्थान, गभीरतम समुद्र तथा सेतुबन्धको सीतासे दिखाते हुए राम अयोध्या चले ॥ ९९ ॥

उपरि यथा यथा मणिविमानमुदञ्चति न-
स्तरुणि तथा तथा विपुलतामुपयाति नभः ।
महिवलये तु पल्वलमवेक्ष्य महाम्बुनिधिं
पवनभुवे निवेद्य च हसन्ति परे हरयः ॥ १०० ॥

उपरीति । हे तरुणि अनपेतयौवने सीते, नः अस्माकम् मणिविमानम् रत्नखचितं यानं यथा यथा उपरि उदञ्चति गच्छति तथा तथा नभो व्योम विपुलतां विशालत्वम् उपयाति प्रपद्यते, यथा यथा यानमुपर्यारोहति नभस्तथा तथा विस्तीर्णमिव प्रतीयत इत्यर्थः । महाम्बुनिधिम् महासागरं तु महिवलये भूमण्डले पल्वलम् अल्पजलाशयम् (दूरस्थस्य लघुतया प्रतिभासात्) अवेक्ष्य दृष्ट्वा पवनभुवे हनूमते निवेद्य (भवतायं सागरं तीर्त्वाऽभिमानः क्रियते सोऽयं सागरः पल्वलकल्प इति) प्रतिपाद्य च परे हनुमदतिरिक्ता वानराः (हनूमतः कार्यस्य तुच्छतां प्रमाय) हसन्ति उपहसन्ति ॥ १०० ॥

हमलोगोंका यह मणिखचित विमान जैसे जैसे ऊपर उठता जा रहा है वैसे वैसे आकाशका विस्तार बढ़ता जा रहा है और महासागरको पृथ्वीमण्डलपर वर्त्तमान छोटेसे जलाशयके समान देखकर तथा हनुमान्‌जीसे कहकर अन्य वानर हनूमान्‌का उपहास कर रहे हैं ॥ १०० ॥

प्रिये विदेहराजनन्दिनि, विनतानन्दनमप्यतिशेते विमानवेगः ।

प्रिय इति । हे प्रिये दयिते, विदेहराजनन्दिनि जनकपुत्रि, विमानवेगः अस्माकं व्योमयानस्य रयः विनतानन्दनम् गरुडम् अपि अतिशेते क्षिप्रगामितायां पराजयते, गरुडगतेरपि तीव्रागतिरस्यास्मदारूढविमानस्येत्यर्थः ।

हे प्रिये विदेहनन्दिनि, हमलोगोंके विमानका वेग गरुड़के वेगको भी मातकर रहा है ।

[1]तथाहि—

यद्यद्दूरे पुरः पश्यन्निच्छामि तव शंसितुम्।
तत्तदन्वगपि [2]द्रष्टुमपि वक्तुं न पार्यते ॥ १०१ ॥

तथाहि-यद्यदिति। विमानवेगो विनतानन्दनमप्यतिशेते इति यदुक्तं तत्प्रमापयति—तथाहीति। यद्यदिति। दूरे दूरवर्त्ति यद्यद्वस्तु पश्यन् आलोकमानः अहं तव शंसितुं तुभ्यं वक्तुमिच्छामि, अन्वक् पश्चात् तत्तत् वस्तु द्रष्टुं वक्तुम् अपि न पार्यते शक्यते। तीव्रगमिना विमानेनानेन गच्छन् यस्य दूरे पुरोदेशवर्त्तिनो वस्तुनः परिचयं ते दातुमिच्छाम्यहं तदतित्वरया पश्चाद्गतं सद्दृष्टेः परतो भवति, अतिशीघ्रं सन्निधाय पश्चाद्याति, अतो न शक्यते द्रष्टुमथ च वक्तुमपीत्यर्थः। विमानवेगातिशयव्यञ्जकमिदं वचनम् ॥ १०१ ॥

क्योंकि जिन जिन वस्तुओंको आगे दूरमें देखकर उनके विषयमें तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, वह वस्तु अतिवेगसे पीछे छूट जानेके कारण देखी नहीं जाती है और न उसके विषयमें कुछ कहा जा सकता है ॥ १०१ ॥

तरुणि धरणीसुते, पश्य ऋष्यमूकोऽयम्। बिम्बाधरे, पम्पासर इदम्। कम्बुकण्ठि, कबन्ध[3]निधनभूरियम्। करभोरु, खरादिकलहस्था[4]नमिदम्। मधुरालापिनि, मम पर्णशालेयम्। मत्तेभगामिनि, मायामृगमृगयावनमिदम्। कुटिलायतकबरि, गोदावरीयम्। कुम्भिकुम्भस्तनि, कुम्भसंभवायतनमिदम्। [5]विधुमुखि, विराधविध्वंसनभूमिरियम्। [6]कञ्जलोचने, महामुनेरत्रेराश्रमपदमिदम्। विदेहराजपुत्रि, चित्रकूटोऽयमिति विविधाः कथाः कथयन्नेवायमञ्जसा भागीरथीपरिसरगतं भरद्वाजमुनेः प्रशान्तं पावनं तपोवन[7]मयासीत्। अभाषत च मैथिलीम्।

तरुणीति। तरुणि, युवति, धरणीसुते पृथिवीपुत्रिसीते, अयं पुरोवर्त्ती ऋष्यमूकः, वाली यत्र हतः, तदिदं पश्य विलोकय। बिम्बमिव अधरं यस्यास्तत्संबुद्धौ बिम्बाधरे, इदं दृश्यमानं पम्पासरः, पम्पानामकसरोवरविशेषः, कम्बुः शङ्ख इव सुरेखः कण्ठो यस्याः सा कम्बुकण्ठी तत्संबोधने कम्बुकण्ठि, कबन्धनिधनभूः, कबन्धाख्यराक्षसमृत्युभूमिः इयम्। करभः मणिबन्धतः कनिष्ठापर्यन्तः करबहिर्भागः स इव

---

१. 'तथाहि' इति नास्ति क्वचित्। २. 'द्रष्टुं तत्क्षणेनावपार्यते' इति पाठान्तरम्।
३. 'निबन्धनभूः' इति पाठान्तरम्। ४. 'स्थलम्' इति पाठान्तरम्।
५. 'इन्द्रमुखि, विराधविध्वंसनवनमहीयम्' इति पाठान्तरम्।
६. 'विपुलविलोचने' इति पाठान्तरम्। ७. 'आयासीत्' इति पाठान्तरम्।

ऊरू यस्यास्तत्सम्बुद्धौ करभोरु, खरादिकलहस्थानमिदम् अत्रैव शूर्पणखायां विरूपितायां जातायां खरादिभिस्तत्संबन्धिभिः कलहः कृत इत्यर्थः। मधुरालापिनि अयि मिष्टभाषिणि, इयं पुरोदृश्यमाना मम पर्णशाला उटजो वनवासगृहमित्यर्थः। मत्तेभगामिनि समदगजवन्मन्दगते, मायामृगस्य मारीचस्य मृगयावनमिदम् अत्रैव मारीचस्याखेटः कृत इत्यर्थः। कुटिला वक्रा आयता लम्बमाना च कवरी केशपाशो यस्यास्तत्संबुद्धौ कुटिलायतकवरि कुञ्चितदीर्घकेशपाशशालिनि, इयं गोदावरी नाम नदी। कुम्भी गजस्तस्य कुम्भौ मस्तकभागाविव स्तनौ यस्यास्तत्संबोधने कुम्भिकुम्भस्तनि गजमस्तकाभकुचे, इदम् दृश्यमानभूयिष्ठम् कुम्भसम्भवस्य घटयोनिससमुत्पन्नस्यागस्त्यस्य आयतनं स्थानम्। विधुमुखि चन्द्रवदने, विराधविध्वंसनभूः विराधनामकदानवसंहारभूमिरियम्। कञ्जलोचने कमलनेत्रे महामुनेः अत्रेः इदम् आश्रमपदम् तपस्यास्थानम्। हे विदेहराजपुत्रि जनकनन्दिनि, अयं दृश्यमानः चित्रकूटः तदाख्यया प्रसिद्धो गिरिः,अस्तीति सर्वत्र सम्बन्धनीयम्। इति एवं प्रकाराः विविधाः नानाप्रकाराः कथाः वृत्तान्तान् कथयन् एव अयम् रामः अञ्जसा शीघ्रम् भागीरथीपरिसरगतं गङ्गातीरस्थितं प्रशान्तं शान्तवैरं पावनं पवित्रं च तपोवनम् तपस्यास्थानम् अयासीत् गतः। (तत्र गत्वा च) मैथिलीम् सीताम् अभाषत अवोचत। कम्बुकण्ठीशब्दे–'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यश्च' इति ङीप्। कम्बुकण्ठीप्रशंसा सामुद्रिकशास्त्रे उक्ता यथा—'स्याद्रोमवर्जितमुरो मृदुलाङ्गनानां ग्रीवा च कम्बुनिचिता च सुखानि दत्ते' इति। 'मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्यकरभो बहिः' इत्यमरः। 'पर्यन्तभूः परिसरः' इति चामरः।

हे तरुणी सीते, देखो यह ऋष्यमूकपर्वत है, हे बिम्बसदृश्य अधरवाली, यह पम्पा नामक सरोवर है, हे शङ्ख की तरह कण्ठशालिनी, यह कवन्धके निधनकी जगह है, हे करभोरु, यह खर आदि राक्षसोंके साथ जो झगड़ा हुआ था वही जगह है, हे मधुर भाषण करने वाली, यह मेरी पर्णशाला है, मदयुक्त गजकी तरह मन्दचाल वाली, यह मायामृगरूप मारीचके शिकारकी भूमि है, हे घुंघराले तथा लम्बे बालों वाली, यह गोदावरी नदी है, हे हाथीके कुम्भसदृश स्तनों वाली, यह कुम्भसे उत्पन्न महामुनि अगस्त्यका स्थान है, हे चन्द्रमुखि, यह विराधके संहारकी जगह है, हे कमलनयने, यह महामुनि अत्रिका आश्रम है, हे विदेहतनये, यह चित्रकूट है, इस प्रकारकी बहुत सी बातें कहते हुए रामजी शीघ्र ही गङ्गाके किराने पर वर्त्तमान शान्त और पवित्र भरद्वाज मुनिके आश्रममें आगये और सीतासे इस प्रकार कहा।

प्रसुप्त[1]बर्हिणश्वासपारणा[2]सुकृती हरिः।
कण्डूविनोदनोत्कण्ठी कण्ठीरवनखैर्मृगः॥ १०२॥

---

१. 'बर्हिनिश्वास' इति पाठान्तरम्। २. 'सुखितः फणी' इति पाठान्तरम्।

प्रसुप्तेति। हरिः सर्पः प्रसुप्तस्य शयितस्य बर्हिणस्य मयूरस्य ये श्वासाः नासावायवस्तेषां पारणया भोजनेन सुकृती धन्यः, सर्पमयूरयोः सत्यपि स्वभावतः शत्रुभावे मुनेरहिंसाप्रतिष्ठया तदाश्रमे सर्वसत्त्वानां वैरत्यागेन सुप्तस्य मयूरस्य नासावायुमाचामन्नहिरहीनसौभाग्यमात्मानं मन्यत इत्यर्थः। तथा मृगो हरिणः कण्ठीरवनखैः सिंहनखरैः कण्डूविनोदनोत्कण्ठी स्वकायकण्डूत्यपनुत्तिविषये धृतोत्कण्ठः अस्तीति भावः। अत्रापि वैराभावेन मृगः स्वकण्डूं सिंहनखरैरपनुद्यमानमिच्छतीत्यर्थः। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्' इति 'शुक्राहिकपिभेकेषु हरिर्ना' इति 'कण्ठीरवो मृगपतिर्मृगशत्रुर्मृगादनः' इति च सर्वत्राभिधानकोशाः। सहजवैरत्यागेन मुनेस्तपःसम्पदुत्कर्षः सूच्यते ॥ १०२ ॥

साँप सोये हुए मयूरकी सांसरूपी वायुको खाकर (पीकर) अपनेको कृतार्थ समझ रहा है और हरिण शेरके नखोंसे अपनी देहकी खाज मिटवानेके लिये मचला रहे हैं ॥१०२॥

तत्र भरद्वाजविहित[1]विविधातिथ्यस्तथैव पदवीं दवीतसी[2]मतिलङ्घ्य पुनरयोध्यासविधमासीदन्नग्रत एव हनूमदावेदितो[3]दन्तमरुन्धतीजानिपुरःसरमजस्रमा[4]नन्दबाष्पाकुलितालोकैरमात्यादिलोकैः परिगतमतिपावनतपोधनव्रतमाजानभक्तिभरितमा[5]गच्छन्तं भरतमवलोकयन्नति[6]वत्सलतया तद्विमानादवरोहणाय देवो दशकण्ठरिपुरुदकण्ठत।

तत्रेति। तत्र भरद्वाजाश्रमे भरद्वाजविहितविविधातिथ्यः भरद्वाजेन मुनिना नानाप्रकारैरुपचारैः सत्कृतः तथैव विमानद्वारैव दवीयसीम् दूरगताम् पदवीम् पन्थानम् भरद्वाजाश्रमादयोध्यां यावत् अतिलङ्घ्यः व्यतिक्रम्य अयोध्यासविधम् अयोध्यपुरीसमीपम् आसीदन् उपसर्पन् अग्रतः रामागमनात् पूर्वम् एव हनूमदावेदितोदन्तम् हनूमत्कथितरामागमनवृत्तान्तम् अरुन्धतीजानिपुरस्सरम् वसिष्ठानुगतम् अजस्रम् अत्यर्थम् आनन्दबाष्पाकुलितालोकैः हर्षाश्रुप्रतिबद्धदर्शनशक्तिभिः अमात्यादिलोकैः मन्त्र्यादिजनैः परिगतम् युक्तम्, अतिपावनतपोधनव्रतम् अतिपवित्रतपस्विनियमवन्तम्, आजानभक्तिभरितम् स्वाभाविकभक्तिपूर्णम् आगच्छन्तम् रामदर्शनायायान्तम् भरतम् अवलोकयन् पश्यन् दशकण्ठरिपुः रावणारिः देवः रामः अतिवत्सलतया भरतविषयेऽत्यर्थस्निग्धतया तद् विमानात् पुष्पकात् अवरोह-

---

१. 'विविधातिथेयः' इति पाठान्तरम्। २. 'अतीत्य' इति पाठान्तरम्।
३. 'उदन्तसमागच्छन्तम्' इति पाठान्तरम्।
४. 'आनन्दाश्रुजलविलुलितालोकैरमात्यलोकैः' इति पाठान्तरम्।
५. 'आगच्छन्तम्' इति नास्ति क्वचित्।
६. 'वत्सलमना विमानावरोहणाय दशकण्ठ' इति पाठान्तरम्।

णाय अवतरणाय उदकण्ठत उत्सुकोऽभूत्। आगच्छन्तं भरतमालिङ्गितुं त्वरितं यानादवतरीतुमैच्छदित्यर्थः।

भरद्वाजके आश्रममें भरद्वाजद्वारा किये गये नानाविध आतिथ्यसत्कारको स्वीकार करके उसी यानसे लम्बी राह तय करके अयोध्याके पास आकर अपने पहुँचनेके पहले ही हनूमान्के द्वारा सारे समाचारसे अवगत, वसिष्ठानुगत, सर्वदा आनन्दाश्रुयुक्तनयन होनेसे विलुप्तदृक्शक्ति अमात्यजनसे परिवृत, अतिपावन तपस्या नियमवाले भरतको देखते ही वत्सलताके कारण रावणारि भगवान् राम उस पुष्पक विमानसे उतरनेके लिये उत्कण्ठित हो उठे।

यानं मदाशयमवेत्य यथा यथैत-
त्तारापथादवतरत्यवनीकुमारि!।
[1]आसेदुषीं सविधमद्य तथा तथा भू-
रत्यादरेण भवतीमनु[2]गच्छतीव ॥ १०३ ॥

यानमिति। हे अवनीकुमारि पृथिवीसुते सीते, एतत् अस्मदधिष्ठितं यानं मदाशयं ममावरोहणाधिप्रायम् अवेत्य ज्ञात्वा यथा यथा तारापथात् आकाशात् अवतरति अधो याति तथा तथा सविधम् समीपम् आसेदुषीम् आयाताम् भवतीम् त्वाम् अद्य भूः पृथ्वी तव माता अत्यादरेण समधिकेन स्नेहेन अनुगच्छति अभ्युद्गच्छति इव। यथा यथा यानावरोहक्रमेण त्वं पृथिव्याः समीपमुपार्च्छसि तथा तथा सा तव माता पृथिवी त्वामभ्युपगच्छतीवेति भावः। दूरादागच्छन्तीं समीपायागतां सुतां माताऽभ्युपगच्छतीति लोकाचारोत्प्रेक्षा ॥ १०३ ॥

हमारी इच्छा जानकर यह यान जैसे जैसे आकाशसे उतर कर पृथ्वीके पास आता जाता है, हे धरणीसुते, वैसे वैसे समीप पहुँचती हुई तुझे देखकर तुम्हारी माता पृथ्वी अगवानी करनेके लिये तुम्हारे समीप सी आरही है ॥ १०३ ॥

इत्थं वदन्निन्दुमुखीं सलीलं देवः प्लवंगाधिपदत्तहस्तः।
विभीषणावेदितया पदव्या विमानतो मन्दमवारुरोह ॥ १०४ ॥

इत्थमिति। इत्थम् अनेन प्रकारेण प्रोक्तरूपेण इन्दुमुखीं चन्द्राननां सीतां सलीलं विलासपूर्वकं वदन् अभिदधानः, प्लवङ्गाधिपेन वानरराजेन दत्तहस्तः दत्तहस्तावलम्बः देवः स्वामी श्रीरामः विभीषणावेदितया विभीषणेन निर्दिष्टया पदव्या मार्गेण विमानतः पुष्पकाख्यव्योमयानात् मन्दमन्दम् स्थिरतया अवारुरोह अवततार ॥ १०४ ॥

---

१. 'आसेदुषी' इति पाठान्तरम्। २. 'अभिगच्छति' इति पाठान्तरम्।

पूर्वोक्त प्रकारसे इन्दुमुखी सीताको विलासपूर्वक कहते हुए, सुग्रीवके हाथोंका अवलम्ब लेकर विभीषणके द्वारा बताए गये मार्गसे भगवान् राम धीरे धीरे विमानसे जमीन पर उतर गये ॥ १०४ ॥

प्रणीतमणिपादुकं प्रणतमग्रतः पादयो-
रुदस्य भरतं जवादुपनयन्भुजाभ्यन्तरम् ।
[1]उदीक्ष्य च तपःकृशं वपु[2]रमुष्य वात्सल्यतः
करेण स मुहुः स्पृशन्न विरराम रामश्चिरम् ॥ १०५ ॥

प्रणीतेति । प्रणीते रामचरणसमीपं प्रापिते मणिपादुके मणिमयपादुकाद्वयम् (पूर्वं भरतस्याग्रहातिशयवशाद्रामेण भरताय दत्ते, भरतेन च राज्यासनेऽवस्थाप्याराधिते) येन तथोक्तम् पादयोः रामचरणयोः अग्रतः पुरः प्रणतं कृतनमस्कारं भरतं जवात् वेगात् उदस्य उत्थाप्य भुजाभ्यन्तरम् बाह्वोरन्तरालम् उपनयन् प्रापयन्, अमुष्य भरतस्य तपःकृशं व्रतक्लिष्टं वपुः शरीरम् उदीक्ष्य दृष्ट्वा च वात्सल्यतः स्नेहातिरेकात् करेण स्वपाणिना मुहुः भूयोभूयः परामृशन् स्पृशन् स रामः चिरम् बहुकालपर्यन्तम् न विरराम भरतस्य तपःक्लिष्टं वपुःस्पृशंस्ततो न व्यरंसीदित्यर्थः । रामे समायाते भरतस्तदीये मणिपादुके तच्चरणयोः समीपे निधाय प्रणनाम, रामश्च तमुत्थाप्य भुजान्तरालमनयत, तदीयं व्रतोपवासादिक्लान्तं वपुर्वीक्ष्य च तदुपलालनधिया चिरं तद्वपुषः स्पर्शान्न विरराम राम इत्यर्थः । पृथ्वीवृत्तम् ॥ १०५ ॥

रामकी मणिमय पादुकाको उनके चरणोंके समीप रखकर प्रणाम करते हुए भरतको उठाकर गोदमें लेते हुए तपस्यासे कृशशरीर उनकी देहको स्नेहसे स्पर्श करते हुए रामजीने उस स्पर्श क्रियासे देर तक विराम नहीं किया ॥ १०५ ॥

पश्यन्ननन्द भरतः परिरभ्य दोर्भ्यां
सौमित्रिमार्यसमदुःख[3]कृशीकृताङ्गम् ।
सोऽयं सुखोपनतराज्य[4]पराङ्मुखाय
तस्मै पुनः सहजभक्तिदृढव्रताय ॥ १०६ ॥

पश्यन्निति । आर्यसमदुःखं पूज्यश्रीरामेण सह दुःखं वनवासकष्टमनुभवन्तम्, अत एव कृशीकृताङ्गम् दुर्बलकायं सौमित्रिम् लक्ष्मणम् पश्यन् वीक्षमाणो भरतः दोर्भ्यां बाहुभ्यां (तं लक्ष्मणं) परिरभ्य आश्लिष्य ननन्द प्रसन्नो बभूव । सोऽयं लक्ष्मणः

---

१. 'अवेक्ष्य' इति पाठान्तरम् । २. 'अतीव वात्सल्यतो नवं नवमिव स्पृशन्' इति पा० ।
३. 'सुखं वनेऽपि' इति पाठान्तरम् । ४. 'मवाङ्मुखाय' इति पाठान्तरम् ।

सुखोपनतराज्यपराङ्मुखाय अनायासलब्धं राजभावमुपेक्षितवते सहजभक्तिदृढव्रताय स्वाभाविकेन रामं प्रत्यनुरागेण दृढं न भञ्जनीयं व्रतं यावद्रामागमनमयोध्यां न प्रवेक्ष्यामीत्यादिरूपं यस्य तादृशाय तस्मै भरताय ननन्द प्रसन्नोऽभवत् । रामाय राज्यमर्पयन्तं भरतं दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽपि प्रसन्नो जात इत्याशयः । भरताय ननन्द इत्यत्र 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' इति चतुर्थी, तस्याश्चोद्देश्यत्वमर्थः, तथा च भरतोद्देश्यकं नन्दनं जातमित्यर्थः, फलति । भरतं स्वप्रसादं बोधितवानिति भावार्थः ॥ १०६ ॥

पूजनीय रामके साथ समदुःखभोक्ता तथा कृशकाय लक्ष्मणको अङ्कमें भरकर आलिङ्गन करते हुए भरतजी बहुत प्रसन्न हुए और लक्ष्मणजीने भी अनायास लब्धराज्यका तिरस्कार करके, स्वाभाविक अनुरागसे—जबतक राम नहीं लौटेंगे तबतक मैं अयोध्यामें नहीं प्रवेश करूंगा—इस नियमके पालनमें तत्पर भरतको देखकर अपनी प्रसन्नता की ॥ १०६ ॥

अथ भरतोऽपि पुरतोऽभि[1]वादितपुरुषं पौरुषनिघ्नेन शत्रुघ्नेन [2]समं देवीं प्रणम्य जनकनन्दिनीमुन्मनीकृत्य [3]सावरोधवधूकान्सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन्यथोचिताभिरुपचर्याभिर[4]भ्यर्हितवसिष्ठमामन्त्रितमन्त्रिलोकमनुग्रहालोकानुगृहीतपौरवर्गमग्रजन्मानं [5]विमानगतमेव सबहुमान[6]मानन्दयन्ननयदपनीतरुजं निजाश्रमपदम् ।

अथेति । अथ एतदनन्तरम् पौरुषनिघ्नेन पराक्रमपरतन्त्रेण (अतिपराक्रमिणा) शत्रुघ्नेन तन्नामकानुजेन समं सह पुरतः अग्रेऽभिवादितपुरुषं कृतादिपुरुषरूपरामचन्द्रचरणप्रणिपातं यथा स्यात्तथा देवीं वन्दनीयां जनकनन्दिनीं सीतां प्रणम्य, सावरोधवधूकान् सस्त्रीकान् सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन् सुग्रीवविभीषणप्रभृतीन् यथोचिताभिः योग्याभिः उपचर्याभिः आदरसत्कारक्रियाभिः उन्मनीकृत्य प्रसाद्य, अभ्यर्हितः पूजितो वसिष्ठो यत्र तथा, आमन्त्रितः सादरमाकारितो मन्त्रिलोकः अमात्यवर्गो यत्र कर्मणि तत्तथा, अनुग्रहालोकैः कृपादृष्टिभिः अनुगृहीतः दयितः पौरवर्गो नगरवासिनिवहो यत्र कर्मणि तत्तथा, विमानगतं पुष्पकारूढमेव अग्रजन्मानं ज्येष्ठं भ्रातरं रामं सबहुमानम् सादरम् आनन्दयन् प्रसन्नं कुर्वन् अपनीत-

---

१. अभिवादितपूर्वजोपच्छलननिघ्नेन' इति पाठान्तरम् ।

२. 'समं सविनयं प्रणिपत्य जनकेन्द्रपुत्रीमुन्मनीकृत्य' इति पाठान्तरम् ।

३. 'सुग्रीवदशग्रीवानुजादीन्सावरोधवधूकान्' इति पाठान्तरम् ।

४. 'अभ्यर्च्याभ्यर्चितपुरोहितमामन्त्रितमन्त्रिलोकमालोकानुगृहीत' इति पाठान्तरम् ।

५. 'विमानत एव' इति पाठान्तरम् ।

६. 'अनयदपनीतजनपरिश्रमं निजाश्रमम्' इति पाठान्तरम् ।

रुजं निरस्तसमस्तसन्तापम् निजाश्रमपदं स्वतपःस्थानभूतं नन्दिग्रामं नामस्थानम् अनयत् प्रापयत्।

इसके बाद पराक्रमशाली शत्रुघ्नके साथ भरतने पहले आदिपुरुष रामको प्रणाम किया, अनन्तर सीताको प्रणाम करके सखीजन सुग्रीव विभीषण आदि समागत जनोंको यथोचित उपचार और सत्कारसे उन्हें खुशकर, वसिष्ठका आदर, मन्त्रियोंका आदरपूर्वक बुलावा, पौरजनके ऊपर दयादृष्टिप्रदानसे अनुग्रह करते हुए विमानारूढ़ बड़े भाई रामको सर्वविधसन्तापसे रहित अपने आश्रम नन्दिग्राम ले गये।

तत्र च सौमित्रिसीतासखो दाशरथिरतिलोभनीयवात्सल्यां कौसल्या-[1]मतिशयितदुःखातिरेकां कैकेयी[2]मतिक्रममस्नेहपरिष्वक्तां [3]सौमित्रिमात-रमपि क्रमादभिवादयन्नि[4]जावलोकनरसनिरताभिरेताभिर्वनिताभिः कला-भिः पूर्णिमाचन्द्र इव पयोनिधिर्वीचिकाभिरिव प्रतिक्षणं परिरभ्यमाणो निर्भरानन्दमविन्दत।

तत्र चेति। तत्र नन्दिग्रामे सौमित्रिसीतासखः लक्ष्मणसीतासहितः दाशरथिः रामः अतिलोभनीयवात्सल्याम् अतिरमणीयस्नेहाम् कौसल्याम्, अतिशयितः महान् दुःखातिरेकः कष्टप्रकर्षः रामवनगमननिमित्तीभवनजन्मा पश्चात्तापरूपो यस्याः सा ताम्, कैकेयीम् भरतमातरम्, अतिक्रमेण क्रममतिक्रान्तवता अमर्या-देन असीमेन स्नेहेन वत्सल्यरसेन परिष्वक्ताम् युताम् सौमित्रिमातरम् लक्ष्मण-जननीम् सुमित्राम् अपि क्रमात् ज्येष्ठक्रमशः अभिवादयन् प्रणमन् निजावलोकन-रसनिरताभिः रामावलोकनतत्पराभिः एताभिः पूर्वोक्तनामधेयाभिः वनिताभिः मातृरूपाभिः स्त्रीभिः कलाभिः आत्मनोंऽशैः पूर्णिमाचन्द्र इव, वीचिकाभिः तरङ्गैः पयोनिधिः सागर इव च प्रतिक्षणं परिरभ्यमाणः पुत्रस्नेहवशादालिङ्ग्यमानः निर्भ-रानन्दम् अतिहर्षम् अविन्दत प्राप्तवान्।

नन्दिग्रामसे रामने लक्ष्मण तथा सीताके साथ अति आकर्षकस्नेहपूर्ण कौसल्या, अपने आचरणसे अतिदुःखिता कैकेयी एवं असीमस्नेहयुता सुमित्राको प्रणाम करके रामके देखनेमें सप्रेम लगी हुई इन रमणियों द्वारा–कलाओं द्वारा चन्द्रमाकी तरह तथा तरङ्गों द्वारा सागरकी तरह–प्रतिक्षण आलिङ्गित होकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया।

---

१. 'अयशःशल्यजनितशोकातिरेकाम्' इति पाठान्तरम्।

२. 'अकृत्रिम' इति पाठान्तरम्।   ३. 'सुमित्रामपि' इति पाठान्तरम्।

४. 'निजालोकरसनितान्तकन्दलितान्तरङ्गाभिरेताभिश्चन्द्र इव पयोधिर्वीचिकाभिः प्रति-क्षणं परिरभ्यमाणाभिः स लक्ष्मणः केवलमानन्दधुरमविन्दत' इति पाठान्तरम्।

अथाखिल[1]जनेक्षणेक्षितरघूद्वहस्यादरा-
द्विधातुमभिषेचनं [2]विचलता गुरोराज्ञया।
अनीयत समन्ततो हरिगणेन तीर्थं पुनः
[3]समाकुलितमन्थरं विजहता गतिं मन्थराम् ॥ १०७ ॥

अथाखिलेति। अथ मातृगणदर्शनानन्तरम् गुरोः वसिष्ठस्य आज्ञया आदेशेन अखिलानां जनानां सर्वेषां लोकानाम् ईक्षणैर्नयनैरीक्षितस्य सस्नेहं दृष्टस्य रघूद्वहस्य रामस्य अभिषेचनम् राज्याभिषेकं विधातुं सम्पादयितुं समन्ततः सर्वासु दिशासु विचलता प्रतीष्ठमानेन मन्थरां गतिं मन्दगमनं विजहता त्यजता (वेगेन धावता) हरिगणेन वानरसमूहेन समाकुलितमन्थरम् समाकुलिता व्यग्रा मन्थरा नाम दासी यत्र कर्मणि तथा (मन्थरा प्राग्रामराज्याभिषेके विघ्नमकृत, अस्मिन्नभिषेके तु तदीयः प्रपञ्चो न प्रसरेदिति सा व्यग्रेत्यर्थः) पुनः भूयः तीर्थं पुण्योदकम् अनीयत आहृतम्। वसिष्ठाज्ञया वानराद्रुतगत्या तीर्थेभ्यः पावनं जलमानीतवन्त इत्याशयः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ १०७ ॥

इसके बाद वसिष्ठजीके आदेशानुसार सभी लोगोंकी आँखोंद्वारा सस्नेह देखे गये रामचन्द्रके अभिषेक करने लिये सभी दिशाओंकी ओर अमन्दगतिसे प्रस्थित वानरोंने मन्थरा नामक दासीको व्याकुल करते हुए तीर्थजल लाकर उपस्थित कर दिया ॥ १०७ ॥

अलंकृतः कृतमभिषेकमादरा-
दमात्यसंहतिभिरवाप्य राघवः।
पुरोन्मुखः पुनरयमानशे रथं
मनोरथं स च भरतो महारथः ॥ १०८ ॥

अलङ्कृत इति। अयम् राघवः रामः अमात्यसंहतिभिः मन्त्रिसङ्घातैः कृतं विहितम् अभिषेकम् राज्यारोहणोत्सवम् आदरात् अवाप्य प्राप्य अलङ्कृतः दिव्यवस्त्रालङ्कारादिभिः सज्जीकृतः सन् पुरोन्मुखः स्वजन्मभूमिराजधानीदर्शनेच्छयाऽयोध्यां प्रतिचलितः पुनः भूयः रथम् पुष्पकम् आनशे प्राप्तः, स च प्रसिद्धो महारथः पराक्रमी भरतः मनोरथम् अभिलषितसिद्धिम् आनशे प्राप्तः। राज्याभिषेकमासाद्य रामस्य रथारोहणे जाते भरतो निजमभिलषितं पूर्णममन्यतेत्यर्थः। रुचिरावृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'चतुर्ग्रहैरिह रुचिरा जभौ स्जगाः' इति ॥ १०८ ॥

---

१. 'जगत्पतेरपि' इति पाठान्तरम्। २. 'विचरितं' इति पाठान्तरम्।
३. 'विशङ्कं हृदि मन्थरां न भजता गतिम्' इति पाठान्तरम्।

मन्त्रियों द्वारा किये गये अभिषेकको सादर ग्रहण करके वस्त्रालङ्कारादिसे अलङ्कृत होकर रामचन्द्रने अपनी नगरीको देखनेकी इच्छासे रथको प्राप्त किया और पराक्रमी भरतने अपने अभिलाषकी पूर्त्ति की ॥ १०८ ॥

तत्र च सेवाविचक्षणाभ्यां [1]लक्ष्मणशत्रुघ्नाभ्यामभितो [2]विधूतव्यजनः परिजनाचारनिरतभरतोदस्त[3]विमलमुक्तातपत्रो विचित्रो[4]पहितनेपथ्यचारुरारूढशताङ्ग[5]मातङ्गैराशरप्लवग[6]वाहिनीपतिभिरनुगम्यमानः प्रवर्त्यमानश्वे[7]ताक्षतकुसुमलाजोपचारपौरपुरन्ध्रीकदम्ब[8]संरम्भचलित[9]मञ्जीरमणिकाञ्चीवलय[10]वाचालितां वाद्यमानमाङ्गलिक[11]तूर्यघोषणां वैबोधिकविविधरवश्रवणसमयोच्चलितसामोदपौरसंबाधां सौधान्तरगवाक्षचलित[12]तरुणीजनेक्षणरेखानीलोत्पलदामतोरणाभिराम[13]रथ्यान्तरामयोध्यामाजगाम रामचन्द्रः ।

तत्र चेति । तत्र तस्मिन्समये सेवाविचक्षणाभ्यां शुश्रूषानिपुणाभ्यां लक्ष्मणशत्रुघ्नाभ्यां द्वाभ्यां भ्रातृभ्याम् अभितः उभयोः पार्श्वयोः विधूतव्यजनः चालितचामरः, परिजनाचारः भृत्यकर्त्तव्यम् तत्र निरतेन लग्नेन भरतेन उदस्तम् उत्थाप्य धारितं विमलं मुक्तातपत्रं मौक्तिकनिर्मितं छत्रं यस्य तथोक्तः, विचित्रोपहितनेपथ्यचारुः आश्चर्यजनकवसनभूषणादिधारणरमणीयाकृतिः, आरूढाः शताङ्गाः रथाः मातङ्गाः हस्तिनश्च यैस्तादृशैः रथान् गजाँश्चारूढैः आशराः राक्षसाः प्लवगाः वानराश्च तेषां वाहिन्यः सेनास्तत्पतिभिः रथान् गजाँश्चारूढै राक्षससेनापतिवानरसेनापतिभिश्च अनुगम्यमानः अनुस्रियमाणः, रामचन्द्रः प्रवर्त्यमानः क्रियमाणः श्वेताक्षतानां कुसुमानां पुष्पाणां लाजानां चोपचारः निक्षेपात्मा प्रयोगो यैस्तथा भूतानि यानि पुरन्ध्रीकदम्बानि पौरवनितानिवहास्तेषां संभ्रमेण चलितैः झणझणायमानैः मञ्जीरमणिकाञ्चीवलयैः नूपुरमाणिक्यरशनाकङ्कणैः वाचालितां मुखरीकृतां, वाद्यमानानि ताडयमानानि यानि माङ्गलिकतूर्याणि मङ्गलवाद्यानि पटहाणकादीनि तेषां घोषणा

---

१. 'शत्रुघ्नलक्ष्मणाभ्याम्' इति पा० । २. 'विधूयमानधवलवालव्यजनः' इति पा० ।
३. 'मणिविमल' इति पाठान्तरम् । ४. 'उपजातमनुजवेषचारुभिः' इति पाठान्तरम् ।
५. 'मातङ्गैरलंकृतैः' इति पाठान्तरम् । ६. 'वाहिनी' इति नास्ति क्वचित् ।
७. 'शेषाक्षत' इति पाठान्तरम् । ८. 'सौरभ' इति पाठान्तरम् ।
९. 'मञ्जुमञ्जीर' इति पाठान्तरम् । १०. 'वाचाटितदशदिगन्तराम् इति पाठान्तरम् ।
११. 'भेरीमृदङ्गशङ्खादिकविविधारव' इति पाठान्तरम् ।
१२. 'तरुणीकटाक्षलेखा' इति पा० । १३. 'रथ्यां तथाविधाम्' इति पाठान्तरम् ।

शब्दो यस्यां तथोक्ताम्, वैबोधिकाः कर्त्तव्यार्थस्मारकाश्चारणाः तेषां विविधरवैः नानाविधशब्दैः श्रवणसमये तदाकर्णनकाले उच्चलिताः प्रचलिताः सामोदाः प्रसन्नाः ये पौराः पुरजनास्तैः संबाधां समाकुलाम्, सौधान्तरगवाक्षैः प्रासादमध्य-वातायनैः चलिताः प्रसृताः यास्तरुणीजनेक्षणरेखाः सुन्दरीजननेत्रमालास्ता एव नीलोत्पलदामतोरणानि श्यामकमलमालासम्पादिततोरणानि तैरभिरामाणि रम्याणि रथ्यान्तराणि प्रतोल्यभ्यन्तरभागा यस्यां ताम् तथोक्ताम् अयोध्याम् आजगाम प्रविष्टः।

उस समय सेवा करनेमें निपुण लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों ओर चमर चला रहे थे, भृत्यकार्यमें निरत भरतजी विमल मौक्तिक छत्र उठाये हुए थे, आश्चर्यकर वसन आभूषणसे रामजी अलङ्कृत थे, रथ पर तथा हाथी पर आरूढ़ राक्षससेनापति तथा वानरसेना-पति उनके पीछे चल रहे थे, ऐसी स्थिति वाले रामने, श्वेत अक्षत, फूल, लावा वगैरह माङ्गलिक वस्तु बिखेरने वाली पुरवनिताओंके वेगपूर्वक चलनेसे नूपुर, मणिमय काञ्ची, कङ्कण आदि भूषणके शब्दोंसे मुखरित, बजते हुए माङ्गलिक वाद्योंके शब्दसे पूर्ण, चारण-गणके नानाविध शब्द सुनकर तत्काल चले हुए सानन्द पुरजनसे आकीर्ण तथा प्रासादकी खिड़कियोंसे देखती हुई स्त्रियोंके नयनकान्तिरूप नीलकमलमालासे रमणीय हो रहा है गलियोंका अभ्यन्तर भाग जिसमें ऐसी अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया।

[1]साकेतं समुपेयिवान्स विजयी[2] संसेवितो भ्रातृभिः
सुग्रीवप्रमुखानपि प्रियसखान्स्वे स्वे पदे स्थापयन्।
[3]स्वच्छन्दं सुचिरं सुखान्यनुभवन्देव्या [4]तथा सीतया
रामः पालयति स्म कीर्तिविभवैरामोदिनीं मेदिनीम्॥ १०९॥

साकेतमिति। विजयी प्राप्तरावणादिविजयः सः प्रसिद्धो रामः साकेतम् अयोध्यां समुपेयिवान् आयातः सन् भ्रातृभिः भरतादिभिरनुजैः संसेवितः पितृवदुपचरितः, सुग्रीवप्रमुखान् सुग्रीवादीन् प्रियसखान् प्रियसुहृदः स्वे स्वे पदे किष्किन्धादिप्रति-नियतस्थानेषु स्थापयन् प्रतिष्ठां प्रापयन्, तथा सीतया देव्या कृताभिषेकया राज्या स्वच्छन्दं यथाभिमतं सुचिरं बहुकालपर्यन्तं च सुखानि भोगानैहिकान् अनुभवन् कीर्त्तिविभवैः दानपराक्रमादिजन्ययशःसम्पद्भिः आमोदिनीम् सहर्षाम् मेदिनीम् भुवं पालयति स्म पालयामास। अयोध्यामागत्य भरतादिकृतमुपचारं प्राप्नुवन् सुग्रीवादीन् स्वस्वराज्येषु प्रतिष्ठां गमयन् सीतया सह यथेच्छं भोगान्भुञ्जानः श्रीरामश्चिराय तद्यशसा प्रसन्नां समग्राम्मेदिनीमवति स्मेति तात्पर्यम्॥ १०९॥

---

१. 'राज्यं स्वं' इति पाठान्तरम्। २. 'विनयैरासेवितो' इति पाठान्तरम्।
३. 'स्वच्छन्दः' इति पाठान्तरम्। ४. 'तया' इति पाठान्तरम्।

विजयी रामजी साकेत आये, भाइयों द्वारा किये गये उपचारको (सेवाको) स्वीकार किया और सुग्रीव आदि अपने प्रियबन्धुओंको यथास्थान भेज दिया, सीतादेवीके साथ यथेष्ट भोग प्राप्त किये और दानपराक्रमजन्य यशोराशिसे प्रसन्ना इस पृथिवीका चिरकालतक पालन करते रहे ॥ १०९ ॥

साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित-
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना ।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम् ॥११०॥

इति श्रीलक्ष्मणकविविरचिते चम्पूरामायणे युद्धकाण्डः समाप्तः ।

साहित्यादीति । साहित्यादिकलावता साहित्यं काव्यनाटकादिकलाः चतुष्पष्टिकलास्तद्वता तदभिज्ञेन सकलकलारहस्यज्ञेन, शनगरग्रामस्य 'शनगरम्' इत्यभिधानस्य ग्रामस्य अवतंसायितः भूषणायमानो यः श्रीगङ्गाधरधीरः तन्नामा पण्डितः स एव सिन्धुः समुद्रस्तस्य (पुत्रत्वादुल्लासकत्वाच्च) विधुना चन्द्ररूपेण गङ्गाम्बिकासूनुना गङ्गानामकजनन्याः पुत्रेण, लक्ष्मणसूरिणा लक्ष्मणाख्यविदुषा प्राक् पूर्वं भोजेन तदाख्यराजकविना उदितैर्विरचितैः पञ्चभिः बालकाण्डमारभ्य सुन्दरकाण्डान्तैः काण्डैः प्रकरणैः विहितः आनन्दो विद्वत्प्रमोदो येन तादृशे प्रबन्धे अत्र चम्पूरामायणाख्यकाव्ये विरचितः प्रणीतः षष्ठः काण्डः अपि चिरं जीयात् सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । अन्ते प्रबन्धाशीःप्रदानेन 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि चायुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युः' इति स्मार्यते ॥ ११० ॥

साहित्यादिकलाओंसे युक्त, 'शनगर' नामक गाँवके भूषणस्वरूप 'श्रीगङ्गाधर' पण्डितरूप समुद्रके चन्द्रमा, 'गङ्गा' नामक जननीके पुत्र 'लक्ष्मण सूरि' द्वारा प्रणीत पहले भोजराज-द्वारा निर्मित पाँच काण्डोंसे लोकोंको आनन्दित करनेवाले इस चम्पूरामायण नामक प्रबन्धका षष्ठकाण्ड चिरकालतक विजय लाभ करे ॥ ११० ॥

यो जाते धरणीसुरान्वयसरोहंसात्प्रसर्पद्यशो-
ज्योत्स्नाद्योतितदिङ्मुखान्मधुरिपुध्यानैकबद्धाशयात् ।
मिश्राख्यान् 'मधुसूदना''जयमणौ' सीमन्तिनीनां मणौ
तस्य श्रीयुत 'रामचन्द्र' सुधियो व्याख्या प्रसिद्ध्यादियम् ॥ १ ॥

रामक्षोणिखबाहुसम्मितशरद्याशातिथौ चैत्रगे
चन्द्रे पुष्यति गीष्पतेः शुभदिने श्रीशारदानुग्रहात्।
'रांची' स्थापितराज्यसंस्कृतमहाविद्यालये पूर्णता-
मानीतेयमुमामहेश्वरपदाम्भोजेषु विश्राम्यतु ॥ २ ॥
'विद्वांसो वसुधातले परवचः श्लाघासु वाचंयमाः'
उक्त्वैतद्विमुखीभवामि न मनागालोचनानवर्त्मनः।
ते हि स्वर्णपरीक्षणैकनिकषा निष्पक्षपातां दृशं
निक्षिप्यात्मगुणोचितादरभुवं कुर्युर्ममेमां कृतिम् ॥ ३ ॥
छिद्रान्वेषणमात्रसज्जधिषणानप्यत्र दोषान्बहून्
ग्रन्थे दर्शयतो न मत्सरितया निन्दामि किन्त्वर्थये।
निर्दोषेण यथा प्रशस्तरचनां निर्माय काञ्चित्कृतिं
लोकेभ्यः समुपाहरन्तु भविता भूयो यशोऽनेन वः ॥ ४ ॥
मान्यान्यानहमाद्रिये नतशिरास्ते ते सखायश्च मे
येषामाग्रहतो विदन्नपि निजां शक्तिं प्रवृत्तोऽभवम्।
व्याख्यानेऽत्र, नतैरियं मम कृतिः कार्यान्यथा दृक्पदं
सर्वानिन्दितकीर्त्तिलाभसुभगं भाग्यं कुतोऽस्मादृशाम् ॥ ५ ॥

इति 'मुजफ्फरपुर'मण्डलान्तःपाति 'पकडी' ग्रामवासिना 'रांचीस्थराजकीय-संस्कृतमहाविद्यालये साहित्याध्यापकेन व्याकरणसाहित्यवेदान्ताचार्या-द्युपाधिप्रसाधिना मैथिलपण्डित-श्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मणा विरचि-तायां चम्पूरामायणस्य प्रकाशाभिधायां व्याख्यायां
युद्धकाण्ड'प्रकाशः'।

शुभमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

श्लोकानुक्रमणिका

प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा विद्या भवन

चौक, बनारस–१

नाटक-ग्रन्थाः—

१	अनर्घराघव । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	८—००
२	अभिज्ञान शाकुन्तल । किशोरकेलि संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	६—००
३	अभिषेकनाटक । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—५०
४	अविमारक । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
५	उत्तररामचरित । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका, नोट्स सहित	४—५०
६	ऊरुभङ्ग । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	१—५०
७	कर्णभार । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	१—२५
८	कर्पूरमञ्जरी । मकरन्द संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
९	चारुदत्त । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहि	२—५०
१०	दूतघटोत्कच । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	१—२५
११	दूतवाक्य । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	१—२५
१२	नागानन्दनाटक । भावार्थदीपिका संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
१३	पञ्चरात्र । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—२५
१४	प्रतिज्ञायौगन्धरायण । भासविरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका	२—००
१५	प्रतिमानाटक । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—००
१६	प्रबोधचन्द्रोदय । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—५०
१७	प्रसन्नराघव । चन्द्रकला संस्कृत हिन्दी टीका सहित	४—५०
१८	प्रियदर्शिका । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—००
१९	बालचरित । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—५०
२०	भासनाटकचक्र 'प्रबोधिनी' 'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित	२२—००
२१	मध्यमव्यायोग । भास विरचित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	१—२५
२२	महावीरचरित । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	४—००
२३	मालतीमाधव नाटक । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	५—००
२४	मालविकाग्निमित्र । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
२५	मुद्राराक्षस । शशिकला संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—२५
२६	मृच्छकटिक । प्रबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	६—००
२७	रत्नावली । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
२८	विक्रमोर्वशीय । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
२९	वेणीसंहारनाटक । प्रबोधिनी संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	३—००
३०	स्वप्नवासवदत्त नाटक । प्रकाश संस्कृत-हिन्दी टीका सहित	२—५०
३१	सुभद्राहरण । माधवप्रणीत । 'प्रकाश' व्याख्या सहित	१—००
३२	सौगन्धिकाहरण । विश्वनाथकृत । 'प्रकाश' व्याख्या सहित	१—५०